करते हैं. और एक एक नामका उच्चारण करके भगवानको प्रणाम करते हैं. अब कलियुगमेंभी अनेक प्रकारके तंत्रमार्गोंको मुख्य मानकर, जिस प्रकारसे पूजा की जाती है वह सुनो ॥ ३१ ॥ वर्णसे श्याम होनेपरभी कांतिकरि देदीप्यमान तथा अंग व कौस्तुभ-आदि- उपांग तथा अस्त्र व पार्षदसहित भगवानका विवेकी पुरुष कीर्तन जिनमें प्रधान है ऐसी अर्चनाओंसे यजन करते हैं ॥ ३२ ॥ वोही स्तुतिकाप्रकार कहते हैं. हे भक्तोंके पालक ! हे महापुरुष ! आपका चरणारविंद कि-जो ध्यान करनेयोग्य, इंद्रिय व कुटुंब-आदिसे होतेहुए तिरस्कारको हटानेवाला मनोरथोंको पूरनहारा, गंगादिक तीर्थोंका आश्रयरूप, ब्रह्मा तथा महादेवआदिसे स्तुति किया जाता, सुखरूप, भक्तमात्रकी पीड़ा हरनेवाला और संसाररूप समुद्रमें नौकारूप है, तिसे मैं बंदन करता हूं॥ ३३ ॥ हे महापुरु-

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सागोपांगास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंतिहि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजन् श्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विंदेत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥

ष ! हे रामचंद्र! आप कि-जो देवतानके अभीष्ट और अतिदुस्त्यज ऐसी राज्यलक्ष्मीको त्यागकर, पिताके वचनसे केवल धर्मकी रक्षाके अर्थ वनमें पधारे. और प्यारी सीता कि जिसमें अभिलाषा हुई ऐसे मायारूप मृगके पीछे सीताजीके प्रेमके हेतु दौड़े तिन भक्तप्रिय प्रभु आपके चरणको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ महाराज ! इस प्रकार कलियुगके मनुष्य कलियुगके उचित रूपसे सर्व पुरुषार्थोंके पति भगवान्का पूजन करते हैं ॥ ३५ ॥ गुणको जाननेवाले और सारका ग्रहण करनेवाले महात्मालोग चारों युगोंमें कलियुगकी प्रशंसा करते हैं कारण यह कि- सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञ करनेसे और द्वापरयुगमें पूजन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सर्व फल कलियुगमें केवल कीर्तन करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ इस संसारमें भटकनेवाले प्राणियोंके

हंस, सुपर्ण, वैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, मनु, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ये भगवान्‌के नाम उस युगमें कहे जाते हैं ॥ २३ ॥ त्रेतायुगमें यज्ञमूर्ति भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्भुज, तीन मेखला धारण किये, सुवर्णकेसे केशवाले, स्रुच व स्रुवा आदि चिह्नोंको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ इस युगमें मनुष्य धर्मिष्ठ और ब्रह्मवादी होते हैं. वे सर्वदेवमय विष्णु भगवान्‌की वेदत्रयीमें कहेहुए कर्मोंसे पूजा करते हैं. ॥ २५ ॥ विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत और उरुगाय ऐसे नामोंसे

हंसः सुपर्णो वैकुंठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्व देवमयं हरिम् ॥ यजंति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयंतश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजंति वेदतंत्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवंति जगदीश्वरम् ॥ नानातंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥

गाये जाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरयुगमें भगवान् श्यामबरन, पीतांबर पहिने, अपने चक्रादिक आयुध धरेहुए, श्रीवत्स ( वक्षः स्थलमें दक्षिणभागमें प्रदक्षिण रीतिसे रोमकी भ्रमर ) आदि शरीरके चिन्ह तथा कौस्तुभ आदि बाहिरके चिन्होंसे सुशोभित रहते हैं ॥ २७॥ महाराज! इस युगमें मनुष्य ईश्वरको जाननेकी इच्छा रखते हैं. वे चक्रवर्तीके छत्र चामर–आदि चिन्होंवाले भगवान्‌की वेदमार्ग और तंत्रमार्गसे पूजा करते हैं ॥२८॥वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ऋषि, महात्मा, पुरुष, विश्वके ईश्वर, विश्वरूप और सर्व भूतमात्रके आत्मा भगवान् आपको हम प्रणाम करते हैं॥२९॥३०॥ हे राजा! द्वापरयुगमें इस प्रकार ऐसे नामोंसे लोक भगवान्‌की स्तुति

अधर्बीच लटकनेवाले अर्थात् जो न तौ पूरे अज्ञानी हैं और न तत्त्वज्ञानी हैं वे लोक धर्म, अर्थ और कामकोही मुख्य माननेसे और उपशांतिका क्षणमात्रभी अवसर नहीं मिलनेसे अपने हाथसेही अपने आत्माको हत करते हैं यानी आत्मस्वरूपको नहीं जाननेसे जन्म- मरण पाया करते हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार आत्महत्या करनेवाले, शांतिरहित और कर्मकोही ज्ञानरूप माननेवाले तथा जिनके मनोरथ प्राप्त होनेपरभी कालसे पीछे नष्ट हो जाते हैं ऐसे लोग अपना जो अवश्य कर्तव्य है उसे विना कियेही मर जाते हैं ॥ १७ ॥ जो लोग भगवान्से बहिर्मुख हैं वे परिश्रम करके उपार्जन कियेहुये अपने घर, संतान, संबंधी और धनको अपनी इच्छाके विनाभी छोड़कर, नीचयोनियोंमें गिरते हैं ॥ १८ ॥ निमिराजाने कहा कि- सर्वको त्याग कर, केवल भगवान्-

एत आत्महनो शांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥
हित्वात्यायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥
राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किं वर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते त-
दिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णा-
भिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः ॥ कृष्णाजिनोपवी-
ताक्षान्बिभ्रद्दंडकमंडलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यजंति तपसा देवं
शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥

की भक्ति करना चाहिये ऐसे जो आपने कहा सो ये भगवान् किस समयमें, कैसे वर्णके, कैसे आकारवाले, किस नामसे और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जाते हैं ? वह मुझे कहो ॥ १९ ॥ तब करभाजन नाम नवम योगेश्वर बोले कि- सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं. तिनमें जुदे २ वर्णके भिन्न २ नामवाले व पृथक् २ आकृतिवाले भगवान् भिन्न २ प्रकारकी विधिसे पूजे जाते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें भगवान् श्वेतवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी, वल्कलके वस्त्र पहिने, कालिय मृगचर्म, यज्ञोपवीत, माला, दंड और कमंडलु धारण किये, ब्रह्मचारीका वेष बनाये, विराजते हैं ॥ २१ ॥ इस युगमें मनुष्य शांत, वैरभावरहित, सर्वके मित्र, समदृष्टिवाले होते हैं. वे तप यानी ध्यान, शम व दमसे भगवान्का पूजन करते हैं ॥ २२ ॥

फल है; क्योंकि– धर्म करनेसे परोक्षज्ञान और शीघ्र शांति देनेवाला अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्त होते हैं ऐसे कल्याणकारी धनको ये लोग देहादिकके अर्थ घरोंके बीचमें वृथा गवाँ देते हैं. हाय ! न तो इसका विचार करते हैं और न महाप्रबल मृत्युका विचार लाते हैं कि– जो सदा देहके शिरपर घूमाही करती है. ॥ १२ ॥ वेदमें जो मद्यपानादिकके वास्ते यज्ञआदिमें छुट्टी दी गयी है वहभी दूसरेही प्रकारकी है. सुरापान करना यानी नाकसे मद्यको सूंघ लेना इतनीही वेदकी आज्ञा है, परंतु पीनेकी आज्ञा नहीं है. यज्ञमें देवतानके उपदेशसे पशुकी जो हिंसा होती है वह हिंसाही नहीं है, अपने खानेके उद्देशसे जो हिंसाआदि की जाय वही हिंसा कहलाती है ऐसे अभिप्रायसे यज्ञमें हिंसा करनेकी छुट्टी दी गयी है. मैथुनकी छुट्टी दी गयी है वहभी प्रजा उत्पन्न कर-

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥ ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान् ॥ १४ ॥ द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयंति ते ॥ १६ ॥

नेके वास्ते दी गई है परंतु इंद्रियोंकी तृप्तिके वास्ते नहीं. इस प्रकारके पवित्र धर्मको ये अज्ञानीलोग नहीं जानते ॥ १३ ॥ इस प्रकारके धर्मको नहीं जाननेवाले, अक्कड़ रहनेवाले और अपनेमें सत्पुरुषपनका अभिमान रखनेवाले जो लोक निःशंक रहकर तथा ऐसे करनेसे मनोरथ प्राप्त होगा ऐसा विश्वास रखकर पशुओंसे द्रोह करते हैं उन लोगोंके मरनेके अनंतर वे पशु उन लोगोंको पीछे खाते हैं ( ' मां ' यानी मैं कि–जो मांस खानेवाला हूं तिसको ' सः ' यानी जिसका मांस खाया जाता है वह पशु परलोकमें खावेगा ऐसा मांसशब्दका अर्थ विद्वानोंने किया है. मनु० ) ॥ १४ ॥ पराये शरीरमें विराजमान परमेश्वर प्रभु कि– जो अपनेभी आत्मा हैं उनसे द्वेष करनेवाले और इस शवतुल्य शरीरमें व पुत्रादिक परिवारमें स्नेह बांधनेवाले ये लोग दुर्गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ अज्ञानीलोग तत्त्वज्ञानियोंके अनुग्रहसे तिर जाते हैं और तत्त्वज्ञानी तो आपने आप तिर जाते हैं, परंतु

१ ॥ मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं इति मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः इति मनुः   २ मुर्दाके. समान

यज्ञमें खाना और सौत्रामणिमें सुरापान करना' इन दोनों वाक्योंमेंभी ये तीनों दोष समझ लेना, इसकारणसे इन वाक्योंको परिसंख्यावाक्य कहनाभी अयोग्य है; इस प्रकार इनवाक्योंको विधिरूप, नियमरूप और परिसंख्यारूप कुछभी नहीं कह सक्ते, तासों इन वाक्योंकी व्यवस्था इसप्रकारसे है कि–ये वाक्य नियमरूप हैं, परंतु इनमें एक पक्षमें अप्राप्तकी प्राप्ति करनेरूप फल नहीं होनेसे वे नियमद्वारा फलितार्थ परिसंख्यारूप होते हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि– ऋतुमें स्त्रीसंग न करे, होमका अवशिष्ट मांस न खाय और सौत्रामणि यज्ञमें सुरापान नहीं करे तौ दोष लगे ऐसी दृढ़ आज्ञारूप ये वाक्य नहीं हैं; किंतु उतनी छुट्टी देनेरूप हैं; जिस पुरुषके मैथुन किये विना बिलकुल चलेही नहीं उसके वास्ते अपनी स्त्रीमें मैथुन करनेकी और वहभी ऋतुमेंही करनेकी छुट्टी दी गयी है. जिस पुरुषके मांस खायेविना चलेही नहीं उसको देवयजनमें होम किये पीछे अवशेष रहा हुआ मास खानेकी छुट्टी दी है. और जिसके सुरापान किये विना चलेही नहीं उसके लिये सौत्रामणि यज्ञमें सुरापानकी छुट्टी दी गयी है.

**धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांति ॥ गृहेषु युंजंति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥ १२ ॥**

तासों जहातक बन पड़े, तहांतक स्त्रीसंग, मांसभक्षण और मद्यपान इनको त्याग देनाही चाहिये ऐसा वेदवाक्योंका तात्पर्य है. जो लड़का अतीव खेलमें लगाहुआ होनेसे पढ़ता न होवे उससे उसका पिता कहे कि–'तू एक घंटा खेला कर' इस वाक्यका अर्थ 'तू घंटा नहीं खेलेगा तौ मैं तुझे पीटूंगा' ऐसा नहीं है, किंतु तेरे खेले विना चलताही न होवे तौ एक घंटा खेलनेके वास्ते छुट्टी है; तासों 'जहांलों बन पड़े तहांलों खेलना छोड़दे' ऐसा अर्थ है. तासों यह वाक्य जैसे निवृत्तिका निरूपण करता है ऐसे वेदभी निवृत्तिका निरूपण करता है प्रवृत्तिका निरूपण नहीं करता. 'जो पुरुष आप निकट होतेभी ऋतुस्नाता भार्यासे संग नहीं करे, उसपुरुषको गर्भहत्याजितना बड़ा भयंकर पाप लगता है' इत्यादि स्मृतिवाक्य तौ जो पुरुष मनमें कामना होनेपरभी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ संगम न करे उसपर हैं ऐसे जानना ॥ ११ ॥ मैथुन, मांसभक्षण और मद्यपानआदि मनोरथोंसे व्याकुल भये हुए लोक, प्रिय आत्माको नहीं सुनते यह बात कही. अब धनकाभी अयोग्य उपयोग करते हैं सो ठीक नहीं यह बात कहते हैं; धर्म करना यही धनका

मांसभक्षण और सुरापान तो वेदके वचनोंविनाभी मनुष्योंको स्वाभाविक प्रीतिसेही प्राप्त हैं. तासों तिनका निरूपण करनेवाले वेदवाक्योंको विधिवाक्य नहीं कह सक्ते, जैसे ये वाक्य विधिवाक्यरुप नहीं हैं ऐसे नियमवाक्यरूपभी नहीं हैं. जो क्रिया एक पक्षमें अप्राप्त होवे उसे प्राप्त करनेके वास्ते जो वाक्य होवें वे नियमवाक्य कहलाते हैं. जैसे कि– 'यज्ञमें उपयोगी व्रीहि-को कूट कर छरना' ऐसे अर्थका जो वेदवाक्य है वह नियमवाक्य है, भूसा निकाल देनेके वास्ते जिस पक्षमें व्रीहिको नखसे छीलें उस पक्षमें ऊखलमें कूटकर छरना अप्राप्त है, तासों एकपक्षमें अप्राप्त जो क्रिया वह पूर्वोक्त वचनसे प्राप्त की गई कि– 'व्रीहिको छरना चाहिये अतएव यह नियमवाक्य कहलाता है.' ऐसे मैथुन, मांसभक्षण और सुरापान प्रीतिसे सदा प्राप्त हैं, तासों एक पक्षमें अप्राप्त नहीं हैं इसीलिये इनके विधायक वाक्योंको नियमवाक्यभी नहीं कहसकते. जैसे इस रीतिसे इन वाक्यों-को विधिवाक्य वा नियमवाक्य नहीं कहसकते ऐसे परिसंख्यावाक्यरुप कहनाभी अयोग्य है; क्योंकि दोनों क्रियाओंकी इकठी प्राप्ति होती हो वहां एककी निवृत्ति करनेके ऊपरही तात्पर्य होवे तौ वह परिसंख्यावाक्य कहा जाय. जैसे कि–स्वाभाविक प्री-तिसे सर्व पंचनख जंतुओंका भक्षण प्राप्त है तहां उनमें 'श्वावित्, गोधा, शेला, कछुआ और शश ( खरगोश, ) इन पांचोंके सिवाय दूसरे पांचनख जंतुका भक्षण नहीं करना' ऐसे अभिप्रायवाला जो वाक्य है वह परिसंख्यावाक्य है. इसप्रकार यद्यपि 'ऋतुमें स्त्रीका संग करना, यज्ञमें होमसे अवशेष रहाहुआ मांस भक्षण करना और सौत्रामणि नाम यज्ञमें मद्यपान करना' ऐसे अर्थवाले वाक्योंको परिसंख्यावाक्य कहनेमें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं आती; क्योंकि ऋतुमें और ऋतुविनाभी स्त्रीसंग स्वाभाविक रीतिसे प्राप्त है तहां ऋतुभिन्नसमयमें स्त्रीसंग बिलकुल नहीं करना. ऐसेही होम करके वा होम किये विनाभी स्वाभा-विक प्रीतिसे मांस भक्षण प्राप्त है, तहां होम किये विना मांसभक्षण नहीं करना. और सौत्रामणि यज्ञमें अथवा उस विनाभी सुरापान स्वाभाविक प्रीतिसे प्राप्त है तहां सौत्रामणि यज्ञ विना कदापि सुरापान नहीं करना. ऐसा अर्थ लिया जाय तौ पूर्वोक्त रीतिसे ठीक संगत होता है परंतु वेदके वाक्योंमें परिसंख्या मानीजाय तौ उनका निर्दोषत्व चला जाता है. अर्थात् स्वार्थत्याग, परार्थकल्पना और प्राप्तबाध ये तीन दोष आ पड़ते हैं. 'ऋतुमें स्त्रीसंग करना' जिस वाक्यका ऐसा वाच्य अर्थ है उसका त्याग हुआ यह स्वार्थत्याग दोष आया. 'ऋतु विना स्त्रीसंग नहीं करना' ऐसा जो दूसरा अर्थ हुआ यह परार्थकल्पनादोष आया. और स्वाभाविक प्रीतिसे जो प्राप्त है उसका बाध हुआ, यह प्राप्तबाध दोष आया. इसी प्रकार 'होमसे अवशिष्ट मांस

लोक, जिनमें मैथुनका सुखही उत्तम माना गया है ऐसे घरोंमें रहकर, ' आज मैंने इतना पैदा किया, यह मेरा मनोरथ परिपूर्ण होगा, मेरे पास इतना धन तौ है और इतना फिर हो जायगा ' इत्यादि सुखकी बातें आपसमें बनाते हैं. पूरी पूरी दक्षिणा वा अन्नदान नहीं देते हुए दंभके वास्ते यज्ञ करते हैं और हिंसाके दोषको न जानकर, केवल जीविकाके वास्ते पशुओंका प्राण लेते हैं ॥ ८ ॥ संपत्ति, ऐश्वर्य, उत्तम कुलमें जन्म, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मसे भयेहुए अभिमानके हेतु अंधे भयेहुए ये खललोक प्रभुका और प्रभुके भक्तोंका अपमान करते हैं ॥ ९ ॥ इस प्रकार वर्तनेवाले ये मूर्खलोग वेदका तत्त्वार्थ यद्यपि स्फुट है, तथापि उसे नहीं जानते. आत्मभावसे तथा ईश्वरभावसे सर्व देहधारियोंमें सर्वदा विराजमान और ऐसे होनेपरभी आकाशकी नाईं असंग और आत्मा होनेसे परमप्रिय पुरुषार्थरूप और वेदमें स्फुट रीतिसे गाये हुए इन प्रभुका ये लोग श्रवणभी

श्रिया विभूत्याऽभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यंति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वते बुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

नहीं करते. और वास्तविक रीतिसे वेद यद्यपि निवृत्तिकाही निरूपण करता है, तथापि मैथुन करनेकी, मांस खानेकी और मद्य पीनेकी रुचिसे ' यह वेद प्रवृत्तिकाही निरूपण करता है ' ऐसे कहते हैं. ' ऋतुमें स्त्रीसंग करना, होमसे अवशेष रहाहुआ मांस खाना और सौत्रामणि नाम यज्ञमें मदिरा पीना ' ऐसे अर्थवाले वेदके वचनोंमें यद्यपि मैथुन, मांसभक्षण और मद्यपान करनेको कहा है, ऐसे बाहिरी दिखावट यानी ऊपर ऊपरसे प्रतीत होता है, परंतु तलस्पर्श करते उनकी निवृत्ति करनेका वेदका अभिप्राय है. ऐसे सिद्ध होता है ॥ १० ॥ उसकी रीति यह है-प्रथमतो ये वाक्य विधिरूप हैं ऐसे नहीं कह सक्ते. क्योंकि जो क्रिया अत्यंत अप्राप्त होवे, उसे प्राप्त करनेके वास्ते जो वाक्य होवें वे विधिवाक्य कहलाते हैं. जैसे-संध्या, अग्निहोत्र इत्यादिक क्रियायें कि-जो दूसरी किसी रीतिसे प्राप्त नहीं होतीं उनको प्राप्त करनेके वास्ते जो वेदके वाक्य हैं वे विधिवाक्य हैं. मैथुन,

गुणोंके हेतु भिन्न भिन्न हैं, वे तथा चार आश्रम पैदा हुए हैं ॥ २ ॥ इनमेंसे जो लोग अपनेको उत्पन्न करनेवाले साक्षात् गुरु (पिता) रूप ईश्वर नारायणको नहीं जान कर, उनकी सेवा नहीं करते और जो जाननेपरभी अवज्ञा करते हैं, वे कृतघ्न होनेके कारण वर्णाश्रममेंसे भ्रष्ट होकर, दुर्गतिको पाते हैं ॥ ३ ॥ जिनसे भगवान्‌की कथाका श्रवण और भगवान्‌का कीर्तन दूर है ऐसे कितने एक द्विजलोग तथा स्त्रियां और शूद्रादिक कि–जो भगवान्‌को नहीं जाननेसे नहीं भजते, उनपर आपजैसे पुरुषोंको कृपा करके, सुधारना चाहिये ॥ ४ ॥ कितनेएक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यदपि उपनयनसंस्कारसे और वेदके अध्ययनादिकसे भगवान्‌के भजनका उत्तम अधिकार पा चुके हैं, तथापि वेदके फलतुल्य स्तुतिवचनोंमें मोहित होकर, जाननेपरभी भगवान्‌को नहीं

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजंत्यवजानंति स्थानाद्भ्रष्टाः पतंत्यधः ॥ ३ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यंत्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पंडितमानिनः ॥ वदंति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दांभिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदंति तेऽन्योऽन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ॥ यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥

भजते. और कर्मासक्त हो रहे हैं. उन अर्द्धदग्ध लोगोंको सुधारनेका कोई उपाय न होनेसे आप जैसे पुरुषोंको उनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ जिस प्रकारसे किया हुआ कर्म बंधनकारक न होवे उस प्रकारको नहीं जाननेवाले, अनम्रभावसे विद्वानोंकोभी नहीं पूंछनेवाले और मूर्ख होनेपरभी पंडितपनका अभिमान रखनेवाले ये अर्द्धदग्ध लोक वेदके फलतुल्य स्तुतिके मधुरवचनोंसे उत्सुक होकर, ‘ अप्सरानके साथ क्रीड़ा करेंगे. ’ इत्यादिक मीठी २ बातें केवल मूर्खतासे करते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुणकी वृद्धिके हेतु अभिचारादिक घोर संकल्प करनेवाले, अतिबहुल तृष्णावाले, सर्पकेसे क्रोधवाले ‘ ढोंगी ’ अभिमानी और दुष्टस्वभाववाले ये अर्द्धदग्धलोग भगवान्‌के भक्तोंको हँसते हैं ॥ ७ ॥ हे राजा ! वृद्धोंकी नहीं किंतु स्त्रियोंकी उपासना करनेवाले ये

जीका अवतार धारण करके, पृथ्वीको इक्कीसबेर निःक्षत्रिय करी. रामावतार धरकर, समुद्रमें सेतु बांधेंगे तथा लंकासहित रावणको मारेंगे. लोकोंके पापोंको हरनेवाली कीर्तिवाले सीतापति रामचंद्रजीका अवतार जो अभी विद्यमान है वह सर्वोत्कृष्ट है ॥ ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके वास्ते भगवान् अजन्मा होनेपरभी यादवोंमें बलभद्र और श्रीकृष्णरूप अवतार धारण करके, देवतानसेभी न बने ऐसे २ कार्य करेंगे. यज्ञ करनेके योग्य न होनेपरभी यज्ञ करनेवाले दैत्योंको बुद्धावतार धारण करके, नास्तिकरीतिके वादोंसे मोहित करेंगे. कलियुगके अंतमें कल्कि अवतार धरकर, शूद्र जातिके राजाओंका वध करेंगे ॥ २२ ॥ हे राजा! जगत्के पति और महाकीर्ति भगवान्के ऐसे २ अनेक जन्म और कर्म महात्मा लोगोंने वर्णन किये हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीभागव-

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदंते ॥ २२ ॥ एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवंतं हरिं प्रायो न भजंत्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशांतकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥

ते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पांचवें अध्यायमें भक्तिरहित लोगोंकी क्या गति होती है? और युग युगमें पूजाका प्रकार कैसा है? इन दो प्रश्नोंका उत्तर दिया जायगा ॥ १ ॥ निमिराजाने पूंछा कि– हे महाब्रह्मवेत्ताओ! आपने कहा कि– "भगवान्के भक्त विघ्नोंके शिरपर पांव रखकर, परमगति पाते हैं और अभक्तोंके विघ्न होते हैं." तब मैं पूछता हूं कि– बहुतसे लोग भगवान्का भजन नहीं करते हैं, उन मनको नहीं जीतनेवाले और उसीके हेतु जिनकी तृष्णा शांत नहीं हुई है ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है? ॥ १ ॥ तब चमस नाम आठवें योगेश्वरने कहा कि– नारायणके मुख, हाथ, जंघा और चरणमेंसे अनुक्रमसे ब्राह्मणादिक चार वर्ण कि– जो

सुतियोंको पीछी लाये ॥ १७ ॥ भगवान्ने
किया था. विष्णु भगवान् हयग्रीवका अवतार धारण करके, मधुदैत्यको मारकर, श्रुतियोंको पीछी लाये ॥ १७ ॥ भगवान्ने
मत्स्यावतार धारण करके, प्रलयमें मनुकी, पृथ्वीकी और औषधियोंकी रक्षा की. वराह अवतार धर कर, जलमेंसे पृथ्वीका उद्धार
करते समय हिरण्याक्षनाम दैत्यका वध किया. अमृतमथनके समयमें कच्छपअवतार लेकर, अपनी पीठपर पर्वतको धारण
किया. पीड़ित होकर, शरण आये हुए गजराजको जिन्होंने ग्राहसे छुड़ाया वहभी भगवान्का अवतार था ॥ १८ ॥ भगवान्ने
जुदे २ अवतार धारण करके, इसप्रकार चरित्र किये. वालखिल्य नाम तपस्वी ऋषि कि– जो कश्यपके वास्ते समिध लेनेको

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिजउद्धरतांऽभसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिर-
मृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुंचदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान् श्रमणानृ-
षींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय स-
तां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वांऽतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ
वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याञ्चाछलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृतगां च
त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबंध दशवक्त्रमहन्सलंकं सीतापति-
र्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

बनमें जाते थे वहां गौके खुरके खड्ढेमें बूड़ गये और इंद्र उनको देखकर हंसा, तब उन्होंने भगवान्की स्तुति की, तिससे प्रसन्न
होकर, भगवान्ने उनको संकटमेंसे छुड़ाया. वृत्रासुरको मारनेसे इंद्रको ब्रह्महत्या लगी वहभी दूर करके, भगवान्ने इंद्रको पापमेंसे
छुड़ाया. दैत्यके घरमें रोकीहुई देवताओंकी अनाथ स्त्रियोंको छुड़ाया. भगवान्ने नृसिंहावतार धरकर, सत्पुरुषोंको अभय देनेके
वास्ते हिरण्यकशिपुका वध किया ॥ १९ ॥ सब मन्वंतरोंमें देवासुरसंग्राममके बीच अपने अवतारोंसे देवतानके लिये बड़े २ दै-
त्योंको मारकर, लोकोंका पालन किया. भगवान्ने वामनअवतार धरकर, मांगनेके छलसे बलिराजासे इस पृथ्वीका हरण किया
और देवतानको दी ॥ २० ॥ हैहयनामक क्षत्रियकुलके संहारके वास्ते मानों भृगुकुलमेंसे अग्नि प्रगट हुआ हो ऐसे परशुराम-

सागरोंको पार उतरकर, गौके खुरके खड्ढेमें बूड़ जाते हैं, ये लोक क्रोधसे शाप आदि देकर, अपने महाकठिन तपको वृथा गवाँ देते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार देवता स्तुति करते थे तहां भगवान्‌ने उनका गर्व दूर करनेके वास्ते सेवा करतीं हुई, सिंगारसे सजींहुई और अत्यंत रूपवतीं दूसरीं स्त्रियां अपने योगके बलसे उत्पन्न करके दिखायीं ॥ १२ ॥ मूर्तिमती लक्ष्मीजैसी उन स्त्रियोंको देखकर, उनके अद्भुत रूपसे जिनकी कांति हत हो गयी है ऐसे वे इंद्रके अनुचर उन स्त्रियोंके शरीरकी सुगंधिहीसे मोहित हो गये ॥ १३ ॥ तब देवनके देव जो ब्रह्मादिक तिनकेभी स्वामी नारायण भगवान् आपको नमन करते हुए इन देवतानसे मानों हँसते हों ऐसे कहने लगे कि– " इनमेंसे एक स्त्री तुम ले लो, यदि हम अतितुच्छ कहां ? और ये स्त्रियां कहां ? तुम्हारे मनमें



इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणी ॥ गंधेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवंदिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इंद्रायाऽऽनम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवदच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमारऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कलयाऽवतीर्णस्तेनाऽऽहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

ऐसा हो तौ इनमेंसे जो तुम्हारे जैसी रूपवती हो उसे ले लो. और जो सबकी सब तुमसे अधिक रूपवाली दीखतीं हों तौ स्वर्गका भूषण बनानेके वास्ते एक स्त्रीको मांग लो. " ॥ १४ ॥ देवतानके बंदीजन नारायणकी आज्ञाको ' जो आज्ञा ' ऐसे कह, शिरपर चढ़ाकर, अप्सरानमें उत्तम उर्वशी नाम अप्सराको लेकर, स्वर्गमें गये ॥ १५ ॥ सभाके बीच इंद्रको प्रणाम करके, उन्होंने देवतानके सुनते नारायणके बलकी वार्ता कह सुनाई. यह बात सुनकर, इंद्रको त्रास और विस्मय हुआ ॥ १६ ॥ ( औरभी अवतार और उनके चरित कहते हैं ) भगवान्‌ने हंसावतार धरकर, ब्रह्मविद्याका उपदेश किया. आत्रेय, सनकादिक और मेरे पिता ऋषभदेव ये तीनों विष्णु भगवान्‌ही अपने अंशसे जगत्‌का कल्याण करनेके वास्ते प्रगट हुए थे और इन्होंने ब्रह्मविद्याका उपदेश

तादिक परिवारके साथ पठाया, भगवान्की महिमाको नहीं जाननेवाला कामदेव अप्सरानका समूह, वसंत और मंदवायु इनको साथ लेकर, उनके आश्रममें गया और स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको बेधने लगा ॥ ७ ॥ यह अपराध इंद्रका किया हुआ है ऐसे जानकर, 'मैं धीर हूं' ऐसे अभिमानसे रहित नारायण भगवान्ने शापके भयसे कांपतेहुए इन लोगोंसे हँसकर, कहा कि– 'हेकामदेव ! हे वायु ! हेदेवांगनाओ तुम डरो मत, हमसे सत्कार पाकर, हमारे इस आश्रमको अशून्य करो, जिस आश्रममें अतिथिका सत्कार न होवे वह आश्रम शून्य कहलाता है, ॥ ८ ॥ हे राजा ! अभयदेनेवाले नारायण भगवान्ने इसप्रकार कहा तब लज्जाके मारे जिनके शिर नीचे हो गये हैं ऐसे देवताननें करुणासहित भगवान्से कहा कि–

**विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ॥ माभैर्विभो मदन मारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेवदेवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवता सुरकृता बहवोंऽतरायाः स्वौकोविलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जंति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजंति ॥ ११ ॥**

हे विभो ! आप कि–जो मायासे पर, निर्विकार और कई आत्माराम धीरपुरुष जिनके चरणारविंदमें नमन करते हैं ऐसे हो, तिनमें ऐसा दयालुपन और जितेंद्रियपन होवे, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ९ ॥ और हमने जो अपराध किया यहभी आश्चर्यकी बात नहीं; क्योंकि यह हमारा स्वभावही है. आपकी सेवा करनेवाले लोक देवतानके स्थानको उल्लंघकर, आपका जो परमधाम है तिसमें जाते हैं. तासों देवता उनके अनेक विघ्नभी करते हैं. आपकी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे लोक कि– जो यज्ञमें देवतानको उनके भागरूप कर देते हैं उनके देवता विघ्न नहीं करते. परंतु आपकी सेवा करनेवालोंके आप रक्षक हो, तासों वे भक्तलोक विघ्नोंके शिरपर चरण धरकर, आपको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १० ॥ हम कि–जो क्षुधा, तृषा, सर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जिह्वाका रस और शिश्नका रस इनरूप हैं उनको उल्लंघकर, जो मनुष्य निष्फल क्रोधके वश हो जाते हैं, वे अपार

अवतार कहाता है ॥ ३ ॥ यह त्रिलोकीकी रचना इस पुरुषकी कथारूप है. जीवोंकी ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां इस पुरुषकी इंद्रियोंसे प्रवृत्त हुई हैं. इस पुरुषका ज्ञान स्वतःसिद्ध है. इस पुरुषके प्राणसे जीवोंकी देहशक्ति, इंद्रियशक्ति और क्रियायें उत्पन्न हुई हैं. उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयमें रज, सत्व और तमोगुणद्वारा पहले कर्त्ता येही हैं ॥ ४ ॥ इस जगत्की सृष्टिका काम करनेके वास्ते इनके रजोगुणसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, पालन करनेके वास्ते सत्वगुणसे विष्णु प्रगट हुए हैं, जो विष्णु यज्ञोंके फलके देनेवाले और द्विजलोकोंके धर्मके पालक हैं, प्रलय करनेका काम करनेके वास्ते इनके तमोगुणसे रुद्र प्रगट हुए हैं, इस-

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येंद्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोजईहा सत्वादिभिः स्थितिलयोद्भवआदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशांतः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेवितांघ्रिः ॥ ६ ॥ इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाऽप्सरोगणवसंतसुमंदवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

प्रकार जिससे उत्पन्न भये हुए ब्रह्मा, विष्णु महादेवसे निरंतर प्रजाकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार होते हैं वे आदि पुरुष येही हैं ॥ ५ ॥ ( अब नरनारायणावतार तथा उनके गुणकर्मभी कहते हैं ) फिर धर्मकी स्त्री दक्षकी कन्या मूर्तिमें ऋषियोंमें उत्तम और अत्यंत शांत ' नरनारायण ' नाम अवतार हुआ, बड़े बड़े ऋषि जिनके चरणोंका सेवन करते हैं ऐसे इन भगवान्‌ने आत्मस्वरूपका ज्ञापन करानेवाले कर्मका नारदादिकनको उपदेश किया. और आपनेभी वैसाही आचरण किया, ये भगवान् अद्यापि ( अभीभी ) ऐसेही कर्म करते हैं, ॥ ६ ॥ ( भगवदवतारत्व प्रकाशक परमोपशम दिखानेके लिये इतिहास कहते हैं ) इनका तप देखकर; ' मेरा स्थान लेना चाहते हैं ' ऐसी इंद्रके मनमें शंका उत्पन्न हुई, तब उसने तपका भंग करनेके वास्ते कामदेवको वसं-

इसीप्रकार जो मनुष्य अग्नि, सूर्य, जलादिक, अतिथि और हृदयमेंभी ईश्वरका पूजन करै वह पुरुष तुर्त संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा० म० एकादशस्कंधे रामश्यामविरचिताया तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें सातवें द्रुमिलनाम योगीश्वरने भगवान्‌की अवतारलीलाके प्रश्नका उत्तर दिया यह कथा होगी ॥ १ ॥ निमिराजाने पूंछा कि-भगवान्‌की मूर्तिकी पूजा करनेके वास्ते भगवान्‌के अवतार जानने चाहिये- और स्तुति करनेके वास्ते उनके गुण तथा कर्मभी जानने चाहिये, तासों भगवान् जिन जिन स्वच्छंद अवतारोंसे जो जो चरित्र कर गये हैं, करते हैं और करेंगे वे सब अ-

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छंदजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा अनंतस्य गुणाननंताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥ भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

वतार तथा उनके चरित्र हमें कहो ॥ १ ॥ द्रुमिलनाम सप्तम योगेश्वरने कहा कि-भगवान्‌के गुण कि-जो अनंत हैं, उनको जो मनुष्य गिनना चाहता है, उसे मंदबुद्धि समझना चाहिये. कारण यह कि-कोई महाबुद्धिमान् पुरुष बहुत समय पाकर, पृथ्वीके रजके परमाणुओंको कदाचित् गिनभी सके, परंतु सर्व शक्तियोंके आश्रय हरिभगवान्‌के गुणोंको, तौ नहीं गिन सकता तासों आपके प्रश्नके अनुसार सारे अवतारादिक कहे जांय ऐसे नहीं है. तासों कितने एक अवतारोंके विषयमें संक्षेपसे कहता हूं ॥ २ ॥ ( तहां प्रथम सर्वावतारबीज पुरुषावतार कहते हैं ) अपने रचेहुए पंचमहाभूतोंमेंसे ब्रह्मांडरूप देहको रचकर, उसमें लीला करनेके वास्ते अपने अंशसे प्रविष्ट भये हुए आदिदेव नारायणने प्रथम 'पुरुष' ऐसा नाम पाया. यह भगवान्‌का प्रथम

हृदय शिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्रके मंत्रोसे तथा मूलमंत्रसे देवके शरीरमें न्यास करे, पीछे मूलमंत्रसे पूजा करे ॥ ५१ ॥ हृदयादिक अंग. चक्रादिक उपांग और पार्षद सहित उस उस मूर्तिकी मूलमंत्र कहकर, पूजा करनी. पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण ॥ ५२ ॥ चंदन, पुष्प, अक्षत ( अक्षत केवल तिलकके काममें लाना, परंतु विष्णु

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमंत्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥
गंधमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ सांगं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥
आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

भगवान्‌की पूजामें नहीं क्योंकि विष्णुकी पूजा अक्षतोंसे करना निषिद्ध है और शिवजीकी पूजा केतकीसे करना निषिद्ध है ) माला, धूप, दीप और नैवेद्यसे विधिपूर्वक सांगोपाग पूजा करनी. फिर स्तोत्रोंसे स्तुति करके, भगवान्‌को प्रणाम करना ॥ ५३॥ अपना आत्मा भगवान्‌रूप है ऐसा ध्यान करते भगवान्‌की मूर्तिकी पूजा करनी. फिर जो निर्माल्य होवे उसे शिरपर चढ़ाकर, पूजा कीहुई मूर्तिको अपने स्थानमें विराजमान करना. तदनंतर सब सामग्री एकत्र करके, पूजा समाप्त करनी ॥ ५४ ॥

---

१ तहां 'ओंविष्णवे नमः' इस मंत्रके प्रणवसंपुटित एक २ अक्षरका हृदयादिकोंमें न्यास जानना । यथोक्तं नारायणकवचे । न्यसेद्धृदयमोंकारं विकारमनुमूर्द्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत् ॥ १ ॥ वेकारं नेत्रयोर्युंज्यान्नकारं सर्वसंधिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मंत्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ २ ॥ सविसर्गं फडन्तन्तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥ अर्थ- जैसे नारायणकवचमें कहा है कि- ओंकारका हृदयमें, विकारका मस्तकमें, षकारका भौंहोंके बीचमें, णकारका शिखामें, वेकारका नेत्रोंमें, नकारका देहकी सब संधियोंमें, मकारका अस्त्रोद्देश करके न्यास करे. और विसर्गसहित अन्तमें फट् लगाके, सब दिशावोंमें न्यास करे तो वह विद्वान् मंत्रमूर्ति हो जावे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

२ और 'ओंनमो भगवते वासुदेवाय' यह जो द्वादशाक्षरमंत्र है इसीको मूलमंत्र जानना, उसकोभी प्रणवसंपुटित एक २ अक्षरका दक्षिणतर्जनीसे लेके, वामतर्जनीपर्यंत अंगुलियोंमें न्यास करना. और शेष जो चार अक्षर रहे उनका दोनों अँगूठोंके आदि अंतके पोरोंमें न्यास करना. तदप्युक्तं तत्रैव । करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्या ॥ प्रणवादियकारान्तमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ॥ १ ॥ अर्थ-सोभी वहीं ( नारायणकवचमें ) कहा है कि-ऐसे हृदयादि न्यास करके, अनन्तर द्वादशाक्षर विद्या यानी 'ओंनमो भगवते वासुदेवाय, इस मंत्रसे करन्यास करना. जैसे कि- ओंकारसे ले, यकारपर्यंत सब अक्षरोंको अंगुली और दो अंगूठोंके पोरोंमें न्यास करै करनेकी रीत ऊपर लिख आये हैं ॥ १ ॥

है. अतएव आत्मबोधके वास्तेही ब्रह्मचर्य, तप और यज्ञादिक करनेमें आते हैं ' इत्यादि वचनोंके देखनेसे मनुष्यको चाहिये कि-निष्काम कर्मोंमें प्रवृत्त रहे; क्योंकि वेदका अभिप्राय गुप्तरीतिसे इसीको बोधित करता है. इसप्रकार जो मनुष्य निष्काम होकर, कर्म करे तौ उसको कर्मोंके फल जो स्वर्गादिक हैं वे प्राप्त नहीं होते; कारण यह है कि-स्वर्गादिककी इच्छा रखकर, कर्म किये हों तौ स्वर्गादिक मिलें और जो उनकी कामना न की जाय तौ वे नहीं मिलते ऐसे वेदमें कहा है. तासों स्वर्गादिककी इच्छा राखेविना कर्म करे तौ स्वर्गादिक नहीं मिलते, किंतु निष्कामकर्मके प्रभावसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ वेदोक्त कर्म कहकर, तंत्रोक्त कर्म कहते हैं. जीव कि- जो वास्तविक रीतिसे ब्रह्मरूपही है तिसके देहादिकके अहंकाररूप

य आशु हृदयग्रंथिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तंत्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याऽभिमतयाऽऽत्मनः ॥ ४८ ॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिंडं विशोध्य सन्न्यास कृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चाऽऽसनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमंत्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥

बंधनको तुरत काटनेकी इच्छा होवे तौ तंत्रोक्त और वेदोक्त दोनों प्रकारसे भगवान्‌की पूजा करै ॥ ४७ ॥ आचार्यके अनुग्रहको पाकर, उससे पूजनकी विधि सीखकर, भगवान्‌की जो मूर्ति आपको प्रिय लगे उसी मूर्तिमें पूजा करनी ॥ ४८ ॥ पवित्र हो, मूर्तिके सन्मुख बैठ, प्राणायाम और भूतशुद्धिआदिसे देहको शुद्धकर, उत्तम न्यासोंसे रक्षा करनेके अनंतर, जो कुछ पूजाका उपचार मिले तिससे हरि भगवान्‌की पूजा करै ॥ ४९ ॥ मूर्तिआदिमें और हृदयमेंभी भगवान्‌की पूजा करनी. पुष्पादिक पदार्थोंको उनमेंसे जीवादिक निकाल देनेसे, पृथ्वीको लीपने आदिसे, मनको अव्यग्रतासे और मूर्तिको पहले दिनके चढ़े हुए निर्माल्य चंदनादि निकाल देनेसे योग्य किये पीछे आसनका प्रोक्षण कर, ॥ ५० ॥ पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीयनामक तीन पात्र तैयार करके, हृदयमें पूजेहुए हरि भगवान्‌का मूर्तिमें ध्यान करना. फिर

त्पर्य जानाजाता है और उसका जानना बड़ा कठिन पड़जाता है. तासों कर्मादिकके विषयमें विद्वान्भी मोहित हो जाते हैं. तब दूसरोंकी तो बातही कौन ? उस समयमें तुम बालक थे तासों सनकादिकोंने उत्तर नहीं दिया ॥ ४३ ॥ वेद परोक्षवादरूप है. जिसमें एक प्रकारसे रहाहुआ विषय गुप्त रखनेके वास्ते दूसरे प्रकारसे कहनेमें आवे वह परोक्षवाद कहलाता है. वेदमें जो कर्म करनेके वास्ते आज्ञा है, वह कर्मोंको छुड़ानेके वास्ते है, तासों वेद परोक्षरूपही है. जैसे पिता अपने बालक पुत्रको औषध खिलानेके वास्ते उससमयमें चीनीका लड्डू देनेका लालच देकर, औषध पिलाता है और फिर चीनीका लड्डूभी दे देता है, परंतु ऐसे करनेसे औषध पीनेका फल चीनीका लड्डू मिलना नहीं है, किंतु आरोग्यही फल है. ऐसे वेदभी मनुष्योंको कर्म करानेके वास्ते भीतर भीतर कितनेक स्वर्गादिक लोकोंका लालच देता है. और कर्म किये पीछे वे वे फलभी देता है, परंतु यथार्थ फल तो कर्म करनेका अंतःकरण शुद्धिद्वारा निवृत्तिही है, किंतु स्वर्गादिक नहीं. इसतरह लालचसे बालकोंको फुसलानेके जैसे वेदवा-

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेंद्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥

क्य है. तासों वेदका तात्पर्य जानना अतिकठिन है ॥ ४४ ॥ इससे यहभी नहीं जानना कि– 'कर्मोका त्याग करना यही पुरुषार्थ है तासों प्रथमसेही कर्मोंको त्याग देना, क्योंकि जो मनुष्य इंद्रियोंका जय न होनेसे ज्ञानप्राप्त न होवे तिससे पहलेही वेदोक्त कर्म न करै वह पुरुष वेदोक्त कर्म नहीं करनेरूप अधर्मसे वारंवार जन्म–मरण पाया करता है ॥ ४५ ॥ इसलिये निषिद्ध कर्मोंको त्यागकर, ज्ञान उत्पन्न न होवे तबलों वेदोक्त कर्म करै और वहभी इस बातका आग्रह रखकर कि–स्वर्गादि फलके उद्देशसे नहीं. किंतु ईश्वरार्पणबुद्धिसे करै. ऐसे करनेसे ज्ञानसिद्धि कि– जो कर्मोंसे मुक्त होनेरूप है वह प्राप्त हो जाती है. वेदमें फल होनेके वास्ते कहा है तासों फलकी इच्छा छोड़करभी यदि कर्म करूंगा, तौभी फल हुए विना रहे नहीं ऐसे नहीं जानना; क्योंकि औषध देतेसमय चीनीके लड्डूका लालच देनेके तुल्य कर्ममें रुचि उत्पन्न करनेके वास्ते वेदमें फल होनेके वास्ते कहा है. कर्ममें रुचि उत्पन्न होनेपर वेदके अर्थको मनुष्य अच्छे प्रकार विचारे, ' जो मनुष्य आत्माको विना जाने मरता है वह कृपण

होना किसी प्रकार संभवे नहीं. सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव होनेपरभी पीछे संसार होता है, इसका कारण यह है कि–
उस समयमेंभी अविद्या और उसके संस्कार रहते हैं ॥ ३९ ॥ धन, पुत्र और प्रतिष्ठाआदिकी इच्छा छोड़कर, केवल भग-
वान्‌के चरणकी इच्छा रखनेके हेतु प्रगट भयीहुई प्रबल भक्तिसे जब अविद्या और गुण कर्मादिकसे भयाहुआ चित्तका संस्कार-
रुप मैल धो जाय, तब चित्त शुद्ध होनेसे आत्मतत्व अपरोक्ष अनुभवमें आसक्ता है, जैसे सूर्यका प्रकाश स्वतःसिद्ध होनेपरभी
दृष्टिनिर्मल होने परही अनुभवमें आता है. ऐसे आत्मा स्वतःसिद्ध होनेपरभी चित्त निर्मल हो जाय तब अनुभवमें आता है.
इसतरह अपरोक्षज्ञान होवे तब संसारकी अत्यंत निवृत्ति होवे ॥ ४० ॥ निमिराजाने कहा कि–आपने जो भक्ति
कही वह कर्मयोगके आधीन है. तासों हमें कर्मयोग कहो, जिससे संस्कार पायाहुआ पुरुष इसी जन्ममें शीघ्र

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यतआ-
त्मतत्त्वं साक्षाद्यथा ऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन
संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विंदते परम् ॥ ४१ ॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरंति-
के ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वे-
दवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यंति सूरयः ॥ ४३ ॥

कर्मोंको त्यागकर, आत्मज्ञान कि– जो कर्मकी निवृत्तिसे प्राप्त होता है उसे प्राप्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ मेरे पिता
इक्ष्वाकु राजाके निकट सनकादिक आये थे, उस समय मेरे पिताके समक्षमें उनसे मैंने यही प्रश्न किया था, परंतु उन्होंने उस
समय मुझे सर्वज्ञ होने परभी कुछभी उत्तर नहीं दिया. उसका कारण क्या होगा ? सो आप कहो ॥ ४२ आविर्होत्रनाम छठे
योगीश्वरने कहा कि–‘ वेदमें जो करनेको कहा है वह कर्म कहलाता है. जिसके वास्ते निषेध किया है वह अकर्म कहलाता है.
और जो करनेको कहा है उसे न करै वह विकर्म कहलाता है. कर्म, अकर्म और विकर्म ये तीनों वेदमेंसे समझे जांय ऐसे हैं.
लोकमेंसे समझमें नहीं आसकते. वेद किसी पुरुषने पैदा नहीं किया है, किंतु ईश्वरका प्रगट कियाहुआ है. पुरुषके वाक्यमें
अर्थ समझना हो तौ वक्ताके अभिप्रायपरसे समझमें आसक्ता है; परंतु ईश्वरके वाक्यमें तौ पूर्वापरके विचार करने आदिहीसे ता-

प्रतीत होते परब्रह्मके अपनी सिद्धिके वास्ते दूसरे किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है, तासौं कोई प्रमाण न पहुंचनेके हेतु ब्रह्मही नहीं है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ ३७ ॥ आत्मा न तौ जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है, न परिणामको प्राप्त होता है, न घटता है और न है, क्योंकि इन छः विकारवाले देहादिकके उन उन विकारोंके समयका द्रष्टा है. विकारवालोंके द्रष्टाके विकार नहीं होता. सर्व देशमें और सर्व कालमें अखंड रीतिसे जो ज्ञान चला आता है उसीका आश्रय आत्मा है. नील ज्ञान हुआ और पीत ज्ञान नष्ट हुआ ऐसी प्रतीतिपरसे ज्ञानका नाश होता है ऐसे नहीं जानना; क्योंकि एक अखंडित ज्ञानही इंद्रियोंके बलसे अनेक प्रकारसे कल्पना किया जाता है. यानी उसमें नील और पीतआदि आकारको प्राप्त भयीहुई वृत्तियांही तो प्रगट होतीं हैं. और वृत्तियांही नष्ट हो जातीं हैं. पर ज्ञानका न तौ नाश होता है. और न ज्ञान प्रगट होता है. किंतु ज्ञान तौ सदा एकसा अखंड बना रहता है. इसमें दृष्टांत कहते हैं कि- जैसे प्राण ॥ ३८ ॥ दृष्टांतका विवरण—जरायुज, अंडज, स्वे-

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेंद्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥ अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि-जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने यदिंद्रियगणेऽहमिवप्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

दज और उद्भिज शरीर कि-जो बदल जाते हैं, उनमें जैसे प्राण जीवके पीछे सर्व शरीरोंमें एकका एकही रहा करता है. ऐसे देहादिक कि-जो अवस्थाभेदसे बदल जाया करते हैं उनमें आत्मा एकका एकही रहता है. बदलता नहीं. तासौं ब्रह्म यद्यपि सर्वात्मक है, तथापि सर्वके विकारोंका उसके लेश मात्रभी लेप नहीं है. जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें आत्मा निर्विकारही रहता है. जाग्रतमें इंद्रियां काम करतीं हैं. और स्वप्नमें जाग्रत्के संस्कारवाला अहंकार काम करता है, तासौं यद्यपि आत्मा निर्विकार है, तथापि सविकार हो जैसा प्रतीत होता है, तथापि सुषुप्तिमें इंद्रियोंका और अहंकारका लय होनेसे लिंगशरीररूप उपाधि न होनेसे निर्विकार आत्माका साक्षात् अनुभव होता है, सुषुप्तिमेंसे उठे पीछे आपनको स्मृति होती है कि- ‘इतनी बेरतक मैं सुखपूर्वक सोता था, कुछभी जानता नहीं था’ इस स्मृतिपरसे सिद्ध होताहै कि- ‘सुषुप्तिमें सुख और अज्ञानको जाननेवाला आत्मा अवश्य है.’ जो वस्तु अनुभवमें न आयी होवे उसका स्मरण

इन तीनों अवस्थानमें साक्षीपनसे जो अनुस्यूत है तथा इन तीनों अवस्थाओंसे भिन्न समाधि आदि अवस्थामेंभी जो अनुस्यूत है और देह, इंद्रिय, प्राण तथा मन जिनके दिये हुए चैतन्यसे प्रवृत्त होते हैं, वह हेतुरहित परमतत्व नारायणका स्वरूप है ऐसे तुम जानो ॥ ३५ ॥ इस तत्त्वको मन, वाणी, चक्षु, बुद्धि, प्राण और दूसरी इंद्रियांभी नहीं जान सकतीं. जैसे अग्निको अग्निकी अंशरूप चिनगारियां आदि प्रकाशित नहीं कर सकतीं और जलाभी नहीं सकतीं. ऐसे जड़ पदार्थरूप मनआदिकी वृत्तियोंमें देखनेमें आता हुआ आत्मप्रकाश कि- जो उन वृत्तियोंका प्रकाशक है उसका प्रकाश उन वृत्तियोंसे नहीं होता. वेद कि-जो स्वयं प्रमाण है वहभी वाणीरूप होनेसे आत्मतत्त्वको साक्षात् नहीं कह सक्ता. किंतु अर्थात् उक्त जैसे हो ऐसी रीतिसे कहता है. कारण यह है कि-वेद आपही कहता है कि- ' वाणी वा मनआदि जितने बोध करानेवाले पदार्थ हैं वे आत्मतत्त्वको पहुंच

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषःस्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्तिब्रह्मैव भाति सदसच्चतयोः परं यत्॥३७॥

नहीं सक्ते ' इससे यह नहीं समझना चाहिये कि- ' वेद ब्रह्मका निरूपण नहीं करता ' क्योंकि वेद कहता है कि- ' जो स्थूल है वह ब्रह्म नहीं है ' ' जो अणु ( सूक्ष्म ) है वह ब्रह्म नहीं है. वाणीसे जो कहा जाता है वह ब्रह्म नहीं है ' इत्यादि जो वेदने निषेध किया है उस निषेधकी जो अवधि है वह ब्रह्म है जो अवधि न होवे तो निषेधही सिद्ध नहीं हो सक्ता ॥ ३६ ॥ जो कुछ कार्य और कारण देखनेमें आते हैं वह सब ब्रह्मही दीखता है; कारण यह कि-सर्वका परमकारण ब्रह्मही है. ब्रह्ममें मायानामक शक्ति बड़ी भारी है. उससे ब्रह्म एक होनेपरभी अनेक रूपसे प्रकाशता है. प्रथम जो एकही ब्रह्म है उसीको सत्व, रज और तम ऐसे तीन प्रकारवाला प्रधान कहते हैं. फिर उसीको क्रियाशक्तिके हेतु सूत्र और ज्ञानशक्तिके हेतु महत्तत्व ऐसे नामसे कहते हैं. फिर उसीको जीवका उपाधिरूप अहंकार ऐसा नाम कहकर, व्यवहार करते हैं. इसी तरह इंद्रियोंके देवता, इंद्रियां, विषय और विषयोंका प्रकाश तथा सुखादि इन सर्व रूपोंसे एक ब्रह्मही सर्वत्र प्रकाशता है. सर्वरूपसे अपने स्वरूपहीसे

जाते हैं ॥ २२ ॥ प्रथम मनमें सब विषयोंसे वैराग्य, साधुपुरुषोंका संग, निजकी अपेक्षा, हीन प्राणीपर दया, समानके साथ मैत्री- और उत्तमके साथ नम्रता इनको शीखना ॥ २३ ॥ मृत्तिका और जलआदिसे शरीरकी पवित्रता, अगर्वआदिसे मनकी पवित्रता, स्वधर्मका आचरण, क्षमा, वृथा बोलनेका त्याग, वेद आदिका पाठ, सरलता, ऋतुकालमेंही अपनी स्त्रीके साथ मैथुन करनाआदि ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख दुःख तथा शीत, उष्णआदि द्वंद्व पदार्थोंमें हर्ष शोकसे रहितता ॥ २४ ॥ सर्व पदार्थोंमें सत् और चित् रूपसे आत्मा रहे है ऐसा विचार नियंतापनसे ईश्वर रहे है ऐसा

सर्वतो मनसो संगमादौ संगं च साधुषु ॥ दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्राऽऽत्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं संतोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिंदामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदंडं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चाऽऽत्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान् गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

विचार, एकांत शीलता, घरआदिमें अभिमानका अभाव, निर्जन स्थानमें पड़ेहुए फटे वस्त्र वा वल्कलका परिधान और जो कुछ मिले उन्हींमें संतोष ॥ २५ ॥ भगवान्को प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे शास्त्रोंकी अनिंदा, प्राणायामसे मनका दंड, मौनसे वाणीका दंड, अनुद्यमसे क्रियाका दंड, यथार्थ भाषण, शम ( अंतःकरणका निग्रह ), दम, ( बाह्य इंद्रिय का निग्रह ) ॥ २६ ॥ और अद्भुत कर्म करनेवाले हरि भगवान्के जन्म, कर्म और गुणोंका श्रवण, कीर्तन और ध्यान भगवान्के उद्देशसेही सर्व कर्म करना ॥ २७ ॥ यजन, दान, तप, जप, सदाचार, गंध पुष्पादिक अर्पण, प्रिय पदार्थ, स्त्री, पुत्र, घर तथा प्राण ये सब सेवकतासे ईश्वरके अर्पण करने ॥ २८ ॥ इसीरीतिसे जिनके भगवान्ही आत्मा और स्वामी हैं ऐसे मनुष्योंमें स्नेह

स्थावर जंगमकी सेवा, उनमेंभी मनुष्योंकी विशेष सेवा, मनुष्योंमेंभी स्वधर्म पालनेवालोंकी विशेष सेवा और स्वधर्म पालनेवालोंसेभी वैष्णवोंकी विशेष सेवा ॥ २९ ॥ परस्परमें भगवान्के पवित्र यशका वर्णन और यशके वर्णनसेही मनका रमण, सुख तथा सर्व दुःखोंकी निवृत्ति, ये सब धर्म गुरुके पास सीखने ॥ ३० ॥ इस प्रकार बरतनेवाले और पापके समूहका नाश करनेवाले भगवान्का स्मरण करते, तथा परस्पर स्मरण कराते हुए भक्त लोगोंके शरीरमें साधनभक्तिसे उत्पन्न भई हुई प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोम खड़े हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ ऐसे अलौकिक भक्त कभी तौ भगवान्की चिंतासे रुदन करने लग जाते हैं. कभी हँसते

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरंतः स्मारयंतश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नंदंति वदंत्यलौकिकाः ॥ नृत्यंति गायंत्यनुशीलयंत्यजं भवंति तूष्णीं परमेत्यनिर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मान् शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेंद्रियासु हृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥ ३५ ॥

हैं. कभी प्रसन्न होते हैं. कभी बातें बनाते हैं. कभी नाचते हैं. कभी गाते हैं. कभी भगवान्की लीलाका अनुकरण करते हैं. और कभी तदाकार हो जानेसे परमेश्वरको प्राप्त हो, आनंदित होकर, चुप हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भगवत्संबंधी धर्मोंको सीखता और नारायणके तत्पर रहताहुआ पुरुष इन धर्मोंसे उत्पन्न भयी हुई भक्तिके प्रभावसे दुस्तर मायाकोभी अनायाससे तिर जाता है ॥ ३३ ॥ निमि राजाने पूछा कि–आपने कहा कि– ‘ नारायणके तत्पर रहता हुआ पुरुष मायाको तिर जाता है, सो नारायण नाम परब्रह्मका स्वरूप हमें आपको कहना चाहिये; क्योंकि आप बड़े ब्रह्मवेत्ता हो ॥ ३४ ॥ तब पिप्पलायन नाम पांचवें योगेश्वरने कहा कि–हे राजा ! इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार जिससे होते हैं तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति

वृद्धिंगत होगा, यहभी भगवानकी माया है ॥ १० ॥ प्रलय करनेवाला मेघका समूह हाथीकी शुंडादंडके जैसी धाराओंसे सौवर्षपर्यंत बरसेगा और ब्रह्मांड जलमें लीन हो जायगा. यह भगवानकी माया है ॥ ११ ॥ महाराज ! फिर ब्रह्मांडरूप शरीरवाला विराट्पुरुष ब्रह्मांडरूप अपने शरीरको छोड़कर जैसे काष्ठरहित अग्नि अपने सूक्ष्मरूपमें प्रविष्ट हो जाता है वैसे सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश करेगा ॥ १२ ॥ फिर पृथ्वीका भाग वायुसे हरण किया जायगा तब पृथ्वी जलरूप हो जायगी. जलका रस वायुसे हरण हो जायगा तब जल तेजरूप हो जायगा ॥ १३ ॥ फिर प्रलयकालके तमसे तेजका रूप हरण हो जायगा तब

सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगंधा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ १४ ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशंति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरंत्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

तेज वायुमें लीन हो जायगा. और वायुका स्पर्शगुण आकाशसे हरण हो जायगा तब वायु आकाशमें लीन हो जायगा ॥ ॥ १४ ॥ फिर आकाशका शब्दगुण कालसे हरण हो जायगा तब आकाश तामसाहंकारमें लीन हो जायगा. इंद्रियां तथा बुद्धि राजसाहंकारमें लीन हो जायगी, मन तथा इंद्रियोंके देवता सात्विकाहंकारमें लीन होवेंगे. हे राजा ! अहंकार अपने तीन प्रकारके कार्योंके साथ महत्तत्त्वमें और महत्तत्व प्रकृतिमें लीन होगा ॥ १५ ॥ सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाली तथा तीन गुणोंवाली भगवानकी मायाका स्वरूप हमने आपके पास वर्णन करके सुनाया है. अब दूसरा क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ तब निमि राजाने कहा कि–हे महर्षि ! शरीरमें अहंता रखनेवाले पुरुष, मनको वशमें न रखनेवाले पुरुषोंसे तिरनेको अशक्य

ऐसी, इस ईश्वरसंबंधी मायाको जिस रीतिसे अनायाससे तिर जाय वह प्रकार कहो ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगेश्वरने कहा कि-मायाको तिरनेका भक्तिविना दूसरा कोईभी साधन नहीं है. इसलिये भक्ति और उसके साधन कहते हैं. तहां प्रथम वैराग्यके कारण कहते हैं. दुःख मिटानेके वास्ते और सुख होनेके वास्ते कर्म करतेहुए, स्त्री पुरुष मिथुनरूप होकर प्रवृत्ति करनेवाले मनुष्योंको उनके विचारके अनुसार नहीं, किंतु विचारसे विपरीत फल मिलते हैं उनको देखते रहना ॥ १८ ॥ कर्म करके यदि धनादिक उपार्जनभी किये जांये तौ वेभी सुखदायी नहीं होते. निरंतर पीड़ा देनेवाला दुर्लभ और अपना मृत्युरूप धन, तथा घर, संतान, संबंधी और पशु कि-जो चंचल हैं उनको पैदा करनेसेभी कौन प्रीति होती है ? कोईभी प्रीति नहीं

प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनाऽऽत्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥ २२ ॥

होती ॥ १९ ॥ इस लोकका सुख और लोक जैसे नाश होनेवाले हैं ऐसे कर्मसे उपार्जन किया हुआ परलोकका सुख और वह लोकभी नाशवान् है ऐसे जानो. जैसे खंडपति राजाओंके अपने बराबरका हो उससे तो स्पर्द्धा ( डाह ) अधिक हो उससे ईर्षा और सुख जाता रहनेका भय होता है, तैसे स्वर्गादिक लोकोंमेंभी स्पर्द्धा, ईर्षा और भय रहते हैं. तासों वर्तमान कालमेंभी परलोक दुःखयुक्त है ऐसे जानना ॥ २० ॥ इसलिये जो मनुष्य अपना सर्वोत्तम कल्याण जाननेकी इच्छा राखे उसे चाहिये कि-वेदमें पारगामी होनेसे संशय मिटानेवाले और परब्रह्ममें अपरोक्ष अनुभवी होनेसे शिष्योंके मनमें अपना बोध बैठानेवाले परमशांतिवाले गुरुके शरण जावे ॥ २१ ॥ गुरुके समीपमें रह कर, गुरुकोही आत्मा और इष्टदेव जानकर, निष्कपट सेवासे भगवत्संबंधी धर्म सीखने. जिन धर्मोंसे आत्मरूप और भक्तलोगोंको अपना स्वरूप देनेवाले भगवान् प्रसन्न हो

अपेक्षा दूसरा सब तुच्छ है ऐसा निरंतर स्मरण रखकर, क्षणमात्रभी भजनको न छोड़े, वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ॥ ५३ ॥ ( तृष्णासे ताप होता हो तौ भगवान्के चरणारविंदमेंसे चलायमानभी हो जाय, परंतु भगवान्की सेवाका परमसुख मिलनेके हेतु तृष्णाको तापही नहीं होता ) भगवान्के महापराक्रमी चरणकी अंगुलियोंमें रहे हुए नखरूप मणियोंकी शीतल दीप्तिसे जिनके तृष्णादिक ताप दूर हो गये हैं उनके भक्तलोगोंके हृदयमें वह ताप पीछा कैसे प्रगट हो सक्ता है ? चंद्रका, उदय हुए पीछे सूर्यका ताप कदापि नहीं हो सक्ता ॥ ५४ ॥ परवशतामें केवल नाममात्र कीर्तन करनेपरभी पापके समूहका नाश करनेवाले भगवान् प्रेमरूप रज्जुसे अपना चरण बँध जानेके कारण जिसके हृदयको आपही नहीं छोड़सके, वह पुरुष वैष्णवोंमें उत्त-

भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे नारदवसुदेवसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामो भगवंतो ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अंतरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

म कहलाता है ॥५५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ ॥ २ ॥ तीसरे अध्यायमें माया, मायाके तिरनेके उपाय, ब्रह्म और कर्म, इन चार प्रश्नोंके उत्तर योगेश्वरोंसे दिये जायगे ॥ १ ॥ निमिराजाने पूंछा कि-' इस जगत्को भगवान्की मायारूप जाने वह उत्तम वैष्णव कहा जाय ' ऐसे आपने कहा सो परमेश्वर विष्णु भगवान्की माया कि-जो मायावालोंकोभी मोहित करनेवाली है उसे हम जानना चाहते हैं इस लिये आप कहो कि-माया यह क्या है ? ॥ १ ॥ मैं कि-जो संसारके तापोंसे अत्यंत तपाहुआ मनुष्य हूं, वह संसारके तापके औषधरूप और भगवान्की कथारूप अमृतसे भरा हुआ आपका वचन सुनता तृप्त नहीं होता ॥ २ ॥ अंतरिक्ष नाम तीसरे योगेश्वरने कहा

कि- हे राजा ! अपने अंशरूप जीवोंको भोग और मोक्ष देनेके वास्ते सर्वके कारणरूप परमेश्वरने अपने रचेहुए इन पंच महाभूतोंमेंसे उंचे नीचे प्रकारके शरीर उत्पन्न किये हैं. यह जो भगवानकी शक्ति है वह माया कहलाती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार जीवोंके उपकारके वास्ते पंचमहाभूतोंसे रचेहुए शरीरोंमें अंतर्यामीरूपसे प्रविष्ट भयेहुए भगवान् मनसे और दश इंद्रियोंसे विषयोंके विभाग करके जीवोंको वे विषय भोगवाते हैं यह भगवान्की माया है ॥ ४ ॥ अंतर्यामीकी प्रकाशित कीहुई इंद्रियोंसे विषयोंको भोगताहुआ और उत्पन्न भयेहुए इस शरीरको आपरूप मानताहुआ यह जीव इन शरीरादिकमें आसक्त हो जाता है, यह भगवान्की माया है ॥ ५ ॥ कर्मेंद्रियोंसे वासनासहित कर्म करता हुआ और उन २ कर्मोंके सुख दुःखरूप फलोंको ग्रहण

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पंचधातुभिः ॥ एकधा दशधाऽऽत्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुंजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लवआसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखोविष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥

करताहुआ यह जीव इस संसारमें भटका करता है पर मुक्त नहीं होता, यह भगवान्की माया हैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार अनेक दुःख देनेवाली कर्मोंकी गतियोंको पाताहुआ और परतंत्र भयाहुआ यह जीव प्रलय होवे वहांतक जन्ममरण पाया करता है यह भगवान्की माया है ॥ ७ ॥ प्रलयका आरंभ होता है तब आदि और अंतसे रहित काल इस स्थूल सूक्ष्मरूप जगत्को ईश्वरमें ले जानेको खैंचता है यह भगवान्की माया है. जब प्रलय होगा तब पृथ्वीमें सौ १०० वर्षपर्यंत महाभयंकर अनावृष्टि होगी और इस समयमें अधिकतर तपा हुआ सूर्य तीनों लोकोंको तपावेगा. यह भगवान्की माया समझनी ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ पातालसे लेकर, दग्ध करनेको तैयार भया हुआ, ऊंची शिखावाला, वायुसे प्रेरित, शेष भगवान्के मुखका अग्नि चौतर्फ

शंका नहीं करनी; ) क्योंकि जैसे भोजन करतेहुए मनुष्यको ग्रास ग्राससेही नहीं किंतु कण कणसेभी सुख, उदरपोषण और क्षुधाकी निवृत्ति होती है, ऐसे भगवान्का भजन करते हुए पुरुषके प्रेम लक्षणा भक्ति, प्रेमके आश्रयरूप भगवान्के स्वरूपकी स्फूर्ति और घरआदिमें वैराग्य, ये तीनों बातें भजनके समयमें एक साथ प्रगट होतीं हैं. जैसे बहुत ग्रास खानेसे सुखादिक बढ़ते २ परमसुखादिक प्राप्त होते हैं, ऐसे बहुत भजन करनेसे भक्ति आदि बढ़ते २ परमभक्तिआदि प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजा ! इसप्रकार अविच्छिन्नतासे भगवान्के चरणका भजन करनवाले वैष्णवको भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्रबल प्राप्त होनेसे अंतमें साक्षात् परमशांति प्राप्त हो जातीहै ॥ ४३ ॥ निमिराजाने कहा कि– अब वैष्णवविषयमें कहो वैष्णव कौन धर्ममें निष्ठा

इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवंति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शांतिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथा चरति यद्ब्रूते यैर्लिंगैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेम मैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

राखे ? वैष्णवका स्वभाव कैसा होवे ? मनुष्यमें वैष्णव कैसा आचरण करे ? वैष्णव क्या बोले ? और वैष्णव कौन चिन्ह रखनेसे भगवानका प्यारा होवे ? ॥ ४४ ॥ तब हरियोगेश्वरने कहा, कि– ' मैं चैतन्यरूप परब्रह्मपनसे सर्व पदार्थोंमें अनुस्यूत हूं. और सर्व पदार्थ मेरे परब्रह्मस्वरूपमें अध्यस्त हैं' इस प्रकार जो पुरुष यथार्थ रीतिसे जाने वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य ईश्वरपर प्रेम, ईश्वरके भक्तोंके साथ मैत्री, मूर्खोंके ऊपर कृपा और शत्रुओंपर उपेक्षा राखे, वह मध्यम वैष्णव कहलाता है; कारण यह कि– उसके इतनीभी भेदबुद्धि रही है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष श्रद्धा रखकर, मूर्तिमेंही भगवान्की पूजा करे, परंतु भगवान्के भक्तोंकी पूजा नहीं करे और दूसरोंकी तौ बिलकुलही नहीं करे वह पुरुष प्राकृत यानी जिसने भक्ति करनेका

प्रारंभ किया है ऐसा वैष्णव कहलाता है ॥ ४७ ॥ चित्त केवल भगवान्‌मेंही लगा हुआ होनेसे उत्तम वैष्णव विषयोंका बिलकुल ग्रहण नहीं करते. कदाचित् इंद्रियोंसे विषयका ग्रहण होवे तौभी इस जगत्‌को भगवान्‌की मायारूप जानकर, जो मनुष्य प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष न राखे और अनुकूल विषयोंसे प्रीति न राखे वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ४८ ॥ भगवान्‌का अविच्छिन्न स्मरण रहनेसे जो मनुष्य देहके धर्मरूप जन्ममरण, प्राणके धर्मरूप भूख, प्यास, मनका धर्मरूप भय, बुद्धिका धर्मरूप तृष्णा और इंद्रियों-का धर्मरूप श्रम, इन संसारसंबंधी धर्मोंसे मोहित न होवे वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्तमें काम, कर्म

गृहीत्वापींद्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भाग-वतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतो-त्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्नहं भावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वाऽऽत्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शांतः स वै भाग-वतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुंठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भग-वत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥

वा वासनाका जन्महीं न होवे और जिसके एक भगवान्‌काही आश्रय होवे, वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ५० ॥ जिस पुरुषके उत्तम कुलमें जन्म, तपआदि कर्म, वर्ण, आश्रम वा जातिसे इस देहमें अहंकार बिलकुल न होवे वह पुरुष भगवान्‌का प्यारा हो जाता है ५१ ॥ जिस पुरुषके धनमें ' अपना पराया ' और देहमें ' मैं ' और ' दूसरा ' ऐसा भेद न होवे और जो सर्व प्राणीमात्रमें समबुद्धि राखे और शांत होवे वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष आपको कोई त्रिलोकीका राज्य देनेके वास्ते कहे तथापि भगवान्‌का चरणारविंद कि- जिसे केवल हरि भगवान्‌में जिनका चित्त है ऐसे देवादिकभी दुर्लभताके हेतु केवल हेरा करते हैं, उसमेंसे आधा लव वा आधा निमेष मात्र अल्प कालतकभी चलायमान न होवे अर्थात् भगवान्‌के चरणारविंदकी

र्योंके अनायाससे स्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते जो उपाय अतिरहस्य होनेके हेतु श्रीमुखसे कहे हैं, वे भगवत्संबंधी धर्म हैं, ऐसे तुम जानो ॥ ३४ ॥ हे राजा ! योगादिकमें जैसे मनुष्य विघ्नोंके उपद्रवोंसे दुःखी हो जाता है, ऐसे इन भगवत्संबंधी धर्मोंके पालनेमें कदापि विघ्नोंसे मनुष्यको दुःख नहीं होता. इन भगवत्संबंधी धर्मोंमें आंख मूंदके दौड़ा चला जाय तौभी प्रत्यवाय नहीं लगता. और फलसे भ्रष्ट नहीं होता. इस स्थलमें आंख श्रुति और स्मृतिको जानना; क्योंकि उनमेंसे एकभी न होवे तौ काना कहलाता है और दोनों न होवें तौ अंधा कहलाता है. इन दोनों आंखोंको मूंदके यानी श्रुति और स्मृति इन दोनोंको नहीं जानकेभी दौड़ा चला जाय, यानी दौड़ता हुआ मनुष्य जैसे पांव रखनेकी जगह पांव न रखकर, तुर्त कछुक २ दूरपर पांव रखता है ऐसे कछुक २ उनमेंसे छोड़कर, कछुक २ पालता जाय तौभी उसके इससे कुछभी अड़चन नहीं आती ॥ ३५ ॥ शास्त्र-

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुंध्यादभयं ततः स्यात् ॥३८॥

विधिसे कियेहुए कर्मही नारायणके अर्पण करने ऐसा नियम नहीं है. किंतु कायासे, वाणीसे, मनसे, इंद्रियोंसे, बुद्धिसे अहंकारसे और अध्याससे मानेहुए ब्राह्मणत्वआदि स्वभावसेभी जो कुछ कर्म करनेमें आवें, वे सब परमेश्वर नारायणके अर्पण कर देना ऐसे करनेसे सर्व प्रकारकी शरीरादिककी क्रिया भगवत्संबंधी धर्मरूप हो जाती हैं ॥ ३६ ॥ यदपि अज्ञानकल्पित भय ज्ञानसेही निवृत्त होता है, तथापि ईश्वरसे विमुख पुरुषके ईश्वरकी मायासे वह अज्ञान हुआ है और अज्ञानसे ' मैं देह हूं , ऐसी बुद्धि हुई है और ऐसी बुद्धिहीसे भय पैदा हुआ है, तासों गुरुमें ईश्वर और आत्माकी भावना रखकर, भयकी मूलकारण मायाके नियंता ईश्वरका अनन्य भक्तिसे ज्ञानी पुरुषको भजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ विषयोंसे चित्तमें विक्षेप होता है तौ उससे अनन्य भक्तिके होनेका संभवही कैसा ? तहां फिर अभयकी तौ बातही कौन ? ऐसे नहीं समझ-

ग्रना; क्योंकि विषय वास्तविक रीतिसे परमार्थरूप नहीं हैं; किंतु मनके विलासमात्र हैं, तासों मनका निग्रह कर कर, भजन करनेसे अभय प्राप्त होता है. यह द्वैत प्रपंच यदपि परमार्थरूप नहीं है, तथापि स्वप्न और मनोरथकी नांई उसका चिंतवन करनेवालेके मनसे प्रतीत होता है. तासों विद्वान् पुरुषको चाहिये कि- कर्मोंके संकल्प विकल्प करनेवाले मनको रोंके. क्योंकि ऐसे करनेसे अनन्यभक्ति प्राप्त होकर, उसके प्रभावसे भजन बननेसे अभय प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥ मनोनिग्रह करना अतिअशक्य समझकर, कहते हैं कि- भगवान्‌के महाकल्याणमय जन्म, कर्म और जन्म तथा कर्मके अर्थवाले जो नाम जगत्‌में प्रसिद्ध हैं उनका श्रवण व गान करना तथा वैसे करनेमें लज्जा नहीं रखना. और निःस्पृह होकर, जगत्‌में विचरना ॥ ३९ ॥

शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥ एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथोरेदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवोविरक्तिरन्यत्र चैषत्रिकएककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार नियम रखनेवाला और भगवान्‌के नाम कीर्तनसे द्रवीभूत हृदयवाला भक्त लोकोंको दिखानेके वास्ते दांभिककी तरह नहीं किंतु ग्रहके आवेशवाले पुरुषकी तरह परवश होकर, किसी समय तो खिलखिलाकर हँसता है. हँसनेका अभिप्राय यह है कि- भगवान् भक्तके पास हारेहुए हैं. किसी समय चिरकालपर्यंत भगवान्‌की कीहुई उपेक्षाको विचारकर, रुदन करता है. किसी समय अतिउत्सुकतासे पुकारता है. किसी समय अनंत हर्षके वश हो गान करता है. और किसी समय 'जय जय' ऐसे कहकर, नृत्य करने लग जाता है ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रादिक ज्योति, जीव, जंतु, दिशायें, वृक्षादिक, नदियां, समुद्र और दूसराभी जो कुछ पदार्थ है वह सब भगवत्‌रूप है ऐसे जानकर, अनन्यभावसे उनको प्रणाम करना ॥ ४१ ॥ ( यह गति योगीजनोंकोभी अनेक जन्मोंसेभी मिलनी अतिदुर्लभ है, सो केवल नामकीर्तनमात्रसे एक जन्ममें कैसे मिले ? ऐसी

नव महाभाग्यशाली योगेश्वर हुए. ये योगेश्वर परमार्थका निरूपण करनेवाले, आत्माभ्यासमें श्रम करनेवाले, दिगंबर और ब्रह्मविद्यामें निपुण हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ कार्य-कारणरूप इस जगत्को भगवद्रूप देखते और उस भगवद्रूपसे अपने आत्माको अभिन्न देखते ये योगेश्वर पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ २२ ॥ जिनकी मनवांछित गति कहींभी रुक नहीं सकती ऐसे ये मुक्तलोक देव, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज और गौनके लोकोंमें अपनी इच्छाके अनुसार

त एते भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यंतो व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्वयक्षनरकिन्नरनाग लोकान् ॥ मुक्ताश्चरंति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथाऽर्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥ २८ ॥

विचरते हैं ॥ २३ ॥ ये योगेश्वर एक दिन भरतखंडमें महात्मा निमिराजाका यज्ञ कि- जिसे ऋषि लोक विधिपूर्वक चला रहे थे वहां यदृच्छासे चले आये ॥ २४ ॥ महाराज ! सूर्यके समान तेजवाले इन महावैष्णवोंको देखकर यजमान, अग्नि और ब्राह्मण सब उठ खड़े हुए ॥ २५ ॥ इन लोकोंको नारायणके परमभक्त जान, प्रसन्न हो, निमिराजाने इनको आसनोंपर बिठाया. और विधिपूर्वक पूजा की ॥ २६ ॥ अतिप्रसन्न निमिराजाने स्वाभाविक कांतिसे शोभायमान और सनत्कुमारोंके समान इन नव योगेश्वरोंसे भक्तिभावसे प्रणत होकर, पूंछा ॥ २७ ॥ निमिने कहा कि- मैं आपको विष्णु भगवान्के साक्षात् पार्षद मानता हूं;

क्योंकि भगवान्‌के पार्षद लोकोंको पवित्र करनेके वास्ते सर्वत्र विचरा करते हैं ॥ २८ ॥ अनेक योनियोंके अंदर भटकतेहुए जीवोंको यह मोक्षका साधनरूप मनुष्यदेह क्षणभंगुर होनेपरभी मिलना महादुर्लभ है. और वहांभी वैष्णव लोगोंका दर्शन होना तो अतिदुर्लभ है. ऐसे मैं मानता हूं ॥ २९ ॥ हे अनघो ! इसवास्ते मैं आपसे पूछता हूं कि–जगत्‌में सर्वोत्तम कल्याणका साधन क्या है ? क्योंकि इस संसारमें आधे क्षणभरका सत्संगभी मनुष्योंके वास्ते निधि मिलनेके बराबर परमआनंदका देनेवाला है ॥ ३० ॥ हमारे सुननेके योग्य हों तो उस सर्वोत्तम कल्याणके वास्ते भगवत्संबंधी धर्मभी कहो कि–जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर,

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय हास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥

भगवान् अपने भक्तको अपना स्वरूपभी दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा कि– हे वसुदेव ! इस प्रकार निमिराजाने प्रश्न किया, तब उन महात्मा योगेश्वरोंने प्रीतिसे सभासदों और ऋत्विजोंके साथ राजाका सत्कार करके, इस प्रकारसे कहा ॥ ३२ ॥ ( निमि राजाके नौ ९ प्रश्न हैं. भगवत्संबंधी १, भगवान्‌का भक्त २, माया ३, मायाको तिरनेका उपाय ४, ब्रह्म ५, कर्म ६, अवतारलीला ७, अभक्तोंकी गति ८ और युगानुक्रम ९ और क्रमसे पीछे योगेश्वरोंके उत्तर हैं. ) कवि नाम योगेश्वरने कहा कि– मैं मानता हूं कि– इस संसारमें भगवान्‌के चरणारविंदकी उपासना करनी यही सर्व प्रकारके भयको मिटानेवाला सर्वोत्तम कल्याण है. जिस उपासनाके करनेमें देहादिक भिन्न पदार्थोंके अभिमानसे सर्वदा उद्वेग पायाहुआ यह प्राणी संसारके सर्व भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ३३ ॥ भगवान्‌ने मनु और याज्ञवल्क्यआदिके मुखद्वारा वर्णाश्रमादिकके धर्म कहकर, फिर अज्ञानी पुरु-

देवता सुख देते हैं तौभी जिसने जितना भजन किया हो उसे उसके भजनके अनुसारही सुख देते हैं, क्योंकि पुरुष जितना काम करै उतनाही उसका प्रतिबिंब काम करै- ऐसे पुरुष जैसा और जितना कर्म करै उसे देवतालोग वैसा और उतनाही फल दे सक्ते हैं.और आप जैसे साधुपुरुष तौ दीन लोकोंपर दयालु होनेसे उनको सेवा विना कियेभी सर्वोत्तम फल देते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार यद्यपि आपके पधारनेहीसे हम कृतार्थ हुए, तथापि आपसे हम भगवत्संबंधी धर्म पूंछते हैं–जिन धर्मोंको श्रद्धापूर्वक सुन कर, मनुष्य भयमात्रसे मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ देव यानी प्रभुकी मायासे मोहित होकर. मैंने प्रथम मोक्ष देनेवाले हरि भग-

भजंति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्तथाऽपि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ यान्श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ॥ ७ ॥ अहं किल पुराऽनंतं प्रजाऽर्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात् ॥ मुच्येमह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥

वान्की पूजा की, सो पुत्रके वास्ते की परंतु मुक्तिके वास्ते नहीं की, सो यह बात जन्म लेते समय भगवान्ने मुझसे कही थी. इस लिये मुक्तिके वास्ते आपसे पूंछना पड़ता है ॥ ८ ॥ हे मुनि ! आपकी कृपासे हम इस विचित्र दुःखवाले और सर्व स्थलमें भयसे भरेहुए, संसारमेंसे अनायाससे मुक्त हो जायं, ऐसे हमको अपरोक्ष उपदेश करो ॥ ९ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! इस प्रकार बुद्धिमान् वसुदेवजीने प्रश्न किया तब भगवान्के गुणोंका प्रसंग आ जानेसे जिनको भगवान्का स्मरण आ गया है ऐसे नारदजीने प्रसन्न होकर, वसुदेवजीसे कहा ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि–हे यादवोत्तम ! आप सर्वको पवित्र करनेवाले भगवद्धर्म पूंछते हो यह आपने बहुत अच्छा विचार ठाना ॥ ११ ॥ हे वसुदेव ! श्रवण करनेसे, पाठ करनेसे, ध्यान करनेसे, आदर

करनेसे और अनुमोदन करने यानी संमति देनेसेभी भगवत्संबंधी धर्म सकल जगत्के द्रोही जनोंकोभी शीघ्र पवित्र कर देता है ॥ १२ ॥ आपने परम कल्याणरूप और जिनके श्रवण व कीर्तन परमपवित्र हैं ऐसे भगवान् नारायणका आज मुझे स्मरण दिलाया ये मेरा आपने बड़ा उपकार किया ॥ १३ ॥ इन भगवत्संबंधी धर्मोंके निर्णयके विषयमें ऋषभदेवजीके पुत्र और महात्मा विदेह राजाका संवादरूप पुरातन इतिहास कहनेमें आता है ॥ १४ ॥ स्वायंभुव मनुके प्रियव्रतनाम पुत्र था. उसके आग्नीध्र, उसके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी पुत्र हुए थे ॥ १५ ॥ ये भगवान्के अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसंबंधी धर्म कहनेकी इच्छासे

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां तु भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समंततः ॥ कर्मतंत्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥ कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥

अवतरे थे, ऐसे कहलाता है. इनके सौ १०० पुत्र हुए. जो वेदके पारगामी थे ॥ १६ ॥ इनमें नारायणका परमभक्त भरत सबसे बड़ा था. जिसके नामसे इस अजनाभ नाम वर्षका नाम अद्भुतरीतिसे भारतवर्ष पड़ा ॥ १७ ॥ यह भरत, भूमिके भोग भोग, भूमिको त्याग, घरमेंसे निकलकर; तप करनेको वनमें चला गया. वहीं तपश्चर्यासे भगवान्की उपासना करता २ तीन जन्मोंसे मुक्त हुआ ॥ १८ ॥ बाकीके निन्नानवे पुत्रोंमें नव पुत्र इस भरतखंडके अंतर्गत नव द्वीपोंके राजा हुए. इक्यासी पुत्र कर्ममार्गको प्रवृत्त करनेवाले ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये

मुसल देखनेमें आया ॥ १७ ॥ तब वे आपसमें कहने लगे कि–' अहो ! मंदभागी आपनने यह क्या किया ? लोक आपनको क्या कहें गे ' ! ऐसे विव्हल भयेहुए वे कुमार मुसल लेकर, घर गये ॥ १८ ॥ जिनके मुखकी शोभा मलीन हो गई ऐसे इन कुमारोंने उस मुसलको सभामें ले जाकर, राजाको दिया और सर्व यादवोंके समक्षमें उग्रसेन राजाको वह सब बात कह सुनायी पर भगवान्‌से नहीं कही ॥ १९ ॥ महाराज ! ब्राह्मणोंका अमोघशाप सुनकर तथा उस मुसलको प्रत्यक्ष देखकर, द्वारकाके लोकोंको बड़ा विस्मय हुआ और भयसे त्रास हुआ ॥ २० ॥ यादवोंके राजा उग्रसेनजीने भगवान्‌को न पूंछकर, उस मुसलक

किं कृतं मंदभाग्यैर्नः किं वदिष्यंति नो जनाः ॥ इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ॥ समुद्रसलिले प्रास्य लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ॥ उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे विप्रशापोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

चूर्ण करवाकर, समुद्रके जलमें फेंकवा दिया और घिसते घिसते जो लोहेका कीला शेष रह गया वहभी समुद्रमें फेकवा दिया ॥ २१ ॥ इस टुकड़ेको कोई मछली निगल गयी और जो चूर्ण हुआ वह जलमें खिंचता खिंचता समुद्रके तीरपर आ लगा. और उसमेंसे एरा ( एकजातिकी घास ) लग गयी ॥ २२ ॥ मच्छीमारोंने समुद्रमें जाल डालकर, दूसरी मछलियोंके साथ उस मछलीकोभी पकड़ लिया उसके चीरनेसे पेटमें जो लोहेका कीला, निकला, उससे उसने अपने तीरकी अनी बना ली ॥ २३ ॥ भगवान् सर्व बात जानते थे. और मिटानेकी इच्छा नहीं की. किंतु आप कालरूप थे, इस लिये प्रत्युत उसका आपने अनुमोदन किया ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमो-

ऽध्यायः ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें वसुदेवजीने प्रश्न किया, तब नारदजीने निमिराजा और योगेश्वरोंके संवादसे भगवत्संबंधी धर्म कहे, यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि– हे कुरुकुलदीपक ! भगवान्, नारदजीको वारंवार द्वारकासे काम करनेके वास्ते बाहिर भेजते थे और दक्षके शापके निमित्त नारदजीसेभी एक स्थलमें रहा जाय ऐसा नहीं था तथापि भगवान्की उपासना करनेके लालचसे और द्वारकापुरी भगवान्की भुजासे रक्षित थी तासों, उसमें शापादिककी सामर्थ्य चले ऐसे नहीं थी तासों नारदजी बहुधा द्वारकामेंही निवास करते थे ॥ १ ॥ हे राजा ! सर्व स्थलमें जिसके शिरपर मौत घूमा करतीहै ऐसा कौन इंद्रियवाला पुरुष बड़े २ देवतानके उपासना करने योग्य भगवान्के चरणारविंदका भजन नहीं करे ? नारदजीजैसे मुक्त

श्रीशुक उवाच ॥ गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ कोनु राजन्निंद्रियवान्मुकुंदचरणांबुजम् ॥ न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥

पुरुषोंकोभी भजनमें आसक्ति रहती है, तब दूसरे बद्ध पुरुषोंको भजन करना चाहिये इसमें तौ कहनाही क्या ? जिनके इंद्रियां होवें वे सब भगवानके भजनके अधिकारी हैं ॥ २ ॥ ये नारदजी एक दिन वसुदेवजीके घर चले आये. तब वसुदेवजीने उनका पूजन किया और अच्छे प्रकार बिठलाकर, प्रणाम करके, वसुदेवजीने पूंछा कि– ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जैसे मातापिताका आना बालकोंके कल्याणके वास्ते है और जैसे भगवान्के मार्गरूप महात्मालोगोंका आगमन दीन लोकोंके कल्याणके वास्ते है. ऐसे आप कि– जो साक्षात् नारायणरूप हो, तिनका आगमन सर्व प्राणीमात्रके कल्याणके अर्थ है ॥ ४ ॥ देवतानका चरित प्राणियोंको वृष्टिआदिसे सुख देता है. और किसी समय अतिवृष्टिआदिसे दुःखभी देता है, परंतु भगवान्में चित्त लगायेहुए आपजैसे महात्मानका चरित तौ केवल सुखही देता है ॥ ५ ॥

पृथ्वीमें विस्तार कर, प्रभु श्रीकृष्णचंद्र निजधाम पधारे ॥ ६ ॥ ७ परीक्षितने पूंछा कि- जो ब्राह्मणोंके अभक्त, अदाता और वृद्धपुरुषोंके असेवक हों, उनपर ब्राह्मण कोप किया करते हैं. परंतु यादव तौ ब्राह्मणोंके भक्त दानी और निरंतर वृद्धपुरुषोंके सेवक थे उनको ब्राह्मणोंने शाप क्यों दिया ? ॥ ८ ॥ और जिनका मन भगवान्में लगाहुआ होवे तिनको ब्राह्मणोंका कोप होनेपरभी श्राप नहीं लगना चाहिये, सो यादवोंको यह श्राप क्यों कर लगा ? हे ब्राह्मणोत्तम ! यह श्राप जिसकारणसे हुआ हो और जिस प्रकारका हुआ हो, वह सब मुझको कहो. इन एकचित्तवाले यादवोंके परस्परमें कलह कैसे पैदा हुआ ? ॥ ९ ॥ शुकदेवजीने कहा कि- इसमें ईश्वरकी इच्छाही कारण रही. श्रीकृष्ण कि- जो सर्वोत्तम रूपवान् होनेपरभी विषयोंमें तत्पर

राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसां ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुंदरसन्निवेशं कर्माचरन्भुवि सुमंगलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिंडारकं समगमन्मुनयो निसृष्टाः ॥ ११ ॥

नहीं होकर, शुभ कर्म करते थे. और शुभ कर्म करते वोभी किसीप्रकारकी कामनासे नहीं, किंतु पूर्णकाम रहकर, करते थे. पूर्णकाम होनेपरभी घरमें रमण करनेवाले पुरुषोंको कर्म करना सिखानेके लिये करते थे. जिनके घरमें रहने वा कर्म करनेका कोईभी प्रयोजन नहीं था, तथापि प्राणियोंके अतिउत्तम पुष्कल फल देनेवाली अपनी कीर्तिको फैलानेके वास्ते करते थे. और घरमें रहते थे सोभी पृथ्वीका भार उतारनेके काममें यदुकुलका संहार करनेका काम अवशेष रह गया था तासों वह पूर्णकरनेके वास्ते रहते थे इस लिये भगवान्ने यदुकुलके संहारकी इच्छा की ॥ १० ॥ कितने एक अश्वमेधादिक कर्म केवल पुण्यको उत्पन्न करते हैं. कितने एक पुत्रको रमण कराने- आदि कर्म केवल सुखको उत्पन्न करते हैं और कितनेएक

कीर्तनादिकसेही प्रायश्चित आदि- कर्म केवल पाप दूर करते हैं, परंतु श्रीकृष्ण भगवान् जो कर्म करते थे वे कर्म तौ केवल कीर्तनादिकसेही पुण्यबढ़ानेवाले अत्यंत सुखरूप और कीर्तन करनेवाले लोकोंके कलियुगके मलके दूर करनेवाले थे. ऐसे कर्म करनेके वास्ते जिन ब्राह्मणोंको बुलाया था उनसे सब कर्मोंसे निपट कर, भगवान्ने पिंडारकनाम स्थानपर जानेको कहा, तब वे वहीं गये. श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं कालरूप होनेसे वसुदेवजीके घरमें रह कर, अपने कुलका संहार करना चाहते थे. तासों भगवान्ने ब्राह्मणोंको पिंडारक स्थानमें भेजा ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दूर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, और नारद- आदि ऋषि भगवान्की आज्ञासे पिंडारक स्थानमें रहते थे ॥ १२ ॥ एक समय यादवोंके कुँवर खेलते खेलते उनके

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरंगिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडंतस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनंदनाः ॥ उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः सांबं जांबवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति वो विप्रा अंतर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यंती पुत्रकामा किं स्वित्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवं प्रलब्धामुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयिष्यति वो मंदा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा तेतिसंत्रस्ता विमुच्य सदसोदरम् ॥ सांबस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥

समीप चले गये. ये कुँवर जांबवतीके पुत्र सांबको स्त्रीकासा वेष पहनाकर, अपने साथ ले गये. नम्रताहीन इन कुमारोंने नम्रकी नाई झूंठी नम्रता दिखलाकर, ब्राह्मणोंके चरण छूकर, उनसे पूंछा कि- ' हे अमोघदर्शनवाले ब्राह्मणो ! यह गर्भवती स्त्री कि जिसके प्रसव होनेकी तैयारी है और यह पुत्र चाहती है और आपको साक्षात् मुंहसे पूछनेके लिये लजाती है. तासों हमारे मुखसे पूंछवाती है सो आप फरमाओ कि- इस स्त्रीके क्या होगा ' ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजा ! इसप्रकार जिनको ठगना चाहा ऐसे मुनि लोगोंने कोप करके, कहा कि- हे मंदभाग्यो ! यह स्त्री तुह्मारे कुलका नाश करनेवाला मुसल पैदा करेगी ॥ १६ ॥ यह सुनकर, अत्यंत त्रासित भयेहुए उन कुमारोंने शीघ्र सांबका पेट खोलकर, देखा तो उसमें कुलका संहार करनेवाला लोहेका

श्रीजगन्नाथो जयति ॥ ग्यारहवें स्कंधमें नवयोगेश्वरआदिके इतिहासोंद्वारा इकतीस अध्यायोंसे मुक्तिका वर्णन किया जायगा नारदजीने वसुदेवजीको जो मोक्षमार्गका उपदेश किया वह संक्षेपसे कियाहै और भगवान्‌ने उद्धवजीको वही विस्तारसे बताया है. वहां पहले अध्यायमें मूसलसंबंधी श्रापके मिषसे यदुकुलके नाशका वर्णन वैराग्यके वास्ते आरंभमें दिखाया गया है ॥ १ ॥ मुख्य करके इस एकादशस्कंधमें बड़े विस्तारसे ब्रह्मविद्याका निरूपण करना है. और उस ब्रह्मविद्यामें मुख्य साधन वैराग्य है. तासों वैराग्योत्पत्तिके वास्ते प्रथम अध्यायमें प्रारंभमेंही यदुकुलके क्षयका वर्णन है. दशमस्कंधमें तो भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने सब देवतानके अंशभूत यादवोंके साथ पृथ्वीपर प्रगट हो, प्रवृत्तिके विडंबनसे सब जगत्‌को आनंदित किया यह कथा कही गयी. अब एकादशस्कंधमें मायाको बशमें रखनेवाले प्रभुने अपने भक्त लोगोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥ ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥

ओर जो जैसे अधिकारी थे उनको वैसेही पदको प्राप्त करके आप ब्रह्मादिदेवतानके ऊपर अनुग्रह करनेके वास्ते निजधाम पधारे. यह कथा होगी. श्रीशुकदेवजी बोले कि–बल[illegible]कर यादवोंके साथ श्रीकृष्ण भगवान् दैत्योंका वध करके, कौरव और पांडवोंके बीच महाप्रबल कलह उत्पन्न क[illegible] भार उतारा ॥ १ ॥ दुर्योधनादिक शत्रुओंनें दुष्ट द्यूतक्रीड़ा, अपमान, द्रौपदीके केशोंका खैंचना और लाक्षाभवनमें जलाना, आदि अनेक दुष्टकृत्य करके पांडवोंको अनेक प्रकारसे कईबेर दुःखी और कोपित किया तब कौरव और पांडवोंके परस्पर युद्ध ठहर जानेपर कौरव और पांडवोंकी सहायताके अर्थ दोनों पक्षोंमें एकत्रित भयेहुए राजाओंको एक दूसरेके हाथसे मरवाकर, प्रभुने पृथ्वीका भार उतारा. इसका अभिप्राय यह है कि–जो दैत्यरूपसे प्रगट हुए थे, जैसे पूतनाआदि, उनका अपने हाथसे वध किया. और जो बांधवरूप थे तिनको आपसमें कटवा दिया ॥ २ ॥

अपनी भुजाओंसे रक्षित यादवोंके हाथसे पृथ्वीके भाररूप दूसरे राजाओंकी सेनाओंकोभी कटवाकर, जिनका कर्तव्य किसीके विचा-रनेमें नहीं आ सक्ता ऐसे प्रभुने विचार किया कि- , लोक भूमिका भार उतरगया मानते हैं परंतु मैं मानता हूं कि- अबतक वह नहीं उतरा. क्योंकि जिसका सहन करना अतिअशक्य है ऐसा यह यदुकुल कि- जिसको मेरे हाथसे मारना अयोग्य है वह अबतक वैसाका वैसा बनाहुआ है ॥ ३ ॥ और इस यदुकुलका पराभव दूसरेसे किसी प्रकार होवे ऐसे नहीं है; क्योंकि इसके मेरा आश्रय है. तथा हाथी, घोड़े आदि वैभवके हेतु नित्य उच्छृंखलभी है, तासों संहार किये विनाभी काम चले नहीं. इसलिये जैसे बांसोंके भीतर आपसमें रगड़ [illegible]श्यामत्र, अग्नि पैदा हो जाती है और उससे वे दग्ध हो जाते हैं, ऐसे इनके भीतर परस्पर [illegible]नमें

भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिंतयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अंतः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शांतिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

कलह उत्पन्न कराकर, इनका संहार होनेसे मैं शांतिको प्राप्त होऊंगा और फिर मै अपने धाममें जाऊंगा ॥ ४ ॥ महाराज ! सत्यसंकल्प वाले श्रीकृष्ण भगवान्‌ने ऐसा निश्चय करके ब्राह्मणोंके श्रापके मिषसे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ लोकोंमें जिनकी अपेक्षा कहींभी अधिक शोभा नहीं है और जिनके संबंधसेही लोकोंको शोभा मिलती है, ऐसे अपने शरीरसे मनुष्योंके नेत्रोंको अत्यंत अपनेमें आसक्त कर तथा अपनी बाणीसे उस बाणीका स्मरण करनेवाले लोकोंके चित्तको खैंचकर और रजमें बनेड़े हुए अपने चरणोंसे उन चरणचिन्होंको देखनेवाले लोकोंकी दूसरे स्थानमें जाने आदि शरीर चेष्टाओंको रोंक कर तथा भविष्यत् कालमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य इसीसे अनायासपूर्वक संसारसे पार उतर जायंगे ऐसे विचारसे उत्तम श्लोकोंमें निर्माण की जाती अपनी कीर्तिको

इति श्रीमद्भागवते भाषया सहितो
दशमस्कंध उत्तरार्धः समाप्तः

किसी कदरभी आश्चर्यरूप नहीं ॥ ४७ ॥ कहने मात्रमें देवकीसे जन्म लेने परभी वस्तुतः अजन्मा, इच्छामात्रसे अधर्म मिटानेमें समर्थ होतेभी क्रीड़ासे अपनी भुजाओंसे अधर्म दूर करनहारे, अधिकारकी अपेक्षा न करतेही वृंदावनस्थ स्थावर, जंगम जीवोंके संसाररूप दुःखके नाश करनहारे, सुंदर मंदहास्ययुक्त श्रीमुखसे व्रज व पुरकी स्त्रियोंको भोगद्वारा मोक्ष देनेहारे, जगतके निवास, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित, भगवान्‌ही सर्वोत्तम हैं, सो उनका जय होवे ॥ ४८ ॥ अपने वेदमार्गकी रक्षाके लिये लीलासे अनेक अवतार धारण करनेवाले, यदूत्तम परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रके कर्मबंधनको काटनेवाले, चरित्र कि- जो उसी उसी अव-

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥ इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्तलीलातनोस्तदनुरूपविडंबनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्यपदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयाऽनुसवमेधितया मुकुंदश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिंतयेति ॥ तद्धाम दुस्तरकृतांतजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजो ऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कंधे उत्तरार्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनंनाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

तारके अनुकरण करनेयोग्य हैं, उन्हें जो पुरुष भगवच्चरणोंकी सेवाकी अभिलाषा रखता है, उसे अवश्य सुनने चाहिये ॥ ॥ ४९ ॥ प्रतिक्षण श्रीकृष्णचंद्रकी सुंदर कथाका श्रवण व कीर्तनसहित चिंतवन करनेसे वृद्धिंगत भक्तिद्वारा मनुष्य, कालके दुस्तर वेगको शांत करनेवाले भगवद्धामको प्राप्त होता है. देखो ! बड़े बड़े राजाभी इसी प्रकारकी भक्तिकी अभिलाषासे अपने नगर छोड़ वनमें गये हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे दध्यङ्कुलोद्भव आसोपा बलदेवात्मज रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

जार आठसौ ३,००, ०८, ८०० थे ऐसे सुना है ॥ ४१ ॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सक्ता है, जहां कई लक्खों
यादवोंके साथ तौ उग्रसेनजी विराजते थे ॥ ४२ ॥ देवासुरसंग्राममें जो भयंकर दैत्य मारे गये व मनुष्योंमें प्रगट होकर, गर्वके
साथ प्रजाको पीड़ित कर रहे थे ॥ ४३ ॥ महाराज ! उनका संहार करनेके लिये भगवदाज्ञासे देवतालोग यदुकुलमें प्रगट हुए
उनके एकसौ एक कुल थे ॥४४ ॥ ये सब यादव श्रीकृष्णचंद्रको अपना प्रभु जानते और उन्हींको प्रमाण मानते और जो या-
दव भगवान्‌के अनुगामी रहे वे सब सब प्रकारसे बढ़े ॥ ४५ ॥ जिनका चित्त केवल कृष्णहीमें लग रहा है ऐसे वे यादव सोते,
बैठते, फिरते, बोलते, खेलते, न्हाते और दूसरे काम करते अपने शरीरका मानही भूल गये थे ॥ ४६ ॥ महाराज ! पहले तौ

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणाऽऽस्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥ दे-
वासुराहव हता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहाय
हरिणा प्रोक्ता देवा यदोःकुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥ तेषां प्रमाणं भग-
वान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडा-
स्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः संतमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि य-
दुषु स्वः सरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ॥ यन्नामामंगलघ्नं
श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥

भगवान्‌के चरण धोनेके जलरूप गंगाजीही सर्वोत्तम तीर्थ था, पर भगवानकी कीर्तिरूप तीर्थ जो पीछेसे यादवोंमें प्रगट हुआ
उसने गंगाजीकोभी न्यून कर दिखाया और यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं हैं, कि- जो आपके स्नेही और शत्रुभी स्वरूपको
प्राप्त हुए; क्योंकि आप परमदयालु हैं और इसकाभी आश्चर्य न करना चाहिये कि- आजतक जो किसीको प्राप्त न हुई ऐसी
लक्ष्मी कि- जिसके वास्ते ब्रह्मादिकभी यत्न कर रहे हैं आपको छोड़ कहीं नहीं जाती क्योंकि श्रवण किया हुआ अथवा
उच्चारण किया हुआ आपका नामभी अमंगलको दूर करता है. तब आपके स्वरूपका तौ कहनाही क्या ? और ऋषियोंके वंश-
में धर्मभी आपहीका चलाया हुआ है. और कालमूर्ति और चक्र आयुध, धरनेवाले भगवान् भूमिका भार उतारा, यह तो

तेरे मनमें हो तौ, क्या स्त्रियोंमें इकली लक्ष्मीही एक निष्ठावाली है ? क्या हम वैसी नहीं हैं ! ॥ २४ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान श्रीकृष्णचंद्रमें ऐसा प्रेम रखकर, सब स्त्रियां परमगति पायीं ॥ २५ ॥ अनेक कीर्तन करने, गाने व श्रवण करनेसेही जो भगवान स्त्रियोंके मनका बलात्कारसे हरण कर लेते हैं, भला जो उनका दर्शन करती हैं उनके मनको खैंचलें उसमें तौ फिर कहनाही क्या ? ॥ २६ ॥ जो स्त्रियां जगतगुरु भगवानको पति समझकर, प्रेमपूर्वक पांव दाबने–आदिसे सेवा करतीं थीं उनके तपको कहांतक वर्णन करें ? ॥ २७ ॥ या प्रकार वेदविहित धर्मका आचरण करते सत्पुरुषोंके शरण भग-

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याऽऽकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यंतीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावंत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादशमहारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

वानने वारंवार यही बात दिखलायी कि– घरही धर्म, अर्थ व कामका धाम है ॥ २८ ॥ भगवान गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे उस समय श्रीकृष्णचंद्रके सोलह हजार एकसौ आठ १६१०८ रानियां थीं ॥ २९ ॥ महाराज ! स्त्रियोंमें रत्नरूप इन स्त्रियोंमें रुक्मिणी– आदि जो आठ पटरानियां कहीं गयीं उनके पुत्रोंके नामभी मैं पहले कह चुका हूं ॥ ३० ॥ सत्यसंकल्प ईश्वर, श्रीकृष्णचंद्रने अपनी सब स्त्रियोंमें दश दश पुत्र उत्पन्न किये सब पुत्रोंकी संख्या एक लाख एकसठ हजार और अस्सीकी १६१०८०, हुई ॥ ३१ ॥ तिनमेंसे अठारह पुत्र तौ महापराक्रमी बड़े यशस्वी और महारथी हुए. उनके नाम मैं

कहता हूं सो सुनो ॥ ३२ ॥ १ प्रद्युम्न, २ दीप्तिमान्, ३ भानु, ४ सांब, ५ मधु, ६ बृहद्भानु, ७ चित्रभानु, ८ वृक, ९ अरुण, १० पुष्कर, ११ वेदबाहु, १२ श्रुतदेव, १३ सुनंदन, १४ चित्रबाहु, १५ विरूप, १६ कवि, १७ व न्यग्रोध ये सहस्र और अठारहवां प्रद्युम्नका पुत्र, अनिरुद्ध १८ ये महारथी थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे राजराज ! भगवानके इन सब पुत्रोंमेंभी रुक्मिणीका पुत्र महारथी प्रद्युम्न अपने पिता श्रीकृष्णचंद्रसे कुछ कम नहीं था ॥ ३५ ॥ इस महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी पुत्रीसे पाणिग्रहण

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेंद्र तनुजानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥ ३७ ॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥

किया उसमें उसके दश हजार हाथियोंके समान बलवान अनिरुद्ध नाम पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ इस अनिरुद्धने रुक्मीकी पौत्रीसे व्याह किया उसके वज्रनाभ नाम पुत्र हुआ जो मौसल यानी मुसलसे जो यादवोंका संहार हुआ उससे अवशेष रहा ॥ ३७ ॥ वज्रनाभके, प्रतिबाहु, उसके सुबाहु, उसके शांतसेन और उसके शतसेन नाम पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुलमें कोईभी निर्धन, अल्प संतानवाला, अल्पायु, अल्पवीर्य व ब्राह्मणोंका अभक्त नहीं जन्मा ॥ ३९ ॥ महाराज ! सुख्यात कर्म करनेवाले यदुवंशमें प्रगटे मनुष्योंकी संख्या लक्खों बरसोंसेभी करनी अशक्य है ॥ ४० ॥ यदुकुलके असंख्य बालकोंको पढानेवाले अध्यापक तीनकरोड़ आठह

नहीं. हे सखी ! हमारे जैसे तेरा चित्तभी कमलनयन भगवान्‌के उदारहास और लीलापूर्वक अवलोकनसे अत्यंत भिन्न हो गया है क्या ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तूने नेत्र क्यों मूंद लिये हैं ? रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणा आवे जैसे तू रोती है क्या ? जैसे दासीभावको प्राप्त हम भगवान्‌के चरणमें चढ़ी हुई मालाको केशपाशसे धारण करना चाहतीं हैं तैसे तूभी चाहती है क्या ? ॥ १६ ॥ अरे ! रे ! समुद्र निद्रा न आते तुझेभी प्रजागर हो गया दीखे ? जिससे तू सदा चिल्लाया करता है, अथवा तूभी हमारीसी दुरत्यय दशाको प्राप्त हो गया है क्या ? जैसे हमारे कुचकुंकुमादिक लांछन भगवान्‌ने हर लिये हैं, तैसे तेरेभी

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबंधुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुंदापहृतात्मलांछनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इंदो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुंदगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भो स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कंठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधारा स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः ॥ २० ॥

लक्ष्मी और कौस्तुभ- आदि लांछन हर लिये हैं ॥ १७ ॥ हे चंद्र ! क्या तू प्रबल क्षय रोगसे ग्रस्त होकर, क्षीण होनेके कारण अपनी किरणोंसे तमका नाश नहीं करता ? अथवा क्या भगवानकी रहस्य बातोंको याद करके उन्हींकी चिंतामें मग्न होकर, अंधकारको नहीं मिटाता ? हमें तो ऐसा मालूम होता है कि- हमारे जैसे तेरीभी वाणी बंद होगयी है ॥ १८ ॥ हे मलयाचलके वायु ! हमने तेरा क्या बुरा किया ? जिससे तू भगवानके कटाक्षसे भिन्न हमारे हृदयमें कामदेवको प्रेरणा करता है ॥ ॥ १९ ॥ हे श्रीमन्मेघ ! तू अवश्य भगवानका सखा है; क्योंकि ताप मिटानेका गुण जो भगवान्‌में है वह तुझमेंभी है. अत एव प्रेमसे बँधकर, हमारे जैसे तूभी भगवान्‌का चिंतवन करता प्रतीत होता है; क्योंकि तेरे हृदयमें जो अतिउत्कंठा व्याप रही

कहता हू सो सुनो ॥ ३२ ॥ १ प्रद्युम्न, २ दीप्तिमान्, ३ भानु, ४ सांब, ५ मधु, ६ बृहद्भानु, ७ चित्रभानु, ८ वृक, ९ अरु-
ण, १० पुष्कर, ११ वेदबाहु, १२ श्रुतदेव, १३ सुनंदन, १४ चित्रबाहु, १५ विरूप, १६ कवि, १७ व न्यग्रोध ये सहस्र और
अठारहवां प्रद्युम्नका पुत्र, अनिरुद्ध १८ ये महारथी थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे राजराज ! भगवानके इन सब पुत्रोंमेंभी रुक्मिणीका
पुत्र महारथी प्रद्युम्न अपने पिता श्रीकृष्णचंद्रसे कुछ कम नहीं था ॥ ३५ ॥ इस महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी पुत्रीसे पाणिग्रहण

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो वे-
दबाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥ चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेंद्र तनु-
जानां मधुद्विषः ॥ प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे
महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो
जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥ ३७ ॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चाऽऽ-
त्मजः ॥ सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहु-
प्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्म-
णाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशता-
नि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥

किया उसमें उसके दश हजार हाथियोंके समान बलवान अनिरुद्ध नाम पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ इस अनिरुद्धने रुक्मीकी पौत्रीसे व्याह
किया उसके वज्रनाभ नाम पुत्र हुआ जो मौसल यानी मुसलसे जो यादवोंका संहार हुआ उससे अवशेष रहा ॥ ३७ ॥ वज्रनाभके, प्रति-
बाहु, उसके सुबाहु, उसके शांतसेन और उसके शतसेन नाम पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुलमें कोईभी निर्धन, अल्प संतानवाला,
अल्पायु, अल्पवीर्य व ब्राह्मणोंका अभक्त नहीं जन्मा ॥ ३९ ॥ महाराज ! सुख्यात कर्म करनेवाले यदुवंशमें प्रगटे मनुष्योंकी
संख्या लक्खों बरसोंसेभी करनी अशक्य है ॥ ४० ॥ यदुकुलके असंख्य बालकोंको पढ़ानेवाले अध्यापक तीनकरोड़ आठह

नहीं- हे सखी ! हमारे जैसे तेरा चित्तभी कमलनयन भगवान्के उदारहास और लीलापूर्वक अवलोकनसे अत्यंत भिन्न हो गया है क्या ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तूने नेत्र क्यों मूंद लिये हैं ? रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणा आवे जैसे तू रोती है क्या ? जैसे दासीभावको प्राप्त हम भगवान्के चरणमें चढ़ी हुई मालाको केशपाशसे धारण करना चाहतीं हैं तैसे तूभी चाहती है क्या ? ॥ १६ ॥ अरे ! रे ! समुद्र निद्रा न आते तुझेभी प्रजागर हो गया दीखे ? जिससे तू सदा चिल्लाया करता है, अथवा तूभी हमारीसी दुरत्यय दशाको प्राप्त हो गया है क्या ? जैसे हमारे कुचकुंकुमादिक लांछन भगवान्ने हर लिये हैं, तैसे तेरेभी

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबंधुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुंदापहृतात्मलांछनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इंदो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुंदगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भो स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥ गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥ अत्युत्कंठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधारा स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः ॥ २० ॥

लक्ष्मी और कौस्तुभ- आदि लांछन हर लिये हैं ॥ १७ ॥ हे चंद्र ! क्या तू प्रबल क्षय रोगसे ग्रस्त होकर, क्षीण होनेके कारण अपनी किरणोंसे तमका नाश नहीं करता ? अथवा क्या भगवानकी रहस्य बातोंको याद करके उन्हींकी चिंतामें मग्न होकर, अंधकारको नहीं मिटाता ? हमें तो ऐसा मालूम होता है कि- हमारे जैसे तेरीभी वाणी बंद होगयी है ॥ १८ ॥ हे मलयाचलके वायु ! हमने तेरा क्या बुरा किया ? जिससे तू भगवानके कटाक्षसे भिन्न हमारे हृदयमें कामदेवको प्रेरणा करता है ॥ ॥ १९ ॥ हे श्रीमन्मेघ ! तू अवश्य भगवानका सखा है; क्योंकि ताप मिटानेका गुण जो भगवान्में है वह तुझमेंभी है. अत एव प्रेमसे बँधकर, हमारे जैसे तूभी भगवानका चिंतवन करता प्रतीत होता है; क्योंकि तेरे हृदयमें जो अतिउत्कंठा व्याप रही

है तासों भगवान्‌का स्मरण कर कर, हमारे जैसे अश्रुकी धारा वहा रहा है. और तेरा हृदय काला हो गया है, अरे ! उनके साथ तूने मित्रता क्यों की ? क्योंकि उनका प्रसंग तौ वारंवार दुखदायीही है ॥ २० ॥ हे सुंदरकंठ कोकिल ! तू मुर्देकोभी जिला देनेवाली इस कोमल वाणीसे प्रियंवद भगवान्‌के पद बोलती है, सो आज मैं तेरा क्या प्रिय करूं ? सो तू मुझे कह ॥ ॥ २१ ॥ हे उदार बुद्धि पर्वत ! तू न तौ हिलता चलता है और न कुछ बोलता है तासों प्रतीत होता है कि– तू किसी बड़े विषयका विचार करता है. हमारे जैसे तूभी भगवान्‌के चरण स्तनपर धरना चाहता है क्या ? जो ऐसा होगा तौ तेरीभी हमारीसी स्थिति होगी ॥ २२ ॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो ! जैसे हम भगवान्‌के कृपाकटाक्षको न पाकर, हृदय चुराये जानेसे अति-

प्रियराव पदानि भाषसे मृतसंजीविकयाऽनया गिरा॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महान्तमर्थम् ॥ अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाः करशिता बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्त्तुः ॥ यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥

दुर्बल होगयी हैं, तैसे क्या तुमभी अभी मेघद्वारा समुद्रका जल न पाकर, दुर्बल, शुष्क ह्रद और कमलोंकी शोभासे हो गयी हो ? ॥ २३ ॥ अकस्मात् आये हंसको दूत कल्पनकरके कहती हैं कि– हे हंस ! तुम भले आये ! आओ, बैठो, दूध पीओ भगवान्‌की बातें कहो, तुम दूत होकर, आये हो सो हम जानती हैं. भगवान् अच्छी तरह तौ हैं ? क्षणिक स्नेह रखनेवाले भगवान्, स्वयं हमसे जो कुछ कह गये थे उसे कभी याद करते हैं ? हे क्षुद्रके दूत ! हमारे भगवान्‌से क्या प्रयोजन है ? जो हमें कामसुखार्थ बुलाते हो तो उन्हींको यहां बुलालो. पर यह बात है कि– लक्ष्मी हमें धोखा दे, अकेली भगवान्‌का सेवन करती है सो लक्ष्मीविना इकल्ले भगवानकोही बुलालाना. लक्ष्मी एकनिष्ठावाली है सो उसका त्याग कैसे किया जाय ऐसे कदाचित्

उपवनोंसे संपन्न हुए, फूले वृक्षोंकी पंक्तियोंमें विहार करते हुए भ्रमर और पक्षिगण जिसमें नाद कर रहे हैं, ऐसी अपनी पुरी द्वारका कि-जिसके मार्गमें सदा मदझरते हाथी, सुंदर सिंगार किये योद्धा व घोड़े और सुवर्णसे देदीप्यमान रथोंकी भीड़ भाड़ बनी रही है और जिसके महलोंमें उत्तम वेष धारण किये, नवयौवनकी छबिसे देदीप्यमान और दामिनीसी दमकसे दीप्त अंगना गेंद-आदिसे अनेक प्रकारके अनूठे खेल खेलतीं विलास कर रही हैं, उसमें सुखपूर्वक विराजते, सोलह हजार रानियोंके एक प्यारे लक्ष्मीपति भगवान महासमृद्धिवाले उन स्त्रियोंके घरोंमें उतनेही विचित्ररूप धर, रमण कर रहे थे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकांतिभिः ॥ कंदुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडंतीभिस्तडिद्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतंगजैः ॥ स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद्भृंगविहगैर्नादितायां समंततः ॥ ४ ॥ रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदंगपणवानकान् ॥ वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवंदिभिः ॥ ८ ॥ सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसंतीभिः स्मरेचकैः ॥ प्रतिसिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ इन घरोंके अंदर निर्मल जलाशयोंके जल, प्रफुल्लित उत्पल, कल्हार, कुमुद व पद्मकी सुगंधिसे वासित हो रहे हैं और पक्षियोंके झुंड उनके तीरपर कूज रहे हैं ॥ ६ ॥ महासमृद्ध उन सरोवरियोंके जलमें भगवान प्रवेश कर, विहार कर रहे थे. वहां स्त्रियां जो आलिंगन कर रही हैं उनके कुचोंकी केसर आपके श्रीअंगमें लिपायमान हो रही है ॥ ७ ॥ गंधर्वलोग प्रेमसे मृदंग, पणव, आनक और वीणा बजा रहे, हैं. और सूत, मागध व बंदीजन भगवानका यश गारहे हैं ॥ ८ ॥ स्त्रियां हँसती हँसती भगवान्को पिचकारियोंसे भिगो रहीं हैं. और भगवान उन्हें भिगो रहे हैं. वह शोभा कैसी मालूम होती है, कि- मानों कुबेर

यक्षिणियोंके साथ विहार कर रहे हैं ॥ ९ ॥ वस्त्र भीग जानेसे जिनके स्तन और उरुप्रदेश प्रगट दीख रहे हैं और पिचकारियोंसे बचनेके कारण भगवान्‌का आलिंगन करते जिनके कामदेवके उत्सवसे मुख देदीप्यमान हो रहे हैं व जिनके भारी केशपाशसे फूल बिखर रहे हैं, ऐसी वे स्त्रियां भगवान्‌को भिगोतीं अतिदीप रहीं हैं ॥ १० ॥ भगवानकी धारण कीहुई माला स्त्रियोंके कुचोंके केसरसे लिप रही थी और क्रीड़ाके अभिनिवेशसे उनके केशपाशके बंधन शिथिल हो रहेथे, इसतरह स्त्रियां श्रीकृष्णचंद्रको वारंवार भिगो रहीं थीं; और भगवान उन स्त्रियोंको भिगो रहे थे; सो जैसे हाथी हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसे उन स्त्रि-

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशा सिंचंत्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कांतं स्मरेचकजिहीरषयोपगुह्य-जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्क्रीडाऽभिषंगधुतकुंतलवृंदबंधः ॥ सिंचन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वंगैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुंदैकधियोऽगिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिंतयंत्योऽरविंदाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

योंके साथ आप जलक्रीड़ा कर रहे थे ॥ ११ ॥ नट, नटिनियां और दूसरेभी गीतोपजीवी और वाद्योपजीवियोंको श्रीकृष्णचंद्र अपने क्रीड़ासंबंधी अलंकार और वस्त्र देरहे थे; और स्त्रियांभी देतीं थीं ॥ १२ ॥ या प्रकार विहार करते श्रीकृष्ण भगवान्‌के भाषण, गति, अवलोकन, मंद मुसुकान, ठट्ठा ठठोली, हास्यवचन व आलिंगनसे जिनके मनका हरण होगया था ॥ १३ ॥ ऐसी और जिनकी बुद्धि केवल भगवानमेंही लग रही थी ऐसी वे स्त्रियां भगवानका चिंतवन करतीं उन्मत्त और जड़के समान जो वचन कहतीं थीं, वे वचन मैं तुमसे कहता हूं सो तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियां कहतीं हैं कि–हे टिटिहरी ! जगतमें गुप्तबोध भगवान श्रीकृष्ण तौ रात्रिमें पौढ़ें हैं. और तू विनिद्र हो विलाप कर कर, निद्रामें भंग डालती है; तू नहीं सोती सो यह ठीक

षोत्तम भगवान्‌के दर्शन हुए. इन पुरुषोत्तम भूमा भगवानकी कांति सघन घनके समान है. प्रभु पीतपट ओढ़े, प्रसन्नमुख विराजे हैं जिनके स्वरूपमें सुंदर व आयत नेत्र ॥ ५५ ॥ अनेक अमूल्य मणियोंसे जटित किरीट व कुंडलकी कांतिसे चाकचक्य करता केशभार, लंबी व सुंदर आठ भुजा, कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स चिन्हको शोभा देनेवाली वनमाला विराजे है ॥ ५६ ॥ सुनंद नंद आदि अपने पार्षद, मूर्तिमान सुदर्शनचक्र–आदि अपने शस्त्र, पुष्टि, लक्ष्मी, कीर्ति, माया व अष्टसिद्धियां ये सब जि-

महामणिव्रातकिरीटकुंडलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुंतलम् ॥ प्रलंबचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ॥ ५६ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववंद आत्मानमनंतमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धांजली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलाऽवतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमंति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥

नकी सेवा कर रहे हैं ऐसे भूमा भगवान्‌के दर्शनसे भयभीत हो, अर्जुनने व श्रीकृष्णने इन सकल महात्मानके पति अपने स्वरूपभूत भूमा भगवानको प्रणाम किया, श्रीकृष्ण और अर्जुन हाथ जोड़, रहे थे. तब ईश्वरोंके ईश्वर भूमा भगवान्‌ने हँसकर, गंभीर वाणीसे कहा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ भूमा भगवान् बोले कि–तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषसे ब्राह्मणके पुत्रोंको मैं यहां ले आया हूं. पृथ्वीमें धर्मके रक्षणार्थ तुम दोनों मेरे अंशसे प्रगट हुए हो. सो अब पृथ्वीके भाररूप दैत्योंके बधका काम पहुँचकर, शीघ्र मेरे पास आओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों नर नारायण ऋषिके अवताररूप सर्वोत्तम और पूर्णकाम हो, तौभी जगतकी स्थि-

१ चक्रं शंखस्तथा खड्गश्चर्मशार्ङ्गगदास्तथा ॥ बाणः पद्मं तथान्यानि मुसलाद्यायुधानि हि ॥ मूर्तिमंति हरेः पार्श्वे तिष्ठंति परितः सदा ॥ १ ॥ अर्थ–चक्र, शंख, ढाल, तलवार, शार्ङ्गधनुष, गदा, पद्म और मुसल–आदि अन्य आयुध मूर्तिमान् भगवान्‌की बाजूमें चारों तरफसे सदा रहते हैं ॥ १ ॥

तिके वास्ते लोकसंग्रहार्थ धर्मका आचरण करो ॥ ६० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–भूमा भगवानने इस तरह आज्ञाकी. तद प्र-सन्न हो; श्रीकृष्ण व अर्जुन ये दोनों उनकी आज्ञाको शिरपर धर, ब्राह्मणके पुत्रोंको ले, भूमा भगवानको प्रणाम कर, जिस मार्गसे गये थे. उसी रास्ते पीछे द्वारका आये. ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र दिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ विष्णु भग-वानका धाम देखकर, अर्जुन अतिविस्मित हुए. और जाना कि– ‘ जो कुछ मनुष्योंमें पुरुषार्थ है सो सब भगवत्कृपासेही है ’ ॥ ६३ ॥ इस लोकमें ऐसे ऐसे अनेक पराक्रम दिखलाते भगवानने संसारसंबंधी विषयोंका भोग करते अतिसमृद्धिवाले यज्ञोंसे

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ नि-शाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ॥ यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकंपितम् ॥ ६३ ॥ इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ॥ यथाकालं यथैवेंद्रो भगवान्श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः ॥ अंजसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे द्विजकुमारानयनंनाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुंगवैः ॥ १ ॥

यजन किया ६४ ॥ सकल श्रेष्ठ भगवानने इंद्रके समान ब्राह्मण–आदि सब प्रजाके सकल मनोरथ समय समयपर पूर्ण किये ॥ ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको स्वयं मार और अर्जुन–आदिके हाथसे मरवाय, युधिष्ठिर–आदि धार्मिक राजाओंद्वारा अनायाससे धर्मको प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ नब्वेवें अध्यायमें फिर संक्षेपसे श्रीकृष्णचंद्रकी लीला और कारणसहित यदुवंशियोंकी असंख्या-तताका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि– सकल संपत्तियोंसे समृद्ध, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित, फुलवाड़ियां और

नपुंसकके कहनेपर विश्वास किया ॥ ४० ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलभद्र और श्रीकृष्ण जिसकी रक्षा नहीं कर सके, उसे दूसरा कौन बचा सकता है ? ॥ ४१ ॥ धिक्कार है इस झूंठ बोलनेवाले अर्जुनको और धिक्कार है इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको, जो दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहता है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण तो इसतरह गालियां देरहा था. इतनेमें अर्जुन विद्याको धारण कर, तुर्त संयमनी पुरीमें पहुँचे जहां महाराज यमराज विराजते हैं ॥ ४३ ॥ वहां कहीं ब्राह्मणके पुत्रको न देखा. तब इंद्रकी पुरीमें गये, वहां भी न मिला तब फिर शस्त्र उठाकर, अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु और

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥ यस्य शेकुः परित्रातुं कोन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमनीमाशु यत्राऽऽस्ते भगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐंद्रीमगात्पुरीम् ॥ आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते माऽवज्ञाऽऽत्मानमात्मना ॥ एतेन कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयंति ते ॥ ४६ ॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपान्सप्तसिंधून्सप्तसप्तगिरीनथ ॥ लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥

वरुणकी पुरीमें गये. पाताल, स्वर्ग व दूसरे सब स्थान ढूंढ़ मारे. पर कहीं उस ब्राह्मणके पुत्रका पता नहीं लगा. तद भ्रष्टप्रतिज्ञ हो, अग्निमें प्रवेश करना चाहा. तब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें मना किया और कहा कि– ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ‘ तुम अपने आप अपना अपमान मत करो. मैं तुम्हें ब्राह्मणके पुत्र दिखला दूंगा. जिससे जो तुम्हारी निंदा करते हैं वेही तुम्हारी निर्मल कीर्तिको पृथ्वीमें अविचल करेंगे ’ ॥ ४६ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको इस तरह कह, उन्हें संग ले, अपने दिव्य रथमें विराजकर, पश्चिम दिशामें पधारे ॥ ४७ ॥ सात द्वीप, सात समुद्र, सात पर्वत व लोकालोक पर्वतको उल्लंघ कर, आगे बड़े भारी गाढ़ अंधकारमें

पधारे ॥ ४८ ॥ हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! वहां शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक ये चारों घोड़े अंधकारमें रुक गये ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरोंकेभी ईश्वर भगवान्‌ने उन्हें अटके देखकर, हजार सूर्यके समान अपने सुदर्शन चक्रको आगे भेजा ॥ ५० ॥ अपने अतिबहुल तेजसे प्रकृतिके परिणामरूप, गाढ़ और प्रबल अंधकारका विदारण करता वह भगवान्‌का सुदर्शनचक्र जैसे पनचसे छूटा रामचंद्रजीका बाण सेनामें जाता है वैसे मनके समान वेगसे उस निबिड़ अंधकारमें घुसा ॥ ५१ ॥ चक्रके किये मार्गसे

तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥ मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः परं परंज्योतिरनंतपारम् ॥ समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तंभसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनंतमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकंठजिह्वम् ॥ ५४॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सांद्रांबुदाभं सुपिशंगवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥

जाते जाते उस अंधकारसे अतिदूर अनंत व अपार व्याप्त होता हुआ तेज नजर आया. जिसे देखकर, अर्जुनने चकाचौंध होकर, आंखें मूंद लीं ॥ ५२ ॥ फिर अतिप्रबल पवनसे उठ रहीं जो बड़ी बड़ी तरंगें तिनसे शोभायमान जलके भीतर प्रविष्ट हुए. वहां बड़ा प्रकाशमान व शोभायमान हजारों मणियोंके खंभोंसे देदीप्यमान अद्भुत भवन देखनेमें आया ॥ ५३ ॥ वहां महाभयंकर, अद्भुत, शिरसंबंधी हजार फणोंकी मणियोंकी कांतिसे देदीप्यमान, भयंकर दो हजार नेत्र धारण किये, श्याम कंठ व जीभसे संयुक्त श्वेतपर्वतसे शेषजी दृष्टिमें आये ॥ ५४ ॥ शेषजीके शरीरपर सुखसे पौढ़ेहुए बड़े प्रतापी, व्यापक व उत्तम प्रभु पुरु-

कर सकोगे ? और जो तुम करना चाहते हो तौ यह तुम्हारी मूर्खता है. हम इस बातपर विश्वास नहीं करते, ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि– 'हे ब्रह्मन् ! न तौ मैं संकर्षण हूं, न कृष्ण हूं और न प्रद्युम्न हूं; तू मेरा नाम जानता है ? मेरा नाम अर्जुन है. जिसके पास गांडीव धनुष है ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिससे महादेवभी प्रसन्न हुए, उस मेरे पराक्रमका तू अपमान मत कर. हे प्रभु ! युद्धमें मृत्युको जीतकरभी मैं तेरी प्रजाको तौ ला दूंगा' ॥ ३४ ॥ महाराज ! इस तरह अर्जुनने विश्वास दिया; तद वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको सुनता प्रसन्न हो, अपने घर गया ॥ ३५ ॥ जब स्त्रीके प्रसवसमय निकट आया. तव उस उत्तम



अर्जुन उवाच ॥ नाहं संकर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनोनाम गांडीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥ मावमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ॥ जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यंभो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गांडीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकाऽगारं शरैर्नानाऽस्त्रयोजितैः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मणने आतुर हो 'मृत्युसे प्रजाको बचाओ बचाओ' इस तरह अर्जुनके पास आकर, पुकार की ॥ ३६ ॥ तद उन्होनें पवित्र जल ले, आचमन कर, महादेवको प्रणाम कर, दिव्य अस्त्रोंका स्मरण कर, गांडीव धनुषको पनच चढ़ाय, हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे जोड़ेहुए बाणोंसे तिरछा, ऊंचा और नीचा चौतर्फसे प्रसूतिका घर बंद कर, शरपंजर बना दिया ॥ ३८ ॥ तब ब्राह्मणकी स्त्रीके बहुत रुदन करता हुआ बालक पैदा हुआ. और शरीरसहित आकशमार्ग हो तुर्त लोप हो गया ॥ ३९ ॥ तब वह ब्राह्मण श्रीकृष्णके सामने अर्जुनकी निंदा करता बोला कि– देखो, मेरी मूर्खता देखो, कि– मैंने

व लोभी क्षत्रियोंके कुकर्मके अपराधसे मेरा बालक मरा है ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले, अजितेंद्रिय और दुःशील, राजाका सेवन
करनेवाली प्रजा पीड़ित रहती है. दरिद्रि रहती है. और नित्य दुःखितही कहलाती है ” ॥ २५ ॥ इस प्रथम बालकको ला
कर, ब्राह्मण जिसतरह राजद्वारपर बोला था, वैसेही दूसरीबेर और तीसरी बेरके बालकको राजद्वारपर, रखकर, उसी तरह कहा
करता ॥ २६ ॥ किसी दिन भगवान्के पास अर्जुन बैठे थे. और नवमीबेरका बालक मर जानेपर वह ब्राह्मण उसीतरह कहने
लगा; तब उसके वचन सुनकर, अर्जुन बोले कि– ॥ २७ ॥ “ हे ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे यहां कोई धनुषधारी नहीं है ? धन,

प्रजा भजंत्यः सीदंति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ ए-
हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रियम् ॥ प्रजा भजंत्यः सीदंति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ तामर्जु-
वं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्व-
न उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवांतिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २७ ॥ धनदारात्मजापृक्ता
न्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ अहं प्रजां वां भगवन्रक्षि-
यत्र शोचंति ब्राह्मणाः ॥ ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवंत्यसुंभराः ॥ २९ ॥ संकर्षणो वा-
ष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ तत्कथं नु भ-
सुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवंति यत् ॥ ३१ ॥
वान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥

स्त्री व पुत्रोंमें आसक्त ये यादव तौ यज्ञमें भोजनको इकट्ठे भये ब्राह्मणोंके जैसे मालूम होते हैं ॥ २८ ॥ जिन क्षत्रियोंके जीते
धन, स्त्री व पुत्रसंयुक्त ब्राह्मण जहां शोच करें, वे उदरंभरी क्षत्रिय तौ क्षत्रियके वेषसे नटलोगही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये
॥ २९ ॥ महाराज ! आप दीन दोनोंके प्रजाकी रक्षा यहां मैं करूंगा. और यदि मेरी प्रतिज्ञा मुझसे पार न पड़ेगी तौ मैं अग्नि-
में प्रवेश कर, अपने कल्मषको दूर करूंगा ” ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि– ‘ भला जिसे संकर्षण, श्रीकृष्ण, धनुषधारियोंमें
श्रेष्ठ प्रद्युम्न व अप्रतिरथ अनिरुद्धभी नहीं बचा सक्ते ॥ ३१ ॥ सो जगतके ईश्वरोंसे जो काम नहीं हो सक्ता उसे तुम किसतरह

धोनेके जलसे मुझे और मुझमें रहे लोक और लोकपालोंको पवित्र करो ॥ ११ ॥ हे भगवन् आज मैं लक्ष्मीका अविचल धाम हुआ- आपके चरणप्रहारसे मेरे सब पाप निवृत्त होगये; तासों अब मेरे वक्षःस्थलमें लक्ष्मी अविचल रहेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- भगवान् इस तरह कह रहे थे. तद भृगुऋषि भगवान्‌की गंभीर वाणी सुन कर, परमानंदमग्न और तृप्त होकर,

अद्याहं भगवन्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुंठे भृगुस्तन्मंद्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कंठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शांतिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम्[1] ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चाऽऽत्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदंडानां शांतानां समचेतसाम् ॥ अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १७ ॥

चुप होगये- और भक्तिजनित उत्कंठासे उनके नेत्रोंमें अश्रु आगये ॥ १३ ॥ महाराज ! भृगुजीने ब्रह्मवादी मुनिलोगोंके यज्ञमें पीछा आकर, जो कुछ अपनी समझमें आया वह सब कह, सुनाया ॥ १४ ॥ यह बात सुन, विस्मययुक्त मुनिलोगोंने संशय तज जान लिया कि-विष्णु भगवान् सबसे बड़े हैं. कि- जिन भगवान्‌में शांति, अभय, धर्म, अपरोक्षज्ञान और इससे संयुक्त वैराग्य, आठ प्रकारकी सिद्धियां व अंतःकरणके मैलको दूर करनेवाला यश ये सब रहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ सबको अभय देने-

१ 'तदन्वित' इस जगह 'चतुर्विध' ऐसा पाठभी है वहां ऐसा अर्थ करना चाहिये कि चार प्रकारका वैराग्य सो यतमान, व्यतिरेक, एकेंद्रिय व वशीकृत. विषयोंका त्याग न कर सकता हो तौभी उन्हें मान देनेकी इच्छाका त्याग सो यतमान वैराग्य, विषयोंमें थोड़ा बहुतभी त्याग करना सो व्यतिरेक वैराग्य, मनमें रागको तज, बाह्य इंद्रियोंहीसे विषयसेवन करना सो एकेंद्रिय वैराग्य, बाह्य इंद्रियोंसेभी त्याग करना यह वशीकृत वैराग्य.

वाले, शांत, समचित्त व अकिंचन साधु मुनिलोगोंके जो शरणरूप हैं. उन विष्णु भगवान्‌को सबसे बड़ा समझ लिया ॥ १७ ॥ सत्वगुण जिनकी प्रिय मूर्ति है ब्राह्मण जिनके इष्ट देव हैं और शांत व निष्काम लोग जिनका भजन करते हैं, उन्हें सबसे बड़े जानें ॥ १८ ॥ यद्यपि गुणमय मायासे रचेहुए राक्षस, असुर और देवता ये तीनों तीन प्रकारके भगवान्‌केही स्वरूप हैं, तौभी भगवत्प्राप्तिका साधन तौ सत्वगुणही है ॥ १९ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि- याप्रकार मनुष्योंका संशय दूर करनेको पक्का २ निश्चय कर, सरस्वतीके तीरपर रहनेवाले ब्राह्मण भगवच्चरणारविंदकी सेवासे भगवत्स्वरूपको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजीने कहा कि- याप्रकार

स त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजंत्यनाशिषः शांता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पाथोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याःकुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबंधोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २४ ॥

शुकदेवजीके मुखकमलसे प्रगट हुए, सुगंधी, अमृतसमान, संसारके भयको मिटानेवाले व वर्णन करनेयोग्य इस भगवद्यशको संसारचक्रमें डोलनेवाला जो पुरुष कानरूप दोनोंसे वारंवार पान करे, वह संसाररूप मार्गमें भटकनेके परिश्रमसे छूट जाय ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- हे राजा ! एक समय द्वारकामें किसी ब्राह्मणकी स्त्रीका पुत्र जन्मतेही भूमिको छूकर, तुर्त मर गया ॥ २२ ॥ आतुर व दीनचित्त वह ब्राह्मण उस मुर्देको ले, राजद्वारपर रख कर, विलाप करता यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगा कि- ॥ २३ ॥ " ब्राह्मणोंके द्वेषी, शठबुद्धि, विषयलंपट,

फिर ब्रह्माजीने अपने मनमें उत्पन्न हुए क्रोधको 'भृगु मेरा पुत्र है' ऐसा जानकर, शांत किया. अग्निको शांत करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आवे तैसे ब्रह्माजीका क्रोध शांत होनेमें भृगुका पुत्रपन काम आया ॥ ४ ॥ फिर भृगुऋषि कैलास पर्वत पर पधारे, वहां शिवजी प्रेमसे ठाढे होकर, उन अपने भाई भृगुजीसे मिलनेको उद्यत हुए, तद 'तू बे रस्ते चलता है' ऐसे कहकर, भृगुजीने शिवजीसे मिलना न चाहा. तिससे शिवजीको बड़ा क्रोध हुआ और तीक्ष्णदृष्टि महादेव त्रिशूल उठाकर, भृगुजीको मारने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ तद पार्वतीने पैरोंमें गिरकर, वाणीसे शांत किया, फिर भृगुजी विष्णु भगवान् जहां विराजे हैं



स आत्मन्युत्थितं मन्युमाऽऽत्मजायाऽऽत्मना प्रभुः ॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥ ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभ उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हंतुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सांत्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान्सहलक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्राऽऽसने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षंतुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीवकोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥

वहां वैकुंठमें पधारे ॥ ७ ॥ भगवान् लक्ष्मीजीकी गोदीमें सो रहे थे. भृगुजीने वहां जाकर, उनकी छातीमें लात मारी. सत्पुरुषोंके शरण भगवान्ने लक्ष्मीजीके साथ जागकर, अपने पलँगसे नीचे उतर, भृगुजीको शिरसे प्रणाम किया. और कहा कि– 'हे ब्रह्मन् ! आपका पधारना बहुत ठीक हुआ. कुछ देर यहां आसनपै विराजें. हे प्रभु ! हमें आपके पधारनेकी खबर नहीं रही, सो आप क्षमा करें ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे तात ! हे महामुनि ! आपके चरण तो अतीव कोमल हैं सो आपके चरणोंमें लगा होगा' ऐसे कह कर, आप अपने हाथसे भृगुके पांव चापने लगे और बोले कि– ॥ १० ॥ तीर्थोंकोभी तीर्थ करनेवाले आपके चरण

पुष्पवृष्टि करने लगे. इसतरह भगवान्‌ने महादेवको संकटसे छुड़ाया ॥ ३७ ॥ संकटसे मुक्त शिवजीके समीप आ, भगवानने
कहा कि– " अहो ! हे देव ! हे महादेव ! यह पापी अपनेही पापसे मर गया, हे ईश्वर ! हरएक जीव दूसरे महात्माओंका
अपराध करे, तौभी उसका कल्याण नहीं होता. तद जगद्गुरु व ईश्वर आपका जो अपराध करे उसका कल्याण तौ किस भांति
होवे ? ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ या प्रकार मन वाणीके अगोचर, शक्तियोंके समुद्ररूप, मायासे पर, साक्षात् परमात्मा भगवान्‌ने महादे-
वको कष्टसे छुड़ाया. इस कथाको जो पुरुष कहे, अथवा सुने, वह पुरुष जन्म–मरणसे तथा शत्रुओंसे मुक्त हो जाय ॥ ४० ॥

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः
कोनु महत्स्वीश जंतुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य
एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्य-
ते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रुद्रमोक्षणंनाः
माष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥ वितर्कः
समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रे-
षयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ॥ तस्मै चुक्रो-
ध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥
नवासीवें अध्यायमें सब देवनमें कौन बड़ा है ऐसा संदेह हुआ, तब भृगुऋषिने परीक्षा करके, विष्णु बड़े हैं ऐसे मुनि लोगोंसे कहा,
वह औ भगवान् ब्राह्मणके पुत्रोंको पीछे लाये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! सरस्वती नदीके तीरपर
ऋषिलोग यज्ञ कर रहे थे. वहां उनके बीच तर्क उत्पन्न हुआ कि– " तीनों देवनमें बड़ा कौन है ? " ॥ १ ॥ हे राजा ! इस बातका
निश्चय करनेको उन्होंने ब्रह्मपुत्र भृगुजीको पठाया. भृगुऋषि ब्रह्माजीकी सभामें गये ब्रह्माजीकी महत्ताकी परीक्षा करनेको उन्होंने
ब्रह्माजीको प्रणाम नहीं किया. और स्तुतिभी नहीं करी, अपने तेजसे प्रकाशमान ब्रह्माने भृगुपर क्रोध किया ॥ २ ॥ ३ ॥

तुम कितनीएक दूरसे आये हो ? थोड़ी बेर विश्राम लेओ, क्योंकि यह देह सब मनोरथोंका देनेवाला है. सो इसे ज्यादा परिश्रम नहीं देना चाहिये ॥ २९ ॥ हे विभु ! यदि आपका विचार हमें कहनेयोग्य हो तौ कहो; क्योंकि दूसरेकी सहायता लेकर, मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकता है " ॥ ३० ॥ इसतरह मानों अमृत बरसता हो ऐसा वचन कहकर, भगवान्ने प्रश्न किया उससे उसका परिश्रम जाता रहा. तद उस वृकासुरने अपनी की हुई पहली सब वार्ता कह, सुनायी ॥ ३१ ॥ तद भगवान्ने कहा कि- " जो ऐसा है तौ हम महादेवके वचनको सत्य नहीं मानते; क्योंकि महादेव तौ दक्षके श्रापसे पिशाचत्व प्राप्त

यदि नः श्रवणायाऽलं युष्मद्व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेंद्र जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यंगाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥ यद्यसत्यं वचः शंभोः कथंचिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥ इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमः शब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगंधर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥

हुए हैं और प्रेत और पिशाचोंके राजा हैं ॥ ३२ ॥ हे दानवेंद्र ! जगद्गुरु कहलाते इन महादेवपर तुम्हें विश्वास हो तौ तुम अपने शिरपर हाथ रखकर, एकवार इनके वचनकी परीक्षा तौ करलेओ ॥ ३३ ॥ हे दानवोत्तम ! जो किसी तरहभी महादेवका वचन झूंठ प्रतीत हो तौ इस मिथ्यावादीको मार डालना कि-जिससे फिर झूंठ न बोले " ॥ ३४ ॥ इस तरह विचित्र और सुकोमल भगवानके वचनोंसे जिसकी बुद्धि चलायमान होगयी ऐसे उस दुर्बुद्धि वृकासुरने भूलकर, अपना हाथ अपने शिरपर धरा ॥ ३५ ॥ हाथ धरतेही मानों वज्रकी चोट लगी हो ऐसे शिर फट गया और वह दैत्य मरगया. देवतालोग स्वर्गमें " नमः नमः, जय जय, साधु साधु, " शब्द करने लगे ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरके मरनेपर देव, ऋषि, पितृ व गंधर्व,

सुन, महादेवजीने उदाससे हो, सर्पको जैसे दूध प्यावे, वैसे हँसकर, उस दैत्यको ' तथास्तु ' ऐसा कहकर, वरदान दिया ॥२२॥ यह वर पाकर, उस दैत्यने चाहा कि- जो महादेवजीके शिर पर हाथ धरूं तो पार्वतीभी हाथ लगजायं. और वरकी परीक्षाभी हो जाय. ऐसा विचार कर, पार्वतीके हरणकी लालसासे महादेवजीके शिरपर हाथ धरनेका उद्योग किया. महादेव अपने किये कार्यसे आपही डरे और दौड़े. सो आगे तो आप भागे जाय हैं और पीछे पीछे वह दैत्य दौड़ रहा है, निदान त्रास खाते और कांपते हुए महादेव स्वर्ग, पृथ्वी और दिशाओंके अंततक दौड़े. फिर उत्तर दिशाकी ओर भागे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कोई उपाय दी-

इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शंभोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ २३ ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्स वेपथुः ॥ यावदंतं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानंतः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥ ततो वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमागतिः ॥ शांतानां न्यस्तदंडानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ॥ दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षैस्तेजसाऽग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः ॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥

खा नहीं, इस लिये विचारे देवता चुप हो रहे, फिर आप अंधकारसे पर व प्रकाशमान श्वेतद्वीप पहुँचे. जहां शांतरूप और सबको अभय देनेवाले संन्यासियोंके परमगति साक्षात् नारायण विराजे हैं और जहां गये पीछे फिर आवागनमें नहीं आता ॥२५॥ ॥ २६ ॥ महादेवके इस दुःखको देखकर, संकट मिटानेवाले भगवान् अपनी मायासे बटुकका रूप धर, दूरसे उस दैत्यके सन्मुख आये ॥ २७ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड व माला धारण किये, तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान, दाभ हाथमें लिये, बटुकने नम्रकी तरह उस दैत्यका अभिवादन करके, कहा कि- ॥ २८ ॥ " हे शकुनिपुत्र ! तुम अवश्य थक गये हो ऐसा प्रतीत होता है.

हो जायगा ॥ १५ ॥ रावण और बाणासुरने महादेवजीकी बंदीजनोंके समान स्तुति करी, जिससे उनपर प्रसन्न हो, शिवजीने बड़ा ऐश्वर्य दिया. पर उससे उनको बड़ा संकटभी हुआ " ॥ १६ ॥ नारदजीके इस तरह कहतेही वह असुर केदारक्षेत्रमें जा, शिवजीपर तप करने लगा, महादेवको प्रसन्न करनेके लिये अपने शरीरका मांस काट काट, महादेवके मुखरूप अग्निमें होम करने लगा ॥ १७ ॥ इस तरह करते करते सातदिन हो गये. पर महादेवके दर्शन नहीं हुए. तद वह वृकासुर खिन्न हो, तीर्थस्नानसे भीगे जिसके बाल हैं ऐसा अपना शिर अपने शस्त्रसे काटने लगा ॥ १८ ॥ उस समय परमदयालु महादेवजी शरीर धा-

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वंदिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि॥ शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चांगालमलं वृणीष्व मे यथाऽभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥

रण कर, अग्निके कुंडमेंसे अग्निके समान प्रगट हुए. और आपन जैसे कोई मरता हो उसे हाथ पकड़कर, मना करते हैं वैसे महादेवजीने उसे हाथ पकड़कर, मना किया. महादेवजीका स्पर्श होतेही उसका शरीर पीछा दुरुस्त हो गया ॥ १९ ॥ तद महादेवजीने उससे कहा कि– हे अंग बस ! बस !! वर मांग. जो तू मांगेगा वही मैं तुझे देऊं गा; क्योंकि–मैं मेरे शरणगतोंपर केवल जलके अभिषेकमात्रसे प्रसन्न हो जाता हूं, अहो ! तू अपने शरीरको वृथा पीड़ा देता है ॥ २० ॥ उस महापापीने लोगोंको जिससे बड़ा भय हो ऐसा वर मांगा कि– " मैं जिस जिसके शिरपर हाथ धरूं वह मर जाय " ॥ २१ ॥ महाराज ! यह वचन

१ रावणने कैलासपर्वत उठाया और बाणासुरके यहां आपको पहरा देना पड़ा.

उसके संबंधी छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥ यह भक्त, बंधुलोगोंके आग्रहसे धन उपार्जन करनेको फिर उद्योगभी करे, पर मेरे अनुग्रहसे
जब उसके उद्योग व्यर्थ हो जायं और उससे प्रबल वैराग्य उत्पन्न हो जाय, तब वह भक्त मेरे अनन्यभक्तोंके साथ मैत्री करता
है. तब मैं उसपर परमअनुग्रह करता हूं ॥ ९ ॥ मेरा परम अनुग्रह यही है कि- चैतन्यमात्र, सत्य अनंत व सूक्ष्म परब्रह्मकी
प्राप्ति होवे, इसतरह मेरा आराधन करना बहुत कठिन है; तासों लोग मुझे छोड़ अन्य देवतानका आराधन करते हैं ॥ १० ॥
और उससे तुरत प्रसन्न होनेवाले देवतानसे राज्यलक्ष्मी पाकर, उद्धत, मत्त व प्रमत्त हो, वे लोग प्रमादमें पड़कर, अपने वरदान

स यदावितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म
परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनंतकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त
आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरंत्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उ-
वाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्रसादोंऽग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥
॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥ १३ ॥
वृकोनामासुरः पुत्र शकुनेः पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥ स आह
देवं गिरिशमुपाधावाऽऽशु सिध्यसि ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥

देनेवालोंकोभी भूल जाते हैं. केवल इतनाही नहीं, प्रत्युत उसका अपमान करते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि- हे राजा!
ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों देव, शाप तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं. पर ब्रह्मा व महेश ये दोनों तुरत प्रसन्न हो जाते हैं.
और शापभी तुर्त दे देते हैं. पर विष्णु भगवान् न तो तुर्त प्रसन्न होते हैं. और न तुर्त शाप देते हैं ॥ १२ ॥ महादेवजी वृका-
सुरको वरदान दे, आप संकटमें पड़े, यह पुराना इतिहास इस विषयमें कहा जाता है ॥ १३ ॥ शकुनिके पुत्र दुर्बुद्धि वृकासुरने
मार्गमें नारदजीको देखकर, उनसे पूंछा कि-तीनों देवोंमेंसे तुर्त प्रसन्न होनेवाला देव कौन है ? ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा कि-
“ तू महादेवजीके शरण जा, क्योंकि वे थोड़ेही गुण अवगुणसे प्रसन्न और अप्रसन्न हो जाते हैं. इसतरह तेरा मनोरथ तुर्त सिद्ध

रुद्ध मिलता है. यानी शिवभक्तोंको धन और विष्णुभक्तको कुछ नहीं, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–ईश्वर जब मायारूप उपाधि धारण कर, गुणोंसे आवृत हो, रहते, हैं. तब वेही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रूप हो जाते हैं. वैकारिक, तैजस व तामस यह तीन प्रकारका अहंकार कि–जिसमेंसे ग्यारह इंद्रिय और पंच महाभूतरूप विकार उत्पन्न हुए हैं. उसके तीनों अंशोंमेंसे ब्रह्मामें रजोगुणका अंश अधिक है, विष्णुमें सत्त्वगुणका अंश अधिक है. और शिवमें तमोगुणका अंश अधिक है, सो जो मनुष्य जिस अधिक गुणवाले देवताका भजन करता है. उसे उस गुणसंबंधी विभूतियां प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस प्रकार विष्णुभक्तको सत्वगुणसंबंधी विभूतियां मिलती हैं. तौभी सत्वगुण शांतिरूप होनेसे अंतमें विष्णुभक्त निर्गुण

श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्रिलिंगो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कंचन ॥ उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥ शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजंत्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥

हो जाता है; क्योंकि हरि भगवान् सबके साक्षी और सर्वज्ञ हैं, तासों वे प्रकृतिसे पर पुरुष और निर्गुणस्वरूप हैं. अतएव उनका भक्त निर्गुण हो जाता है ॥ ५ ॥ तुम्हारे पितामह महाराज युधिष्ठिरने अपना अश्वमेधयज्ञ पूर्ण हुए पीछे भगवान्‌से धर्मसंबंधी विषय श्रवण करते यह विषय पूंछा, तद ॥ ६ ॥ प्रभु भगवान् कि–जो मनुष्योंके कल्याणार्थ यदुकुलमें प्रगट हुए हैं, उन्होंने श्रवण करनेकी वांछा करते युधिष्ठिरको प्रसन्न होकर, उत्तर दिया ॥ ७ ॥ श्रीभगवानने कहा कि–जिस मनुष्यके विषय त्याग करनेकी इच्छा हो, पर वासनाके प्राबल्यसे जो त्याग न कर सके और विषयोंका भोग करता क्लेश पाता होवे, उसपर अनुग्रह करनेके लिये मैं धीरे धीरे उसका सब धन हर लेता हूं, तद उसे निर्धन और अतिदुःखीके समान जानकर,

अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियोंकी प्रवृत्ति होती है ॥ ४९ ॥ अखंडस्वरूप स्थितिसे मायाका निराश करनहारे और भय मिटानेवाले, उन भगवानका निरंतर ध्यान करना चाहिये, कि– जो भगवान् अपने स्वरूपमें सोते हुए जीवोंके सर्व पुरुषार्थ सिद्ध करनेके निमित्त सृष्टि, स्थिति, संहारआदि करनेका विचार करते हैं और जो इस जगतके आदि, मध्य और अंतमें वर्तते हैं और जो प्रकृति व पुरुषकेभी उपादानकारण है और जिन्होंने इस जगतका आविर्भाव करके, जीवके साथ प्रवेश कर, जीवको भोग देनेके वास्ते जुदे जुदे शरीर बनाये हैं और जो जीवको भोग देते शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिकसे उपासना

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजंत्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान्हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

करनेवाला जीव जिन्हें प्राप्त होकर, जैसे सुषुप्तिमें सोते हुए शरीरको तज देता है वैसे देहादिकरूप अविद्याको तज देताहै ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ अठासीवें अध्यायमें विष्णुभक्त मोक्षको प्राप्त होता है और अन्यदेवताके भक्त ऐश्वर्य. यह कथा होगी ॥ १ ॥ राजा परीक्षित बोले कि–देव, असुर व मनुष्योंमेंसे जो लोग भोगसुखका तिरस्कार करनेवाले महादेवजीका भजन करते हैं; वे प्रायः धनवान् और भोगी होते हैं. और जो लक्ष्मीपति भगवानका भजन करते हैं वे ऐसे नहीं होते ॥ १ ॥ हम इस बातका कारण जानना चाहते हैं, शिव और विष्णु कि–जो निर्धन व धनवान्‌पनसे बिलकुल विरुद्ध स्वभाववाले हैं, उनके भक्तोंको फल बिलकुल वि-

१ जैसे सुषुप्तिवाले मनुष्यको दूसरे लोग शरीरवान् देखते हैं पर वह आप आपको शरीरवान नहीं देखता. तैसे जीवन्मुक्तकोभी दूसरे लोग तो शरीरवान् देखते हैं पर जीवन्मुक्त स्वयं आपको शरीरवान् नहीं देखता.

सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न, आकाशगामी व महात्मा सनकादिकोंने इस तरह सर्व श्रुतिया पुराण व उपनिषदोंका तात्पर्य प्रगट किया ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! तुमभी इस मनुष्योंकी वासनाको भस्म करनहारे ब्रह्मनिरूपणको श्रद्धासे मनमें धर कर, जहां इच्छा हो वहां विचरो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! इसप्रकार नारायण ऋषिके कहे ब्रह्मनिरूपणको श्रद्धासे ग्रहण कर, पूर्णकाम व नैष्ठिक ब्रह्मचारी नारदजीने उस उपदेशको हृदयमें धरकर, यह वचन कहा ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि-



इत्यशेषसमाम्नाय पुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३ ॥ त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयाऽऽत्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणाऽऽदिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयाऽऽत्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्त्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥ यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेपि मनश्चरेत् ॥ ४९ ॥

निर्मल कीर्तिवाले जो श्रीकृष्ण भगवान् सब जीवोंको मुक्ति देनेके वास्ते मनोहर अवतार धारण करते हैं, उनके स्वरूपभूत आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४६ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि- याप्रकार आदिमुनि नारायण और महात्मा उनके शिष्योंको प्रणाम कर, नारदजी वहांसे मेरे पिता वेदव्यासजी कि- जिनका वीर्य अरणीमें पड़ा तब मैं उत्पन्न हुआ, उनके आश्रममें आये ॥ ४७ ॥ वेदव्यासजीने सत्कार करके आसन दिया. उसपै बैठकर, नारदजीने, आपने जो नारायणके मुखसे सुना था, वह सब वेदव्यासजीसे कह, सुनाया ॥ ४८ ॥ महाराज ! तुमने जो प्रश्न किया वह सब मैंने तुमसे वर्णन किया, कि- जिसभांति

पुरुष आपसे प्रगटित अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप सुखदुःखके संबंधको कुछ नहीं समझता. और उस समय देहा-
हो वह पुरुष आपसे प्रगटित अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप
भिमानियोंके विषयके विधिनिषेधके वचनोंकोभी मनमें नहीं लाता. देहाभिमान मिट जानेसे कार्य वा अकार्यका संबंध नहीं रहता,
तासों पुरुष विधिनिषेधका अधिकारी नहीं रहता, हे सर्वैश्वर्य! प्रतियुगमें प्रगट होते सब-संप्रदायोंके अनुयायी जो मनुष्य प्रतिदि-
वस श्रवण करके, चित्तमें आपको धारण करते हैं, उन्हेंभी आप मोक्षगति देते हो. यानी जब उनकेभी विधिनिषेधकी बाधा नहीं
रहती तद तत्वज्ञानियोंके तौ कर्मके अधिकारकी शंकाही कहांसे ? परंतु जो योगका ढोंग बना कर, विषयलंपट हैं, उनके क्या-
तौ इस लोकमें और क्या परलोकमें सदा दुःखही है ॥ ४० ॥ २७ ॥ आप कि-जिनके स्वरूपमें, आकाशमें रजके कणके समा-
न कालचक्रसे उत्तरोत्तर दश दश गुणे आवरणयुक्त ब्रह्मांडोंके सकलसमूह साथही फिरा करते हैं. उनके अंतको ब्रह्मादिकभी
नहीं पाये, क्योंकि जो कोई वस्तु अंतवाली है वे आप नहीं हो, ब्रह्मादिक न पाये, इतनाही नहीं पर अनंततासे आपभी आ-

खुपतय एव ते न ययुरंतमनंततया त्वमपि यदंतरांऽडनिचया ननु सावरणाः ॥ ख इव रजांसि वां-
ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इ-
त्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्याऽऽत्मानुशासनम् ॥ सनंदनमथाऽऽनर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ ४२ ॥

पके अंतको नहीं जानते, इससे कोई आपका सर्वज्ञत्व व सर्वशक्तिमत्व नहीं जाता, जैसे शशके सींगके न जाननेसे सर्वज्ञत्व नहीं
जाता और शशशृंग न मिलनेसे सर्वशक्तिमत्व नहीं जाता. कारण यह कि- शशके सींग नहीं होता, तैसे आपका अंत कि-जो
बिलकुल हैही नहीं, उसे न जाननेसे या न पानेसे आपके सर्वज्ञत्व वा सर्वशक्तिमत्वमें किसी प्रकारका बाध नहीं आता. इस
प्रकार होनेसे श्रुतियां तात्पर्यवृत्तिसे आपकाही प्रतिपादन करतीं हैं पर साक्षात् नहीं कह सक्तीं, सगुण स्वरूपके गुण अनंत हैं
और निर्गुण स्वरूपको वाणी नहीं पहुंच सक्ती, तासों आपका संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं हो सकता, स्थूल नहीं अणु
नहीं, इत्यादिक प्रकारसे अनात्म पदार्थका निषेध कर तद्द्वारा अंतमें श्रुतियां आपकाही प्रतिपादन करतीं हैं; क्योंकि अवधि
विना निषेध संभवे नहीं, तासों निषेधके अवधिरूप जो आप हो, उन्हींमें श्रुतियोंका फलितार्थ निकसे है ॥ ४१ ॥ २८ ॥ नारा-
यणने कहा कि-आत्मस्वरूप जानकर, जीवन्मुक्त सनकादिकोंने याप्रकार ब्रह्मनिरूपण सुनकर, सनंदनकी पूजा की ॥ ४२ ॥

रहता है, निर्विकार व अदृश्य है. तासों असत्य नहीं ॥ ३७ ॥ २४ ॥ शंका–जब द्वैत यह कुछ चीजही नहीं, तब उस मिथ्या द्वैतसे चैतन्यके संबंधका लेशभी नहीं यह सिद्ध हुआ और जब ऐसा है तौ फिर जीवका क्या अपराध है ? कि–जिससे जीव जन्म-मरण पाया करता है और ईश्वरका क्या पुण्य है ? कि–जिससे नित्यमुक्त है. तथा कर्मकांड किसके विषयमें हैं ? समाधान-जीव मायाके वश हो, अविद्यासे आलिंगन करता है, उससे देह व इंद्रियां आदिको अपना स्वरूप मानता है, उसीसे देह और इंद्रियादिकके धर्मोंसे युक्त होता है, उसीसे आनंदादिक गुणोंका आवरण होनेपर जन्म मरण पाया करता है, आप जो नित्य प्राप्तैश्वर्य और अपार ऐश्वर्यवान् व अष्टैश्वर्ययुक्त परम ऐश्वर्यमें विराजमान हो, सो आप तौ सर्पजैसे अपनेमें रही कांचलीकोभी

स यदजया त्वजामनुशयीतगुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥ यदि न स मुद्धरंति यत-यो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकंठमणिः ॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणवि-गुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गग-तिर्मनुजैः ॥ ४० ॥

ठीक नहीं समझता तैसे अपनेमें रही मायाकोभी ठीक नहीं मानते; तासों नित्यमुक्त हो. अतएव सकल कर्मकांड अविद्यायुक्त जीवके विषयमें हैं ॥ ३८ ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! जो संन्यासीलोग हृदयगत कामकी वासनाका उन्मूलन नहीं करते हैं, उन दुष्ट संन्यासियोंको हृदयमें विराजनेपरभी आप नहीं मिलते; जैसे गलेके कंठेकी स्मृति जाती रहे, तद चाहो वह कंठमें पड़ा रहै परंतु मिलता नहीं- ऐसे दुष्ट संन्यासियोंको आपकी प्राप्ति नहीं होती इतनाही नहीं, किंतु उन उदरंभरियोंको इसलोकमें तथा परलोकमें सदा दुःखही रहता है उनके लोकोंको प्रसन्न रखना और धन इकट्ठा करना इत्यादिक क्लेश नहीं मिटते और भोगके वैभव लोगमें प्रगट हो जानेका भयभी रहता है. तासों इस लोकमें दुःख है. आपके स्वरूपकी प्राप्ति न होनेसे आश्रमधर्म कि–जिनका आचरण करना आवश्यक है उसका उल्लंघन होनेसे नरकमें पड़ना होता है, यह परलोकमेंभी दुःख है ॥ ३९ ॥ २६ ॥ जिसे आपका ज्ञान हुआ

"यहां श्रमसे उपार्जन किया पदार्थ क्षीण हो जाता है तैसे परलोकमें पुण्यसे उपार्जन कियाहुआ सुखभी क्षीण हो जाता है" इस तरह स्वयं वेदही पीछेसे किसतरह कहे ? कर्मश्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि दबकर, मंद पड़ गयी है उनको वेदवाणी गौणी और लक्षणा-आदि वृत्तियोंमें फँसाकर, भ्रमयुक्त कर देती है, तासों वे वेदवाक्योंके यथार्थ तात्पर्यको न समझकर, कर्मफलको अविनाशी मान बैठते हैं. वेदका तात्पर्य यथार्थमें शुद्ध अद्वैत और उसके साधन अंतःकरणशुद्धि-आदि पर हैं उसे नहीं समझते तात्पर्य यह है कि-इस सब जगत्का ईश्वरहीसे अविर्भाव और तिरोभाव होय है, जैसे मकड़ी अपने मुखमेंसे जाला उत्पन्न करके उसमें क्रीड़ा कर, उसका तिरोभाव करती है. वैसे ईश्वरभी अपने स्वरूपसेही इस जगतका आर्विभाव कर, उसमें क्रीड़ा करके उसको अपने स्वरूपमें तिरोभाव कर लेता है. तासों जो द्वैत भासे है सो असत्य है वस्तुतः शुद्ध अद्वैतही सत्य है ॥ ३६ ॥ ॥ २३ ॥ यह द्वैत सृष्टिके पहले नहीं था. और प्रलयके अनंतरभी नहीं रहेगा. अतएव बीचमेंभी आप जो शुद्ध अद्वैत रूपहो

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमी-
यते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥ ३७ ॥

उनमें असत्यरूपही प्रतीत होता है यह निश्चयहै. इसीसे मिट्टी सुवर्ण लोहआदि पदार्थोंके घट, कुंडल व कुदाले आदि भेदोंके प्रकारके सदृश यह द्वैत कहलाता है, जैसे घट, कुंडल व कुदालेआदि बने हुए आकार नाममात्रही हैं और उनके कारणरूप मिट्टी, सुवर्ण और लोहआदिही सत्य हैं. तैसे आकाशादिक कार्य नाममात्रही हैं और उनका कारण परब्रह्मही सत्य है ऐसे हम स्पष्ट कहतीं हैं. इस प्रकार इस द्वैतकी सत्यतामें कुछभी प्रमाण नहीं. और मिथ्यात्वविषे प्रमाण हैं. तासों व्यर्थ और केवल मनोमात्रविलसित इस द्वैतको जो सत्य जानते हैं वे मूर्ख हैं. इस विषयमें ऐसा अनुमान करना चाहिये कि-द्वैत सत्य नहीं, कारण यह कि-वह आदि और अंतमें नहीं रहता, विकारी है. और दृश्य है. जो आदि-अंतमें न होवे विकारी व दृश्य होवे वह सत्य नहीं होता, जैसे सीपमें माना हुआ रूप्य न तो आदिमें है और न अंतमें है और विकारी व दृश्य है, तासों सत्य नहीं. और जो वस्तु-आदि व अंतमें हो व निर्विकार और अदृश्य हो वह असत्य नहीं होती जैसे कि-आत्मा द्वैतके आदि व अंतमें

१ यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते ॥ एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ॥

क्योंकि इससे कार्य होवे हैं, जो सत्य न होवे, वह अर्थ क्रियाकारी होवे नहीं. जैसे सीपमें प्रतिभात रूप्य सत्य नहीं, तौ वह अर्थक्रियाकारीभी नहीं. **समाधान**–कार्य यानी व्यवहार तौ भ्रमसे सत्य माने हुए पदार्थोंसेभी होते हैं खोटे रूपेसेभी कभी कभी काम चलता देखनेमें आता है. तासों सत्यसेही व्यवहार होवे यह बात नियत नहीं रहती. व्यवहारके वास्ते हमभी द्वैतको कल्पित मानते हैं. **शंका**–जो वस्तु एक जगह सत्य होवे उसका दूसरी जगह आरोप होवे इसे भ्रम कहते हैं, जैसे सर्प एक ठौर सत्य है उसका रज्जुमें जो आरोप होवे है वह भ्रम है. इसतरह ब्रह्ममें द्वैतका भ्रम हुआ हो तौ एक जगह द्वैत सत्य होनाही चाहिये. खपुष्प अतिअसत् है तौ उसका दूसरेमें आरोप नहीं होता, तैसे द्वैत अतिअसत् हो तो उसका आरोप ब्रह्ममें न होना चाहिये. और आरोप हुआ है ऐसे तुमभी मानते हो तौ, द्वैत अतिअसत् नहीं. किंतु एक जगह सत्य है ऐसा सिद्ध हुआ. तासों तुम्हारा अद्वैत सिद्ध नहीं होता. **समाधान**–भ्रम संस्कारसे उत्पन्न होता है. और उस भ्रममें संस्कारसिद्धिके वास्ते वस्तुकी मात्र पूर्वप्रतीतिकी आवश्यकता है किंतु उसमें उस वस्तुकी सत्य होनेकी कोई आवश्यकता नहीं. जिस पुरुषने आमका वृक्ष न देखा हो केवल बाजीगरका बनाया झूंठा आमका वृक्ष देखा हो तौ उसेभी अशोकके वृक्षमें आमकी भ्रांति होती है. तासों पूर्वदृष्ट वस्तुकी सत्यता होनेकी कोई आवश्यकता नहीं, अनादिकालसे मिथ्या द्वैतकी प्रतीति चली आती है यह तौ हमभी मानते हैं. तासों अनादितासे पहले पहले भ्रमसे दृष्ट द्वैतका उत्तरोत्तर आरोप होना संभवित है, द्वैतकी प्रतीति होवे है सो वस्तुतः सत्य नहीं. तासों द्वैतकी सत्ता ब्रह्मसे व्यतिरिक्त नहीं इससे अद्वैतही सिद्ध होवे है. और जो काम काजका व्यवहार होवे है सो तौ अंधपरंपराकी रीतिसेभी सिद्ध होवे है. तासों द्वैतकी सत्यताविषे जो अर्थक्रियाकारी हेतु कहा है, सो निष्फल है. **शंका**–"चातुर्मास्य नाम यज्ञ जो करें उनको अक्षय पुण्य होवे" इत्यादिक अर्थवाले वाक्योंसे वेद, कर्मफलके सत्यत्वका प्रतिपादन करता है. तासों द्वैत सत्यही है ऐसा प्रतीत होता है. **समाधान**–कर्मफल नित्य हैं ऐसा वेदका अभिप्राय नहीं है, किंतु कर्मफलकी स्तुतिके वास्ते अक्षय, इत्यादिक पद धरे हैं जो स्वतंत्र वाक्य नहीं हैं किंतु विधिवाक्योंके अंतर्गत अर्थवाद वाक्य हैं उनकी ऐसीही व्यवस्था होती हैं. कर्मफल नित्य हैं ऐसा वेदका अभिप्राय हो तौ "जैसे



---

१ अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति ॥

विचरते हैं ऐसे हमने कहा है. जो द्वैत सत्य हो, तौ कादचित् उपनिषद् यजमानकी स्तुति करते हैं इसतरह कहसकें, परंतु द्वै-
तकी तो सत्यताही संभवे नहीं, तासों यह कहना संभवे नहीं. सो शंकाके समाधानद्वारा निश्चय करना. जैसे-शंका-यह द्वैत
सत्य है, कारण यह कि-सत्य वस्तु ( ब्रह्म ) मेंसे पैदा हुआ है; क्योंकि जो वस्तु जिससे प्रगट होती है वह तद्रूपही देखनेमें
आती है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुंडलादिक सुवर्णरूपही हैं. समाधान-इसतरह तुम द्वैतका सत्यसे अभेद सिद्ध करना चा-
हते हो, परंतु उसके सिद्ध करनेमें जो तुमने कारण बतलाया, वह तो अभेदसे बिलकुल विरुद्ध पड़ता है; क्योंकि सत्यमेंसे उ-
त्पन्न इतना कहतेही सत्यसे जुदा हुआ यह अर्थ प्रतीत होता है और सत्यसे जो जुदा हुआ वह असत्यही होगा. शंका- हम
अभेद सिद्ध करना नहीं चाहते किंतु भेदका निषेध करना चाहते हैं सो इस रीतिसे कि-द्वैत सत्यसे भिन्न नहीं है; कारण यह
कि-सत्यसे हुआ है, जो जिससे हुआ हो वह उससे भिन्न नहीं होता, जैसे सुवर्णसे हुआ कुंडल सुवर्णसे भिन्न नहीं, इसतरह
भेदका निषेध करनेसे अभेदही सिद्ध होय है. समाधान- जो जिससे उत्पन्न होता है वह उससे भिन्न नहीं होता यह बात नि-
यत नहीं, क्योंकि पितासे उत्पन्न पुत्र पितासे भिन्न होय है और मुद्गरसे हुआ घटका विध्वंस मुद्गरसे भिन्न होता है.
शंका- जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती यह बात नियत है, देखो ! कुंडल सुवर्ण-
रूप उपादानकारणसे हुआ है तासों सुवर्णसे भिन्न नहीं पिता और मुद्गर ये पुत्र और घटध्वंसके उपादान कारण नहीं हैं किंतु निमित्त
कारण हैं, तासों हमारे कहनेमें कुछभी बाध नहीं आता. समाधान-जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे
भिन्न नहीं होती यहभी नियत नहीं क्योंकि रज्जुरूप उपादानसे हुआ जो सर्प वह रज्जुसे भिन्नही होता है. रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या
होता है, जो सर्प सत्य हो तौ कुंडलका जैसे बाध नहीं होता वैसे सर्पकाभी बाध न होना चाहिये. शंका-रज्जुमें हुए सर्पमें केवल
रज्जुही उपादान कारण नहीं है किंतु अज्ञानभी उसके साथ उपादानकारण है सो इस तरहके उपादानकारणसे हुई वस्तुका मिथ्यात्व
बन सके पर जो केवल सत्यरूप उपादानसे उत्पन्न हो उसका मिथ्यात्व संभवे नहीं; तासों द्वैतका मिथ्यात्व संभवे नहीं.
समाधान-द्वैतभी सत्य जो ब्रह्म और उसके साथ रहा हुआ जो अज्ञानरूप उपादानकारण तिससे हुआ है, तासों रज्जु सर्पके
समान होनेसे सत्य नहीं ठहरता. शंका- तौ हम दूसरे प्रकारके अनुमानसे द्वैतको सत्य सिद्ध करते हैं, यह द्वैत सत्य है;

त्वादानर्थक्यमतदार्थाना तस्मादनित्यमुच्यते " इस पूर्वमीमांसाके सूत्रमें ऐसी शंका की है कि-सब वेदका अभिप्राय कर्म करानेसे है. यह सिद्धांत मानाजाय तो वेदके कितनेएक वाक्योंमें कर्म करनेकी बात नहीं है सो उन वाक्योंको व्यर्थ मानना पड़ेगा. अतएव वेदके सकल वाक्य कर्म करनेके वास्तेही हैं यह सिद्धांत नहीं रहता. फिर इस शंकाका समाधान किया है कि- " तद्भूतानां क्रियार्थेन समन्वयोर्थस्य तन्निमित्तत्वात् " जिन वाक्योंमें कर्म करानेका अर्थ नहीं उन वाक्योंको कर्म करानेवाले वाक्योंके साथ जोड़देना चाहिये. कारण यह कि- अंतर्गत वाक्य जो होते हैं वे मुख्य वाक्यार्थके वास्तेही होते हैं. जैसे " वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता " वायु बड़े बेगवाली देवता है, इस वाक्यमें कर्म करानेकी बात नहीं है, परंतु उस वाक्यको " वायव्यं श्वेतमालभेत " वायुदेवके वास्ते श्वेत पशू मारना इस वाक्यके साथ जोड़देना चाहिये अर्थात् इस कर्म करानेके वाक्यमें जो वायुदेव लिखा है, उसीका स्वरूपादिक समझानेके वास्ते पहला वाक्य है ऐसे समझना चाहिये इस तरह सकल वेदवाक्य कर्मके प्रतिपादक होय हैं. इस प्रकार उपनिषदोंके वाक्यभी यजमानको ईश्वर ठहरा कर, उसकी प्रशंसा करनेके लियेही हैं. परंतु निर्विशेष ब्रह्मप्रतिपादनके लिये नहीं ऐसे मानना योग्य है. मीमांसासूत्रके तंत्रवार्तिककारनेभी कहा है कि- " एतेन क्रत्वर्थकर्तृप्रतिपादनेनोपनिषदां नैराकांक्ष्यं व्याख्यातम् " यज्ञका अंगभूत जो यजमान है उसकी स्तुति करनेसे, उपनिषद सार्थक होय हैं, अर्थात् कर्मपर होय हैं, इस तरह मीमांसक लोग कहते हैं-पर यह यथार्थ नहीं; क्योंकि ' ब्रह्म[1] एक और अद्वितीय है ' ' ब्रह्म[2] विज्ञान, और आनंदमय है ' ' ब्रह्म[3] चक्षुरहित व श्रोत्ररहित है ' इत्यादिक अर्थवाले उपनिषदोंके वाक्य यजमानसे विपरीत स्वरूपवाले आत्माका प्रतिपादन करते हैं; क्योंकि यजमान कभी एक, अद्वितीय, विज्ञान और आनंदरूप, चक्षुरहित और श्रोत्ररहित होवे नहीं, ऐसा अद्वितीय परमानंदरूप जो आत्मा है, वह यज्ञका अंगरूप संभवे नहीं. वस्तुतः तंत्रवार्तिककारकेभी यह बात संमत नहीं है, क्योंकि " सर्वत्रैव हि विज्ञानं संस्कारत्वेन गम्यते ॥ परांगं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधार्यताम् " आत्मज्ञानविना अन्य सर्व स्थलोंमें जो कुछ ज्ञान है वह वासनारूप है. और दूसरेका अंगरूप है. इस तरह स्वयं वार्तिककार लिखते हैं. इस तरहके मननके वास्तेही मुनिलोग तीर्थादिकमें

१ एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥ २ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥ ३ अचक्षुरश्रोत्रमिति ॥

जो इंद्रियां व प्राण वश करनेवालोंसेभी जीतनेमें नहीं आता, उसे जो पुरुष गुरुचरणोंके आश्रय लि-
दुष्ट मनरूप घोड़ा कि- येविना निग्रह करना चाहते हैं, वे अनेक विघ्नोंसे व्याकुल हो, उपायोंमे खेद पाते इस संसाररूप समुद्रमेंही भूले रहते हैं. सत्य
है, जो व्यापारी कनहारको न रक्खें, उन्हें अवश्य समुद्रमें रहना पड़ता है ॥ ३३ ॥ २० ॥ जो पुरुष आपका सेवन करते हैं.
उनके सर्व सुखके धाम आत्मरूप आपके विराजते, स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, घर, प्राण व रथ कि-जो मनुष्योंके अपने आ-
त्माकी अपेक्षा अतितुच्छ हैं. उनसे क्या प्रयोजन है, ? ऐसे सच्चे परमार्थरूप सुखको न जानते अतएव स्त्रीके साथ रतिसुखके अर्थ मिथुन
हो, प्रवृत्त होते पुरुषोंके, स्वयं नाशवान और निःसार इस संसारमें आपके सिवाय दूसरा कौन पदार्थ है ? जो आनंद देनेवाले

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजा-
नतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यती-
र्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदांबुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आ-
त्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥ सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्क-
हतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ॥ व्यवहृतये विकल्प इषितोऽधपरंपरया भ्रमयति
भारति त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

हों, कोईभी नहीं. तासों आपकी सेवा करनीही उचित है ॥ ३४ ॥ २१ ॥ निरहंकार व हृदयमें आपके चरणारविंदकाही ध्यान क-
रनेवाले मुनिलोग, कि-जिनके चरणोंका जल स्वयं पापका नाश करनेवाला है. तौभी पृथ्वीमें आपका भजनरूप बड़ा पुण्य
करनेवाले महात्मा लोगोंके आश्रमोंका और अतिपवित्र तीर्थ व क्षेत्रोंका सेवन करते हैं. पुरुषके विवेकादिकका नाश करनेवाले
घरोंका सेवन नहीं करते. जो गुरुके उपदेशसे तत्त्वको जान गये हैं. और जिन्हें सारासारका विवेक होगया है, वे सबमें वैराग्य
प्राप्त हो, महात्मा लोगोंकी संगतिसे उसी तत्त्वको भलीभांति धारण करनेको महात्मा लोगोंके आश्रमोंका, तीर्थोंका और क्षे-
त्रोंका सेवन करते हैं, क्योंकि आप जो नित्य सुखरूप आत्मा हो, उनमें एक बारभी जिस पुरुषका मन लगगया है, जब वहभी
घर-आदिमें आसक्त नहीं होता, तब ऐसे उत्तम पुरुष तौ कैसे आसक्त होवें ? ॥ ३५ ॥ २२ ॥ “ आम्नायस्य क्रियार्थ-

और प्रकृति व पुरुष दोनों जीवरूप, होतेहों तौ यह पक्षभी संभवे नहीं, क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनों अजन्मा हैं, तासों उनका जीवरूपसे जन्म लेना संभवे नहीं, तासों इन दोनोंके परस्पर अध्याससे प्राणादिक उपाधिवाले जीव प्रगट होते हैं जैसे इकले जलसे वा वायुसे बौंड़रले नहीं होते; किंतु दोनोंके मिलनेसे होते हैं, तैसे प्रकृति और पुरुषके परस्पर अध्याससे जीव उत्पन्न होय हैं; याप्रकार उपाधिके जन्महीसे जीवका जन्म और उपाधिके लयसेही जीवका परमात्मामें लय होय है यह हमारा सिद्धांत है, तत्रापि सुषुप्ति और प्रलयमें जो लय होता है; वह शहदमें सर्व रसोंके लय होनेके समान है; क्योंकि जैसे शहदमें सब पुष्परस विशेषतासे नहीं दीख पड़ते, पर सामान्यरूपसे दीख पड़ते हैं, वैसे सुषुप्ति और प्रलयमें आपमें लीन हुए जीव

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥ ३२ ॥
विजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य इह यतंति यं तु मतिलोलमुपायखिदः ॥
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाजसंत्यक्तकर्णधरा जलधौ ॥ ३३ ॥

विशेषरूपसे नहीं रहते तौभी उनका कारण शरीर रहनेसे सामान्यरूपसे रहते हैं. और मुक्तिमें तौ आपके निरुपाधिक स्वरूपमें जो लय होय है, सो समुद्रमें नदियोंके लय होनेके समान है; क्योंकि समुद्रमें नदियोंका लय होते जैसे वे नामरूपसे मुक्त हो जाय हैं, वैसे मुक्तिदशामें 'आपमें' लीन होते, कारणशरीरकाभी लय होनेसे जीव नामरूपसे अत्यंत रहित हो जाय हैं ॥ ३१ ॥ १८ ॥ इन संसारी जीवोंमें आपकी मायासे वारंवार जन्ममरणरूप भ्रमण हो रहा है, इस बातको जानकर, सुबुद्धि लोग, संसारसे पार करनेवाले आपका निरंतर ध्यान करते हैं अतएव आपके भक्त लोगोंको भय कैसे हो सक्ती है ? कभी नहीं होता, क्योंकि जो आपका शरण नहीं लेते उन्हींको आपकी भ्रुकुटिरूप कालका वारंवार जन्म- मरणादिकरूप भय रहता है ॥ ३२ ॥ १९ ॥ हे अज ! ऐसा सेवन मनके निग्रहसे होता है. और मनोनिग्रह गुरुको[2] शरण लेनेसे होता है. अत्यंत चंचल

१ तथाच श्रुतिः । अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजा जनयंतीं सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः ॥

२ प्राकृतैः संस्कृतैश्चैव गद्यपद्याक्षरैस्तथा ॥ देशभाषादिभिः शिष्यं बोधयेत्स गुरुः स्मृतः ॥ १ ॥ अर्थ-प्राकृत, संकृत तथा गद्यपद्याक्षर और देशभाषादिकोंसे जो शिष्यको बोध देवे सो गुरु कहा है ॥ १ ॥

विरुद्ध है, क्योंकि यदि वास्तवमें जीव अनंत, ध्रुव व उसी रूपसे व्यापक हो, तौ नित्य व व्यापकतासे वे आपके बराबरही
हुए, जब बराबर हो गये, तौ फिर आपसे उनका नियमन होनाभी संभवे नहीं. और जो ऐसा न मानेंगे तौ, अवश्य आपसे
उनका नियमन संभवे है, सोही कहते हैं–जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप हो, वह पदार्थ उस वस्तुका अवश्य नि-
यामक होगा; क्योंकि अनुस्यूत रहा हुआ वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करता. और आपके स्वरूपविषयमें
'जो' वा 'वह' शब्दके सिवाय कुछभी कहा जाय ऐसे नहीं; क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं इस तरह जो कहते हैं वे बिलकुल
ब्रह्मस्वरूपको नहीं जानते ! क्योंकि वह किसीका विषय नहीं है. और जो जाननेमें आता है वह दुष्ट अर्थात् अनात्मपदार्थ है.
तात्पर्य यह है कि–यत् तत् शब्दसे सूचित, अतर्क्य, अनिर्वचनीय, सबमें अनुस्यूत और सबमें समभाव परमेश्वर सबका नि-
यंता है. और वही सबका उपादान कारण है. तासों जीवमें जो नित्यत्व व व्यापकत्व धर्म प्रतीत होवे हैं, सो जीवके नहीं;

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवंत्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ॥
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधु निलिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

किंतु ईश्वरकेही है क्योंकि कारणका धर्म जो कार्यमें प्रतीत होवे सो कारणकाही कहा जाय, कार्यका नहीं. और कार्यदशामेंही
अनंतत्व प्रतीति होवे है; क्योंकि कारणदशामें तौ कार्य व कारण एकरूपही होवें हैं ॥ ३० ॥ १७ ॥ परमात्मासे जीव प्रगट
हुए हैं. अतएव परमात्मा नियंता और जीव नियम्य हैं, ऐसे जो कहा, उसमें कितने एक लोग शंका करते हैं कि– " जीव
अनित्य होनेसे प्रतिदिन किये हुए जीवोंका नाश और नहीं कियेहुए जीवोंकी उत्पत्ति माननी होगी. और इस तरह माननेसे
मोक्ष अर्थात् जीवके स्वरूपकी हानिही हुई, ऐसा सिद्ध होगा और यह सिद्धांतसे विरुद्ध है क्योंकि सिद्धांतमें तौ स्वयंप्रकाश
अनंतमय आत्माके अविद्याकृत अनर्थका मिटना इसीका नाम मोक्ष कहा है " ऐसी शंका करना घटे नहीं; क्योंकि वास्तवमें
जीव जनमते नहीं; किंतु उपाधिक जन्महीसे जीवोंका जन्म है. वस्तुतः जीवोंका जन्म लेनाही संभवे नहीं; क्योंकि प्रकृति जी-
वरूप होती हो तौ जीव जड़ होने चाहिये, जो परमात्मा जीवरूपसे प्रगट होता हो तौ परमात्मामें विकारिताका प्रसंग आवेगा

१ तथाचश्रुतिः । यस्यामतं तस्य मतं यस्य न वेद सः ॥ अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतामिति ॥

आप स्वयं इंद्रियरहित होतेभी सर्व प्राणियोंकी इंद्रियोंकी शक्तियोंके प्रवर्तक हो. आपकी ज्ञानशक्ति स्वतःसिद्ध होनेसे आपके इंद्रियोंकी अपेक्षा नहीं. जैसे किंकरलोग अपनी स्त्रियोंके साथ स्वामीकी सेवा करते हैं, तैसे इंद्रादिक देवता और उनके पूज्य ब्रह्मादिकभी अपनी अविद्याके साथ आपकी सेवा करते हैं. और जैसे खंडपति राजालोग अपनी प्रजाके दियेहुए कर लेते चक्रवर्ती राजाको कर देते हैं, तैसे देवतालोग मनुष्योंके दिये बलिदान भोगते आपने जो जो काम उनके सिपुर्द किये हैं वे वे काम करनेरूप कर आपसे डरते आपके अर्पण करते हैं. कहा है कालमूर्ति जो आप तिनके भयसे[1] वायु वहता है, सूर्य उदय होता है, अग्नि जलाता है, इंद्र बरसता है और मृत्यु समयपर सब ठौर पहुंचता है ॥ २८ ॥ ॥ १५ ॥ हे नित्यमुक्त ! मायासे

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहंति समदंत्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहरउदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ नहि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥ अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियंतृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥

अत्यंत दूर आप जब मायाके साथ किंचित् सन्मुख देखनेरूप विहार करते हो, तब आपकी दृष्टिहीसे प्रगट हुए कर्म वा कर्मवाले लिंगशरीरोंसे युक्त स्थावर जंगम जातिवाले जीव पैदा होते हैं. यदि उच्च, नीच प्रकारकी विषम सृष्टि होनेमें उन उन जीवोंके प्राचीन कर्मोंको निमित्त न मानें, तौ मन वाणीसे अगोचर, शून्यभावसे बराबरी करनेवाले, आकाशके समान सबमें समभाव और परम दयालु आपमेंसे विषम सृष्टिका होना संभवे नहीं; क्योंकि आपके कोई अपना या पराया नहीं है आप इंद्रियोंके प्रवर्तक हो. और जीव इंद्रियोंके परतंत्र हैं तासों जैसे आपका भजन करना योग्य है. वैसेही जीव आपसे उत्पन्न हुए हैं तासोंभी आपका भजन करना योग्य है ॥ २९ ॥ १६ ॥ हे ध्रुव ! जीव अनंत, सर्व, व्यापक व नित्य है, यह जो पक्ष है सो हमसे



१ भीषाऽस्माद्वातः पवते ॥ भीषोदेति सूर्यः ॥ भीषाऽस्मादग्निश्चेंद्रश्च ॥ मृत्युर्धावति पंचम इति ॥

तासों आपके स्वरूपमें अज्ञानका होना संभवे नहीं ॥ २५ ॥ १२ ॥ यदि असत् उत्पन्न नहीं होता और आत्मा त्रिगुणमय नहीं
है, तो यह सिद्ध हुआ कि– यह सब प्रपंच और पुरुष बिलकुल आपसे भिन्न नहीं हैं. फिर उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति
होनी किस तरह संभवे ? तब कहते हैं कि– मनमात्रसे प्रतीत होता यह प्रपंच असत् होतेभी इसके अधिष्ठानरूप आपकी स-
तासे सतसा प्रतीत होय है, यह बात केवल पांचभौतिक पदार्थहीमें नहीं है. किंतु जीवकीभी भिन्न सत्ता प्रतीति होय है, सो
केवल मनोमात्र विलसित है. आत्मज्ञानीलोग इस भोक्ता और भोग्यरूप सब जगत्को अधिष्ठानरूप आत्माकी सत्तासेही सत्ता-
वाला मानते हैं. पर आत्मासे भिन्न सत्तावाला नहीं मानते; क्योंकि सुवर्णके विकाररूप कुंडलादिक पदार्थ सुवर्णरूपही हैं. अ-
तएव सुवर्णकी इच्छावाले लोग उन पदार्थोंको नहीं छोड़ते; क्योंकि उनको वे सुवर्णरूपतासे जानते हैं. इसीसे यह निश्चय

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः ॥ नहि वि-
कृतिं त्यजंति कनकस्य तदाऽऽत्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥ तव परि
ये चरंत्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाक्रमंत्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ॥ परिवयसे पशूनिव
गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥

किया गया है कि–आपका किया यह जगत् और उसमें प्रवेश किया पुरुष यानी व्यष्टिरूप जीवभी आपकाही स्वरूप है, आपसे
भिन्न सत्तावाला नहीं ॥ २६ ॥ १३ ॥ “ ब्रह्म[1], सत्य, ज्ञान, व अनंत है. यहां[2] नाना कुछभी नहीं है, जो भेददृष्टि[3] राखे वह
जन्म–मरण पाता है ” इत्यादिक अभिप्रायवाली श्रुतियां ऐसे परमात्माका प्रतिपादन करती हैं, सो परमात्माको पहँचानना स-
हज है. फिर भक्तिका कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे नहीं जानना चाहिये; क्योंकि आपको सकल पदार्थोंमें रहे जानकर, जो पुरुष आपका
सेवन करते हैं वेही मृत्युका तिरस्कार कर, मृत्युके सिरपर पांव धर, मुक्ति पाते हैं. आपकी भक्तिसे विमुख लोक विद्वान् हों, तौभी
उन्हे आप अपनी वेदरूप वाणीसे पशुओंके समान बांध लेते हो. और जो आपमें प्रेम रखते हैं वे पुरुष अवश्य अपनेको और
दूसरोंकोभी पवित्र करते हैं, पर विमुखलोग तो अपनेकोभी पवित्र नहीं कर सकते, तब दूसरोंकी तो बात ही कौन॥ २७॥१४॥

१ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ॥ २ नेह नानाऽस्ति किंचन ॥ ३ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

है वह पीछे प्रगट होनेवालेका सब वृत्तांत जानता है. पर पीछे प्रगट हुआ पहले पुरुषका वृत्तांत नहीं जान सक्ता. जैसे पिता पुत्रके जन्मादिकका वृत्तांत जानता है. पर पुत्र पिताके जन्मादिकका वृत्तांत नहीं जान सक्ता, तैसे यहांभी प्रथम तौ आपसे ब्रह्माजी प्रगट हुए हैं और उनसे अध्यात्मिक व आधिदैविकरूप देवता प्रगट हुए हैं, उनसे पीछे सब जीव जंतु प्रगट हुए हैं. तासों इन सबका वृत्तांत आप तौ पूर्व होनेसे जानते हो. पर ये सब आपसे अर्वाचीन हैं तासों आपका वृत्तांत नहीं जान सक्ते और जब आप संहार करके पौढ़ते हो तब न तौ आकाशादिक स्थूल पदार्थ न महत्तत्त्वादिक सूक्ष्म पदार्थ, न इन दोनोंसे उत्पन्न शरीर, न उसका निमित्तभूत कालका वैषम्य,न इंद्रियां, न प्राणादिक और न उनका बोध करानेवाला शास्त्र, यानी कुछभी नहीं रहता है, तौ फिर जीव आपके स्वरूपको कैसे जान सकें ? तात्पर्य यह है कि– पीछेसे उत्पन्न भये हुए और देहादिक उपाधियोंसे बहुत कुछ अंतर जिनके पड़गया है ऐसे, कालवशसे मलिनसत्त्व, जीवोंके प्रलयकालसंबंधी अंतर पड़नेके कारण किसी

जनिमसतः सतो मृतिमुताऽऽत्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरंत्युपदिशंति त आरुपितैः ॥
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥

साधनके न रहनेसे आपके स्वरूपज्ञानका सामर्थ्य संभवे नहीं. तासों केवल आपका शरण ले, श्रवण–कीर्तनादिकरूप भक्ति करनी यही सुगम उपाय है ॥ २४ ॥ ११ ॥ उपदेश करनेवालोंकोभी भ्रम हो रहा हैं. तासोंभी ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. कितनेएक ( वैशेषिक ) कहते हैं कि–यह जगत् जो पहले बिलकुल नहीं था वह पैदा हुआ है, योगशास्त्रवाले कहते हैं कि– जीवमें बिलकुल ब्रह्मत्व नहीं है पर योगसाधनसे पीछे उत्पन्न होय है. नैयायिक कहते हैं कि– छह इंद्रियां, छह प्रकारके इंद्रियज्ञान, छह विषयसुख, दुःख व शरीर इन इक्कीस प्रकारके दुःखका नाश है सोही मोक्ष है, सांख्यवाले कहते हैं कि– जीव और ईश्वरमें भेद है. कितनेएक कर्मफलको सत्य कहते हैं. इन सबका जुदा जुदा जो उपदेश है सो भ्रममूलक है पर तत्त्वदृष्टिसे नहीं, क्योंकि ये सब मत हमारे मतसे विरुद्ध हैं. वस्तुतः आत्मा यदि त्रिगुणमय होवे तौ इनका कहना घटे, सो तौ है नहीं; क्योंकि आत्मा त्रिगुणमय नहीं है. अतएव जो भेदादिक कल्पना किये गये हैं वह सारी कल्पना आपके स्वरूपाज्ञानसे कल्पित है और आपके स्वरूपमें अज्ञानका लेशभी नहीं है. क्योंकि आप तौ अज्ञानसे पर, अज्ञानके संगसे रहित और ज्ञानघन हो.

आपकी सेवामें उपयोगी यह शरीर जब आत्मा, सुहृद और प्रियके समान स्वाधीन है और आप सन्मुख, हित,
प्रिय और आत्मरूप होनेसे सुखसेव्य हो. तौभी देहादिकनका लालन करनेसे प्रसादमें पड़ेहुए लोग आपके साथ प्रीति नहीं
करते. यह बड़ी खेदकी बात है. देहादिकोंको लड़ानेकी वासना रखनेवाले नीचे नीचे जन्म पाकर. महाभयरूप संसारमें भटका
करते हैं. अतएव उन्हें आत्मघाती[1] समझना चाहिये ॥ २२ ॥ ९ ॥ प्राण, मन व इंद्रियोंको नियममें रखकर, हृद्योग करने-
वाले मुनिलोग जिस आपके तत्त्वकी हृदयमें उपासना करते हैं और आपके चरणारविंदको भलीभांति धारण करनेवाली हमभी

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न बत
रमंत्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यदनुशया भ्रमंत्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२॥ निभृतमरुन्मनोऽक्ष-
हृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ॥ स्त्रिय उरगेंद्रभोगभुजदंडविषक्त-
धियो वयमपि ते समाः समदृशोंऽघ्रिसरोजसुधाः॥ २३ ॥ इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत
उदगादृषिर्यमनुदेवगणा उभये ॥ तर्हि न सन्नचासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमव-
कृष्य शयीत यदा ॥ २४ ॥

जिस तत्त्वको देश, काल वस्तुके परिच्छेदरहित देखती हैं उस तत्वको शत्रुभी केवल स्मरणमात्रसे प्राप्त होगये. और सर्पराजके
भोग ( शरीर ) के समान भुजदंडमें आसक्तचित्त स्त्रियांभी प्राप्त हो गयीं. अतएव हम कहती हैं कि– आपकी कृपादृष्टि सबपै
बराबर है. आपके स्मरणका ऐसा प्रताप है कि– जो योगीजन हृदयमें आपकी उपासना करते हैं और जो हम आपको अपरि-
च्छिन्न रूपसे देखती हैं, जो कामदेवसे आपके परिच्छिन्न रूपका ध्यान करती हैं और जो द्वेषसे आपके परिच्छिन्न रूपका चिंतवन
करते हैं उन सबको वह आपके स्वरूपको प्राप्त कर देता है ॥ २३ ॥ १० ॥ इस जगत्में जिनके पीछे सब देवगण उत्पन्न हुए हैं.
ब्रह्माजीभी[2] जिनसे प्रकट हुये हैं उन अनादिसिद्ध आपको, पश्चात् उत्पत्तिनाशवाला कौन जान सक्ता है? ठीक है, जो पहले होता

---

१ आसुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृताः ॥ तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति ये के चात्महनो जनाः ॥ १ ॥ इति श्रुतेः ॥

२ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वमितिश्रुतेः

प्रतीत होते हो, जैसे अग्नि स्वयं तारतम्यरहित है. तौभी काठके अनुसार उस उस काठके समान लंबा, ओछा, पतला व सरीखा प्रतीत होता है, तैसे आपभी न्यूनाधिकभावरहित हो, तौभी उन उन देहादिकनके अनुसार ऊंच, नीच, मध्यमप्रकारसे प्रतीत होते हो. अतएव इस लोक तथा परलोकमें भोगनेयोग्य कर्मफलरहित, निर्मलबुद्धिवाले लोग मिथ्याभूत इन देहादिकनमें आपके स्वरूपको सत्य, सम और एकरस जान कर, उपाधिजन्य न्यूनाधिक भाव छोड़, अखंडैश्वर्य स्वरूपकीही उपासना करते हैं ॥१९॥ ॥ ६ ॥ जीव कि-जो स्वकर्मोपार्जित इन मनुष्यादिक देहोंमें भोक्तापनसे रहा है वह सर्व शक्तियोंके आश्रय और परिपूर्णरूप आपका स्वरूपभूतही है, ऐसे कहते हैं. क्योंकि यथार्थमें कार्य और कारण ये दोनों सत्तावाले नहीं हैं. तासों उनका आवरण जीवके संभवे नहीं, इसतरह जीवके तत्त्वका निर्णय कियेविना परब्रह्मकी प्राप्ति होवे नहीं. तासों इसप्रकार जीवके तत्त्वका निर्णय

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरंतरसंवरणं तव पुरुषं वदंत्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेंऽघ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥ दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥

कर, ज्ञानीलोग संसार मिटानेवाले और अर्पण किये हुए कर्मोंका मुक्तिरूप फल देनेवाले आपके चरणारविंदका परमविश्वासपूर्वक अर्चन और वंदनादिकसे सेवन करते हैं, मर्त्यलोकमें ऐसा करनाही उचित है ॥ २० ॥ ७ ॥ हे ईश्वर ! कदाचित् कोई कहे, कि- भक्ति यह तो एक अल्प साधन है, सो यह कहना अत्यंतही अयोग्य है क्योंकि जिस आपके तत्त्वका जानना बड़ा कठिन है, उसे जाननेके लिये अवतार धारण किये आपके चरित्ररूप महाअमृतसागरमें नहानेसे श्रमरहित होकर, कितनेएक विरले पुरुष जब मोक्षभी नहीं चाहते, तब इंद्रपदादिकके सुखकी तो अपेक्षाही क्यों करें ? अतएव आपके चरणकमलमें हंसके समान क्रीड़ा करते भक्तलोगोंकी संगतिसे श्रवण कीर्तनादिकके सुखमें मग्न हो, जब अपने घर- आदिसुखकोभी छोड़ देते हैं. तब जन्मांतरमें प्राप्त होनेवाले परलोकके सुखकी तो बातही कौन ! इसीलिये हम कहती हैं. कि-भक्ति मुक्तिसेभी अधिक है ॥ २१ ॥ ८ ॥

तौ लुहारकी धौंकनीके समान उनका श्वास लेना व्यर्थ है, महत्तत्व और अहंकारादिक तत्त्वभी जिनके प्रवेशसे सामर्थ्य पाकर,
समष्टि-व्यष्टिरूप ब्रह्मांडको रचते हैं, उन परमात्माको जो नहीं भजते, उन कृतघ्न पुरुषोंको कामादिक फलभी नहीं मिलते.
अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पंच कोश कि- जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञानरूप कहलाते
हैं. उनमें प्रवेश करनेवाला, अनुस्यूत हो उनके सदृश आकारवाला और चैतन्य देनेवाला, जो वेदमें इन कोशोंका उपदेश करके,
सबसे चरम परब्रह्मरूप कहा गया है, वे आप हो. यदपि आप इन कोशोंमें अनुस्यूत हो, तौभी आपका असंगत्व नहीं मिटता
क्योंकि आप स्थूल, सूक्ष्म अन्नमयादिक कोशोंके साक्षी और उनका अपवाद होनेपरभी अवशेष रहनेवाले और सत्यरूप हो.
जैसे द्वितीयाका चंद्र जो वृक्षकी शाखापर कहनेमें आता है सो केवल शुद्ध चंद्रमाको दिखलानेके वास्ते है, वैसे इन पंचकोशोंका

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनंत तव
धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतंति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव
हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विर-
जधियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥

जो वेदमें उपदेश है सो केवल शुद्धस्वरूपके निरूपणार्थ है ॥ १७ ॥ ४ ॥ हे अनंत ! ऋषियोंके संप्रदायमार्गमें स्थूलदृष्टिवाले
शर्कराक्षके वंशके ऋषि उदराश्रित मणिपूरकचक्रमें रहे ब्रह्मकी उपासना करते हैं. और उनसे कछुक सूक्ष्म दृष्टिवाले अरुणके
वंशके ऋषि नाड़ियोंके प्रसरणस्थानहृदयमें रहे हुए आपके कछुक सूक्ष्मरूपकी उपासना करते हैं. जहांसे आपकी उपलब्धिका
स्थानरूप सुषुम्नानाम नाड़ी मूलाधारसे ले, हृदयके बीचमें हो, ज्योतिर्मय ब्रह्मरंध्रतक ऊंचे पहुंचीहुई है. कि- जिस सुषुम्नाको
पाकर, फिर पीछे कालके मुह यानी संसारमें नहीं पड़ते. तात्पर्य यह है कि- आपका निरुपाधि स्वरूप अतिगंभीर है. तासों
जुदे जुदे संप्रदायके ऋषि उस स्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते प्रथम सोपाधिक स्वरूपकी उपासना करते हैं ॥ १८ ॥ ५ ॥ आप सबके
उपादानकारण हो. तासों सबसे प्रथमही सबमें वर्तमान हो, तासों आपके बनाये ऊंच, नीच, मध्यम-देहादिकनमें आपका प्रवे-
श होना संभवे नहीं, तथापि मानों उनमें प्रवेश किये हो, इस तरह उन उन देहादिकनका अनुकरण करते न्यूनाधिक भावसे

मंत्रोंमें इंद्र, अग्नि-आदि देवतानका प्रतिपादनभी देखनेमें आता है, परंतु वे सब आपहीके स्वरूप हैं, इस तरह विद्वान् लोग जानते हैं; क्योंकि सबका अपवाद होते आपही अवशेष रहते हो. जैसे घटादिक विकारकी उत्पत्ति और लय मृत्तिकाहीमें हैं. तासों घटादिक विकारका अधिष्ठानरूप मृत्तिका सदा निर्विकार है. और घटादिक पदार्थ उससे भिन्न नहीं हैं. तैसे सबकी उत्पत्ति व लय आपहीमें होते हैं, सो विवर्तक अधिष्ठान होनेसे सदा निर्विकार और सबके उपादानकारण आपही हो, तासों इंद्रादिकका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियांभी वस्तुतः आपहीका प्रतिपादन करती हैं; क्योंकि इंद्रादिक देवता आपसे भिन्न नहीं हैं अतएव मंत्र और मंत्रोंके द्रष्टा ऋषिलोगोंके मन-वचनका तात्पर्य आपहीमें है. भिन्न भिन्न विकारोंमें नहीं. जैसे पृथ्वीपर फिरने-

बृहदुपलब्धमेतदवयंत्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाऽविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनो वचनाचरितं कथमयथाभवंति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥ १५ ॥ इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजंति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽडमसृजन्यदनुग्रहतः ॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥

वाला प्राणी अपना पांव पत्थर या ईंट-आदि जी चाहे जिस वस्तुपर रक्खे. पर वह पांव पृथ्वीपर नहीं ऐसा कभी नहीं होगा. तैसे मंत्र दिलचाहे जिन इंद्रादिक विकारोंका प्रतिपादन करें, पर वस्तुतः आपका प्रतिपादन नहीं करते ऐसे नहीं; किंतु आपकाही प्रतिपादन करते हैं ॥ १५ ॥ २ ॥ हे त्रिगुणमायामृगीनर्तक ! हे परम सबके कारण ! आपही परमार्थरूप हो ऐसा जानकर, विवेकी पुरुष सब लोगोंके कल्मष दूर करनेवाली आपकी कथारूप अमृतसमुद्रका सेवन कर, पाप और दुःखसे निवृत्त हुए हैं. जब आपकी कथाहीसे पाप और दुःखकी निवृत्ति होय है, तब स्वरूपस्फुरणसे अंतःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरा-आदि, जिनके निवृत्त हो गये हैं. और जो अखंड आनंदके अनुभवरूप आपके स्वरूपका सेवन करते हैं. उनका पाप और दुःख निवृत्त होवे. उसमें तो कहनाही क्या ! ॥ १६ ॥ ३ ॥ मनुष्य आपका भजन करें, तभी तो उनका जीवन सफल है. नहीं

श्रवण करनेके कौतुकसे एकको तौ वक्ता बनाया और दूसरे श्रोता हुए ॥ ११ ॥ सनंदन बोले कि–अपने रचेहुए इस जगत्को
अपनी शक्तियोंसे अपने स्वरूपमें लीन कर, योगके कारण मानों निद्रा लेते हों इसतरह ज्ञात होते, सगुण ब्रह्मको, सृष्टिके
आरंभमें उनके प्रथम निःश्वाससे प्रगट हुईं श्रुतियां जो उनके प्रतिपादक वाक्योंसे जगाने लगीं ॥ १२ ॥ जैसे सोतेहुए चक्रवर्ती
राजाको प्रातसमयमें उसके अनुजीवी बंदीजन आकर, उसके प्रशस्त कीर्तियुक्त पराक्रमोंसे जगाया करते हैं. वैसे श्रुतियां ईश्वरके प्रतिपाद-
क वचनोंसे इस भांति जगाने लगीं ॥ १३॥ श्रुतियां बोलीं कि–हे अजित ! आपका जय हो २ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अन्य पुरुषोंको ठगा-

सनंदन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सहशक्तिभिः ॥ तदंते बोधयांचक्रुस्तल्लिंगैः श्रुतयः पर-
म् ॥ १२ ॥ यथा शयानं सम्राजं बंदिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजी-
विनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जय जय जह्यजामजितदोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना सम-
वरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनु-
चरेन्निगमः ॥ १४ ॥

नेके वास्ते गुण धारण करती है. वैसे आनंदादिकका आवरण करनेके वास्ते गुणग्रहण करनेवाली चराचर जीवोंकी अविद्याका नाश
करो. माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपहीसे प्राप्त हैं. इसीलिये किसी प्रकार अविद्या आपमें दोष नहीं लगा
सकती. सब जीवोंके अंतर्यामी और सकल शक्तियोंके उद्बोधक तौ आपही हो, अतएव जीव ज्ञानादिककी प्राप्तिमें स्वतंत्र नहीं
है. किंतु परतंत्र है. अखंडित ज्ञान और ऐश्वर्यादि गुणवाले और ज्ञानादिक शक्तियोंको प्रगट कर, जीवोंकी अविद्या हरनेवाले
आपही हो. इस विषयमें मैं ( वेद ) ही प्रमाण हूं. आप जब कभी सृष्ट्यादिसमयमें मायासे क्रीड़ा करते हो, तब उस स्वरूपका
और सदा सत्य, ज्ञान, अनंत, आनंदैकरस स्वरूपसे विराजो हो तासों सदा उस स्वरूपकाभी वेदही प्रतिपादन करता है ॥ १४ ॥ १ ॥

१ चर्चरी प्रभात– बंदीजन वेद महाराजको जगावैं ॥ ललित मधुर सरस वारि विमल सुयश गावैं ॥ योग ज्ञान धर्म चरित कोटि जन्म गावैं ॥ रावरो स्वरूप विना जाने फिरि आवैं छवो शास्त्र उलटि पलटि जीभ मन थकावैं ॥ राउर लीलापियूष अँचइ ठौर पावैं ॥ नामको न जान बादको बढ़ावैं ॥ नाममें अनाम ना विलास देव भावैं ॥ १॥

प्राप्त होवे ॥ ३ ॥ इस विषयमें नारायणसंबंधी एक इतिहास कहूंगा, जिसमें नारद और नारायणका संवाद है ॥ ४ एक दिन भगवत्प्रिय नारदजी लोकोंमें विचरते २ श्रीमन्नारायणके दर्शन करनेको नारायणके आश्रम पधारे ॥ ५ ॥ हे राजा ! जो इस भरतखंडमें मनुष्योंके कल्याण और मुक्तिके अर्थ कल्पके आरंभसे धर्म, ज्ञान व शमयुक्त तप कर रहे हैं, ॥ ६ ॥ महाराज ! कलापग्रामके निवासी मुनिलोगोंसे आवृत हो, वहां विराजमान नारायण ऋषिको प्रणाम कर, नारदजीने यही प्रश्न किया ॥ ७ ॥ सब



अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥ एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥ यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तयेनृणाम् ॥ धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥ तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ तत्र हायमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥

ऋषिलोगोंके सुनते नारायण भगवानने नारदजीको वही ब्रह्मवादका विषय कहा, जो पहले जनलोकके निवासी सनकादिकोंके बीचमें हुआ था ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले कि– हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! पहले जनलोकनिवासी, ब्रह्माजीके मानसपुत्र, ब्रह्मचारी सनकादिकोंके बीच जनलोकमें ब्रह्मसत्र[१] हुआ ॥ ९ ॥ तुम तो श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्धके दर्शनको श्वेतद्वीप गये रहे, उस समय तुम्हारे पीछे जनलोकमें यह ब्रह्मवाद हुआ, जिसमें सब श्रुतियोंका तात्पर्य आ जाय है. तुम जो प्रश्न मुझसे करते हो वही प्रश्न वहां हुआ था ॥ १० ॥ यद्पि चारों सनकादिक शास्त्राभ्यास, तप व स्वभावसे समान और निज, शत्रु व उदासीन इन सबमें सम है. तौभी



१ सब समान होकर, जहां एकको वक्ता बनाय, दूसरे श्रोता बनकर, ब्रह्मविचार करें इसे ब्रह्मसत्र कहते हैं.

भेजकर, उन उन लोगोंके सुख भोगरूप काम और कल्पनानिवृत्तिरूप मोक्ष पुरुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इंद्रियां, मन व प्राण ये रचे हैं. यदि बुद्धि, इंद्रियां, मन व प्राणरूप अंतःकरण अथवा लिंगशरीर न होय तो अर्थ, धर्म, व काम इनका होना संभवे नहीं. और स्वरूप विचारके न होनेसे मोक्षकाभी होना संभवे नहीं. तात्पर्य यह है कि, "सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्" इत्यादिक लक्षण निरूपणकरनेवालीं श्रुतियां केवल सगुण ईश्वरकाही प्रतिपादन करती हैं. और संसारीजीवकी संसारकी निवृत्तिके निमित्त "तत् ( वह ) त्वं ( तू ) असि ( है )" इत्यादिक वेदवाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करते हैं. सो इसमें नित्यमुक्त ईश्वरवाचक 'तत्' पद और संसारी जीवका वाचक 'त्वं' पदका सामानाधिकरण्य प्रतीत होय है. सो वह अन्यप्रकारसे तो संभवे नहीं, तासों जहदजहत् स्वार्था लक्षणा अथवा भागत्यागलक्षणासे बोधित होय है. तथाहि सर्वज्ञत्वादिक गुणवाले पदार्थका वाचक 'तत्' पद और अल्पज्ञत्वादिक गुणवाले पदार्थका वाचक 'त्वं' पद ये दोनों विरुद्ध गुणोंके वाचक हैं, सो

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ॥ श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥

परस्पर विरुद्ध गुणोंका सामानाधिकरण्य घटे नहीं, तासों दोनोंमेंसे परस्पर विरुद्ध गुणरूप अंशका त्याग कर, दोनोंमें अनुगत चैतन्यरूप समान अंशका ग्रहण करके 'तत्' और 'त्वं' ये दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके वाचक हो कर, एकताका निरूपण करते शुद्ध ब्रह्मके प्रतिपादनमें पर्यवसायी होय है और, "अस्थूलमनणु" इत्यादिक निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुतियां तत्पदार्थके शोधनमें उपयोगी होनेसे उपाधिके निषेधद्वारा साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममेंही पर्यवसित होती हैं उपासनाका, निरूपण करनेवाली श्रुतियां उपासनासे अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानके साधनका उपदेश करतीं ज्ञानद्वारा परंपरा- संबंधसे परब्रह्मके प्रतिपादनमें पर्यवसायी होय हैं. सृष्टि, स्थिति, प्रलयका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियांभी आगमापायी ( आने जानेवाले ) सृष्टिआदिका निरूपण कर, उसीके द्वारा परंपरासंबंधसे ब्रह्मके प्रतिपादनमें प्रवृत्त होती हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकारसे वेदकी श्रुतियोंका परब्रह्ममें प्रवृत्तिका रहस्यनिर्णय पूर्वजोंकेभी पूर्वजोंने किया है. इसीके शिष्टलोगोंकी अनादिपरंपरासे आये हुए इस विषयका जो मनुष्य शुष्क तर्कादिकका अभिनिवेश न करता श्रद्धासे श्रवण मननादि करे. वह देहादिक उपाधिको त्यागकर, मोक्षको

उपासनाकांड जिनका विषय है वे वेद ईश्वरको किस प्रकार प्रतिपादन करते हैं उस प्रकारका, उपदेश कर, पीछे द्वारका पधारे ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ सत्तासीवें अध्यायमें नारायण व नारदजीके संवादद्वारा गुणोंके आलंबनसे कीहुई वेदोंकी स्तुतिका परिणाम निर्गुणब्रह्मपर है यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने पूंछा कि– हे ब्रह्मन्! आपने कहा कि– 'वेद जिस भांतिसे ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं. उस प्रकार उपदेश कर, भगवान द्वारका पधारे, सो शब्दरूप वेदकी प्रवृत्ति परब्रह्ममें होनी संभवे नहीं; क्योंकि मुख्या, लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होय है, मुख्यावृत्तिकेभी दो भेद हैं. रूढ़ि और योग. सो जो वस्तु स्वरूप, जाति, क्रिया अथवा गुणसे निर्देश करनेयोग्य हो उसीमें रूढ़िकी प्रवृत्ति संभवे. पर जिसका स्वरूप, जाति, क्रिया व

**परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥ कथं चरंति श्रुतयः साक्षात्सदसतःपरे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धींद्रियमनःप्राणान्जनानामसृजत्प्रभुः ॥ मात्राऽर्थं च भवार्थं च आत्मने कल्पनाय च ॥ २ ॥**

गुणसे निर्देश नहीं होवे; उसमे संभवे नहीं सो परब्रह्मका जाति, गुण, क्रिया अथवा स्वरूपसे निर्देश नहीं होवे, तासों परब्रह्ममें रूढ़िकी प्रवृत्ति संभवे नहीं. योगवृत्तिकी प्रवृत्तिभी संभवे नहीं; क्योंकि परब्रह्म कार्य व कारणसे पर और असंग है. अतएव उसके किसी प्रकारका योग संभवे नहीं; लक्षणा वृत्तिकी रीतिसेभी प्रवृत्ति संभवे नहीं क्योंकि लक्षणामें संबंधकी आवश्यकता है. और परब्रह्म सर्वसंबंधरहित है तैसे गौणी वृत्तिकी रीतिसेभी प्रवृत्ति संभवे नहीं क्योंकि श्रुतियां कदाचित् गुणका निरुपण करें, पर परब्रह्म स्वयं निर्गुण है, तासों उसका निरुपण करना संभवे नहीं. फिर परब्रह्मको श्रुतियां किसप्रकार प्रतिपादन करती हैं? सो हमें कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि– मायोपाधिक होतेभी उस उपाधिके परतंत्र न रहनेसे नित्यमुक्त, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वके स्वामी, सर्वनियंता, सबके उपासना करनेयोग्य, सर्वकर्मोंके फल देनेवाले, सकल शुभ गुणोंके धाम, सच्चिदानंद ईश्वरने प्रलयकालमें आपमें लीन भये हुए जीवोंको विषयभोगरूप अर्थ, जन्मसे ले, कर्म करनेरूप धर्म, परलोकमें

ये तो तुर्तही पावन करते हैं. देवादिकमें जो पवित्र करनेकी शक्ति है. सोभी ऐसे २ महात्माओंकी दृष्टि पड़नेकाही प्रताप है ॥ ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण जन्महीसे यहां सब प्राणीनमें उत्तम हैं, फिर उनमें जो तप, विद्या, संतोष और मेरी उपासनानिष्ठ हो तौ, उसका तौ कहनाही क्या ? ॥ ५३ ॥ यह मेरा चतुर्भुजस्वरूपभी मुझे ब्राह्मणसे अधिक प्यारा नहीं है; क्योंकि ब्राह्मण सर्व-वेदमय है. और मैं सर्व देवमय हूं. देवतानकी सिद्धि वेदके आधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसेभी अधिक प्रिय हैं ॥ ५४ ॥ गुणमें दोषका आरोपण करनेवाले और केवल अर्चाहीमें पूज्य दृष्टि रखनेवाले दुर्बुद्धिलोग इसप्रकार न समझकर, गुरु, आत्मा

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानंत्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदं वि-श्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीने-तान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरि भूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेनमैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥ एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहोनाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

और मुझरूप ब्राह्मणका अपमान करते हैं ॥ ५५ ॥ यह स्थावर जंगम जगत् और इसके कारण महत्तत्वादिक पदार्थ, भगवानके-ही रूप हैं, इस तरह ब्राह्मण सबठौर ब्रह्मदृष्टिसे अपने चित्तमें जानता है ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मण ! इसलिये इनको मेरा स्वरूप जान, मुझपर जैसी श्रद्धा है. वैसी श्रद्धा रखकर, इनका पूजन करो और इसतरह करोगे. वही मेरी पूजा होगी. ऐसे किये विना बहुत वैभ-वसेभी मेरी पूजा करे, वह पूजा नहीं होती ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—इस प्रकार भगवान्ने आज्ञा की, तद वह श्रीकृष्णसहित सब ब्राह्मणोंकी एक भावनासे पूजा कर, उत्तम गतिको प्राप्त हुआ. और राजा बहुलाश्वभी उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ महाराज ! इस प्रकार भक्तोंपर प्रीति रखनेवाले भगवान् वहां रह, अपने दोनों भक्तोंको सन्मार्ग यानी कर्मकांड, ज्ञानकांड और

श्रवण करें, कीर्तन करें, आपहीको प्रणाम करें, आपहीकी पूजा करें, आपकीही बातें करें, उन शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंकोभी आप हृदयहीमें दर्शन देते हो. पर मुझे तो प्रत्यक्ष दर्शन हुए. इसलिये मैं जानता हूं कि– मैं सबसे बड़भागी हूं ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप हृदयमें रहे हो, तौभी कर्मोंसे विक्षिप्तमन पुरुषोंसे अतिदूर हो, यद्यपि अहंकार–आदि पदार्थोंसे आपका ग्रहण नहीं हो सकता. तौभी जिनके अंतःकरणमें आपके श्रवण कीर्तनादिकका संस्कार है. उनके आप पासही रहे हो ॥ ४७ ॥ देहाद्यभिमानरहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले, देहादिकमें अभिमानवाले पुरुषको अपने आत्मासे भिन्न संसार देनेवाले, महत्तत्त्वादिक कार्य और उनकी कारणरूप मायानाम उपाधिके नियंता, अपनी मायासे अलुप्त ऐश्वर्य और मायाद्वारा दूसरोंके ज्ञानको आच्छादन

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यंत्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमायया॒ऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ सत्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदंतो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ संचरंति मया लोकान्पुनंतः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनंति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥

करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४८ ॥ हे देव ! वे परमेश्वर आप, आपके दास हम लोगोंको आज्ञा फरमाओ. हम क्या करें ? जबतक आपके प्रत्यक्ष दर्शन न होवें. तबतक मनुष्योंके क्लेश रहते हैं. दर्शन हुए पीछे क्लेशका अंत होय है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– इसप्रकार श्रुतदेवके वचन सुन, भक्तोंकी आर्ति हरनेवाले भगवान्ने अपने हाथसे उसका हाथ पकड़, हँस कर, ब्राह्मणोंमें कम और आपमें अधिक आदर देख, लोकसंग्रहार्थ यह वचन कहा ॥ ५० ॥ श्रीभगवान बोले कि– हे ब्राह्मण ! ये मुनिलोग तुमपै अनुग्रह करनेको यहां पधारे हैं. यह तुम जानो. ये लोग अपनी चरणरजसे लोगोंको पवित्र करते मेरे साथ विचरा करते हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र और तीर्थ ये सब दर्शन, स्पर्शन और पूजनसे बहुत दिनोंसे पवित्र करते हैं. पर

प्रीतिसे चरण पखारे ॥ ३९ ॥ जिसके सब मनोरथ सिद्ध होगये हैं ऐसे उस महाभाग ब्राह्मणने परमआनंदित हो, चरणोंके जलसे
घर व कुटुंबसहित अपने शरीरको न्हिलाया ॥ ४० ॥ फल, पूजनके पदार्थ, खशसे सुगंधित अमृतसा मधुर जल, सुगंधी मृ-
त्तिका, तुलसी, दर्भ, कमल, सत्वगुण बढ़ानेवाला अन्न और बन सके ऐसी पूजासे उन महात्माओंका आराधन किया ॥ ४१ ॥
और वह विचार करने लगा कि– मैं जो घररूप अंधकूपमें पड़ा हूं उसको, जिनकी चरणरज सब तीर्थोंका आस्पद है, ऐसे श्री-
कृष्णचंद्र और इनके आत्माके निवासरूप ब्राह्मण, इनका समागम किस पुण्यसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४२ ॥ आतिथ्य कर, अच्छी

तदंभसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ॥ स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फला-
र्हणोशीरशिवामृतांबुभिर्मृदा सुरभ्या तुलसीकुशांबुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्व-
विवर्धनांधसा ॥ ४१ ॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहांधकूपे पतितस्य संगमः ॥ यः सर्वतीर्था-
स्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्यान् ॥ श्रुतदेव उप-
स्थितः ॥ सभार्यस्वजनापत्य उवाचांघ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः
परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसै-
वाऽऽत्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वा-
ऽभिवंदताम् ॥ नृणां संवदतामंतर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥

तरह विराजमान किये ब्राह्मणोंके पास स्त्री, कुटुंब और पुत्रसहित उपस्थित हो, भगवान्के चरणोंका स्पर्श करता श्रुतदेव यह
वचन बोला ॥ ४३ ॥ श्रुतदेवने कहा कि–परमपुरुष आप हमें आजही मिले ऐसे नहीं हैं; किंतु जब अपनी शक्तियोंसे
इस जगत्को रचकर, इसमें अपनी सत्तासे प्रवेश हुए तभी प्राप्त हुए हो, परंतु प्रत्यक्ष दर्शन तौ आजही हुआ है ॥ ४४ ॥ जैसे
सोताहुआ पुरुष अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनहीसे दूसरे देहको सरज कर, उसमें मानों प्रवेश हुआ हो, वैसे प्रतीत होता है.
तैसे आपभी इस जगतको रचकर, मानों उसमें प्रवेश हुए हो, वैसे प्रतीत होते हो ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य निरंतर आपकाही

व आपके चरणारविंदका स्मरण करनेवाले हमको आपने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥ "मेरे एकातभक्तसे बढ़कर, शेषजी, लक्ष्मीजी के ब्रह्माजीभी प्रिय नहीं हैं" ऐसे जो आपने कहा है, सो अपना वचन सत्य करनेको आपने हमें दर्शन दिया है ॥ ३२ ॥ इस बातको जाननेवाला कौन मनुष्य आपके चरणकमलका त्याग करे ? जो आप निष्किंचन व शांत मुनि लोगोंको अपना स्वरूप देते हो ॥ ३३ ॥ जिन्होंने यहां यदुराजाके वंशमें अवतार धारण कर, संसारी जीवोंके संसारकी निवृत्तिके अर्थ त्रिलोकीके संकटको हरनेवाला अपना यश फैलाया है ॥ ३४ ॥ उन अकुंठबुद्धि, अतिशांत, तप करनेवाले, ऋषिस्वरूप, नारायण श्री-

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ को-नु त्वच्चरणांभोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् ॥ निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ॥ यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ न-मस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ नारायणाय ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि क-तिचिद्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः ॥ समेत्य पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्रा-प्तं स्वगृहान्जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥ तृण पीठबृसीष्वेता-नानीतेषूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनंद्यांघ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥

कृष्णभगवान आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ हे प्रभु ! कुछ दिन तो ब्राह्मणोंके साथ आप यहां विराजो और हम गृह-स्थियोंके घर और इस निमिराजाके कुलको अपनी चरणरजसे पावन करो ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-जगत्पालक भगवा-न्की इस प्रकार राजाने प्रार्थना की. तद मिथिलापुरीके नर नारीनका कल्याण करते भगवान् कुछ दिन वहीं विराजे ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवभी भगवान् अपने घर पधारे तद जनक राजाके समान मुनिलोगोंको प्रणाम कर, बहुत प्रसन्न हो, वस्त्र घुमाता नृत्य करने लगा ॥ ३८ ॥ तृण, पीढ़े और चटाइयां ला, उनपै उन्हें बैठाय, आगत स्वागतसे सत्कार कर, स्त्रीके साथ उस ब्राह्मणने

शिरसे प्रणाम किया ॥ २३ ॥ उन जगतगुरु भगवान्को अपनेपर अनुग्रह करनेको आये मानकर, राजा बहुलाश्व और ब्राह्मण श्रुतदेव भगवान्के पांवोंमें पड़े ॥ २४ ॥ बहुलाश्व और श्रुतदेवने हाथ जोड़, ब्राह्मणोंके साथ भगवान्की मिहमान्दारी करनेको एक साथ निमंत्रण किया ॥ २५ ॥ इन दोनोंका निमंत्रण मान, दोनोंको प्रसन्न रखनेके लिये भगवान ब्राह्मणोंके साथ दो रूप धारण कर, दोनोंके घर एक समयमें पधारे और यह बात बहुलाश्व और श्रुतदेवके जाननेमें न आयी ॥ २६ ॥ वृद्धिंगत भक्तिके प्रतापसे अतिप्रसन्नचित्त और अश्रुसे व्याकुल-नेत्र, उदारमन, जनकराजाने, नीचपुरुषोंको जिनका नाम सुननाभी दूर है

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेपतुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमंत्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सहद्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥ २५ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदंघ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुंबो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ॥ गंधमाल्यांबराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ॥ पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदांभोजं स्मरतां दर्शनंगतः ॥ ३१ ॥

ऐसे अपने घर आये हुए मुनि लोगोंको अपने हाथसे लाये हुए उत्तम आसनोंपर बिठाया, और सुखपूर्वक विराजमान उन्हें प्रणाम कर, चरण धोय, जगतको पवित्र करनेवाला चरणोंका जल सकुटुंब राजाने शिरपर चढ़ाया. गंध, पुष्प, वस्त्र, धूप, दीप, अलंकार, अर्घ, गौ और बैल अर्पण कर, उन महात्मानकी पूजा की ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ भोजन कर, तृप्त भये हुए उन ब्राह्मणोंको मधुर वाणीसे प्रसन्न करता गोदमें लिये भगवान्के चरणोंका प्रीतिसे धीरे धीरे स्पर्श करता राजा यह वचन बोला ॥ ३० ॥ बहुलाश्वने कहा कि- हे विभु ! आप सब जीवोंके आत्मा, साक्षी और स्वयंप्रकाश हो, अतए-

दोनों भगवान्के प्यारे थे ॥ १६ ॥ इन दोनोंपर अतिप्रसन्न भगवान् दारुकके लाये रथपर विराज, मुनिलोगोंके साथ विदेह पधारे ॥ १७ ॥ तब नारदजी, वामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुराम, असित, अरुणी, मैं ( शुकदेवजी ), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन-आदि मुनि सब संग थे ॥ १८ ॥ महाराज ! विदेहदेश पधारते समय भगवान जहां जहां आये. वहां वहां नगर और देशके सब लोग हाथोंमें अर्घ ले, सन्मुख आ, जैसे ग्रहोंके साथ उदयहुए सूर्यका लोक सन्मान करते हैं वैसे सन्मान करते थे ॥ १९ ॥ महाराज ! आनर्त, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोसल व अर्ण देशके रहने-



तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाऽऽहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥ तत्र तत्र तमायांतं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकुरुजांगलकंकमत्स्यपांचालकुंतिमधुकेकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन्दिगंतधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वास्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥

वाले और दूसरेभी स्त्री पुरुष उदारहास व स्नेहभरी दृष्टियुक्त भगवानके मुखारविंदका नेत्रोंसे पान करते थे ॥ २० ॥ जिनका आपके दर्शनसे अज्ञान निवृत्त हो गया था, उन्हें अभय तथा तत्त्वज्ञान देते, दिगंतपर्यंत व्याप्त, अशुभ मिटानेवाली, देवता और मनुष्योंसे गायीजाती अपनी उज्वलकीर्ति सुनते हुए, श्रीकृष्ण भगवान धीरे धीरे विदेहदेश पधारे ॥ २१ ॥ महाराज भगवानको आये सुन, प्रसन्न नगर और देशके लोग हाथमें पूजनके पदार्थ ले, उनके सन्मुख चले ॥ २२ ॥ वे उत्तमश्लोक भगवान् व प्रथम जिनके नामही सुना करतेथे उन ऋषियोंके दर्शन कर, प्रीतिसे प्रफुल्लितमुख व अंतःकरण हो, कर जोड़, शिरपर रख,

हरणका अवसर देखते, अतिबलवान कामदेवसे भ्रांतचित्त, जो अर्जुन तिनको किसी कदर चैन नहीं पड़ता था ॥ ८ ॥ फिर बड़ी देवयात्रामें रथमें बैठ, सुभद्रा ज्यों गढ़से बाहिर निकली. त्यों उसके मातापिता और श्रीकृष्णकी संमति ले, महारथी अर्जुनने सुभद्राका हरण किया ॥ ९ ॥ रथमें विराजमान अर्जुन धनुष ले, जो शूरवीर आपको रोकनेके वास्ते सामने आये, उन्हें भगाय, सिंह जैसे अपना भाग ले जाय, वैसे संबंधियोंके कोलाहल करते सुभद्राको ले गये ॥ १० ॥ यह बात सुन, पूनमकी रातमें जैसे समुद्र क्षोभयुक्त होता है, वैसे बलदेवजी बड़े क्षोभयुक्त हुए. पर श्रीकृष्ण और दूसरे बंधुलोगोंके पांवोंमें पड़नेसे

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुंधतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयागताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽग बहुलाश्व इति श्रुतः ॥ मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥

शांत हो गये ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने आनंदसे यौतुकमें उन दूलह दुलहनको अमूल्य सामान , हाथी, घोड़े, रथ, दास और दासियां-आदि दिये ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- एक श्रुतदेवनाम उत्तम ब्राह्मण जो केवल भगवान्की भक्तिहीसे कृतकृत्य, शांत, विद्वान्, विषयवासनासे रहित भगवान्का परमभक्त था ॥ १३ ॥ वह विदेहदेशमें मिथिलापुरीमें रहा करता, वह गृहस्थी था, तौभी उद्यमविना जो कुछ अन्न-आदि मिल जाता उसीसे अपना सब काम चलाता ॥ १४ ॥ हर रोज दैवगतिसे उसे अपने निर्वाहजितना अन्न मिल जाता. पर अधिक नहीं मिलता और वह उतनेहीसे संतोष कर, अपना यथायोग्य काम चलाता ॥ १५ ॥ महाराज ! उस देशका राजा जनकके वंशका बहुलाश्वभी वैसाही अहंकाररहित और भगवान्का भक्त था. ये

तितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ छियासीवें अध्यायमें अर्जुनने सुभद्राका हरण किया और भगवान्‌ने मिथिलापुरी पधार, राजा और ब्राह्मण श्रुतदेवको प्रसन्न किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने प्रश्न किया कि–हे ब्रह्मन् ! राम–कृष्णकी बहन सुभद्रा कि–जो मेरी दादी थी. उसके साथ अर्जुनने जिसभांति विवाह किया. सो मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–प्रभु अर्जुन तीर्थयात्राके निमित्त पृथ्वीमें फिरते प्रभासमें फिरते पहुँचे वहां उन्होंने सुना कि–अपने मामा वसुदेवजीकी कन्या सुभद्राको बलदेवजी दुर्योधनको देंगे. पर इस संबंध करनेमें दूसरोकी संमति नहीं है. इस बातसे वे उस कन्याकी अभिलाषासे

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदंडी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमंत्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सो पश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥ प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ सा पि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ॥ हसंती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नंतरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

त्रिदंडी संन्यासीका रूप धर, द्वारका आये ॥ २ ॥ ३ ॥ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अर्जुन वहां चौमासेमें चार महीने वहीं रहे पर वहांके लोगोंको और बलदेवजीको इस छलकी खबर नहीं पड़ी. जिससे वे उनका वारंवार सत्कार किया करते ॥ ४ ॥ एक दिन आतिथ्यका निमंत्रण कर, घर लाकर, बलदेवजीने श्रद्धासे भिक्षा दी. और उन अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहां उन्होंने वीर पुरुषोंके मन हरनेवाली एक बड़ी कन्या देखी. जिसपर दृष्टि पड़तेही उनके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गये और रतिकी इच्छासे क्षोभयुक्त मन उसमें लग गया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मन हरनेवाले अर्जुनको देखकर, उसनेभी उसी तरह चाहा और मुसुकुराती हुई वह उनमें मन और नेत्र लगाकर, लाजभरे कटाक्षसे तिरछा निहारने लगी ॥ ७ ॥ केवल उसीका ध्यान करते उसके

उन बालकोंको देखतेही पुत्रस्नेहसे देवकीके स्तन चूने लगे तब उनसे मिल, गोदमें बैठाय, वारंवार उनके शिर सूंघने लगी ॥ ५३ ॥ जगतकी सृष्टिको प्रवृत्त करनेवाली भगवानकी मायासे मोहित और पुत्रस्पर्शसे आनंदमें मग्न देवकीने उनको स्तनपान कराया ॥ ५४ ॥ भगवानका पीतशेष देवकीका अमृतसा दूध पी, भगवानके अंगस्पर्शसे आत्मज्ञानको प्राप्त हो, वे छहके छह भगवान, देवकी, वसुदेव, बलदेवजी, इन सबको प्रणाम कर, सब लोगोंके देखते देवलोक सिधारे ॥

तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिस्नुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविंदं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवं विधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य संत्यनंतानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे मृताग्रजानयनंनाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

॥ ५५ ॥ ५६ ॥ महाराज ! मृत पुत्रोंका आगमन और गमन देखकर, विस्मित देवकीने जान लिया, कि– यह सब भगवानकी रचीहुई माया है ॥ ५७ ॥ महाराज ! अनंतशक्ति, परमात्मा, श्रीकृष्णके ऐसे ऐसे अद्भुतचरित्र अनंत हैं ॥ ५८ ॥ सूतजीने शौनकादिक ऋषियोंसे कहा कि–शुकदेवजीके वर्णन किये हुए जगतका पाप मिटानेवाले, भक्तोंके कानोंके आभूषणरूप इस अमृतकीर्ति भगवानके चरित्रको जो मनुष्य भगवान्में चित्त लगाकर, श्रवण करे अथवा करावे, वह मनुष्य भगवान्के अभयपदको प्राप्त होवे ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचाशी-

निष्काम पुरुषोंकेभी ढूंढ़नेयोग्य आपके चरणारविंदरूप आश्रयसे जुदे घररूप गहरे गढ़मेंसे निकलकर, वृक्षके तले स्वयं पड़े हुए फलादिकसे गुजर कर, शांत हो, मैं या तो इकल्ला या सबके मित्ररूप महात्मालोंगोके साथ विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभु ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें आज्ञा करके निष्पाप करो, कि– जिस आज्ञाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे मनुष्योंका विधिनिषेधरूप बंधन छूट जाय है ॥ ४६ ॥ इन सब बातोंको स्वीकार कर, भगवान बोले कि– स्वायंभुव मन्वंतरमें मरीचिऋषिके ऊर्ण नाम स्त्रीमें छह पुत्र उत्पन्न हुए, थे. पुत्रीके साथ मैथुन करनेके लिये उद्युक्त ब्रह्माजीको देखकर, हँसे ॥ ४७ ॥ महाराज ! उसी अपराधसे

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ॥ पुमान् यच्छ्रद्धयातिष्ठंश्चोदनायाविमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेंतरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा तान् शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेध्यासतेंतिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंगः पतंगः क्षुद्रभृद्घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यंति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इंद्रसेनेन पूजितौ ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥

वे तुर्तही असुरकी योनि पाकर, हिरण्यकशिपुके पुत्र हुए, फिर योगमायाने उन्हें वहांसे देवकीके उदरमें प्राप्त किया. जो कंसके हाथसे मारे गये. अभी देवकी अपने पुत्रोंका शोच करती है. और वे आपके पास बैठे हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सो माताका शोच निवृत्त करनेके वास्ते हम इन्हें यहांसे ले जायंगे और वहांसे शापमुक्त हो, संतापरहित ये देवलोकको जायंगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत्, घृणी, ये छहो देवलोकमें जाकर, फिर मुक्तिको प्राप्त होयंगे ॥ ५१ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– श्रीकृष्ण व बलदेवजी इसप्रकार आज्ञा कर, बलिराजाकी पूजा स्वीकार कर, उन्हें ले, पीछे द्वारका आये. और वे पुत्र माता देवकीके सिपुर्द किये ॥ ५२ ॥

महाराज! प्रेमसे द्रवीभूत बुद्धिसे भगवान्‌के चरणारविंदको वारंवार धारण करता, आनंदके अश्रुनसे व्याकुलनेत्र बलिराजा पुलकि-
तगात व गद्गदकण्ठ होकर, कहने लगा ॥ ३८ ॥ बलि बोला कि-फणके एकदेशमें विश्वको धारण करनेवाले बड़े शेषरूप ! आपको
मैं प्रणाम करता हूं जगतके विधाता और सांख्य- योगके विस्तारनेवाले, परमात्मा कृष्णमूर्ति आपको मैं प्रणाम करता
हूं ॥ ३९ ॥ आपके दर्शन जीवोंको दुर्लभ हैं. तौभी कितनेएक पुरुषोंको तो आपकी कृपासे सुलभ हो जाते हैं, देखो रजो-
गुणी, तमोगुणी स्वभाववाले हमको यदृच्छासे आपके दर्शन हुए ॥ ४० ॥ दैत्य, दानव, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष,

स इंद्रसेनो भगवत्पदांबुजंबिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाचहानंदजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा
नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनंताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगविता-
नाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमःस्वभावा-
नां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगंधर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च
भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं
चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्नि-
कृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदंत्यपि योगेशा योगमायां
कुतो वयम् ॥ ४४ ॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविंदधिषणान्यगृहांधकूपात् ॥ निष्क्रम्य
विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥

राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथपति ॥ ४१ ॥ व हम और हमारेसे दूसरे लोग कि- जो साक्षात् शुद्ध सत्वमय और वेदमूर्ति
आपसे निरंतर वैर रखते हैं. उन्हेंभी आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है. इसी लिये बिलकुल दुर्लभही है, ऐसा नहीं कहसक्ते
॥ ४२ ॥ जिस तरह कितने एक तौ वैरसे और कितने एक भक्तिसे और कितने एक कामनासे आपके स्वरूपको प्राप्त हुए, उस
तरह सत्त्वगुणवाले देवता आपके स्वरूपको नहीं प्राप्त होते ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरेश्वर ! बहुधा योगेश्वरभी आपकी मायाको
“ यह ऐसे ” इसतरह नहीं जानते. तब हम तौ कहांसे जानें ? ॥ ४४ ॥ इस लिये हमपै ऐसी कृपा करो, कि- जिस कृपासे

ओंका नाश करने और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आज आप प्रगट हुए हो ॥ ३० ॥ हे विश्वात्मा! हे आद्य! जिसके अंशके अंशरूप मायाके गुणोंके लेशसे जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार होयं हैं, उन आपके मैं शरण आयी हूं ॥ ३१॥ हे योगेश्वरेश्वर! चिरकालसे मरेहुए पुत्रको लादेनेके वास्ते गुरुने आज्ञा की. तब आपने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर, गुरुके गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया. उसीतरह मेरी इच्छाभी परिपूर्ण करो. यानी कंसके मारेहुए मेरे पुत्रोंको मैं यहां लायेहुए देखना चाहती हूं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- महाराज! इस प्रकार माताकी प्रेरणासे राम- कृष्ण अपनी योगमायाके बलसे



यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवंति किल विश्वात्मंस्तं त्वाऽऽद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्विश्वात्मदैवं सुतरां तथाऽत्मनः ॥ तद्दर्शनाल्हादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृंद आब्रह्मपुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥

सुतल लोक पधारे ॥ ३४ ॥ जगतके आत्मा व दैवतरूप आर अपने तो अत्यंतही इष्टदेव दोनों. भाइयोंका पातालमें आये देखकर, बलिराजाका अंतःकरण उनके दर्शनके आनंदसे व्याप्त हो गया और तुर्त उठकर, अपने परिवारसहित प्रणाम किया ॥ ॥ ३५ ॥ और प्रीतपूर्वक आसन लाकर, उन महात्माको आसनपै बिठाया. फिर चरण पखार, ब्रह्मापर्यंत जगतको पावन करनेवाला जल बलिराजाने और उसके परिवारने शिरपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र, आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप और अमृतसे भोजन-आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तनु, धन, कुटुंब सब अर्पण किया ॥ ३७ ॥

जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत आपसे प्रगट हुए घटादिक पदार्थोंमें अनेक प्रकारसे प्रतीत होते हैं. और
उपाधिधर्मोंसे अल्प अधिक आविर्भाव तिरोभावादि रूपसे प्रतीत होते हैं. वैसे आत्माभी आपके रचेहुए गुणोंसे प्रगट किये देहों-
में अनेक प्रकारसे प्रतीत होता है. व उपाधिधर्मोंसे अल्प अधिक आविर्भाव तिरोभावादिरूपसे प्रतीत होता है. परंतु वस्तुतः
ऐसे नहीं है, क्योंकि आत्मा एक होते अनेक प्रकारसे स्वयंप्रकाश होते दृश्य रूपसे, नित्य होते अनित्यरूपसे, भिन्न होते अभि
न्नरूपसे, निर्गुण होते सगुणरूपसे, व्यापक होते परिच्छिन्न रूपसे प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महा-

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥
खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अ-
भूत ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता
॥ २७ ॥ कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरंती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥
॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावा-
दिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ
किलाद्य मे ॥ ३० ॥ ॥

राज ! इसप्रकार भगवान्के वचन सुन, भेदबुद्धिको छोड़, प्रसन्नचित्त वसुदेवजी चुप हो गये ॥ २६ ॥ फिर अपने पुत्र गुरुपुत्रका
पीछा ले आये ये समाचार सुन, बहुत विस्मित हो, कंसके मारे हुए अपने पुत्रोंका स्मरण करती सब जगतकी देवतारूप देवकी
विव्हलतासे नेत्रोंमें अश्रु भर, श्रीकृष्ण व बलरामजीको बतलाकर, ये दीन वचन बोली ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकीने कहा कि–
हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मा ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरेश्वर ! आप दोनों प्रजापतियोंके ईश्वर और आदिपुरुष हो. ऐसे मैं
जानती हूं ॥ २९ ॥ कालके प्रभावसे सत्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रमर्यादाको उल्लंघ कर, वर्तनेवाले, पृथ्वीके भाररूप राजा-

वती पुरीसे कुछ कम नहीं थी ॥ १५ ॥ सभा, चौहटा, राजमार्ग, रमणभूमि, दुकानें, विश्रामस्थान, ध्वजा, पताका व मूंगोंकी वेदियां इन सबकी शोभा छा रही थी ॥ १६ ॥ इस नगरीके बाहरकी तर्फ एक सुंदर उपवन ( विषयवर्ग ) था, उसमें दिव्य वृक्ष व लतायें ( चंदन और माला आदि पदार्थ ) लग रहे थे. जलाशयोंके भीतर पक्षी व भौंरोंके नादका कोलाहल हो रहा था ॥ १७ ॥ पुष्पसमूहमें होकर, आती व शीतल झरनोंके जलकणोंको उड़ाती, जो वायु वहती थी, उससे चलायमान वृक्षोंकी शाखा और पत्तोंकी शोभा सरोवरियोंके किनारोंपर छा रही थी ॥ १८ ॥ अनेक जंगली जानवरोंके समूह मुनिव्रत यानी अहिं-

सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥ चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहंगालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥ हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥ चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥ नानाऽरण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पांथो यत्र कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयागतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायांतीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥ पंचशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥ समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुंडलश्रियम् ॥ २२ ॥

सा पालते थे. इसीसे किसी प्रकारकी वहां बाधा नहीं थी, और जो कोयल टहूका देती थी. उससे पांथ लोगोंको तो यही प्रतीत होता था, कि- यह वन हमें अपने पास बुलाता है ॥ १९ ॥ उस बगीचेके अंदर यदृच्छासे एक उत्तम स्त्री ( बुद्धि ) आ निकली- उसको देखा तो, उसके साथ दश नौकर ( इंद्रियां ) भी थे. और उन नौकरोंके साथ फिर सैकड़ों स्त्रियां ( अनंत वृत्तियां ) थीं ॥ २० ॥ एक पांच शिरवाला नाग ( प्राण, अपान, उदान, समान और व्यानरूपसे पंचवृत्ति प्राण ) इस उत्तम स्त्रीकी चारोंओरसे रक्षा करता था, यह कामरूप धारण करनेवाली स्त्री अवस्थामें सोलह वर्षकी थी. और किसी पतिकी तलाशमें फिरती थी ॥ २१ ॥ इस स्त्रीके दांत, नाक, कपोल और मुख, अतीव सुंदर थे. ( गंध, रस इत्यादिकका ज्ञान इसको परिपूर्ण

था ) बराबर बनेहुए कानोंके अंदर कुंडल शोभ रहे थे ॥ २२ ॥ पीले वस्त्र व सुवर्णकी कटि मेखला धारण किये थी, सुंदर कटिपश्चात्भाग था. श्याम वर्ण था, नूपुरकी झनझनाहटवाले चरणोंसे देवागनाके समान चलती थी ॥ २३ ॥ तरुण अवस्थाके आनेसे स्तन प्रगट हो रहे थे, जो स्तन आपसमें एकसे गोल और व्यवधान रहित थे. वह गजगामिनी लाजके मारे उन्हें, अपने अंचलसे ढकती थी ॥ २४ ॥ लाजभरे मंदहास्यसे शोभा देती थी, इस स्त्रीके प्रेमसे ऊपरकी ओर घूमतीहुई भ्रुकुटीरूप धनुषसे निकलेहुए स्नेहभरे और नेत्रकी अनीरूप पुंखवाले कटाक्षरूप बाणसे बिंधाहुआ वह राजा पुरंजन बड़ी सुघड़ाईके साथ उससे पूछने लगा कि- ॥ २५ ॥ हे कमलपत्राक्षि ! तू कौन है ? हे सती ! तू किसकी है ? और यहां तू कहांसे आयी है ? हे भीरु ! नगरीके समीपवर्ती इस बगीचेमें तू क्या करना चाहती है ? मुझे कह ॥ २६ ॥ ये ग्यारह जने तेरे साथ हैं सो ये कौन हैं ? जिनमें ग्यारहवां बड़ा योद्धार प्रतीत होता है. ( दश इंद्रियां और ग्यारहवां मन ) ये स्त्रियां कौन हैं ? हे सुभ्रु ! तेरे आगे २ चलनेवाला यह सर्प कौन है ? ॥ २७ ॥ एकांतवनमें धर्मको ढूंढ़नेके वास्ते तू कोई उसकी स्त्री लज्जा तो नहीं आयी है ? अथवा ब्रह्माजीकी स्त्री सरस्वती तो तू नहीं है ? अथवा विष्णुकी स्त्री लक्ष्मी तो तू नहीं है ? अथवा महादेवको हेरती तू कोई महादेवकी स्त्री पार्वती तौ नहीं आयी है ? तू मुनिकी भांति नियमयुक्त दीख पड़ती है, मैं मानता हूं कि- तेरा जो पति होगा, उसके सकल मनोरथ तेरे चरणकी कामनाहीसे परिपूर्ण हुए हैं. यदि तू लक्ष्मी है तो तेरे हाथमें जो

पिंशगनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ॥ पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥ स्तनौ व्यंजितकैशोरौ समवृत्तौ निरंतरौ ॥ वस्त्रांतेन निगूहंतीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥२४॥ तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥ स्निग्धेनापांगपुंखेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥ २५ ॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥ २६ ॥ क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ॥ एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥ त्वदंघ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः करात्राग्रात् ॥ २८

अवलोकनहीसे अनाथ लोगोंकी पीड़ा दूर करनेके वास्ते सर्वत्र विचरते हो, उनकी सर्पके शरीरकीसी लंबी भुजामें कौनसी स्त्रीका मन आसक्त न हो जावे? ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले कि-हे राजा! इसप्रकार वे स्त्री पुरुष उस स्थलमें परस्पर समय बांधकर, इस पुरीमें प्रवेश कर, सौ वर्षपर्यंत आनंद करने लगे ॥ ४३ ॥ पुरंजन राजाकी मनोहर कीर्ति गायकलोग जहां तहां गाते थे. (इसमें जाग्रत अवस्था संक्षेपसे सूचित है) और बहुतसी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करनेके वास्ते वह तलावमें उष्णकालमें प्रवेश करता था (इससे सुषुप्ति अवस्था सूचित है) ॥ ४४ ॥ इस नगरीमें जुदे जुदे देशोंमें जानेके वास्ते सात दरवाजे ऊपर और दो

नारद उवाच ॥ इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥ ४३ ॥ उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥ क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरिकृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥ पंचद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥ पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताविर्मुखी च प्राक्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥ ४७ ॥ नलिनी नालिनी च प्राक्द्वारावेकत्रनिर्मिते ॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥ ४८ ॥ मुख्या नाम पुरस्ताद्द्वास्तयापणबहूदनौ ॥ विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥

दरवाजे नीचे हैं (मुख, नासिका २, नेत्र २, कान २, गुदा, और लिंग ये नौ छिद्र जुदे जुदे विषयभोगके वास्ते हैं) इसमें जो सत्य ईश्वर है, वह किसीके जाननेमें नहीं है (आत्मा). पांच दरवाजे तो पूर्वकी ओर हैं, एक दक्षिणकी ओर, एक उत्तरकी ओर व दो पश्चिमकी ओर. हे राजा! अब इनके नाम मैं तुझे कहता हूं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी नाम दो दरवाजे (नेत्र) एक सीधमें बनाये गये हैं इन दरवाजोंसे पुरंजन राजा विभ्राजित नाम देशमें (रूप) द्युमान् नाम (चक्षुइंद्रिय) मित्रके साथ जाया करता है ॥ ४७ ॥ नलिनी और नालीनी नाम (नाक) दो दरवाजे पूर्वकी ओर हैं येभी एकसीधमें हैं. इन दरवाजोंसे पुरंजनराजा अवधूत (घ्राण) नाम मित्रके साथ सौरभ नाम (गंध) देशमें जाया करता है ॥ ४८ ॥ तथा उसी दिशामें

मुख्या ( मुख ) नाम पांचवां दरवाजा है. इस दरवाजेसे पुरंजनराजा आपण ( भाषण ) और बहूदन ( अन्न ) नाम देशमें रसज्ञ नाम ( रसना ) मित्रके साथ जाया करता है ॥ ४९ इस नगरीमें दक्षिणकी ओर पितृहू ( दक्षिण कर्ण ) नाम दरवाजा है इस दरवाजेसे पुरंजनराजा दक्षिण पांचाल नाम देश ( प्रवृत्ति मार्गवाला कर्मकांडविषयक शास्त्र ) में श्रुतिधर नाम ( श्रोत्र इंद्रिय ) मित्रके साथ जाया करता है ॥ ५० ॥ इस नगरीमें देवहू नाम ( बायां कान ) दरवाजा उत्तरकी ओर है. इस दरवाजेसे पुरंजन-राजा उत्तर पांचाल नाम ( निवृत्तिशास्त्र ) देशमें श्रुतिधरनाम ( श्रोत्र इंद्रिय ) मित्रके साथ जाया करता है ॥ ५१ ॥ इस नगरीमें आसुरी नाम ( लिंग ) दरवाजा पश्चिम दिशाकी ओर है. इस दरवाजेसे पुरंजन राजा दुर्मदनाम मित्र ( उपस्थ इंद्रिय )

पितृहूर्नृप पुर्याद्वार्दक्षिणेन पुरंजनः ॥ राष्ट्रं दक्षिणपंचालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥ देवहूर्नाम पुर्याद्वा उत्तरेण पुरंजनः ॥ राष्ट्रमुत्तरपंचालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५१ ॥ आसुरीनाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥ ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥ ५२ ॥ निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥ वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥ ५३ ॥ अंधावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ॥ अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥ स यर्ह्यंतःपुरगतो विषूचीनं समन्वितः ॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥ एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वंचितोऽबुधः ॥ महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥

के साथ ग्रामक ( मैथुनसुख ) नाम देशमें जाया करता है ॥ ५२ ॥ फिरभी पश्चिमकी ओर निर्ऋति नाम ( गुदा ) दरवाजा है इस दरवाजेसे पुरंजनराजा लुब्धक नाम मित्रको ( पायु इंद्रिय ) साथ ले वैशस नाम ( मलत्याग ) देशमें जाया करता है ॥ ५३ ॥ इन नौ द्वारोंके उपरांत निर्वाक ( पांव )और पेशस्कृत ( हाथ ) नाम दो दरवाजे औरभी हैं. परंतु ये सदा बंद रहते हैं. इनमेंसे निर्वाक नाम दरवाजेसे इंद्रियोंका राजा पुरंजन चलता है. और दूसरे द्वारसे काम करता है ॥ ५४ ॥ यह राजा विषूचीन ( मन ) नाम नाजरको साथ ले, जब अपने अंतःपुर ( हृदय ) में जाता है तब स्त्री ( बुद्धि ) और पुत्रों ( इंद्रियोंके परिणाम ) के संबंधमें मोह ( तमोगुणका कार्य ) प्रसाद ( सत्वगुणका कार्य ) और हर्ष ( रजोगुणके कार्य ) को प्राप्त हुआ करता है इस प्रकार कर्मा-

प्राणवायु भीतर बहुत भरकर, धुकधुकाने लगा. तब नासिका उत्पन्न हुई. गंधको ग्रहण करनेकी इच्छा हुई तब नासिकामें गंधकी लेजानेवाली वायु देवता, घ्राण इंद्रिय और गंधविषय प्रगट हुआ ॥ २० ॥ जब अपने आत्मामें कुछभी दीख न पड़ा तब प्रकाशशून्य अपने शरीरको और दूसरे पदार्थोंको देखनेकी इच्छा होनेसे विराट्के दो नेत्रगोलक उत्पन्न हुए, उनमें चक्षु, इंद्रिय, रूप विषय और सूर्य, देवता प्रगट हुये ॥ २१ ॥ वेदवाक्योंसे अपने बोधको श्रवण करनेकी इच्छा करते विराट्पुरुषके कान प्रगट हुए. उनमें दिशा देवता, श्रोत्रइंद्रिय और शब्द विषय प्रगट हुआ ॥ २२ ॥ पदार्थोंके कोमलता, कठिनता, लघुता, गुरुता, उष्णता और शीतलतारूप धर्मको जाननेकी इच्छा करते विराट्के त्वचा ( चमड़ा ) गोलक

नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गंधवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥ २२ ॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां लोममहीरुहाः ॥ तत्र चांतर्बहिर्वातस्त्वचालब्धगुणोवृतः ॥ २३ ॥ हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिंद्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २४ ॥ गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥ २५ ॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानंदामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥ २६ ॥

उत्पन्न हुआ. उसमें रोम यानी त्वचा इंद्रिय, वृक्ष देवता और स्पर्श विषय प्रगट हुआ. त्वचामें बाहिर और भीतर वायु रही है, त्वचा करके स्पर्शगुण जाना जाता है ॥ २३ ॥ अनेक कर्म करनेकी इच्छासे विराट्के हाथ पैदा हुए. हाथोंमें बल इंद्रिय और इंद्र देवता प्रगट हुआ. लेनारूप विषय, इंद्र देवता और बल इंद्रियके आधीन है ॥ २४ ॥ मनवांछित गमन करनेकी इच्छा करते विराट्के चरण उत्पन्न हुए. चरणोंके साथ उनके अधिष्ठाता साक्षात् यज्ञमूर्ति विष्णु रहे हैं, उनसे चलनशक्तिरूप चरण इंद्रिय उत्पन्न हुई. तथा जो द्रव्य मनुष्योंको चलनेसे मिल सकता है. वह हुतद्रव्यरूप विषय उत्पन्न हुआ. ॥ २५ ॥ संतान, रतिसुख और स्वर्गादि लोकोंकी इच्छावाले विराट्के शिश्न ( लिंग ) उत्पन्न हुआ. उसमें उपस्थ इंद्रिय, प्रजा-

पति देवता और इन दोनोंके आश्रित कामसंबंधी सुख उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ खायेहुए अन्न आदि पदार्थोंके मल ( कीट ) का त्याग करनेकी इच्छा करते विराट्के गुदा उत्पन्न हुई. उसमें वायु इंद्रिय, मित्र, देवता और इन दोनोंके आश्रित उत्सर्ग विषय प्रगट हुआ ॥ २७ ॥ जब उसके एक शरीर छोड़कर, दूसरा शरीर ग्रहण करनेकी इच्छा हुई तब नाभिद्वार उत्पन्न हुआ. वहां शरीरांतरमें जानेका साधन अपानवायु इंद्रिय और मृत्यु देवता प्रगट हुआ, मरण जो विषय है वह मृत्यु देवता और अपान इंद्रियके आधीन है ॥ २८ ॥ विराट्के अन्नका संग्रह करनेकी इच्छा हुई तब कुक्षिगोलक, अंत्र ( आंत ) इंद्रिय, समुद्र देवता और तुष्टि

उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥ २७ ॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥ २८ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यंत्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चंद्रः संकल्पः काम एव च ॥ ३० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जाऽस्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमांबुवायुभिः ॥ ३१ ॥ गुणात्मकानींद्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥ ३२ ॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥ ३३ ॥

विषय उत्पन्न हुआ. जब पानसंग्रह करनेकी इच्छा हुई तब कुक्षिगोलक, नाड़ियां इंद्रिय, नदियां देवता और पुष्टिविषय उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ जब विराट्पुरुषने अपनी मायाशक्तिका निरंतर चिंतवन करना चाहा, तो हृदय उत्पन्न हुआ. उसमें मन इंद्रिय, चंद्रमा देवता और संकल्प व अभिलाषा विषय प्रगट हुआ ॥ ३० ॥ त्वचा, चमड़ा, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि ये सातों धातु पृथ्वी, जल और तेजके कार्य हैं. प्राण आकाश, जल और वायुसे प्रगट होवे हैं ॥ ३१ ॥ इंद्रियां विषयोंके अभिमुख स्वभाववाली हैं, विषयोंकी सुंदरता अहंकारकल्पित है. वस्तुतः विषय सुंदर स्वभाववाले नहीं हैं; सब विकारोंका स्वरूपभूत मन है. बुद्धि तौ जिस वस्तुको जिस रूपसे जानती है. उस वस्तुका उसी स्वरूपसे निश्चय करनेवाली है ॥ ३२ ॥ पृथ्वी आदि आठ

१ यह बात प्रसिद्ध है कि–प्राण अपानके बंधनके वियोगसे मृत्यु हुआ करता है.

अवशेष रहेगा वहभी मैंही हूं ॥ ३२ ॥ वास्तव अर्थ विनाभी जो प्रतीत होताहै और वास्तव अर्थ होनेपरभी जो प्रतीत नहीं होता, यह मेरी मायाका स्वरूप जानना चाहिये, जैसे आभास यानी प्रतिबिंब वास्तविक अर्थ विनाभी प्रतीत होता है और जैसे राहु ग्रहमंडलमें रहनेपरभी प्रतीत नहीं होता, वैसे जड़शरीरमें आत्मबुद्धि जो होवे है, सो वास्तविक अर्थविना प्रतीत होवे है तथा सर्वप्रपंच ईश्वरमय होनेपरभी जो ईश्वर बुद्धिका न होना है, यह वास्तविक अर्थके होनेपरभी प्रतीतिका नहीं होना है ॥ ३३ ॥ जैसे उत्तम मध्यम शरीरमें पंचमहाभूत, सृष्टि हुए पीछे उसमें प्रवेश करके, रहे हों वैसे प्रतीत होते हैं, परंतु वे कार्यकी उत्पत्तिके प्रथमही

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥ ३३ ॥ यथा महांति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३५ ॥ एतन्मतं समातिष्ठ परमेन समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३७ ॥ अंतर्हितेंद्रियार्थाय हरये विहितांजलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

उसमें कारणस्वरूपसे रहे हैं तासों पीछेसे उनका प्रवेश होना संभवे नहीं, वैसे मैंभी सकल प्रपंचमें पीछेसे प्रवेश नहीं करता; किंतु उसके कारणरूपसे प्रथमतएव ( पहलेहीसे ) प्रवेश करके रहा हूं ॥ ३४ ॥ तत्वजिज्ञासु पुरुषको इतनाही जानना चाहिये कि– कार्यमें कारणद्वारा अनुवृत्तिरूप जो अन्वय और कारणअवस्थामें कार्यसे व्यावृत्तिरूप जो व्यतिरेक इन दोनोंकरके जिसकी सदा सब ठौर प्रतीति है वह आत्मा है ॥ ३५ ॥ परमएकाग्रचित्त होकर, इस मतको धारण करो, जिससे कल्पसंबंधी सृष्टिरचनामें तुमको कदापि मोह न होवेगा ॥ ३६ ॥ शुकमुनि बोले कि– अजन्मा हरि सबजनोंके अधिपति ब्रह्माजीको इस प्रकार उपदेश देकर, उनके देखते देखते अंतर्धान हो गये ॥ ३७ ॥ प्रत्यक्षरूपसे अंतर्धान हुए हरि भगवान्‌को हाथ जोड़ कर, सर्वजीव-

१ यहां समाप्ति है बाकी आदि अंतमें फलस्तुति है.

दूसरा हे माधव! अपनी मायाके प्रभावसे अनेक शक्तियों करके उपबृंहित ( बढ़ेहुये ) इस जगत्‌को रचते, पालते और संहार करते अमोघसंकल्प आप, स्वयमेव ब्रह्मा वगैरः रूप धारण कर, जैसे मकरी अपने जालेके अंदर खेलती है वसे, जिसप्रकार क्रीड़ा करते हो उस सब विषयको जैसे मैं जानजाऊं वैसी बुद्धि मुझे देओ ॥ २६ ॥ २७ ॥ तीसरा आपकी आज्ञानुसार इस प्रजाको आलस छोड़कर, मैं अवश्य रचूंगा, परंतु प्रजाकी रचना करताहुआ मैं बँध न जाऊं, वैसी कृपा करो ॥ २८ ॥ हे ईश! जैसे मित्र मित्रका सन्मान किया करता है, वैसे आपने मेरा हाथ पकड़ने आदिसे सत्कार किया है, सो प्रजारचनेरूप आ-

यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ॥ विलुंपन्विसृजजन् गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ॥ तथातद्विषयांधे हि मनीषां मयि माधव ॥ २७ ॥ भगव-च्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतंद्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं यदनुग्रहात् ॥ २८ ॥ यावत्सखा स-ख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ॥ अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समु-न्नद्धमदोऽजमानिनः ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥ ३० ॥ यावानहं यथा भावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्वविज्ञानम-स्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्ये-त सोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥

पकी सेवामें सावधान रहकर, जबलों उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे प्रजाको रचूं तबलों 'मैंभी एक स्वतंत्र सृष्टि कर्ता हूं' ऐसा मान लाकर, मुझे उद्धतमद न होना चाहिये॥ २९ ॥ ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन श्रीभगवान्‌ने कहा कि--अनुभवसहित परमगुह्य ( गुप्त ) जो मेरा शास्त्रजन्य ज्ञान है, वह मैं कहता हूं सो रहस्य और अंगसहित ज्ञान धारण करो ॥ ३० ॥ जैसा मेरा स्वरूप है, जैसी मेरी सत्ता है और जो मेरे रूप, गुण व कर्म हैं, उन सबका वैसाही यथार्थज्ञान मेरी कृपासे तुम्हें होजावो ॥ ३१ ॥[1]सृष्टिसे पूर्व मैंही था, स्थूल--सू-क्ष्मरूप कार्य और उसका कारण प्रधान यह कुछभी नहीं था, सृष्टिके अनंतरभी मैंही हूं, जो कुछ यह प्रपंच है वह सब मैंही हूं, अंतमें जो

१ यहांसे चतुश्लोकी भागवतका आरंभ है.

कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे ब्रह्माजी ! आपने जगत् रचनेकी इच्छासे बहुत दीर्घकालपर्यंत जो तप किया, उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं, जो कपट रखकर, मेरा आराधन करते हैं, उनपर मैं कभी प्रसन्न नहीं होता ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपका कल्याण होओ और जो आपकी इच्छा हो वही वर मांगो; क्योंकि वर देनेवाला जगत्में एक मैंही हूं और मनुष्यके लिये मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा श्रेय ( कल्याण ) भी नहीं है ॥ २० ॥ जो आपको मेरे लोकका दर्शन हुआ है, यह मेरीही इच्छाका प्रभाव है; क्योंकि एकांतमें 'तप तप' ऐसा बचन सुन कर, जो आपने तप किया ॥ २१ ॥ वह आपको सृष्टिर-

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भसिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवांछितम् ॥ ब्रह्मन् श्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधि ॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं ममलोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २१ ॥ प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ ॥ २२ ॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥ २४ ॥ तथाऽपि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥ २५ ॥

चनाके काममें मोहित देखकर, मैंनेही उपदेश किया था. हे अनघ ! इस जगत्को मैं तपके प्रभावहीसे रचता हूं; तपके प्रभावहीसे पालता हूं तथा तपसेही जगत्का पीछा संहार करता हूं; क्योंकि मेरी साक्षात् अंतरंगशक्ति तप है, मेरा साक्षात् स्वरूप तप है, मेरे तौ पराक्रम दुश्चर तपकाही है ॥ २२ ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि– हे भगवन् ! सब जीवोंके अधिष्ठाता आप सबकी बुद्धिके साक्षी हो, तासों आपने अप्रतिहतज्ञानकरके आप सबका कर्तव्य जानते हो ॥ २४ ॥ तथापि हे नाथ ! मैं जो आपसे प्रार्थना करता हूं, वह मेरी याचना पूर्ण करो, एक तौ अरूपी आपके स्थूल–सूक्ष्म रूपको जैसे मैं जान जाऊं ॥ २५ ॥



१ यस्य ज्ञानमयं तप इति श्रुतेः । अर्थ–जिसका तप ज्ञानमय है

आपना यश गाते हैं, उसे सुन, आप लक्ष्मीजी अपने प्यारे भगवान्के गुण गाती हों वैसे प्रतीत होती हैं ॥ १३ ॥ उस वैकुंठ-
लोकमें सकलभक्तोंके पति, लक्ष्मीपति, यज्ञपति, जगत्पति, प्रभु कि जिनकी सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण आदि अपने प्रधान प्र-
धान पार्षद सेवा कर रहे हैं, उनका दर्शन किया ॥ १४ ॥ कैसे हैं भगवान् कि जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेमें सदा तत्पर हैं, जि-
नकी दृष्टि आसवकी नाईं दर्शन करनेवालोंको आनंदकी देनेवाली है, प्रसन्नहास और अरुण नयनकरके शोभायमान जिनका मुख
है, किरीट धारण किये, कुंडल झलकाये, पीतांबर पहिरे, चार भुजा धरे, वक्षःस्थलमें स्थित लक्ष्मीकरके जो सदा अलंकृत हैं

ददर्श तत्राखिलसात्त्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ सुनंदनंदप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्ष-
दमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥ १४ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ॥
किरीटिनं कुंडलिनं चतुर्भुजं पीतांबरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५ ॥ अध्यर्हणीयासनमास्थितं
परं वृतं चतुःषोडशपंचशक्तिभिः ॥ युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम्
॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतांतरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादांबुजमस्य विश्वसृग्य-
त्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १७॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हण-
म् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियःप्रियं प्रीतमनाः करेस्पृशन् ॥ १८ ॥

॥ १५ ॥ उत्तम सिंहासनपर विराज रहे हैं, वहां चारोंओरसे पचीस तत्वरूप आपनी शक्तियां जिन्हें घेर रही हैं, दूसरोंमें कदा-
पि स्थिर नहीं ऐसी स्वाभाविक अणिमादिक[1] सिद्धियां जिनके पास खड़ी हैं, जो सदा अपनेही स्वरूपमें रमण कर रहे हैं॥ १६॥
उन परमेश्वरके दर्शन होतेही, ब्रह्माजीका हृदय आनंदसे परिप्लुत हो गया, शरीर पुलकित हो, प्रेमके पुंज ( समूह ) से नेत्रोंमें
जल भर आया, ऐसे प्रेममें मग्न होकर, ब्रह्माजीने भगवान्के चरणकमलको कि जिसे परमहंसोंके पथ ( मार्ग ) से प्राप्त हो सक-
ते हैं उसे प्रणाम किया ॥ १७ ॥ प्रेमयुक्त होकर, प्रजा सरजनेके निमित्त अपने सन्मुख उपस्थित हुए ऐसे अपनी आज्ञा करनेके
योग्य ब्रह्माजीको देखकर, मंदमुसुकानकरके शोभायमान वाणीसे प्रसन्नचित्त प्यारे प्रभुने अपने प्यारे ब्रह्माजीका हाथ पकड़कर,

---

१ अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्या, इशित्व, वशित्व यही सिद्धियां हैं.

उससे प्रसन्न होकर, भगवान्‌ने ब्रह्माजीको अपना उत्तम वैकुंठलोक दिखाया. कैसा है वह लोक, कि जिससे बढ़कर दूसरा कोईभी लोक उत्तम नहीं है, जहां किसीप्रकारका क्लेश, मोह और भय नहीं है, पुण्यवान् पुरुष और देवता जिसकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ जहां रजोगुण के तमोगुण और इनसे मिश्रित सत्वगुणकीभी प्रवृत्ति नहीं है, किंतु शुद्धसत्वकी प्रवृत्ति है, जहां कालकाभी पराक्रम नहीं चालता, जहां स्वयं मायाभी नहीं है, तो फिर राग लोभादिकनकी तौ कौन चलाई ? जहां सुरासुरनकरके पूजित, श्याम और उज्वल वर्ण, कमलसे नेत्रवाले, पीतांबर पहने, अतिकमनीय, अतिसुकुमार, जगमगाती उत्तम



तस्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं नयत्परम् ॥ व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशंगवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुंडलमौलिमालिनः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमातावलिभिर्महात्मनाम् ॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमा द्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १२ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ॥ प्रेंखं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १३ ॥

मणियोंके जड़ाऊ पदक और आभूषण धारण किये, देदीप्यमान कुंडल, मुकुट और मालाकरके शोभायमान, मूंगा, वैदूर्यमणि और कमलनालसे रंगवाले अतितेजवान् सब चतुर्भुज स्वरूपवाले भगवान्‌के पार्षद निवास करते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ जहां महात्माओंके देदीप्यमान सुंदर विमानोंकी श्रेणी ( पंक्तियां ) चारोंओर जगमगा रही हैं जैसे आकाशके अंदर मेघमालामें दामिनी दमकती हो, वैसे जहां विमानोंमें बैठीहुई उत्तम स्त्रियां देदीप्यमान हो रही हैं, ॥ १२ ॥ जहां मूर्तिमान् साक्षात् लक्ष्मीजी हिंडोलोंमें विराजीं अनेकप्रकारकी विभूतियोंसे भगवान्‌के चरणोंकी सेवा करती हैं तथा वसंतके अनुचर भ्रमर जो

ताको त्यागकर, केवल पूर्णरूपसे रहता है, यही मोक्षका स्वरूप है ॥ ३ ॥ जीवात्माका स्वरूप जाननेके लिये ब्रह्माजीने निष्कपट तप करके भगवान्‌की सेवा करी, तब उन्होंने ब्रह्माजीको दर्शन दे, जो आत्माका वास्तविक स्वरूप कहा था, वह मैं कहता हूं, सो सुनिये ॥ ४ ॥ जगत्‌के परमगुरु वे आदिदेव ब्रह्माजी जगत् रचनेकी इच्छासे अपने स्थान (कमल) पर बैठ कर, विचार करने लगे, परंतु जिससे प्रपंचकी रचनाका बनाव बनजाय ऐसा कोईभी अव्यभिचार विचार स्फुरण नहीं हुआ ॥ ५ ॥ एक समय जलके अंदर विचार करते बैठे ब्रह्माजीने स्पर्श यानी ककारसे मकारपर्यंत पचीस वर्णोंमेंसे सोलहवां

आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन् रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥ स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपंचनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥ ५ ॥ स चिंतयन् द्व्यक्षरमेकदांऽभस्युपाश्रृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ॥ स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किंचनानां नृप यद्धनं विदुः ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशा विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥ ७ ॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेंद्रियः ॥ अतप्यत स्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥

'त' और इक्कीसवां 'प' अर्थात् 'तप' ये दो अक्षर दोबेर उच्चारण कियेहुए समीपमें सुने महाराज! जो यह तप आकिंचन पुरुषोंका धन कहलता है ॥ ६ ॥ 'तप तप' अर्थात् "तप कर, तप कर" यह कहनेवाला कौन है? इस बातकी खोज करनेके लिये ब्रह्माजीने चारों दिशाओंकी ओर देखा, परंतु वहां दूसरा कुछभी देखनेमें न आया, तब अपने कमलरूप आसनपर विराज, मानों किसीने तपके लिये प्रत्यक्षमें उपदेश किया हो, वैसे उसे (तपको) अपना हित समझ कर, तप करनेमें मन लगाया ॥ ७ ॥ प्राण और मनको जीत, कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रियको वश कर, एकाग्रचित्त हो, तप करनेवालोंमें अतितपस्वी अमोघदर्शन ब्रह्माजीने देवतावोंके हजारवर्षपर्यंत ऐसा तप किया, कि जिससे सब लोक प्रकाशित हो जावें ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मन् ! कुपित ब्राह्मणके श्रापके सिवाय अन्न जलके त्यागसे मेरे ये प्राण व्याकुल नहीं होते; क्योंकि हरिभगवान्‌की कथारूप अमृतका मैं पान कर रहा हूं ॥ २६ ॥ सूतजीने कहा कि-परीक्षित् राजाने इस तरह भगवान्‌की कथासंबंधी प्रश्न किया, तब अत्यंत प्रसन्न होकर, शुकदेवजी सभाके बीच वेदके तुल्य भागवत् नाम पुराणका वर्णन करने लगे, जो ब्रह्मकल्पमें भगवान्‌ने ब्रह्माजीको कहा था ॥ २७ ॥ २८ ॥ पाडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षितने जो जो प्रश्न किये, उन सबका उत्तर शुकदेवजी अनुक्रमसे वर्णन करने लगे ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

न मेऽसवः परायंति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ॥ २६ ॥ सूत-उवाच ॥ स उपामंत्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः॥ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥२७॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८॥ यद्यत्परी-क्षिदृषभः पांडूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते म-हापुराणे द्वितीयस्कंधे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राज-न्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसंबंधः स्वप्नद्रष्टुरिवांजसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहु-रूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हिवाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाय-योः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥

नवमें अध्यायमें राजाके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये हरि भगवान्‌ने जो भागवत ब्रह्माजीको कहा था, वह शुकदेवजीने राजा परी-क्षितसे कहा, यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि-महाराज ! जैसे स्वप्नद्रष्टाके स्वप्नदेहका संबंध अज्ञानविना बने नहीं, वैसे अनुभवस्वरूप आत्माके देहादिकोंके साथ संबंध ईश्वरकी मायाविना वास्तवमें घटे नहीं ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायाकरके आत्मा जो अनेकरूपसा प्रकासे है तथा इस मायाके गुणोंमें रमण करता अहंता ममता बांधे है, यही संसार है ॥ २ ॥ जब अज्ञान निवृत्त हो जाय है तथा प्रकृति और पुरुषसे पर निजआनंदमें रमण करता है, तब अहंता मम-

प्रकृति आदि तत्वोंकी संख्या, लक्षण और कार्यकी हेतुतासे जाननेका प्रकार, परमेश्वरकी पूजाका प्रकार और अष्टांग अध्यात्मयोगकी रीति ॥ १९ ॥ योगेश्वरोंका अणिमादि ऐश्वर्यद्वारा अर्चिरादि मार्गसे गमन, योगीजनोंके लिंगदेहका नाश, वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप ॥ २० ॥ सब जीवोंकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, वैदिक और स्मार्त्त कर्मकी विधि तथा धर्म, अर्थ और कामका अविरोधप्रकार यह सब कहो ॥ २१ ॥ ईश्वरमें लीन होनेवाले जीवोंकी सृष्टि, पाखंडकी उत्पत्ति, आ-

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिंगभंगस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २० ॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २१ ॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखंडस्य च संभवः ॥ आत्मनो बंधमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथाऽऽत्मतंत्रो भगवान्विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २३ ॥ सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २४ ॥ अत्र प्रमाणं हि भवान्परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठंति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २५ ॥

त्माके बंध और मोक्ष तथा आत्माकी स्वस्वरूपसे स्थिति यह कहो ॥ २२ ॥ स्वतंत्र भगवान् अपनी मायासे जिस प्रकारसे क्रीड़ा करते हैं अथवा मायाको त्याग कर विभु भगवान् प्रलयसमयमें जैसे साक्षीकी तरह विराजे हैं, वह कहो ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! जो मैंने आपसे पूंछा है, वह सब हे महामुनि ! शरणागत जो मैं हूं, उसे आपको यथार्थरीतिसे क्रमपूर्वक कहना चाहिये ॥ २४ ॥ इसविषयमें जैसे नारदजीको परमेष्ठी ब्रह्माजीका कहना प्रमाण है वैसे आपका कहना हमें प्रमाण है; क्योंकि दूसरे लोग तो पूर्वजोंकेभी पूर्वजोंके किये कर्मका अनुसरण करते हैं, मतलब यह है कि—हम वैसे गतानुगतिक अंधपरंपरासे चलनेवाले नहीं हैं ॥ २५ ॥

---

१ ऋग्वेदका आयुर्वेद ( वैद्यक ) यजुर्वेदका धनुर्वेद ( शस्त्रविद्या ) सामवेदका गान्धर्व ( गानविद्या ) अथर्ववेदका स्थापत्य ( शिल्पविद्या ) यही चार उपवेद हैं.

यंता, भगवान् अपनी मायाको तज कर, जैसे स्वरूपसे विराजते हैं वह कहो ॥ १० ॥ हमने तो आपहीसे सुना है कि पुरुष भगवान्‌के अवयवोंसे लोकपालोंसहित लोकोंकी कल्पना हुई है और लोकपालोंसहित लोकोंसे इनके अवयवोंकी कल्पना हुई है ॥ ११ ॥ महाकल्प और अवांतरकल्पका प्रमाण कितना है ? भूत, भविष्यत् और वर्तमानका वाचक काल किस प्रकारसे अनुमान किया जाता है ? स्थूल देहाभिमानी मनुष्य, देवता और पितृ आदिके आयुष्यका प्रमाण कितना है ? ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! कालकी सूक्ष्म और स्थूल प्रवृत्ति किस प्रकारसे जानी जाय है ? कर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले स्थान, कितने और कैसे

पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १२॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमंडकोशस्य बाह्याभ्यंतरभेदतः महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १७ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८ ॥

हैं ? ॥ १३ ॥ सत्व, रज और तमोगुणके परिणामरूप देवता आदिशरीरोंकी इच्छा करते जीवोंमेंसे कौन जीव कैसे कर्मोंके समुदायसे कैसे कैसे शरीरको प्राप्त होता है ? ॥ १४ ॥ पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदियां समुद्र और द्वीप इनकी तथा इनमें रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति किसप्रकारसे होवे है ? ॥ १५ ॥ ब्रह्मांडका बाहिर और भीतरसे प्रमाण कितना है ? महत्पुरुषोंका चरित्र, वर्ण और आश्रमके धर्म ॥ १६ ॥ हरिभगवान्‌की अतिआश्चर्यरूप अवतारलीला, युग, युगोंका प्रमाण और प्रत्येक युगमें जो जो धर्म प्रवर्तते हैं, वह सब कहो ॥ १७ ॥ मनुष्योंका साधारण धर्म कैसा है ? और विशेष धर्म कैसा है ? श्रेणी ( कमीन ) लोगोंका और राजाओंका धर्म कैसा है ? और सबलोगोंका आपद्धर्म जो हो सो हमें कहो ॥ १८ ॥

निःसंग मनको लगाकर, शरीरका त्याग करूं ॥ २ ॥ ३ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासे भगवान्के चरित्रका श्रवण करता है अथवा कीर्तन करता है, तौ थोडेही कालसे भगवान् उसके हृदयमें प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ कर्णरंध्रद्वारा अपने भक्तलोगोंके हृदयकमलमें प्रवेश करके, श्रीकृष्णभगवान् जैसे शरदऋतु जलके मलको दूर करती है, वैसे सकल मलको दूर कर देते हैं ॥ ५ ॥ सब क्लेश जिसके निवृत्त हो गये हैं ऐसा, पथिकजन जैसे अपने घरको नहीं छोड़ता, वैसे निष्पापपुरुष श्रीकृष्णभगवान्के चरणमूलका

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुंचति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पांथः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन्देहारंभोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भवंतो जानते यथा ॥ ७ ॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥ यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्तात्ममायां मायेशः शेते स र्वगुहाशयः ॥ १० ॥

त्याग नहीं करता ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! पंचमहाभूतोंके संबंधरहित इस लौकिक आत्माके जो पंचमहाभूतोंसे देहका आरंभ है, सो यदृच्छासे है अथवा कर्मादिहेतुसे है, सो आप यथार्थ रीतिसे जानते हो, इसलिये हमें जैसा हो वैसा कहो ॥ ७ ॥ लोकरचनाका स्वरूपभूत कमल जिनके उदरसे प्रगट हुआ है, उन पुरुषके अवयव, जो इस लौकिक पुरुषके जितनेही हैं, तौ फिर इस लौकिक पुरुषमें और विराट्पुरुषमें क्या फर्क है ? ॥ ८ ॥ नाभिकमलसे प्रगटहुए ब्रह्माजी जिनकी कृपासे प्राणियोंको सृजते हैं और जिनकी अनुग्रहसे ईश्वरके स्वरूपको जानते हैं ॥ ९ ॥ वे जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयके हेतुभूत, सर्वके अंतरयामी, मायाके नि-

अधिक क्या कहूं ? यदि स्त्री, शूद्र, हूण और शबर ये पापीजीव, तथा तिर्यक् यानी पशु–पक्षीभी भगवान्के भक्तलोगोंके स्वभावकीसी शिक्षा धारण करें, तो भगवान्की मायाको जान सकते हैं और उसे पार उतर सकते हैं, तब जो भगवान्के स्वरूपमें मन लगाते हैं, उनका तो कहनाही क्या ? ॥ ४६ ॥ वह भगवान्का स्वरूप सदा शांत, नित्य, सुखस्वरूप, शोकशून्य, भयरहित, ज्ञानघन भेदशून्य, शुद्ध, कार्य कारणसे पर यानी संगरहित और ज्ञाताका स्वरूपभूतही है. जिसमें वाणीका व्यापार

ते वै विदंत्यतितरंति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ ४६ ॥ शश्वत्प्रशांतमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियाऽर्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ्नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिंद्रः ॥ ४८ ॥ स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥

कुछ काम नहीं देता और जिसमें अनेक साधनोंसे सिद्ध होनेवाली क्रियाका उत्पाद्य[1] आप्य[2], संस्कार्य[3] और विकार्य[4]रूप चतुर्विध फल नहीं है तथा जिसके सन्मुखसे शर्मातीहुई माया दूर खिसक जाय है ॥ ४७ ॥ और जैसे दरिद्र पुरुष समृद्ध हुए पीछे दीन अवस्थासंबंधी मजदूरीके साधन कुदाला वगैरः पदार्थ त्याग देता है, वैसे यतिलोक निरंतर साथ रहनेवाले मनको जिस परमात्माके स्वरूपमें स्थिर करके, अभेदज्ञानाके साधन तज देते हैं, वही परपुरुष भगवान्का साक्षात् स्वरूप है, जिसे 'ब्रह्म' ऐसाभी कहते हैं ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणादिकोंके शमदमादिस्वभावोंद्वारा विहित शुभकर्मकी जिन प्रवर्तकसे प्रसिद्धि है और शरीरका

---

१ कुम्हार बासन बनाता है यहां जो बासन उत्पन्न होता है यह उत्पाद्य फल है. २ चक्षुवाला पुरुष रूप देखता है यहां रूप आप्य फल है क्योंकि रूप सिद्ध होते प्राप्त होता है. ३ धर्मीपुरुष राजको प्राप्त होता है यहां पुण्यके संस्कारसे राज्य फल है. ४ सोम पीनेवाले सोमको कूटकर, रस बनाते हैं यहां वल्लीसे रस बनाना विकार है.

वियोग हुए पीछे शरीके उत्पादक पृथ्वी आदिभूतोंका वियोग होनेपरभी आकाशकी तरह जिन अजन्मा पुरुषका वियोग नहीं होता, वे भगवान् सकलफलोंके विभु और देनेवाले हैं ॥ ४९ ॥ हे नारद! विश्वके उत्पादक भगवान्की यह कथा मैंने तुमको संक्षपसे कही, कारण तथा कार्यरूप जगत् हरिसे भिन्न नहीं है और हरि कार्य प्रपंचसे अलग हैं ॥ ५० ॥ यह भागवतनाम पुराण जो भगवान्ने मुझको कहा था और यह विभूतियोंका संग्रह जो मैंने कहा है, इसका तुम विस्तार करो ॥ ५१ ॥ जैसे सबके अंतर्यामी और सबके अधारभूत हरि भगवान्में मनुष्योंकी भक्ति हो जाय, वैसी कल्पना करके तुम वर्णन करो ॥ ५२ ॥

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतंनाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय ॥ ५२ ॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥ यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमंगलाः ॥ २ ॥ कथयस्व महाभाग यथाऽहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निःसंगं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥

जो पुरुष श्रद्धापूर्वक सदा ईश्वरकी मायाका वर्णन करते हैं, अनुमोदन करते हैं और श्रवण करते हैं, वे मायासे मोहित नहीं होते ॥ ५३ ॥ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें ईश और जीवके देहसंबंधका आक्षेप करते राजा परीक्षितने जाननेको इष्ट पुराणसंबंधी बहुतसे पदार्थविषयक प्रश्न किये ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि- हे ब्रह्मन्! निर्गुण भगवान्के गुणवर्णनके निमित्त ब्रह्माजीने नारदजीको प्रेरणा की, तब देवदर्शन नारदजीने जिस जिसको जिस प्रकारसे कहा ॥ १ ॥ हे तत्वजाननेवालोंमें श्रेष्ठ! उसे मैं तत्वसे जानना चाहता हूं. सो हे महाभाग! अद्भुतपराक्रम हरि भगवान्की लोकोंका अतिमंगलकरनेवाली कथा कहो जिस तरह मैं सबके अंतर्यामी कृष्णभगवान्में

मय ब्रह्माजीने प्रथमकल्पके समान इस जगत्को सरजा ॥ ३८ ॥ एक समय धर्मके पति प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाओंके कल्याणकी इच्छासे अपना प्रयोजन सिद्ध होनेके लिये यम नियम धारण किये ॥ ३९ ॥ पुत्रोंके बीच अतिप्रिय भगवान्के परमभक्त महामति, पिताके सेवक और आज्ञाकारी नारदजीने शील, प्रश्रय ( नम्रता ) और इंद्रियदमन करके, मायाके अधिपति विष्णु भगवान्की मायाको जाननेकी इच्छासे पिताको प्रसन्न किया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ लोकोंके प्रपितामह अपने पिता ब्रह्माजीको प्रसन्न-

प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ३९ ॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४० ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४३ ॥ नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताऽहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

हुए देखकर, जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है वही प्रश्न नारदजीने ब्रह्माजीसे किया ॥ ४२ ॥ तब जगत्के पैदाकरनेवाले ब्रह्माजीने प्रसन्न हो कर, दशलक्षणवाला[१] भागवत नाम पुराण जो भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा था, वह ब्रह्माजीने नारदजीको कहा ॥ ४३ ॥ महाराज ! नारदजीने सरस्वतीके तटपर, परब्रह्मका ध्यान करते अमिततेजवाले व्यासमुनिको कहा ॥ ४४ ॥ विराट् पुरुषसे यह जगत् किस प्रकारसे पैदा हुआ यह तुमने पूंछा तथा औरभी जो तुमने प्रश्न किये हैं, उन सबका मैं आपको उत्तर देता हूं सो सुनो ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

---

१ दश लक्षण यानी दश प्रकारकी कथाओंवाला, वे दश प्रकारकी कथा इसी स्कन्धमें आगेके दशवें अध्यायमें कहेंगे।

दशवें अध्यायमें, भागवतके व्याख्यानद्वाराही शुकदेवजी राजा परीक्षितके प्रश्नोंका उत्तर कहने लगे. यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकमुनि बोले कि-इस भागवत्में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दश-विषयोंका वर्णन है ॥ १ ॥ दशवें विषय परमात्माके स्वरूपज्ञानके अर्थ महात्मालोग स्तुति आदि स्थलमें तौ साक्षात् श्रुतिद्वारा और आख्यानभागमें तात्पर्यद्वारा नवों विषयोंका यहां वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ दशों विषयोंका लक्षण कहते हैं. पंचमहाभूत, शब्द स्पर्शादि पांचतन्मात्रा, इंद्रियां, अहंकार और महत्तत्व इन्होंका गुणोंके परिणामद्वारा जो परमेश्वरसे पैदा होना उसे सर्ग १ कहते हैं. विराट् पुरुषकी कीहुई चराचरकी सृष्टिको विसर्ग २ कहते हैं ॥ ३ ॥ रचेहुए पदार्थोंको मर्यादामें रखनेसे जो वैकुंठ

श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वंतरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥१॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयंति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चांजसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेंद्रियधियां जन्मसर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुंठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वंतराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सहशक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥

भगवान्की महिमा उसे स्थिति ३ कहते हैं. निज भक्तोंपर अनुग्रह जो है उसे पोषण ४ कहते हैं. भगवान्के अनुग्रहपात्र उत्तम मन्वंतराधिपतियोंके जो धर्म उन्हें मन्वंतर ५ कहते हैं. कर्मवासनावोंको ऊति ६ कहते हैं ॥ ४ ॥ भगवान्के अवतारोंका चरित तथा भगवद्भक्तोंकी अनेक आख्यानों करके उपबृंहित ( बढ़ी ) उत्तम कथाको ईशानुकथा ७ कहते हैं ॥ ५ ॥ शक्तियोंके साथ जीवात्माका हरिभगवान्में योगनिद्राके अनंतर जो लय होना उसे निरोध ८ कहते हैं. अन्यथा रूपका त्यागकर, अर्थात् अविद्याकरके देहके विषे आरोपण कियेहुए देहाभिमानको त्यागकर, स्वस्वरूपकरके जो स्थिति उसे मुक्ति ९ कहते हैं ॥ ६ ॥ आविर्भाव और तिरोभाव जिससे प्रकाशित होवे है, उस परब्रह्म या परमात्माको आश्रय १० कहते हैं ॥ ७ ॥

आश्रयरूप परब्रह्मका स्वरूप अपरोक्ष अनुभवरूपसे स्पष्ट दिखानेके लिये अध्यात्म आदिका विभाग करतेहैं. जो इन चक्षुआदि इंद्रियोंका अभिमानी और द्रष्टा जीव है वह अध्यात्मिक पुरुष कहलाता है. इन्हीं चक्षु आदिके अधिष्ठाता सूर्य आदि अधिदैवत कहलाते हैं. इसी एक स्वरूपमें अध्यात्म और अधिदैव इन दोनों जुदे भेदोंको प्रगट करनेवाला चक्षु आदि इंद्रियोंके गोलकादिकोंसे उपलक्षित यह दृश्य शरीर आधिभौतिक कहलाता है, अर्थात् इंद्रियां अध्यात्म, देवता अधिदैवत और देहादि दृश्यपदार्थ अधिभूत कहलाते हैं ॥ ८ ॥ इन तीनोंमेंसे एकका अभाव हो तौ दूसरा एक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि ये तीनों परस्पर साक्षेप हैं, इन तीनों पदार्थोंको जो साक्षीपनसे देखता है वही आश्रयरूप परमात्मा है, उसके किसी दूसरेका आश्रय नहीं है ॥ ९ ॥ अध्यात्म आदि पदार्थोंका

योऽध्यात्मिकोयं पुरुषःसोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदाऽसौ स विनिर्गतः ॥ आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः संति न संति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥

विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके लिये सृष्टिप्रकार कहते हैं. सृष्टिके आदिकालमें विराट्पुरुष जब अंडको भेद कर, बाहिर निकले और अपने रहनेकेलिये स्थानकी इच्छा हुई, तब स्वयं ( आपही ) पवित्र भगवान्ने पवित्र जल पैदा किया ॥ १० ॥ अपने रचेहुए जलमें हजारों बरसोंपर्यंत आप रहे, तासों अपना नारायण नाम पड़ा. नारायण शब्दका अर्थ यह है कि, नर नाम भगवान् और जो नरसे पैदा हुआ वह नार यानी जल और जो नर ( जल ) में रहे वह नारायण ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव ये सब जिनकी अनुग्रहसे कार्य कर सकते हैं और जिनकी उपेक्षा होनेपर बिलकुल कार्यक्षम नहीं हो सकते ॥ १२ ॥ योगशय्यासे उठेहुए प्रभु भगवान्ने अपना इकला स्वरूप देख कर, अनेकरूप होनेकी इच्छा करके, अपनी

मायाशक्तिसे तेजोमय देहके अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूतरूपसे तीन विभाग किये, अब एक वह भगवान्का शरीर तीन-प्रकारसे किसतरह भिन्न हुआ वह मैं करता हूं सो सुनिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ क्रियाशक्तिकरके नानाप्रकारकी चेष्टा करते पुरुष भगवान्के शरीरके अंदर रहेहुए आकाशसे ओज ( इंद्रियशक्ति ) सह ( मनकी शक्ति ) और बल ( देहशक्ति ) ये प्रकट हुए, तदनंतर शक्तिमय जो सूक्ष्मस्वरूप तिससे सूत्रात्मा नामक मुख्य प्राण उत्पन्न हुआ जो सबका प्राण है ॥ १५ ॥ महाराज ! जैसे राजाके सेवकोंका व्यवहार राजाके आधीन है. वैसे सर्वप्राणिमात्रमें, जिस महान् प्राणकी चेष्टासे इंद्रियां सर्वचेष्टा

अधिदेवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ॥ अथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधा भिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अंतःशरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥ १५ ॥ अनुप्राणंति यं प्राणाः प्राणं तं सर्वजंतुषु ॥ अपानं तमपानंति नरदेवमिवानुगाः ॥ १६ ॥ प्राणेन क्षिपता क्षत्तृडंतरा जायते प्रभोः ॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥ १७ ॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥ १९ ॥

करती हैं और जिसकी चेष्टा विना इंद्रियोंकी चेष्टा बंद हो जाती है ॥ १६ ॥ सबको चलानेवाले इस प्राणके कारण विराट्पुरुषके शरीरमें भूंख और प्यास पैदा हुई. तदनंतर भूंखे और प्यासे विराट्के प्रथम मुख प्रगट हुआ ॥ १७ ॥ मुखसे तालु अधिष्ठान पैदा हुआ, उसमें जिव्हा इंद्रिय प्रगट हुई, तदनंतर नानाप्रकारका रसरूप विषय प्रगट हुआ जो जीभसे जाना जाता है. और वरुणदेवता उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ विराट्के बोलनेकी इच्छा हुई तब उनके मुखसे अग्नि देवता वाणी इंद्रिय और भाषण रूप विषय उत्पन्न हुआ. वाणी इंद्रिय और अग्नि देवता संबंधी भाषणविषयका जलमें बहुत कालतक निरोध हुआ ॥१९॥

१ इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि–भाषणका देवता अग्नि है. अग्निका और जलका परस्पर विरोध प्रसिद्ध है. अग्नि देवता हो तौ वाणीसे शब्दका उच्चार होते, उस विना होवे नहीं. क्यों कि–अध्यात्मादिक तीनों सापेक्ष हैं यह अनुभवसे जाना जाता है कि–जिस समय मनुष्य जलमें बूडा हुआ हो उसवख्त वाणी इंद्रिय होने परभी अग्निदेवताका जलके साथ विरोध होनेसे शब्दका उच्चारण नहीं होता.

दिका विभाग यह सब मैं आगे विस्तारपूर्वक कहूंगा. अब पाद्मकल्प कहता हूं सो सुनिये ॥ ४७ ॥ शौनकजीने कहा कि- हे सूत ! आपने जो हमें कहा था कि--भगवद्भक्तोंमें उत्तम विदुरजी अपने दुस्त्यज बंधुनको त्यागकर, पृथ्वीके तीर्थ करने निकल गये ॥ ४८ ॥ उन विदुरजीका और मैत्रेयजीका अध्यात्मज्ञानसंबंधी संवाद कहां हुआ ? और विदुरजीके प्रश्न करनेपर भगवान्

शौनक उवाच॥यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः॥चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वाबंधून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बंधुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पुरुषसंस्थानुवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥इति द्वितीयस्कंधः समाप्तः ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

मैत्रेयजीने उनको कौन तत्वका उपदेश किया ? ॥ ४९ ॥ और विदुरजीने अपने बंधुनका त्याग क्यों किया ? और पीछे क्यों आये ? सो हे सौम्य! यह सब विदुरजीका चरित्र हमको कहो ॥ ५० ॥ सूतजीने कहा कि- राजा परीक्षितके पूछने पर महामुनि शुकदेवजीने जो कहा वह सब मैं आपसे राजाके प्रश्नके अनुसार वर्णन करूंगा ॥ ५१ ॥ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

इति श्रीभागवते भाषाटीकासहितः
द्वितीयस्कंधः समाप्तः

॥ श्रीमाधवं वन्दे ॥ श्रीगोवर्धनाद्रिविहारिणे नमः ॥ सर्वशास्त्रार्थवेत्ता श्रीश्रीधरस्वामी वेद व शास्त्रोंके फलरूप श्रीमद्भागवतशास्त्रके अतिगम्भीर आशयको प्रगट करनेवाली 'भावार्थदीपिका' नाम टीकाके आरम्भमें अपने इष्टदेवताका स्मरणरूप मङ्गलाचरण करते हैं. मै रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करता हूं. कैसे हैं प्रभु कि, जिनके चरण-कमलसम्बंधी चैतन्य मकरन्दका समाधिकालमें परमहंस लोगोंने स्वाद लिया है. और जो भक्तलोगोंके मनमें सदा सर्वदा ( ध्यान करनेके हेतु ) निवास करते हैं ॥ १ ॥ अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार कर, अब अपने इष्टरूप श्रीनृसिंहजीको नमस्कार करते हैं. मैं उन श्रीनृसिंह भगवान्का भजन करता हूं कि जिनके मुखारविन्दमें तो साक्षात् सरस्वती, वक्षःस्थल ( छाती ) में लक्ष्मी और हृदयमें अपरोक्ष ज्ञान सदाकाल विराजमान रहते हैं ॥ २ ॥ अब इस भागवतशास्त्रके प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण भगवान्को नमस्कार करते हैं-- मैं उस उपनिषद्गम्य

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ॥ ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥ १ ॥ वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि ॥ यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥ २ ॥ विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ॥ श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥ ३ ॥ माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ ॥ वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥ ४ ॥

सच्चित्आनन्दघन श्रीकृष्णनाम परम धामको नमस्कार करता हूं. कि जो विश्व ( जगत् ) के सर्ग विसर्ग-आदि नव लक्षणों करके लक्षित और जिस्के विषे यह सब जगत् आधेयरूपतासे रहता है ॥ ३ ॥ शैव तो वैष्णवोंकी और वैष्णव शैवोंकी जो परस्पर निन्दा करते हैं. और उसी द्वेषसे महादेव और विष्णु भगवान्की निन्दा करके, जो अज्ञानी नरकमें पड़नेकी सामग्री साधते हैं उन्होंको शिक्षा करते हुये श्रीमद्भागवतका तात्पर्य दिखाते श्रीस्वामीजी कहते हैं कि, मैं मा-( लक्ष्मी ) के धव ( पति ) और उमा ( पार्वती ) के धव ( पति ) अर्थात् विष्णु और महादेवको नमस्कार करता हूं. कैसे हैं वे दोनों देव कि, ईश कहे परमैश्वर्य्यसंपन्न और सर्व शक्तिमान्, सर्व प्रकारकी सिद्धियोंको सिद्ध करनेवाले, परस्पर एकस्वरूप और इसीसे परस्पर नमस्कार जिन्होंको प्रिय है. अर्थात् महादेवको नमस्कार करनेसे तो विष्णु प्रसन्न होते हैं और विष्णुको नमस्कार करनेसे महादेव प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥

जिस प्रकार पूर्वापरकी संगतिमें किसी प्रकारका विरोध न आवे, उसके अनुसार तथा श्रीभागवतसंप्रदायके अनुसारसे यह "श्रीभागवत भावार्थदीपिका" नाम टीका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं ॥ ५ ॥ कदाचित् कोई ऐसी शंका करे कि, क्या तुम्हारी ऐसी सामर्थ्य है ? जो तुम श्रीमद्भागवतके भावार्थको प्रकट कर सकते हो ? तहां कहते हैं कि– कहां तो मैं मन्दमति ? और कहां क्षीरसमुद्रके मन्थनके समान श्रीमद्भागवतकी टीकाका रचना ? क्योंकि, जहां श्रीमद्भागवतके गंभीर अर्थोंके विचाररूप क्षीरसमुद्रके भीतर बड़े बड़े विद्वान्‌रूप मन्दराचल पर्वतकोभी कुछ पता नहीं, बूड़ जाते हैं; वहां विचारा परमाणुतुल्य मैं कौन गिनतीमें ? ॥ ६ ॥ तब ऐसी शंका होती है कि, फिर तू ऐसे दुःसाध्य कार्यमें क्यों प्रवृत्त होता है ? तहां कहते हैं-- धन्य है श्रीमाधवभगवान्‌के चरणारविन्दकी

सम्प्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः ॥ श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं वितन्यते ॥ ५ ॥ काहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः ॥ किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥ ६ ॥ मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम् ॥ यत्कृपा तमहं वंदे परमानन्दमाधवम् ॥ ७ ॥ श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ॥ द्वात्रिंशत्त्रिशतञ्च यस्य विलसच्छाखासहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्त्ति सर्वोपरि ॥ ८ ॥

कृपा कि जो गूंगेको तो विद्वान् बना देती है. और पांगुरेको पर्वत लंघा देती है, अतएव परमानन्दमय श्रीमाधव भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ७ ॥ श्रीमद्भागवतनाम कल्पवृक्ष सर्वशास्त्र पुराण-आदिके शिरपर गरजता रहता है. कैसा है श्रीमद्भागवत कल्पवृक्ष कि, प्रणव (ओंकार) जिसका अंकुर है, ब्रह्म जिसका बीज अथवा उत्पत्तिस्थान है. द्वादशस्कन्ध जिसके स्कन्ध यानी बड़ी शाखायें हैं, प्रेमलक्षणा भक्ति जिसका थामरा (थाला) है तीनसौं पैंतीस अध्याय हैं, सोही छोटी शाखायें हैं अठारह हजार श्लोक हैं वेही पत्ते हैं, ऐसा यह श्रीमद्भागवतरूप कल्पवृक्ष जोकि सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला और परम सुलभ है. सो जीवोंके परमावधि पुण्यके प्रतापसे पृथ्वीपर प्राप्त भया है ॥ ८ ॥ इति श्रीधरस्वामिकृतमंगलाचरणम् ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



---

१ पद ॥ वंदों श्री हरिपद सुखदाई, जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधरेको सब कुछ दरशाई ॥ बहिरो सुनै गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥ सूरदास प्रभुकी शरणागत, बारंबार नमोते पाई ॥

॥ श्रीजगदीशो जयति ॥ श्रीशुकदेवजी जन्म लेतेही संन्यास ले, सर्व कृत्यको त्याग, असहाय होकर, जाने लगे. तब वेदव्यासजी विरहसे व्याकुल हो, "हे पुत्र ! हे पुत्र !" ऐसे पुकारते पीछे चले, उस समय जिन्होंने सर्व प्राणीमय होनेसे वृक्षरूप होकर, पीछा प्रत्युत्तर दिया; उन सर्व प्राणीमात्रके, हृदयमें व्यापकर, रहनेवाले मुनि श्रीशुकदेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ नैमिषारण्यमें विराजेहुए महामति सूतजीको प्रणाम करके कथारूप अमृतका स्वाद लेनेवालोंमें अतिकुशल शौनकजीने यह वचन कहा ॥ २ ॥ श्रीशौनकजी बोले कि-हे अज्ञानरूप अंधकारका विध्वंस करनेके निमित्त करोड़ों सूर्योंके समान कांति-

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वांतविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताऽऽख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ३ ॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्द्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ४ ॥ इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः ॥ क्लेशाक्रांतस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ५ ॥ श्रेयसां यद् भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् साधनं तद् वदाधुना ॥ ६ ॥ चिंतामणिर्लोकसुखं सुरेंद्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुंठं योगिदुर्लभम् ॥ ७ ॥

वाले सूतजी ! मेरे कानोंके लिये अमृतरस बरसनहारा जो कथाओंमें सारभूत हो, वह कहो ॥ ३ ॥ हे सूतजी ! वैष्णव लोगोंके भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और विवेक बढ़नेका उपाय क्या है ? तथा मायाजनित मोह मिटनेका उपाय क्या है ? वह हमें कहो ॥ ४ ॥ इस घोर कलियुगमें जीवोंकी सब सृष्टि आसुरी हो गयी है, अतएव मैं आपसे पूछता हूं, कि-क्लेशोंसे दुःखित जीवोंको पावन करनेके वास्ते अभी क्या मुख्य साधन है ? ॥ ५ ॥ जो कल्याणोंकाभी परमकल्याणरूप है, तथा जो पवित्र करनेवालोंकोभी परमपवित्र करनेवाला है और जिससे श्रीकृष्ण भगवान् सदा प्राप्त रहते हैं, ऐसा साधन हमें कहो ॥ ६ ॥ चिंतामणिरत्न प्रसन्न होकर, लौकिकसुख देता है. कल्पवृक्ष स्वर्गकी संपदा देता है. परंतु गुरुकी बराबरी तो वेभी नहीं कर सकते; क्यों-

कि गुरु प्रसन्न होनेपर योगिजानोंको दुर्लभ ऐसा वैकुंठपद दे देता है ॥ ७ ॥ शौनकके वचन सुन, सूतजीने कहा कि–हे शौनकजी ! आपके चित्तमें बड़ी प्रीति है, इस वास्ते विचार कर, संसारके भयको मिटानेवाला संपूर्ण सिद्धांतोंका सारभूत तत्त्व किजो ॥ ८ ॥ भक्तिके प्रवाहको बढ़ानेवाला और श्रीकृष्णचंद्रको प्रसन्न करनेका हेतुभूत है, वह मैं कहता हूं सो सावधान होकर, सुनो ॥ ९ ॥ कालरूप व्याल यानी सर्पके मुखग्रास यानी डसनेका डर मिटानेके लिये शुकमुनिके कहेहुए श्रीमद्भागवत शास्त्रके सिवाय दूसरा कोईभी शास्त्र कलियुगमें नहीं है ॥ १० ॥ अंतःकरणशुद्धिके वास्ते इसके सिवाय दूसरा कोईभी साधन नहीं है. परंतु पूर्व जन्मके पुण्यविना श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति होनी अतिदुर्लभ है ॥ ११ ॥ जिस समय शुकदेवजी परीक्षित राजाको कथा





सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धांतनिष्पन्नसंसारभयनाशनम् ॥८॥ भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥९॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥ एतस्मादपरं किंचिन्मनःशुद्ध्यै न विद्यते ॥ जन्मांतरे भवेत् पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ ११ ॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ सुधाकुंभं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥ १२ ॥ शुकं नत्वाऽवदन् सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १३ ॥ एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥ क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवान् जहास ह ॥ १५ ॥

कहनेके वास्ते सभामें विराजे उस समय देवतालोग अमृतका कुंभ लेकर, वहां आये ॥ १२ ॥ और उन स्वकार्य साधनेमें कुशल सब देवतानने श्रीशुकदेवजीको प्रणाम करके, कहा कि–हे शुकदेवजी महाराज ! आप हमसे यह अमृतका घट तौ ले लीजिये और इसकी एवजमें हमें यह कथारूप अमृत पिलाइये ॥ १३ ॥ महाराज ! जब ऐसा विनिमय हो जायगा तब राजा तौ अमृतपान किया करेगा और हम सब श्रीमद्भागवतरूप अमृतको पिया करेंगे ॥ १४ ॥ देवतानकी यह बात सुनकर, कहां तौ काच और कहां अमूल्य मणि, ऐसे कहां तौ यह अमृत और कहां इस जगत्में कथामृत; ऐसे विचार कर, शुकदेवजी हँसे ॥ १५ ॥

और उनको भगवद्भक्त न जानकर, कथारूप अमृत नहीं दिया. अतएव मैं कहता हूं कि-श्रीमद्भागवतकी कथा देवतानकोभी अ-तिदुर्लभ है ॥ १६ ॥ ऐसेही परीक्षित राजाका मोक्ष देखकर, ब्रह्माजीकोभी अतिविस्मय हुआ. तब उन्होंने सत्यलोकमें तुला बांधकर, श्रीमद्भागवतका और अन्य सर्व साधनोंका वजन किया तौ ॥ १७ ॥ और सब साधन तौ वजनमें लघु और यह सबसे वजनमें भारी हुआ. तब सब ऋषि इस बातको देखकर, परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ और उन्होंने यह निश्चय जान लिया कि-साक्षात् भगवत्‌का स्वरूपभूत भागवतशास्त्र पृथ्वीनें पाठ व श्रवण करनेसे तुरंत वैकुंठलोकरूप फलका देनेवाला है

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ १६ ॥ रा-ज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ सत्यलोके तुलां बद्ध्वाऽतोलयत् साधनान्यदः ॥ १७ ॥ लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १८ ॥ मे-निरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुंठफलदायकम् ॥ १९ ॥ सप्ताहश्रवणे-नैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २० ॥ यद्यपि ब्रह्मसंबंधाच्छ्रु-तमेतत् सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २१ ॥ शौनक उवाच ॥ लोकवि-ग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २२ ॥ सूत उ-वाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकं ॥ शुकेन मम यत् प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २३ ॥

॥ १९ ॥ दयालु सनकादि मुनियोंने कृपा करके, जो सप्ताहश्रवण करनेकी विधि नारदजीको कही है, उस विधिसे जो सप्ताह-श्रवण करे, उसकी सर्व प्रकारसे मुक्ति हो जाती है ॥ २० ॥ यद्यपि नारदजीने श्रीमद्भागवत ब्रह्माजीके पास श्रवण किया था, तथापि सप्ताहश्रवण करनेकी विधि तौ नारदजीको सनत्कुमारोंने कही ॥ २१ ॥ शौनकने कहा कि-नारदजी तौ सदा लोगोंके लड़ानेमें तत्पर रहते हैं और कदापि एक ठौर स्थिर हो कर, नहीं बैठते हैं, फिर सप्ताहकी विधि श्रवणकरनेमें उनकी प्रीति कैसे हुई ? और उनका व सनत्कुमारोंका संयोग कैसे बन गया ? ॥ २२ ॥ सूतजीने कहा कि-शुकदेवजीने मुझको अपना शिष्य

विचारकर, भक्तिरसको पुष्ट करनेवाली जो गोप्य कथा कही है, वह कथा मैं तुमको कहता हूं सो सुनो ॥ २३ ॥ एक समय निर्मल अंतःकरणवाले चार मुनि ( सनकादिक ) सत्संगके वास्ते बदरिकाश्रम आये, वहां उन्होंने नारदजीको देखा और कहा ॥ २४ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि- हे ब्रह्मन् ! नारद ! आप उदासमुख क्यों हो ? आप चिंता क्यों कर रहे हो ? आप जल्दी २ कहां जाते हो ? और कहांसे पधारे हो ? ॥ २५ ॥ धन जानेपर जैसे संसारीजनका चित्त शून्य हो जाता है, ऐसे आप शून्यचित्त हो रहे हो, इसका कारण क्या है ? वो हमें कहो. आसक्ति-



एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ॥ सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २४ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ कथं ब्रह्मन् दीनमुखः कुतश्चिंतापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २५ ॥ इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तदेवं मुक्तसंगस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबंधनं ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २८ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥ २९ ॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरंभरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३० ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखंडनिरताः संतो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३१ ॥

रहित आपके इस बातका होना योग्य नहीं ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा कि-मैं पृथ्वीको सर्वोत्तम जानकर, यहां आया. फिर यहां पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, ॥२७॥ हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबंधरामेश्वर-आदि तीर्थोंमें चारों ओर घूमा ॥ २८ ॥ परंतु जहां गया वहीं अभी अधर्मके मित्र कलियुगसे इस पृथ्वीको पीड़ित देखा. कहीं भी मैंने सुखको और शांतिको नहीं देखा कि-जिससे मन प्रसन्न हो जावे ॥ २९ ॥ पृथ्वीपर फिरकर, देखा तो कलियुगके प्रभावसे न तो कहीं सत्य है. न तप है. न शौच है. न दान है. और न दया है. सबलोग उदरंभरी, तुच्छ, कपटभाषी, ॥ ३० ॥ मंदभाग्य, मंदमति, आलसी, रोगी और

पाखंडी हो रहे हैं. संत और विरक्त पुरुषोंकी यह दशा है कि-ये लोग परिग्रह बढाये मठ बांधे बैठे हैं ॥ ३१ ॥ घरमें स्त्रियोंकी आज्ञा चल रही हैं. सलाह देनेवाले साले हैं. पिता धनके लोभसे कन्याओंका विक्रय कर रहे हैं. घरमें स्त्री-पुरुषोंके आपसमें कलह मच रहा है ॥ ३२ ॥ आश्रम, तीर्थ, नदियां और देवालय, दुष्ट यवनोंने ठौर ठौर रोंक रखे हैं ॥ ३३ ॥ मैं चारोंओर घूम आया; परंतु मुझको न तो कहीं योगी मिला. न सिद्ध मिला. न ज्ञानी मिला और न कोई उत्तम क्रियावाला पुरुष मिला. पृथ्वीपर तो कलियुगकी दावानल ऐसी लहक गयी है कि-मात्र साधन सब भस्म हो गये हैं ॥ ३४ ॥ इस कलियुगमें

तरुणीप्रभुता गेहे शालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दंपतीनां च कल्कनम् ॥ ३२ ॥ आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३३ ॥ न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३४ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवंति कलाविह ॥ ३५ ॥ एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसंतावचेतनौ ॥ शुश्रूषंती प्रबोधंती रुदंती च तयोः पुरः ॥ ३८ ॥ दशदिक्षु निरीक्षंती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥

रींधाहुआ अन्न देशोंके अंदर बेंचा जाता है. ब्राह्मण वेद बेंचते हैं. स्त्रियां धन लेकर, व्यभिचार करती हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कलियुगके दोषोंको देखता २ पृथ्वीपर भ्रमण करताहुआ मैं यमुनाजीके तटपर आया कि-जहां श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अनेक लीलायें कीं थीं ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वरो ! वहां मैंने एक बड़ा भारी आश्चर्य देखा कि-एक तरुण स्त्री विषण्णचित्त होकर, बैठी है ॥ ३७ ॥ और उसके समीपमें दो वृद्धपुरुष अचेत बड़े निःश्वास डाल रहे हैं. वह स्त्री उनको सचेत करनेका उपाय करती उनकी सेवा कर रही है और सचेत होनेका उपाय न दीखनेसे उनके आगे बैठी रुदन कर रही है ॥ ३८ ॥ और अपने शरी-

रकी रक्षा करनेवालेको देखनेके वास्ते दशों दिशाओंमें देख रही है. और सैकड़ों स्त्रियां उसे बयार करतीहुई बारंबार समझा रहीं हैं ॥ ३९ ॥ यह कौतुक दूरसे देखकर, मैं उनके निकट गया. मुझको देखतेही वह बाला उठी और विव्हल होकर, यह वचन बोली ॥ ४० ॥ स्त्रीने मुझको कहा कि–हे साधु ! क्षणभर ठहेर मेरी चिंताको दूर करे. तुम्हारा दर्शन करनेसे लोगोंके सर्व पाप दूर हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ मैं जानती हूं कि–प्रायः महात्मा आपके वचनसे मेरा दुःख शांत हो जायगा. जब मनुष्य-का बड़ा भाग्य होता है, तब आपसे महात्माओंका दर्शन हुआ करता है ॥ ४२ ॥ नारदजीने कहा कि–हे देवि ! तू कौन है

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदंतिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ बालोवाच ॥ भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिंतामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१ ॥ बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःख-स्य कारणम् ॥ ४३ ॥ बालोवाच ॥ अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामा-नौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४४ ॥ गंगाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ॥ तथापि न च मे श्रेयः से-वितायाः सुरैरपि ॥ ४५ ॥ इदानीं शृणु मद्वार्त्तां सचिंतस्त्वं तपोधन ॥ वार्त्ता मे वितताऽप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४६ ॥

और ये जो दोनो अचेत पड़े हैं सो कौन हैं ? और कमलकेसे नेत्रवाली स्त्रियां जो तेरे पास बैठी हैं ये कौन हैं ? और तेरे दुःखका कारण क्या है ? सो सब सविस्तर मुझे कह ॥ ४३ ॥ स्त्रीने कहा कि–मैं भक्ति हूं और ये दोनों मेरे पुत्र हैं. इनका ज्ञान और वैराग्य नाम है. दैवयोगसे ये ऐसे बूढ़े हो गये हैं ॥ ४४ ॥ जो ये स्त्रियां हैं, वे गंगा–आदि नदियां मेरी सेवा कर-नेके वास्ते यहां आयी हैं. यद्यपि देवता मेरी सेवा करते हैं, तथापि मुझको कोईभी कल्याणका साधन नहीं दीखता ॥ ४५ ॥ हे मुनि ! मेरी वार्ता बड़ी विस्तृत है, सो अब ध्यान लगाकर, आप मेरी वार्ता सुनो और मुझे सुखी करो ॥ ४६ ॥

मेरी जन्मभूमि तौ द्रविडदेश है. कर्णाटक देशमें भरण पोषण पाई हूं. और कहीं २ महाराष्ट्रदेशमेंभी मेरा भरण पोषण हुआ है; परंतु गुर्जरदेश-( गुजरात ) में आते तो मेरी यह दशा हुई कि-यकायक जरा ( बुढापा ) ने आकर, मुझे घेर लिया ॥ ४७ ॥ गुजरातमें जातेही पाखंडोंने मेरे अंग छिन्न भिन्न कर दिये. और कलियुगके प्रभावसे मैं इन पुत्रोंके साथ दुर्बल होकर, बहुत समयतक इस दुर्दशामें पडी रही ॥ ४८ ॥ निदान पृथ्वीपर घूमती २ मैं वृंदावनमें पहुँची तो अभी सुंदर रूपवती प्रिय स्वरूप नवीन अवस्थावाली तरुण स्त्री बन गयी हूं ॥ ४९ ॥ परंतु मेरे पुत्रोंकी वोकी वो दुर्दशा है, ये मेरे पुत्र यहां सोये पडे हैं.

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्नाटके गता ॥ क्वचित् क्वचिद् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४७ ॥ तत्र घोरकलेर्योगात् पाखंडैः खंडितांगता ॥ दुर्बलाऽहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मंदता ॥४८॥ वृंदावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ॥ जाताहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम् ॥४९॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५० ॥ जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥ साहं तु तरुणी कस्मात् सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५२ ॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत् तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५४ ॥

और क्लेश पा रहे हैं. इस वास्ते मैं इस स्थानको छोडकर, दूसरे ठौर जाना चाहती हूं ॥ ५० ॥ मेरे पुत्रोंको वृद्ध देखकर, मैं दुःख पा रही हूं. सो हमारा दुःख दूर करो. हे नारदजी ! मैं आपसे पूंछती हूं कि-हम तीनों साथके साथ रहते हैं, फिर यह विपरीत बात कि-मैं माता हूं वो तौ तरुण और ये पुत्र हैं वे जरठ, ऐसा क्यों हुआ ? यदि माता वृद्ध होवे और पुत्र तरुण होवें तब तौ ठीकही है, परंतु यह विपरीत बात क्यों हुई ? ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ मुझे इस बातका मनमें आश्चर्य तौ जुदा होता है और दुःख जुदा आता है. हे योगेश्वर ! हे बुद्धिमान् नारदजी ! इसका कारण क्या है ? वह मुझे कहो ॥ ५३ ॥ नारदजीने कहा कि-हे निष्पापिनि ! मैं ज्ञानदृष्टिसे तेरा यह सब हाल जानता हूं. तू किसी बातकी चिंता मत करे. प्रभु तेरा

भला करेंगे ॥ ५४ ॥ सूतजीने कहा कि-एक क्षणभरमें निश्चय कर, नारदजीने कहा कि-हे बाले ! मैं इसका कारण कहता हूं सो तू सावधान होकर, सुन. यह कलिकाल महाविकराल है ॥ ५५ ॥ इससे सदाचार, योगमार्ग और तप सब लुप्त हो गये हैं लोग सब पापके कारण आसुरी हो गये हैं. लोगोंमें केवल ठगाई और दुराचार रह गया है ॥ ५६ ॥ इस कलियुगका ऐसाही प्रभाव है कि-भले मनुष्य तो इसमें दुःख पाते हैं और दुष्ट प्रसन्न रहते हैं. इसवास्ते इस समयमें तो जो धीरज धारण करे, वह पंडित धीरजवाला और बुद्धिमान माना जाता है ॥ ५७ ॥ इस कराल कलिकालमें व-र्षावर्ष पृथ्वी पापके कारण उत्तरोत्तर ऐसी शेषजीको भार देनेवाली हो गयी है, कि- इसका छूना तो दूर रहा, परंतु देखने-

सूत उवाच ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वाऽवहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥५५॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायंते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥ ५६ ॥ इह संतो विषीदंति प्रहृष्यंति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पंडितोऽथवा ॥ ५७ ॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा॥ वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मंगलं नापि दृश्यते ॥ ५८ ॥ न त्वामपि सुतैः साकं कोपि पश्यति सांप्रतम् ॥ उपेक्षिताऽनुरागांधैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥५९॥ वृंदावनस्य संयोगात् पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृंदावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६० ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुंचतः ॥ किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६१ ॥

केभी अयोग्य होती चली जाती है. मैं देखता हूं तो मुझे इसपर कहीं मंगलका लेश नहीं दीख पड़ता है ॥ ५८ ॥ अभी कोईभी मनुष्य न तो तुझको देखता है और न तेरे पुत्रोंकी ओर दृष्टि देता है. लोक तो सब रागांध हो रहे हैं, इसवास्ते तेरी यह जर्जरअवस्था हो गयी है ॥ ५९ ॥ अभी तेरी जो यह तरुणअवस्था हुई, उसका कारण केवल यह वृंदावन है. धन्य है यह वृंदावन कि-जहां भक्ति सदा आनंदसे नृत्यकर रही है ॥ ६० ॥ यहां तेरे अनुरागी लोग हैं, इसवास्ते तेरी दुर्दशा तो जाती रही, परंतु इनका ग्राहक कोई यहां नहीं है. इसवास्ते इनकी जरा निवृत्त नहीं होती. यद्यपि इनकी जरा निवृत्त नहीं हुई है तथापि दूसरे स्थानकी अपेक्षा तो इनको यहां बहुत आराम है; क्योंकि दूसरे ठौर तो इनकी रात व दिन बिलकुल आंखभी

नहीं मूंदती थी, परंतु यहां आनेके अनंतर ये आंख मूंद शांतिसे सोये हैं ॥ ६१ ॥ नारदजीके ये वचन सुनकर, भक्तिने कहा कि- हे नारद ! परीक्षित राजाने इस अपावन कलिकालको बाकी क्यों रखदिया ? और इस कलियुगके प्रवृत्त हुए पीछे सब सार कहां चला गया ? ॥ ६२ ॥ और परमदयालु हरि इस अधर्मकी उपेक्षा क्यों करते हैं ? हे नारदजी ! मेरे ये संदेह आप कृपा करके दूर करो. मैं आपके वचन सुनकर, बहुत शांतिको पायी हूं ॥ ६३ ॥ नारदजीने कहा कि-हे बाला ! जो तूने पूंछा है, वह मैं कहता हूं सो प्रेमसे सुन. हे भद्रे ! मैं तुझे इसका सब का-

श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिंधि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ यदिपृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६४ ॥ यदा मुकुंदो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ॥ तद्दिनात् कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६५ ॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ ६७ ॥

रण कहूंगा कि,-जिससे तेरा संकट मिट जायगा ॥ ६४ ॥ जिस दिन हरि भगवान् पृथ्वीको छोड़कर, निजधाम पधारे, उसी दिनसे सर्व साधनोंका नाश करनेवाला यह कलिकाल पृथ्वीपर प्रवृत्त हुआ ॥ ६५ ॥ राजा परीक्षितने इसको दिग्विजयमें गौ और बैलरूप पृथ्वी व धर्मको मारते देखा, तब उसने इसको मारनेका विचार किया, परंतु यह दीनकी भांति चरणोंमें गिर पड़ा, तब राजाने इसको छोड़ दिया. छोड़नेका कारण यह था कि-परीक्षित राजा भ्रमरके समान सारग्राही था ॥ ६६ ॥ कलिकाल अनेक दोषोंका धाम है, परंतु इसमें एक ऐसा गुण है कि-जिसके वास्ते राजा परीक्षितनेभी इसे अपराधी होनेपरभी छोड़ दिया. वह गुण यानी सार यह है कि-तप, योग और समाधिसे अन्य युगोंमें जिस फलका लाभ होना अतिकठिन पड़

जाता है, वह फल इस कलियुगमें भगवान्का कीर्तन यानी भक्ति करनेसे मिल जाता है ॥ ६७ ॥ इस एकाकार असार कलिकालमें एक यह सार देखकर, परीक्षित राजाने कलियुगी जीवोंके कल्याणके वास्ते इसे अवशेष रख दिया है ॥ ६८ ॥ अभी सब पदार्थोंका सार निकल गया, उसका मुख्य कारण तो कुकर्माचरण है. अभी पृथ्वीपर जो पदार्थ हैं, वे सब बीजहीन तुषके समान थोथे हैं ॥ ६९ ॥ कथाका सार तो तभीसे चला गया कि-जबसे ब्राह्मणोंने कणके लोभसे भगवत्संबंधी कथा घर घरमें

एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९ ॥ विप्रैर्भागवती वार्त्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७० ॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेऽपि तिष्ठंति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥ तेऽपि तिष्ठंति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥ मनसश्चाजयाल्लोभाद्दंभात्पाखंडसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७३ ॥ पंडितास्तु कलत्रेण रमंते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७४ ॥

और छोकरे छोकरेके आगे कर दी ॥ ७० ॥ और तीर्थोंका सार तबसे चला गया कि-जबसे अतिउग्र क्रूर कर्म करनेवाले नास्तिक और नरकके अधिकारी नृशंसलोग तीर्थोंपर रहने लगे ॥ ७१ ॥ तपका सार तबसे गया कि,-जबसे काम, क्रोध, लोभ तृष्णा और लालचसे व्याकुलचित्त लोक तपस्याका ढोंग करने लगे ॥ ७२ ॥ और ध्यानका फल मनके न जीतनेसे तथा लोभ दंभ और पाखंडका आश्रय लेनेसे व शास्त्रका अभ्यास न करनेसे चला गया ॥ ७३ ॥ पंडित लोगोंकी तो अभी यह दशा है कि,-मुक्तिके साधनको छोड़कर, पुत्र पैदा करनेमें निपुण बनकर, भैंसोंकी भांति स्त्रियोंके साथ रमण कर रहे हैं ॥ ७४ ॥

१ और अभी तो इससेभी बढ़ कर वर्ताव हो रहा है कि शूद्र बल्कि नीचजातिके लोग उपदेश करने लग गये हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य कि जो उत्तमजाति यानी भगवान्के निकटका संबंध रखनेवाले हैं वे उनसे कथा सुनते हैं और उपदेश सुनते हैं. धन्य है कलि महाराजकी महिमा कि जिसमें सब कुछ हो सकता है.

संप्रदायके लिये जो वैष्णवपन है वह तो कहीं देखनेमेंही नहीं आता है. इस प्रकार ठौर ठौर वस्तुमात्रका सार कहीं दिखाई नहीं देता है ॥ ७५ ॥ हे देवी ! भगवान् क्यों सहन करते हैं ? इसका कारण यह है कि-यह तो युगका धर्म है इसमें दूसरेका क्या दोष ? ॥ ७६ ॥ सूतजीने कहा कि-नारदजीका यह वचन सुनकर, भक्तिको बड़ा विस्मय हुआ. और हे शौनक ! उसने जो वचन कहा वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ७७ ॥ भक्तिने कहा कि-हे नारदजी ! आप बड़े बड़भागी हो. मेरा प्रारब्ध अब अच्छा है, तब आपका आगमन हुआ है. आपजैसे सत्पुरुषोंका दर्शन करनेसे सर्व सिद्धियां सिद्ध हो जाती हैं ॥ ७८ ॥

न हि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरःसरा ॥ एवं प्रलपतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७५ ॥ अयं तु युगधर्मो हि वर्त्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुंडरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताऽस्मि ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदयसे बाले अहो चिंतातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुंदर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥

हे नारदजी ! आपका जय हो. आप कि-जिनके दर्शन व उपदेशको पा, उसका विचार कर, प्रल्हादने भगवन्मायाको जीत लिया है. तथा ध्रुवजी जिनके कृपापूर्वक उपदेशसे ध्रुवपदको प्राप्त हुए हैं उन सकलकल्याणोंके करनहारे ब्रह्माजीके पुत्र आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे भागवतमाहात्म्ये रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-हे बाला ! तू वृथाही खेद करती है. तू चिंता क्यों करती है ? श्रीकृष्णचंद्रके चरणकमलोंका स्मरण कर, तेरा दुःख आपही निवृत्त हो जायगा ॥ १ ॥ जिन्होंने कौरवोंके दुःखसे द्रौपदीकी दुःशासनके चीर हर-

णसे रक्षा की और गोपांगनाओंका पालन किया, वे हरि कहीं गये नहीं हैं ॥ २ ॥ हे भक्ति ! तू तौ भगवान्‌को प्राणोंसेभी प्यारी है. तेरे बुलानेसे हरि भगवान् नीचके घरभी चले जाते हैं ॥ ३ ॥ अभी इस कराल कलिकालमें तौ तूही प्रधान है. यद्यपि सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुगमें ज्ञान, वैराग्य मोक्षके साधन थे, तथापि अभी तौ केवल तूही परब्रह्मको प्राप्त करनेवाली है ॥ ४ ॥ चिदानंदमूर्ति हरिने विचार किया था कि–अब इस कलिकालमें लोगोंके कल्याणके लिये क्या उपाय किया जाय ? फिर विचारके साथ भगवान्‌ने निश्चय किया कि,–इस युगमें भक्तिविना लोगोंका कल्याण होना बने नहीं, ऐसा निश्चय

त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोधिका ॥ त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥ सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानंदचिन्मूर्तिः सुंदरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥ बद्धांजलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान् पोषयेति च ॥ ६ ॥ अंगीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुंठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यांतं महानंदेन संस्थिता ॥ ९ ॥

कर, श्रीकृष्ण भगवान्‌की प्यारी अपने सदृश स्वरूपवाली सुंदरीरूप तेरा आविर्भाव किया ॥ ५ ॥ एकसमय अवसर पा, हाथ जोड़, तूने भगवान्‌से प्रार्थना की कि–' मुझे क्या आज्ञा है ? मैं क्या करूं ? ' तब भगवान्‌ने तुझको कहा कि–' तू मेरे भक्तलोगोंका पोषण कर ' ॥ ६ ॥ तूनेभी उस आज्ञाको स्वीकार किया, तब भगवान् तुझपर प्रसन्न हुए. और तुझको मुक्तिनाम दासी और ये ज्ञान विज्ञान नाम दो दास दिये ॥ ७ ॥ तेरा मुख्य निवासस्थान वैकुण्ठ है, सो वैकुंठमें तौ तू अपने साक्षात् स्वरूपसें भक्तोंका पोषण करती है और पृथ्वीमें भक्तोंका पोषण करनेके वास्ते तू छायारूप धर कर, पोष रही है ॥ ८ ॥ सत्य, त्रेता और द्वापर युगतक तौ मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यके साथ तू पृथ्वीपर आनंदपू-

वैंक रही ॥ ९ ॥ अब कलियुगमें पाखंडरूप रोगसे पीड़ित होकर, मुक्ति तौ तेरी आज्ञासे पीछी वैकुंठ धामको चली गयी है ॥ १० ॥ सो जिस समय तू उसको याद करती है, उसी क्षण वह तेरे निकट आकर, उपस्थित हो जाती है. और फिर पीछी तेरी आज्ञा पाकर, चली जाती है. और ये ज्ञान, वैराग्य तौ तेरे पुत्र बनकर, तेरे पासमेंही पड़े हैं ॥ ११ ॥ यद्यपि कलिकालके प्रभावसे लोगोंने इनकी उपेक्षा कर दी; इससे ये मंद और वृद्ध हो गये हैं, तथापि अब तू इनकी चिंता मत कर; क्योंकि इनके वास्ते मैं उपाय सोचता हूं ॥ १२ ॥ यद्यपि कलियुग जैसा कराल काल दूसरा

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखंडामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुंठं पुनरेव सा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मंदौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिंतां मुंच त्वमुपायं चिंतयाम्यहम् ॥ १२ ॥ कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥ अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्त्तये ॥ १४ ॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यंति कलाविह ॥ पापिनोऽपि गमिष्यंति निर्भयाः कृष्णमंदिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यंति कीनाशं स्वप्नेप्यमलमूर्त्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

नहीं है, तथापि हे सुंदरी ! मैं तुझको इस युगमें घर घरमें और जन जनमें कर दूंगा ॥ १३ ॥ दूसरे धर्मोंका पराभव करके जो मैं बड़े २ उत्सवोंके साथ तुझको लोकमें प्रवृत्त न कर देऊं तौ, मैं हरि भगवान्‌का दास न कहाऊं ॥ १४ ॥ इस कलियुगमें जो लोग भक्ति करेंगे वे लोग चाहो पापी क्यों न होवें, निधड़क भगवत्पदको प्राप्त हो जायंगे ॥ १५ ॥ जिन लोगोंके चित्तमें सदा प्रेमलक्षणा भक्ति होगी, वे स्वच्छमूर्ति पुरुष स्वप्नमेंभी यमराजको नहीं देखेंगे ॥ १६ ॥ जिनके मनमें भक्ति है, उनका पराभव करना तौ दूर रहा. प्रेत, पिशाच, राक्षस वा दैत्य छूभी न सकेंगे ॥ १७ ॥ भगवान् जैसे भक्तिके वश हैं, ऐसे तप, वेद, ज्ञान

और कर्म किसीके वश नहीं हैं. इसमें प्रमाणभूत गोपियोंको देख लीजिये ॥ १८ ॥ जब हजार पूर्वजन्मके पुण्योंका संस्कार एकत्रित होता है, तब भगवान्में भक्ति होती है. कलियुगमें तो भक्तिही प्रधान है. भक्तिसे भगवान् साक्षात् प्राप्त हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जो भक्तलोगोंसे द्रोह करते हैं, वे त्रिलोकीमें दुःख पाते हैं. देखो ! अंबरीषराजासे द्रोहकरके दुर्वासा दुःखित हुए ॥ २० ॥ व्रत, तीर्थ, योग, याग, ज्ञान व कथावार्ताओंकी कोई आवश्यकता नहीं हैं. क्योंकि-हरि भगवान्की भक्ति करनेहीसे मोक्ष हो जाता



नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदंति जगत्रये ॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिंदकः ॥ २० ॥ अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगै रलं मखैः ॥ अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुंचामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥ कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णांते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥ ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

है. अतएव कथावार्ताभी ऐसी सुननी चाहिये कि-जिससे भक्ति प्राप्त हो जावे ॥ २१ ॥ सूतजीने कहा कि-इस प्रकार नारदजीने भक्तिका महात्म्य कहा उसे सुन कर, भक्ति हृष्ट पुष्ट होकर, बोली ॥ २२ ॥ भक्तिने कहा कि-हे नारद ! तुम बड़े धन्य हो ! तुम्हारी मुझमें निश्चल प्रीति है अब मैं तुमको कभी नहीं छोडूंगी. मैं सदा तुम्हारे हृदयमें रहा करूंगी ॥ २३ ॥ हे साधु ! तूने कृपा करके, मेरा दुःख तो मिटा दिया, परंतु अब इन ज्ञानविज्ञानको सचेत करो, सचेत करो ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा कि-भक्तिका यह वचन सुनकर, करुणापूर्ण नारदजी करपल्लवसे ज्ञानवैराग्यको चापकर, सचेत करने लगे ॥ २५ ॥ फिर कानमें मुँह

लगा कर, उच्च स्वरसे पुकारने लगे कि-' हे ज्ञान ! सचेत हो. हे वैराग्य सचेत हो ' ॥ २६ ॥ वेदघोष व वेदांतश्रवण तथा गीतापाठ-आदिसे बारंबार जगाया; तब वे किसी प्रकार बलात्कार करके उठे ॥ २७ ॥ परंतु आख खुली नहीं. आलस्यके मारे जँभाइयां खाकर, सूखे काठके सदृश अंगवाले वे दोनों बगुलेकी नाई पीछे धरतीपर गिर गये ॥ २८ ॥ क्षुधासे दुर्बल वे दोनों पीछे सो रहे तिन्हें देख कर, नारदजी चिंता करने लगे कि;-अब इनके वास्ते क्या उपाय करूं ? ॥ २९ ॥ अहो ! इनकी यह निद्रा किसप्रकार जाय ? और यह अतिशयित जर्जरपन कैसे मिटे ? हे शौनक ! इस प्रकार चिंता करतेहुए नारदजीने भगवान्-

वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७॥ नेत्रैरनवलोकंतौ जृंभंतौ सालसा वुभौ ॥ बकवत् पतितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥२८॥ क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिंतापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥ अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिंतयन्निति गोविंदं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥ व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यंति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२ ॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनयाऽकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत् साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत् तयोः ॥ ३५॥

का स्मरण किया ॥ ३० ॥ भगवानका स्मरण करतेही आकाशवाणी हुई कि-" हे नारद ! आप चिंता मत करो. उद्यम करो. तुम्हारा उद्यम सफल होगा ॥ ३१ ॥ हे नारद ! इसके वास्ते तुम सत्कर्म करो, इसका उपाय आप साधुजनोंसे पूछो, सो वे साधुजनोंमें अलंकाररूप साधुलोक आपको सत्कर्म बतावेंगे ॥ ३२ आप सत्कर्म करोगे तब इनकी निद्रा और वृद्धत्व दोनों चले जायंगे. और क्षणभरमें भक्ति सर्वत्र फैल जायगी " ॥ ३३ ॥ इस प्रकारकी आकाशवाणी स्पष्ट सब लोगोंने सुनी. नारदजी इस वाणीको सुनकर, विस्मित हुए और बोले कि-इसका तौ कुछ पता लगा नहीं ॥ ३४ ॥ नारदजीने कहा कि-आकाशवाणीने

जो उपाय बताया, वह तौ गुप्तरीतिसे बताया. अब इसका क्या उपाय करें ? कि–जिससे इनका काम बन जाय ॥ ३५ ॥ अब वे सत्पुरुष कहां मिलें, कि–जिनसे इसका साधन मिले. आकाशवाणीने जो उपाय बताया, उसके वास्ते अब मैं क्या करूं ? ॥ ३६ ॥ सूतजीने कहा कि–नारदजी उन दोनोंको वहीं वैसेही छोड़कर, निकले और तीर्थ तीर्थमें घूम कर, मुनीश्वरोंसे पूंछा ॥ ३७ ॥ परंतु उस वृत्तांतको सुनकर, पीछा कोईभी नहीं बोला. उनमेंसे कितनेएक बोले कि–यह बात होनी असाध्य है. और कितनेएकोंने कहा कि–इसका पता लगना कठिन है ॥ ३८ ॥ कितनेएक चुप रह गये. कितनेएक वहांसे चल निकले. ऐसे त-

क्व भविष्यंति संतस्ते कथं दास्यंति साधनम् ॥ मयात्र किं प्रकर्त्तव्यं तदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तांतः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियंतस्तु पलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत् त्रिकं यदा ॥ ४० ॥ उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपन् जनाः ॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥ ४१ ॥ तत् कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टं निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिंतातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥

माम त्रिलोकीके बीच एक बड़ा आश्चर्यजनक हाहाकार मच गया ॥ ३९ ॥ और लोग कान कानमें बातें करने लगे कि–जब वेदघोष, वेदांतवाक्य और गीतापाठसे भक्ति, ज्ञान व वैराग्य सचेत न हुए तौ अब इसका उपाय होना नहीं है. जब स्वयं नारदजीकोभी इसका उपाय न सूझा तो अब क्या होना है ? ॥ ४० ॥ ४१ ॥ जब नारदजीजैसे मोहित हो गये तौ अब दूसरे मनुष्य इसमें क्या कह सक्ते हैं ? ऐसे सब मुनिलोगोंने नारदजीके प्रश्न करनेपर निर्णय किया. और कहा कि–'यह असाध्य है' ॥ ४२ ॥ तब नारदजीने चिंतातुर हो, बदरिकाश्रममें आ, 'यहां तप करूंगा" ऐसा निश्चय किया ॥ ४३ ॥

इतनेमें तो कोटिक सूर्योंके समान तेजवाले सनत्कुमारोंको अपने सामने खड़े देखकर, नारदजीने उनको कहा ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि-हे सनत्कुमारो ! अब तो मेरा प्रारब्ध अच्छा आ गया दीखे है; क्योंकि आपका समागम हुआ. मैं जो आपसे पूंछता हूं, उसका उत्तर कृपाकरके, मुझको शीघ्र देओ ॥ ४५ ॥ आप सब बुद्धिमान्, बहुश्रुत और पूर्वजोंकेभी पूर्वज होनेपर पांचवर्षके बालककीसी अवस्थावाले योगीजन हो ॥ ४६ ॥ तथा सदा वैकुंठमें निवास करते हो. निरंतर हरि भगवान्का कीर्तन करते हो. केवल भगवान्की कथासेही आप अपना निर्वाह करते हो. और भगवान्की लीलारूप अमृतरसका पान करनेसे सदा मदमत्त

तावद् ददर्श पुरतः सनकादीन् मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः ॥ कुमारा वदतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवंतो योगिनः सर्वे बुद्धिमंतो बहुश्रुताः ॥ पंचहायनसंयुक्ता पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान् न बाधते ॥ ४८ ॥ येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्त्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥ अशरीरगिरोक्तं यत् तत् किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत् प्रब्रुवंतु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

रहते हो ॥ ४७ ॥ सदा सर्वदा आपके मुखसे ' हरिरेव शरणम् ' ऐसा वचन निकला करता है. अतएव कालकी भेजीहुई जरा आपको बाधा नहीं कर सक्ती ॥ ४८ ॥ आपके केवल भ्रुकुटिमात्रके चढानेसेही द्वारपाल पृथ्वीमें दैत्ययोनिको प्राप्त हुए हैं. और आपकीही कृपासे पीछे वैकुंठ धामको गये हैं ॥ ४९ ॥ मेरे अहो भाग्य हैं; तब आपके दर्शन हुए हैं. सो दयापरायण आप मुझ दीनपर दया करो ॥ ५० ॥ महाराज ! आकाशवाणीने जो साधन बताया है वह क्या है ? और उसका अनुष्ठान कैसे करना चाहिये सो आप सविस्तर मुझे कहो ॥ ५१ ॥ अब मैं क्या उपाय करूं ? जिससे भक्ति, ज्ञान व वैराग्य इनको सुख हो जावे और

प्रेमपूर्वक ये तीनों पृथ्वीपर स्थापित हो जावें ॥ ५२ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि–हे नारद ! आप किसी प्रकारकी चिंता मत करो. मनमें प्रसन्न रहो; क्योंकि इसका उपाय तौ पूर्वसिद्ध और सुखसाध्य है ॥५३॥ हे नारद ! आप बड़े धन्य हो. आप विरक्तपुरुषोंके शिरोमणि हो. आप भगवद्भक्तोंमें अग्रणी और योगका प्रकाश करनेको सूर्य हो ॥ ५४ ॥ आप भगवद्भक्त हो इसलिये आप भक्तिको स्थापन करो. इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि श्रीकृष्णभक्तोंका तौ यह कामही है ॥ ५५ ॥ ऋषिलोगोंने लोकमें अनेक मार्ग प्रगट किये हैं, परंतु वे सब श्रमसाध्य और प्रायः स्वर्गके देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ हे नारद ! जो वैकुंठका

कुमारा ऊचुः ॥ मा चिंतां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्त्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मंतव्यं भक्त्यर्थमनुवर्त्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा ॥ ५५ ॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पंथानः प्रकटीकृताः ॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥ वैकुंठसाधकः पंथा स तु गोप्यो हि वर्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥ सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत् पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचिकाः ॥ ५९ ॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥

साधक मार्ग है, वह तौ बड़ा गोप्य है. अतएव इस मार्गका बतानेवाला तौ कोई भाग्यहीसे मिलता है ॥ ५७ ॥ आकाशवाणीने जो तुमको सत्कर्म बताया है वह मैं तुमको कहता हूं सो प्रसन्नचित्त होकर, सुनो ॥ ५८ ॥ जो द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ है, वे सब कर्मोंके सूचक हैं ॥ ५९ ॥ तिनमें विद्वान्‌लोगोंने सत्कर्मका सूचक ज्ञानयज्ञ कहा है, सो वह ज्ञानयज्ञ शुकदेवजी–आदि महात्माओंने श्रीमद्भागवतकथारूप कहा है ॥ ६० ॥ श्रीमद्भागवतके श्रवणसे भक्ति, ज्ञान व वैराग्य इनका बल बढ़ जायगा. ज्ञानवैराग्यका दुःख मिट जायगा और भक्ति सुखी हो जायगी ॥ ६१ ॥

जैसे सिंहके शब्दसे सब भेड़िये भाग जाते हैं, ऐसे श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे सब कलिकालके दोष निवृत्त हो जायंगे ॥ ६२ ॥ फिर ज्ञानवैराग्यके साथ प्रेमरससे पूर्ण भक्ति घर घरमें और जन जनमें हो जायगी ॥ ६३ ॥ नारदजीने कहा कि—मैं वेदघोष, वेदांत-श्रवण और गीतापाठ कर चुका तथापि भक्ति, ज्ञान व वैराग्य ये तीनों नहीं उठे तो ॥ ६४ ॥ अब श्रीमद्भागवतकी कथासे कैसे सचेत हो जायंगे ? क्योंकि श्रीमद्भागवतकी कथामेंभी तो श्लोक श्लोक व पदपदमें वेदार्थही दिखाया है ॥ ६५ ॥ हे शरणागत पुरुषोंपर दया करनेवाले महात्माओ ! आपका ज्ञान अमोघ है, इसवास्ते आप कृपा करके, मेरे इस संदेहको दूर करो. इसमें बिलंब मत करो

प्रलयं हि गमिष्यंति श्रीमद्भागवतध्वनेः ॥ कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव ॥ ६२ ॥ ज्ञान-वैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदांतघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत् त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतालापात् तत् कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥ छिंदंतु संशयं ह्येनं भवंतोऽमोघदर्शनाः ॥ विलंबो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥ ६७ ॥ आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्द्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामपि मध्यांतं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥

॥ ६६ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद व वेदके शीर्षरूप उपनिषदोंका सार लेकर, बनायी गयी है, अतएव यह कथा सर्वोत्तम है, क्योंकि वृक्षकी अपेक्षा फल सदा मधुर रहा करता है ॥ ६७ ॥ वृक्षमें मूलसे ले, अग्रतक रस रहता है, परंतु स्वाद तमाम वृक्षमें नहीं आता, किंतु सबसे अच्छा स्वाद फलमें वृक्षकी अपेक्षा अनोखाही रहता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूधमें घृत सर्वत्र व्यापकर रहता है, परंतु सबमें उसका स्वाद नहीं आता, किंतु देवतानके रसको बढ़ानेवाला घृत दूधसे अनोखाही रहता है ॥ ६९ ॥ जैसे ईखमें मूलसे ले, अग्रपर्यंत मधुर रस सर्वत्र व्यापकर रहता है, परंतु शर्कराका स्वाद उससे अनोखाही रहता है, ऐसे श्रीमद्भागवत

वेदरूप कल्पवृक्षका फल होनेसे इसका स्वाद अनोखाही है ॥ ७० ॥ यह श्रीमद्भागवत नाम पुराण वेदके तुल्य है; और भक्ति, ज्ञान व वैराग्यको स्थापन करनेके लिये प्रकाशित किया गया है ॥ ७१ ॥ वेदांतशास्त्र और वेदमें अतिनिपुण तथा गीताशास्त्रके रचनेवाले वेदव्यासजीभी जिस समय अज्ञानरूप सागरमें मोहित होनेके कारण परिताप करने लगे ॥ ७२ ॥ उस समय तुमने जा कर, चतुःश्लोकी भागवत कि-जो भगवान्‌ने ब्रह्माजीको दिया था और ब्रह्माजीने तुमको दिया था, वह दिया. उसको श्रवण करतेही वेदव्यासजीकी सर्व बाधा तुरंत निवृत्त हो गयीं ॥ ७३ ॥ हे नारद ! तुम इस बातको जानते हो, फिर तु-

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥ वेदांतवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥ तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहंत्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

म्हारे मनमें यह शंका कैसे उठी ? यह श्रीमद्भागवत ऐसा है कि-जो इसको श्रवण करे, उसका दुःख और शोक तुरंत नष्ट हो जाता है ॥ ७४ ॥ यह साधन सुनकर, नारदजीने कहा कि-जिनके दर्शनसे संसारके दुःखरूप दावानलसे दुःखी जीवोंके सब अशुभ तुरंत निवृत्त हो जाते हैं. और कल्याण प्राप्त हो जाता है. उन शेषजीके मुखसे कही जाती कथारूप एक अमृतका पान करनेवाले आपके मैं प्रेमलक्षणा भक्तिके प्रकाशके वास्ते शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ ७५ ॥ मनुष्यका जब अनेक जन्मोंसे उपार्जन कियेहुए पुण्यके प्रभावसे भाग्योदय होता है, तब सत्संगति मिलती है. सत्संगतिसे अज्ञानजनित मोहसे उत्पन्न भये मदरूप अंधकारका नाश हो जाता है और अंधकारका नाश हुआ कि-विवेक उत्पन्न हो जाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीमद्भागवतमा-

ऋषि बुलाकर, ले आये ॥ १७ ॥ नारदजीने ज्ञानयज्ञकी दीक्षा लेकर, सनत्कुमारोंको जो उत्तम आसन दिया, उसपर वे भगवद्भक्त सनत्कुमार विराजे. उससमय सब लोगोंने सनत्कुमारोंको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ और जो वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी थे, वे सब सनत्कुमारोंके सामने बैठे. और उन सबके आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एकतर्फ ऋषिलोग बैठ गये. और उनके सामने देवता बैठ गये. एकतर्फ वेद और उपनिषद बैठे और एकतर्फ स्त्रियां बैठ गयीं ॥ २० ॥ वहां जयशब्द, नमःशब्द और शंखध्वनि हुई. तथा गुलाल उड़ाया गया. और खीले, फूल बरसाये गये ॥ २१ ॥ कितनेएक देवता विमानोंमें बैठकर,

दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ॥ कुमारा वंदिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥ वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥ एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥ जयशब्दो नमःशब्दः शंखशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥ विमानानि समारुह्य कियंतो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमा शुकशास्त्रजः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कंधसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः श्रृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥

ऊपरसे कल्पवृक्षोंके फूल बरसाने लगे ॥ २२ ॥ सूतजीने कहा कि—इस प्रकार सब श्रोतालोग एक चित्त हो गये, उससमय सनत्कुमारोंने महात्मा नारदजीको श्रीमद्भागवतका महात्म्य कहा ॥ २३ ॥ सनत्कुमारोंनें कहा कि—हे नारद ! अब हम तुमको शुकशास्त्र यानी श्रीमद्भागवतका महात्म्य कहते हैं सो सुनो. जिसके सुननेसे मुक्ति करतलमें स्थित हो जाती है ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा सदा सर्वदा सुननी चाहिये कि—जिसके श्रवण करनेसे हरि भगवान् हृदयमें प्राप्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ शुकदेवजी और परीक्षित राजाका संवादरूप जो यह श्रीमद्भागवत है, इसके बारह स्कंध हैं. और अठारह सहस्र श्लोक हैं ॥ २६ ॥

जबलों शुकशास्त्र यानी श्रीमद्भागवतकी कथा कर्णगोचर नहीं होती, तबलों यह मनुष्य अज्ञानसे संसारमें भटकता रहता है ॥ २७ ॥ भ्रम उत्पन्न करनेवाले दूसरे अनेक शास्त्र और पुराण सुननेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि मुक्ति देनेके वास्ते तौ एक श्रीमद्भागवतही गर्जता रहता है ॥ २८ ॥ जिस घरमें नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा होवे उस घरको तीर्थरूप जानना चाहिये. उस घरमें जो रहते हैं, उनका पाप नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ सैकड़ों वाजपेय यज्ञ और हजारों अश्वमेधयज्ञ श्रीमद्भागवतकी कथा-

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतःपुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥ एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ ३० ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसंति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥ वेदादिर्वेदमाता च पौरुषंसूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥

की सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सक्ते ॥ ३० ॥ हे ऋषियो ! शरीरमें पाप तबलों रहते हैं, जबलों मनुष्य श्रीमद्भागवतको अच्छे प्रकार न सुन ले ॥ ३१ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथाके फलके बराबर न तौ गंगा है. न गया है. न काशी है. न पुष्कर है. और न प्रयाग है ॥ ३२ ॥ जो तुझको अपनी परमगति करनेकी इच्छा हो तौ, नित्यप्रति श्रीमद्भागवतके आधे श्लोकका वा श्लोकके एक पादकाभी अपने मुखसे पाठकर ॥ ३३ ॥ वेदका आदि ( ओंकार ) वेदमाता ( गायत्री ) पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा-आदि सोलहऋचा ) वेदत्रयी ( ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ) श्रीमद्भागवत, द्वादशाक्षर मंत्र ( ॐनमो भगवते वा-

हात्म्ये रामस्वरूपविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजीने कहा कि–शुकशास्त्र अर्थात् श्रीमद्भागवतकी कथाकरके उज्वल ऐसे ज्ञानयज्ञको मैं भक्ति, ज्ञान व वैराग्यको स्थापन करनेके लिये करूंगा ॥ १ ॥ सो प्रथम तौ ज्ञानयज्ञ कहां करना चाहिये, वह स्थान नियत करो. दूसरा आप वेदके पारगामी हो, सो शुकशास्त्रकी महिमा मुझे कहो ॥ २ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुननी चाहिये? और किस विधिसे सुननी चाहिये? सो वह सब कहो ॥ ३ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि–हे नारद! तुम बड़े विनीत और विवेकी हो, इस वास्ते मैं कहता हूं सो सुनो. हरिद्वारके निकट जो आ-

नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ यत्र कार्यो महायज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्त्तव्यो ममेदं वदतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गंगाद्वारसमीपे तु तटमानंदनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥ रम्यमेकांतदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥ पुरस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्र गमिष्यति ॥ ८ ॥ यत्र भागवती वार्त्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥

नंद नाम गंगाजीका तट है ॥ ४ ॥ वहां बहुतसे ऋषिलोग रहते हैं. देवता और सिद्ध निवास करते हैं. अनेक प्रकारके वृक्ष और लतायें व्याप्त हो रही हैं. नवीन कोमल वालू बिछी है ॥ ५ ॥ कंचनकेसे कमल सुशोभित हैं. और जो जीव उस भूमिके निकट रहते हैं उनके मनमें बिलकुल वैरभाव नहीं है. अतिसुंदर एकांत स्थल तौ दूसरा ऐसा मिलना कठिन है ॥ ६ ॥ इसवास्ते यह ज्ञानयज्ञ आप वहां करो; क्योंकि वहां जो कथा होगी, वह अपूर्व और रसरूप होगी ॥ ७ ॥ और भक्तिको कह दो सो वहभी अपने वृद्ध और निर्बल पुत्र ज्ञानवैराग्यको संग लेकर, वहां आ जावे ॥ ८ ॥ जो आप न कहलाओगे तोभी

वह आ तौ जायगी, क्योंकि जहां श्रीमद्भागवतकी कथा होती है वहां भक्ति, ज्ञान, वैराग्य ये तीनों आ जाया करते हैं. और वहां आनेसे कथाका शब्द सुनकर, ये तीनों तरुणभी हो जाते हैं ॥ ९ ॥ सूतजीने कहा कि-ऐसे कह कर, नारदजीको संग ले वे सनत्कुमार कथामृतका पान करानेके वास्ते त्वराके साथ गंगाके तटपर आये ॥ १० ॥ जिस समय सनत्कुमार गंगाजीके तटपर आये, उस समय भूलोकमें, स्वर्गमें और ब्रह्मलोकमें बड़ा कोलाहल मचा ॥ ११ ॥ और जो वैष्णव भक्तिरसके प्रेमी थे, वे श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके वास्ते दौड़तेहुए सबसे पहले वहां आये ॥ १२ ॥ उन वैष्णवोंमेंसे

सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ धावंतोप्याऽऽययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकंडपुत्राऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥ योगेश्वरा व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजन्हुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याःस्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ वेदांतानि च वेदाश्च मंत्रास्तंत्राः समूर्तयः॥दश सप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥ १५ ॥ गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दंडकादि वनानि च ॥ १६ ॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगंधर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान् भृगुः संबोध्य चानयत् ॥ १७ ॥

कुछ नाम गिनाते हैं. भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुरामजी, विश्वामित्र, शाकल, मार्कंडेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद ॥ १३ ॥ योगेश्वर, व्यास, पराशर, छायाशुक, जाजलि और जन्हु-आदि ये सब ऋषि अपने २ पुत्र व शिष्योंको साथ लेकर, अपनी स्त्रियोंके साथ वहां बड़े प्रेमके साथ आये ॥ १४ ॥ मूर्तिमान् वेदांत, वेद, मंत्र, तंत्र, सत्रह पुराण व छह शास्त्र, ये सब आये ॥ १५ ॥ गंगा-आदि नदियां, पुष्कर-आदि सरोवर, काशी-आदि क्षेत्र, दशों, दिशायें, दंडक-आदि वन ॥ १६ ॥ नाग आदि देवता, गंधर्व व किन्नर वहां आये. और जो कोई गौरवके कारण नहीं आया था, उसको भृगु-

सुदेवाय ) ॥ ३४ ॥ द्वादशमूर्ति ( सूर्य ) , प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, एकादशी, ॥ ३५ ॥ तुलसी, वसंतऋतु, पुरुषोत्तम भगवान् वा पुरुषोत्तममास, इन सबमें पंडितलोग भेदभाव नहीं देखते ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य भागवतशास्त्रको निरंतर अर्थके साथ पढ़े अर्थात् कथा करे, उसका करोड़ों जन्मोंका पाप निःसंदेह नष्ट हो जाता है ॥३७॥ जो मनुष्य नित्य भागवतके आधे श्लोकका वा एक पादकाभी पाठ करे, उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल मिले ॥ ३८ ॥ नित्य भागव-

तुलसी च वसंतश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६ ॥ यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥३७॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिंतनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥ अंतकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुंठं गोविंदोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥ हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चांडालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननी जनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥ जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ॥ धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदंति दिवि देवसरोजमुख्याः ॥ ४३ ॥

तका पाठ, हरिभगवान्का कीर्तन और तुलसीका पोषण ये तीनों बराबर हैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अंतकालके समयमें श्रीमद्भागवतकी वाणी सुने, उसको गोविंद भगवान् बड़ी प्रीतिके साथ वैकुंठ पद देते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य श्रीमद्भागवतको सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान करके वैष्णव ब्राह्मणको देवे, वह श्रीकृष्ण भगवान्के साथ सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होवे ॥ ४१ ॥ जिस नीचने चित्त लगाकर, जन्मभरमें श्रीमद्भागवतकी कथा आदरके साथ नहीं सुनी, उस माताको दुःख देनेवाले नीच मनुष्यने अपना जन्म चांडाल और गधेके समान वृथा गँवाया ॥ ४२ ॥ जिस पापकर्मीने मनुष्यजन्म पाकर, श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं

सुनी, उस मनुष्यको जीवन्मुर्दा समझना चाहिये. और स्वर्गमें रहनेवाले देवतालोग तो कहते हैं कि-जिसने भागवतकी कथा नहीं सुनी, उस पशुसमान पृथ्वीमें भारभूत नरको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा मिलनी अतिदुर्लभ है; क्योंकि पिछले करोड़ों, जन्मोंके पुण्य एकत्रित होते हैं, तब कथाश्रवणमें श्रद्धा उत्पन्न होती है ॥ ४४ ॥ हे योगेश्वर ! हे सुबुद्धि नारद ! इसमें दिनोंका नियम नहीं है इस कथाको सदा सर्वदा श्रवण करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ परंतु जितने दिन कथाश्रवण करे, इतने दिन सत्यभाषण करना, ब्रह्मचर्य रखना, सो इस बातका बनना कलियुगमें अतिकठिन है, इसवास्ते इसमें एक विशेष नि-

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥ कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥ तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥ सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ॥ दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥ श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाऽजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥ यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥ तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥

यम मैं शुकदेवजीकी आज्ञासे कहता हूं सो सुनो ॥ ४६ ॥ कलियुगमें मनोवृत्तिका जीतना, नियमपालन और दीक्षा धारण करना, अधिक दिन बनना कठिन है, इसवास्ते सप्ताहमें श्रवण करना ठीक है ॥ ४७ ॥ पूरे माघ महीनेमें श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे जो फल मिलता है, वह फल सप्ताहश्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ मनका अजय, रोगका होना और आयुका क्षय-इत्यादि दोषोंका होना कलियुगमें बहुत है, इसवास्ते सप्ताहश्रवणही ठीक है ॥ ४९ ॥ जो फल, तप, योग, समाधिसे नहीं मिलता वह फल सप्ताहश्रवणमें अनायाससे मिल जाता है ॥ ५० ॥ यज्ञ, व्रत, तप, तीर्थ, योग, ध्यान और

ज्ञान इन सबकी अपेक्षा सप्ताह सदा अधिक गरजता रहता है. सप्ताहके गर्जनके विषयमें क्या कहें ? यह सदा गरजता रहता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सूतजीके वचन सुन, शौनकजीने कहा कि-यह कथा तौ आपने बड़ी आश्चर्यजनक कही कि- श्रीमद्भागवतपुराण, ज्ञान - आदि सर्व धर्मोंसे बढ़ कर, उत्तम साधन और योगवेत्ता पुरुषोंके लिये परमेश्वरको सूचन करनेवाला यही है. इस विषयमें हमको संदेह है कि-यह पुराण प्रथमसेही ऐसा है ? वा पीछेसे हुआ ? और जो पीछेसे हुआ तौ कबसे हुआ ? ॥ ५३ ॥ सूतजीने कहा कि-जिस समय भगवान् पृथ्वीको त्यागकर,

योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किंब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य सांप्रतम् ॥ निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गंतुमुद्यतः ॥ एकादशं परिश्रुत्वाप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु यास्यसि गोविंद भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चित्ते महती चिंता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यंति पुनः खलाः ॥ तत्संगेनैव संतोऽपि गमिष्यंत्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥ तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

अपने धाम पधारने लगे, उस समय एकादशस्कंध सुननेसे ज्ञान प्राप्त होनेपरभी उद्धवजीने यह वचन कहा ॥ ५४ ॥ उद्धवजी बोले कि-हे गोविंद ! आप भक्तोंका कार्य कर चुके इसवास्ते निजधाम पधारते हो परंतु मेरे मनमें एक बड़ी चिंता है, उसको सुनकर, मुझे सुखी करो ॥ ५५ ॥ जब घोर कलियुग आवेगा और सब लोक दुष्ट हो जायंगे और उनकी संगतिसे सज्जनभी उग्र हो जायंगे ॥ ५६ ॥ तब भारसे पीड़ित यह गौरूप पृथ्वी किसके शरण जायगी ? हे कमललोचन ! आपके विना दूसरा तौ कोईभी मुझे रक्षक नहीं दीखता ॥ ५७ ॥ हे भक्तवत्सल ! इसवास्ते आप भक्तोंपर कृपा कर, यहीं विराजो. यहांसे मत

जाओ. आप चैतन्यमय और अलौकिक स्वरूप होनेपरभी भक्तोंके वास्ते लौकिक स्वरूप धरकर, प्रगट हुए हो ॥ ५८ ॥ आपके वियोगमें भक्तोंका पृथ्वीपर निर्वाह कैसे हो सकेगा ? और निर्गुणकी उपासनामें बड़ा कष्ट होता है इसवास्ते हे प्रभु ! आपहीं इसका विचार करो ॥ ५९ ॥ प्रभास क्षेत्रमें उद्धवजीका यह प्रश्न सुनकर, भगवान्‌ने विचार किया कि–भक्तोंके आलंबनके वास्ते अब मैं क्या उपाय करूं ? ॥ ६० ॥ फिर भगवान्‌ने विचार कर, अपना तेज श्रीमद्भागवतमें धारण किया. यानी अभी श्रीकृष्ण भगवान् श्रीमद्भागवतरूप समुद्रमे अपना तेज गुप्तरीतिसे रहकर, इसमें प्रविष्ट होकर, विराज़ते हैं ॥ ६१ ॥ अतएव यह

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यंति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिंतयद् हरिः ॥ भक्तावलंबनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥ स्वकीयं यद् भवेत् तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१ ॥ तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात् पाठाद् दर्शनात् पापनाशिनी ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत् पुंभिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ॥ आश्चर्यमेकं समभूत् तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥

श्रीमद्भागवत भगवान्‌की साक्षात् वाणीमयी मूर्ति है. जो इसका श्रवण करे, पाठ करे वा दर्शन करे, उसका पाप नाश हो जाय ॥ ६२ ॥ और इसीसे सप्ताहश्रवण सबसे उत्तम साधन माना गया है. कलियुगमें तो सब साधनोंको छोड़कर, यही साधन कहा गया है ॥ ६३ ॥ दुःख, दारिद्र, दौर्भाग्य और पाप धोनेके वास्ते तथा काम व क्रोधको जीतनेके वास्ते कलियुगमें यही मुख्य धर्म है ॥ ६४ ॥ भगवान्‌की मायाको तिरना देवताओंके लियेभी कठिन है, सो मनुष्योंकी तो बातही कौन ? वह माया छूट जानेके वास्ते सप्ताहश्रवण भगवान्‌ने नियत किया है ॥ ६५ ॥ इतनी कथा सुनाय, सूतजीने कहा कि–हे शौनक ! ऋषि-

लोग इस प्रकार सप्ताहका माहात्म्य कह रहे थे, इतनेमें सभाके बीच जो एक कौतुक हुआ वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ६६ ॥ प्रेमलक्षणाभक्ति अपने तरुण पुत्रोंको साथ लिये, हे श्रीकृष्ण ! हे गोविंद हे हरि ! हे मुरारि ! हे नाथ ! ऐसे भगवानके नामोंका वारंवार उच्चारण करती वहां आयी ॥ ६७ ॥ भगवत्के अर्थकी भूषणरूप सुंदर वेषवाली भक्ति आयी, उसे देखकर, सब सभासद बोले और तर्कणा करने लगे कि–मुनिलोगोंके बीचमें यह भक्ति कैसे चलीआयी इसका प्रवेश यहां कैसे हुआ ? ॥ ६८ ॥ उस समय सनत्कुमारोंने कहा कि–यह भक्ति जो अभी यहां आयी है, सो केवल कथाके वास्ते आयी है. सनत्कुमारके ऐसे वचन सुनकर, प्रणत भक्तिने अपने पुत्रोंके

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ॥ श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदंती ॥ ६७ ॥ तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयंतः ॥ ६८ ॥ ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताऽधुनेयम् ॥ एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवंतु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥ ७० ॥ भक्तेषु गोविंदसुरूपधर्त्री प्रेमैककर्त्री भवरोगहंत्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरंतरं वैष्णवमानसानि ॥ ७१ ॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञाऽवसरेपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२ ॥

साथ यह वचन कहा ॥ ६९ ॥ भक्तिने कहा कि–यद्यपि मैं कलिकालके प्रभावसे नष्ट होगयी थी, तथापि आपने मुझको कथारस पिला कर, आज पुष्ट की है. अब मैं कहां रहूं ? सो मुझे रहनेके लिये स्थान बताओ. तब सनत्कुमारोंने यह वचन कहा कि– ॥ ७० ॥ गोविंद भगवान्‌कासा सुंदर स्वरूप धारण करनेवाली और भवरोग मिटानेवाली एक प्रेमलक्षणा तू, धीरज धार कर, गोविंद भगवान्‌के भक्तोंके मनमें सदा स्थिर रह ॥ ७१ ॥ वैष्णवलोगोंके हृदयका आश्रय पानेसे ये कलिकालके दोष तेरे सामने देखभी नहीं सकेंगे. इस प्रकार उन्होंने आज्ञा दी तब उनकी आज्ञा पाकर, वह भक्ति भक्तलोगोंके हृदयमें स्थित हुई ॥ ७२ ॥

जो लोग बिलकुल निर्धन और दरिद्री हैं तथापि जिनके मनमें भगवान्की भक्ति है वे त्रिलोकीके अंदर बड़े भाग्यशाली और धन्य हैं. क्योंकि जिनके मनमें भक्तिरूप भगवान्के चरणका बंधन विद्यमान है. उनके हृदयमें उस बंधनसे बँधे हुए भगवान् अपना लोक छोड़कर, सर्वप्रकारसे आकर, निवास करते हैं ॥ ७३ ॥ साक्षात् पुरुषोत्तम और ब्रह्ममूर्ति इस श्रीमद्भागवतकी महिमा इससे बढ़कर, क्या कहें कि–जो इसको सुनता है वा बांचता है ये दोनों श्रोता और वक्ता श्रीकृष्ण भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं. दूसरे धर्मोंकी कोई जरूर नहीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये रामश्यामविरचितायां

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥ हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्त्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ कांचीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुंडलः ॥ २ ॥ त्रिभंगललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ॥ कोटिमन्मथलावण्यो हरिचंदनचर्चितः ॥ ३ ॥ परमानंदचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥

तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा कि–वैष्णवोंके मनमें अलौकिक भक्ति देखकर, भक्तवत्सल भगवान्भी अपने वैकुंठलोकको छोड़कर, वहां पधारे ॥ १ ॥ कैसे हैं भगवान् कि–जिनके वनमाला धारण करनेको है. मेघसा श्याम बरन है. पीले पीतांबर पहिरनेको हैं. सुंदर स्वरूप है. कटिमेखलाका कलाप और सुंदर मकराकृत कुंडल और मुकुट देदीप्यमान हैं ॥ २ ॥ त्रिभंगीललित मनोहर मूर्ति है. सुंदर कौस्तुभमणि विराजमान है. कोटिक कामदेवसी सुंदर छबि है. हरिचंदन चरचे हैं ॥ ३ ॥ परमानंद और चैतन्यस्वरूप हैं. मधुर मूर्ति है. मुरली धरे हैं. ऐसे हरि भगवान् अपने भक्तलोगोंके

निर्मल हृदयकमलोंमें आकर, प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ वैकुंठमें रहनेवाले जो उद्धव–आदि वैष्णव हैं वेभी कथाश्रवण करनेके लिये; गुप्तरूपसे आकर, एक ओर बैठ गये हैं ॥ ५ ॥ उस समय जय जय शब्द हुआ. और अलौकिक भक्तिरस पुष्ट हुआ. और चूर्ण व फूलोंकी बरसा हुई. तथा बारंबार शंखशब्द हुआ ॥ ६ ॥ और उस सभामें जितने मनुष्य व देवता बैठे थे, वे सब अपने शरीर, घर व आत्माको विस्मृत हो गये थे. उन लोकोंकी इस अवस्थाको देखकर, नारदजीने यह वचन कहा ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि–हे मुनीश्वरो ! सप्ताहश्रवणकी यह अलौकिक महिमा मैंने देखी. अहो ! जो

वैकुंठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥ तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेपि निष्पापतमा भवंति ॥ ८ ॥ अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥ के के विशुध्यंति वदंतु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥ कुमारा ऊचुः ॥ ये मानदाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ ११ ॥

यहां मूढ पशु पक्षी बैठे हैं, वेभी निष्पाप हो गये, तब औरकी तो बातही क्या कहें ? ॥ ८ ॥ अतएव मैं निश्चय करके कहता हूं कि–मनुष्यलोकमें चित्तशुद्धिके वास्ते इससे बढ़ कर, दूसरा कोईभी कलियुगमें पवित्र साधन नहीं है. कथाके बराबर पापसमूहका नाश करनेवाला आन कोईभी साधन नहीं है ॥ ९ ॥ हे कुमारो ! इस सप्ताहयज्ञसे कौन २ पवित्र होते हैं ? वह मुझे कहो. आप दयालु पुरुषोंने जगत्का हित विचार कर यह कोई नयाही अलौकिक मार्ग प्रकाशित किया है ॥ १० ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि–जो मनुष्य पापी, दुराचाररत, कुमार्ग चलनेवाले, क्रोधरूप अग्निसे दग्ध भयेहुए तथा कुटिल व कामी होते

हैं; वेभी सप्ताहश्रवणसे कलियुगमें पावन हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जो मनुष्य सत्यसे शून्य, माता-पिताके दूषक, तृष्णासे व्याप्त, आश्रमके धर्मोंसे रहित, दांभिक, मत्सरवाले और हिंसक हैं, वेभी कलियुगमें सप्ताह सुननेसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जो लोग उग्र पांच पापोंसे छल व कपट करनेवाले, क्रूर व पिशाचकी नाई निर्दय व ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट तथा व्यभिचारी हैं, वेभी कलियुगमें सप्ताहश्रवणसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १३ जो शठ मन, वचन व कायसे हठपूर्वक पाप करते हैं और पराये धनसे पुष्ट, मलिनांतःकरण व दुराशय हैं, वेभी कलियुगमें सप्ताहश्रवणसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १४ ॥ इस विषयमें मैं एक प्राचीन

सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दांभिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १२ ॥ पंचोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वंति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनंति ते ॥ १४ ॥ अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥१५॥ तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत् पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्ववेदविशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७॥ भिक्षुको वित्तवाँछोके तत्प्रिया धुंधुली स्मृता ॥ स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुंदरी सुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९ ॥

इतिहास कहता हूं कि-जिसके केवल श्रवणमात्र करनेसे पाप सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ तुंगभद्रा नदीके तटपर पहले एक उत्तम नगर था. जहां चारों वर्ण अपने धर्मसंबंधी सत्कर्ममें तत्पर होकर, रहते थे ॥ १६ ॥ उस पुरमें तमाम वेदोंमें निपुण व श्रौत व स्मार्त कर्मोंमें विचक्षण, मानों दूसरा सूर्य हो ऐसा, तपस्वी आत्मदेवनाम ब्राह्मण रहता था ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मण भिक्षुक होनेपरभी बड़ा धनाढ्य था. और उसकी स्त्रीका नाम धुंधुलि था. वह सुंदरी कुलीन थी, तथापि अपने वचनको पीछा नहीं फिरने देती- यानी सब घरका काम उसीके आधीन था ॥ १८ ॥ वह ब्राह्मणी लोकवार्तामें बड़ी रत, क्रूर, बड़ी बाचाल, कृपण, (कंजूस)

कलहप्रिया और घरके काममें बड़ी शूरवीर थी ॥ १९ ॥ वे दोनों स्त्री-भर्तार इसप्रकार प्रेमसे घरमें रमण करते थे. परंतु पुत्र न होनेके हेतु अर्थ, काम व घर-आदि उनको अच्छे नहीं लगते ॥ २० ॥ फिर संतान होनेके वास्ते उन्होंने धर्मकरना प्रारंभ किया. यानी वे दीनजनोंको गौदान, पृथ्वीदान, सुवर्णदान और वस्त्रदान-आदि दान देने लगे ॥ २१ ॥ धर्म करते २ उन्होंने आधा धन उठादिया, परंतु न तो पुत्र हुआ और न कन्या हुई. तब तो वह बड़े सोचमें पड़ा ॥ २२ ॥ निदान वह ब्राह्मण एकदिन दुःखके मारे घर छोड़कर, वनमें चला गया. मध्यान्ह आ गया. प्यास लगी तो वह तालावपर गया ॥

एवं निवसतोः प्रेम्णा दंपत्यो रममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन् न सुखाय गृहादिकम् ॥२०॥
पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥
धनार्धं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिंतातुरो भृशम् ॥ २२ ॥
एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥
पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्त्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥
दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदंतिकम् ॥ नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः ॥
॥ २५ ॥ यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिंता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुंजते ॥ २७ ॥

॥ २३ ॥ प्रजाके कारण दुःखी व विषण्ण वह ब्राह्मण जल पीकर बैठा, इतनेमें मुहूर्त्त यानी दो घड़ीमें एक संन्यासी वहां आ गया ॥ २४ ॥ वह संन्यासी जल पी चुका, तिसे देखकर, वह ब्राह्मण उसके निकट गया. और चरणोंमें प्रणाम करके, निसासा डाल कर, सामने खड़ा हो गया ॥ २५ ॥ यतिने कहा कि-हे ब्राह्मण ! तू रोता क्यों है ? तेरे ऐसी भारी चिंता क्या है ? तेरे जो दुःखका कारण हो वह हमको शीघ्र कह ॥ २६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि-हे ऋषि ! मेरे पूर्वसंचित पापका फल जो दुःख मैं पाता हूं, उसे क्या कहूं ? मेरे पित्रीश्वर मेरा दियाहुआ जल कुछ गर्म २ पीते हैं. ( गर्महोनेका कारण यह है कि मैं जो

जल देता हूं वह पीते हैं, उस समय वे शोकग्रस्त हो जाते हैं कि-अभी तौ यह हमको जल देता है, परंतु इसके पीछे संतान न होनेसे हमको जल कौन देगा ? इस दुःखसे जो वे आह भरते हैं, उससे मेरा दियाहुआ जल उनके दुःखजनित गर्मनिश्वाससे गर्म हो जाता है. ) ॥ २७ ॥ तथा मेरा दियाहुआ हरएक पदार्थ देवता और ब्राह्मणभी प्रेमसे नहीं लेते. इस कारण प्रजाके निमित्त दुःखित होकर, प्राण त्यागनेको मैं इहां आया हूं ॥ २८ ॥ जिसके संतान नहीं उस पुरुषको धिक्कार है. प्रजाविना घरको धिक्कार है. संतानरहित पुरुषके धनको धिक्कार है. संतानविना कुलको धिक्कार है ॥ २९ ॥ जिस गौको मैं पालता हूं. वह

मद्दत्तं नैव गृह्णंति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग् धनं चानपत्यस्य धिक् कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वंध्या सर्वथा भवेत् ॥ यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वंध्यत्वमाश्रयेत ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥ यतिरुवाच ॥ मुंचाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥

गौभी वंध्या हो जाती है. जिस पेड़को मैं लगाता हूं, वह पेड़भी वंध्य यानी निष्फल रह जाता है ॥३०॥ जो फल मेरे घर आता है वह फलभी सूख जाता है. अब ऐसे भाग्यहीन संतानहीन मेरेको जीकर, क्या करना है ? ३१ ॥ ऐसे कहकर, वह ब्राह्मण उसके निकट मुक्तकंठ होकर, रोया; तब तौ उस मुनिके मनमें करुणा व्याप गयी ॥ ३२ ॥ उस योगीने उस ब्राह्मणके ललाटकी अक्षरमाला पढ़, सब वृत्तांत जानकर, फिर ब्राह्मणको कहा ॥ ३३ ॥ संन्यासीने कहा कि-इस संतानरूप अज्ञानको त्याग दे; क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी बलवान् है. हे ब्राह्मण ! ज्ञान विचार, इस संसारवासनाका त्याग करो ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! मैंने

तेरे कपालकी अक्षरमालिका पढ़ी, तो ज्ञात हुआ कि,-तेरे सात जन्मतक पुत्र नहीं लिखा है ॥ ३५ ॥ देखो ! संततिसे सगर अंगआदि बड़े २ महात्मा दुःख पाये हैं. इसवास्ते संतानकी आशा छोड़कर, संन्यासकी ओर ध्यान देव ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि-मेरे विवेकसे क्या होना है? मुझे तो बलात्कारसेभी पुत्र देओ. जो आप न देओगे तो शोकसे मूर्छित होकर, अभी आपके सामने प्राण त्याग दूंगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिकोंके सुखसे रहित यह संन्यास मुझे तो शुष्क दीख पड़ता है. जिस गृहस्थके पुत्र-पौत्र-आदि हैं, उस गृहस्थको मैं संन्यासीकी अपेक्षा सुखी समझता हूं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणका ऐसा दुराग्रह देख कर, उस योगीने

संततेः सगरो दुःखमवापांगः पुरा तथा ॥ रे मुंचाद्य कुटुंबाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखाविमार्जनात् ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठे न युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥

कहा कि-' हे ब्राह्मण ! देख, चित्रकेतु राजा विधिके अंक मेटनेसे महाकष्टको पाया ॥ ३९ ॥ सो यदि तू पुत्र उत्पन्न करेगा, तथापि दैवसे हतोद्यम पुरुषकी नांई तू सुखी कभी नहीं होगा. तू वृथा हठ करता है. तू याचक है, इस वास्ते अब इससे अधिक मैं तुझको क्या कहूं ? ' ॥ ४० ॥ तथापि ब्राह्मणका अत्यंत आग्रह देख कर, उस योगीने उसको एक फल दिया. और कहा कि-' यह फल तू अपनी स्त्रीको खिला दे, सो इससे तेरे पुत्र हो जायगा ॥ ४१ ॥ और स्त्रीको कह देना, सो वह एक वर्षपर्यंत सत्य, शौच, दया, राखे. दान किया करे. और एक समय भोजन किया करे. ऐसे नियम धारण करनेसे तेरे अतिनिर्मल पुत्र होगा ' ॥ ४२ ॥ योगी तो ऐसे कह कर, चला गया. और ब्राह्मण अपने

घरको लौटा. घर आकर, ब्राह्मणने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दिया. और आप कहीं चला गया ॥ ४३ ॥ उस ब्राह्मणकी कुटिल तरुण स्त्री उस फलको देख कर, अपनी सखीके आगे रोयी. और बोली कि–" अहो ! मेरे तो बड़ी चिंता उत्पन्न हुई, मैं तौ यह फल कभी न खाऊंगी ॥ ४४ ॥ जो फल खाऊं तौ गर्भाधान हो जाय. और गर्भाधानसे उदर बड़ा हो जाय. और उदरवृद्धिसे भोजन कम हो जाय. उससे शरीरकी सामर्थ्य घट जाय. फिर शक्ति घटनेके अनंतर घरका काम किस प्रकार बनसके ? ॥ ४५ ॥ जो दैवात् वाटिका– ( वाड़ी ) में जाना पड़े तौ फिर पीछी गांवमें कैसे आ सकूं ? और

तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोदह ॥ अहो चिंता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥ फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ ४५ ॥ दैवाद्वार्टीं व्रजेद् ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ॥ प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥ मंदायां मयि सर्वस्वं ननांदा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्त्तते ॥ वंध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥ एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥

गर्भवतीसे दौड़ाभी कैसे जाय. और जो गर्भ शुककी भांति उदरमें रहे, उसको कुक्षिसे निकालाभी किस प्रकार जाय ॥ ४६ ॥ यदि दैवात् गर्भ टेढ़ा आगया, तब तौ मरणमें कोई संदेहही नहीं, दूसरा प्रसूतिमें महादुःख है, सो वह दुःख मुझ सुकुमारीसे कैसे सहा जाय ? ॥ ४७ ॥ कदाचित् मेरी सामर्थ्य घट जाय, उस समय जो ननँद सब धन ले जाय, तौ कैसी होवे ? दूसरा सत्य, शौच– आदिका नियम रखना वहभी तौ महाकठिन है ॥ ४८ ॥ और प्रसव होनेके अनंतर बालकको लड़ाने और पालनेका बड़ा परिश्रम है. इसलिये मैं तो जानती हूं कि–जो स्त्री वंध्या वा विधवा है वह सर्व प्रकारसे सुखी है " ॥ ४९ ॥ इस प्रकारकी कुतर्कणाके वशसे उसने वह फल नहीं खाया. और पतिने जब पूंछा कि–' तूने फल खाया ? ' तब उसने कहा कि–

'हां मैंने फल खा लिया है' ॥ ५० ॥ एक दिन उस धुंधुलीकी बहिन यदृच्छासे उसके घर आयी. उसने अपना सब वृत्तांत बहिनको कहा कि-हे बहिन! मेरे तो इस बातकी बड़ी चिंता लग रही है ॥ ५१ ॥ इस दुःखसे मैं बड़ी दुःखी हूं. अब मैं क्या करूं! तब उसकी बहिनने कहा कि-तू चिंता मत कर. मेरे गर्भ है, सो यह बालक होवेगा तब लाकर, मैं तुझको दे दूंगी ॥ ॥ ५२ ॥ परंतु तबलौं तू गर्भका मिष करके किसी गुप्त स्थलमें गर्भिणी हो ऐसे गुप्त होकर, रह. मेरे पतिको कुछ द्रव्य दे देना, सो वह तुझको अपना बालक दे देगा ॥ ५३ ॥ मैं लोकमें यह बात प्रसिद्ध कर दूंगी कि-छह महीनेका अधूरा गर्भ पड़

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिंतेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥ दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥५२॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥५३॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुंधुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मंगलं बहु ॥ ५८ ॥

गया. फिर सदा तेरे घर आकर, उस बालकका मैं पोषण किया करूंगी ॥ ५४ ॥ और जो यह फल है वह अभी परीक्षाके वास्ते गौको दे दे. बहिनके कहनेसे धुंधुलीने स्त्रीस्वभावसे वह सब वैसेही किया ॥ ५५ ॥ फिर उसकी बहिनके लड़का हुआ तब लड़केके पिताने उस लड़केको ला, एकांतमें धुंधुलीको दे दिया ॥ ५६ ॥ और धुंधुलीने अपने पतिसे कहला भेजा, कि-मेरे बालक बहुत सुखपूर्वक हो गया है. यह बात सुनकर, उसको और उसके बंधुजनोंको बड़ा आनदं हुआ ॥ ५७ ॥ इस आत्मदेव ब्राह्मणने पुत्रकी बधाईमें ब्राह्मणोंको दान दिया. और बालकका जातकर्म-संस्कार किया. तथा उसके द्वारपर गीत व

वाद्यका घोष हुआ व बहुत कुछ मंगल होने लगा ॥ ५८ ॥ उसने अपने पतिसे कहलाया कि–मेरे स्तनोंमें तौ दूध नहीं है. और दूसरेके दूधसे मेरे पुत्रको मैं कैसे पालूं ? ॥ ५९ ॥ अभी दैवात् मेरी बहिनके पुत्र होकर, मर गया है. सो उसे बुला कर, घरमें रख लो. वह इस बालकको अच्छी तरह पोषण करेगी ॥ ६० ॥ पुत्रकी रक्षाके वास्ते आत्मदेवने वैसाही प्रबंध कर दिया. धुंधुलीने उस बालकका नाम धुंधुकारी रक्खा ॥ ६१ ॥ तीन महीने व्यतीत होनेके अनंतर उस गौके फलके प्रभावसे ऐसा पुत्र हुआ कि–जो सर्व अंग करि सुंदर, दिव्य, निर्मल व सुवर्णसी कांतिवाला था ॥ ६२ ॥ उस बालकको देख कर, ब्राह्मणने अप-

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्त्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ॥ पुत्रस्य धुंधुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वांगसुंदरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ॥ मत्त्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५ ॥ कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पंडितो ज्ञानी धुंधुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥ स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्त्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥

ने हाथोंसे उसके संस्कार किये. गौके बालक हुआ यह बात सुन कर, लोकोंको बड़ा आश्चर्य हुआ. सो कितनेएक लोक तौ वहां देखनेके वास्ते आये ॥ ६३ ॥ और लोकोंने कहा कि– अहो ! देखो, अभी आत्मदेवका कैसा भाग्योदय हुआ है ? सो इसके तौ पुत्र हुआही था, परंतु गौकेभी देवरूपी पुत्र हुआ. यह बड़ी कौतुककी बात है ॥ ६४ ॥ इस बातका रहस्य तौ दैवयोगसे किसीने जाना नहीं. उसके कान गौकेसे देखकर, आत्मदेवने उसका नाम गोकर्ण रख दिया ॥ ६५ ॥ कितनेएक समयसे ये दोनों तरुण हुए तौ उनमें गोकर्ण तौ महाज्ञानी हुआ और धुंधुकारी महादुष्ट हुआ ॥ ६६ ॥ धुंधुकारी तो ऐसा भ्रष्ट हुआ

कि–स्नान, शौच के क्रिया कुछभी आचार जिसके नहीं है. अभक्ष्यभक्षक, क्रोधी, बुरा परिग्रह करनेवाला तथा शव- ( मुर्दे ) के हाथसे खानेवाला ॥ ६७ ॥ चोर, सब लोकोंका द्वेषी, पराये घर जलानेवाला और ऐसा क्रूर कि– किसीके बालकको लड़ानेके वास्ते ले जाता, उसी बालकको कूएमें पटक देता ॥ ६८ ॥ हत्यारा, शस्त्रधारी, दीन और अंधोंको दुःख देनेवाला, चांडालोंके साथ प्रीति करनेवाला और पाश हाथमें रखनेवाला ॥ ६९ ॥ उसने वेश्याओंकी कुसंगतसे अपने पिताका सब धन उड़ादिया. एक दिन माता-पिताको ताड़ना देकर घरके बासनभी सब ले गया ॥ ७० ॥ उस समय बिचारा दीन धनहीन उसका

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनांधानां प्रपीडकः ॥ चांडालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च संगतः ॥ ६९ ॥ तेन वेश्याकुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ॥ वंध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥ क तिष्ठामि क गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥७२ ॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेंद्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकांतजीविनः ॥ ७५ ॥

पिता मुक्तकंठ होकर, रोया कि–'हाय ! कुपुत्र होनेकी अपेक्षा तौ बंध्य रहना अच्छा है; क्योंकि–कुपुत्र बड़ा दुःखदायी होता है ॥ ७१ ॥ अब मैं कहां टहेरूं ? कहां जाऊं ? मेरे दुःखको कौन दूर करे ? हाय ! देखो, मुझमें कैसा दुःख आ पड़ा है ? अब तौ इस दुःखसे प्राण छोड़ने पड़ेंगे ' ॥ ७२ ॥ इस प्रकार आत्मदेव रुदन करने लगा, तब महाज्ञानी गोकर्णने आकर, वैराग्य दिखाते अपने पिताको समझाया ॥ ७३ ॥ गोकर्णने कहा कि–हे पिताजी ! यह संसार बिलकुल असार है. दुःखका भांड़ा और मोह करनेवाला है. इसमें किसका तौ पुत्र है ? और किसका धन है ? केवल स्नेहवाला जंतु रातदिन जलता रहता है ॥ ७४ ॥ मैं तो जानता हूं कि– 'न तौ सुख इंद्रको है और न चक्रवर्तीको है. सुख तौ केवल एकांतमें रहनेवाले विरक्त मुनिकोही मिल

सक्ता है ' ॥ ७५ ॥ आप प्रजारूप इस अज्ञानको त्याग दो, क्योंकि-अज्ञानसे नारकी गति मिलती है. यह शरीर विनश्वर है, उसवास्ते सर्व परिग्रह छोड़ कर, आप बनमें जाओ ॥ ७६ ॥ गोकर्णका यह बचन सुनकर, वनमें जानेकी इच्छावाले आत्मदेवने कहा कि-हे पुत्र ! मैं बनमें जाकर, क्या करूं ? वह मुझे सविस्तर कहो ॥ ७७ ॥ हे दयानिधि ! मैं मेरे कर्मोंसे अंधकूपमें पड़ाहुआ हूं. और स्नेहरूप पाशोंसे बंधाहुआ हूं, सो मुझ पंगु और शठका उद्धार कर ॥ ७८ ॥ गोकर्णनें कहा कि-हे पिता ! आप अस्थि, मांस व रुधिरसे बनेहुए इस शरीरमें ' मैं हूं ' ऐसी जो अहन्ता है उसे त्याग दो. और स्त्री पुत्रादिकोंमें

मुंचाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज॥ ७६ ॥ तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गंतुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्त्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अंधकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पंगुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुंच ॥ पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिंतनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीभागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

'मेरे हैं ' ऐसी जो ममता है उसे त्याग दो. और इस जगत्को क्षणभंगुर जानकर, वैराग्यमें प्रीति बांधकर भगवान्की भक्तिमें निष्ठा राखो ॥ ७९ ॥ निरंतर धर्मका सेवन करो. लौकिक धर्मोंका त्याग करो. साधुजनोंकी सेवा करो. कामकी तृष्णा त्यागो. और पराये गुण-दोषकी ओरसे दृष्टिको खैंचकर, भगवत्सेवा और कथाके रसका निरंतर पान करो ॥ ८० ॥ इसप्रकारके वैराग्य और बोधके वचन सुन कर, वह आत्मदेव साठ वर्षसे अवस्थामें कुछ अधिक था, तथा पि बुद्धिको स्थिर करके वनमें जा, निरंतर भगवान्की सेवा और दशमस्कंधका पाठ करनेसे श्रीकृष्ण भगवान्के चरणकमलोंको प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥ इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये

रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा कि-पिता मर गया, तब धुंधुकारीने माताको अच्छीतरह ताड़ना दी. और उससे कहा कि- 'या तौ धन बता दे; कहां है ? नहीं तौ लातसे मार दूंगा ' ॥ १ ॥ धुंधुकारीके इस वचनके त्रासके मारे पुत्रके दुःखसे दुःखित होकर, धुंधुली रातमें कूएमें गिर गयी; और मर गयी ॥ २ ॥ गोकर्ण माता-पिताको मरे देख, योग धारण कर, तीर्थयात्रा करनेको निकल गया. यह तो परमज्ञानी था, इसवास्ते इसके न तौ कोई सुख है न कोई दुःख है; न वैरी है और न बंधु है ॥ ३ ॥ धुंधुकारीने घरमें पांच वेश्यायें रक्खीं, सो उ-

सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥ इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बांधवः ॥ ३ ॥ धुंधुकारी गृहेऽतिष्ठत्पंचपण्यवधूवृतः ॥ अत्युग्रकर्मकर्त्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥ एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात् कामांधो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत् सवस्त्राणि भूषणानि कियंति च ॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्योऽविचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥

नका भरण पोषण करनेके निमित्त मूढ़बुद्धि होकर, अनेक महाउग्र काम किया करे ॥ ४ ॥ एकदिन उन कुलटाओंने आभूषणके वास्ते कहा कि-' कहींसे आभूषण लाओ ' तब यह धुंधुकारी कामांध होकर, धनके वास्ते घरसे बाहिर निकला ॥ ५ ॥ जिधर तिधरसे चोर चुरा कर, धन इकट्ठा करके पीछा घरमें आया. और उनको कुछ अच्छे २ वस्त्र और आभूषण दिये ॥ ६ ॥ धुंधुकारीके पास बहुत द्रव्यसंग्रह देखकर, कुलटाओंने रात्रिमें विचार किया कि-'यह नित्य चोरी करता है, सो कभी न कभी राजा इसको पकड़ लेगा ॥ ७ ॥ और इसका धन छीन कर इसे मार डारेगा. तो फिर आपनाही धन छिपानेके वास्ते भीतरका

भीतर इसे क्यों नहीं मार देती हैं ? ॥ ८ ॥ इसे मार, धन ले, कहींकी कहीं चलीं चलें तौ धन अपने पास रह जाय' वे कुलटा ऐसा निश्चय कर, सोयेहुए इस धुंधुकारीको रस्सियोंसे बांध ॥ ९ ॥ गलेमें पाश डाल, उसे मारने लागीं. परंतु वह तुरंत मरा नहीं, तब वे घबरायीं ॥ १० ॥ फिर उन्होंने जलतेहुए अंगारे लाकर उसके मुहमें भर दिये. उस अग्निकी ज्वालाकी अत्यंत असह्य वेदनासे वह व्याकुल होकर, मर गया ॥ ११ ॥ उन साहसी स्त्रियोंने उसके शरीरको गढा खोद कर, गढ़ेके भीतर गाड़ दिया. इस गुप्त बातका भेद किसीको ज्ञात न हुआ ॥ १२ ॥ जब लोगोंने पूंछा कि– धुंधुकारी कहां है ? तब उन्होंने कहा

निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥ ॥ ९ ॥ पाशं कंठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिंतायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥ तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥ तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद् रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदंति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥ स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद् बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुंधुकारी बभूवाऽथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥

कि–' वो हमारा प्यारा तो धनके लोभसे कहीं दूर विदेश गया है, सो कोई वर्षभरमें पीछा आवेगा ' ॥ १३ ॥ सनत्कुमार कहते हैं कि–हे नारद ! जीवत् स्त्रियोंका विश्वास करना तौ बड़ी बलाय है, परंतु मरीहुई स्त्रियोंकाभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो मूढ स्त्रियोंका विश्वास करता है, वह दुखिया जन सदा पराभव पाता है ॥ १४ ॥ स्त्रियोंका वचन तौ कामी पुरुषोंके प्रेमको बढ़ानेवाला अमृतसा होता है, परंतु हृदय छूरेकी धारकासा तीक्ष्ण होता है. अतएव स्त्रियोंके प्यारा कौन है ? ॥ १५ ॥ वे छिनाल रांड़ें धन लेकर, वहांसे कहीं और [illegible] चली गयीं, यह धुंधुकारी कुकर्मके कारण महाप्रेत हुआ ॥ १६ ॥

वायुरूप धारण किये यह प्रेत दशोंदिशावोंमें दौड़ा करता है. सर्दी व धूपसे सदा क्लेश पाता रहता है. न तौ इसको खानेको मिलता है और न पीनेको मिलता है ॥ १७ ॥ न कहीं इसको शरण मिलता है. अतएव यह दुःखी होकर, 'हा दैव!' ऐसे बारंबार पुकारता रहता है. कितनेएक दिनोंसे गोकर्णको लोकोंके कहनेसे ज्ञात हुआ कि–धुंधुकारी मर गया है ॥ १८ ॥ तब उसने उसको अनाथ जानकर, गयाश्राद्ध किया. औरभी जहां कहीं यह जाता, वहीं उसका श्राद्ध किया करता ॥ १९ ॥ इसप्रकार घूमता २ गोकर्ण अपने नगरमें आया. रात्रि थी इसवास्ते किसीको गोकर्णके आनेकी खबर नहीं पड़ी. अतएव कोई इसको चेता नहीं

वात्यारूपधरो नित्यं धावन् दशदिशोऽतरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्तयन् ॥ १९ ॥ एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुंधुकारी स्वबांधवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥ सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिंद्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किंवा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥

सका. और वह आपभी धुंधुकारी प्रेत हुआ है, इस बातको नहीं जानता था, सो सोनेके लिये घरके आंगनमें आया ॥ २० ॥ धुंधुकारीने अपने बंधुको आंगनमें सोया जान कर, अर्द्ध रात्रिके समय महाभयंकर स्वरूप दिखाया ॥ २१ ॥ वह कभी तौ मेष बन जाता है. कभी हाथी हो जाता है. कभी भैंसा बन जाता है. कभी इंद्र, कभी अग्नि और फिर पुरुष हो जाता है ॥ २२ ॥ इस विपरीत बातको देख कर, धीरज धार कर, गोकर्णने निश्चय किया कि–'यह कोई दुर्गतिवाला प्रेत है' अच्छा निश्चय तौ करूं, कौन है ? ऐसा सोचकर, गोकर्णने कहा ॥ २३ ॥ गोकर्ण बोला कि–रात्रिमें यह महाभयंकररूप तू कौन है ? तेरी यह

भीतर इसे क्यों नहीं मार देती हैं ? ॥ ८ ॥ इसे मार, धन ले, कहींकी कहीं चलीं चलें तो धन अपने पास रह जाय' वे कुलटा ऐसा निश्चय कर, सोयेहुए इस धुंधुकारीको रस्सियोंसे बांध ॥ ९ ॥ गलेमें पाश डाल, उसे मारने लागीं. परंतु वह तुरंत मरा नहीं, तब वे घबरायीं ॥ १० ॥ फिर उन्होंने जलतेहुए अंगारे लाकर उसके मुहमें भर दिये. उस अग्निकी ज्वालाकी अत्यंत असह्य वेदनासे वह व्याकुल होकर, मर गया ॥ ११ ॥ उन साहसी स्त्रियोंने उसके शरीरको गढ़ा खोद कर, गढ़ेके भीतर गाड़ दिया. इस गुप्त बातका भेद किसीको ज्ञात न हुआ ॥ १२ ॥ जब लोगोंने पूंछा कि– धुंधुकारी कहां है ? तब उन्होंने कहा



निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥
॥९॥ पाशं कंठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिंतायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १०॥
तप्तांगारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥
तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद् रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदंति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥
स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद् बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४॥
सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥
संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुंधुकारी बभूवाऽथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥

कि–' वो हमारा प्यारा तो धनके लोभसे कहीं दूर विदेश गया है, सो कोई वर्षभरमें पीछा आवेगा ' ॥ १३ ॥ सनत्कुमार कहते हैं कि–हे नारद ! जीवत् स्त्रियोंका विश्वास करना तौ बड़ी बलाय है, परंतु मरीहुई स्त्रियोंकाभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो मूढ़ स्त्रियोंका विश्वास करता है, वह दुखिया जन सदा पराभव पाता है ॥ १४ ॥ स्त्रियोंका वचन तौ कामी पुरुषोंके प्रेमको बढ़ानेवाला अमृतसा होता है, परंतु हृदय छूरेकी धारकासा तीक्ष्ण होता है. अतएव स्त्रियोंके प्यारा कौन है ? ॥ १५ ॥ वे छिनाल रांडें धन लेकर, वहांसे कहीं और और चली गयीं. यह धुंधुकारी कुकर्मके कारण महाप्रेत हुआ ॥ १६ ॥

वायुरूप धारण किये यह प्रेत दशोंदिशावोंमें दौड़ा करता है. सर्दी व धूपसे सदा क्लेश पाता रहता है. न तौ इसको खानेको मिलता है और न पीनेको मिलता है ॥ १७ ॥ न कहीं इसको शरण मिलता हैं. अतएव यह दुःखी होकर, 'हा दैव !' ऐसे बारंबार पुकारता रहता है. कितनेएक दिनोंसे गोकर्णको लोकोंके कहनेसे ज्ञात हुआ कि-धुंधुकारी मर गया है ॥ १८ ॥ तब उसने उसको अनाथ जानकर, गयाश्राद्ध किया. औरभी जहां कहीं यह जाता, वहीं उसका श्राद्ध किया करता ॥ १९ ॥ इसप्रकार घूमता २ गोकर्ण अपने नगरमें आया. रात्रि थी इसवास्ते किसीको गोकर्णके आनेकी खबर नहीं पड़ी. अतएव कोई इसको चेता नहीं

वात्यारूपधरो नित्यं धावन् दशदिशोंऽतरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्तयन् ॥ १९ ॥ एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहागणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुंधुकारी स्वबांधवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥ सकृन्मेषः सकृद् हस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिंद्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किंवा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥

सका. और वह आपभी धुंधुकारी प्रेत हुआ है, इस बातको नहीं जानता था, सो सोनेके लिये घरके आंगनमें आया ॥ २० ॥ धुंधुकारीने अपने बंधुको आंगनमें सोया जान कर, अर्द्ध रात्रिके समय महाभयंकर स्वरुप दिखाया ॥ २१ ॥ वह कभी तौ मेष बन जाता है. कभी हाथी हो जाता है. कभी भैंसा बन जाता है. कभी इंद्र, कभी अग्नि और फिर पुरुष हो जाता है ॥ २२ ॥ इस विपरीत बातको देख कर, धीरज धार कर, गोकर्णने निश्चय किया कि-'यह कोई दुर्गतिवाला प्रेत है' अच्छा निश्चय तौ करुं, कौन है ? ऐसा सोचकर, गोकर्णने कहा ॥ २३ ॥ गोकर्ण बोला कि-रात्रिमें यह महाभयंकररूप तू कौन है ? तेरी यह

दुर्गति क्यों हुई है ? हमें तू कह, तू प्रेत है, कि पिशाच है वा राक्षस है ? ॥२४॥ सूतजीने कहा–इसप्रकार गोकर्णने पूंछा तब वह प्रेत एकबार तो बहुत ऊंचे स्वरसे रोया, फिर बोलतो सका नहीं, इसवास्ते उसने सैनसे समझाया ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अंजलिमें जल लेकर, उसपर छिड़का. जल छिड़कनेसे कुछ पाप हलका होनेके हेतु वह पापी कहने लगा ॥ २६ ॥ प्रेतने कहा कि–मैं तेरा भाई हूं, धुंधुकारी मेरा नाम है. अपनेही दोषसे मैंने सब ब्राह्मणत्व गँवा दिया था ॥ २७ ॥ मैं महाअज्ञानी था,

सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ ॥ २५ ॥ ततोऽजलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद् गतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२६॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुंधुकारीति नामतः ॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥ कर्मणो नास्ति संख्या मे महाऽज्ञाने विवर्तिनः ॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९ ॥ अहो बंधो कृपासिंधो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाऽब्रवीत ॥३०॥ गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिंडो मया दत्तो विधानतः ॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥ गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥

इसवास्ते मेरे कुकर्मोंकी कोई संख्या तो हैही नहीं. मैं लोकोंकी हिंसा किया करता था. सो स्त्रियोंने बड़ा दुःख देकर, मुझको मारा ॥ २८ ॥ इस कारणसे मैं प्रेत हुआ हूं, मैं मेरी दुर्दशाका दुःख सहता हूं, मेरे प्रारब्धवशसे मुझको और तो कुछ मिलता नहीं; केवल वायुभक्षण करके जीता हूं ॥ २९ ॥ हे कृपासिंधु बंधु ! हे भाई ! मुझको इस क्लेशसे शीघ्र छुड़ावो, यह वचन सुन कर, गोकर्णने यह वचन कहा ॥ ३० ॥ गोकर्ण बोला कि–तेरे वास्ते मैंने तो गयामें विधिपूर्वक पिंड दिया था, फिर तेरी मुक्ति क्यों न हुई ? इस बातका मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३१ ॥ जो गयाश्राद्धसे मुक्ति न हुई तो अब दूसरा तो उपायभी नहीं

है. हे प्रेत! अब मैं क्या करू? तूही मुझको सविस्तर इसका उपाय बताव ॥ ३२ ॥ प्रेतने कहा कि—यदि आप सौ गयाश्राद्ध कर लोगे, तौभी मेरी मुक्ति होनी नहीं है. इसवास्ते अब आप कोई दूसराही उपाय शोचो ॥ ३३ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि—प्रेतका यह वचन सुन कर, गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ. और उसने कहा कि—यदि तेरी गति सौ गयाश्राद्ध करनेसे न होगी तो फिर तेरी गति होनी असाध्यही है ॥ ३४ ॥ हे प्रेत! अभी तो तू तेरे स्थान जा. मैं विचार कर, तेरी मुक्तिके वास्ते कछु न कछु साधन अवश्य करूंगा; तू डरे मत ॥ ३५ ॥ धुंधुकारी गोकर्णकी आज्ञासे अपने स्थानको चला गया. गोकर्णने रातभर

प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं किंचित् तद् विचारय सांप्रतम् ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥ इदानीं तु निजस्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुंधुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिंतयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥ प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यंति पश्यंतः शास्त्रसंचयान् ॥ ३८ ॥ ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ॥ गोकर्णः स्तंभनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥ ४० ॥

उसके वास्ते उपाय सोचा, परंतु कुछभी समझमें नहीं आया ॥ ३६ ॥ दूसरे दिन प्रभात होतेही गोकर्णको आया देखकर, लोग प्रीतिसे मिलनेको आये. गोकर्णने उन लोगोंसे रात्रिका सब वृत्तांत कह कर, सुनाया ॥ ३७ ॥ बड़े २ विद्वान्, योगी, ज्ञानी, व ब्रह्मवादी लोगोंने इस बातका विचार किया और शास्त्रसमूहको देखा, परंतु कुछ समझमें नहीं आया ॥ ३८ ॥ तब लोगोंने कहा कि—इसकी मुक्तिका साधन यदि सूर्यनारायण बतावें तो हो सकता है. तब गोकर्णने सूर्यके रथको थाम दिया ॥ ३९ ॥ और सूर्यसे कहा कि—' हे जगतके साक्षी! मैं आपको नमस्कार करता हूं. मेरे भाईकी मुक्ति होनेके वास्ते मुझे साधन बताओ'

॥ ४० ॥ यह वचन सुनकर, सूर्यने दूरसे स्पष्टरीतिसे कहा कि–" श्रीमद्भागवतसे तेरे भाईकी गति होगी. सो तू अपने भाईको सप्ताह सुनाव " ॥ ४१ ॥ सूर्यका प्रगट धर्मरूप यह वचन सुनकर, सब लोगोंने कहा कि–यह बात तौ अवश्य यत्नके साथ करनी चाहिये. यह करना तौ बहुत सुलभ है ॥ ४२ ॥ गोकर्णने निश्चय करके सप्ताह बांचनेकी तैयारी करी, तब सप्ताह सुन-नेके वास्ते देश व गाँवोंसे बहुतसे लोग आये ॥ ४३ ॥ पाप निवृत्त होनेके वास्ते बहुतसे लंगड़े, अंधे, वृद्ध और मंद पुरुष वहां

तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमप्यभ्यभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥ ४२ ॥ गोकर्णो नि-श्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥ ४३ ॥ पंग्वंधवृद्धमंदा-श्च तेपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महान् जातो देवविस्मयकारकः ॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गो-कर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥ ४५॥ सप्तग्रंथियुतं तत्रापश्य-त्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ॥ ४६ ॥ वातरूपी स्थितिं कर्तुमश-क्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कंधतः स्पष्टमा-ख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनांते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ॥ ४८ ॥ वंशैकग्रंथिभेदोऽभू-त्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रंथिभेदनम् ॥ ४९ ॥

आये. वह समाज ऐसा भारी हुआ कि–देवताभी उसे देखकर, विस्मित रह गये ॥ ४४ ॥ जब गोकर्ण आसनपर बैठकर, कथा कहने लगा, तब इधर उधर स्थान ढूंढ़ताहुआ प्रेतभी वहां आ गया ॥ ४५ ॥ सात गांठोंवाला एक लंबा बांस वहां पड़ा था. सो वह प्रेत उस बांसके नीचेके छिद्रमें घुसकर, सप्ताह सुननेको बैठगया ॥ ४६ ॥ वह प्रेत वायुरूप था, इस वास्ते उसकी स्थिति एक ठौर होनी अशक्य थी. इसवास्ते वह बांसके भीतर घुसा. गोकर्ण वैष्णव ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बनाकर ॥ ४७ ॥ प्रथम-स्कंधसे स्पष्टरीतिसे व्याख्या करने लगा. जब संध्याके समय कथा बंद हुई,उस समय एक बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ॥४८॥सब लोगोंके देख-

ते बाँसकी एक गांठ फट गयी- दूसरे दिन संध्याके समय दूसरी गांठ फटी ॥ ४९ ॥ तीसरे दिन तिसरी गांठ फटी. ऐसे सात दिनोंमें उस बांसकी सातों गांठें फटगयीं॥५०॥ श्रीमद्भागवतके बारह स्कंधोंका श्रवण करतेही उसका प्रेतपन जाता रहा-वह प्रेत सप्ताह सुननेसे तुलसीकी मालासे शोभायमान दिव्यरूप हो गया ॥ ५१ ॥ पीले पीतांबर पहिरे, मेघसे श्यामबरन, मुकुट व कुंडल धारण किये भगवान्का पार्षद बनेहुए उस धुंधुकारीने अपने भाई गोकर्णको प्रणाम करके, कहा कि- ॥ ५२ ॥ हे बंधु ! आपने कृपा करके, मुझको प्रेतके कष्टसे छुड़ाया- धन्य है श्रीमद्भागवतकी कथा कि- जिससे प्रेतपीड़ाका नाश हो जाता है ॥ ५३ ॥ धन्य है

तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रंथिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रंथिविभेदनम् ॥ ५० ॥ कृत्वापि द्वादशस्कंधश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममंडितः ॥ ५१ ॥ पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुंडलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ त्वयाहं मोचितो बंधो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्त्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥ सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कंपंते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥ ५५ ॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ ५६ ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्वेदसंसदि ॥ अकथाश्रविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५७ ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ अश्रवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ ५८ ॥

सप्ताह कि-जिससे श्रीकृष्ण भगवान्का लोक प्राप्त हो जाता है. यह सप्ताहश्रवण ऐसा है कि-इसका श्रवण करतेही सब पाप कांपने लग जाते हैं ॥ ५४ ॥ कि-यह कथा तुरंत हमको नष्ट कर देगी. जैसे अग्निमें सूखे और गीले सब काठ जल जाता हैं, ऐसे सप्ताहश्रवण करनेसे गीला, सूखा तथा मन, वचन व कर्मसे कियाहुआ हलका और भारी सब प्रकारका पाप नष्ट हो जाते है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ यह भारतवर्ष कि-जिसमें वैदिक समाजोंका सबप्रकारसे सुबीता है, उसमें जन्म पाकर, जिन्होंने सप्ताहश्रवण नहीं किया उनका जन्म वृथा है, ऐसे विद्वान्लोग कहते हैं ॥ ५७ ॥ जिसने मनुष्यजन्म पाकर, श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं

सुनी और अपने इस अध्रुव शरीरको अज्ञानसे रक्षा करनेद्वारा पुष्ट और बलवान् बनाया, तौ उससे क्या होना है ॥ ५८ ॥ इस शरीरके विषयमें विचार तौ करो, यह क्या वस्तु है ? देखो. अस्थि-( हड्डी ) के तौ इसमें खंभे लगे हैं. स्नायु-( नसों ) से बंधा हुआ है. मांस व रुधिरसे लिपा हुआ है. खालसे ढँका हुआ है, दुर्गंधिसे भरा है. मल और मूत्रका ठाम है ॥ ५९ ॥ जरा ( बुढ़ापा ), शोक, विषाद ( रज ) व आर्तिका स्थान है. रोगोंका घर है, तथा आतुर, दुष्पूर, दुर्धर, दुष्ट, सदोष व क्षणभंगुर है ॥ ६० ॥ अंतमें देखो तौ कृमि, विष्ठा वा भस्मरूप होनेवाला है. इस अध्रुव, अपवित्र शरीरसे जो अविचल फल मिल स-

अस्थिस्तंभं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गंधं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ ५९ ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमंदिरमातुरम् ॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ ६० ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञातं शरीरमिति वर्णितम् ॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ ६१ ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ तदीयरससंपुष्टे काये कानाम नित्यता ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ ६३ ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जंतुषु ॥ जायंते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६४ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रंथिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रंथिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६५ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६६ ॥

क्ता है, तौ फिर मनुष्य क्यों अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर लेता ? ॥ ६१ ॥ अन्न कि-जो प्रभातमें रींधाहुआ सामको खराब हो जाता है ! उसके रससे पुष्ट भयाहुआ यह शरीर कैसे स्थिर रह सकेगा ? ॥ ६२ ॥ सप्ताह सुननेसे लोकमें हरि भगवान् निकट प्राप्त हो जाते हैं, अतएव दोष मिटानेके वास्ते यही साधन मुख्य है ॥ ६३ ॥ जो लोग कथाश्रवण नहीं करते, वे जलके बुलबुलोंकी नांई और जंतुओंमें मच्छरोंकी नांई केवल मरनेकोही पैदा होते हैं ॥ ६४ ॥ जब जड़ ( अचेतन ) सूखे बाँसकी गांठेंभी फट गयीं, तब चित्तकी गांठें टूट जायं इसमें तौ आश्चर्यही क्या ? ॥ ६५ ॥ सप्ताहसुननेसे मनुष्यके हृदयकी गांठ

टूट जाती है. सब संशय कट जाते हैं. और कर्म सब क्षीण हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ संसाररूप कीचड़के लेपको धोनेमें अतिचतुर कथारूप तीर्थ चित्तमें स्थित हो तौ, विद्वान्लोग कहते हैं कि– 'वो मुक्तिही है' ॥ ६७ ॥ वह भगवत्पार्षदरूप प्रेत ऐसे कह रहा था, इतनेमें वैकुंठवासी देवतानके साथ दीप्तिमंडलसे देदीप्यमान विमान वहां आया ॥ ६८ ॥ सब लोगोंके देखते धुंधुकारी विमानमें जा बैठा. उसे देखकर, गोकर्णने विमानस्थित भगवत्पार्षदोंसे पूंछा ॥ ६९ ॥ गोकर्णने कहा कि–यहां निर्मल अंतःकरण-

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसी ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६७ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमगमत्तदा ॥ वैकुंठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमंडलम् ॥ ६८ ॥ सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुंधुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६९ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः संति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ७० ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवंतु हरिप्रियाः ॥ ७१ ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ ७२ ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ ७३ ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥ संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ ७४ ॥

वाले मेरे श्रोतालोग तौ बहुत हैं, फिर तुम एकसाथ उनके वास्ते विमान क्यों नहीं लाये ? ॥ ७० ॥ हे हरिके प्यारे ! इन्होंने सप्ताह बराबर एकसी सुनी है. फिर फलमें भेद क्यों हुआ ? इसका कारण कहो ॥ ७१ ॥ पार्षदोंने कहा कि–सुननेके फर्कसे फलमें भेद हो जाता है. सप्ताह सुना तौ सबोंने, पर मनन नहीं किया. हे गोकर्ण ! फलभेद होनेका कारण यह है ॥ ७२ ॥ इस प्रेतने सात दिन उपवास करके स्थिरचित्त होकर, जैसे सुना है, वैसेही फिर उसका मनन आदिभी किया है और इन लोगोंने सुना तो सही, परंतु मनन–आदि नहीं किया ॥ ७३ ॥ महाराज ! ज्ञान अदृढ़ होनेसे हत हो जाता है. श्रुत प्रमादसे

हत हो जाता है. मंत्र संदेह रहनेसे हत हो जाता है. जप चित्त व्यग्र रहनेसे हत हो जाता है ॥ ७४ ॥ देश वैष्णव विना हत है. श्राद्ध पात्र विना हत है. वेदपढे ब्राह्मणविना दान हत है. कुल अनाचारसे हत हो जाता है ॥ ७५ ॥ हे गोकर्ण ! गुरुके वचनोंमें विश्वास, अपनेमें दीनपनकी भावना, मनके दोषोंका जय और कथामें निश्चल बुद्धि ॥ ७६ ॥ इत्यादि साधन होवें तब कथा सुननेका फल यथार्थ मिलता है. अब तू इनको फिर कथा सुनावेगा तब ये सब श्रोतागण वैकुंठको प्राप्त होवेंगे ॥ ७७ ॥ हे गोकर्ण ! गोविंद भगवान् तुझको तौ आपना साक्षात् गोलोक देवेंगे. ऐसे कह कर, वे सब भगवत्पार्षद वैकुंठको चले गये ॥

अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ ७५ ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना ॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७६ ॥ एवमादिकृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥ पुनः श्रवांते सर्वेषां वैकुंठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ ७७ ॥ गोकर्ण तव गोविंदो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुंठं हरिकीर्त्तनाः ॥ ७८ ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ ७९ ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ ८० ॥ जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ॥ पांचजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ ८१ ॥ गोकर्णं तु समालिंग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ श्रोतॄनन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेयवाससः ॥ ८२ ॥ किरीटिनः कुंडलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचांडालजातयः ॥ ८३ ॥

॥ ७८ ॥ श्रावणके महीनेमें गोकर्णने फिर दूसरीबेर सप्ताहका आरंभ किया तौ, उस उत्सवमें सब लोगोंने बड़े ध्यानके साथ श्रवण करके, पीछा मनन किया ॥ ७९ ॥ हे नारद ! कथा समाप्त हुई उस समय जो वृत्तांत हुआ, वह कहता हूं सो सुनो. हरि भगवान् अपने भक्तोंको साथ लिये विमानोंके साथ प्रगट हुए ॥ ८० ॥ बहुतसे जयशब्द और नमःशब्दोंसे वह समाज गुंज उठी उस समय स्वयं हरि भगवान्ने अपने पांचजन्यशंखकी ध्वनि की ॥ ८१ ॥ गोकर्णको तौ भगवान्ने छातीसे लगा कर, अपने समान स्वरुप बनादिया. और दूसरे श्रोतालोगोंको घनश्याम, पीले पीतांबर पहिरे ॥ ८२ ॥ किरीट व कुंडल धरेहुए अपने पा-

र्षद बना लिये, उस गाँवमें चांडालसे ले जितने जीव थे, उन सबोंको गोकर्णकी कृपासे भगवान्‌ने विमानमें बिठाकर, उस धामको पहुंचा दिये कि–जहां योगीजन जाया करते हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ कथाश्रवण कर, अतिप्रसन्न भयेहुए भक्तवत्सल गोपाललाल, गोकर्णको साथ लेकर, गोपवल्लभ गोलोकको सिधारे ॥ ८५ ॥ जैसे पहिले रामचंद्रजी अयोध्यावासियोंको अपने साथ ले, गये थे ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् इन सब श्रोतालोगोंको योगीजनोंको दुर्लभ ऐसे गोलोकमें ले गये ॥ ८६ ॥ जहां सूर्य चंद्रमा व सिद्धोंकीभी

विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छंति योगिनः ॥ ८४ ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८५ ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ ८६ ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८७ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृंदमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८८ ॥ वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयांति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यांति याम् ॥ ८९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानंदपरिप्लुतः ॥ ९० ॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

गति नहीं है, उस लोकको श्रीमद्भागवतके श्रवणके प्रभावसे वे सब प्राप्त हुए ॥ ८७ ॥ इस सप्ताहयज्ञके उज्ज्वल फलसमुदायकी महिमा हम तुमको क्या कहें ? जिन्होंने गोकर्णके मुखसे कान लगा कर, कथामृत पिया था, वे फिर गर्भवासमें नहीं आये ॥ ८८ ॥ जो गति सप्ताहयज्ञ सुननेसे मिलती है, वह गति वायु, जल व पत्तोंके खानेसे, देह सुखानेसे, चिरकालपर्यंत उग्रतप करनेसे तथा योग साधनेसेभी नहीं मिलती ॥ ८९ ॥ इस पवित्र इतिहासका ब्रह्मानंदसे परिप्लुत शांडिल्य मुनि चित्रकूटपर विराजे पाठ किया करते हैं ॥ ९० ॥ यह आख्यान परम पवित्र है; इसके सुननेसे पापोंका पुंज सब भस्म हो जाता है. श्राद्धमें इसका

पाठ किया जाय तो पित्रीश्वर अत्यंत तृप्त हो जाते हैं. नित्य पाठ करनेसे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीमद्भागवतमहात्म्ये रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५॥ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि–अब हम सप्ताहश्रवण करनेकी विधि कहते हैं. यह सप्ताहयज्ञ प्रायः धन और सहायसाध्य है ॥ १ ॥ इसवास्ते ज्योतिषीको बुलाय, मुहूर्त पूंछकर, विवाहमें जैसे द्रव्य खर्च कर, उत्सव करे वैसा उत्सव करना ॥ २ ॥ आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, कुंआर, कार्तिक और अगहन, इन



कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्त्तं पृच्छ्य यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारंभे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ॥ सहायाश्चेतरे चात्र कर्त्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगंतव्यं कुटुंबिभिः ॥ ५ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्त्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥ देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवा कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥ सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपेव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलंपटाः ॥ भवंतश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥

छह महीनोंमें सप्ताहका आरंभ करना, क्योंकि ये महीने श्रोतालोगोंके मोक्षके सूचक हैं ॥ ३ ॥ और जो महीने त्याज्य हैं उनको सर्वथा वर्जना चाहिये और जो उद्यमी पुरुष होवें, उनको सहाय बनाना चाहिये, ॥ ४ ॥ देश–देशमें प्रयत्नसे चिठ्ठियां लिखकर, इसकी खबर भेजनी कि–यहां सप्ताहयज्ञ होगा, सो आप सकुटुंब पधार कर समाजको सुशोभित करें ॥ ५ ॥ जो हरि भगवान्‌की कथा व कीर्तनसे दूर हैं, उन स्त्री–शूद्रोंकोभी इसका बोध हो जाय ॥ ६ ॥ इसवास्ते कीर्तनोत्सुक विरक्त वैष्णव हैं, उनके पास लिखकर, चिठ्ठियां भेजनी चाहिये ॥ ७ ॥ कि–यहां सातरात्रितक अतिदुर्लभ सत्पुरुषोंका समाज होगा और अपूर्व रसमय श्रीमद्भागवतकी कथा होगी ॥ ८ ॥ इसवास्ते जिन

प्रेमी व रसिक पुरुषोंको श्रीमद्भागवतरूप अमृत पीनेकी इच्छा होवे, वे आपलोग तुरंत यहा पधारे ॥ ९ ॥ यदि सात दिनका अवकाश न मिले तो एक दिन तो अवश्यही पधारना; क्योंकि वहांका एक क्षण मिलनाभी अतिदुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकार बड़े विनयके साथ उन लोगोंको बुलाना और जो आवें, उनके वास्ते रहनेके लिये निवासस्थान तैयार कर रखना ॥ ११ ॥ कथाका स्थल तीर्थमें होना चाहिये. यदि सब प्रकारसे सुबीता हो और स्थल विशाल हो तो, घरमें तैयारी करनी ॥ १२ ॥ घरमें जो सामग्री होवे, वह सब एक कोनेमें धर देनी घरमें झाड़ू दे, साफ कर, लीप कर, अनेक प्रकारके रँगसे रंगना ॥ १३ ॥ कमसे

नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथागमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥ एवमाकारणं तेषां कर्त्तव्यं विनयेन च ॥ आगंतुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्त्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥ १२ ॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमंडनम् ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत ॥ १३ ॥ अर्वाक् पंचाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्त्तव्यो मंडपः प्रोच्चैः कदलीखंडमंडितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वग् वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्त्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥

कम पांच हाथ विशाल कदलीके खंभोंसे शोभायमान ऊंचा कथामंडप बनाना ॥ १४ ॥ कदलीके खंभोंको फल पुष्प व पत्तोंसे शोभायमान करना, चारों ओर चंदवे, पछवाई और पर्दे लगाना. चारों दिशाओंमें ध्वजा व पताका लगानी. अनेक प्रकारकी संपदासे मंडपको अलंकृत करना ॥ १५ ॥ ऊपर सविस्तर सात लोक बनाने. उनमें विरक्त और ब्राह्मणोंको बुलाकर, बिठाना ॥ १६ ॥ पहिले उन लोगोंके यथायोग्य आसन बिछाने. फिर वक्ताके लिये दिव्यआसन बिछाना ॥ १७ ॥ यदि वक्ता उत्तर मुख बैठे तो श्रोतालोग पूर्वमुख बैठने चाहिये और वक्ता पूर्वमुख होवे तो, श्रोतालोग उत्तरमुख बैठें ॥ १८ ॥

अथवा पूज्य और पूजकके बीचमें पूर्वदिशा रहनी चाहिये; क्योंकि श्रोतालोगोंके लिये देश, काल आदिको जाननेवाले लोगोंने शास्त्रमें ऐसा नियम कर रक्खा है ॥ १९ ॥ वक्ता ऐसा होना चाहिये कि–जो विरक्त, वैष्णव, वेद व शास्त्रको शोधन कियाहुआ, दृष्टांतमें निपुण, धीर, बिलकुल निःस्पृह और जातिका ब्राह्मण हो ॥ २० ॥ जो लोग अनेक प्रकारके धर्मोंसे भ्रम गये हैं. तथा जो स्त्रियोंके परतंत्र व पाखंडी हैं, वे चाहो पंडित क्यों न होवें, उनको श्रीमद्भागवतकी कथाका वक्ता नहीं बनाना ॥ २१ ॥ वक्ताके पासमें उसकी सहायताके वास्ते एक वैसाही दूसरा पंडित बिठाना, जो संशय काटनेवाला तथा लोगोंको समझानेमें बड़ा

अथवा पूर्वदिग् ज्ञेया पूज्यपूज्यकममध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥
विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्राभिशुद्धिकृत् ॥ दृष्टांतकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥ २० ॥
अनेकधर्मविभ्रांताः स्त्रैणाः पाखंडवादिनः ॥ शुभशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पंडिताः ॥ २१ ॥
वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पंडितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥
वक्त्रा क्षौरं प्रकर्त्तव्यं दिनादर्वाग् व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥
नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मंडलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य मंत्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजांते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥

विचक्षण हो ॥ २२ ॥ वक्ताको चाहिये कि–व्रत धारण करनेके वास्ते पहले दिन क्षौर करवा लेवे. और सदा अरुणोदयके समय शौच व स्नान–आदि बखेड़ोंसे निपट लेवे ॥ २३ ॥ और संध्या–आदि नित्यकृत्यभी संक्षेपसे करे. तथा विघ्ननिवृत्तिके वास्ते प्रथम गणपतिकी पूजा करे ॥ २४ ॥ पित्रीश्वरोंको तर्पणसे तृप्त कर, शरीरशुद्धिके वास्ते प्रायश्चित्त करे. फिर मंडल बनाकर, उसमें भगवान्‌की मूर्ति स्थापन करे ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णभगवान्‌के उद्देशसे मंत्रपूर्वक क्रमसे पूजा कर, प्रदक्षिणा व नमस्कार किये पीछे, पूजाके अंतमें भगवान्‌की स्तुति करे ॥ २६ ॥ फिर भगवान्‌से प्रार्थना करे कि–हे करुणानिधि ! संसाररूप सागरमें बूड़ेहुए,

कर्मजनित अज्ञानसे पकड़ेहुए, मुझ दीनपर कृपा करके, संसाररूप सागरसे मेरा उद्धार करो ॥ २७ ॥ फिर श्रीमद्भागवतकी धूप दीपसहित प्रीतिसे विधिपूर्वक प्रयत्नसे पूजा करे ॥ २८ ॥ फिर श्रीफल हाथमें ले, नमस्कार कर, प्रसन्नचित्त होकर, स्तुति करे, ॥ २९ ॥ कि–' हे नाथ ! यह श्रीमद्भागवत आपकाही स्वरूप है; यह साक्षात् श्रीकृष्णमूर्ति है. मैंने इस संसारसागरसे पार उतरनेको आपरूप इस श्रीमद्भागवतका शरण लिया है ॥ ३० ॥ सो आप मेरे इस मनोरथको सर्व प्रकारसे सफल करो. हे केशव !

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ २८ ॥ ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवताख्योयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥ मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ३१ ॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजांते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥ शुकरूपप्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्त्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥ वरणं पंचविप्राणां कथाभंगनिवृत्तये ॥ कर्त्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमविशेत् ॥ ३६ ॥

मैं आपका दास हूं, सो मेरा यह मनोरथ निर्विघ्न पूर्ण होना चाहिये ' ॥ ३१ ॥ इसप्रकार दीनवचन कहकर, वक्ताका पूजन करना. फिर वस्त्र व आभूषणोंसे भूषित कर, पूजाके अंतमें स्तुति करनी ॥ ३२ ॥ हे शुकरूप प्रबोधके जाननहारे ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! इस कथाको प्रकाशित करके, मेरे अज्ञानका नाश करो ॥ ३३ ॥ फिर कल्याणार्थ उसके सामने आनंदसे नियम धारण करना. ये नियम सात दिनके वास्ते नियत हैं ॥ ३४ ॥ कथामें विघ्न न हो जाय, इसवास्ते पांच ब्राह्मणोंका वरण करना. उनसे द्वादशाक्षरमंत्रका जप करवाना ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, वैष्णव और दूसरेभी जो कीर्तन करनेवाले हों, उनको नमस्कार कर,

पूजा किये पीछे उनसे आज्ञा पाकर, आप आसनपर बैठना ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य सात दिनतक लोक, धन, वित्त, घर व पुत्र इनकी चिंताको छोड़ कर, शुद्धमन हो, चित्त लगा कर, कथाको सुनता है, उसको उत्तम फल मिलता है ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान् वक्ता सूर्योदयसे कथाका प्रारंभ करे, सो अच्छीतरह धीरकंठसे साढ़े तीन प्रहरतक कथा करे ॥ ३८ ॥ परंतु बीचमें मध्यान्हके समय दो घड़ीका विराम करे. कथाके विरामके समय वैष्णव लोगोंको चाहिये कि–भगवत्कीर्तन करें ॥ ३९ ॥ जो पुरुष कथासे प्रयोजन रखता है, उसको चाहिये कि–मलमूत्रके जयके अर्थ हविष्य अन्नसे एक बेर सुखकारी लघु आहार करे ॥ ४० ॥ जो

लोकवित्तधनागारपुत्रचिंता व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्द्धत्रिप्रहरांतिकम् ॥ वाचनीया कथां सम्यक् धीरकंठं सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्त्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥ तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्त्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात् तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात् सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत् तु कर्त्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥ सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥

सामर्थ्य होवे तौ सात दिन उपवास करे. और उपवास करनेकी सामर्थ्य न होवे तौ घृत वा दूध पीकर, सुखपूर्वक कथाश्रवण करे ॥ ४१ ॥ वा फलाहार या एकाशन करके, श्रवण करे. कथा सुननेमें जिसप्रकार विघ्न न आवे और सुखपूर्वक बन जाय, वही करे ॥ ४२ ॥ यदि उपवास करनेसे कथाश्रवण करनेमें विघ्न होता हो तौ, उपवासकी अपेक्षा भोजन करना मैं अच्छा समझता हूं ॥ ४३ ॥ हे नारद ! अब सप्ताह सुननेवाले लोगोंके नियम कहता हूं सो सुनो. जिनको विष्णुदीक्षा नहीं हुई है, उनको कथा सुननेका अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ कथाश्रवण करे तब ब्रह्मचर्य रखना. पृथ्वीपर सोना. पत्रावलीमें भोजन करना.

नित्य कथा समाप्त भये पीछे भोजन करना ॥ ४५ ॥ द्विदल अर्थात् मोठ, चना, अरहर-आदि शिंबी धान, शहद, तैल, गरिष्ठ अन्न, भावदुष्ट, पर्युषित ( बासी अन्न ) इनका परित्याग करना ॥ ४६ ॥ काम, कोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दंभ, मोह द्वेष, इनका दूरसे परित्याग करना ॥ ४७ ॥ वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रतवाले, स्त्री, राजा, महत्पुरुष इनकी निंदा नहीं करनी ॥ ४८ ॥ रजस्वला, अंत्यज, म्लेच्छ, पतित, व्रात्य ( संस्कारोंसे हीन ) ब्रह्मद्वेषी, वेदबाह्य इनसे संभाषण नहीं करना ॥ ४९ ॥ सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदार मन रखना ॥ ५० ॥ दरिद्री, क्षयरोगी, रोगी, हतभाग्य, पाप-

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दंभं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निंदां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥ रजस्वलांत्यजम्लेच्छपतितव्रातकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥ सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात् कथाव्रती ॥ ५० ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः श्रृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥ अपुष्पा काकवंध्या च वंध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्यः प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकांक्षिभिः ॥ ५४ ॥

कर्मी, संतानहीन और मुमुक्षु ये लोक इस कथाको अवश्य श्रवण करें ॥ ५१ ॥ जो स्त्री पुष्परहित, काकवंध्या ( जिसके एकही संतान हुआ हो ) वंध्या ( जिसके संतान बिलकुल न हुआ हो ), मृतवत्सा ( जिसके संतान हो कर, मर जाते हों ), स्रवद्गर्भा ( जिसका गर्भ झर जाता हो ) इन स्त्रियोंको कथा अवश्य सुननी चाहिये ॥ ५२ ॥ इन अधिकारियोंको जो विधिपूर्वक कथा श्रवण करावे उसको अक्षय फल मिले. यह कथा अतिउत्तम, दिव्य और करोड़ों यज्ञोंके बराबर फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥ ऐसे नियम धारण कर, कथाश्रवण किये पीछे उद्यापन करना. उद्यापनकी विधि जन्माष्टमीव्रतके उद्यापनके समान है. व्रतका

यथार्थ फल उद्यापन करनेसेही मिलता है ॥ ५४ ॥ परंतु जो निष्किंचन भगवद्भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका आग्रह नहीं है; क्योंकि जो निष्काम वैष्णव हैं, वे कथाश्रवणसेही पवित्र हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ इसप्रकार सप्ताहयज्ञ समाप्त हो जावे, तब श्रोतालोग भावभक्तिसे वक्ता व पुस्तकका पूजन करें ॥ ५६ ॥ जो श्रोतालोग होमें, उनको प्रसाद, तुलसी और माला देनी. मृदंग व ताल-आदि वाद्योंके साथ भगवान्का ललित कीर्तन करना ॥ ५७ ॥ जयशब्द, नमःशब्द और शंखशब्द करवाना. ब्राह्मण

अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५ ॥ एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदंगतालललितं कर्त्तव्यं कीर्त्तनं ततः ॥ ५७ ॥ जयशब्दं नमःशब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥ विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत् तदा होमः कर्त्तव्यः कर्मशांतये ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥ होमाशक्तो बुधो हौम्यं दद्यात् तत्फलसिद्धये ॥ नानाछिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६२ ॥ दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ तेन स्यात् सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥

और याचकोंको धन व अन्न देना ॥ ५८ ॥ यदि श्रोता विरक्त होवे तौ, दूसरे दिन गीता बांचनी. यदि श्रोता गृहस्थ होवे तौ, कर्मकी शांतिके वास्ते होम करना ॥ ५९ ॥ होम करे वह दशमस्कंधका एक एक श्लोक पढ़ कर, विधिपूर्वक दूध, मिष्ट पदार्थ, घृत, तिल और अन्नादिकसे करे ॥ ६० ॥ अथवा एकचित्त होकर, गायत्रीमंत्रसे होम करे; क्योंकि गायत्रीमंत्र परम-तत्त्वरूप है. और यह श्रीमद्भागवत गायत्रीमंत्ररूप है ॥ ६१ ॥ यदि होम करनेकी सामर्थ्य न होवे तौ, उस फलकी सिद्धिके वास्ते तथा अनेक प्रकारके छिद्रोंके परिहारके अर्थ होमके पदार्थ दे देना ॥ ६२ ॥ न्यूनाधिक दोषकी शांतिके वास्ते विष्णुसहस्रनामका पाठ

करवाना; क्योंकि इसके पाठसे सब सफल हो जाता है. इससे बढ़ कर, दूसरा कोईभी साधन नहीं है ॥ ६३ ॥ फिर व्रतकी संगतासिद्धिके वास्ते बारह १२ ब्राह्मणोंको खीर खांड़से भोजन करवाना. और सुवर्णधेनुका दान करना ॥ ६४ ॥ जो शक्ति होवे तौ तीन पल-( बारह मुहरों ) का सुवर्णका सिंहासन करवाय, उसपर सुंदर अक्षरोंसे लिखाहुआ श्रीमद्भागवतका पुस्तक विराजमान करना ॥ ६५ ॥ फिर आवाहन-आदि उपचारोंसे पूजा कर, भेंट धर, वस्त्र, आभूषण व गंधआदिसे स्थिरचित्त आचार्यका पूजन कर ॥ ६६ ॥ उसको कंचनके सिंहासनसहित श्रीमद्भागवतका दान देना. जो सुबुद्धि श्रीमद्भागवतका दान करे, वह संसारके

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ दद्यात् सुवर्णधेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥ संपूज्य वाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगंधाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबंधनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥ फलदं स्यात् पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥

बंधनोंसे मुक्त हो जाय. यदि यह विधि की जाय तौ सर्व पाप निवृत्त हो जायं ॥ ६७ ॥ विधिपूर्वक श्रवण करनेसे उत्तम श्रीमद्भागवत नाम पुराण फल देनेवाला और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनको सिद्ध करनेवाला हो जाता है ॥ ६८ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि-इसतरह यह सब मैंने तुमसे कहा. अब फिर क्या सुननेकी इच्छा है ? श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसे भोग और मोक्ष दोनों हस्तगत हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ सूतजीने कहा कि-ऐसे कहकर, उन महात्माओंने भोग और मोक्षकी देनेवाली तथा सर्व पाप हरनेवाली पवित्र श्रीमद्भागवतकी कथा कही ॥ ७० ॥ सर्वप्राणीमात्रने नियतचित्त होकर, सप्ताहश्रवण करा.

तदनंतर यथाविधि सब लोगोंने पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति की ॥ ७१ ॥ उस समय ज्ञान, वैराग्य और भक्ति ये तीनों परमपुष्ट हुए. तथा इनको सब लोगोंको प्रिय लगे ऐसी तरुणता प्राप्त हुई ॥ ७२ ॥ अपना मनोरथ सिद्ध होनेसे नारदजी कृतार्थ हुए. परमानंद भर जानेसे मुनिके सब अंग पुलकित हो गये ॥ ७३ ॥ भगवान्के प्यारे नारदजी इसप्रकार कथा सुनकर, परमप्रसन्न हुए. हाथ जोड़, प्रेमके कारण गद्गद वाणीसे उनको कहने लगे ॥ ७४ ॥ नारदजीने कहा कि-आप दयालु महात्माओंने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया, आपकी कृपासे मैं आज धन्य हूं. आज सर्व पाप हरनेवाले हरि मुझको मिले ॥ ७५ ॥ हे

तदंते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत् सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत् सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वांगः परमानंदसंभृतः ॥ ७३ ॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृतांजलिः ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुंठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥ तत्रायर्यौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचंद्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥ दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत् सुखं स्थितोऽवदत् संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९ ॥

तपोधनो ! कथाश्रवणको मैं सब धर्मोंसे उत्तम मानता हूं; क्योंकि जिसके श्रवण करनेसे वैकुंठनाथ श्रीकृष्ण भगवान् मिल जाते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजीने कहा कि-वैष्णवोंमें उत्तम नारदजी इसप्रकार कह रहे थे, इतनेमें घूमते २ योगीजनोंके ईश्वर शुकदेवजी उधर आ, निकले ॥ ७७ ॥ कैसे हैं शुकदेवजी ! कि-सोलह वर्षकी जिनकी अवस्था है. ज्ञानरूप महासागरकी वृद्धिके लिये जो चंद्रमा हैं. जो निजलाभसे सदा पूर्ण हैं वे व्यासजीके पुत्र प्रीतिसे शनैःशनैः श्रीमद्भागवतका पाठ करते कथाके अंतमें पधारे ॥ ७८ ॥ अतिउत्तम तेजवाले शुकदेवजीको देखकर, सब सभासद उठे. और उन्होंने बड़ी प्रीतिके साथ बड़ा भारी आसन

दिया. नारदजीने भावभक्तिसे शुकदेवजीका पूजन किया. तदनंतर सुखपूर्वक बैठकर शुकदेवजीने कहा कि-' जो मैं निर्मल वाणी कहता हूं वह सुनो ' ॥ ७९ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-हे रसिक भाववाले लोगो! शुकके मुखमेंसे पृथ्वीपर पड़ाहुआ वेदरूप कल्पवृक्षका फलरूप भागवत कि-जो अमृतरससे भराहुआ और रसरूपही है उसका विदेहमुक्ति होनेपर्यंत वारंवार पान करो ॥ ८० ॥ पुराणोंमें तिलकरूप श्रीमद्भागवत कि-जो वैष्णवोंका धनरूप है, जिसमें परमहंसपनको देनेवाला और निर्मल एक-परमज्ञानका निरूपण करनेमें आया है और जिसमें, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसहित निष्कर्म भावही प्रगट किया है, उसका भक्तिपूर्वक श्रवण करनेवाला तथा पाठ करनेवाला और उसीके विचारमें तत्पर रहनेवाला पुरुष मुक्त हो जाता है ॥ ८१ ॥ श्री-

श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८१ ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥ स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुंठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबंतु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥

मन्नारायणके निर्माण कियेहुए इस श्रीमद्भागवत पुराणमें मत्सरतारहित सत्पुरुषोंका कैतव यानी फलाभिसंधानरहित उत्तम धर्म निरूपण किया गया है. इस शास्त्रमें वस्तुभूत वस्तु यानी परब्रह्म वेद्य पदार्थ है. इसके श्रवण करनेसे तीनों ताप ( अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ) समूल नष्ट हो जाते हैं. श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसे जितने जल्दी भगवान् हृदयमें प्राप्त हो जाते हैं क्या दूसरे शास्त्रोंसे भगवान् इतने शीघ्र हृदयमें प्राप्त हो सकते हैं? कदापि नहीं. तुरंत भगवत्प्राप्ति होनी यह तो श्रीमद्भागवतके श्रवणसेही हो सकती है. परंतु श्रवण करनेकी इच्छा विना पुण्यके नहीं होती. अर्थात् जो पुण्यपुरुष हैं, वेही इसे सुना करते हैं. अन्य नहीं ॥ ८२ ॥ स्वर्ग, सत्यलोक, कैलास या वैकुंठमेंभी यह रस नहीं है. इसलिये हे भाग्यशाली लोको! इस

भागवतके रसका पान करो. कदापि इसे मत छोड़ो मत छोड़ो ॥ ८३ ॥ सूतजीने कहा कि–शुकदेवजी इसप्रकार कह रहे थे इतनेमें वहां प्रल्हाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि अपने पार्षदोंके साथ हरि भगवान् प्रकट हुए. नारदजीने पार्षदोंके साथ भगवान्‌की पूजा की ॥ ८४ ॥ बड़े आसनपर प्रसन्नतासे विराजमान हरि भगवान्‌का दर्शन करके, वैष्णवलोग कीर्तन करने लगे. कीर्तनकी ध्वनि सुन कर, कीर्तन देखनेके वास्ते ब्रह्माजी और भवानीको साथ लिये महादेवजी वहां पधारे ॥ ८५ ॥ वहां कीर्तन करनेमें प्रल्हाद ताल बजाते थे. उद्धवजीने मंजीरे लिये थे. नारदजी वीणाको छेंड़ रहे थे. स्वरविद्यामें कुशल

सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणे मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्त्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमन् कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्त्ताऽर्जुनोऽभूत् ॥ इंद्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥ ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत् तत् ॥ ८७ ॥ मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥ नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात् ॥ मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वांतरधीयताच्युतः ॥ ८९ ॥

होनेसे अर्जुन आलापते थे. इंद्र मृदंग बजाते थे, सनत्कुमार जयजय शब्द करते थे. और रसकी रचनासे शुकदेवजी अग्रसर हो भाव बताते थे ॥ ८६ ॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये तीनों सभाके बीच नटकी भांति नृत्य करते थे. इस अलौकिक कीर्तनको देखकर, हरि भगवान्‌ने प्रसन्न होकर, यह वचन कहा कि–॥ ८७ ॥ 'हे वैष्णवो ! तुम मुझसे बर मांगो. मैं तुम्हारे कथा व कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं ' हरि भगवान्‌का यह वचन सुनकर, प्रेमसे अतिआर्द्र चित्तवाले वैष्णवोंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि– ॥ ८८ ॥ " जहां सप्ताहकथा होवे, वहां आप इन सब भक्तोंके साथ बड़े प्रयत्नसे अवश्य पधारा करें. हमारा य-

ह मनोरथ पूर्ण होना चाहिये. " हरि भगवान् " तथास्तु " कहकर, अंतर्धान हुए ॥ ८९ ॥ फिर नारदजीने शुक-आदि योगीश्वरोंके तथा तपस्वियोंके चरणोंमें प्रणाम किया. सबलोग कथामृत पीनेसे मोहरहित व प्रसन्नचित्त होकर, अपने २ स्थानोंको सिधारे ॥ ९० ॥ उस समय शुकदेवजीने अपने शास्त्र- ( श्रीमद्भागवत ) में पुत्रों-( ज्ञानवैराग्य )के साथ भक्तिको स्थापित किया. अतएव जो वैष्णव श्रीमद्भागवतको श्रवण करते हैं उनके हृदयमें हरि शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं. जो लोग दारिद्य और दुःखके तापसे तप रहे हैं. मायारूप पिशाची जिनको मरोड़ रही है. जो संसाररूप समुद्रमें पड़ेहुए हैं, उनके कल्याणके वास्ते तो यह श्रीमद्भागवतही

ततोऽनमत तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ॥ संसारसिंधौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिंधि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥ सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात् त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारंभं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥ परीक्षिच्छ्रवणांते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत् कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥

गरजता रहता है ॥ ९२ ॥ शौनकजीने कहा कि-यह श्रीमद्भागवत शुकदेवजीने राजा परीक्षितको किससमयमें कहा था? गोकर्णने कब कहा ? और सनत्कुमारोंने नारदजीको कब कहा ? मेरा यह संदेह दूर करो ॥ ९३ ॥ सूतजीने कहा कि- श्रीकृष्ण भगवान्‌के वैकुंठधाम पधारे पीछे कलियुगके तीस ३० वर्षसे कछुक अधिक समय निकल गया, तब भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षमें नवमीके दिनसे शुकदेवजीने कथाका प्रारंभ किया था ॥ ९४ ॥ परीक्षितके कथा सुने पीछे कलियुगके दोसौ २०० वर्ष निकल गये, तब आषाढ़ शुक्ल नवमीको गोकर्णने कथा की ॥ ९५ ॥ गोकर्णके कथा किये पीछे तीस ३० वर्ष निकल गये, तब कार्तिक शुक्ल नवमीको सनत्कुमारोंने

कथाका प्रारंभ किया ॥ ९६ ॥ हे अनघ ! तुमने पूंछा था कि–' कलियुगमें भवरोगको मिटानेवाला, उपाय क्या है ? ' सो यह सब हमने कहा कि–कलियुगमें श्रीमद्भागवतकी कथा भवरोगकी मिटानेवाली है ॥ ९७ ॥ हे सत्पुरुषो ! यदि तुम अपना कल्याण करना चाहते हो तो, यह श्रीमद्भागवतकी कथा कि–जो श्रीकृष्णचंद्रकी प्यारी, सकल कश्मलको नाश करनेवाली, मुक्तिका एक कारण व भक्तिको विलास करानेवाली है, तिसका निरंतर आदरके साथ पान करो. अरे ! भाइयो ! लोकके भीतर दूसरी हितकारी वस्तुके विचारकी सेवासे क्या होना है ? कुछभी नहीं ॥ ९८ ॥ पाश हाथमें लिये अपने दूतको देख कर, यम-

इत्येतत् ते समाख्यातं यत् पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥ संतः कथानकमिदं पिबता- कृष्णप्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारी ॥ लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे संसारे विषयविषसंगाकुलधियः क्षणार्द्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम् ॥ किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०० ॥ रहः प्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कंठे संबध्यते येन स वैकुंठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धांत- सिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुंजं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित् पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कंधसारम् ॥ १०२ ॥

राज दूतके कानमें कहते हैं कि–हे दूत ! जो भगवत्कथामें रत हो, उससे दूर रहना; क्योंकि मैं दूसरे लोगोंका प्रभु हूं. वैष्णवोंका नहीं हूं. वैष्णवोंके प्रभु तो एक हरिही हैं ॥९९॥ हे विषयरूप विषके संगसे व्याकुल बुद्धिवाले लोगो ! इस असार संसारमें मोक्षके लिये कमसे कम आधाक्षणभी भागवतरूप अतुल अमृतका पान करो. अहो ! लोको ! कुत्सित वार्तालापवाले कुमार्गमें तुम व्यर्थ क्यों जाते हो ? भागवतके श्रवणसे मुक्ति होनेमें तो राजा परीक्षित् प्रत्यक्ष साक्षी हैं ॥ १०० ॥ रसके प्रवाहके बीच विराजमान शुकदेवजीकी कहीहुई कथाको जो मनुष्य कंठमें धारण करे ( मुखपाठ करे ) वह भगवद्रूप हो जाता. है ॥ १०१ ॥ शास्त्रसमूहको देखकर,

इसप्रकार परमगुह्य और सर्व सिद्धांतोंसे सिद्ध जो तत्त्व है वह मैंने तुमसे कहा. जगत्‌में श्रीमद्भागवतकी कथासे बढ़कर, दूसरा कोईभी निर्मल नहीं है. अतएव परमसुख प्राप्त होनेके लिये तुम बारह स्कंधरूप सारका पान करो ॥ १०२ ॥

एतां यो नियततया श्रृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्‌ फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम्‌ ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥

जो मनुष्य इस कथाको भक्तिपूर्वक जितेंद्रिय रह कर, सुने और शुद्ध वैष्णवको श्रवण करावे वे दोनों उत्तम विधि करनेके कारण यथार्थ फल पाते हैं. उनके लिये त्रिलोकीमें कुछभी असाध्य नहीं है ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं समाप्तिमगमत्‌ ॥

हरिप्रसाद भगीरथजी पुस्तकालय.
ठिकाना--कालकादेवीरोड़ रामवाड़ी मुंबई.

HARIPRASAD BHAGEERATHJEE

Kalkadevi Road Ramvadi,

( BOMBAY. )

॥ इति श्रीमद्भागवतस्य भाषया सहितं
माहात्म्यं समाप्तम् ॥

ॐ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ वेदसार प्रारम्भः ॥ ह० २

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ॥ जटाजूटमध्ये

स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥१॥ महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं

विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ॥ विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रं

॥२॥ गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् भवं भास्वरं

भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥३॥

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्

त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥४॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम्

॥ यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र

विश्वम् ॥५॥ न भूमिर्न चापो न वह्निर्न

वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ॥ न ग्रीष्मो न शीतं न देशो

न वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥६॥ अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं

भासकं भासकानाम् ॥ तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्

॥७॥ नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते नमस्ते नमस्ते

तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥८॥ प्रभो शूलपाणे विभो

विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रीनेत्र ॥ शिवकान्त शन्त स्मरारे पुरारे

त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥१॥ शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे

गौरिपते पशुपते पशुपाश नाशिन ॥ काशिपते करुणया जगदेव

देवस्त्वं हन्सी पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥२॥ त्वत्तो जगद्भवति

देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठती जगन्मृड विश्वनाथ त्वय्येव गच्छति

लयं जगदेत दिशा लिङ्गात्मके हर चराचर विश्वरूपीन ॥३॥ पूर्णानन्द

श्रीगणेशाय नमः ॥ नानापुराण और शास्त्ररचना करनेपरभी मन निर्मल न होनेसे चित्तको संतोष नहीं हुआ, तो भगवान्‌के गुणोंका वर्णन जिसमें मुख्य है ऐसे श्रीमद्भागवतशास्त्रका, नारद मुनिके उपदेशसे प्रारंभ करना चाहते श्रीवेदव्यासजी, श्रीभागवत करके प्रतिपादन करने योग्य परमेश्वरका स्मरणरूप मंगलाचरण करते हैं: भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालोंमेंभी जिसका नाश नहीं ऐसे सत्यस्वरूप परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं. कैसे हैं वे परमेश्वर सो कहते हैं कि, जैसे सूर्यकी किरणोंमें मृगतृष्णा-का जल प्रतीत होता है वह सत्य नहीं तथापि सूर्यकी किरणोंकी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होता है. जैसे स्थिर जलमें भ्रांतिसे यह

॥ ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ॥ तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो
यत्र त्रिसर्गो मृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

काच है ऐसी प्रतीति होती है और वह सत्य नहीं तथापि जलकी सत्तासे सत्यसी भासे है, जैसे काचमें भ्रांतिसे यह जल है ऐसी प्रतीति होवे है वह सत्य नहीं तथापि काचकी सत्तासे सत्यसी भासे है, वैसे अधिष्ठानरूप परमेश्वरके विषे तमोगुणके कार्यरूप पंच-महाभूतोंकी सृष्टि, रजोगुणके कार्यरूप इंद्रियोंकी सृष्टि और सत्वगुणके कार्यरूप देवतोंकी सृष्टिमें अहंताममतारूप संसारकल्पित और असत्यरूप है तथापि जिस परमात्माकी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होय है; और जिन परमेश्वरने अपने ज्ञानरूप प्रकाशसे मायारूप

---

१ यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ॥ वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥ लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ॥ अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ॥ इति मत्स्यपुराणे ॥ पुराणांतरे च–ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कंधसंमितः ॥ हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ॥ गायत्र्या च समारंभस्तद्वै भागवतं विदुः ॥ पद्मपुराणे–अंबरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ॥ पठ त्वं स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥

अर्थ–जिस पुराणमें गायत्रीके आशयको लेकर, धर्मका विस्तार वर्णन किया जाय और वृत्रासुरके बधकी कथा जिसमें होवे, वह श्रीमद्भागवत है; उसकी पुस्तक ललित अक्षरों-में लिखवा कर, सुवर्णके सिंहासनपर स्थापन कर भाद्रपदशुदि पूर्णमासी १५ के दिन जो वैष्णवब्राह्मणको देवे, वह परमपदको प्राप्त होवे। इस पुराणमें अठारह हजार १८००० श्लोक हैं. दूसरे पुराणमेंभी लिखा है कि, जिसमें अठारह हजार १८००० श्लोक, बारह १२ स्कंध, नारायणकवचरूप ब्रह्मविद्या और वृत्रासुरके बधकी कथा होवे तथा जिसका प्रारंभ गायत्रीमंत्रके अर्थके आशयको लेकर होवे, वह श्रीमद्भागवतनाम पुराण है. पद्मपुराणमेंभी लिखा है, गौतमऋषिनें अंबरीषराजासे कहा है कि, हे अंबरीष राजा! जो तुम इस संसारसागरसे पार उतरना चाहते हो, तो हमेशा शुकदेवजीका कहाहुआ श्रीमद्भागवतनाम पुराण श्रवण करो और अपने मुखसेभी उसका पाठ हमेशा कियाकरो.

कपटको दूर कर रक्खा है. जिस परमेश्वरसे इस जगतके जन्म, स्थिति, भंग होते हैं, जो परमेश्वर कार्यरूप प्रपंचमें कारणरूपसे घड़ेमें मिट्टीकी नाई और कटककुंडलादिकोंमें सुवर्णकी नाई व्याप्त है, जो परमेश्वर मिथ्यासंसारसे जुदे हैं, जो परमेश्वर ज्ञानरूप और स्वयंप्रकाश हैं, और बड़े बुद्धिमान् पुरुषभी जिस वेदका अर्थ जाननेमें मोहित हो जाते हैं ऐसा वेद जिन परमेश्वरने आदिकवि ब्रह्माके मनमें अंतर्यामीरूपसे प्रकाशित किया, उनका हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ इस तरह मंगलाचरण करके, श्रीमद्भागवतमें श्रोताजनोंको प्रवृत्त करनेके लिये कर्मकांडादिकनके प्रतिपादक सब शास्त्रोंसे श्रीमद्भागवतके श्रेष्ठत्वका निरूपण करते हैं. यह श्रीमद्भागवत प्रथम संक्षेपसे महामुनि श्रीमत् नारायणने किया, तदनंतर वेदव्यासजीने उसका विस्तार किया; इस श्रीमद्भागवतमें सब प्राणियोंपै परम दयालु और मत्सररहित सत्पुरुषोंका, फलाभिसंधानरहित और परमेश्वरके आराधनरूप उत्तम

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

धर्मका निरूपण किया गया है, इससे तौ श्रीमद्भागवतकी कर्मकांडविषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठता कही. तथा इस श्रीमद्भागवतमें जीव, माया और जगत् ये तीनों वस्तु भेदरहित, जानने योग्य, परमार्थस्वरूप और परमसुखद परमेश्वरके स्वरूपसे भिन्न नहीं हैं ऐसा विना यत्नही ज्ञान हो जाय है. और अध्यात्म, अधिदैवत और अधिभूत ये तीनों ताप निर्मूल होय हैं, इससे ज्ञानकांडविषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठता कही. केवल कर्म और उपासनाके प्रतिपादक दूसरे शास्त्रोंसे अथवा उनके साधनोंसे क्या परमेश्वर तुर्त हृदयमें प्राप्त हो सक्ता है ? नहीं. किंतु इस श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसेही भगवान् तुर्त हृदयमें प्राप्त होते हैं, परंतु पुण्य विना श्रीमद्भागवतका श्रवण करना बने नहीं, इससे देवताकांडविषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठता कही ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवत सब

१ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥ यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ॥ यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये. २ स ईक्षते । ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ ३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती ॥ इति ॥

शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है, तासों यह श्रवण करने योग्य है. ऐसे प्रतिपादन करके, अब वेदरूप कल्पवृक्षका फलरूप होनेसेभी यह श्रवण करने योग्य है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं, वेदरूप कल्पवृक्षका यह सुंदर रसीला श्रीमद्भागवतरूप फल वैकुंठमेंसे लाकर नारद मुनिने तो मुझे दिया और मैंने शुकदेवजीको दिया और शुकदेवजीके मुखसे पृथ्वीपर आया, सो जैसे शुक यानी तोतेकी चोंचसे पृथ्वीपर पड़ाहुआ फल बहुत स्वादु होता है, वैसे शुक यानी शुकदेवजीके मुखसे पृथ्वीपै आयाहुआ यह श्रीमद्भागवतरूप फल अखंड परमानंदरूप रससे भराहुआ है. सो हे रसविशेषके स्वाद जाननेवाले ! हे भावुक पुरुषो ! मोक्ष होनेपरभी इस भागवतरूप रसमय फलका बारंबार पान करो ॥ ३ ॥ तीन श्लोकोंसे आरंभणीय ग्रंथके मंगलाचरणरूप ईश्वरस्मरण और विषयप्रयोजनादि कह कर अब ग्रंथका प्रारंभ

नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गायलोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

करते हैं– श्रीविष्णु भगवानके नैमिषारण्यनाम क्षेत्रमें शौनकादिक ( अठ्यासी हजार ८८००० ) ऋषि भगवत्प्राप्तिके अर्थ सहस्र वर्षपर्यंत अनुष्ठान कालवाला सत्र नाम यागका उद्देश कर बैठे ॥ ४ ॥ एक समय वे मुनि प्रातःकालमें अपने नित्यनैमित्तिक होममे निचिंत हो, आसनपर विराजमान सूतजीका सत्कार कर, आदरपूर्वक यह प्रश्न करने लगे ॥ ५ ॥ शौनकादिक ऋषियोंने कहा कि– हे अनघ ! आपने पुराण, इतिहास और धर्मशास्त्र सब पढ़े हैं और उनका व्याख्यानभी किया है ॥ ६ ॥ हे सूत ! ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ भगवान् वेदव्यासजी और पर अवर यानी भूत भविष्य जाननेवाले दूसरेभी मुनिलोग जो धर्मशास्त्र इत्यादि जानतेहैं ॥ ७ ॥

---

१ पद ॥ राग धनाश्री ॥ निगम कल्पतरु पक्कफल शुकमुखते जु दियो, श्रीशुकदेव कृपा करिके अति परीक्षित श्रवण पियो, ज्ञानदीप हिरदे प्रगट्यो, मनोकामना काज लयो, जगमें प्रकाश करि हरिकथा उरको तिमिर सबही गयो, सूर श्याम सुनहो रसिकनमणि बारंबार रस पीवो नयो ॥ २ रसो वै सः रस ँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवतीति श्रुतेः ॥ ३ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥

हे सौम्य ! उनकी कृपासे वह सब तुम सारसहित जानते हो; क्योंकि जिस शिष्यपर स्नेह होता है, उसे गुरु गुह्य बातभी बतला देते हैं ॥ ८ ॥ हे आयुष्मन् ! उन उन शास्त्रोंमें आपने मनुष्योंके लिये जो पक्का व्यभिचाररहित कल्याणका निश्चय किया हो सो हमें कहो ॥ ९ ॥ हे सभ्य ! बहुधा इस कलिकालमें लोक अल्पायु, आलसी, अत्यंत मंदमति, मंदभाग और रोगादिकोंके उपद्रववाले होते हैं ॥ १० ॥ हे साधु ! जिनमें अनेक कर्मोंके जंजाल हैं ऐसे सुनने योग्य शास्त्र तौ जुदे जुदे बहुत हैं, इस लिये जो सार हो, वह हमें बुद्धिसे निकाल कर कहो कि, जिससे हमारा आत्मा संतुष्ट हो जाय; हमें सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ ११ ॥

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्र तत्रांजसायुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकांततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ॥ मंदाः सुमंदमतयो मंदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सत्वतां पतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यंगानुवर्णितुम् ॥ यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३ ॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो वियुज्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥ १४ ॥ यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनंत्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोनुसेवया ॥ १५ ॥

हे सूत ! आपका कल्याण होओ, तुम जानते हो कि, सात्वतोंके पति भगवानने वसुदेवजीकी देवकीनाम स्त्रीमें कौन कार्य करनेकी इच्छासे अवतार लिया ? ॥ १२ ॥ हे अंग ! हम यह बात सुनना चाहते हैं सो आप वर्णन करो. जिन भगवानका अवतार लोगोंके क्षेमा और कल्याणके वास्ते हुआ करता है ॥ १३ ॥ घोर संसारमें पड़ाहुआ यह मनुष्य विवश होनेपरभी जिस परमेश्वरका नाम ले तौ तुर्त संसारसे मुक्त हो जाय; क्योंकि अविद्यालक्षण भयभी स्वयं उससे डरता रहता है ॥ १४ ॥ हे सूत ! गंगाका जल तौ बहुत अर्सेतक सेवन करनेसे पावन करता है परंतु जिनके केवल शांतिकाही आश्रय है ऐसे जिन भगवान्के

चरणकमलोंके आश्रित मुनिलोग केवल समीप जानेहीसे तुर्त पवित्र करदेते हैं ॥ १५ ॥ पवित्रकीर्ति लोग जिनके कर्मोंकी स्तुति करते हैं ऐसे भगवान्‌के कलिकालके मैलको धोनेवाले यशको शुद्धिकी कामनावाला कौन पुरुष श्रवण न करे ? ॥ १६ ॥ लीलासे ब्रह्म रुद्रादिक मूर्ति धारण करनेवाले उन भगवान्‌के उदार चरित कि, जिन्हें नारदादिक सूरिलोग गाया करते हैं सो श्रद्धावान् जो हम हैं उनसे वर्णन करो ॥ १७ ॥ हे बुद्धिवान् ! अपनी मायासे अपनी इच्छानुसार लीला करते परमेश्वरके अवतारोंकी श्रेष्ठ कथा कहो ॥ १८ ॥ हम उत्तमश्लोक भगवान्‌के पराक्रमके विषयमें तृप्त नहीं होते; क्योंकि, रसज्ञ पुरुष उसे ज्यों ज्यों सुनते हैं, त्यों त्यों वह उन्हें

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य कर्माण्युदाराणिपरिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीलाविदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१ ॥ त्वन्नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥

पदे पदे यानी क्षणक्षणमें स्वादुसेभी स्वादु लगता है ॥ १९ ॥ मायासे मनुष्यरूप, गुप्तरूप श्रीकृष्ण भगवानने बलरामजीके साथ मनुष्योंसे न किये जांय ऐसे जो चरित्र किये हैं वे हमें कहो ॥ २० ॥ कलियुगको आया जानकर, इस विष्णु भगवान्‌के क्षेत्रमें बड़े सत्र- ( याग ) के मिससे हरि भगवान्‌की कथा सुननेके लिये अवकाश निकास कर यहां हम बैठे हैं ॥ २१ ॥ जैसे दुस्तर समुद्रको तिरना चाहतेहुए पुरुषोंको कनहार मिलजाय वैसे मनुष्योंके सत्वगुणके हरनेवाले दुस्तर कलियुगको पार उतरना चाहतेहुए हमको विधाताने आपको दिखलाया है ॥ २२ ॥

---

१ पद राग सारंग ॥ हरि हरि हरि सुमिरण करो । हरिचरणारविंद उर धरो ॥ हरिकी कथा होय जब जहां, गंगाहू चलिआवे तहां, यमुना सिंधु सरस्वति आवे, गोदावरी विलम्ब न लावे, सर्व तीर्थको वास तहां, सूर हरिकथा होय जहां ॥

धर्मके कवचरूप, ब्राह्मणोंके परम भक्त, योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्‌के अभी अपने धाम पधारनेपर धर्म किसके शरण गया ? सो हमें कहो ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ पहले अध्यायमें शौनकने छः प्रश्न किये, उनमेंसे सूतजीने दूसरे अध्यायमें चार प्रश्नोंका उत्तर दिया ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि– रो महर्षणके पुत्र सूतजी ब्राह्मणोंका ऐसा प्रश्न सुन अति प्रसन्न हो, उनके बचनका पीछा सत्कार कर, कहने लगे ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि– संन्यास धारण कर जातेहुए, इकले, कृत्यरहित जिन शुकदेवजीको विरहसे कायर वेदव्यासजीने हे पुत्र ! हे पुत्र ! इसतरह

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोंऽधम् ॥ संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमंगलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ५ ॥

पुकार कर बुलाया तो, शुकदेवजीके रूपसे वृक्षोंने उन्हें पीछा उत्तर दिया, ऐसे योगबलसे सब जीवोंके हृदयमें प्रवेश करनेवाले शुक मुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ घोर अंधकारको तिरना चाहते संसारी जीवोंपर दया करके जिन्होंने सब श्रुतियोंका सारभूत, अध्यात्मज्ञानका प्रकाशक पुराणोंमें परम गुह्य, अद्वितीय और अनुपम व स्वतःप्रमाण पुराण कहा, उन मुनिलोगोंके परमगुरु व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीके मैं शरण आया हूं ॥ ३ ॥ नारायण, नरोंमें उत्तम नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम कर पीछे ग्रंथका प्रारंभ करना चाहिये ॥ ४ ॥ हे मुनिलोको ! आपने जगतका मंगलकारक मुझसे बहुत अच्छा प्रश्न किया; क्योंकि आपने श्रीकृष्णचंद्रसंबंधी प्रश्न किया, कि जिससे आत्मा अतिप्रसन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

मनुष्योंका वही मुख्य धर्म है कि, जिससे अधोक्षज भगवान्‌में फलाभिसंधानरहित और अप्रतिहत भक्ति हो जावे, कि जिस भक्तिसे आत्मा भली भांति प्रसन्न हो जाता है ॥ ६ ॥ वासुदेव भगवान्‌की भक्ति की जाती है तौ, तुर्त वैराग्य और शुष्क तर्कादिकोंके अगोचर ज्ञान प्रगट हो जाय है ॥ ७ ॥ यदि अच्छीतरह अनुष्ठान कियाहुआ धर्म मनुष्योंके भगवान्‌की कथामें प्रीति उ-त्पन्न न करे तौ, वह धर्म केवल श्रमरूपही है ॥८॥ कई लोग कहते हैं कि, धर्मका फल धन और धनका फल काम है सो उसे क्यों नहीं सेवते ? सो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, मोक्षसंबंधी धर्मका फल धन नहीं है किंतु मोक्ष है, धर्मैकांत धनका

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदे-वे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकांतस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेंद्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदंति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥ तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यंत्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥

फल काम नहीं है किंतु धर्म है ॥ ९ ॥ कामका फल इंद्रियप्रीति नहीं है किंतु केवल जीवन मात्र फल है और जीनेका फल कर्म कर धन उपार्जन करना नहीं है किंतु तत्वजिज्ञासाही फल है ॥ १० ॥ तत्वके जाननेवाले लोग, जो अद्वय ज्ञान है उसे तत्व क-हते हैं कि जो तत्व ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् ऐसे शब्दोंसे कहा जाता है ॥ ११ ॥ उस परमात्मारूप तत्वको वेदांतादि श्रव-णसे प्राप्त भयी जो ज्ञानवैराग्ययुक्त भक्ति, तिससे सावधान होकर मुनिलोक आत्मा-( क्षेत्रज्ञ ) में साक्षात् देखते हैं ॥ १२ ॥ इसी-से हे द्विजश्रेष्ठो ! मनुष्योंके वर्ण और आश्रमके जुदे जुदे आचरण किये धर्मका फल यही है कि भगवान् प्रसन्न हो जांय ॥ १३ ॥

१ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इति श्रुतेः ॥ २ हैरण्यगर्भैःपरमात्मेति ॥ ३ सात्वतैर्भगवानिति.

इसलिये एकचित्त हो भक्तपति भगवान्का सदा श्रवण, कीर्तन, मनन और पूजन करना चाहिये ॥ १४ ॥ जिन भगवान्के ध्यानरूप खड्गको लियेहुए पंडित पुरुष कर्मग्रंथिके बंधनको तुर्त काट देते हैं उनकी कथामें प्रीति कौन न करै ? ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! पवित्र तीर्थसेवनादिकनसे पुरुष निष्पाप होवे, और निष्पाप पुरुषसे महत्पुरुषोंकी सेवा बनिआवे, उससे धर्ममें श्रद्धा होवे तिसके प्रभावसे श्रवण करनेकी इच्छा प्रगट होवे, और शुश्रूषुके वासुदेव भगवानकी कथामें प्रीति होवे ॥ १६ ॥ जो लोग भगवान्की कथा श्रवण करते रहते हैं, उनके हृदयके अंदर स्थित होकर, सत्पुरुषोंके सुहृद और पवित्र हैं श्रवण कीर्तन जिनके ऐसे श्री-

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्यासिनायुक्ताः कर्मग्रंथिनिबंधनम् ॥ छिंदंति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यंतस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते ॥ २० ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१ ॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वत्यात्मप्रसादनीम् ॥ २२ ॥

कृष्ण भगवान् तुर्त कामआदि वासनावोंका नाश कर देते हैं ॥ १७ ॥ भगवद्भक्त ! या भागवतशास्त्रकी सेवासे जब कर्मोंकी वासना नष्टसी होजांये, और उत्तमश्लोक भगवान्में दृढ भक्ति होजाय ॥ १८ ॥ तब रजोगुण व तमोगुणसे प्रगट होनेवाले कामलोभादिक शत्रुओंसे पराभव न पायाहुआ मन सत्वगुणमें स्थित होकर उपशांत होजाता है ॥ १९ ॥ जब भगवान्के भक्तियोगके प्रभावसे मन प्रसन्न होजाता है और आसक्ति छूट जाती है तब भगवान्के तत्वका अनुभव होजाता है ॥ २० ॥ तत्वका अनुभव होतेही अहंकार निवृत्त होजाय है, सब संदेह कट जांय हैं और इसके सर्व कर्म क्षीण होजांय हैं ॥ २१ ॥ अतएव ज्ञानी लोग बड़े आनं-

दसे मनको प्रसन्न करनहारी वासुदेव भगवान्की भक्ति सदा किया करते हैं॥ २२॥ सत्व, रज और तम ये तीन प्रकृतिके गुण हैं, उन गुणोंसे युक्त होकर, अद्वितीय परपुरुष परमेश्वर इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयके निमित्त हरि हर और ब्रह्मा ऐसे नाम धारण करते हैं, उनमें शुभ फल तौ मनुष्योंको सत्वमूर्ति वासुदेव भगवानहीसे प्राप्त होंय हैं ॥ २३॥ जैसे पृथ्वीके विकार काष्ठसे धूम श्रेष्ठ है और उससे वेदत्रयीरूप अग्नि श्रेष्ठ है वैसे लयात्मक तमोगुणसे सोपाधिक ज्ञानका हेतु रजोगुण श्रेष्ठ है और उससे साक्षात् परब्रह्मका प्रकाशक सत्वगुण श्रेष्ठ है, इसीसे इन गुणोंकी उपाधिवाले देवताभी यथोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ २४ ॥ अतएव मुनिलोगोंने

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिंचिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥ २३ ॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवंतमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पंते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शांता भजंति ह्यनसूयवः ॥ २६ ॥ रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजंति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपराः मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥ वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥

विशुद्ध सत्वमूर्ति अधोक्षज भगवान्का पहले भजन किया है, सो जो उनके पीछे चलते हैं, वेभी कल्याणको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ असूयारहित मुमुक्षु लोग तौ घोररूप भूतपतियोंको छोड़ कर, शांतस्वरूप नारायणकी कलाओंका भजन करते हैं ॥ २६ ॥ और रजोगुण तमोगुणकी प्रकृतिवाले पुरुष, संपदा ऐश्वर्य और प्रजाकी कामनासे, अपने समान शील, पितर, भूत और प्रजापति आदिकोंका भजन करते हैं ॥ २७ ॥ परंतु मोक्ष देनेवाले केवल वासुदेव भगवानही हैं, और सब शास्त्रोंका तात्पर्यभी भगवान्का प्रतिपादन करनेसे है. इसलिये उन्हींका भजन करना योग्य है. देखो, वेद वासुदेवके परायण हैं, यज्ञ वासुदेवके परायण हैं, योग वासुदेवके परायण हैं, प्राणायामादिक क्रिया वासुदेवके परायण हैं ॥ २८ ॥ ज्ञान वासुदेवके परायण है, तप वासुदेवके परायण

है, धर्म वासुदेवके परायण है, स्वर्गादिककी गति वासुदेवके परायण है ॥ २९ ॥ उन्हीं निर्गुण विभु भगवान्‌ने कार्य कारणरूप अपनी गुणमयी मायासे पहले इस जगत्‌को पैदा किया ॥ ३० ॥ उसमायासे विलसित इन गुणोंके अंदर प्रवेश कियेहुए भगवान् मानों गुणवाले हों ऐसे प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः नहीं क्योंकि आप चैतन्य शक्तिसे बहुत बढ़े हुए हैं ॥ ३१ ॥ जैसे अपने कारणभूत काष्ठमें रहा अग्नि एक रहतेभी नानारूपसे प्रतीत होता है, वैसे जगत्‌के आत्मा हरिभी सब जीवोंमें नानारूप हों वैसे प्रतीत होते हैं ॥ ३२ ॥ ये भगवान् विषय, इंद्रियां और मनद्वारा अपने रचेहुए भूतोंमें प्रवेश कर उनके सब गुणोंका गुणमयी-

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥ ३० ॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अंतःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृंभितः ॥ ३१ ॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेंद्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुंक्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥ यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदांबुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजांपतिः ॥ २ ॥

भावोंसे भोग करते हैं ॥ ३३ ॥ जगत्‌के पालक ये हरि सत्वगुणसे देव, पशु-पक्षी और मनुष्यादिकोंमें लीलासे अवतार धारण करके लोकोंका पालन करते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ तिसरे अध्यायमें पुरुषआदि अवतारोंके चरितका वर्णन करके अवतार कथाके प्रश्नका उत्तर दिया ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि-प्रथम भगवान्‌ने लोकरचनाकी इच्छासे, महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्रासे निष्पन्न सोलह कलावाला पुरुषरूप धारण किया ॥ १ ॥ जलमें पौढ़े और योगनिद्राको विस्तारते जिन भगवान्‌की नाभिरूप तालाबमेंसे कमल उत्पन्न हुआ,

और विसमेंसे जगत् रचनेवालोंके पति ब्रह्माजी प्रगट हुए ॥ २ ॥ जिसके अवयव संस्थानोंसे लोकोंका विस्तार कल्पन किया गया है, वह यह भगवान्‌का स्वरूप विशुद्ध और निरतिशय सत्वमय है ॥ ३ ॥ योगी लोक इस स्वरूपको अनल्प ज्ञानरूप चक्षुसे, हजारों चरण, साथल, भुजा और मुख होनेसे अति अद्भुत, हजारों सिर, कान, आंख, नाकवाला और हजारों मुकुट, वस्त्र और कुंडलोंसे शोभायमान देखते हैं ॥ ४ ॥ यह आदि नारायणका स्वरूप सब अनेक अवतारोंका अखंड उत्पत्ति और अंतमें लीन होनेका स्थान है, इसीके अंशरूप ब्रह्माजीके अंशभूत मरीचिआदि प्रजापतियोंद्वारा सब देव, पशुपक्षी, मनुष्यआदि प्रगट होय हैं ॥ ५ ॥

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यंत्यदोरूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यंबरकुंडलोल्लसत् ॥ ४ ॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यंते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखंडितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तंत्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचाऽऽसुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥

उन्हीं भगवान्‌ने प्रथम कौमार नाम सर्ग धारण कर, ब्राह्मणरूप हो, अशक्य अखंड ब्रह्मचर्यव्रतका आचरण किया ॥ ६ ॥ यज्ञके ईश्वर भगवान्‌ने दूसरे अवतारमें इस जगत्‌की उत्पत्तिके अर्थ पातालमें गईहुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहस्वरूप धारण किया ॥ ७ ॥ तीसरे अवतारमें देवर्षि नारदरूप हो कर्मोंका काटनेवाला वैष्णव नारदपंचरात्र प्रगट किया ॥ ८ ॥ चौथे अवतारमें धर्मकी स्त्रीके उदरसे नर नारायण नामसे ऋषिरूप धारण कर, मनको शांत करनेवाला अति कठिन तप किया ॥ ९ ॥ पांचवें अवतारमें सिद्धेश्वर कपिलमूर्ति हो, कालके प्रभावसे नाश हुए तत्वसमूहके निश्चायक सांख्यशास्त्रका आसुरिनाम ब्राह्मणको उपदेश किया ॥ १० ॥

छठे अवतारमें अत्रिऋषिके घर अनसूयाकी प्रार्थनासे पुत्र हो, दत्त नाम धारण कर, मदालसाके पुत्र अलर्क और प्रल्हादादिकोंको आत्मविद्याका उपदेश किया ॥ ११ ॥ सातवें अवतारमें रुचिकी आकूति नाम स्त्रीमें यज्ञ अवतार धारण कर, यम आदि देवतोंको साथ ले, स्वयंभुव मन्वंतरका पालन किया ॥ १२ ॥ आठवें अवतारमें नाभि राजाकी मेरुदेवी नाम स्त्रीमें ऋषभ अवतार धारण कर, धीर पुरुषोंको सब आश्रमोंके वंदनीय परमहंसमार्ग दिखलाया ॥ १३ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवमा पृथुका अवतार हुआ, हे विप्रो ! इसने पृथ्वीका दोहन किया इसलिये इस अवतारको बहुत उत्तम कहते हैं ॥ १४ ॥ चाक्षुष मन्वंतरमें समुद्र इकट्ठे हुए

षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ सयामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवांतरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मंदराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥ धान्वंतरं द्वादशमं त्रयोदशममेवच ॥ अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७ ॥ चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येंद्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पंचदशं वामनकं कृत्वाऽगादध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

यानी प्रलय हुआ, उस समै मत्स्य अवतार धर, पृथ्वीरूप नावमें बिठलाकर, वैवस्वत मनुकी रक्षा करी ॥ १५ ॥ ग्यारहवें अवतारमें देवता, दैत्य समुद्रमथन करने लगे, तब प्रभुने कच्छप मूर्ति धारण कर, मंदराचल पर्वतको पीठपर धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवां धन्वंतरि अवतार धारण कर, अमृत ले आये. तेरहवां मोहिनी नाम स्त्रीका स्वरुप धारण कर, दैत्योंको मोहित कर, देवतोंको अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहवें अवतारमें नृसिंहरुप धर, बढेहुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको जैसे चटाई बनानेवाला तूली चीर डालता है, वैसे अपने नखोंसे हृदयमेंसे विदार दिया ॥ १८ ॥ पन्द्रहवें अवतारमें वामनरूप धारण करके, त्रिलोकी लेने-

के अभिप्रायसे तीन पैग पृथ्वीकी याचना करते भगवान् बलिके यज्ञमें पधारे ॥ १९ ॥ सोलहवें अवतारमें परशुरामरूप धारण
कर राजाओंको ब्रह्मद्रोही देखकर, कुपित हो, पृथ्वीको इक्कीस वेर निक्षत्री करी ॥ २० ॥ सत्रहवें अवतारमें पराशरजीसे सत्यवती-
में व्यासरूप प्रकट हो, लोगोंको मंदबुद्धि देखकर, वेदरूप वृक्षकी शाखाओंका विभाग किया ॥ २१ ॥ अठारहवें अवतारमें देव-
तोंका कार्य करनेकी इच्छासे रामचंद्रमूर्ति हो, समुद्रको दंड देना इत्यादि अनेक पराक्रम किये ॥ २२ ॥ उन्नीसवें और बीसवें अ-
वतारमें यादवोंमें राम कृष्ण इन नामोंसे अवतार ले, भगवान्ने भूमिका भार उतारा ॥ २३ ॥ इक्कीसवें अवतारमें कलियुग प्रवृत्त

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहोन्नृपान् ॥ त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः
सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेव-
त्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतःपरम् ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंश-
तिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते
संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धोनाम्नाऽजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥ अथासौ युगसंध्यायां
दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥ अवताराह्यसंख्येया
हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥ ऋषयो मनवो दे-
वा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु
भगवान्स्वयम् ॥ इंद्रारिव्याकुलं लोकं मृडयंति युगे युगे ॥ २८ ॥

हुए पीछे दैत्योंको मोहित करनेके लिये कीकट यानी गया प्रदेशमें अजनका पुत्र बुद्ध नाम अवतार होगा ॥ २४ ॥ बाईसवें
अवतारमें कलियुगके अंतमें राजा सब चोरप्राय हो जायंगे, तब विष्णुयशानाम ब्राह्मणसे जगत्पति कल्किका अवतार होगा
॥ २५ ॥ हे विप्रो! सत्वमूर्ति हरि भगवान्के अवतार असंख्येय हैं. जैसे अखूट सरोवरमेंसे हजारों छोटे छोटे प्रवाह और झरने
निकलते हैं, वैसे भगवान्के हजारों अवतार होते हैं. उनकी गिनती नहीं है ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, देवता, महाक्रमी मनुके पुत्र
और प्रजापति ये सब हरि भगवान्कीही कला हैं ॥ २७ ॥ ये पूर्वोक्त अवतार तो हरि भगवान्के अंश और कलारूप हैं. पर

श्रीकृष्ण भगवान् तौ साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमही हैं. ये सब अवतार दैत्योंसे व्याकुल जगत्को युग युगमें सुखी करते हैं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य भगवान्के अति रहस्य इस प्रागट्यका सावधान हो, सायं प्रातः भक्तिसे कीर्तन करे, वह सब दुःखजालसे छूट जावे ॥ २९ ॥ रूपरहित और एक चैतन्यस्वरूप जीवका यह स्थूल शरीर भगवान्की मायाके महत्तत्त्व आदि गुणोंसे आत्माके विषे कल्पित है; यानी यह शरीरही आत्मा है ऐसा माना हुआ है ॥ ३० ॥ सो जैसे आकाशमें अज्ञानीलोग नीले, पीले रंगवाले बादलका आरोप करते हैं, यानी आकाश नीला, पीला है ऐसे कहते हैं और वायुमें जैसे पृथ्वीके धूसरत्वका आरोप करते हैं वैसेही अज्ञानी देहादिकका द्रष्टा जो आत्मा उसके विषे दृश्य धर्मवाले देहादिकका आरोप किया करते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे स्थूल

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायं प्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वापार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतःपरं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरता देवी माया वैशारदीमतिः ॥ संपन्नएवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

शरीर आत्मामें आरोपित है, वैसेही इस स्थूलशरीरसे भिन्न जो सूक्ष्मशरीर है वहभी आत्मामें आरोपित है, उस सूक्ष्मशरीरमें स्थूलशरीरकी नाईं हाथ पांव आदि आकार नहीं हैं. और वह सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरकी तरह न तौ दृष्टिमें आता है, और न इंद्र आदि देवतोंकी तरह सुननेमें आता है, किंतु वह सूक्ष्मशरीर आत्माका उपाधि होनेसे जीव ऐसा कहलाता है कि जिस लिंगशरीरसे जन्म-मरण आदि होते हैं ॥ ३२ ॥ निरूपण कियेहुए ये दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीर अविद्या करके आत्मामें कल्पित हैं. सो जब ये अपने आत्माके यथार्थ ज्ञानसे दूर हो जायं यानी स्थूल व सूक्ष्म शरीर मैं नहीं हूं; ऐसा ज्ञान हो जाय, तब जीव ज्ञानैकस्वरूप ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ३३ ॥ जब अविद्यारूपसे आवरण विक्षेप करनेवाली यह परमेश्वरसंबंधी माया ब्रह्मविद्याके प्रभावसे निवृत्त हो जाती है, तब जीव ब्रह्मरूपको प्राप्त हो जाता है; और परम आनंदमय अपनी महिमामें विराजता

है, ऐसे तत्वज्ञानीलोग कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस तरह अकर्ता और अजन्मा अंतर्यामी परमेश्वरके, वेदगुह्य जन्म और कर्मोंका विवेकी पुरुष वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥ अमोघ लीलावाले परमेश्वर इस जगतको सरजे हैं, पाले हैं और संहार करे हैं, परंतु उसमें लिप्त नहीं होते, स्वयं स्वतंत्र और छःही इंद्रियोंके नियंता वे परमेश्वर सब प्राणी मात्रमें प्रवेश कर, अंतर्हित हो, छःही विषयोंको दूरहीसे गंधके समान ग्रहण करते हैं, पर आसक्त नहीं होते ॥ ३६ ॥ जैसे नटके इंद्रजालको मूर्ख मनुष्य नहीं जानता, वैसे मन और बचनसे रूप व नामको फैलाते इन भगवान्‌की लीलाओंको यह कुबुद्धिपुरुष चाहो कैसाही तर्कमें निपुण क्यों न हो ? प-

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयंति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्त्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चांतर्हितआत्मतंत्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जंतुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७ ॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरंतवीर्यस्य रथांगपाणेः ॥ यो मायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगंधम् ॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवंत इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वंति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥ निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारंसारं समुद्धृतम् ॥४१॥

रंतु जान नहीं सकता ॥ ३७ ॥ महाराज ! जो मनुष्य कुटिलभावको तज, अनुकूल हो, उन प्रभुके चरणकमलकी सुगंधिका सेवन करें, वे पुरुष दुरंतपराक्रम चक्रधर परब्रह्मरूप भगवान्‌की पदवीको जानें ॥ ३८ ॥ हे विप्रो ! आप इस जगत्में बड़े बड़भागी हो; क्योंकि सर्व लोकके नाथ वासुदेव भगवान्‌में आप एकांत भावसे मनकी वृत्ति लगा रहेहो कि जिस भावसे यह महाभयंकर आवागमनरूप भ्रमण निवृत्त होता है ॥ ३९ ॥ जिसमें उत्तमश्लोक भगवान्‌के चरित्रका वर्णन है ऐसा, सर्व वेदके तुल्य यह श्रीमद्भागवत भगवान् वेदव्यास ऋषिने बनाया ॥ ४० ॥ और परम कल्याणका करनेवाला, सराहनें योग्य, और सर्व वेद व इति-

हासका सार सार लेकर रचाहुआ यह पुराण लोकोंके कल्याणके अर्थ आत्मवेत्तानमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया ॥ ४१ ॥ और उन शुकदेवजीने गंगाके तीरपर अनशन व्रत ले बैठे हुए ऋषियोंसे आवृत महाराज परीक्षित्‌को सुनाया ॥ ४२ ॥ हे विप्रो ! वहां गंगाके तीरपर भागवतकी कथा कहते अतितेजस्वी शुकदेवजीकी कृपासे मैंनेभी वहां बैठकर यह कथा सुनी, सो जैसी मैंने पढ़ी है वैसीही मेरी बुद्धिके अनुसार आपको श्रवण कराऊंगा ॥ ४३ ॥ धर्म और ज्ञानादिकोंके साथ श्रीकृष्ण भगवान्‌को अपने धाम पधारनेपर, कलियुगमें नष्टदृष्टि पुरुषोंकेवास्ते यह पुराणरूप सूर्य अभी उदय हुआ है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्र-



स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ प्रायोपविष्टं गंगायां परीतं परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥ तत्र कीर्त्तयतो विप्रा विप्रर्षे भूरितेजसः ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीतं यथामति ॥ ४३ ॥ कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥

थमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका नाम भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें तप, प्रवचन ( वेदार्थज्ञान ) आदिसे व्यासजीका असंतोष और भागवतके आरंभका कारण कहा जायगा ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि- दीर्घसत्र ( बडीयज्ञ ) करनेवाले मुनिलोगोंमें सबसे वृद्ध व कुलपति ऋग्वेदी शौनकने इस तरह कहतेहुए सूतजीकी स्तुति करके यह बचन कहा ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि- हे सूत ! हे सूत ! हे महाभाग ! हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! भगवान् शुकदेवजीने जो कथा कही, वह भगवान्‌की पवित्र कथा हमें कहो ॥ २ ॥ यह संहिता किस युगमें और किस स्थानमें व किस हेतुसे प्रवृत्त हुई ! और वेदव्यासमुनिने

यह संहिता किसकी प्रेरणासे बनायी ? ॥ ३ ॥ यद्यपि व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी महायोगी, समदृष्टि, विकल्परहित, एकांतबुद्धि, मायारूप शयनसे जागतेथे, तोभी अप्रगट होनेसे मूढ़के समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥ अपने पुत्रके पीछे जातेहुए वस्त्रसहित व्यासजीको देखकर, जलमें क्रीड़ा करतींहुई अप्सराओंने लाजके मारे वस्त्र धारण कर लिये, परंतु नग्न और सामने जातेहुए अपने पुत्र शुकदेवजीको जाते देखकर; उन्होंने वस्त्र नहीं पहने, यह आश्चर्य देख, व्यासजीने उनसे पूंछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि, आपके तो यह स्त्री है और यह पुरुष है, ऐसा भेदभाव है, परंतु पवित्रदृष्टि आपके पुत्रके यह भेदभाव नहीं है ॥ ५ ॥ उन्मत्त,

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ॥ एकांतमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽनुयांतमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥ ५ ॥ कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजांगलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥ ६ ॥ कथं वा पांडवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वतीश्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पांडूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गंगायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥ १० ॥

मूक और जड़की तरह हस्तिनापुरमें विचरतेहुए शुकदेवजीको पुरके लोगोंने किस तरह पहिँचाना ? और उनका कुरुजांगल देशमें आना किस तरह हुआ ? ॥ ६ ॥ हे तात ! वे महाभाग शुकदेवजी गृहस्थियोंके घरको पावन करते उनके घरोंमें केवल गौका दोहन हो उतनी देरतक प्रतीक्षा करते हैं, ज्यादा नहीं ठहरते. फिर पांडवोंके पौत्र राजा परीक्षितका और शुकदेवजीका किसतरह संवाद बना ? कि जहां यह भगवत्संबंधी संहिता कही गयी ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्रको लोग भगवान्‌का उत्तम भक्त कहते हैं सो हमारे पास उसके महाश्चर्यरूप जन्म व कर्मोंका वर्णन करो ॥ ९ ॥ पांडवोंका मान बढ़ानेवाला वह चक्रव-

तीं राजा अधिराजकी संपदाको छोड़, अन्न जलका त्याग कर, गंगाके तीरपै क्यों बैठा ? ॥ १० ॥ हे अंग ! शत्रुलोग अपने कल्याणके लिये जिसके पादपीठको प्रसिद्ध रीतिसे द्रव्य अर्पण कर नमन करते हैं, अहो ! उस राजाने जवान अवस्थामें दुस्त्यज राजलक्ष्मीका प्राणोंके साथ त्याग करना क्यों चाहा ॥ ११ ॥ जो उत्तमश्लोक भगवान्के भक्त हैं वे लोग, लोकके कल्याण, समृद्धि और ऐश्वर्यके अर्थ जीते हैं, कोई अपने स्वार्थके लिये नहीं जीते. तब इस राजाने दूसरोंको आश्रय देनेवाला अपना शरीर जानते बूझते विरक्त होकर, क्यों त्याग दिया ? ॥ १२ ॥ यहां हमने जो कुछ प्रश्न किया है, वह सब हमसे कहो; क्योंकि मैं

नमंति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः॥ कथं स वीरः श्रियमंग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥ शिवाय लोकस्य भावाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवंति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छांदसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः ॥ विविक्त एक आसीन उदिते रविमंडले॥ १५ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निःसत्वान्दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥

मानता हूं कि, एक वेदके सिवाय बाकी सर्व वाणीके विषयमें आप पारको पहुँचे हो ॥ १३ ॥ सूतजीने कहा कि– जब चक्कर खाते खाते तीसरा द्वापरयुग प्राप्त हुआ, तब पराशरजीसे सत्यवतीमें भगवान्की कलासे योगी व्यासजी प्रगट हुए ॥ १४ ॥ वे एकदिन सरस्वतीके पवित्र जलका स्पर्श कर, यानी स्नान, संध्या आदि नित्य कृत्यसे पहुँच, सूर्योदयके समय एकांतस्थलमें विराजे ॥ १५ ॥ परावर यानी भूत भविष्यके ज्ञाता व अमोघदृष्टि उन ऋषि वेदव्यासजीने, अव्यक्त वेगवाले कालके प्रभावसे युग युगमें होताहुआ पृथ्वीपर युगके धर्मोंका संकर यानी गोलमाल व उसीकी कीहुई देह आदि पंचमहाभूतसे पैदा हुए पदार्थोंकी

शक्तिका घटाव व श्रद्धारहित धैर्यशून्य, दुर्बुद्धि अल्पायु और मंदभागी लोक, इन सबको दिव्यदृष्टिसे देखकर, जिससे सब वर्णाश्रमोंका भला हो ऐसा बिचार किये ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ चार होताओंसे किये जाते वैदिक कर्मको, प्रजाओंका पवित्र करनेवाला जान कर, यज्ञका विस्तार फैलानेके लिये एक वेदके चार विभाग किये ॥ १९ ॥ तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद इन चारों वेदोंको उद्धार किया गया, इतिहास व पुराण यह पांचवा वेद कहलाता है सो वहभी प्रगट किया गया ॥ २० ॥ वहां पैलजीको ऋग्वेद पढ़ाया, जैमिनि मुनिको सामवेद पढ़ाया, और यजुर्वेदमें एक वैशंपायनजीही निपुण हुये ॥ २१ ॥ और

दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंतत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासपुराणं च पंचमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वांगिरसामासीत्सुमंतुर्दारुणो मुनिः ॥ इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यंते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४ ॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ ॥ २५ ॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६ ॥

अंगिराओंमेंसे अति क्रूर सुमंतु नाम मुनि अथर्ववेद पढ़े, इतिहास व पुराण मेरे पिता रोमहर्षण पढ़े ॥ २२ ॥ इन ऋषियोंने अपने अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग किया, सो शिष्यों प्रशिष्यों और उनके शिष्योंद्वारा वेदोंकी अनेक शाखायें हुई ॥ २३ ॥ वेही वेद मंदबुद्धि पुरुषोंसे जिस तरह धारण किये जांय, इस तरह दीनदयाल भगवान् वेदव्यासजीने किया ॥ २४ ॥ स्त्री, शूद्र व पतित पुरुषोंको वेदका अधिकार नहीं है इसलिये कर्मरूप कल्याणके साधनविषे मूढ़ इन स्त्री शूद्र आदिका कल्याण यहां इस तरह होगा, ऐसा विचार कर, मुनिने कृपापूर्वक भारत नाम ग्रंथ बनाया ॥ २५ ॥ हे विप्रो ! जीवोंके कल्याणके निमित्त इसतरह सदा सब प्र-

कारसे आप प्रवृत्त हो रहे थे, तौभी जब आपका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ तब ॥ २६ ॥ जिनका चित्त अति प्रसन्न नहीं है ऐसे, सरस्वतीके पवित्र तटपर एकांत स्थलमें विराजेहुए, धर्मज्ञ वेदव्यासजी मनमें अनेक प्रकारकी तर्कना करते यह बचन बोले कि- 'मैंने व्रत धारण कर, निष्कपट हो, वेद, गुरु व अग्नियोंका सत्कार किया है, और उनकी आज्ञाभी लीनी है ॥ २७ ॥ २८ ॥ और भारतके मिससे सब वेदका अर्थभी दिखला दिया है, कि जिसमें स्त्री शूद्रादिकनकोभी धर्म आदिका बोध होजाय ॥ २९ ॥ तौभी अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि, मेरे देहमें रहाहुआ जीव वस्तुतः परिपूर्णही है, और वेद

नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७ ॥ धृतव्रतेन हि मया छंदांसि गुरवोऽग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २८ ॥ भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादिस्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ २९ ॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३० ॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायाऽगतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥

पढ़ने और श्रवण करनेसे बड़ेसे बड़े तेजवाले सत्पुरुषोंमें उत्तम हैं, तौभी अपने स्वरूपसे असंपन्न यानी अपने स्वरूपको प्राप्त न हुआ हो वैसा मालूम होता है ॥ ३० ॥ क्या मैंने बिस्तारसे भगवद्धर्मोंका निरूपण नहीं किया? कि जो परमहंस लोगोंको अति प्रिय हैं; और वेही धर्म भगवान्को अति प्रिय हैं' ॥ ३१ ॥ इसतरह वे वेदव्यासजी अपने आत्माको अति तुच्छ मान खिन्न हो रहेथे इतनेहीमें पूर्वोक्त आश्रममें नारदजी पधारे ॥ ३२ ॥ नारदजीको आये जान, तुर्त उठ, उनके सन्मुख जा, देवपूजित नारदजीका विधिपूर्वक आदर सत्कार किया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका नाम भा-

पाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ पांचवें अध्यायमें व्यासजीका चित्त प्रसन्न होनेके अर्थ नारदजीने सब धर्मोंकी अपेक्षा हरि भगवान्के कीर्तनके गौरव ( बड़ापनका ) उपदेश किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि-सुखपूर्वक बैठेहुए महा यशस्वी नारदजीने बीणा हाथमें लिये मानों मुसुकराते हों वैसे निकटमें बैठेहुए व्यासजीसे कहा ॥ १॥ नारदजी बोले कि-हे पराशरजीके पुत्र ! महाभाग ! आपका शरीराभिमानी आत्मा शरीरके साथ और मनोभिमानी आत्मा मनके साथ प्रसन्न तौ है ? ॥ २ ॥ आ-

सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च ब्रह्म यत्तत्सनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वात्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥

पके जाननेके इष्ट जो धर्मादिक हैं, वह सब अच्छी तरह जानेहुये और अनुष्ठान किये हुये हो; क्योंकि धर्मादिक सर्वपुरुषार्थोंसे परिपूर्ण परम अद्भुत भारत ग्रंथ आपने बनाया है॥ ३ ॥ हे प्रभो ! जो सनातन ब्रह्म है, उसे आप जानते हो. और प्राप्त हुए हो, फिर अकृतार्थकी नांई आप आपने आत्माका सोच क्यों करते हो ? ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा कि- आपने जो कहा वह सब मेरे है. तथापि मेरा आत्मा प्रसन्न नहीं होता, इसका जो गुप्त कारण है सो अगाधज्ञानवाले ब्रह्माजीके अंगसे प्रगट हुए आपसे हम पूछते हैं ॥ ५ ॥

---

१ रागबिलावल ॥ सतयुग लाख बरसकी आई, त्रेता दश सहस्र करि गाई, द्वापर सहस एकही भाई, कलियुग सत संवत रहिगाई ॥ शोक ऋषिन सुननेको भाई, कलि मर्याद कही नहिं जाई ॥ तात हरि करि व्यास अवतार, करी संहिता वेद विचार ॥ बहुरि पुराण अठारह किये, एतेहु शांति न आयी हिये ॥ तब नारद तिनके ढिग आये, चार श्लोक कहे समुझाये ॥ यह ब्रह्मासों कहे भगवान, ब्रह्मा मोसों कहे बखान ॥ सोई अब मैं तुमसों भाखी, कहो भागवत इनमें राखी ॥ श्रीभागवत सुनै जो कोई, ताको हरिपद प्रापत होई ॥ ऊंच नीच व्यौरा नहिं कोय, हरिको भजिय सो हरिको होय ॥ जैसे लोहा पारस होय, व्यास भई मेरी गति सोय ॥ दासी सुत मैं नारद भये, दोष दासके सब मिटगये ॥ व्यासदेव तब करि हरिध्यान, कियो भागवतको जो बखान ॥ सुनै भागवत जो चित लाई, सूर सो हरि भजि भव तरि जाई ॥

वे आप सब गोप्य वार्ता जानते हो; क्योंकि आपने उन पुराणपुरुष भगवान्‌की उपासना की है, जो असंग और कार्य कारणके नियंता इस जगत्‌को मनहीसे गुणोंद्वारा सरजते हैं. पालते हैं और संहार करते हैं ॥ ६ ॥ आप सूर्यके समान त्रिलोकीमें फिरते और वायुके समान प्राणीमात्रके अंदर बिचरते बुद्धिकी वृत्तियोंको जानते हो, तासों धर्म यानी योगके प्रभावसे परब्रह्ममें पारंगत और व्रत यानी स्वाध्यायके प्रभावसे वेदमें पारंगत मेरे जो कुछ न्यूनता रही हो सो आप सोच कर कहो ? ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा कि– आपने भगवान्‌के निर्मल यश विना जो कुछ धर्मादिकका वर्णन किया है, वह सब नहींके बराबर है क्योंकि उसके वर्णनसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते, इसी ज्ञानकी आपमें

स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितोयत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्त्यत्ति गुणै-रसंगः ॥ ६ ॥ त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमंतश्चरो वायुरिवाऽऽत्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ ये-नैवासो न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशंति मानसा न यत्र हंसा निरमंत्युशिक्क्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो य-स्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि॥नामान्यनंतस्य यशोऽकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ११ ॥

में न्यूनता मानता हूं॥८॥ हे मुनिवर! आपने जैसा धर्म आदि पुरुषार्थोंका वर्णन किया, वैसा वासुदेव भगवान्‌की महिमाका वर्णन नहीं किया ॥ ९ ॥ जो विचित्रपद रचनावाला वाक्य हरि भगवानके जगत्पावन यशका गान नहीं करता, वह काकतीर्थ यानी कामीपुरुषोंका रतिस्थान माना जाता है, कि जिसमें मानससरोवरमें रहनेवाले हंस, जैसे मनोहर कमलवनमें निवास करके का-कके क्रीडास्थान यानी जूंठन आदि डारनेकी जगहमें नहीं रमते, वैसे सत्वगुणप्रधान मनमें बर्तनेवाले और मनोहर ब्रह्ममें निवा-स करनेवाले परमहंसलोग कभी नहीं रमते ॥ १० ॥ वही वाणीका विसर्ग यानी कविता लोकोंके पापोंकी मिटानेवाली है, कि

१ चौ०– भणित विचित्र सुकविकृत जोऊ । रामनाम बिनु सोह न सोऊ ॥ विधुवदनी सब भांति संवारी । सोहै न बसन विना वरनारी ॥ सब गुणरहित कुकविकृत वानी । रामनाम यश अंकित जानी ॥ सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुणग्राही ॥

जिसमें अनंत भगवान्के यशके चिन्हवाले नाम कहे गये हैं चाहो वह श्लोक श्लोकमें अपशब्दादि दोषोंसे दूषित क्यों न होवे ? तथापि साधुलोग उस कविताको सुनते हैं, गाते हैं और कीर्तन करते हैं ॥ ११ ॥ उपाधिको निवृत्त करनेवाला निष्कर्म ब्रह्मज्ञानभी जो अच्युत भगवान्की भक्तिसे रहित हो तो अत्यंत शोभा नहीं देता, तब निरंतर, अकल्याणरूप, काम्य और अकाम्य कर्म ईश्वरके अर्पण न किया जाय तो कहांसे शोभायमान होवे ?॥ १२ ॥ इसलिये हेमहाभाग ! अमोघदृष्टि, पवित्रकीर्ति, सत्यमें प्रीतियुक्त, व्रत धारण करनेवाले आप, समाधि लगाकर, उरुक्रम भगवान्के चरित्रोंका स्मरण करके, वर्णन करो. जिससे सबप्रकारके बंधन कट जांय ॥ १३ ॥ उन उरुक्रम भगवान्के चरित्रोंमें जिसकी दृष्टि नहीं है और जो उससे विपरीत विषयका वर्णन

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबंधमुक्तये समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंच न यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ॥ न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थितामतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥ जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनंतपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्त्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो ॥ १६ ॥

करना चाहता है, उस पुरुषकी उस वर्णन करनेकी इच्छासे स्फुरितहुए जो नाम रूप तिनसे बिचली हुई बुद्धि, वायुके वेगसे कांपतीहुई नाव जैसे एक ठिकाने नहीं रहती, वैसे एक ठिकाने नहीं बैठ सकती यानी इधर उधर डोला करती है ॥ १४ ॥ निंदित काम्यकर्मके विषे स्वभावहीसे आसक्त पुरुषके धर्मके लिये आपने धर्मादिकोंकी जो शिक्षा की है, यह बड़ा अन्याय किया; क्योंकि जिस आपके वाक्यसे धर्म इसतरह मानाहुआ प्राकृतजन, आपके अथवा दूसरे तत्वज्ञपुरुषके कियेहुए काम्यकर्मादिकोंके निवारणको नहीं मानते ॥ १५ ॥ कोई एक विरला विचक्षण पुरुष सर्वकर्मोंकी निवृत्तिद्वारा इस समर्थ परमेश्वरके सुखरूप स्वरूपको जान सकता है, इस लिये हे विभो ! देहाभिमानी सत्वादिक गुणोंसे प्रवृत्तिवाले इस पुरुषको, देश कालसे पा-

रंगत समर्थ ईश्वरकी लीला वर्णन करके, दिखलाओ ॥ १६ ॥ स्वधर्मको तजकर, हरि भगवान्के चरणारविंदका भजन करताहुआ
यह पुरुष यदि संपूर्ण भक्तिको न प्राप्त होवे यानी बीचहीमें भ्रष्ट होजाय या मर जाय, तो क्या उसका अकल्याण होगा ? नहीं. तव
ईश्वरके अभक्तपुरुषोंने स्वधर्मसे कौन अर्थ संपादन किया ? कुछभी नहीं ॥ १७ ॥ चतुर मनुष्यको उसी सुखके लिये प्रयत्न क-
रना चाहिये कि जो ब्रह्मासे ले स्थावर पर्यंत ऊंचे नीचे भटकतेहुए प्राणियोंको नहीं मिलता. विषयसुख तो दुःखके समान पूर्व-
कर्मसे नरकादिकनके विषेभी गंभीर वेगवाले कालके प्रभावसे सर्वत्र स्वयं आपसेही प्राप्त हो जाता है ॥ १८ ॥ हेव्यासजी ! मुकुं-

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणांबुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वा-
र्थआप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥ तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामु-
पर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥ १८ ॥ न वै जनो जातु कथं च
नाव्रजेन्मुकुंदसेव्यन्यवदंगसंसृतिम् ॥ स्मरन्मुकुंदांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः
॥ १९ ॥ इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथा-
ऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमा-
त्मनः कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥ २१ ॥

द भगवानका सेवन करनेवाला पुरुष कदापि किसीकदर दूसरेकी नाईं यानी केवल कर्मासक्त पुरुषकी तरह संसारको प्राप्त नहीं
होता, क्योंकि मुकुंद भगवान्के चरणारविंदके स्पर्शका वारंवार स्मरण करता सारग्राही पुरुष उसका त्याग करना नहीं चाहता
॥ १९ ॥ यह जगत् ईश्वरमय है और ईश्वर उससे भिन्न है, जिन परमेश्वरसे इस जगतके उत्पत्ति, स्थिति, लय होय हैं, उन पर-
मेश्वरको आप स्वयं जानते हो, तथापि मैंने आपको केवल एकदेश लेश मात्र दिखाया है ॥ २० ॥ हे अमोघदृष्टि ! आप अप-



१ अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् । सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥ १ ॥ अर्थ– जैसे विना इच्छित प्राणियोंके दुःख प्राप्त होते हैं. वैसेही सुखभी समझने. किंतु यहां अज्ञानियोंके दैन्य ( सुखमें सुखी, दुःखमें दुःखी होनाही ) विशेष है ॥ १ ॥

ने आत्माको जगत्के कल्याणके निमित्त प्रगट भये ईश्वररूप आपही जानो, क्योंकि आप उन परपुरुषके अंशरूप हो. अतएव महानुभाव परमेश्वरकी महिमाका निरूपण करो कि ॥ २१ ॥ जो उत्तम भगवान्के गुणका वर्णन करना, यही पुरुषके लिये तप, शास्त्र, याग, मनोहर बचन बुद्धि और दानका अखंड फल कवियोंने निरूपण किया है ॥ २२ ॥ हे मुनि ! मैं पूर्वजन्ममें वेदवादियोंकी किसी दासीका पुत्र हुआ था, वहां मुनिलोग चतुर्मासा करना चाहते थे; सो उसने मुझ बालकको उन योगियोंकी सेवामें रखदिया ॥ २३ ॥ मैंने सब चपलता त्याग दी और जितेंद्रिय हो क्रीड़ाके साधनोंका त्याग कर, उन मुनिलोगोंके अनुकूल बर्त-

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥ २२ ॥ अहं पुराऽतीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्च न वेदवादिनाम् ॥ निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दांतेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुंजे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवाऽऽत्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाश्रृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः प्रियश्रवस्यंग ममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ॥ ययाऽहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७ ॥

ने लगा तब यदपि वे मुनिलोग समदर्शी थे तथापि सेवा करते मुझ कम समझवाले बालकपै उन लोगोंने कृपा की ॥ २४ ॥ उन ब्राह्मणोंके पात्रमें जो उच्छिष्ट रह जाता, वह मैं उनकी आज्ञासे केवल एकही वख्त खाया करता, उसके प्रभावसे मेरे सब पाप निवृत्त होगये; इसतरह प्रवृत्त होनेसे मेरा अंतःकरण शुद्ध होगया और भगवद्धर्ममें मेरी रुचि हुई ॥ २५ ॥ वहां वे नित्यप्रति जो भगवत्कथा करते उन मनोहर कथाओंका मैं उनकी कृपासे सदा श्रवण किया करता, हे मुनि ! पद पदमें श्रद्धासहित कथाओंके श्रवण करनेसे प्रियकीर्ति भगवान्में मेरी रुचि हुई ॥ २६ ॥ हे महामुनि ! जब भगवान्में मेरी रुचि हुई तौ उसके साथ भगवान्में मेरी दृढ़ बुद्धिभी हुई

जिस बुद्धिके प्रभावसे मैं इस स्थूल, सूक्ष्म शरीरको संसारसे परे परब्रह्मरूप मेरे स्वरूपमें अपनी अविद्यासे कल्पित देखने लगा ॥ २७ ॥ इसतरह वर्षा और शरदऋतु यानी चार महीनेतक महात्मा मुनिलोगोंने भलीभांति कीर्तन किया, सो वहां भगवान्का निर्मल यश तीनों काल मैं सुनता रहा, उसके प्रभावसे आत्माके रजोगुण, तमोगुणकी नाश करनेवाली भगवत्‌शक्ति प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ इसतरह निष्पाप, बिनययुक्त, श्रद्धावान्, अनुरक्त, जितेंद्रिय और अनुचर उस मुझ बालकको जाते जाते दीनवत्सल, उन मुनिलोगोंने कृपा कर, साक्षात् भगवान्‌के कहे अतिगुह्य ज्ञानका उपदेश किया ॥ २९ ॥ ३० ॥ जिस ज्ञानके प्रभावसे विधा-

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विश्रृण्वतोऽमेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥ २८ ॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दांतस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ॥ अन्ववोचन्गमिष्यंतः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥ येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायाऽनुभावमविदं येन गच्छंति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्मब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ॥ त एवाऽऽत्मविनाशाय कल्पंते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥ यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥

ता वासुदेव भगवान्की मायाका अनुभाव मैंने जानलिया कि जिस ज्ञानसे लोग ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तीनों तापोंका औषध भली भांति सूचित किया है कि जो भगवान् ईश्वर परब्रह्ममें सर्वकर्म अर्पण करना ॥ ३२ ॥ हेसुव्रत ! जीवोंके जो रोग जिस पदार्थसे पैदा होता है, वही उस रोगको शांत नहीं करता किंतु अन्यपदार्थके संयोगसे रोगको शांत करता है ॥ ३३ ॥ इसीतरह मनुष्योंके सब कर्मोंकी योजना संसारका कारण हैं, परंतु यदि वेही ईश्वरके अर्पण किये जायं तो कर्मकी निवृत्तिके अर्थ समर्थ हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ जिससे भगवान् प्रसन्न हों ऐसा जो सुकर्म यहां कियाजाता है, उसके भक्तियोग सहि-

त जो ज्ञान है वहभी आधीन है ॥ ३५ ॥ भगवंत् की आज्ञासे जब निरंतर कर्म करते हैं, तब श्रीकृष्णभगवान्‌के गुण और नामका कीर्तन करते हैं और स्मरण करते हैं॥ ३६ ॥ वासुदेव भगवान् आपका हम ध्यान करते हैं और प्रणाम करते हैं, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणमूर्ति आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस तरह मूर्तिके नामसे अलौकिकमूर्ति, मंत्रमूर्ति, यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन (पूजन) करे, वह पुरुष उत्तम ज्ञानवान् हो जाय ॥ ३८॥ हे ब्रह्मन् ! इस अपने उपदेशको मुझसे अनुष्ठान कि-

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणंति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरंति च ॥ ३६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ ३७॥ इति मूर्त्यभिधानेन मंत्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥ त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥ प्रख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां यत्क्लेशनिर्वाणमुशंति नान्यथा ॥ ४० ॥इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे व्यासनारदसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५॥ ॥ सूतउवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

या जानकर, केशव भगवान्‌ने मुझे ज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भक्ति दीनी॥ ३९ ॥ हे बहुतश्रुत व्यासजी ! आपभी विभु भगवान्‌के विख्यात यशका वर्णन करो, जिससे विद्वानोंकी जाननेकी इच्छा परिपूर्ण हो जाय, क्योंकि दुःखोंकरके अतिशयपीड़ित जीवोंके क्लेशकी शांति अन्य प्रकारसे कथमपि (कैसेभी) हो जाय ऐसा माननेमें नहीं आता॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥ ॥ छठे अध्यायमें व्यासजीको प्रतीति होजाय, इसलिये नारदजी, अपने पूर्वजन्म संबन्धी श्रीकृष्ण भगवान्‌की कथासे प्रगटित अपने भाग्यका वर्णन करेंगे॥ १॥सूतजी बोले कि– हे ब्रह्मन्!

---

१ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहासि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ १ ॥ अर्थ– यह अर्जुनके प्रति श्रीमुखवाक्य है कि– हे अर्जुन ! जो कुछ सुकर्म करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो , जो दान देते हो, जो तप करते हो, वह सब मेरे अर्पण करो ॥ १ ॥

सत्यवतीके पुत्र भगवान् वेदव्यासजीने नारदजीके इसतरह जन्म, कर्म सुनकर, फिर उनसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि-आपको ज्ञान देनेवाले भिक्षु जब चले गये, तब आपने अपनी प्रथम अवस्थामें रहकर, क्या किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मपुत्र ! आपने शेष अवस्था किस वृत्तिसे व्यतीत की ? और काल प्राप्त होनेपर दासीपुत्रके शरीरका आपने किस तरह त्याग किया ? ॥ ३ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! सबके संहार करनेवाले इस कालने आपकी इस पूर्वकल्पकी स्मृति- ( यादगीरी ) का किस तरह नाश नहीं किया ? ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा कि मुझे ज्ञान देनेवाले संन्यासी चले गये, तद प्रथम अवस्थामें बरतते मैंने

व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥ स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्त्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबंधनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतंत्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्रह्मकुल ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पंचहायनः ॥ ८ ॥ एकदा निर्गतां गेहाद्दुहंतीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥ ९ ॥

यह किया ॥ ५ ॥ मेरी माता मूर्ख स्त्रीजाति और लोगोंकी दासी थी, उसके मैं एकाएक पुत्र था, अतएव मुझ अनन्यगतिके साथ वह अत्यंत स्नेह किया करती थी ॥ ६ ॥ यदपि वह मेरा योग और क्षेम चाहती थी, परंतु परतंत्र होनेसे कुछ नहीं कर सकती-थी, क्योंकि जैसे काठकी पुतली नटके परतंत्र है, वैसे यह लोक परमेश्वरके वश है ॥ ७ ॥ मैंभी उस माताके स्नेहबंधनसे छूट-नेकी अपेक्षा करता दिशा, देश कालको न जाननेवाला पांच बरसका बालक उस ब्राह्मणकुलमें रहनेलगा ॥ ८ ॥ एक समय वह बिचारी गाय दुहनेको रात्रिमें घरसे बाहर निकली तो मार्गमें कालके प्रेरेहुए सांपने पांवसे छूतेही डंसा ॥ ९ ॥

तब मैं उसको भक्तोंके सुख चाहनेवाले भगवान्की कृपा मानता हुआ उत्तरदिशाको रवाना हुआ ॥ १० ॥ वहां बढ़ेहुये देश, पुर, गांव, व्रज, खान ( सुवर्णादि उत्पत्तिस्थान ) किसान लोगोंके गांव, पर्वतकी तलहटीके गांव, बाड़ियां, वन, उपवन, ॥ ११ ॥ चित्र विचित्र धातुओंसे विचित्रपर्वत, हाथियोंने जिनकी शाखायें तोड़ डाली हैं ऐसे वृक्ष, पवित्र जलवाले जलाशय, जिनमें पक्षियोंके मधुर शब्दसे प्रबुद्ध हुए भौंरोंकी शोभा छा रही है ऐसे देवताओंसे सेवित तालाब, नल, बांस, शर इनके गुच्छों और कुश व कीचकजाति बांसोंसे अतिगहन वनको उल्लंघकर ॥ १२ ॥ १३ ॥ मैं इकल्ला आगे बढ़ा, तौ घोर और भयंकररूप कि जिसमें सांप, उल्लूक

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥ १० ॥ स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयान् शिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ १२ ॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तंबकुशकीचकगह्वरम् ॥ १३ ॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाऽजिरम् ॥ १४ ॥ परिश्रांतेंद्रियात्माऽहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थआश्रितः ॥ आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिंतयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणांभोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कंठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकांगोऽतिनिर्वृतः ॥ आनंदसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८ ॥

व सियारनियां खेल रही हैं ऐसा बड़ा भारी एक जंगल देखा ॥ १४ ॥ मेरी इंद्रियां व शरीर थक गया, प्यास व भूख लगी, तब नदीके ह्रद ( कुंड ) के अंदर न्हाय, जल पी, श्रमरहित हो, आचमन कर, ॥ १५ ॥ उस निर्जन वनमें पीपलके नीचे बैठ कर, बुद्धिसे हृदयमें रहे परमेश्वरका श्रवणानुसार ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिसे वशीकृत चित्तसे चरणकमलोंका ध्यान करने लगा, तौ उत्कंठासे मेरे नेत्रोंमें जल आगया और शनैः शनैः ( धीरे धीरे ) मेरे हृदयमें भगवान्का प्रागट्य हुआ ॥ १७ ॥ हे मुनि! प्रेमके अतिभारसे मेरे शरीरके रोम खड़े हो गये और ऐसा परमानंद प्राप्त हुआ, उस परमानंदके पूरमें लीन हुआ, कि मुझे अपने

और परायेका भान नहीं रहा ॥ १८ ॥ जिस शोचके नाशक अभीष्ट भगवान्के स्वरूपका दर्शन हुआ; उसे थोड़ी देरके अनंतर न देखकर, कायरतासे उदासकी तरह तुर्त उठ खड़ा हुआ ॥ १९ ॥ मैंने उ स्वरूपके दर्शनकी इच्छासे फिर मनको हृदयमें स्थिर करके, दर्शन करना चाहा, परंतु दर्शन नहीं हुआ तब तौ विशेष करके अतृप्त मैं आतुर सा हो गया ॥ २० ॥ इस तरह मैं विजन वनमें यत्न कर रहा था, वहां मुझे वाणीके अगोचर हरि भगवान्ने मानों शोच मिटाते हों वैसे, गंभीर व मधुर वाणीसे कहा कि ॥ २१ ॥ हे नारद ! इस जन्ममें तुम मेरे दर्शनके योग्य नहीं हो; क्योंकि जिनके काम क्रोधादिक कषाय पके नहीं, उन कु-

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकांतं शुचाऽपहम् ॥ अपश्यन्सहसोत्तस्थौ वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २० ॥ एवं यतंतं विजने मामाहागोचरो गिराम् ॥ गंभीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१ ॥ हंतास्मिन् जन्मनि भवान्मा मा द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुंचति हृच्छयान् ॥ २३ ॥ सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गंता मज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिंगमलिंगमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकंपितः ॥ २६ ॥

योगी लोगोंको मेरा दर्शन दुर्लभ है ॥ २२ ॥ हे अनघ ! एकबेर जो मैंने मेरे स्वरूपका दर्शन दिया सो तौ मुझमें अनुराग होनेके कारण दिया है, क्योंकि जो मुझमें अनुरक्त है उस साधुपुरुषकी सर्वकामना शनैः शनैः ( आस्ते आस्ते ) निवृत्त हो जाती हैं ॥ २३ ॥ तूने जो चिरकालतक सत्पुरुषोंकी सेवा की, उससे मुझमें तेरी दृढ़ भक्ति भयी, अब तू इस निंद्य शरीरको तजकर, मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥ तेरी जो यह बुद्धि मुझमें लग रही है, इसका कभी नाश न होगा, जगत्के प्रलयमेंभी मेरी अनुग्रहसे तुम्हारी स्मृति ( याद ) बनी रहेगी ॥ २५ ॥ इतना कह कर, आकाशमें है मूर्ति जिसकी ऐसा अलिंग ( अरूप ) व महद्भू-

तरूप, परमेश्वरका स्वरुप चुप हो गया, भगवान्की अनुकंपा ( दया ) के पात्र मैंनेभी बड़ोंसेभी बड़े उस स्वरूपको शिरसे नमस्कार किया ॥ २६ ॥ गुह्य व कल्याणमय अनंत भगवान्के नाम व चरित्रोंका पाठ करता व स्मरण करता संतुष्टचित्त हो, स्पृहाका त्याग कर, मद व मत्सरताको छोड़ निर्लज्ज हो, कालकी प्रतीक्षा करता पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसतरह श्रीकृष्ण भगवान्में है बुद्धि जिसकी ऐसे निर्मलांतःकरण आसक्तिरहित मेरा समयपर ऐसे काल प्राप्त हुआ, कि जैसे सुदामापर्वतपर अकस्मात् बिजली प्रगट होती है ॥ २८ ॥ मैं जब शुद्धसत्वमय भगवत्पार्षदके शरीरको प्राप्त होने लगा तो प्रारब्ध-

नामान्यनंतस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ॥ गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥ प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पांचभौतिकः ॥ २९ ॥ कल्पांत इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेंऽतरहं विभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यंत उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अंतर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कंदितव्रतः ॥ अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥

कर्मका अंत होनेसे पंचमहाभूतोंका बनाहुआ शरीर पड़ गया ॥ २९ ॥ फिर कल्पांत समयमें इस त्रिलोकीका संहार करके समुद्रके जलमें पौढ़ेहुए श्रीमन्नारायणके विषे शयन करना चाहते ब्रह्माजीके प्राणके साथ उनके अंदर मैं प्रवेश हुआ ॥ ३० ॥ हजार युगोंके अंतमें उठके, इस जगतको रचना चाहते ब्रह्माजीकी इंद्रियोंसे मरीचि आदि ऋषि और मैं सब प्रगट हुए ॥ ३१ ॥ मैं तो महाविष्णुकी अनुग्रहसे अखंड ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर, त्रिलोकीके भीतर और बाहिर सर्वत्र विचरा करता हूं. कहीं मेरी गति नहीं रुकती ॥ ३२ ॥ सप्तस्वररूप ब्रह्मकरके शोभायमान परमेश्वरकी दी हुई इस वीणाको आलापयुक्त करके हरि भगवान्की कथाका

१ निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः । पंचमश्चेत्यमी सप्त तंत्रीकंठोत्थिताः स्वराः ॥ अर्थ– निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत, पंचम ये तंत्री सितारके कंठसे उठेहुये सात स्वर हैं.

गान करता मैं विचरा करता हूं ॥ ३३ ॥ अपने पराक्रमोंका गान करते मेरे चित्तमें प्रियकीर्ति व तीर्थपाद भगवान् मानों बुलाये गयेहों वैसे तुर्त दर्शन दे देते हैं ॥ ३४ ॥ विषयभोगोंकी इच्छासे आतुरचित्त पुरुषोंके लिये वारंवार हरि भगवान्के चरित्रोंका वर्णन करना यही भवसागरमें नौकारूप समझा गया है ॥ ३५ ॥ वारंवार काम व लोभसे हतचित्त पुरुष जैसा मुकुंद भगवान्की सेवासे साक्षात् शांत होता है वैसा यम आदि योगके साधनोंसे नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे अनघ ! आपने जो मेरा जन्म व कर्म पूंछा, वह यह सब मैंने आपसे कहा कि, जिससे आपकी आत्मा प्रसन्न होजाय ॥ ३७ ॥ सूतजीने कहा कि–यदृच्छा ( दैवीइ-



प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥ आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४ ॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ॥ भवसिंधुप्लवो दृष्टो हरिचर्याऽनुवर्णनम् ॥ ३५ ॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुंदसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माऽद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चाऽऽत्मतोषणम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमंत्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिंशार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तंत्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥

च्छासे ) विचरनेवाले भगवान् नारदमुनि वेदव्यासजीसे इस तरह बातचीत कर, आज्ञा ले, वीणा बजाते, चले गये ॥ ३८ ॥ अहो ! ये नारदजी बड़े धन्य हैं; क्योंकि शार्ङ्गधन्वा भगवान्के यशका गान कर, इस जगत्को आनंदित करते बीणासे, आतुर जगत्को रमण कराते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका नाम भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें श्रीमद्भागवतके श्रोता राजा परीक्षितका जन्म कहनेको सोतेहुए बालकोंके बधसे अश्वत्थामाको दंड मिला यह कथा होगी ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि–हे सूतजी ! नारदजीके जानेपर विभु भगवान् वेदव्यासजीने

नारदजीका अभिप्राय सुन कर, फिर क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि-ब्राह्मणोंकी आश्रयभूत सरस्वतीनाम नदीके पश्चिमतटपर ऋषियोंके सत्र नाम कर्मको बढ़ानेवाला शम्याप्रास नाम आश्रम था ॥ २ ॥ बेरके झाड़ोंके समूहसे शोभायमान उस अपने आश्रममें विराजमान वेदव्यासजीने आचमन कर, मनको स्थिर किया यानी नारदजीके उपदेशके अनुसार ध्यान किया ॥३॥ भक्तियोगसे निर्मल व भलीभांति निश्चल मनमें प्रथम तो ईश्वरको देखा, तदनंतर भगवत्के आधीन माया देखी ॥ ४ ॥ जिस मायासे मोहित यह जीव आत्माको त्रिगुणात्मक मानता है. और आप गुणत्रयसे अन्य है तौभी गुणकृत अनर्थको प्राप्त होता है

सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्द्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीषंडमंडिते ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदुपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ॥ परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥ यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसां शोकमोहभयापहा ॥ ७ ॥ स संहिता भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् ॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८ ॥ शौनक उवाच ॥ स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे ॥ कुर्वंत्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ इस अनर्थको शांत करनेवाला तीसरा भगवान्का साक्षात् भक्तियोग देखा, इन तीनोंको देखकर, विद्वान् वेदव्यासजीने अनजान लोगोंके निमित्त श्रीमद्भागवत नाम सात्वतसंहिता बनायी ॥ ६ ॥ जिसके श्रवण करतेही पुरुषके परमपुरुष श्रीकृष्ण भगवान्में शोक, मोह और जराकी नाश करनेवाली भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ उन व्यासमुनिने भागवतसंहिता बनाय, शुद्ध कर, निवृत्ति मार्गमें प्रीतियुक्त अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ायी ॥ ८ ॥ शौनकजी बोले कि-सर्वत्र उपेक्षा करनेवाले, निवृत्तिनिरत व आत्माराम उन शुकमुनिने इतनी बड़ी संहिता क्यों पढ़ी ? ॥ ९ ॥ सूतजीने कहा कि-आत्माराम व अहंकाररूपग्रंथिरहित मु-

निलोगभी उरुक्रम भगवान्‌में फलाभिसंधानरहित भक्ति करते हैं, क्योंकि हरि भगवान्‌के गुण ऐसेही हैं ॥ १० ॥ हरि भगवान्‌के गुणोंसे बुद्धि खिंच जानेके कारण सदा भगवदीय जनोंके प्यारे भगवान् शुकदेवजीने इतनी बड़ी संहिता पढ़ी ॥ ११ ॥ अब मैं राजर्षि परीक्षितका जन्म कर्म और मरण तथा पांडवोंका महाप्रस्थान यह सब श्रीकृष्ण भगवान्‌की कथाका उदय जैसे हो वैसे कहूंगा ॥ १२ ॥ जब संग्राममें कौरव और पांडवोंके सब वीर, वीरगति यानी स्वर्गको प्राप्त हुए और भीमसेनकी चलायी गदाके प्रहारसे दुर्योधनके उरुदंड ( जंघावोंके ) खंड हो गये ॥ १३ ॥ तब अश्वत्थामा, स्वामी इस तरह प्रसन्न होगा ऐसा विचार कर,

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः ॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् ॥ संस्थां च पांडुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥ १२ ॥ यदा मृधे कौरवसृंजयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदंडे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥ उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयंति ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ॥ तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सांत्वयन्नाह किरीटमाली ॥ १५ ॥ तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबंधोः शिर आततायिनः ॥ गांडीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सांत्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥

सोतेहुए द्रौपदीके पुत्रोंके शिर काट ले आया, यह बात उसकोभी अप्रिय ही लगी; क्योंकि निंद्यकर्मकी सब कोई निंदाही करते हैं ॥ १४ ॥ द्रौपदी अपने बालक पुत्रोंका घोर मरण सुनकर, बहुत तपायमान हुई, और आखोंमें आंसू भर भर, बिसूर बिसूर, रोने लगी, इसे सांत्वना देते अर्जुनने कहा कि ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! जब आततायी[1] ब्रह्मबंधुका शिर गांडीवधनुषसे छूटेहुए बाणोंसे काट कर लाऊंगा. और हतपुत्रा तू उसके शिरको दबाके, यानी आसन बनाकर, स्नान करेगी, तब मैं तेरे आंसू पोंछूंगा ॥ १६ ॥ अच्युत भगवान् जिसके मित्र और सारथि हैं ऐसा, वह उग्रधन्वा अर्जुन कवच पहन, प्रियाको इस तरह मनोहर व विचित्र वच-

१ अग्निसे जलानेवाला, विषदेनेवाला, शस्त्रपाणि, धन लेनेवाला, क्षेत्र लेनेवाला, स्त्रीचुरानेवाला ये छः आततायी कहे हैं.

नोंसे सांत्वना दे, रथपर चढ़, गुरुपुत्रके पीछे दौड़ा ॥ १७ ॥ उद्विग्नचित्त वह कुमारहत्यारा अर्जुनको दूरसे आता देखकर, प्राण बचानेकी इच्छासे रथमें बैठ कर, पृथ्वीमें जहांतक जासका वहांतक दौड़ा जैसे महादेवके भयसे ब्रह्माजी दौड़े थे ॥ १८ ॥ जब उसके घोड़े थकगये और कोई आत्माको शरण देनेवाला नहीं दीख पड़ा, तब उस ब्राह्मणके पुत्र अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रको अपनी रक्षा करनेवाला माना ॥ १९ ॥ यदपि वह ब्रह्मास्त्रका उपसंहार ( लौटाना ) नहीं जानता था तौभी प्राणसंकट उपस्थित हुआ

तमापतंतं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन॥ पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥ १८ ॥ यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रांतवाजिनम् ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरोमेन आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २० ॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचंडं सर्वतोदिशम् ॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥ २३ ॥

तो ध्यान कर, जलका स्पर्श कर, उसने ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ २० ॥ ब्रह्मास्त्रसे प्रगट हुए सब दिशाओंमें व्याप्त प्रचंड तेजको और उस तेजसे प्राणसंकटको देख कर, अर्जुनने विष्णु भगवान्से कहा ॥ २१ ॥ अर्जुन बोले कि–हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! आप भक्तोंके अभय करनेवाले हो. और संसारके हेतु जलते हुए जीवोंके एक आपही तापके मिटानेवाले हो ॥ २२ ॥ आप सबके आदिकारण, प्रकृतिसे पर, पुरुष और साक्षात् परमेश्वर हो, जो आप मायाका चित्शक्तिसे तिरस्कार कर, कैवल्यरूप

---

१ जब ब्रह्माजी अपनी कन्याको देख, मोहित हो, मृग बन, मैथुनकी इच्छासे उसके पीछे २ दौड़े तब शंकरने पीछा किया सो वे भगे. परंतु आखिरमें शंकरने ब्रह्माका पांचवां शिर काट डाला. तो वही शिर शिवजीके पीछे लगा. फेर काशीजीमें जिस जगा छूटा वही कपालमोचन नाम तीर्थ काशीजीमें आजभी प्रसिद्ध है. अथवा अर्क यह पाठ होवे तो वामनपुराणकी कथा समझनी जैसे कि कोई एक विद्युन्मालीनाम राक्षस बड़ा शिवभक्त था. उसे शिवजीने सुवर्णका विमान दिया. तब वह सूर्यके पीछे २ फिरा और रातकोभी दिन कर दिया. तब तो सूर्यने अपने तेजसे मय राक्षसके वह विमान गिरादिया. यह सुन, कुपित हुये शिवजीने सूर्यको मारना चाहा, तब सूर्य भगे और उसी वखत रुद्रकी कुपित हुई दृष्टिसे जलते हुये सूर्य काशीपुरीमें गिर गये. वही स्थान आजदिनभी लोलार्क नामसे तीर्थ प्रसिद्ध है.

आत्मस्वरूपमें सदा विराजो हो ॥ २३ ॥ वेही आप अपने प्रभावसे मायासे मोहितचित्त जीव लोकका धर्मादि लक्षण कल्याण करते हो ॥ २४ ॥ जैसे आपका यह अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे हुआ है, वैसे अपने ज्ञातियोंके और अनन्य भक्तोंके निरंतर ध्यान करनेके लिये भी है ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! मैं यह नहीं जानता कि, यह चारों ओर फैलाहुआ परमदारुण तेज क्या है ? और कहांसे आता है ?॥ २६ ॥ श्रीभगवानने कहा कि–यह अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र है, यद्यपि वह इस अस्त्रका उपसंहार ( पल्टाना ) नहीं जानता, तथापि प्राणसंकट प्राप्त हुआ देखकर, उसने चलादिया है सो तू जान ॥ २७ ॥ इस अस्त्रको शांत कर-

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २४ ॥ तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥ २५ ॥ किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतो मुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥ २७ ॥ न ह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ॥ स्पृष्ट्वाऽपस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥ संहत्यान्योऽन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्त्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रीँल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्त्तकममंसत ॥ ३१ ॥

नेवाला दूसरा कुछभी अस्त्र नहीं है, इसलिये बढ़ेहुए इस ब्रह्मास्त्रके तेजको ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही शांत कर; क्योंकि तू इस अस्त्रके प्रयोगको जानता है ॥ २८ ॥ सूतजीने कहा कि–शत्रुओंके वीर पुरुषोंको मारनेवाले अर्जुनने भगवान्के बचन सुन, आचमन कर, भगवान्की परिक्रमा दे, ब्रह्मास्त्रके लिये ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ २९ ॥ बाणोंसे घिरेहुए उन दोनों अस्त्रोंके तेज आपसमें शामिल हो, द्यावापृथिवी ( स्वर्ग और जमीन ) व अंतरिक्ष ( आकाश ) को घेर कर, सूर्य और अग्निके समान बढ़ने लगे ॥ ३० ॥ त्रिलोकीको भस्म करते उस भारी अस्त्रके तेजको देखकर, जलतीहुई सब प्रजाको प्रलयानलका संभ्रम हुआ ॥ ३१ ॥

प्रजाका उपद्रव और लोकोंका नाश होता देख, भगवान्‌का अभिप्राय जान कर, अर्जुनने दोनों अस्त्र उतार लिये॥३२॥ फिर तुरंत निर्दयरूपीके पुत्र अश्वत्थामाके निकट जाकर, क्रोधसे अरुण नेत्र अर्जुनने जैसे याज्ञिक पशुको रज्जुसे बांधता है, वैसे बांध लिया॥३३॥ शत्रुको रज्जुसे बांधकर, बलात्कारसे अपने डेरेमें ले जाते अर्जुनको क्रोधकरके, कमलनयन श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा कि॥ ३४॥ "हे अर्जुन! इस ब्रह्मबंधुकी रक्षा करनी तुझे उचित नहीं, इसे तौ तू मारही डार, क्योंकि जिस इसने विचारे निरपराधी सोते-हुए बालकोंका रात्रिमें बध किया है ॥ ३५ ॥ कहा है कि मद्य आदि पीनेसे मत्त, गाफिल, भूत आदिके आवेश ( लगने ) से

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनोद्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबंधामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥ शिबिराय निनीषतं रज्ज्वा बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानंबुजेक्षणः ॥ ३४ ॥ मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबंधुमिमं जहि ॥ योसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हंति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पांचाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबंधुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ एवं परीक्षताधर्मं पार्थ कृष्णेन चोदितः ॥ नैच्छद्धंतुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥ ४० ॥

उन्मत्त, सोतेहुए, बालक, स्त्री, उद्योगरहित, शरणागत, विरथ और भयभीत शत्रुको धर्मज्ञ पुरुष नहीं मारता ॥ ३६ ॥ जो निर्दय और खल पुरुष दूसरेके प्राणोंसे अपने प्राणोंको पालता है, उसका बध उसीके कल्याणरूप है, क्योंकि वह पुरुष उस अपराधसे नरकमें नहीं पड़ता॥ ३७ ॥ और मेरे सुनते तुमने द्रौपदीके पास प्रतिज्ञा की थी कि 'हे मानवती! जिसने तेरे पुत्रोंका बध किया है, उसका शिर मैं तुझे ला दूंगा' ॥ ३८ ॥ इसलिये इस पापी आततायी अपने बंधुघातकको अवश्य मारना चाहिये, हे वीर! इस कुलकंटकने अपने स्वामीकाभी तौ विप्रियही किया है" ॥ ३९ ॥ इस तरह धर्मकी परीक्षा करते श्रीकृष्णचंद्रने अर्जुनको

बहुत कुछ प्रेरणा की और अपराधीभी ऐसा कि साक्षात् अपने पुत्रोंको मारनेवाला तथापि अर्जुनने अपने गुरुपुत्रको मारना नहीं चाहा; क्योंकि बड़े बड़प्पनही विचारते हैं ॥ ४० ॥ गोविंद भगवान् जिसके प्रिय और सारथि हैं ऐसे उस अर्जुनने अपने डेरेमें आ, मरेहुए पुत्रोंका शोच करती अपनी प्रियाके उस अश्वत्थामाको सिपुर्द किया ॥ ४१ ॥ उस तरह तिरस्कार पूर्वक लाये, निंधकर्म करनेसे नीचा मुख किये, पशुकी तरह पाशसे बंधेहुए अपराधी गुरुपुत्रको कृपादृष्टिसे देख कर, सुंदर स्वभाववाली द्रौपदीने उसे प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ बांधकर, उसके लानेको सहन न करती वह सती बोली कि 'छोड़ो, छोड़ो' यह ब्राह्मण है

अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविंदप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचंत्या आत्मजान् हतान् ॥ ॥ ४१ ॥ तथाहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥ उवाच चासहंत्यस्य बंधनानयनं सती ॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वंद्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाऽहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७ ॥ यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबंधं शुचार्पितम् ॥ ४८ ॥

और हमारा तो साक्षात् गुरु ही है ॥ ४३ ॥ जिसके अनुग्रहसे आपने रहस्य गोप्य यानी मंत्रसहित धनुर्वेद और प्रयोग व उपसंहारसहित अस्त्रोंका समूह सीखा है ॥ ४४ ॥ वह यह साक्षात् द्रोणाचार्यही पुत्ररूपसे है, अतएव द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगी स्त्री कृपी पुत्रवती होनेसे सती नहीं हुई ॥ ४५ ॥ हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! इसीलिये आपको गुरुकुलको दुख देना उचित नहीं, किंतु उस कुलका निरंतर पूजन और वंदन करना चाहिये ॥ ४६ ॥ इसकी माता पतिव्रता कृपी जैसे मैं पुत्र मरनेसे दुखी हो, सुखमें आंसू भर भर वारंवार रुदन करती हूं वैसे रुदन न करे ॥ ४७ ॥ जो अजितेंद्रिय क्षत्रियलोग ब्रह्मकुलको कोपित करते हैं, उनका

कुल शोकाकुल होकर, परिवारसहित तुर्त भस्म होजाता है ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा कि धर्मयुक्त वाक्य " छोड़ो छोड़ो " न्याय सहित " रहस्यसहित धनुर्वेद सीखा " करुणासहित " द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगी सती न हुई " निष्कपट " गुरुकुलको दुख देना उचित नहीं " सम " मेरे जैसे इसकी माता रुदन न करे " बड़ा " जो ब्रह्मकुलको कोपित करते हैं वे नाश हो जाते हैं " ये षड्गुण द्रौपदीके बचन सुन कर, हे विप्रो ! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने उसकी प्रशंसा की ॥ ४९ ॥ नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण और दुसरे लोग व जो स्त्रियां थीं, उन सबने प्रशंसा की ॥ ५० ॥ वहां क्रोध करके, भीमसेनने कहा

सूत उवाच ॥ धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनंदद्वचो द्विजाः ॥ ४९ ॥ नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥ न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रोपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबंधुर्नहंतव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ ५३ ॥ कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सांत्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पांचाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥ ५५ ॥

कि " इसको तौ मारनाही इसका कल्याणरूप होगा; क्योंकि इसने न तौ स्वामीके अर्थ और न अपने स्वार्थके लिये किंतु सोते-हुए बालकोंका वृथाही बध किया " ॥ ५१ ॥ भीमसेन और द्रौपदीका, कहना सुन, द्रौपदी और भीमसेनको पकड़नेके वास्ते भगवान्ने चतुर्भुज स्वरूप धारण कर, अर्जुनके मुखकी ओर देखकर, मानों हँसते हों वैसे यह वक्ष्यमाण बचन कहा ॥ ५२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–ब्रह्मबंधुको नहीं मारना चाहिये और आततायी ( जो अपनेको मारनेको आता हो ) उसको मारना चाहिये शास्त्रके कर्ता मेरी ये दोनों आज्ञा हैं, सो इन दोनों आज्ञाओंका पालन कर ॥ ५३ ॥ और प्रियाको सांत्वना देते जो तूने प्रतिज्ञा की, उसे सत्य कर और भीमसेन, द्रौपदी और मैं इन सबको राजी रख ॥ ५४ ॥ सूतजीने कहा कि–अर्जुनने तुर्त हरि

भगवान्‌का अभिप्राय समझ कर, खड्गसे अश्वत्थामाके शिरकी मणि केशोंके साथ हर लीनी ॥ ५५ ॥ फिर बालहत्यासे कांतिरहित, तेज व मणिसे हीन, डोरीसे बंधेहुए अश्वत्थामाको छोड़ कर, डेरेमेंसे निकाल दिया ॥ ५६ ॥ शिर मुड़ा देना, धन ले लेना और स्थानसे निकाल देना, ब्राह्मणोंके वास्ते बधके एवजमे यही दंड है. परंतु देहसबंधी दूसरा दंड नहीं है ॥ ५७ ॥ पुत्रोंके शोकसे आतुर सब पांडवोंने द्रौपदीको संग ले, मरेहुए अपने बंधुजनोंका जो दाहआदि कृत्य करना चाहिये वह सब किया ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ॥ तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥ ५६ ॥ वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ॥ एष हि ब्रह्मबंधूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पांडवाः सह कृष्णया ॥ स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ॥ दातुं सकृष्णा गंगायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥ ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ॥ आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥ २ ॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ॥ गांधारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥ सांत्वयामास मुनिभिर्हतबंधून् शुचाऽर्पितान् ॥ भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥

आठवें अध्यायमें कोप किये हुये अश्वत्थामाके अस्त्रसे श्रीकृष्णभगवान्‌के हाथ परीक्षित राजाकी रक्षा, कुंतीकी स्तुति और राजा युधिष्ठिरका शोच इतनी कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि–फिर मरेहुए अपने बंधु कि जो जल चाहते थे, उन्हें जल देनेके लिये द्रौपदीसहित सब स्त्रियोंको आगे ले, वे सब गंगाको गये ॥ १ ॥ वे सब जल दे, अत्यंत विलाप कर, हरिभगवान्‌के चरणकमलकी रजसे पवित्र गंगाजलमें वारंवार न्हाये ॥ २ ॥ वहां छुटभय्योंसहित विराजेहुए कुरुपति, धतराष्ट्र, पुत्रशोकसे दुखी गांधारी, कुंती, द्रौपदीं ॥ ३ ॥ व बंधु, जिनके मरगये हैं ऐसे शोकाकुल सबलोकोंको जिसका कोई उपाय नहीं ऐसी कालकी गति प्राणि-

योंके अंदर दिखाते, हरि भगवान्‌ने सात्वना दी ॥ ४ ॥ जिन धूर्तलोगोंने युधिष्ठिरका राज हर लिया था, उन दुष्टराजाओंको कि जिनकी द्रौपदीके केश छूनेसे आयुष्य नाश हो गयी थी, उन्हें मरवाकर, पीछा युधिष्ठिरका राज जमवाया ॥ ५ ॥ उसे उत्तम कोटिके तीन अश्वमेध यज्ञोंसे यजन करवाकर, इंद्रके यशके समान दिशाओंमें उसका पवित्र यश फैलाया ॥ ६ ॥ पांडवोंसे सीख मांग, सात्यकि और उद्धवजीको साथ ले, व्यासजीआदि ऋषियोंका आपने पूजन किया और उन्होंने आपकी पूजा की ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! द्वारका जानेका विचार कर, भगवान् रथमें विराजे, इतनेमें भयसे विव्हल सन्मुख आती उत्तरा नजर आई जो इस

साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वराज्यं कितवैर्हृतम् ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाऽश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमंत्र्य पांडुपुत्रांश्चशैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥ गंतुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावंतीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥ पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः ॥ अपांडवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११ ॥ तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पांडवाः पंच सायकान् ॥ आत्मनाभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥

प्रकार पुकार रहीथी कि ॥८॥ हे महायोगी ! हे देवदेव ! हे जगत्पति ! त्राहि त्राहि, ( रक्षाकरो२ ) जिस लोकमें परस्पर मरण होवे है, उस लोकमें आप विना अभयदान देवे, ऐसा दूसरा कोई मुझे नहीं दीखता ॥ ९ ॥ हे ईश ! हे विभो ! तपाहुआ लोहमय है फल जिसका ऐसा, यह शर ( बाण ) मेरे सन्मुख दौड़ा चला आता है, सो हे नाथ ! मुझे भले जला देवे, परंतु मेरा गर्भ नहीं पड़ना चाहिये ॥ १० ॥ सूतजीने कहा कि–भक्तवत्सल भगवान्‌ने उसका बचन सुनकर, इस जगतको पांडवरहित करनेके लिये अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रको जान लिया ॥ ११ ॥ उसीसमय हे मुनिश्रेष्ठ ! पांडवोंने अपने सन्मुख आतेहुए देदीप्यमान पांच बाणोंको

देखकर, अपने शस्त्र उठाये ॥ १२ ॥ नहीं हैं अन्यके विषे मन जिनके ऐसे उन पांडवोंका वह संकट देखकर, विभु भगवान्ने अपने सुदर्शननाम अस्त्रसे अपने भक्तोंकी रक्षा की ॥ १३ ॥ सर्वप्राणीमात्रके अंतर्यामी योगेश्वर हरि भगवान्ने अपनी मायासे उत्तराके अंदर प्रवेश करके, कौरवकुलके संतानके लिये उसके गर्भको घेर लिया ॥ १४ ॥ हे शौनक ! यदपि ब्रह्मास्त्र अमोघ और प्रतिक्रियारहित है, तथापि विष्णुभगवान्के तेजको पाकर, शांत होगया ॥ १५ ॥ सर्वआश्चर्यमयी अच्युत भगवान्में तू इस बातका आश्चर्य मत माने, क्योंकि जो अज भगवान् अपनी प्रकाशमान मायासे इस जगतको सरजे हैं, पाले हैं और संहार करे हैं

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥ १३ ॥ अंतस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ॥ स्वमाययाऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतंतवे ॥ १४ ॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥ १५ ॥ मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्यासृजत्यवति हंत्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुंत्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामंतर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥ तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्रसे मुक्त छूटेहुए अपने पुत्र और द्रौपदीसहित सती कुंतीने रवाने होते श्रीकृष्ण भगवान्से यह वक्ष्यमाण बचन कहा ॥ १७ ॥ कुंतीने कहा कि-आदिपुरुष, परमेश्वर, प्रकृतिसे पर, अलक्ष्य, और सर्वप्राणीमात्रके भीतर और बाहिर पूर्णतासे व्याप्त आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १८ ॥ मायारूप पर्देसे ढकेहुए, इंद्रियजन्य ज्ञान जिनसे नीचा है ऐसे, नाशरहित, आपको अज्ञ मैं प्रणाम करती हूं जैसे स्वांगधारणकरनेवाला नट पहिंचाना नहीं जाता, वैसे देहाभिमानी पुरुष आपको नहीं पहिंचानते ॥ १९ ॥ इतनाही नहीं किंतु आत्मा तथा अनात्माके जाननेवाले, मननशील, निर्मलमनवाले पुरुषभी आपके स्वरूपको

निजमहिमासे नहीं पहिंचानते, तब भक्तियोग करनेके लिये हम स्त्रियां तौ आपके स्वरूपको कैसे पहिंचान सकें ?॥ २० ॥ कृष्ण, वासुदेव, देवकीके नंदन, नंदगोपके कुमार, गोविंद आपको मैं वारंवार प्रणाम करती हूं ॥ २१ ॥ पद्मनाभ, कमलोंकी माला धारणकरनहारे, कमलनयन, कमलकेसे हैं चरण जिनके ऐसे, आपको मैं वारंवार नमस्कार करती हूं ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश ! जैसे खल कंससे कैद कीहुई, अति शोकमें पड़ीहुई, केवल देवकीकोही चिरकालसे आपने एकबेरही छुड़ाई और मुझे तौ विपत्तिसमूहसे पुत्रोंसहित रक्षणकर्त्ता आपने हे विभु ! वारंवार छुड़ाई है ॥ २३ ॥ विषसे, लाक्षाभवनके दाहसे, हिडिंब आदि राक्षसोंके दर्शनसे,

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च ॥ नंदगोपकुमाराय गोविंदाय नमो नमः॥ २१ ॥नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २२ ॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताऽहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ॥ मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्महरेऽभिरक्षिताः ॥ २४ ॥ विपदः संतु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ॥ २६ ॥ नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शांताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७ ॥

कपटसभासे, वनवासके संकटसे, युद्धयुद्धमें अनेक महारथीनके अस्त्रोंसे और अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे हे हरे ! हमारी आपने ठौर ठौर रक्षा करी है ॥ २४ ॥ हे जगत्गुरु ! जब तब हमारे निरंतर विपत् हुआ करें; क्योंकि आवागौनसे छुड़ानेवाला आपका दर्शन उसीके निमित्तसे होता है ॥ २५ ॥ जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मी इनकरके, जिसका मद बढ़रहा है ऐसा पुरुष, अकिंचनपुरुषोंके विषय ऐसे आपका नाम लेनेकोभी योग्य नहीं होता ॥ २६ ॥ अकिंचन पुरुषोंके धनरूप, गुणकी वृत्तियां यानी धर्म, अर्थ, कामरूप विषय जिनमें नहीं हैं ऐसे, आत्माराम, रागादिरहित, मोक्षके पति आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ २७ ॥

आपको मैं काल, ईश्वर, आदिअंतरहित, समर्थ, सबठौर समभावसे विचरनेवाले मानती हूं, जीवोंमें जो परस्पर क्लेश होताहे, उसमें आपही निमित्त (कारण) हो ॥ २८ ॥ हे भगवन्! जिनके न तौ कोई प्रिय और न कोई अप्रिय है, तथापि जिनके विषे मनुष्योंकी विषमबुद्धि यानी "ईश्वर दया करनहारे और दंड देनेवाले हैं" ऐसी बुद्धि होती है ऐसे और मनुष्योंकी नाईं आचरण करनहारे आपके कर्तव्यको कोई नहीं जानता ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मा! पशु आदिमें, मनुष्योंमें, ऋषियोंमें और जलचरोंमें अजन्मा आपका जन्म और अकर्ता आपके कर्म, यह अति विडंबनकी बात है यानी आश्चर्यरूप है ॥ ३० ॥ आपने अपराध किया यानी

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ॥ समं चरंतं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥ २८ ॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडंबनम् ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥ २९ ॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३० ॥ गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाऽश्रुकलिलांजनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥ केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्त्तये ॥ यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चंदनम् ॥३२॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

दधिभांड फोरडारा, तब माता यशोदाने ज्यों डोरी हाथमें लीनी, त्यों तुरंत आंसूसे मिलेहुए अंजनवाले और भयसे व्याकुलनेत्रवाले मुखको नीचा करके भयकी भावनासे यानी मुझे मारेगी ऐसा भय दिखाते ठाढ़े आपकी जो दशा हुई, वह दशा मुझे मोहित करती है; क्योंकि आपसे तौ स्वयं भय (काल) भी भयभीत रहाता है ॥ ३१ ॥ पवित्रकीर्ति और प्रिय युधिष्ठिरकी कीर्ति करनेके लिये अथवा यदुराजाकी कीर्तिके लिये यदुवंशमें मलयाचलके वंशमें उसकी कीर्तिके लिये जैसे चंदन उत्पन्न होवे, वैसे अजन्मा आपने जन्म लिया है, इसतरह कितने एक कहते हैं ॥ ३२ ॥ कितने एक कहते हैं कि वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके विषे पूर्वजन्ममें उनकी प्रार्थनासे अजन्मा आप इस जगत्के कल्याणके लिये और देवतानके द्वेषीलोगोंके बधके लिये पुत्र हुए हो ॥ ३३ ॥

दूसरे कहते हैं कि समुद्रमें नावकी नाईं अतिभारसे पीड़ित पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे आपका अवतार हुआ है ॥ ३४ ॥ कितने एक कहते हैं कि इस संसारमें अज्ञानरूप अविद्या यानी देहाभिमान उससे हुई जो कामना और कामनासे भये जो कर्म, तिनकरके क्लेश पातेहुए पुरुषोंके अविद्याआदि निवृत्त होनेके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य कर्म करनेको प्रगट भये हो ॥ ३५ ॥ जो लोग आपकी लीलाको वारंवार सुनते हैं, याद करते हैं, गाते हैं, कीर्तन करते हैं और दूसरे किसीके वर्णन करने व गानेपर प्रशंसा करते हैं, वेही लोक थोड़े समयमें संसार प्रवाहको मिटानेवाले, यानी जन्ममरणकी परं-

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदंत्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५॥ शृण्वंति गायंति गृणंत्यभीक्ष्णशः स्मरंति नंदंति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यंत्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदांबुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहितप्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदांबुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पांडवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥ ३८ ॥ नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरंकिता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वंतो ह्येधंते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

पराको निवृत्त करनेवाले आपके चरण कमलको देखते हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रभु ! हे निजदासोंके अपेक्षित पूरणहारे ! आपके चरणके सिवाय जिनके दूसरा कुछभी आश्रय नहीं है और राजाओंको दुख देनेके कारण जिनके बैर बंध गया है ऐसे, हम अनुजीवि सुहृदोंको भला आज आप छोड़ना चाहते हो ॥ ३७ ॥ जैसे इंद्रियोंका ईश्वर जीव चला जाय, तब नामरूपादिक सब तुच्छ हैं, वैसे जब आपका दर्शन नहीं होता, तब नाम और रूपसे यादवोंसहित पांडव कौन चीज हैं ? कुछभी नहीं. अर्थात् तुच्छ हैं. ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! आपके असाधारण वज्र आदि लक्षणोंसे विलक्षण चरणारविंदके चिन्हवाली यह पृथ्वी जैसी अभी शोभा देती है, वैसी आपके पधारे पीछे शोभा न देगी ॥ ३९ ॥ भली भांति पकेहुए नाज, लतायें, बढ़ेहुए देश, वन, पर्वत, नदियां और

समुद्र ये सब आपकी दृष्टिसे बढ़ रहे हैं ॥ ४० ॥ हे विश्वके ईश ! हे विश्वके आत्मा ! हे विश्वमूर्ति ! अपने पांडव और यादवों-में जो मेरे स्नेहरूप दृढ पाश पड़रहा है इसे आप काटो ॥ ४१ ॥ हेमधुपति ! जैसे गंगा प्रतिबंधको न गिनकर, समुद्रमें जा मि-लती है; वैसे दूसरे किसीमें न जानेवाली मेरी बुद्धि विघ्नोंको न गिनकर, आपके विषे अविच्छिन्न ( अखंडित ) प्रीति करो ॥ ४२ ॥ हे कृष्ण ! हे अर्जुनकेमित्र ! हे वृष्णिकुलमें श्रेष्ठ ! हे पृथ्वीके द्रोही राजवंशके अग्नि ! हे अक्षीणप्रभाव ! हे गोविंद ! गौब्राह्मणदेवतावोंकी पीड़ा हरनेके लिये अवतार धारणकरनहारे ! हे योगेश्वर ! हे सकलगुरु ! हे भगवान् ! मैं आपको नमस्कार

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिंधि दृढं पांडुषु वृष्णिषु ॥४१॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविंद गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार योगेश्वराखिलगु-रो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मंदं जहास वैकुंठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामंत्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्य-न्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोपीतिहासैर्ना-बुद्ध्यत शुचाऽर्पितः ॥ ४६ ॥ आह राजा धर्मसुतश्चिंतयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्ने-हमोहवशंगतः ॥ ४७ ॥



करती हूं ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले कि–इस तरह कुंतीने मधुर बचनोंसे भगवान्‌की सब महिमाका वर्णन किया, तब मानों मायासे मोहित करतेहों वैसे वैकुंठ भगवान् मंद मंद हँसे ॥ ४४ ॥ "तू सत्य कहती है" इस तरह कुंतीको कह, उसका कहना अंगीका-र कर, रथ खड़ा था वहांसे पीछे हस्तिनापुरमें पधार, कुंती और सुभद्रा आदि स्त्रियोंसे आज्ञा ले अपने पुर ( द्वारकाको ) पधा-रने लगे, इतनेमें युधिष्ठिरराजाने प्रेमसे "थोड़ा कालतो यहीं रहो" ऐसी प्रार्थना करके भगवान्‌को जाते रोंक दिया ॥ ४५ ॥ ईश्व-रकी चेष्टाको न जाननेवाले व्यासादिकोंने और अद्भुतकर्म करनहारे श्रीकृष्ण भगवान्‌नेभी इतिहास कह कह कर, राजा युधिष्ठि-रको बहुत समझाया, परंतु शोकसे व्याप्त उस राजाको बोध नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ हे विप्रो ! अपने बंधु लोगोंके बधका चिं-

तवन करता, स्नेह और मोहके वश राजा युधिष्ठिर अविवेकव्याप्त चित्तसे कहने लगा ॥ ४७ ॥ कि 'अहो! मुझ दुरात्माके हृद-यमें ठसेहुए अज्ञानको देखो, पराये शरीरकेवास्ते मैंने बहुतसी अक्षौहिणियोंका संहार किया ॥ ४८ ॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद, मित्र, पिता, भाई, गुरु इनका द्रोही जो मैं हूं तिसका दश करोड़ बरसोंमें तो नरकसे छुटकारा होना हैही नहीं ॥ ४९ ॥ 'राजा युद्धमें शत्रुओंका वध करे, उसमें पाप नहीं' यह जो शिक्षाका बचन है, वह मेरे बोधके वास्ते नहीं होसकता; किंतु प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाके वास्ते होसक्ता है, अर्थात् आपनी प्रजाका दूसरेसे पराभव होता हो, तब उसका वध करना, यह

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्वयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ ४८ ॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणां मद्धतबंधूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥ ५१ ॥ यथा पंकेन पंकांभः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्माष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे युधिष्ठिरानुतापोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आज्ञा है; परंतु दुर्योधनतो प्रजाकी रक्षा करता था; तहां मैंने लोभसे बध किया, तासों यह वध तौ पापरूपही हुआ ॥ ५० ॥ मैंने जिनके बांधवोंका बध किया है, ऐसी, स्त्रियोंका जो यह द्रोह उत्पन्न हुआ, उसे मैं गृहस्थाश्रमसंबंधी कर्मोंसे मिटा नहीं सक्ता ॥ ५१ ॥ अजी! अश्वमेधसे सब पाप निवृत्त होजायंगे; तब कहता हैं, कि जैसे गहरे कीचसे कीचका जल साफ नहीं होता. और थोड़े मद्यसे अपवित्र वस्तु ज्यादा मद्यसे शुद्ध नहीं होती, वैसे प्रमादसे हुई एकाद प्राणिहिंसा जानबूझकर, कियेहुए हिंसामय यज्ञोंसे मिट नहीं सकती ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटी-

१ २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० अश्वपति, १०९३५० प्यादे इतनी सेनाको अक्षौहिणी कहते हैं.

काया अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें भीष्मजीने, युधिष्ठिरको सर्वधर्मोंका निरूपण किया, भगवान्‌की स्तुति की और उनकी मुक्ति हुई, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि–इस तरह प्रजाके द्रोहसे डरता राजा युधिष्ठिर सर्वधर्म जाननेकी इच्छासे, जहां भीष्मजी पड़े थे, वहां कुरुक्षेत्रमें गया ॥ १ ॥ तब उसके सब भाई तथा व्यासजी व धौम्य आदि ब्राह्मणलोग सुवर्णसे शोभायमान श्रेष्ठ घोड़ोंवाले रथोंमें बैठकर, उससे पीछे २ चले ॥ २ ॥ हे शौनक ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्रभी अर्जुनको संग ले, उसके पीछे हो लिये, वह राजा उन सबोंसे जैसे कुबेर यक्षोंसे शोभा देता है, वैसे शोभा देने लगा ॥ ३ ॥ मानों स्व-

सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततोविनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥ तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनंजयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः पांडवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥ ४ ॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुंगवम् ॥ ५ ॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः ॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ इंद्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोमलाः ॥ शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपांऽऽगिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥ ९ ॥

र्गसे देवता च्युत हुआहो, वैसे पृथ्वीपर पड़ेहुए भीष्मजीको देखकर, अनुचर और श्रीकृष्ण भगवान्‌के साथ पांडवोंने भीष्मजीको प्रणाम किया ॥४॥ वहां हे शौनक ! भीष्मजीका दर्शन करनेकेवास्ते ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि सब आये ॥५॥ पर्वत, नारदजी, धौम्य, भगवान् वेदव्यासजी, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंसहित परशुरामजी ॥ ६ ॥ वसिष्ठ, इंद्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन, ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! औरभी शुकदेव आदि निर्मल मुनिलोग व कश्यप और बृहस्पति आदि ऋषि शिष्योंसहित वहां आये ॥ ८ ॥ धर्मज्ञ और देशकालके विभागके जाननेवाले, भगवान्‌के प्रभावके ज्ञाता, वसुनमें उत्तम भीष्मजी-

ने आयेहुए उन महाभाग महात्माओंको और हृदयमें विराजनेपरभी मायासे शरीर धारणकर, समीपमें विराजेहुए जगदीश श्रीकृष्ण भगवान्‌को प्राप्त होकर, सबकी पूजा की ॥ ९ ॥ १० ॥ विनय और प्रेमसे संपन्न, ढिगमें बैठेहुए, पांडवोंको प्रेमाश्रुके कारण अंधेहोतेहुए नेत्रोंसे देख कर, कहाकि ॥ ११ ॥ हे पांडवो ! तुम कि जिनके ब्राह्मण, धर्म और भगवान्‌का आश्रय हैं, वे दुख पाकर, जीवो. अहो! यह तो बड़ी बुरी बात है और बड़ा अन्याय है, तुम इसतरह दुख पाकर जीनेके योग्य नहीं हो ॥ १२ ॥ अतिरथ राजा पांडुके म-

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १० ॥ पांडुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टानुरागास्रैरंधीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥ अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनंदनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माऽच्युताश्रयाः ॥ १२ ॥ संस्थितेऽतिरथे पांडौ पृथा बालप्रजा वधूः ॥ युष्मत्कृते बहून् क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥ सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गांडिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ १५ ॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यंति कवयोपि हि ॥ १६ ॥

रजानेसे छोटे बच्चोंवाली विचारी कुंती बहूने पुत्रोंके साथ तुम्हारे वास्ते वारंवार बहुतसे क्लेश पाये हैं ॥ १३ ॥ जैसे बादल वायुके बश हैं, वैसे लोकपालसहित सब लोक जिस कालके आधीन हैं, मैं मानता हूं कि, उस कालहीका यह सब कृत्य है, जो तुमको दुःख हुआ है ॥ १४ ॥ जो ऐसा न हो तो जहां धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, हाथमें गदा धारण करनेवाला भीम, धनुर्धारी अर्जुन, गांडीवधनुष और श्रीकृष्णसे सखा; वहां विपत्‌का होना कैसे संभवे ? ॥ १५ ॥ हे राजा ! इस श्रीकृष्णके कर्तव्यको कोई

१ करमगति टारेहु नाहि टरै ॥ कहां वे राहु कहां वे रवि शशि आनि संयोग परै ॥ गुरु वसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी, रचि पचि लगन धरै ॥ पिता मरन अरु हरन सियाको, बनमें विपत्ति परै । भारतमें भरुहीका अंडा, घंटा टूटि परै । हरिश्चंद्रसे दानी राजा, नीचको पानी भरै ॥ तीनलोक भावीके वशमें, सुर नर देह धरै ॥ सूरदास होनी सो होइहै, काहेको सोच करै ।

नहीं जानता, जिस कर्तव्यको जाननेकी इच्छावाले कविलोगभी मोहित हो जाते हैं, पर जानते नहीं ॥ १६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! इस लिये इस जगत्को दैवके परतंत्र जानकर, इस ईश्वरका अनुसरण करके हे नाथ ! हे प्रभु ! इस अनाथ प्रजाकी रक्षाकरो ॥ १७॥ यह श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण आदिपुरुष हैं, अपनी मायासे लोकको मोहित करते यादवोंमें गुप्तभावसे विचरते हैं ॥ १८ ॥ हे राजा ! इस श्रीकृष्णके अतिगुह्य प्रभावको भगवान् महादेव, देवर्षि नारदजी और भगवान् साक्षात् कपिलदेवजी जानते हैं ॥ १९ ॥ जिसे तू मामाका पुत्र, प्रिय, मित्र और अतिसुहृद मानता है. और जिसे तूने सौहृदभावसे अपना मंत्री, दूत और सारथिभी ब-

तस्मादिदं दैवतंत्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथानाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥ यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ॥ अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकांतभक्तेषु पश्य भूपानुकंपितम् ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥ भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नामकीर्त्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥ २३ ॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखांबुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥

नाया है ॥ २० ॥ उस सर्वात्मा, समदृष्टि, अद्वय, अहंकाररहित, रागद्वेषादिशून्य भगवान्के उच्च नीच कर्मका कियाहुआ बुद्धिका विषमभाव कहींभी नहीं है ॥ २१ ॥ तथापि हे राजा ! एकांतभक्तोंपर भगवान्की अनुकंपा देख ! कि मेरे प्राण तजनेके समय साक्षात् श्रीकृष्णभगवान्ने आकर, मुझे दर्शन दिया है ॥ २२ ॥ जिस परमात्मामें भक्तिसे मन लगाकर, वाणीसे जिसके नामका उच्चारण करता जो योगी कलेवर देहका त्याग करे, वह कामकर्मोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥ प्रसन्नहास्य और अरुण नेत्रकरके शोभायमान है मुखकमल जिनका ऐसे ज्ञानगम्य, चतुर्भुज वे देवदेव भगवान् जबतक मैं इस शरीरका त्याग करूं तबतक मेरी

प्रतीक्षा करें. यानी तबतक यहीं विराजे रेहें ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि–युधिष्ठिरने यह बात सुनकर, शरपंजरमें यानी बाणोंकी शय्यामें सोतेहुए भीष्मजीको मुनिलोगोंके सुनते अनेक प्रकारके धर्म पूंछे ॥ २५ ॥ वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वैराग्य और रागरूप उपाधियोंसे कहेजाते निवृत्ति और प्रवृत्तिलक्षण मनुष्योंके साधारण धर्म ॥ २६ ॥ दानधर्म, राजधर्म जुदे जुदे मोक्षधर्म, स्त्रियोंके धर्म, भगवत्संबंधी धर्म, उपायोंसहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सब हे मुनि ! जिसप्रकारसे नानाविध आख्यान और इतिहासोंमें हैं, उस रीतिसे तत्ववेत्ता भीष्मजीने संक्षेप और विस्तारपूर्वक कहे ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिस कालको योगीजन चाहा कर-

सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपंजरे ॥ अपृच्छद्विविधान् धर्मानृषीणां चानुशृण्वताम् ॥ ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथा वर्णं यथाश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥ धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छंदमृत्योर्वांछितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसंगं मन आदिपूरुषे ॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥ विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ॥ निवृत्तसर्वेंद्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥

ते हैं, वह उत्तरायणकाल स्वच्छंदमृत्यु भीष्मजीके धर्म कहते कहते आ प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ तब युद्धमें हजारों रथियोंकी रक्षा करनेवाले भीष्मजीने वाणीको बंद कर, नेत्र, विना मूंदे, संगरहित अपने मनको, पीतांबरसे शोभायमान, चतुर्भुज, आदिपुरुष, सन्मुख विराजमान श्रीकृष्ण भगवान्में लगाया ॥ ३० ॥ विशेष शुद्धधारणासे पाप निवृत्त हो गये और भगवान्के दर्शन होतेही सब शस्त्रोंकी पीड़ा चलीगयी तथा सब इंद्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रम जाता रहा, उससमय शरीरका त्याग करते भीष्मजीने जनार्दन भगवान्की स्तुति की ॥ ३१ ॥ भीष्मजीने कहा कि–जो अपने परमानंदस्वरूपको सदा प्राप्त हैं, तथापि किसीसमय क्रीड़ा क-

रनेके लिये, जिस योगमायासे संसारका प्रवाह प्रवृत्त होवे है, उस मायाको अंगीकार करते हैं, उन यादवोंमें श्रेष्ठ भूमा (स्वप्रकाश) भगवान्में मैंने मेरी तृष्णारहित बुद्धि अर्पण करी है ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें अतिसुंदर, तमालपत्रसा श्यामवर्ण, सूर्यकी किरणसा उत्तम पीतांबर धारण किये, मुखकमलपर जिसमें अलकावली व्याप्त हो रही है ऐसा शरीर धारण किये, ऐसे अर्जुनके सारथिमें मेरी फलाभिसंधानरहित प्रीति होओ ॥ ३३ ॥ संग्राममें घोड़ोंकी रजसे धूसरे और इधर उधर चलायमान जो बाल तिनसे विखरतेहुए पसीनेके बिंदुओंसे जिनका मुखकमल शोभायमान हो रहा था और मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे जिनकी त्वचा (चमड़ी) विदीर्ण हो रही थी और बाणोंहीसे जिनका कवच विखर रहा था, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्में मेरा मन लगा रहे ॥ ३४ ॥

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवरांबरं दधाने ॥ वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥ युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥ सपदि सखि वचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥ स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हंतुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥

सखाका बचन सुन, तुर्त अपनी और परायी दोंनों सेनाओंके बीच रथको स्थापित कर, ठाढ़े और शत्रुकी सेनाके योधाओंकी आयुष्यको कालदृष्टिसे हरण करते अर्जुनके सखा श्रीकृष्णमें मेरी प्रीति होओ ॥ ३५ ॥ दूरस्थित सेनाके मुखपर स्थित अपने स्वजनोंको देखकर, दोषबुद्धिके हेतु स्वजनबधसे विमुख अर्जुनकी कुबुद्धि जिन्होंने आत्मविद्याके उपदेशसे दूर करी, उन परमेश्वरके चरणोंमें मेरी प्रीति होओ ॥ ३६ ॥ 'मैं शस्त्र धारण नहीं करूंगा' ऐसी अपनी प्रतिज्ञाको छोड़ कर, 'श्रीकृष्णको शस्त्र धारण करवाऊंगा' ऐसी मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके वास्ते, प्रभु रथमें बैठे थे सो वहांसे नीचे उतर, रथका पहिया हाथमें ले, पृथ्वीको चलायमान करते जैसे सिंह हाथीको मारने दौड़े, वैसे मुझपर दौड़कर आये और उसी संरंभ (क्रोध) से जिनका उत्त-

रीय ( डुपट्टा ) धरतीपर गिरगया था ॥ ३७ ॥ उस समय हाथमें धनुषबाण ले, मारनेको तैयार हुए ऐसे मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार कियेहुए और उसी हेतुसे जिनका कवच टूट गया है, ऐसे रुधिरसे व्याप्त जो हरि रोंकतेहुए अर्जुनको बलात्कारसे उल्लंघ-कर, मुझे मारनेको आये, वे मुकुंद भगवान् मेरी गति होओ ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथकी रक्षा करनहारे, चाबुक हाथमें लिये, घो-ड़ोंकी बागडोर धारण किये और सारथिपनकी शोभासे शोभायमान भगवान्‌के विषे मुमूर्षु ( मरनहार ) जो मैं हूं, तिसकी प्रीति होओ, जिनके दर्शन करके, इस युद्धमें जो मरे, वे सब उनके समान स्वरूपको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ सुंदरी गति, विलास, मनोहर हास्य और प्रेमसहित देखना, इनके द्वारा बहुत मान पायीहुई और उसीकेहेतु अतिमदसे अंध या

शितविशिखहतो शिवीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुंदः ॥ ३८ ॥ विजयरथकुटुंबआत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरी-क्षणकल्पितोरुमानाः ॥ कृतमनुकृतवत्य उन्मदांधाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥ मुनि-गणनृपवर्यसंकुलेऽतः सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशि गोचर एष आविरात्मा ॥ ४१ ॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदिधिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ॥ प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥

नी परवश पड़ीहुई और उसीसे गोवर्द्धन धारण करने आदि उनके किये कार्योंका अनुकरण करतीं गोपांगनायें प्रसिद्ध भावसे भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हुई, उन भगवान्‌के विषे मेरी प्रीति होओ ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें मुनिगण और उत्तमराजाओंसे व्याप्त सभाके बीच इन मुनिगणोंकेभी 'अहो कैसा रूप है, अहो कैसी महिमा है' इस तरह आश्चर्यसे देखने योग्य जो भगवान् अग्रपूजाको प्राप्त हुए, वे भगवान् प्रगटरीतिसे मेरी दृष्टिगोचर हुए, अहो कैसा मेरा भाग्य है ? ॥ ४१ ॥ जैसे सब जीवोंकी प्रत्येक दृष्टिमें सूर्य एक होनेपरभी अनेकरूपसे प्रतीत होता है वैसे जो आपके निर्माण किये प्राणियोंके हरएक हृदयमें एक अधिष्ठानरूपसे रहनेपरभी अनेकरूपसे प्रतीत होते हैं, उन इन अजन्मा परमेश्वरको, भेद व मो-

हसे निवृत्त होकर, मैं प्राप्त हुआ हूं ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा कि– इस तरह मन वाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंद्वारा परमात्मा श्रीकृष्णभगवान्‌के विषे मन लगाकर, श्वासको भीतर लीन करके, वे भीष्मजी उपरामको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित परब्रह्ममें लीन हुए भीष्मजीको जानकर, वे सब जैसे संध्यासमयमें पक्षी चुप हो जाते हैं वैसे चुप हो गये. ॥ ४४ ॥ वहां देवता और मनुष्योंके बजायेहुए बाजे बाजने लगे, गुणग्राही राजा प्रशंसा करने लगे आकाशमेंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ४५ ॥ हे शौनक ! उन मरेहुए भीष्मजीकी दाह आदि क्रिया करवाकर, राजा युधिष्ठिर दो घड़ी दुःखी हुआ ॥ ४६ ॥ मुनिलोग प्रसन्न हो,

सूत उवाच ॥ कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य सोंऽतःश्वास उपारमत् ॥४३॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्र दुंदुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सांत्वयामास गांधारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे युधिष्ठिरराज्यप्रलंभोनाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ ॥ शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृधआततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥

भगवान्‌के गुह्यनामोंसे श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति करने लगे. फिर वे श्रीकृष्णमें चित्त रख कर, अपने अपने आश्रम चले गये ॥४७॥ फिर राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुर जा, पिता धृतराष्ट्र और तपस्विनी गांधारीको सांत्वना दी ॥ ४८ ॥ पिताकी संमति ले, श्रीकृष्णभगवान्‌की सलाहसे प्रभु युधिष्ठिरने अपने बाप दादोंकी परंपरासे प्राप्त धर्मराज किया ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ दशवें अध्यायमें, कृतकार्य और स्त्रियोंसे स्तुति कियेजाते हरिभगवान्‌का हस्तिनापुरसे द्वारका आनेका वर्णन होगा ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि–अपने

धनके विषे स्पर्द्धा करनेवाले आततायी शत्रुओंको मारकर, बंधु लोगोंके बधके दुःखसे भोगविषे संकोचयुक्त, धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, युधिष्ठिरने अपने छुटभय्योंके साथ किस तरह राज किया ? और तदनंतर उसने क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि– वंशरूप वनमें उत्पन्नहुए क्रोधरूप अग्निसे भस्म हुए कुरुवंशको परीक्षितके रक्षणद्वारा पीछा अंकुरित कर, अपने यानी युधिष्ठिरके राज्यपर युधिष्ठिरको स्थापित कर, जगत्पालक परमेश्वर हरि भगवान् प्रसन्नचित्त हुए ॥ २ ॥ भीष्मजी और अच्युत भगवान्के कहे उपदेशके सुननेसे प्रवृत्त हुआ जो विज्ञान उससे निवृत्त हुआ है मोह जिसका ऐसा भगवान्का आश्रित और छोटे भाइयोंसे सेवित

सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्यईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूवह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिंद्र इवाजिताश्रयः परिध्युपांतामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥ कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलंत्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥ ५ ॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजातशत्रावभवन् जंतूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥ उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ आमंत्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर इंद्रके समान समुद्रपर्यंत पृथ्वीका पालन करने लगा ॥ ३ ॥ मेघ इच्छानुसार बरसने लगा. पृथ्वी सर्वकामना परिपूर्ण करने लगी. बड़े ऊध ( आयन ) वाली गायें दूधसे वारंवार व्रजोंको सींचने लगीं ॥ ४ ॥ उसको नदियां, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लता और औषधियां ये सब ऋतुऋतुमें यथेष्ट फल देने लगे ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरके राज करते जीवोंके कहीं आधि, ( मनकी पीड़ा ) व्याधि, ( शरीरकी पीड़ा ) दैविक, भौतिक और आध्यात्मिक क्लेश नहीं रहे ॥ ६ ॥ हरि भगवान् अपने सुहृदोंका शोक मिटाने और अपनी बहन सुभद्राको प्रसन्न करनेके लिये, कितनेएक महीने हस्तिनापुरमें विराजे. ॥ ७ ॥ फिर युधिष्ठिरसे मिल, सीख मांग, प्रणामकर, आज्ञा ले, आप रथमें विराजे. उस समय कितनेएक तौ मिले और कितनेएकोंने नमस्कार किया ॥ ८ ॥

सुभद्रा, द्रौपदी, कुंती, उत्तरा, गांधारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, ॥९॥ भीम, धौम्य, सत्यवती आदि स्त्रियां ये सब शार्ङ्गधन्वा भगवान्‌के विरहका सहन न करसके. किंतु मोहित हो गये ॥ १० ॥ सत्संगसे जिसका पुत्र आदि विषयरूप दुःसंग निवृत्त होगया है; वह विद्वान् पुरुष, जिन भगवान्‌के सत्पुरुषोंसे गाये जाते रुचिकर यशको एकवारभी श्रवण करलेता है, तो फिर उसे त्याग नहीं सकता. ॥ ११ ॥ उन भगवान्‌के विषे दर्शन, स्पर्श, बातचीत, शयन, आसन और भोजन आदिसे जिनकी बुद्धि दृढ होगयी है, वे पांडव उनके विरहको कैसे सहें? ॥ १२ ॥ भगवान्‌के पीछे चलेगये हैं चित्त जिनके ऐसे वे सब पलकरहित

सुभद्रा द्रौपदी कुंती विराटतनया तथा ॥ गांधारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥ ९ ॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यंतो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्संगान्मुक्तदुःसंगो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ॥ वीक्षंतः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥ न्यरुंधन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कंठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बांधवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदंगशंखभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ॥ धुंधुर्यानकघंटाद्या नेदुर्दुंदुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदंडं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

नेत्रोंसे उन्हींका दर्शन करते, स्नेहसे बँध कर, भेंटें आदि पदार्थ लानेके वास्ते इधर उधर फिरने लगे. ॥ १३ ॥ घरसे भगवान्‌के पधारते समय बांधवोंकी स्त्रियोंके उत्कंठाके मारे जो अश्रु कंठसे ऊपर आने लगे, उन्हें उन्होंने रोक रक्खे. क्योंकि भगवान्‌के अमंगल न होना चाहिये ॥ १४ ॥ उस समय एकसाथ मृदंग, शंख, भेरी, वीणा, ढोल, गोमुख, झर्झर, नक्कारा, घंटा और दुंदुभि आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ दर्शनकी इच्छासे महलोंके शिखरोंपर चढ़ीं ऐसी कौरवोंकी स्त्रियां प्रेम, लज्जा, मंदहासपूर्वक दर्शन करतीं भगवान्‌पर फूल बरसाने लगीं ॥ १६ ॥ मोतियोंकी झालरीसे शोभायमान, रत्नकी दंडीवाला, अतिप्यारे श्रीकृ-

णका सुफेद छत्र प्यारे अर्जुनने लिया ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकिने परम अद्भुत दो चमर लिये, फूलोंकी बर्षा होनेसे भगवान् मार्गमें शोभा देने लगे ॥ १८ ॥ ब्राह्मणोंके कहेहुए सत्य आशीर्वाद कि जो निर्गुण स्वरूपके तो अयोग्य और सगुण स्वरूपको योग्य थे, वे जहां तहां सुनाई देने लगे ॥ १९ ॥ उत्तमश्लोक भगवान्‌में हैं चित्त जिनका ऐसी हस्तिनापुरकी स्त्रियोंके, सब श्रुतियोंकेभी सराहनेयोग्य ऐसा परस्पर संवाद होने लगा. ॥२०॥ स्त्रियां बोलीं कि-गुणोंके क्षोभसे पहले, प्रलयसमयमें जीव जब

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयंताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेंद्र पुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥ स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेंद्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यंति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३ ॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ २४ ॥

ईश्वरमें लीन हो गये. और जीवकी उपाधिभूत सत्वादिक सब शक्तियांभी लीन हो गयीं उस समय निष्प्रपंच निजस्वरूपमें जो एक पुराणपुरुष अवशेष रहाथा, वह यही श्रीकृष्ण हैं ॥ २१ ॥ नामरूपरहित जीवमें नामरूप करनेकी इच्छावाले, जिन वेदके कर्ता भगवान्‌ने, अपने पराक्रमसे प्रेरीहुई, सृष्टि रचनेकी इच्छावाली, अपने अंशभूत जीवोंको मोहित करनेवाली, प्रकृतिको फिर अंगीकार किया. वे येही हैं ॥ २२ ॥ विद्वान्‌लोग इंद्रियोंको जीत, प्राणको वश कर, भक्ति करके उत्कंठित और निर्मल बुद्धिकरके जिनके चरणको देखते हैं; वे ये श्रीकृष्ण हमारी बुद्धिको शुद्ध करें. ॥ २३ ॥ हे सखि ! वेदोंमें और रहस्य भागोंमें गुह्यव-

काओंने जिनकी सत्य कथा गायी है. और जो एक ईश्वर अपनी लीलामात्रसे जगत्को रचते हैं, पालते हैं और संहार करते हैं. पर उसमें आसक्त नहीं होते. वेही ये श्रीकृष्ण हैं ॥ २४ ॥ जब तमोगुणी बुद्धिवाले राजालोग अधर्मसे जीते हैं. अर्थात् केवल अपने प्राणकी रक्षा करते हैं. तब सचमुच येही भगवान् शुद्ध सत्वगुणद्वारा रक्षाके अर्थ स्वरूप धारण कर, युग युगमें ऐश्वर्य, सत्य, यथार्थ उपदेश, भक्तवात्सल्य और यशको धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अहो ! यदुराजाका कुल बड़ा सराहनेयोग्य है. अहो ! मधुवन बड़ा पवित्र है. क्योंकि पुरुषोंमें श्रेष्ठ ये लक्ष्मीपति भगवान् यदुकुलको तो अपने जन्मसे और मधुवनको विचरनेसे, सत्कार-

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवंति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥ २५ ॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः स्वजंन्मना चंक्रमणेन चांचति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यंति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबंति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥ या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसांबांबसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥

युक्त करते हैं ॥ २६ ॥ अहो ! यह स्वर्गके यशकाभी तिरस्कार करनेवाली द्वारकापुरी पृथ्वीके पवित्र यशको फैलानेवाली है क्याकि जिस द्वारकाकी प्रजा अनुग्रहके पठाये मंदहास्यपूर्वक अवलोकन करते अपने स्वामी श्रीकृष्णका सदा दर्शन करती है. ॥ २७ ॥ हे सखि ! इनका पाणिग्रहण ( व्याह ) करनेवाली स्त्रियोंने अवश्य व्रत, स्नान और होम आदिसे परमेश्वरका पूजन किया होगा. क्योंकि जिस अधरामृतमें अंतःकरण रहनेसे व्रजांगना मोहको प्राप्त हुई. उस अधरामृतका ये स्त्रियां वारंवार पान करती हैं ॥ २८ ॥ प्रद्युम्न, सांब और सांब आदिकी माता रुक्मिणी, जांबवती और नाग्नजिती आदि स्त्रियां, कि जो स्वयंवरमें चैद्य ( शिशुपाल ) आदि बली राजाओंका मथन कर, प्रभावरूप शुल्क यानी मूल्यसे हरणकर लायीं गयीं. और दूसरी कि जो भौमा-

सुरको मारकर, हजारों स्त्रियां लायीं गयीं ॥ २९ ॥ वे सब स्त्रियां स्वतंत्रताशून्य और पवित्रताहीन स्त्रीपनकोभी शोभायमान करतीं हैं. क्योंकि कमलनयन अपने पति श्रीकृष्णचंद्र अनेक व्यापारोंकरके हृदयको आनंद देते उनके घरमेंसे किसीदिनभी बाहिर नहीं जाते ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि–इस तरह विचित्र प्रकारकी वाणियोंका उच्चारण करतीं पुरकी स्त्रियोंको, हास्यसहित उनके सन्मुख अवलोकन करके, आनंद देतेहुए हरि भगवान् वहांसे पधारे ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिरने शत्रुओंके भयसे डरकर, भगवान्‌की रक्षा-

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥ एवंविधा गदंतीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनंदन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शंकितः स्नेहात्प्रायुंक्त चतुरंगिणीम् ॥ ३२ ॥ अथ दूरागतान्शौरिः कौरवान् विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजांगलपांचालान्शूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनार्त्तान्भार्गवोपागाच्छ्रांतवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥ तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

के लिये स्नेहसे चतुरंगिणी सेना साथ दी ॥ ३२ ॥ फिर अतिस्नेहयुक्त विरहातुर कौरव दूर चले आये. उन्हें पीछे लौटाकर, हरि भगवान् अपने प्रिय उद्धव आदिके साथ अपनी द्वारकापुरी पधारे ॥ ३३ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुनाप्रांतके देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत ॥ ३४ ॥ मरु व धन्व देशको उल्लंघकर, हे शौनक ! सौवीर और आभीरदेशसे पर आनर्त देशमें प्रभु पहुँचे. उस समय घोड़े कुछ थकगये ॥ ३५ ॥ आप जिस जिस देशमें पधारे, वहां वहांके लोगोंने भेंटें ला ला कर, अर्पण कीं. उन्हें अंगीकार करते, संध्यासमयमें भगवान् पश्चिम दिशामें पहुँचे. तब सूर्यभी अस्त हुआ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते

१ हस्त्यश्वरथपादातं सेनांगं स्याच्चतुर्विधम् ॥ अर्थ– हाथी, घोड़े, रथ, और प्यादे ये चार तरहके सेनाके अंग हैं. ये जिसमें हों वह चतुरंगिणी कहलाती है. २ मरु (मारवाड़) जिसमें बिलकुल जल न हो उसे मरु कहते हैं. ३ जिसमें थोड़ा जल हो उसे धन्व कहते हैं. ४ द्वारकाको आनर्त कहते हैं.

महापुराणे प्रथमस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें, बंधुसहित हरि द्वारकामें पधारे, तब उस देशके लोकोंसे स्तुति किये जाते यादवपति श्रीकृष्णचंद्र अतिप्रसन्न हुए, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि-समृद्ध अपने आनर्तदेश पधारकर, मानों उन लोगोंका विषाद मिटाते हों, वैसे भगवान्ने उत्तम शंखका नाद किया ॥ १ ॥ सुफेद जिसका मध्यभाग है ऐसा वह शंख भगवान्के अधरकी अरुणिमा (ललामी) से अरुणसाप्रतीत होता, भगवान्के हस्तकमलके संपुटमें रहकर, बजाया जाता ऐसा शोभा देता था; कि मानों रक्त कमलोंके बनमें उच्च स्वरवा-

सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान्जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥ स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ॥ दाध्मायमानः करकंजसंपुटे यथाऽब्जखंडे कलहंस उत्स्वनः ॥ २ ॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥ ३ ॥ तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥ पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५ ॥ नताः स्म ते नाथ सदांघ्रिपंकजं विरिंचवैरिंच्यसुरेंद्रवंदितम् ॥ परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परप्रभुः ॥ ६ ॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताऽथ सुहृत्पतिः पिता ॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥

ला राजहंस बोल रहा है ॥ २ ॥ जगत्के भयको भय देनेवाले उस शब्दको सुन कर, अपने स्वामीके दर्शनकी लालसावाली सब प्रजा भगवान्के सन्मुख आयीं ॥ ३ ॥ वहां जैसे सूर्यको दीप अर्पण करते हैं, वैसे आदर पाकर, प्रजाने अपने स्वरूपलाभसे सदा पूर्णकाम और आत्माराम भगवान्को भेंटें अर्पण कीं ॥ ४ ॥ जैसे बालक अपने पिताको कहते हैं, वैसे प्रीतिसे प्रफुल्लमुख होकर, प्रजाने सबके सुहृद और पालक हरि भगवान्को आनंदके मारे गद्गद वाणीसे कहा कि- ॥ ५ ॥ हे नाथ ! ब्रह्मा, सनकादिक और इंद्र जिसको वंदन करते हैं और इस संसारमें कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंके जो परमशरणरूप हैं और जहां ब्रह्मादिकोंका प्रभु कालभी कुछ नहीं करसकता. उस आपके चरणकमलको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ हे विश्वभावन ! आप हमारे कल्याण-

कारक होओ, हमारे आपही माता, पिता, पति, सुहृद, सद्गुरु और परम दैवत हो. जिनकी सेवा करनेसे हम कृतार्थ हुए हैं ॥ ७ ॥ अहो ! आज हम आपसे सनाथ हुए; क्योंकि देवताओंकोभी जिसका दर्शन दुर्लभ है. ऐसे और प्रेमसे उत्पन्न हुआ जो मंदहास्य उस सहित स्नेहभरी दृष्टिवाला है मुखारविंद जिसमें ऐसे, सब अंगोंमें सुंदर, आपके स्वरूपका हम दर्शन करते हैं ॥ ८ ॥ हे कमलनयन ! जब आप सुहृदोंको देखनेकी इच्छासे कुरु या मधुदेश पधारे. तब हे अच्युत ! जैसे सूर्यविना नेत्रोंके एक एक क्षण करोड़ करोड़ बरसोंके बराबर बीते, वैसे हमारे आप विना एक एक क्षण करोड़ करोड़ बरसोंके बराबर हो गया था ॥ ९ ॥

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥ यर्ह्यंबुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणोऽभवद्रविं विनाऽक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरांधकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥ सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरंतः प्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥

इसतरह कहीहुई प्रजाकी वाणी श्रवण करते भक्तवत्सल भगवान् दृष्टिसे अनुग्रह करते पुरीमें दाखिल हुए ॥ १० ॥ कैसी है वह द्वारका कि जिसकी आपने समान बलवाले मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अंधक और वृष्णिजाति क्षत्रिय, जैसे नाग भोगवती पुरीकी रक्षा करें. वैसे, रक्षा कर रहे हैं ॥ ११ ॥ जिसमें सब ऋतुओंमें पुष्प फल आदि सर्वसंपदावाले पवित्र वृक्ष व लतामंडपवाले उद्यान, उपवन और आराम इनसे घिरे हुए तलावोंकी शोभा छा रही है ॥ १२ ॥ पुरके और घरोंके दरवाजोंपे व मार्गमें ठौर ठौर उत्सवके हेतु तोरण बाध

---

१ फल जिसमें अधिक हों वह, उद्यान. २ पुष्प जिसमें अधिक हों वह उपवन. ३ क्रीड़ाके लिये जो वन हो उसे आराम कहते हैं.

दियेगये हैं, चित्र विचित्र ध्वजा और पातकाओंके अग्रसे नगरीके भीतर कहीं धूपका लेश नहीं है ॥ १३ ॥ राजमार्ग, गलियां, बाजार और चौहटोंमें झार बुहार सुगंधि जलसे छिरकाव होगया है. फल, पुष्प, अक्षत और अंकुर बिथर रहे हैं ॥ १४ ॥ घरोंके द्वार द्वारपर, दही, अक्षत, फल, ऊख, जलपूर्ण कुंभ, भेंटें, धूप व दीपोंकी शोभा बन रही है ॥ १५ ॥ प्यारे श्रीकृष्णको आये सुन, उदारचित्त वसुदेवजी, अक्रूरजी, उग्रसेनजी और अद्भुतपराक्रमवाले बलदेवजी ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जांबवतीका पुत्र



संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तां गंधजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षतांकुरैः ॥ १४ ॥ द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलंकृतां पूर्णकुंभैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायांतं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सांबो जांबवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेंद्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमंगलैः ॥ शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेणचादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुंडलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥ नटनर्तकगंधर्वाः सूतमागधबंदिनः ॥ गायंति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्र बंधूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ॥ यथा विध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥

सांब, ये सब आनंदके बेगसे एकदम शयन, आसन और भोजन छोड़ छोड़ कर, ॥ १७ ॥ गजराजको आगे ले, मांगलिक पदार्थ हाथमें लिये, ब्राह्मणोंको संग ले, शंख और तूर्य ( नगारोंके ) शब्द व वेदध्वनिसे आदर देते प्रेमके हेतु संभ्रम युक्त हो, प्रीतिपूर्वक रथोंमें बैठ बैठकर, भगवान्के सोहीं गये ॥ १८ ॥ भगवान्के दर्शनमें उत्कंठावाली सैकड़ों वेश्या, कि जिनके देदीप्यमान कुंडलकी कांतिसे कपोल और मुखकी शोभा झलक रही है. वे बाहनों पर बैठ बैठकर, दर्शनको चलीं ॥ १९ ॥ नट, नर्त्तक, गंधर्व, सूत[1], मागध[2], बंदी[3] ये सब भगवान्के अद्भुत चरित्रोंका गान करने लगे ॥ २० ॥ उस समय भगवान्नेभी सन्मुख आयेहुए सब



१ सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता॥ अर्थ-पौराणिक लोग सूत कहलाते हैं ॥ २ मागधा वंशशंसकाः ॥ अर्थ-वंश वर्णन करनेवाले मागध कहलाते हैं ॥ ३ बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥ अर्थ-निर्मलबुद्धिवाले, समय समान बोलनेवाले बन्दी कहलाते हैं ॥

बंधुवर्ग और गांवके लोकोंका किसीको शिरसे प्रणाम कर, किसीको वाणीसे नमस्कार कर, किसीसे आलिंगन कर, किसीसे हाथ मिलाकर, किसीसे हँस कर, किसीकी ओर देखकर, यथायोग्य सबसे मिल, मान दिया और चांडाल आदिकोंकोभी यथेष्ट दान और अभय दे, मान दिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ आपभी गुरुजनोंकी दीहुई, स्त्रियोंसहित ब्राह्मणोंकी दीहुई व वृद्धपुरुषोंकी दीहुई और दूसरे बंदीजनोंकी दी हुई आशिष लेते लेते, द्वारका पुरीमें प्रवेश हुए ॥ २३ ॥ भगवान् द्वारकाके राजमार्गमें पधारे, उस समय हे शौनक ! भगवान्‌के दर्शनसे बड़े उत्सववाली कुलांगना अटारियोंपर चढ़ीं ॥ २४ ॥ यदपि द्वारकावासी नित्य दर्शन करते

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोन्यैर्वंदिभिश्चाविशत्पुरम् ॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्रास्तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥ नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यंति हि दृशः श्रियो धामांगमच्युतम् ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोकपालानां सारंगाणां पदांबुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशंगवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥ प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववंदे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥

थे, तथापि उनके नेत्र, शोभाके धाम हैं अंग जिनके, ऐसे अच्युत भगवान्‌के दर्शन करते तृप्त नहीं होते थे ॥ २५ ॥ जिनका वक्षःस्थल ( छाती ) तो लक्ष्मीका निवास है, मुख दृष्टियोंका पानपात्र है, भुजा लोकपालोंका निवास हैं और चरणकमल भक्तोंका निवास हैं उन भगवान्‌के दर्शनसे दृष्टियां तृप्त नहीं होतीं ॥ २६ ॥ मेघ जैसे सूर्य, चंद्र इंद्रधनुष और बिजलीके तेजसे शोभायमान होता है, वैसे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद शिरपर धारणकिये श्वेतछत्र, चमर व मार्गमें बरसती फूलोंकी वृष्टि, पीले पीतांबर और वनमालासे, शोभा दे रहे थे ॥ २७ ॥ माता पिताके घरमें जा, अपनी माताओंसें मिल, देवकी आदि सातों माताओंको

१ यहां देवकी आदि सातही मातायें कहीं और रहीं अठारह १८ सो मातावोंका विशेष आदर जतानेके लिये कहे. परंतु वस्तुतः वन्दना तो अठारह १८ की करी.

प्रीतिपूर्वक शिरसे प्रणाम किया ॥ २८ ॥ स्नेहसे स्तन जिनके झर रहे हैं ऐसी, हर्षसे विव्हलचित्त वे मातायें पुत्रको गोदीमें बैठाकर, नेत्रोंसे निकलते जलोंसे सीचने लगीं ॥ २९ ॥ फिर सर्वकामनासे परिपूर्ण अपने सर्वोत्तम धरमें प्रवेश हुए जहां रानियोंके १६१०८ सोलह हजार एकसो आठ महल हैं ॥ ३० ॥ देशाटन करके, घर आये पतिको दूरसे देखकर, जिनमें अतिउत्सव प्रगट हुआ है ऐसी, वे स्त्रियां लाजभरे नेत्रोंसे मुख नीचा किये, व्रतोंके साथ शरीर और अंतःकरणसे तुर्त एकसाथ उठ खड़ी हुई॥३१॥

ताः पुत्रमंकमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुरारात्सहसासनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरंतरात्मना दुरंतभावाः परिरेभिरे पतिम्॥ निरुद्धमप्यास्रवदंबुनेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात्॥३२॥ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगं नवं नवम्॥ पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित्॥३३॥एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४॥

हे शौनक ! गंभीर अभिप्रायवाली वे स्त्रियां आतेहुए अपने पतिसे प्रथम बुद्धिद्वारा, फिर दृष्टिद्वारा, तदनंतर सन्मुख भेजेहुए बालकोंकेद्वारा मिलीं. यदपि उन्होंने लाजके मारे नेत्रोंका जल यानी आंसू रोंक रक्खे थे, तथापि कायरतासे बाहिर निकस आये ॥ ३२ ॥ यदपि ये भगवान् उनके सदा पासही रहते थे और एकांतमेंभी रहते थे, तथापि उनका चरणयुगल तो प्रतिक्षण नित नयाही मालूम होता था, क्योंकि चंचलभी लक्ष्मी जिस चरणको कभी नहीं त्यागती, तब दूसरी तो कौन ऐसी होवेगी कि जो उस चरणकमलसे विराम पावे ? ॥ ३३ ॥ इसतरह वायु जैसे बाँसको परस्पर घसकर, अग्नि उत्पन्न करके, एक दूसरेको भस्म कर-



१ क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ अर्थ-क्रीड़ा, उबटनआदि लगाना, नाच रंग देखना, हंसना, पराये घर जाना ऐसी इन बातोंका प्रोषित ( परदेशी ) पतिवाली स्त्रीने त्याग करना यह याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखाहै.

के, शांत हो जाती है, वैसे श्रीकृष्ण भगवान् पृथ्वीके भारके लिये प्रगट हुए थे, सो चारों ओर बड़ी सेनाओंसे जिनका प्रभाव फैल रहा है ऐसे राजाओंके अंदर वैर उत्पन्न करके, आप शस्त्र धारण किये बिना एक दूसरेका नाश करके, उससे विरामको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ये भगवान् अपनी मायासे इस मनुष्यलोकमें अवतार धारण कर, जैसे कोई साधारण मनुष्य क्रीड़ा करता हो, वैसे स्त्रियोंके समूहके बीच क्रीड़ा करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गंभीर अभिप्रायको सूचित करनेवाले निर्मल व सुंदर हास्य और लज्जासहित अवलोकनसे हतश्री महादेवनेभी मोहित होनेके कारण शर्मिंदा होकर, पिनाक धनुषको त्याग दिया. वे उत्तम

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥ ३५॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडाऽवलोकनिहतो मदनोपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येंद्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ ३७॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोपि तद्गुणैः ॥ न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८ ॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते म० प्र० स्कं० श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

स्त्रियां हावभावसे जिन भगवान्‌के मनको लोभयुक्त न कर सकीं ॥ ३६ ॥ वे भगवान् असंग हैं, तथापि ये लोग तौ उन्हें व्यापार करते देखकर, आपने समान भावसे संगवाला यानी मनुष्य मानते हैं; क्योंकि ये उनके तत्वको नहीं जानते ॥ ३७ ॥ यही तौ ईश्वरकी ईश्वरता है, कि जैसे आत्माके आश्रय रही बुद्धि आत्मामें रहे आनंदादिक धर्मोंसे युक्त नहीं होती, वैसे परमेश्वर प्रकृतिमें स्थित होनेपरभी उसके सुख दुःखादिक गुणोंसे कभी युक्त नहीं होते ॥ ३८ ॥ जैसे अहंवृत्तियां क्षेत्रज्ञको अपने आधीन मानती हैं, वैसे स्वामीकी महिमाको नहीं जाननेवाली मूढ़ स्त्रियां उन ईश्वरको अपने आधीन और एकांतमें अनुसरण करनेवाले मानने लगीं ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१ भगवानका मोहिनीरूप देख, निष्काम शंकरजीभी मोहित भये. अथवा स्त्रियोंके नेत्ररूप बाणोंसे बिंधाहुवा जगद्विजयी कामदेवभी मोहित हो, लाजसे अपने धनुषको त्यागदिया.

बारहवें अध्यायमें, प्रथम जो परीक्षितकी कथाका प्रसंग लानेके वास्ते अश्वत्थामाको दंड मिला. इत्यादि कथा विस्तारसे कही उसी परीक्षितके जन्मका वर्णन होगा ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि–अश्वत्थामाके चलाये तीक्ष्णतेजवाले ब्रह्मास्त्रसे उत्तराके गर्भका नाश हुआ. और उसे श्रीकृष्ण भगवान्‌ने पीछा संजीवित किया ॥ १ ॥ उस महाबुद्धिमान् ( परीक्षित ) के जन्म और कर्म हमें कहो. तथा जिसे शुकदेवजीने ज्ञान दिया, उसका मृत्यु किस तरह हुआ ? और वह देहका त्याग कर, किस तरह परलोकको प्राप्त हुआ ? यह सब मैं सुनना चाहता हूं. सो यदि आप कहनेके योग्य मानते हो, तो श्रद्धायुक्त जो हम हैं, उनसे

शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥ उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥ तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्सप्रेत्य गतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रंजयन्प्रजाः ॥ निस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ॥ ४ ॥ संपदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ॥ जंबूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥ ५ ॥ किंते कामाः सुरस्पार्हा मुकुंदमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो- वीरः स तदा भृगुनंदन ॥ ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरट- मौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥

कहो ॥ २ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि– श्रीकृष्णभगवान्‌के चरणकमलोंके सेवाके प्रभावसे सर्वकामनाओंसे निस्पृह राजा युधिष्ठिरने पिताकी तरह प्रजाको राजी रखकर, पालन किया ॥ ४ ॥ संपदा, यज्ञ, ब्राह्मण, रानी, भाई, पृथ्वी, जंबुद्वीपका आधिपत्य और स्वर्गतक पहुंचाहुआ यश ॥ ५ ॥ ये सब पदार्थ, कि देवताभी जिनकी इच्छा करें, ऐसे उस राजाके थे, तथापि उसका मन मुकुंदभगवान्‌में लगा रहनेसे उसके किसी गिनतीमें नहीं थे, हे विप्रो ! जैसे भूखे मनुष्यके पुष्पमाला आदि पदार्थ प्रीति उत्पन्न नहीं करते, वैसे वे वैभव ( ऐश्वर्य ), राजा युधिष्ठिरके प्रीतिके उत्पादक नहीं हो सके ॥ ६ ॥ हे शौनक ! माताके गर्भमें बैठे और ब्रह्मास्त्रके तेजसे जलतेहुए उस वीरने किसी पुरुषको देखा था ॥ ७ ॥ कैसा है वह पुरुष, कि अँगूठे जितना जिसका प्रमाण है,

निर्मल, देदीप्यमान सुवर्णका मुकुट धारण किये, अतिसुंदर स्वरूपवान्, श्यामबरन, बिजलीसे पीले पीतांबर पहने, विकाररहित ॥ ८ ॥ शोभायमान चार भुजा धारण किये, तपेहुए कंचनके कुंडल झलकाये, अरुण नेत्र, गदा हाथमें लिये, आपने चारोंओर भ्रमण करते, उल्कासी प्रकाशमान गदाको वारंवार घुमाते ॥ ९ ॥ जैसे सूर्य नीहारका नाश करें, वैसे अपनी गदासे अस्त्रके तेजका संहार करते, ऐसे पुरुषको समीपमें देखकर, विचार करने लगा कि यह कौन है ? ॥ १० ॥ प्रमाणसे अगोचर जिनका स्वरूप है, ऐसे धर्मके पालक, विभु, हरिभगवान् उस अस्त्रका संहार कर, दश महीनेके गर्भके देखते वहीं अंतर्धान हो गये ॥ ११ ॥

श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकांचनकुंडलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतो दिशम् ॥ परिभ्रमंतमुल्काभां भ्रामयंतं गदां मुहुः ॥ ९ ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमंतं सन्निकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥ विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुप् विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ ११ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पांडोर्भूयः पांडुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मंगलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥

फिर अनुकूल दूसरे ग्रहोंके साथ शुभ ग्रहोंके उदयके समय सब गुणोंके उत्तरोत्तर अधिक फल सूचन करनेवाले लग्नमें मानों पराक्रमसे पीछा पांडुही तो नहीं प्रगट हुआ है, ऐसा पांडुके वंशको धारण करनेवाला परीक्षित राजा प्रगट हुआ ॥ १२ ॥ राजा युधिष्ठिरने प्रसन्नचित्त हो, धौम्य और कृप आदि ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करवाकर, उसका जातकर्म संस्कार करवाया ॥ १३ ॥ दानके समयको जाननेवाले राजा युधिष्ठिरने पुत्र जन्मके पुण्यकालमें सुवर्ण, पृथ्वी, गौ, गांव, श्रेष्ठ हाथी, घोड़े और उत्तम अन्न

१ यावन्नच्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥ अर्थ–जबतक बालकका नाला नहीं छीनते तबतक सूतक नहीं है. और नाला छीने ( काटे ) पीछे सूतक लगता है. इसीलिये युधिष्ठिरने पहलेही दानदिये.

दिया ॥ १४ ॥ विनययुक्त राजाको प्रसन्न होकर, ब्राह्मणोंने कहा, कि हे पुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ! यह शुद्ध पुरुवंशकी प्रजाका तंतु टालनेपरभी न टले ऐसे दैवसे नाशको प्राप्त हो गया था, तहां तुमपर अनुग्रह करनेके लिये प्रभविष्णु विष्णुभगवान्‌ने यह पुत्र आपको दिया है ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसलिये लोकमें इसका नाम विष्णुरात ऐसा प्रसिद्ध होगा. और यह बड़ा यशस्वी, भगवान्‌का परमभक्त और गुणोंसे विख्यात होगा. इसमें कुछभी संदेह मत जानो ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि- हे ब्राह्मणो ! साधु शब्दसे और सुंदर यशसे हमारे वंशके पुण्यश्लोक महात्मा राजर्षि जिस तरह बरते हैं, वैसे बरतनेवाला यह पुत्र होगा ? ॥ १८ ॥ ब्रा-

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातंतौ कुरूणां पौरवर्षभ ॥ १५ ॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान् राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्त्तितास्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थ प्रजाऽविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥ १९ ॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ॥ यशो वितनिता स्वानां दौष्यंतिरिव यज्वनाम् ॥ २० ॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ २१ ॥ मृगेंद्र इव विक्रांतो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २२ ॥

ह्मणोंने कहा कि-हे युधिष्ठिर ! प्रजाकी पालना करनेमें तो साक्षात् मनुके पुत्र इक्ष्वाकुके समान होगा, ब्राह्मणोंका भक्त और सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथके पुत्र रामचंद्रके समान होगा, ॥ १९ ॥ दानी और शरण देनेमें यह उशीनरराजाके पुत्र शिबिराजाके समान होगा, अपने जातिवालोंका और यज्ञकर्ताओंका यश फैलानेमें दुष्यंतके पुत्र भरतके समान होगा ॥ २० ॥ धनुषधारियोंमें यह ऐसा अग्रणी होगा कि सहस्रार्जुन और अर्जुन इन दोनोंके बराबर होगा, अग्निके समान इसका ताप ( तेज ) किसीसे सहा न जायगा, समुद्रके समान गंभीर होगा ॥ २१ ॥ सिंहके समान पराक्रमी होगा, हिमालयके समान सबके सेवन करने योग्य

होगा, पृथ्वीके समान क्षमावान् होगा, मातापिताके समान सहनशील होगा, ॥ २२ ॥ समभावमें ब्रह्माजीके समान होगा, प्रसन्न होनेमें महादेवके तुल्य होगा, लक्ष्मीके निवास विष्णु भगवान्के समान सब जीवोंका आश्रयभूत होगा, ॥ २३ ॥ सर्वसद्गुणोंमें और महिमामें श्रीकृष्णचंद्रके समान होगा, रंतिदेवके समान उदार होगा, ययाति राजाके समान धर्मात्मा होगा, ॥ २४ ॥ धीरजमें बलिके समान होगा, कृष्णविषे सदाग्रहमें प्रल्हादके तुल्य होगा, यह अश्वमेधयज्ञ करेगा, वृद्धपुरुषोंकी सेवा करेगा ॥ २५ ॥ राजर्षियोंको उत्पन्न करेगा, उलटे रस्ते चलनेवोंलाको शिक्षा करेगा, पृथ्वी और धर्मके कारण कलियुगको यह दंड देवेगा ॥ २६ ॥

पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥ २३ ॥ सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रंतिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥ २४ ॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्राद इव सद्ग्रहः ॥ आहर्त्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥ राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥ २७ ॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गंगायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २८ ॥ इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ॥ लब्धाऽपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥ २९ ॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥ ३० ॥

ब्राह्मणके पुत्रसे भेजेहुए तक्षक सर्पसे अपनी मृत्युको सुन, संग छोड़, हरि भगवान्के पदको प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ हे राजा ! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीसे आत्मरूपको यथार्थभावसे जानकर, यह गंगाके तीर इस शरीरको त्याग कर, साक्षात् निर्भय मोक्षपदको प्राप्त होवेगा ॥ २८ ॥ जातकके जाननेवाले सब ब्राह्मण राजाको इसतरह उपदेश कर, पूजाको प्राप्त हों, अपने अपने घरोंको रवाना हुए ॥ २९ ॥ आपने जिस पुरुषको गर्भस्थानमें देखा था, उसका ध्यान करते करते यानी ' यहां दृष्टिमें आते मनुष्योंमें मैंने देखा था वह पुरुष है किंवा नहीं ' इस तरह परीक्षा करता था, तासों समर्थ राजपुत्र परीक्षित इस नामसे जगतमें विख्यात

हुआ ॥ ३० ॥ प्रतिदिन पंद्रह कलाओंसे पूर्यमाण शुक्लपक्षका चंद्रमा जैसे बढ़ा करता है, वैसे युधिष्ठिर आदि दादाओंसे चौसठ कलाकरके पूर्यमाण वह परीक्षित तुर्त बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥ ज्ञातिद्रोह मिटानेके वास्ते युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञ करनेकी इच्छा हुई, परंतु कर और दंडके सिवाय कहीं धनको न देखकर, शोचने लगा, ॥ ३२ ॥ राजाके इस अभिप्रायको जानकर, भगवान्ने युधिष्ठिरके भाइयोंको उत्तर दिशामें भेजे, वे वहांसे मरुत्तराजाके यज्ञमें सुवर्णके पात्र आदि जो बहुतसा द्रव्य पड़ा था, वह ले आये ॥ ३३ ॥ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने उस द्रव्यसे यज्ञकी तैयारी कर, ज्ञातिद्रोहसे डरकर, तीन अश्वमेध, य-

स राजपुत्रो ववृध आशु शुक्ल इवोडुपः ॥ आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ॥ राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदंडयोः ॥ ३२ ॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ॥ धनं प्रहीणमाजन्हुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥ ३३ ॥ तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥ ३४ ॥ आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ॥ उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया ॥ ३५ ॥ ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बंधुभिः ॥ ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥

ज्ञोसें भगवान्का यजन किया ॥ ३४ ॥ राजाके बुलाये हुए भगवान् आय, ब्राह्मणोंसे यजन करवाय, सुहृदोंको प्रिय करनेके लिये कुछ महीने उहां रहे ॥ ३५ ॥ तदनंतर राजा युधिष्ठिर तथा द्रौपदीसहित सब बंधुजनोंसे अनुज्ञा ले, यादवोंके सहवर्तमान भगवान् अर्जुनको साथमें ले, द्वारकाको आये ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें, परीक्षितके राज्याभिषेकसे युधिष्ठिरका महोदय कहनेके लिये विदुरके वाक्यसे धृतराष्ट्रजी घरसे निकल गये, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि--विदुरजी तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे आत्माके गतिरूप

श्रीकृष्णको जान, उससे जाननेको इष्ट सब जानकर, हस्तिनापुर पधारे ॥ १ ॥ विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न किये, उन्होंसे गोविंद भगवान्में एक भक्तिको प्राप्त हो, यानी कृतार्थ होकर, प्रश्नोंसे उपशम पाये ॥ २ ॥ उनबंधुको आये देखकर, छुटभय्योंसहित राजा युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सूत ( संजय ), कृपाचार्य, कुंती ॥ ३ ॥ गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, हे ब्रह्मन् ! औरभी पांडुकी जातिकी स्त्रियां, जातिवाली और दूसरीभी कितनीएक पुत्रसहित स्त्रियां ॥ ४ ॥ ये सब जैसे प्राणके आनेपर सब इंद्रियां उसके सन्मुख जांय, वैसेही प्रीतिपूर्वक उनके सन्मुख गये ॥ ५ ॥ आलिंगन और प्रणामद्वारा विधिपूर्वक सबसे

यावतः कृतवान्प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥ जातैकभक्तिर्गोविंदे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तं बंधुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥ गांधारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयाः पांडोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ ५ ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वंगाभिवादनैः ॥ मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कंठ्यकातराः ॥ ६ ॥ राजा तमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥ तं भुक्तवंतमासीनं विश्रांतं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमंडलम् ॥ तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९ ॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतस्थेन गदाभृता ॥ १० ॥

मिल, विरहजन्य उत्कंठासे कायर हो, प्रेमसे अश्रुकी धारा बहाने लगे ॥ ६ ॥ राजा युधिष्ठिरने आसन दे, उनकी पूजा की. विदुरजी भोजन कर, आसनपर बैठ, सुखपूर्वक आराम करते थे. वहां उन सबोंके सुनते विनयसे नम्र होकर, युधिष्ठिरजीने कहा ॥ ७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि–आपके पक्षकी छायासे बढ़ेहुए हमाराभी कभी आप स्मरण करते हो ? क्योंकि विष, अग्नि आदि अनेक आपत्तिगणसे मातासहित हमको आपनेही छुड़ाया है ॥ ८ ॥ भूमंडलमें विचरते समय आपने किस वृत्तिसे निर्वाह किया ? और भूतलमें कौन कौन तीर्थ व प्रधान क्षेत्रोंका सेवन किया ? ॥ ९ ॥ हे विभो ! आपसे भगवद्भक्त तौ स्वयं तीर्थरूपही हैं,

आपका तीर्थ पधारना तौ उलटा तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये है; क्योंकि अपने हृदयमें रहे भगवान्के संबंधसे आपलोग तीर्थोंको पावन करते हैं ॥ १० ॥ हे तात ! श्रीकृष्णही जिनके देवता हैं, ऐसे हमारे सुहृद और बांधव, यादव अपनी पुरीमें सुखपूर्वक तौ विराजे हैं ? आपने उनके समाचार सुने ? या उनको आपने देखा ? ॥ ११ ॥ धर्मराजने इसतरह विदुरजीसे पूंछा तब विदुरजीने जैसे अनुभव किया था, वैसे अनुक्रमसे सब वृत्तांतका वर्णन किया. परंतु यदुकुलके संहारके समाचार नहीं कहे ॥ १२ ॥

अपि नः सुहृदस्तात बांधवाः कृष्णदेवताः ॥ दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ ११ ॥ इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् ॥ यथाऽनुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२ ॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ॥ नावेदयेत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४ ॥ अबिभ्रदर्यमा दंडं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥

क्योंकि दैवयोगसे प्राप्तभी अप्रिय, मनुष्यसे दुःखसेभी सहा नहीं जा सकता और आप स्वयं दयालु ठहरे, तासोंभी पांडवोंको दुखी नहीं देख सकते. इस लिये विदुरजीने यदुकुलके क्षयके समाचार नहीं कहे ॥ १३ ॥ देवतानके समान सत्कार किये जाते विदुरजी बड़े भाईका कल्याण करनेके निमित्त सबको प्रसन्न करते कुछकालतक सुखपूर्वक वहीं विराजे ॥ १४ ॥ ( विदुरजी शूद्र थे सो वे धृतराष्ट्रको उपदेश किस तरह कर सकते हैं ? कदाचित् ऐसी शंका हो तौ कहते हैं कि, ये स्वयं यमराज थे, परंतु मांडव्य ऋषिके श्रापसे शूद्र हुए. ) यमराजने मांडव्यके श्रापसे सौ वर्षतक शूद्रपन धारण किया, इतने काल पापी लोगोंको अर्यमा पितृ

१ कोई समय कोई एक राजाके सिपाहोंने तप करते हुये मांडव्य ऋषिकोभी चोरोंके साथ पकड़के राजाके, पास लेगये. तब राजाकी आज्ञासे उन सिपाहोंने उन चोरोंको और ऋषिकोभी शूलीपर चढ़ा दिया.पीछे सब चोर मरगये. और ऋषिके कुछभी दुख न देख कर, ऋषि जान, शूलीसे उतार, राजाने ऋषिको प्रसन्न किया. तदनंतर ऋषिने कहा. यह अपराध तुम्हारा नहीं है. यह तौ यमराजका अपराध है. उनसे हम समझें गे. इतना कह, यमराजके पास जा, बोले कि,–मैं किसलिये शूलीपै चढ़ाया गया ? तब यमराजने कहा. कि आपने बालपनमें एक कुशाकी फोंकसे एक शलभ यानी कोई एक छोटी जातके कीड़ेको छेदके, खेल किये हो. इस पापसे आपको शूली भई. यह सुन, मांडव्य ऋषिने कहा कि बालपनमें अजान मेरेको इतना भारी दंड दिया. इसलिये जा तू सौ १०० बरसतक शूद्र हो.

यथायोग्य दंड देते रहे ॥ १५ ॥ राजा युधिष्ठिर राज पाय, कुलको धारण करनेवाले पौत्रको देख, उत्कृष्ट राज्यलक्ष्मीसे लोकपालोंके समान कांतिवाले भाइयोंसहित परम आनंदित हुआ ॥ १६ ॥ इस तरह घरोंमें आसक्त और घरके व्यापारसे प्रमत्त, उन पांडवोंका परम दुस्तर काल बिना जाने व्यतीत हो गया ॥ १७ ॥ विदुरजीने यह बात जानकर, धृतराष्ट्रको कहा कि—हे राजन्! जल्दी निकलो- यह भय जो प्राप्त हुआ है इसे देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभु ! यहां जिसका उपाय कहीं किसीसे हो नहीं सकता, वही भगवान् काल आपन सबोंका आ प्राप्त हुआ है ॥ १९ ॥ जिस कालसे ग्रसाहुआ यह पुरुष अत्यंत प्यारे अपने प्राणोंसेभी तुर्त

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १७ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥ १९ ॥ येन चैवाभिपन्नोयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २१ ॥ अहो महीयसी जंतोर्जीविताशा यया भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिंडमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥ २३ ॥ तस्यापि तव देहोयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

हीन हो जाता है, तब दूसरे धन आदिकी तौ बात ही कौन ? ॥ २० ॥ तुम्हारे पिता, भाई, सुहृद, पुत्र ये सब मर गये, अवस्था चली गयी, शरीर जीर्ण हो गया, अबभी पराये घरकी आशा रखते हो ? ॥ २१ ॥ अहो ! प्राणीके जीनेकी आशा बहुत बड़ी है. जिस आशासे तुम जिसने तुम्हारे पुत्र मारे तिसी भीमसेनका दियाहुआ टुकड़ा कुत्तेकी तरह खाते हो ॥ २२ ॥ जिनको अग्निमें जलाया और जहर दिया, जिनकी स्त्रियोंको कलंक लगाया और जिनका रहनेका स्थान और धन हर लिया, उन पांडवोंके दियेहुए प्राणोंसे कितना काम चलेगा ? ॥ २३ ॥ चाहो आप इस तरह दीनताका भले अनुभव करो, तथापि जीनेकी आशावा-

ले और कृपण आपका यह जरा ( बुढ़ापा ) से जीर्ण शरीर वस्त्रकी नाई आपकी इच्छा विनाही क्षीण होता जाता है, इस लिये अब आप धीरज धारण करो ॥ २४ ॥ जो मनुष्य वैराग्य धारण कर, मुक्तबंधन हो, जहां किसीको खबर न पड़े ऐसी जगह जाकर, स्वार्थरहित इस देहका त्याग करे, उसे धीर कहना चाहिये ॥ २५ ॥ जो अपने विचारसे अथवा दूसरेके उपदेशसे वैराग्यको प्राप्त हो, हरि भगवान्‌को हृदयमें करके, घरसे निकल जाय, उस आत्मवान् पुरुषको मनुष्योंमें उत्तम समझना चाहिये ॥ २६ ॥ अब आप अपने बांधवोंको तो खबर मत पड़ने दो. और गपचुप उत्तर दिशामें चले जाओ, क्योंकि अब जो काल कलियुग

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबंधनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥ पतिं प्रयांतं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदंडप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥ २९ ॥ अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वातिलगोभूमिरुक्मैः ॥ गृहं प्रविष्टो गुरुवंदनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥ ३० ॥

आवेगा, वह मनुष्योंके धैर्यादिक गुणोंका नाश करनेवाला आवेगा ॥ २७ ॥ इस तरह छोटे भाई विदुरजीने प्रज्ञाचक्षु ( अंध ) राजा धृतराष्ट्रको उपदेश दिया, तब अपने बांधवोंमें स्नेहरूप जो दृढ़ पाश पड़ रहे थे, उन्हें काटकर, भाईके दिखाये हुए बंधमोक्षके मार्गको जानकर, बाहिर निकल पड़ा ॥ २८ ॥ पति धृतराष्ट्र जाने लगा, तब सुबलकी कन्या पतिव्रता साध्वी गांधारी, जैसे युद्धमें शूरवीरोंको तीव्र प्रहार दुःखद होनेपरभी आनंददायक होता है, वैसे बहुत दुःखद होने परभी त्यागीलोगोंको आनंद देनेवाले हिमालयको उसके पीछे पीछे चलपड़ी ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर संध्या वंदन कर, होमके अनंतर तिल, गौ, भूमि और सुवर्णसे ब्राह्मणोंकी पूजा कर, गुरुको वंदन करनेके लिये घरमें गया, तो वहां न तो विदुर व धृतराष्ट्रको देखा और न गांधारी

नजर आयी ॥ ३० ॥ तब उद्विग्नचित्त होकर, वहां बैठेहुए संजयसे पूछा, कि ' हेसंजय ! वृद्ध और नेत्रहीन हमारे पिता कहां हैं ॥ ३१ ॥ पुत्रोंके बधसे दुःखी माता गांधारी कहां हैं ? और हमारे सुहृद काका विदुरजी कहां गये हैं ? मर गये हैं बंधु जिनके ऐसे पिता धृतराष्ट्र मंदमति मेरे विषे अपराधकी शंका लाकर, कहीं गांधारी सहित दुःखी होकर, गंगामें तौ नहीं गिर पड़े ? ॥ ३२ ॥ पिता पांडुके मर जानेसे हम सब बालक बांधवोंका जिन्होंनें व्यसन ( दुःख ) से बचाकर, पालन किया, वे दोनों चचा और पिता यहांसे कहां गये ? ॥ ३३ ॥ सूतजीने कहा कि—कृपा और स्नेहजन्य विकलपनसे अति पीड़ित और विरहसे दुर्बल संजय

तत्र संजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥ अंबा च हतपुत्रार्ता पितृव्यः क गतः सुहृत् ॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबंधुः सभार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गंगायां दुःखितोऽपतत् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते पांडौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क गतावितः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥ ३४ ॥ विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३५ ॥ संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनंदन ॥ गांधार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥ ३६ ॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुंबुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क गतावितः ॥ अंबा वा हतपुत्रार्ता क गता च तपस्विनी ॥ कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥ ३८ ॥

अपने स्वामीको न देखकर, पीछा कुछ न बोला ॥ ३४ ॥ फिर दोनों हाथोंसे आंसू पूंछ, बुद्धिसे मनमें धीरज धर, अपने प्रभुके चरणोंका स्मरण करता संजय युधिष्ठिरसे पीछा कहने लगा ॥ ३५ ॥ ' हे कुलनंदन ! आपके माता पिता और चचाके विचारकी मुझे खबर नहीं. हे महाबाहु ! मैं तो उन महात्माओंसे ठगा गया ' ॥ ३६ ॥ इतनेमें तुंबरु गंधर्वको संग लिये भगवान् नारदजी पधारे. राजा युधिष्ठिर खड़ा हो, उन्हें आदर दे, प्रणाम कर, मानों पूजन करता हो वैसे अपने छोटे भाइयोंके साथ बोला ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! मैं मेरे पिता धृतराष्ट्र और विदुरजीकी गति नहीं जानता, वे यहांसे कहां चले गये ? और पुत्रोंके मरणसे पीड़ाय-

मान दुःखी गांधारी कहा गयी ? इस अपार शोकसागरमें कनहारके समान पार दिखानेवाले आपही हो ॥ ३८ ॥ यह सुनकर, मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारदजीने कहा कि हे राजन् ! आप किसीका शोच मत करो; क्योंकि यह सब जगत् ईश्वरके आधीन है ॥३९॥ लोकपालोंसहित ये सब लोक जिन परमेश्वरको बलि देते हैं, वेही परमेश्वर जीवोंको मिलाते हैं और वेही विछुराते हैं ॥ ४० ॥ जैसे नाकमें नाथ डारकर पोये हुए, रस्सीमें बंधेहुए बैल अपने स्वामीको बलि देतेहैं, वैसे वाणीरूप रस्सीमें ईश्वरकी आज्ञारूप नथनियोंसे बंधेहुए मनुष्य ईश्वरको बलि देते हैं ॥ ४१ ॥ जैसे यहां खिलौनोंका संयोग वियोग क्रीड़ा करनेवालेकी इच्छासे होता

अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥ ३९ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे वहंति बलिमीशितुः ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ ४० ॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तंत्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तंत्या नामभिर्बद्धा वहंति बलिमीशितुः ॥ ४१ ॥ यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥ यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥ सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥ तस्माज्जह्यंग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पांचभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४५ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥

है, वैसेही मनुष्योंका संयोग वियोग ईश्वरकी इच्छासे होता है ॥ ४२ ॥ यदि तू इस लोकको देहरूपसे अध्रुव और जीवरूपसे ध्रुव मानता है, या ध्रुव अध्रुव दोनों मानता है, अथवा ध्रुव अध्रुव दोनों नहीं मानता है इन चारों पक्षोंमेंभी मोहजन्य स्नेहके विना तेरे माता पिता किसीकदर शोच करनेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि शोकका कारण स्नेह है आर स्नेहका कारण अज्ञान है ॥ ॥ ४३ ॥ हे राजा ! इस लिये अनाथ, गरीब और वनमें रहे वे धृतराष्ट्र आदि मेरे विना किसतरह गुजर करेंगे, ऐसे अज्ञानकृत मनके विकलपनका त्याग कर ॥ ४४ ॥ सांपका डसाहुआ मनुष्य जैसे दूसरोंकी रक्षा नहीं कर सकता, वैसे काल, कर्म और गुणोंके आधीन यह पंचमहाभूतोंका शरीर दूसरोंकी रक्षा किस तरह कर सकता है ॥ ४५ ॥ ईश्वरकी कीहुई वृत्ति सब ठौर सुल-

भही है. देखो, हाथवालोंके तौ बिना हाथवाले ( पशु आदि ), चौपायोंके बिना पांववाले ( तृण वगैरः ) उनमेंभी बड़ोंके छोटे इस तरह सब जीवोंकी जीविका सब जीवही हैं ॥ ४६ ॥ महाराज ! अहस्त सहस्त आदि रूप यह जगत्, स्वयं द्रष्टा भगवत्स्वरूपही है. वे भगवान् सब भोग भोक्ताओंके आत्मारूप एकही हैं, इस लिये उनमें सजातीय भेद नहीं है और बाहिर और भीतर भोक्ता और भोग्यरूप होकर, प्रतीत होवे हैं. तासों उनमें विजातीय भेद नहीं है, तथापि मायाकरके वे अनेकरूपसे प्रतीत होते हैं, उन्हें तुम देखो ॥ ४७ ॥ महाराज ! जगत्पालक वे येही भगवान् आज दैत्योंका संहार करनेके लिये कालरूप धारण करके

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् ॥ अंतरोऽनंतरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४७ ॥ सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गांधार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५० ॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५१ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशांतात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५२ ॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिंद्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्वतमोमलः ॥ ५३ ॥

पृथ्वीमें प्रगट हुए हैं ॥ ४८ ॥ सो देवतोंका कार्य तौ करचुके हैं, अब अवशेष कार्यकी प्रतीक्षा करते हैं, सो जबतक भगवान् इस लोकमें विराजें, तबतक तुमभी यहां रहो. भगवान् स्वधाम पधार जावें तब तुमभी चले जाना ॥ ४९ ॥ भाई विदुरजी और अपनी स्त्री गांधारीके साथ महाराज धृतराष्ट्र हिमालयके दक्षिणकी तर्फ ऋषियोंके आश्रमको गये हैं ॥ ५० ॥ जहां सातों ऋषियोंको प्रसन्न रखनेके लिये गंगाजीकी सात धारायें जुदी जुदी बहती हैं, जिसे सप्तस्रोत कहते हैं ॥ ५१ ॥ प्रतिसमय उसमें स्नान कर, विधिपूर्वक अग्नियोंमें होम कर, जलमात्र आहार ले, शांतचित्त हो, सब एषणानका यानी पुत्र, धन, इनकी अभिलाषा इनका त्याग करके, वह वहां बैठा है ॥ ५२ ॥ आसनका जय कर, श्वासको रोक, छःही इंद्रियोंको वश कर, हरि भगवान्की भाव

नासे रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुणरूप कषायोंको त्याग कर ॥ ५३ ॥ अहंकारके आस्पद आत्माको स्थूलदेहसे वियुक्त कर, विज्ञानात्मामें लगाय, विज्ञानात्माको दृश्य अंशसे वियुक्त कर, क्षेत्रज्ञ द्रष्टामें लीन कर, क्षेत्रज्ञको द्रष्टाके अंशसे विलग करके, आश्रयसंज्ञक ब्रह्ममें, जैसें घटाकाशको घटोपाधिसे वियुक्त करके महाकाशमें लीन किया करते हैं वैसे लीन करके, ॥ ५४ ॥ मायाके गुणोंसंबंधी वासनाओंका नाश कर, चक्षुरादि इंद्रिय और मनको रोककर, सब भोग्यवस्तुका त्याग करके, अचल स्थाणुकी तरह वह बैठा है. उसने सर्वकर्मोंका संन्यास कर दिया है. इसलिये उसके तू विघ्न मत करे ॥ ५५ ॥ हे राजा ! वह आजसे

विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाबरमिवांबरे ॥ ५४ ॥ ध्वस्तमाया गुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ॥ निवर्त्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥ ५५ ॥ तस्यांतरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पंचमेऽहनि ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥ ५६ ॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनंदन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गंता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुंबुरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥

पांचवें दिन अपने शरीरको त्याग देगा और वह भस्म हो जायगा ॥ ५६ ॥ उटज ( पर्णशाला ) के साथ अग्नियोंसे पतिके शरीरको जलता देखकर, बाहिर बैठीहुई पतिव्रता गांधारीभी अपने पतिके पीछे उस अग्निमें प्रवेश कर जायगी ॥ ५७ ॥ हे कुरुनंदन ! विदुरजी उस आश्चर्यको देख, हर्ष व शोकसे युक्त होकर, तीर्थसेवन करनेको वहांसे निकल जांयगे ॥ ५८ ॥ इस तरह कहकर, तुंबुरु गंधर्वके साथ नारदजी स्वर्गको रवाना हुए, युधिष्ठिरने उनके बचनोंको हृदयमें रखकर, शोकका त्याग किया ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥

चौदहवें अध्यायमें, अरिष्टके सूचक उत्पात देखकर, राजा बहुत डरा और अर्जुनके मुखसे यह सुना, कि भगवान् अंतर्धान हुए, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि-बंधुवर्गको देखनेकी इच्छासे और पुण्यकीर्ति श्रीभगवान्के चरित्रोंकी खबर करनेके लिये द्वारकाको गये अर्जुनको ॥ १ ॥ कितनेही महीने हो गये, परंतु अर्जुन वहांसे पीछा लौट न आया, उससे पहले युधिष्ठिरने भयंकर अनेक उत्पात देखे ॥ २ ॥ और विपरीत हैं ऋतुके धर्म जिसके ऐसे कालकी विपरीत गति, क्रोध, लोभ और झूंठमें हैं

सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥ २ ॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदंपतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बंधुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥ गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमंजसा ॥ ७ ॥ अपि देवर्षिणादिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोऽगमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥ यस्मान्नः संपदा राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥

चित्त जिनके ऐसे मनुष्योंकी अतिपापकी वार्ता ॥ ३ ॥ कपटका बहुत व्यवहार, वंचनसे मिश्रित मित्रता, पिता, माता, सुहृद, भाई और स्त्री भर्तारके बीच परस्पर कलह, ॥ ४ ॥ समय पाकर अतीव अशुभके सूचक उत्पात और लोगोंकी लोभ आदि अधर्ममें प्रकृति देखकर, राजा युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसे कहा कि- बंधुजनोंको देखनेकी इच्छासे और पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला जाननेके लिये अर्जुनको द्वारका पठाया था ॥ ५ ॥ ६ ॥ सो हे भीमसेन ! सात महीने व्यतीत हो गये, अब वह क्यों नहीं आता ? इस बातको मैं सहजसुभाव तौ नहीं जान सकता ॥ ७ ॥ जिन भगवान्के प्रतापसे आपनको संपदा मि-

ली, जिनके प्रतापसे राज मिला, जिनके प्रतापसे स्त्रियां मिलीं; जिनके प्रतापसे जीते रहे, जिनके प्रतापसे कुलवान् कहलाये, जिनके प्रतापसे प्रजावाले हुए, जिनके प्रतापसे शत्रुओंका विजय किया, जिनकी कृपासे लोक मिले वे श्रीकृष्णभगवान् क्रीड़ा करनेके साधनरूप मनुष्यशरीरको जिस समय छोड़ देनेवाले हैं, वह यह नारदजीका कहाहुआ समय आगया क्या ? ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ हे मनुष्योंमें सिंहरूप ! बुद्धिको मोहित करनेवाले, समीपवर्ती भयको सूचन करते पृथ्वी, आकाश और देहसंबंधी दारुण उत्पात हो रहे हैं, उन्हें देख ॥ १० ॥ हे भाई ! मेरी बाईं साथल, आंख और भुजा वारंवार फड़कती हैं, हृदय कांप रहा है,

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरंत्यंग पुनः पुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यंति विप्रियम् ॥ ११ ॥ शिवैषोद्यंतमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामंग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ॥ १२ ॥ शस्ताः कुर्वंति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥ मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कंपयन्मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥ १४ ॥ धूम्रा दिशः परिधयः कंपते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥ वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ॥ असृग्वर्षंति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥

ये तो तुर्तही अप्रिय फल देंगे ॥ ११ ॥ यह सियारिनी उदयहोते सूर्यके सन्मुख मुखमेंसे अग्नि उगलती पुकारती है, हे भाई ! यह कुत्ता मेरे सामने निशंक होकर, भूंकता है ॥ १२ ॥ गौ आदि श्रेष्ठपशु मुझे बायां करते हैं, गधे आदि अधम पशु दाहिना करते हैं, हे पुरुषव्याघ्र ! मेरे बाहनोंको मैं रुदन करते देखता हूं ॥ १३ ॥ मृत्युका दूत यह कपोत खोटे शब्दोंसे जगत्को शून्य करना चाहता प्रतीत होता है, एक दूसरेके सामने बैठेहुए ये दोनों उल्लूक मनको कंपायमान करते निद्राको तजकर, खोटे शब्दोंसे जगत्को सूना करना चाहते हैं ॥ १४ ॥ दिशाएं धूसरवर्ण हो गयीं हैं, सूर्यके चौतर्फ तेजके कुंडल हो रहे हैं, पर्वतोंसहित पृथ्वी कांपती है, विना बादल कड़कड़ाहट शब्दके साथ बड़ा वज्रपात हो रहा है ॥ १५ ॥ रजसे अंधकारको फैलाती

कठोर स्पर्शवाली पवन चल रही है, बादल रुधिर बरसते हैं, चारो और बीभत्ससा फैल गया है ॥ १६ ॥ सूर्यको तेजहीन देख, आकाशमें ग्रहोंका युद्ध देख, प्राणीसहित भूतगणोंसे मानों जलतीहों ऐसी द्यावा भूमिको देख ॥ १७ ॥ नदियां, नद, तालाव और मन क्षोभयुक्त हो रहे हैं, घृतसे अग्नि नहीं जलता, यह काल क्या करेगा ? ॥ १८ ॥ बछरे माताओंके स्तन नहीं पीते, माता पगुराती नहीं, मुखपर अश्रु धारणकिये गायें रो रही हैं, व्रजमें बैल डहककते नहीं ॥ १९ ॥ देवतानकी प्रतिमायें मानों रोती हों, ऐसे मालूम होती हैं, उनमें पसीना आता है और वे उछलती हैं, ये देश, गांव, पुर, उद्यान, खानें और

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७ ॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबंति स्तनं वत्सा न दुह्यंति च मातरः ॥ रुदंत्यश्रुमुखा गावो न हृष्यंत्यृषभा व्रजे ॥१९॥ दैवतानि रुदंतीव स्विद्यंति ह्युच्चलंति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानंदाः किमघं दर्शयंति नः ॥ २० ॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥ इति चिंतयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ॥ अधोवदनमब्बिंदून्मुंचंतं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥

आश्रम शोभारहित और आनंदहीन होगये हैं. सो हमें क्या दुख दिखावेंगे ? ॥ २० ॥ इन बड़े बड़े उत्पातोंसे मैं मानता हूं कि-अवश्य दूसरे पुरुषोंमें नहीं है शोभा जिनकी ऐसे भगवान्‌के चरणारविंदोंसे हीन यह पृथ्वी सौभाग्यहीन हुई ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह देखेहुए अपशकुनसे युधिष्ठिर चित्तमें चिंता करते थे, तहां द्वारकासे अर्जुन पीछे आ पहुंचे ॥ २२ ॥ पहले कभी न हुआ ऐसा आतुर, नीचा मुख किये नेत्रकमलोंसे जलके बिंदु छोड़ते, पैरोंमें गिरे, कांतिहीन अपने छोटे भाई अर्जुनको देख कर, उद्विग्नचित्त राजा युधिष्ठिरने नारदजीके कहे बचनोंका स्मरण करते सुहृदोंके बीच इस तरह पूंछा ॥ २३ ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने कहा कि-भला द्वारकापुरीमें हमारे स्वजन मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्वत, अंधक और वृष्णिवंशी यादव सब सुखपूर्वक तौ विराजें हैं ! ॥ २५ ॥ हमारे पूज्य नाने शूरसेनजी प्रसन्न तौ हैं ? छुटभय्योंसहित मामे वसुदेवजी कुशल हैं ? ॥ २६ ॥ वसुदेवजीकी स्त्रियां देवकी आदि सातों बहनें अपनी मामियां अपने पुत्र और बहुन सहित स्वयं कुशल तौ हैं ? ॥ २७ ॥ कुपूत ( कंस ) पुत्रवाले राजा उग्रसेनजी जीते तौ हैं ? उनके छोटेभाई, देवक, अपने पुत्र कृतवर्मा सहित हृदीक, अक्रूर, जयंत, गद,

युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हाः सात्वतांधकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाऽथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुंदुभिः ॥ २६ ॥ सप्तस्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥ आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥ कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयंतगदसारणाः ॥ २८ ॥ आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥ गंभीररयोऽनिरुद्धोवर्धते भगवानुत ॥ ३० ॥ सुषेणश्चारुदेष्णश्च सांबो जांबवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥ ३१ ॥ तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवायः ॥ सुनंदनंदशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२ ॥ अपि स्वत्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि स्मरंति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३ ॥

सारण और शत्रुजित् आदि सब यादव कुशल तौ हैं ? यादवोंके पति भगवान् बलदेवजी सुखपूर्वक तौ बिराजें हैं ? ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ सब यादवोंमें महारथ प्रद्युम्न सुखपूर्वक है ? युद्धमें बड़ा वेगवाला भगवान् अनिरुद्ध राजी है ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जांबवतीका पुत्र सांब औरभी श्रीकृष्ण भगवान्के पुत्रोंमें श्रेष्ठ ऋषभ आदि सब पुत्रों सहित प्रसन्न हैं ? ॥ ३१ ॥ वैसेही सुनंद और नंद जिनमें मुख्य हैं ऐसे श्रुतदेव, उद्धव आदि श्रीकृष्ण भगवानके अनुचर तथा औरभी जो यदुश्रेष्ठ हैं, वे सब रामकृष्णकी भुजाके आश्रयसे प्रसन्न तौ हैं ? सुहृद भाव रखनेवाले वे लोग कभी अपने कुशलकाभी स्मरण करते हैं ? ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

भक्तवत्सल व ब्राह्मणोंके भक्त, गोविंद भगवान्‌भी सुहृद्वर्गके साथ द्वारकामें सुधर्मा सभाके बीच सुखपूर्वक तौ विराजे हैं॥३४॥ जो आदिपुरुष भगवान् बलदेवजीको सहाय लेकर, लोकोंके क्षेम मंगल और उद्धारके लिये यदुकुलरूप सागरमें विराजे हैं॥३५॥ जिन भगवान्‌के भुजदंडसे रक्षा कीहुई अपनी पुरी द्वारकामें यदुवंशी मान पाकर, वैकुंठनाथके सेवकोंके समान अतिआनंदपूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिन भगवान्‌के चरणोंकी सेवारूप मुख्य कर्म करनेसे सत्यभामा आदि सोलह हजार एकसौ आठ रानियां युद्धमें देवतानको जीतकर, इंद्रकी प्रियाके भोगने योग्य कल्पवृक्ष आदि पदार्थोंका हरण करती हैं ॥ ३७ ॥ जिन भगवान्‌के

भगवानपि गोविंदो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥ ३४ ॥ मंगलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलांभोधावाद्योऽनंतसखः पुमान् ॥३५॥ यद्बाहुदंडगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडंति परमानंदं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ॥ निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरंति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥ यद्बाहुदंडाभ्युदयानुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमंत्यंघ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८ ॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमंगलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥

भुजदंडके प्रभावसे जीनेवाले यदुवीर निर्भय हो कर, उत्तम देवतानके योग्य सुधर्मा सभाको बलात्कारसे अपने भेंट करवाकर; उसमें पैरोंसे वारंवार फिरते हैं, वे भगवान् प्रसन्न तौ हैं ? ॥ ३८ ॥ हे तात ! तुम्हारे आरोग्य तौ है ? हे तात ! तुम मुझे तेजहीन प्रतीत होते हो, कहीं तुम्हारा अपमान तौ नहीं हुआ ? अथवा हे तात ! तुम वहां बहुत रहे इस लिये मानकी हानि तौ नहीं हुई ? ३९ ॥ अथवा प्रेमशून्य अमंगल शब्द आदिसे किसीने अनादर तौ नहीं किया है ? अथवा याचकलोगोंको आशा बंधाकर, प्रतिज्ञा कियाहुआ पदार्थ नहीं दिया ? ॥ ४० ॥ अथवा शरण देनेवाले तुमने शरण आयेहुए ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी,

स्त्री और किसी प्राणीका त्याग तौ नहीं किया ? ॥ ४१ ॥ अथवा किसी अगम्य स्त्रीसे तौ गमन नहीं किया ? अथवा गमन करने योग्य मैले वस्त्र आदिसे विना सत्कार कीहुई स्त्रीसे तौ गमन नहीं किया ? अथवा मार्गमें तुम्हारे सम कोटिवाले अथवा अधम कोटिवाले पुरुषोंसे हार तौ नहीं गये ॥ ४२ ॥ भोजन करने योग्य वृद्ध और बालकोंको भोजन कराये विना तौ तुमने भोजन नहीं किया ? अथवा निंदा करने योग्य या न घटे ऐसा कोई काम तौ नहीं किया ? ॥ ४३ ॥ अथवा प्रिय और हृदयरुप मेरे प्यारे भाई श्रीकृष्ण विना मैं इकल्ला हो गया, मुझमें कुछभी नहीं है, इस तरह तौ तुम नहीं मानते हो ? जो ऐसे न

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाथ भवानोत्तमैर्नासमैः पथि ॥ ४२ ॥
अपि स्वित्पर्यभुंक्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥
कच्चित्प्रेष्ठतमे नाथ हृदयेनात्मबंधुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे युधिष्ठिरवितर्कोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥
एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञा विकल्पितः ॥ नानाशंकास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥
शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्यशुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कंठ्यकातरः ॥ ३ ॥

हो तौ तुम्हारे दूसरी किसी प्रकारकी पीड़ा होनी संभवे नहीं ॥ ४४ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें कलियुगको प्रवेशहुआ देख, परीक्षितको राज दे, राजा स्वर्गको प्राप्तहुआ, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि-इस तरह अनेक प्रकारकी शंकाको प्रगट करे ऐसा अर्जुनका स्वरुप देखकर, उनके भाई राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचंद्रके वियोगसे दुर्बल श्रीकृष्णचंद्रके मित्र अर्जुन प्रति अनेक प्रकारके विकल्प किये ॥ १ ॥ तब शोकसे जिसका हृदयकमल और मुखकमल सूख रहा है ऐसा तेजहीन अर्जुन, उन्हीं प्रभुका ध्यान करता पीछा कुछभी नहीं बोला ॥ २ ॥ दर्शन न होनेके कारण बढ़ी जो प्रेमसहित उत्कंठा तिससे कायर अर्जुन ॥ ३ ॥

सारथीपन आदि भगवान्के किये कार्योंमें भगवानके सखाभाव, मित्रता व सुहृदभावका स्मरण कर, बड़ी कठिनतासे शोचको रोंक, हाथसे आंसू पोंछ कर, अश्रुके कारण गद्गद वाणीसे अपने बड़े भाईको यह वक्ष्यमाण बचन कहने लगे ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा कि-महाराज! बंधुरूप हरिसे मैं ठगाय गया, कि जिसने देवतानको विस्मित करनेवाला मेरा भारी तेज हर लिया ॥ ५ ॥ जैसे प्राण विना यह शरीर मृतक कहलाता है. वैसे जिस कृष्णके क्षणमात्र वियोगसे यह सब लोक अप्रिय दीख पड़ता है ॥ ६ ॥ जिन कृष्णकें आश्रयसे स्वयंवरमें द्रुपदराजाके घर आये मदोन्मत्त राजाओंके तेजका मैंने हरण किया और धनुष चढ़ाय मत्स्य-

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वंचितोहं महाराज हरिणा बंधुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥ यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिहतस्य मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥ यत्सन्निधावहमु खांडवमग्नयेदामिंद्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥ ८ ॥ यत्तेजसा नृपशिरोंऽघ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यैस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥ १० ॥

वेध करके द्रौपदीको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जिन कृष्णकें समीपमें मैंने देवगण सहित इंद्रको जीतकर, तुर्त अग्निको खांडव वन दिया, अद्भुत कारीगरीवाली मयदैत्यकी बनायी सभा मुझे मिली और आपके यज्ञमें राजालोकोंने ला ला कर, आपको भेटें अर्पण कीं ॥ ८ ॥ जिन कृष्णके तेजसे दशहजार हाथियोंकीसी उत्साह शक्ति और पराक्रमवाले आपके छोटे भाई आर्य भीमसेनने यज्ञके वास्ते राजाओंके सिरपर पैर रखनेवाले जरासंधका वध किया, और महाभैरवके यज्ञके लिये उस जरासंधके एकत्रित कियेहुए राजाओंको छुड़ाया, कि जो आपके यज्ञमें भेंटें ले लेकर, आये ॥ ९ ॥ राजसूययज्ञके हेतु किये बड़े अभिषेकसे प्रशंसा करने योग्य

सुंदर द्रौपदीके केशपाशको सभामें दुष्ट दुःशासन आदिने खोलकर खींचा, उस समय स्मरण करतेही आप पधारे, और अश्रुसे आर्द्र मुख द्रौपदीने आपके चरणोंमें प्रणाम किया, उसके लिहाजसे जिन कृष्णने केश खींचनेवाले दुःशासन आदिकी स्त्रियोंको पति मरनेके हेतु खुलेकेश यानी विधवा करी ॥ १० ॥ जिन कृष्णने दशहजार शिष्योंसहित दुर्योधनके भेजेहुए तथा उन शिष्योंकी

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरंतकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ॥ शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ता ममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः ॥ ११ ॥ यत्तेजसाथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिशोऽस्त्रमदान्निजं मे ॥ अन्येपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेंद्रभवने महदासनार्धम् ॥ १२ ॥

पंक्तिमें प्रथम बैठकर, भोजन करनेवाले दुर्वासा ऋषिसे प्रगटहुए अपार दुःखसे वनमें पधारकर, शेष रहे शाकके पत्रको खाकर, अपनी रक्षा की, जिसके खानेसे जलमें स्नान करते दुर्वासाआदि मुनियोंने तीनोंलोकोंको तृप्त हुए माने ॥ ११ ॥ जिन कृष्णके तेजसे युद्धके विषे विस्मितहुए पार्वतीसहित महादेवने अपना पाशुपत नाम अस्त्र मुझे दिया और दूसरे लोकपालोंनेभी अपने

१ एकदिन दुर्वासा ऋषि दुर्योधनके यहां जा निकले. उसने बड़ा शिष्टाचार किया. तद प्रसन्न होकर, दुर्वासाने कहा कि– वर मांग. तब दुर्योधनने कहा कि– हमारे कुलमें मुख्य युधिष्ठिर हैं सो जैसे आप दशहजार शिष्यसहित मेरे यहां पधारे हो वैसे उसके यहांभी पधारो. परंतु पधारो उस वख्त कि जिस समय द्रौपदी भोजन करचुके. दुर्योधनके कहनेके अनुसार दश हजार शिष्यों सहित दुर्वासा वहां पधारे. युधिष्ठिरने सत्कार करके, मध्यान्हका कृत्य करनेके अनंतर भोजनका निमंत्रण किया. ऋषि तौ शिष्योंसहित मध्यान्हकर्म करनेको नदीपर गये. इधर द्रौपदीको बहुत चिंता हुइ. निदान श्रीकृष्णचंद्रकी याद किया. याद करतेही भगवान् पधारे. तब द्रौपदीने सब बात कही. यह बात सुनकर, श्रीकृष्णने द्रौपदीसे कहा कि– हे द्रौपदी! मैं भूखा हूं; सो एकवार मुझे तौ सबसे पहले भोजन करवादे. तब द्रौपदीने शर्माकर, कहा कि– जबतक मैं भोजन नहीं करती हूं; तबतक सूर्यकी दीहुई चरीमें अन्न नहीं खूटता. मेरे भोजन किये पीछे खूट जाता है. सो मैं सबको भोजन करवाकर, भोजन करचुकी. इस लिये अब नहीं है. श्रीकृष्णने वह चरी बड़े आग्रहसे मंगायी. उसके गलेमें थोड़ासा शाक लगाहुआ था. उसे निकाल, मुखमें धरकर, कहा कि– ‘ शिवात्मा भीयतां हरिः ’ फिर ऋषियोंको खिलानेके वास्ते बुलावा भेजा. परंतु त्रिलोकी तृप्त होजानेके कारण ऋषिभी त्रिलोकीके साथ तृप्त होगये. इन्होंने देखा कि– हमें भूंख है नहीं और युधिष्ठिरके यहां रींधा हुआ अन्न खराब होगा. इस भयसे दुर्वासा परबाहर चले गये.

देय राजा पुरंजन आसुरी यानी असुरोंकीसी वृत्ति धारण कर, तीक्ष्ण बाणोंसे जंगलोंके अंदर जंगली जानवरोंको मारने लगा ॥ ५ ॥ ( मृगयाकी निंदा क्यों की जाती है ? क्योंकि राजाओंके वास्ते मृगयाका विधान शास्त्रोंमें है. तब कहते हैं कि– ) शास्त्रोंमें जो मृगया करनेके वास्ते विधि है, वह धर्मकार्योंके समान किये बिना बिलकुल न चले ऐसे अभिप्रायसे नहीं है. किंतु स्वाभाविक प्रेमसे जो हिंसा की जाती है, उसमें कुछ प्रतिबंध डालकर, उसे कम करनेके अभिप्रायसे है. सो इस प्रकारसे है कि– जो जानवरमारनेमें अत्यंत प्रीति होवे तो श्राद्धआदिमेंही मारना, तत्रापि प्रख्यात श्राद्धादिकमेंही मारना. परंतु नित्यश्राद्धादिकमें नहीं. सोभी राजाओंको उचित है अन्यको नहीं. वोभी सब जानवरोंको नहीं मारना; किंतु जिनका मांस धर्मशास्त्रोंमें पवित्र माना जाता है उन्हींको मारना. वोभी जंगलमें मारना परंतु दूसरे ठिकाने नहीं. और वहांभी जितने पशु उपयोगमें आयें उतनोंकोही मारना परंतु उनसे अधिक नहीं. इसप्रकार छः नियमोंसे शास्त्रोंमें कछुक संकोच किया है तासों हिंसा करनेके वा-

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने ॥ यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥ य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेंद्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥

स्ते शास्त्रमें विधि है यह कदापि न समझना. जो बालक अतीव खेलमें लगाहुआ हो वह यदि एक साथ रोंका जाय तो, कभी न रुकेगा. किंतु कछुक नियम करदिये जायं, कि– जो तू खेले तो अपना पाठ पढ़े पीछे खेला करे, वोभी अच्छे लड़कोंके साथ, सोभी इतने समयतक, तो संकोच होते २ वह कितनेएक दिनोंमें आपही खेलना छोड़ देगा. इसीतरह शास्त्र जो लोकोंको एकसाथ रोंकता तो लोक उसको नहीं मानते. और उससे अच्छा परिणाम नहीं निकलता. इसलिये शास्त्रने कछुक नियम लिखकर, हिंसामें संकोच किया है, कि– जिससे लोक कितनेएक दिनोंमें स्वयमेव हिंसासे निवृत्त हो जांय॥ ६ ॥ जैसे हिंसामें नियम किये हैं ऐसे दूसरे कर्मोंमेंभी शास्त्रोंने नियम किये हैं, हे राजेंद्र ! इसलिये उन नियमोंको समझकर, जो मनुष्य नियमानुसार

१ पूर्वोक्त छः नियम विषयभोगमेंभी काम आसक्ते हैं. जैसे मैथुन करनेमें अत्यंत प्रीति होवे तो स्त्रीके साथ मैथुन करना, वोभी अमुक २ दिनोंमें, वहभी गृहस्थाश्रममें-वहभी अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ. सोभी रात्रिमें, दिनमें नहीं, वोभी प्रजा उत्पन्न होवे तबतक, जीवे जहांतक नहीं, इसी प्रकार खान-पान-आदिमेंभी कल्पना करना.

करे, उस मनुष्यको नियमानुसार कर्म करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है. और ज्ञान होनेपर उसके किसी प्रकारके कर्मका लोप नहीं होता ॥ ७ ॥ नियमोंको उल्लंघ कर, कर्म किया जाय तो अंतःकरणशुद्धि नहीं होती. और उसकी शुद्धिविना 'मैं कर्ता हूं,' ऐसे अभिमानमें आरूढ होकर, बुद्धिका नाश होनेसे संसारके प्रवाहमें पड़कर अधमसे अधम नीच योनियोंमें जन्म लिया करता है ॥ ८ ॥ सिद्धांतकी बात कह, फिर कथाप्रसंग कहते हैं. उस वनमें विचित्र परोंवाले बाणोंसे काटे जाते और दुख पाते प्राणियोंका दयालु पुरुषोंसे सहन न होवे इसप्रकार नाश होने लगा ॥ ९ ॥ शश ( खरगोश ) शूकर, अरण्यके भैंसे, लीलगाह, रुरु ( एक प्रकारका हरिण )और दूसरेभी पवित्र प्राणियोंको ( जिनका मांस धर्मशास्त्रमें पवित्र माना जाता है उनको, ) मारता मारता राजा पुरंजन

अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥ तत्र निभिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥ विप्लवोभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥ ९ ॥ शशान्वराहान्महिषान्गवयान् रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥ १० ॥ ततः क्षुत्तृट्परिश्रांतो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥ आत्मानमर्हयांचक्रे धूपालेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलंकृतसर्वांगो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥ तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कंदर्पाकृष्टमानसः ॥ न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥ अंतः पुरःस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ १४ ॥

श्रमित होगया ॥ १० ॥ ( स्वप्न अवस्थाको कहकर, अब पीछा जाग्रत अवस्थाका वर्णन करते हैं ) फिर भूंखा प्यासा और थकाहुआ वह पुरंजन वहांसे लौटकर, पीछा घर आया. वहां आ, स्नान कर, भोजन करके, लेटा. निद्रा आनेसे परिश्रम निवृत्त हुआ तो ॥ ११ ॥ आंख खुली तब सुगंधि पदार्थ ( अतरआदि ) चंदन और फूलोंके हारआदिसे अपने शरीरको सुगंधित और सुशोभित कर, स्त्रीके पास जानेका विचार किया ॥ ११ ॥ तृप्ति पाया हुआ, प्रसन्न और बड़े घमंडसे भराहुआ वह राजा पुरंजन कामदेवसे वशीकृतचित्त होकर, अंतःपुरमें गया. वहां गृहस्थका काम चलानेवाली अपनी वो वरारोहा रानी देखनेमें न आयी; हे प्राचीनबर्हिराजा ! इस समय उदाससा हो कर, अपनी रानीकी सहेलियोंसे उसने पूंछा. कि- तुम्हारी स्वामिनी

और तुम, पहले जैसे प्रसन्न तो हो ? ॥ १३ ॥ १४ ॥ घरमें घरसंबंधी संपदायें जैसी पहले शोभा देती थीं, वैसी अभी नहीं देख पड़तीं. इसका कारण क्या है ? जिस घरमें माता अथवा पतिव्रता स्त्री न होवे, वह घर पहिये विनाके रथके समान माना जाता है तो ऐसे घरमें दीनकी भांति कौन बुद्धिमान् पुरुष बैठ रहे?॥१५॥ वो मेरी प्यारी कि- जो मुझे समय समयपर अच्छी सलाह देकर, दुःखरूप समुद्रमें बूड़तेको बचाती है, वह कहां है ? ॥ १६ ॥ सखियोंने कहा कि-हे नरनाथ ! हे शत्रुहन् ! आपकी प्यारी क्या करना चाहती है ? उसकी तो, हमें खबर नहीं. परंतु वह आंगनमें कुछभी चटाईआदि बिना बिछाये

न तथैतर्हि रोचंते गृहेषु गृहसंपदः ॥ यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ व्यंगे रथ इव प्राज्ञः कोनामासीत दीनवत् ॥ १५ ॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जंतं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयंती पदे पदे ॥ १६ ॥ रामा ऊचुः ॥ नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्संगोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥ सांत्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ॥ प्रेयस्याः स्नेहसंरंभलिंगमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥ अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ॥ पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्संगलालिताम् ॥ २० ॥ पुरंजन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागः स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षा दंडं न युंजते ॥ २१ ॥

पृथ्वीपर सोयी पड़ी है. उसे आप देखो ॥ १७ ॥ नारदजीने कहा कि- स्त्रीके प्रसंगसे जिसका ज्ञान भ्रष्ट हो गया है ऐसा वह राजा पुरंजन अपनी रानीको, शरीरको विना संभाले पृथ्वीपर पड़ी देखकर, अतीव खेदित हुआ ॥ १८ ॥ और उदासीन मन हो, मधुर वाणीसे सांत्वना देने लगा. परंतु उसके देखनेमें कोईभी चिन्ह ऐसा नहीं आया कि- प्यारीने जान बूझकर, यह प्रणयसे कोप किया है ॥ १९ ॥ फिर स्त्रीको प्रसन्न करनेमें चतुर ऐसा वीर राजा पुरंजन धीरे धीरे उसको मनाने लगा, उसके चरणयुगलको छू, अपनी गोदमें बिठाकर, इस प्रकार कहने लगा ॥ २० ॥ पुरंजन बोला कि-हे प्यारी ! दासलोग अपराध करें, तब उनके स्वामियोंका धर्म है कि- उनको अपने मानकर, शिक्षाके वास्ते उनको दंड देवें. और जो स्वामी दंड न देवें तो

जानना चाहिये कि-ये दासलोक मंदभाग्य हैं ॥ २१ ॥ स्वामी दंड देवें तो दासको यह स्वामीका बड़ा अनुग्रह समझना चाहिये. हे तन्वी ! स्वामी दंड देवें उस समय जो सेवक मनमें उस बातका दुख माने और क्रोध करे, उस सेवकको मूर्ख समझना चाहिये. क्योंकि वो अपने स्वामीके हितेच्छुपनको नहीं जानता ॥ २२ ॥ हे सुंदर दांतवाली ! हे सुभ्रु ! हे मनस्विनी ! तेरा मुख कि-जिसका हँसना और देखना स्नेहके मारे व लज्जासे विलंब लगानेके कारण अतीव शोभा देता है. तथा जिसमें ऊंची नासिका और मनोहर भाषण है. और जो श्यामवर्ण केशरूप भ्रमरोंसे अतीवसुंदर प्रतीत होता है वह, मुख हम कि-जो तेरे

परमोऽनुग्रहो दंडो भृत्येषु प्रभुणाऽर्पितः ॥ बालो न वेद तत्तन्वि बंधुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलंबविलसद्धसितावलोकम् ॥ नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ ॥ २४ ॥ वक्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरंभभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिंबाधरं विगतकुंकुमपंकरागम् ॥ २५ ॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पुरंजनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥

निजकेही हैं उन्हें दिखाव ॥ २३ ॥ हे वीरपत्नी ! ब्राह्मणकुलके शिवाय और भगवान्के भक्तके शिवाय दूसरे किसीने अपराध किया हो तो उसे दंड देनेको मैं तैयार हूं. क्योंकि त्रिलोकीमें अथवा त्रिलोकीसे बाहिरभी मेरा भय न रखकर, आनंदित रहनेवाला कोईभी मनुष्य मुझे नहीं दीखता ॥ २४ ॥ इस समयसे पहले किसी दिवस मैंने तेरा मुख तिलकरहित, मलिन, क्रोधसे भयंकर, हर्षरहित, अनुज्वल व स्नेहशून्य नहीं देखा था. ये सुंदर स्तनभी शोकाश्रुसे भीने नहीं देखे थे. तथा बिंबफलसा अरुणवर्ण यह अधरभी पान खानेके कारण केसरके समान रंगसे रहित नहीं देखा था ॥ २५ ॥ इसलिये मैं कि-जो तेरी आज्ञा विना व्यसनमें पड़कर, मृगयाको जानेसे तेरा अपराधी हुआ हूं उसपर कृपा कर, कामदेवके अस्त्रके वेगसे धैर्यरहित और अपने वशीभूत सुहृद्रूप अपने पतिकी

कामनावाली कौन स्त्री योग्य कृत्यमें सेवा न करे ? ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ सत्ताईसवें अध्यायमें स्त्रीपुत्रादिकोंकी आसक्तिसे अपने स्वरूपको विस्मृत भयेहुए पुरंजन राजाके कालकन्याआदिके आख्यानसे जरा और रोगआदि प्राप्त होनेका वर्णन होगा ॥ १ ॥ स्त्रीका अनुनयआदिद्वारा समझानेआदि कथाके शृंगारसे जीव अत्यंत उपाधिके वश होगया. यह बात कहकर, अब इस जीवके उस उपाधिसे जन्ममरणआदि होनेकी वार्ता कहनेके लिये नारदजीका कथन है. इस प्रकरणमें यद्यपि इस विषयमें हरएक विषय किसी २ रीतिसे ज्ञानपक्षमेंभी जुड़ सकता है, तथा उनतीसवें अध्यायमें नारदजी स्वयं जो स्पष्टार्थ कहेंगे उस परसे ज्ञान होता है, कि जीवके स्त्री-पुरुषकी वासना दृढ़ बँध जानेसे विचित्र प्रकारके अवतार होते हैं. केवल इतनाही इस कथाका तात्पर्य है. वहां

नारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं सध्र्यग्वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥ स राजा महिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननाम् ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनंददुपागताम् ॥ २ ॥ तयोपगूढः परिरब्धकंधरो रहोऽनुमंत्रैरपकृष्टचेतनः ॥ न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवानिशेति प्रमदापरिग्रहः ॥ ३ ॥

प्रथम तीन अध्यायोंमें पुरुषपनसे जीवको संसार प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है. फिर एक अध्यायमें स्त्रीभावसे संसार होनेका वर्णन करके, आखिर उसे ईश्वरकी कृपासे ज्ञान प्राप्त होकर, मोक्ष मिला, ऐसे कहा जायगा. उनतीसवें अध्यायमें जो स्पष्टार्थ दिखाया जायगा वहभी उतनाही कि- जितना उपयोगी है. अतएव हरएक शब्दकी ज्ञानपक्षमें योजना करनी निष्प्रयोजन है. और वह दुर्घटभी है अतएव यहांभी उतनाही स्पष्टार्थ लिखा जायगा जितना उपयोगी है. नारदजी बोले कि- महाराज ! इसप्रकार अपने विलासविभ्रमसे पुरंजनको अच्छीतरह वश करके, यह रानी उसे रमण कराने लगी. और आपभी रमण करने लगी ॥ १ ॥ हे राजा ! अच्छी प्रकार स्नान कीहुई, सुंदरमुखवाली शृंगार कीहुई और तृप्त उस रानीको अपने निकट आती देखकर, पुरंजन राजाने उसे बहुत मान दिया ॥ २ ॥ रानीने जिसका आलिंगन किया है ऐसा वह राजा रानीको कंठसे लगाय, एकांतमें उसके अनुकूल गुह्य भाषणोंसे विवेकरहित होकर, रानीकोही सर्वसाधनरूप मानता,

उसीमें आसक्त रहनेसे रात्रि व दिनरूपसे व्यतीत होते प्रचंड कालके वेगकीभी सुध भूल गया ॥ ३ ॥ अमूल्य शय्यामें प्यारीके हाथकी तकिया बनाय, शयन करता यह मदोन्मत्त और महाउदार राजा पुरंजन अज्ञानके हेतु उस रानीकोही केवल पुरुषार्थरूप मानता, अपने यथार्थस्वरूप ( ब्रह्म ) को विस्मृत होगया ॥ ४ ॥ हे राजेंद्र ! इसतरह निरंतर कामातुर होकर, रानीके साथ रमण करते २ पुरंजन राजाकी तरुण अवस्था आधे क्षणके समान व्यतीत हुई ॥ ५ ॥ इस पुरंजनके अपनी रानीमें ग्यारह सौ ११०० पुत्र हुए. ( ग्यारह इंद्रियोंके परिणाम ) इतनेमें इसकी आधी आयु चली गयी ॥ ६ ॥ हे राजा ! इसके एकसौ

शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥ तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोभिभूतो न निजं परं च यत् ॥ ४ ॥ तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेंद्र व्यतिक्रांतं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरंजन्यां पुरंजनः ॥ शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥ दुहितृर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥ शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥ स पंचालपतिः पुत्रान्पितृवंशविवर्द्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥ पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ॥ यैर्वै पौरंजनो वंशः पंचालेषु समेधितः ॥ ९ ॥ तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबद्ध्यत ॥ १० ॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥ देवान्पितॄन्भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥ ११ ॥

दश ११० कन्या हुई ( बुद्धिकी वृत्तियां ) कि–जो सब मातापिताकी कीर्तिकी बढानेवालीं और शील व उदारताआदि गुणोंसे संपन्न थीं ॥ ७ ॥ पांचाल देशके ( शब्दस्पर्शआदि विषय ) अधिपति इस राजा पुरंजनने अपना वंश बढानेवाले पुत्रोंका दूसरी स्त्रियोंके ( हितअहितचिंता ) साथ विवाह किया. और कन्याओंकाभी उनके योग्य वरों-( योग्य विषय भोगों ) के साथ विवाह किया ॥ ८ ॥ पुरंजनके पुत्रोंमें प्रत्येक पुत्रके सौ सौ १०० पुत्र हुए. ( अनेक प्रकारके कर्म ). जिनसे पुरंजनराजाका वंश पांचालदेशमें बहुत बढ गया ॥ ९ ॥ घरके भंडारमेंसे आजीविका पाते इन दायाद पुत्रोंमें, और पौत्रोंमें ममता बँध जानेसे यह पुरंजन राजा विषयोंमें बँध गया ॥ १० ॥ इस राजानेभी तेरेजैसे दीक्षा लेकर, अनेक प्रकारकी कामनाओंसे भयंकर और

पशुहत्यावाले यज्ञोंसे देवता, पितृ और भूतपतियोंका यजन किया ॥ ११ ॥ इसप्रकार अपने कल्याणकारी कर्मोंमें असावधान और कुटुंबासक्त पुरंजनराजाके वो समय ( बुढ़ापा ) प्राप्त हुआ कि- जो समय स्त्रियोंपर प्रीति रखनेवाले पुरुषोंको अप्रिय लगता है ॥ १२ ॥ महाराज ! चंडवेग नाम ( वर्ष ) गंधर्व लोकका राजा है. उसके निकट तीनसौ साठ ३६० बलवान् गंधर्व ( दिन ) हैं ॥ १३ ॥ ॥ और तीनसौ साठही गंधर्वोंकी स्त्रियां ( रात्रियां ) हैं, जिनमें आधी तो काली हैं और आधी श्वेत हैं. ( कृष्णपक्षकी और शुक्लपक्षकी ) जो सदा गंधर्वोंके साथ रहती हैं और गंधर्वोंके जैसीही बलवान् हैं. ये सब गंधर्व और

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुंबासक्तचेतसः ॥ अससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥ १२ ॥ चंडवेग इति ख्यातो गंधर्वाधिपतिर्नृप ॥ गंधर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ १३ ॥ गंधर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥ परिवृत्त्या विलुंपंति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥ १४ ॥ ते चंडवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा ॥ हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥ १५ ॥ स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतंसमाः ॥ पुरंजनपुराध्यक्षो गंधर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे स्वसंबंधे एकस्मिन्बहुभिर्युधा ॥ चिंतां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबांधवः ॥ १७ ॥ स एव पुर्यां मधुभुक्पंचालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥ १८ ॥

इनकी स्त्रियां परिभ्रमण करके सर्वसुखसंपन्न नगरीको लूटा करते हैं ॥ १४ ॥ चंडवेग गंधर्वके अनुचर ये लोग जब पुरंजनराजाकी पुरीको लूटने लगते हैं. तब इस नगरीका पालक पांच शिरवाला सर्प ( प्राण ) उनसे सामना करता है ॥ १५ ॥ पुरंजनकी पुरीका अधिष्ठाता यह बलवान् नाग सातसौ बीस ७२० जनोंके साथ सौ वर्षपर्यंत इकल्ला लड़ता रहता है ॥ १६ ॥ बहुत लोगोंके साथ इकल्ला लड़नेसे जब यह नाग निर्बल होने लगता है. तब घबरायाहुआ राजा पुरंजन अपने देश, नगर और बंधुजनोंके साथ भारी चिंतामें पड़ जाता है ॥ १७ ॥ पंचालदेशकी इस नगरीमेंही क्षुद्रसुखका भोग करताहुआ और अपने अनुचरोंकी दीहुई बलिको ग्रहण करताहुआ स्त्रीके वशीभूत भयाहुआ यह पुरंजन राजा भय ( मृत्यु ) प्राप्त होनेपरभी विचार

नहीं करता ॥ १८ ॥ इतनेमें औरभी आपड़ा. हे राजा ! एक कालकी कन्या ( बुढ़ापा ) अपने तईं वर ढूंढ़ती त्रिलोकीमें फि- रती थी. परंतु उसका किसीने स्वीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ तब यह दुर्भागिनी होनेसे जगतमें दुर्भगा इस नामसे प्रसिद्ध हुई. इसका प्रथम पुरु राजाने वरण किया था. तासों प्रसन्न होकर, इस राजाको इसने राज दिया ॥ २० ॥ एकसमय चारोंतर्फ फिरती यह कालकन्या मुझे मिली. जब कि– मैं ब्रह्मलोकमेंसे यहां भूर्लोकमें आता था. वो मुझे जानती थी, कि– यह नैष्ठिक ब्रह्म- चारी है. तथापि कामदेवसे मोहित होकर, मेरे पास वरण करनेको आयी और मुझसे वरनेको कहा ॥ २१ ॥ परंतु मैंने अंगी-

कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती ॥ पर्यटंती न बर्हिष्मन्प्रत्यनंदत कश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भा- ग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥ या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात्पूरवे वरम् ॥ २० ॥ कदाचि- दटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥ २१ ॥ मयि सं- रभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ॥ स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याश्ञाविमुखो मुने ॥ २२ ॥ ततो विहत- संकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥ २३ ॥ ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥ संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥ २४ ॥ द्वाविमावनु- शोचंति बालावसदवग्रहौ ॥ यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥ २५ ॥

कार नहीं किया. तब उसने बड़ा क्रोध करके, मुझे दुःसह श्राप दिया, कि– हे मुनि ! तूने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया. इसलिये अब तू एक ठौर नहीं ठहर सकेगा ( नैष्ठिक ब्रह्मचारीका जरा कुछभी उपद्रव नहीं कर सकती और जिसके जरा अवस्था नहीं वह मनुष्य एक ठौर नहीं बैठता यह बार्ता प्रसिद्ध है सो येही बात श्रापके आकारसे यहां लिखी गयी है ) ॥ २२ ॥ मुझे वरनेका मनोरथ उसका नष्ट होगया. तब वह कालकन्या मेरे कहनेसे यवनों ( आधि, व्याधियों ) के राजा भयको वरनेके वास्ते गयी. और उससे कहा कि– ॥ २३ ॥ हेवीर ! तू यवनोंका राजा है. तासों मुझे बहुत प्रिय लगता है. अतएव मैं तुझे वरूंगी. प्राणी तुझपर जो मनोरथ बांधते हैं. वह मनोरथ सिद्धही होता है ॥ २४ ॥ लोक व शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो वस्तु

१ ययातिके पुत्र पुरुने अपने पितासे शुक्राचार्यजीकी दीहुई जरा ली इससे ययातिने प्रसन्न होकर, उसे राज दिया सो जराका दियाहुआही हुआ. यह कथा नवमस्कंधमें आवेगी.

देनी चाहिये वह वस्तु यदि कोई आकर, मांगे; उस समय जो उसे न देवे तथा जो वस्तु लोक व शास्त्रकी रीतिके अनुसार लेनेयोग्य है, वह वस्तु यदि कोई देने लगे, उसे जो न लेवे, ये दोनों मनुष्य मूर्ख, दुराग्रही और लोकोंके शोचके पात्र हैं ॥ २५ ॥ हे भद्र ! इसलिये मुझे तू स्वीकार कर क्योंकि मैं तुझे इच्छती हूं. तू मुझपर दया कर; क्योंकि दुखी जीवोंपर दया करना यही पुरुषका मुख्य धर्म है ॥ २६ ॥ इस प्रकार कालकन्याका वचन सुनकर, यवनोंका राजा भय कि- जो देवतानकेभी समझमें न आवे ऐसी बात ( मरना ) करना चाहता था. वह हँसकर कालकन्यासे इस प्रकार बोला कि- ॥ २७ ॥ मैं ज्ञानदृष्टिसे तेरे वास्ते पति नियत कर चुका हूं. तू अमंगलरूप और लोकोंके अमाननीय है तासों यदि तू जाकर, किसीसे

अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दयां कुरु ॥ एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्त्ताननुकंपते ॥ २६ ॥ कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ॥ चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥ २७ ॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनंदति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥ २८ ॥ त्वमव्यक्तगतिर्भुंक्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥ प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पुरंजनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥

प्रार्थना करेगी, तो कोईभी तेरा स्वीकार नहीं करेगा ॥ २८ ॥ इसलिये तू यौंकर कि- गुप्तरूपसे अर्थात् यह कहांसे आई ऐसे कोईभी तुझे जान न सके ऐसी तरह लोक ( सर्व शरीर ) जो कर्मसे ऐसे बने हुए हैं, उनके बलात्कारसे दबाकर, भोग. इसतरह सबलोक तेरे पति हो जायंगे तू यहभी मत जानना कि-लोक मुझे प्रतिकूल समझकर, मार डारेंगे; क्योंकि सब लोगोंको तूही अपने अधीन करेगी. मेरी सेनाको साथ ले जा और प्रजानका नाश कर ॥ २९ ॥ जैसे यह प्रज्वार ( कालज्वर ) मेरा भाई है वैसे तू मेरी बहन हो जा. भयंकर सैन्यको संग लेकर, मैंभी तुम दोनोंके पीछे २ इस जगत्में अव्यक्त रीतिसे विचरूंगा ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥

अठ्ठाईसवें अध्यायमें वैदर्भीका आख्यान कहनेसे पुरंजनराजाके स्त्रीकी चिंतासे स्त्रीजन्म होनेका वर्णन किये पीछे, प्रारब्धयोगसे उसका मोक्ष हुआ. यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-हे प्राचीनबर्हिराजा ! भयनामक यवनराजके जो सैनिक ( रोग ) थे. वे प्रज्वार और कालकन्याके साथ इस पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ १ ॥ महाराज ! उन्होंने आकर, एक दिन पुरंजनराजाकी पुरी कि- जो पृथ्वीके वैभवोंसे परिपूर्ण और एक बूढे सर्पसे पालित थी, उसे बडे वेगके साथ घेर ली ॥ २ ॥ कालकन्या कि- जिससे दबा हुआ पुरुष तुर्त निःसार हो जाया करता है. वहभी बलात्कारसे पुरंजन राजाकी पुरीको भोगने लगी ॥ ३ ॥ कालकन्या

नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥ प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥ त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥ ॥ २ ॥ कालकन्याऽपि बुभुजे पुरंजनपुरं बलात् ॥ ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरंजनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान्कुटुंबी ममताकुलः ॥ ५ ॥ कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गंधर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥ ७ ॥

जिसे भोग रही है ऐसी इस सारी नगरीमें चारों तर्फके दरवाजोंमें हो, प्रवेश करके यवनराजके सैनिक यवनलोग उसे अच्छी तरह पीड़ित करने लगे ॥ ४ ॥ इसप्रकार जब अपनी नगरी पीड़ित हुई तब कुटुंबी व ममतासे आकुल भया हुआ वह अभिमानी पुरंजन अनेक प्रकारके दुःख पाने लगा ॥ ५ ॥ कालकन्याने जिसका आलिंगन किया है ऐसा, वह कृपण और कांतिहीन विषयी पुरंजन बुद्धि और ऐश्वर्यहीन ( उठने बैठने आदिमें असमर्थ ) हो गया ॥ ६ ॥ पुरीका गंधर्व और यवन विध्वंस करने लगे. पुत्र, पौत्र, अनुचर इंद्रियां व कार्यकर्ता ( इंद्रियोंके देवता ) ये सब बदलकर ( मनवांछित विषय न देने और अवांछित विषय देनेसे ) अनादर करने लगे ( स्वाधीनमें न रहे ). और रानीनेभी स्नेहका परित्याग कर दिया. ( बुद्धिसे किसी प्रकारका निश्चय नहीं हो

सकता इससे कहा कि- बुद्धिने स्नेहका परित्याग करदिया ) ॥ ७ ॥ अपने आत्माको जरासे ग्रसित और पांचाल देश ( विषयों ) को शत्रुओं ( विघ्नों ) से पीड़ित देखकर, राजा पुरंजन अपार चिंतामें पड़ा किसीतरहभी उसे उस दुःखकी निवृत्तिका उपाय नहीं मिला ॥ ८ ॥ यद्यपि सर्वविषय कालकन्याके भोगनेसे निःसार हो गये थे तथापि उनकी वांछा करता वह दीन पुरंजन परलोकसंबंधी कल्याणोंसे तथा इस लोकसंबंधी पुत्रादिकोंके स्नेहसे शून्य होनेपरभी पुत्र व स्त्रीका लालन करता था ॥ ९ ॥ इसप्रकार असावधान रहनेसे कालकन्यासे मर्दन की हुई वह नगरी गंधर्व व यवनोंसे दबायी गयी. तब यद्यपि राजा उस नगरीको छोड़ना

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पंचालानरिदूषितान् ॥ दुरंतचिंतामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥
कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥ गंधर्वयवनाक्रांतां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यां संदह्यमानायां स पौरः सपरिच्छदः ॥ कौटुंबिकः कुटुंबिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥ १२ ॥ यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ॥ पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥ गंतुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥

नहीं चाहताथा. परंतु दुखी होकर, छोड़ने लगा ॥ १० ॥ इतनेमें भय ( मृत्यु ) का बड़ा भाई प्रज्वार ( कालज्वर ) आ उपस्थित हुआ. और भाईको प्रसन्न करनेके लिये उसने उस समग्र पुरीको जला दिया ॥ ११ ॥ जब यह पुरी जलने लगी तब पुरके लोगोंके और कुटुंबके साथ वह कुटुंबी पुरंजन अपनी स्त्री और पुत्रादिकोंके साथ परिताप करने लगा ॥ १२ ॥ कालकन्याने जिसको घेर लिया है ऐसी, इस पुरीके सब द्वार जब यवनोंने रोंक लिये. और प्रज्वारने इसमें आग लगा दी. तब वह पुरपाल ( नाग ) भी संतप्त होने लगा ॥ १३ ॥ अत्यंत दुःखसे अतीव कांपता हुआ यह नाग जब नगरीकी रक्षा न करसका तब उसने अग्निसहित यानी जलते वृक्षके कोटरमेंसे जैसे सर्प निकलनेकी इच्छा करे, वैसे उस नगरीसे निकलना चाहा ॥ १४ ॥

जब पुरंजन राजाके अंग शिथिल हो गये. और गंधर्वोंने पराक्रमका नाश कर दिया तथा शत्रु यवनोंने चारोंओरसे घेर लिया.
तब वह रुदन करने लगा ( कफसे कंठ रुक जानेसे कंठ घरघर करने लगा ) ॥ १५ ॥ पुत्र, पौत्र, कन्या, बहू, दायाद, नौकर
तथा जिसमें केवल स्वत्वमात्र अवशिष्ट रहा था ऐसा जो कुछ घर, ( भोग नहीं हो सकता था इससे घरआदिमें केवल ममता
शेष रहगई थी ) भंडार व सामान वगैरे था ॥ १६ ॥ उसे अहंता ममतासे अपना मान कर, घरोंके भीतर कुमतिके कारण बंधा-
हुआ वह विचारा गृहस्थी पुरंजन जब स्त्रीसे वियोग होनेका समय आया, तब विचार करने लगा कि- ॥ १७ ॥ मैं जब इस

शिथिलावयवो यर्हि गंधर्वैर्हृतपौरुषः ॥ यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥ १५ ॥ दुहितृः पुत्रपौ-
त्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥ स्वत्वावशिष्टं यत्किंचिद्गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥ अहंममेति स्वी-
कृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥ १७ ॥ लोकांतरं गतवति म-
य्यनाथा कुटुंबिनी ॥ वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती ॥ १८ ॥ न मय्यनाशिते भुंक्ते ना-
स्नाते स्नाति मत्परा ॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥ १९ ॥ प्रबोधयति माऽविज्ञं व्यु-
षिते शोककर्शिता ॥ वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥ कथं नु दारका दीना दारकीर्वा-
परायणाः ॥ वर्तिष्यंते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥ २१ ॥

लोकको छोड़कर, दूसरे लोकमें चला जाऊंगा, तब यह अनाथ और कुटुंबवाली विचारी स्त्री अपने बालबच्चोंका शोक करती
किस प्रकार निर्वाह करेगी ? ॥ १८ ॥ यह ऐसी पतिव्रता है, कि- मुझे भोजन कराये विना भोजन नहीं करती है, स्नान कराये
विना स्नान नहीं करती है. और जब मैं क्रोध करता हूं, तब बहुत डर जाती है. और मैं झिड़कता हूं, तब भयके मारे पीछा
कुछभी नहीं कहती है ॥ १९ ॥ जब मुझे बोध नहीं रहता, तब उपदेश करती है. मैं परदेश जाता हूं तब शोकसे कृश हो
जाती है. यह पुत्रोंकी माता है, इसलिये गृहस्थके व्यवहारको चलावेगी. अथवा मेरे विरहको न सहकर, मर जायगी ॥ २० ॥
ये अनाथ पुत्र और पराया धन कन्या मेरे मरे पीछे किसप्रकार निर्वाह कर सकेंगे? इनकी वो दशा होगी जो दशा समुद्रके

बीच नौका टूटनेपर नौकामें बैठेहुए लोकोंकी हुआ करती है ॥ २१ ॥ इसप्रकार वह आप शोक करनेके योग्य नहीं था ( ईश्वरका अंश होनेसे ), तथापि दीन बुद्धिसे पुरंजन राजा शोक करने लगा. इतनेमें इसे पकड़नेको भय नाम यवनोंका राजा आ पहुंचा ॥ २२ ॥ इस पुरंजनको पशुकी तरह बांध कर, यवनलोक जब अपने स्थानकी ओर ले चले. तब अति आतुर और शोकाकुल उसके कुटुंबी उसके पीछे दौड़े ॥ २३ ॥ यवनोंने जब सब तरहसे नागको तंग कर दिया, तब वहभी नगरीको छोड़-कर, चला गया. और उसके बाहिर निकलतेही वह नगरी उसीक्षण विशीर्ण होकर, पंचमहाभूतरूप होगयी ॥ २४ ॥ बलवान्

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचंतमतदर्हणम् ॥ ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद्यव-नैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ॥ अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचंतो भृशमातुराः ॥ २३ ॥ पुरीं विहायोपग-त उपरुद्धो भुजंगमः ॥ यदा तमेवानुपुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥ २४ ॥ विकृष्यमाणः प्रसभं यव-नेन बलीयसा ॥ नाविंदत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदया-लुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरंतोऽमीवमस्य तत् ॥ २६ ॥ अनंतपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥ शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासंगदूषितः ॥ २७ ॥ तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अ-नंतरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८ ॥

यवन बलात्कारसे उसे खेंचकर लेजाने लगा, तथापि अज्ञानावृत इस पुरंजनको अपना पूर्वमित्र याद नहीं आया ॥ २५ ॥ यज्ञ-आदि सकाम कर्मोंमें इस पुरंजनने निर्दयतासे जिन जिन पशुओंका वध किया था, वे सब पशु उसके अपराधको याद रख, क्रोधित होकर, वहां कुल्हाड़ोंसे उसे काटने लगे ॥ २६ ॥ स्त्रीके प्रसंगसे दूषित भयाहुआ और अपार अंधकारमें बूड़ाहुआ स्मृतिशून्य वह राजा पुरंजन अनेक वर्षोंतक नरकके दुःखको भोगकर ॥ २७ ॥ मनमें उसी स्त्रीकी लगन रहनेसे विदर्भ ( शास्त्रविहित ) सत्कर्म

---

१ यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥ तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ १ ॥ सोही गीतामें भगवान्ने अर्जुनके प्रति कहा है कि–हे कौन्तेय ( अर्जुन ) अंतमें जिस २ भावको स्मरण करते शरीर त्यागता है उसी २ भावको नित्य तद्भाव भावित होता हुआ पाता है ॥

नाम महाराजाके घर कन्याका जन्म पाया ॥ २८ ॥ ( इस प्रकरणमें अवश्य कथनीय उपयोगी विषय इतनाही है कि–पुरंज-करनेवाला ) नकी स्त्रीकी लगनसे स्त्रीजन्म हुआ. परंतु पतिव्रताके ध्यानसे और पूर्वजन्मके धर्मके कारण सदाचारवाले विदर्भराजाके घर जन्म हुआ. और उस धार्मिक राजाके सत्संगसे शुद्धि पानेके हेतु मलयध्वजनामक वैष्णवका सत्संग हुआ. उससे विष्णुभक्ति व वैराग्य उत्पन्न हुवा. उसी विष्णु भक्ति और वैराग्यके हेतु उसी पतिरूप गुरुकी पतिव्रताके धर्मसे सेवा करते २ भगवान्‌की कृपासे ज्ञान प्राप्त होनेके कारण स्त्रीजन्म पायेहुए पुरंजनका मोक्ष हुआ. ) इस विदर्भ राजाकी कन्या ( पूर्व जन्ममें जो पुरंजन था उस ) का स्वयंवर हुआ. वहां ऐसा नियम रक्खागया, कि– जिस राजाका पराक्रम अधिक होवे, उसे यह कन्या मिले. तब पांड्य राजा ( पंडा यानी बुद्धि पांड्य अर्थात् बुद्धिमान् ) कि–जो शत्रुओंको जीतनेवाला और दक्षिणदेशमें ( दक्षिणदेशमें भक्ति अधिक है इससे विदित होता है

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान्पांड्यः परपुरंजयः ॥ २९ ॥ तस्यां स जनयांचक्रे आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्तसुतान्सप्तद्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥ एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वंतरं परम् ॥ ३१ ॥

कि–वह महावैष्णव था. ) उत्तम गिना जाता था. उस राजाने युद्धमें दूसरे शत्रुओंको जीतकर, विदर्भराजाकी कन्याका पाणिग्रहण किया ( पुरंजनको भगवद्भक्तका सत्संग मिला ) ॥ २९ ॥ इस पांड्य राजाके उस स्त्रीमें श्यामनेत्रवाली एक कन्या हुई ( भगवत्सेवामें प्रीति श्यामनेत्रवाली कहनेसे जाना जाता है कि–श्याम स्वरूपको देखनेवाली ), और उससे छोटे सात पुत्र हुए ( श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, पूजन, वंदन और दासभाव ) कि–जो द्रविड़देशके पालक माने जाते हैं. ( श्रवण–आदि भक्ति-द्वाराही द्रविड़ देशकी भली भांति रक्षा होती है. यह बात प्रसिद्ध है )॥ ३० ॥ हे राजा ! इनमेंसे एक एकके अर्बुद अर्बुद अर्थात् अनंत पुत्र हुए. ( श्रवण–आदि भक्तिके सात्विक, राजस और तामस–आदि अनेक भेद हैं ) कि–जिनके वंशज ( अनेक प्रकारके

१ दूसरे ठौर सखाभाव और आत्मनिवेदन ये दो बढ़ाकर, नवधा भक्ति कही है परंतु ये दोनों आत्मा देहादिकसे भिन्न हैं ऐसा शुद्ध ज्ञान भये पीछे हुआ करते हैं तासों यहां भक्तिके सात प्रकार कहे हैं.

संप्रदाय ) इस पृथ्वीका मन्वंतरसेभी कुछ अधिक कालपर्यंत पालन करेंगे ( अज्ञान आदिसे बचावेंगे ) ॥ ३१ ॥ पांड्यराजाकी कन्या ( भगवत्सेवारुचि ) कि-जो उत्तम नियम ( शम दमादिक ) धारण करती थी. उसके साथ अगस्त्य ( मन ) मुनिने विवाह किया. अगस्त्यमुनिके इस स्त्रीमें दृढच्युत नाम ( वैराग्य ) पुत्र हुआ. और दृढच्युतके इध्मवाह नाम पुत्र हुआ. ( ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरण जाना. ब्रह्मज्ञानके वास्ते गुरुके निकट जाना तब समिध हाथमें रखनेके लिये वेदमें आज्ञा है इसलिये इध्म अर्थात् समिधका वाह यानी उठानेवाला यह अर्थ है, सो गुरुके शरण जानेको सूचित करता है. वैराग्य होनेसे गुरुके शरण जाना बन सकता है. तासों

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥ यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥ ३२ ॥ विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥ ३३ ॥ हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पांड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥ ३४ ॥ तत्र चंद्रमसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्राऽत्मनोमृजन् ॥ ३५ ॥

वैराग्य और इध्मवाहके पिता पुत्रका संबंध कहा. और वैराग्य पिता अगस्त्य अर्थात् मन और माता भगवत्सेवा रुचिको कहा सो यहभी संभवित है ) ॥ ३२ ॥ पांड्यराजाने अपने पुत्रोंको पृथ्वीके विभाग करके बांट दिये ( श्रवण आदि भक्तिके प्रकाररूप पुत्रोंको उसके अंतर्गत प्रकार कह दिये. ) फिर वह राजा भगवान्‌का आराधन करनेके लिये कुलाचल पर्वतपर जाने लगा ॥ ३३ ॥ तब उसकी मदिरासे अरुणनेत्रवाली रानी वैदर्भी जैसे चंद्रिका चंद्रमाके पीछे जाती है; ऐसे घर पुत्र और वैभवको त्यागकर, अपने पतिके पीछे चली ( स्त्रियोंके वास्ते पतिसेवाही मुख्य है, क्योंकि स्त्रियोंके तो पतिही गुरु व ईश्वररूप है ) ॥ ३४ ॥ वहां चंद्रमसा, ताम्रपर्णी और वटोदका नाम बड़ी २ नदियां हैं. उनके पवित्र जलसे अपने अंतःकरणके और शरीरके मलोंका नाश

---

१ बाह्यमाध्यात्मिकं वापि दुःखमुत्पाद्यतेऽपरैः । न कुप्यति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ॥ इत्यत्रिसंहितायाम् ॥ अर्थ--बाहर और भीतरसम्बन्धी दूसरोंसे उत्पन्न किया दुःख होनेपरभी न क्रोध करे और न मारे इसे दम कहते हैं ॥ यह अत्रिसंहितामें लिखा है ॥ २ वसाशुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् कर्णविट् नखाः ॥ श्लेष्मास्थिदूषिकाः स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ इत्यत्रिसंहितायाम् । अर्थ--वसा, वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कर्णविट् यानी खूंट, नख, श्लेष्मा यानी कफ, हड्डी, दूषिका यानी आंखोंका मल, पसीना ये मनुष्योंके बारह मल हैं ॥ यह अत्रिसंहितामें लिखा है.

वह राजा कंद, बीज, मूल, फल, पत्ते, घास व जलसे निर्वाह करता शनैः २ शरीरका शोष हो जाय, ऐसा करता ॥ ३५ ॥ वह राजा कंद, बीज, मूल, फल, पत्ते, घास व जलसे निर्वाह करता शनैः २ शरीरका शोष हो जाय, ऐसा तप करने लगा ॥ ३६ ॥ समदृष्टि रखनेवाला यह राजा सर्दी, गर्मी, वायु, वर्षा, भूख, प्यास, प्रिय अप्रिय और सुख दुःख इत्यादि सब द्वंद्वोंका सहन करने लगा ॥ ३७ ॥ यम, नियम, तप और उपासनासे जिसकी वासनायें भस्म होगयी हैं ऐसे, इस राजाने इंद्रियां, पवन व मनको वश करके, अपना चित्त परब्रह्ममें लगाया ॥ ३८ ॥ देवतानके सौ वर्षपर्यंत स्थिर होकर, वह राजा स्थाणुकी तरह एक ठौर खड़ा रहा. और परमेश्वरमें प्रीति रखनेसे उसे देहादिक अनात्म वस्तुनका भान न रहा ॥ ३९ ॥ आत्मा देहादिकका प्रकाशक होनेसे देहादिकसे भिन्न है. और अंतःकरणकी वृत्ति कि—जो जड़ है, उसकाभी प्रकाशक होनेसे उससेभी

कंदाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखे इति द्वंद्वान्यजयत्समदर्शनः ॥ ३७ ॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन्रतिम् ॥ ३९ ॥ स व्यापकतयाऽऽत्मानं व्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनि ॥ विद्वान्स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४० ॥ साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ॥ विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥ परे ब्रह्मणि चाऽऽत्मानं परं ब्रह्म तथाऽऽत्मनि ॥ वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२ ॥

भिन्न है. किसी समय ऐसा स्वप्न आ जाता है कि—मेरा शिर कट गया तो, उस समय उस बातका जाननेवाला आत्मा जैसे स्पष्ट रीतिसे जुदा प्रतीत होता है, वैसे जाग्रत अवस्थामेंभी सर्व प्रकारकी अंतःकरणकी वृत्तियोंसे उन उन वृत्तियोंका प्रकाशक अर्थात् जाननेवाला आत्मा जुदा है, इस प्रकार अपने मनमें यथार्थ रीतिसे जाननेवाला यह पांड्यराजा दूसरे सब पदार्थोंसे उपरामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ जिसका निरूपण, साक्षात् भगवान्‌रूप गुरुने वेदमें किया है ऐसे, शुद्ध ज्ञानरूप दीपकका चौतर्फ अखंड प्रकाश होनेसे 'जो ब्रह्म है वही मैं हूं' और 'जो मैं हूं वही ब्रह्म है.' ऐसा यथार्थ जाननेमें आया ( जो ब्रह्म है वह मैं हूं ऐसा निश्चय होनेसे शोकआदिकी निवृत्ति होती है और मैं हूं वोही ब्रह्म है ऐसे निश्चयसे ब्रह्मकी परोक्षता निवृत्त

होती है. ) और आखिर यह यथार्थ ज्ञानभी एक जातकी अंतःकरणकी वृत्ति है. तासों उसका उपराम हो जानेसे वह केवल अद्वैतरूपसे रहा. अर्थात् जीवन्मुक्त हुआ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ विदर्भराजाकी कन्या कि- जो पतिव्रता होनेसे सर्वसुखको त्यागकर, ब्रह्मवेत्ता पति मलयध्वजकी सेवामें प्रीतिपूर्वक लगीहुई थी ॥ ४३ ॥ वह नियमोंका पालन करनेसे दुबली होगयी. तथा शिरके केशोंकी लटियां बंध गयीं व चीरवस्त्र पहने थी. और जैसे धूमरहित अग्निकी ज्वाला, अग्नि शांत होनेपर स्वयमेव शांत हो जाया करती है, ऐसे पतिके समीपमें वहभी पतिकी नाईं शांतरूप हो गयी ॥ ४४ ॥ जब इसे अपने प्रियतमके मरनेकी खबर नहीं

पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ॥ ४३ ॥ चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥ बभावुपपतिं शांता शिखा शांतमिवानलम् ॥ ४४ ॥ अजानती प्रियतमं यदोपरतमंगना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथा पूर्वमुपाचरत् ॥ ४५ ॥ यदा नोपालभेतांघ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ॥ आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥ ४६ ॥ आत्मानं शोचती दीनमबंधुं विक्लवाऽश्रुभिः ॥ स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥ ४७ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् ॥ दस्युभ्यः क्षत्रबंधुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥ ४८ ॥ एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ॥ पतिता पादयोर्भर्तू रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥ चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥ आदीप्य चानुमरणे विलपंती मनो दधे ॥ ५० ॥

पड़ी तो, वह अच्छीतरह स्थिर आसन बांधकर, पूर्ववत् पतिकी सेवा करने लगी ॥ ४५ ॥ परंतु सेवा करते २ जब पतिके चरणोंमें गर्मी प्रतीत न हुई, तब यूथसे बिछुरीहुई मृगीकी तरह वह मनमें अतीव उद्वेगयुक्त हुई ॥ ४६ ॥ अनाथ व दीन अपने आत्माका शोच करती और आंसुओंके प्रवाहसे स्तनोंको तर करती, वह वैदर्भी विव्हल होकर, अरण्यके बीच ऊंचे स्वरसे विलाप करने लगी कि- ॥ ४७ ॥ हे राजेंद्र ! उठो उठो. यह पृथ्वी चोर व नीच क्षत्रियोंसे भयभीत हो रही है. सो इस समुद्रपर्यंत पृथ्वीकी रक्षा करो; क्योंकि यह कार्य आपहीके योग्य है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार विलाप करती और जंगलके बीच रुदन करत[illegible] यह वैदर्भी पतिका अनुसरण कर, उसके चरणोंमें गिरकर, आंसू बहाने लगी ॥ ४९ ॥ फिर इस वैदर्भीने रुदन करते २ लक[illegible]ड़ोंकी

चिता चुनकर, उसपर पतिके शरीरको रक्खा और फिर उसमें अग्नि लगाकर, आपनेभी उसके साथ मरनेका विचार किया ॥ ५० ॥ हे राजा! उस समय इसका पूर्वमित्र ( ईश्वर ) कि- जो महाज्ञानी था, उसने ब्राह्मणके वेषसे वहां आकर, प्रियवचनसे सांत्वना देते यह वचन कहा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण बोला कि- तू कौन है? और किसकी है? और जो यह चितामें सोता है यह कौन है? कि- जिसके वास्ते तू शोच करतीहै. और तू मुझे जानती है? कि- 'यह मेरा मित्र है.' सृष्टिके पहले मुझमें स्थित होकर, तूने बहुतसे सुखका अनुभव किया है ॥ ५२ ॥ हे मित्र! तू मुझे नहीं जानता होगा. परंतु इतनी तो स्मृति है कै नहीं? कि- मेरे एक अविज्ञात नामवाला मित्र था ( अनादि ईश्वर ). तू मुझे छोड़कर, पृथ्वीके विषयभोगकी लालसासे उन विषयोंके भोगनेका

तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सांत्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥५१॥ ब्राह्मण उवाच॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥ अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥ हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामंतरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४॥ स त्वं विहाय मां बंधो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५॥ पंचारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥ षट्कुलं पंचविपणं पंचप्रकृति स्त्रीधवम् ॥ ५६ ॥ पंचेंद्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिंद्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥

स्थान ढूंढ़नेको गया था ॥ ५३ ॥ हे आर्य[1]! तू और मैं दोनों मानससरोवर ( हृदय ) में रहनेवाले हंस ( शुद्ध ) हैं. सो आपन दोनों मित्र हजारों वर्षोंतक घर विनाही रहे थे ( महाप्रलय हुआ तबतक ) ॥ ५४ ॥ हे मित्र! मुझे छोड़कर, विषयसुखकी लालसासे तू पृथ्वीमें गया. वहां एक स्त्री ( माया ) की बनायीहुई नगरी देखनेमें आयी ॥ ५५ ॥ इस पुरीमें पांच तो बगीचे थे, नौ द्वार थे, एक पुरीका पालक था, तीन दुर्ग ( किले ) थे, छः ६ व्यापारी थे, पांच दूकानें थीं, पांचही मूलकारण थे और स्त्री स्वामिनी थी ॥ ५६ ॥ हे राजा! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच तो बगीचे जानो. शरीरमें

१ पूर्व जन्मका स्मरण दिलानेके वास्ते वरजातिका संबोधन दिया है-

जो नौ छिद्र हैं उन्हें द्वार समझो. प्राणको पुरपालक जानो. पृथ्वी, जल और तेज इन्हें दुर्ग समझो. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण ये पांच, ज्ञानेंद्रियां और छटा मन इन छहोंको व्यापारी जानो ॥ ५७ ॥ हाथ, पांव, वाणी, लिंग और गुदा इन पांच कर्मेंद्रियोंको दूकानें जानो. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतोंको मूलकारण जानो. और बुद्धिको स्वामिनी मानो, कि–जिसके वश होनेसे उसका पति वह आत्मा अपने स्वरूपको भूल जाता है ॥ ५८ ॥ इस नगरीमें जाकर, तू उसकी स्वामिनी स्त्रीका दास बनकर, उसके साथ रमण करने लगा. तासों तेरी अपने स्वरूपकी स्मृति जाती रही. हे मित्र ! केवल इस स्त्रीके प्रसंगसे तेरी ऐसी दुर्दशा हुई है ॥ ५९ ॥ तू न तो विदर्भदेशके राजाकी पुत्री है और न यह पांड्य राजा तेरा

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुद्ध्यते ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्संगादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ॥ न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम् ॥ मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्याऽऽवयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो ॥ न नौ पश्यंति कवयश्छिद्रं जातुमनागपि ॥ ६२ ॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवांतरमावयोः ॥ ६३ ॥

पति है और जिस पुरंजनी ( बुद्धि ) ने तुझे नौ द्वारवाली नगरीमें रोंक रक्खा था उसका तू पति नहीं है ॥ ६० ॥ पूर्वजन्ममें तू अपने तई पुरुष मानताथा और इस जन्ममें तू अपने आत्माको स्त्री मानता है. परंतु ये दोनों बातें यथार्थ नहीं हैं; क्योंकि यह तो केवल मेरी बनायी हुई माया है. आपन तो दोनों हंस हैं. अपना जो सत्य स्वरूप है वह मैं अब कहता हूं उसपर ध्यान रख ॥ ६१ ॥ 'जो मैं हूं वही तू है;' तू कोई दूसरा नहीं है और 'तू है वही मैं हूं' इस बातको तू विचार कर देख. विद्वान्-लोग तेरे और मेरे बीचमें कदापि किंचित्मात्रभी भेदभाव नहीं देखते ॥ ६२ ॥ एकही शरीरका प्रतिबिंब दर्पणमें देखा जाय तो बड़ा निर्मल और स्थिर दीख पड़ता है, वही प्रतिबिंब यदि किसी दूसरेकी आखमें देखा जाय तो, छोटा मलिन और चंचल दीख पड़ता है, इसीतरह आपन दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिका कियाहुआ भेद सर्वज्ञत्व और अज्ञत्व आदि प्रतीत होता

है ॥ ६३ ॥ नारदजीने कहा कि–इसप्रकार उस हंसनें इस मानससरोवरके रहनेवाले हंसको समझाया. तब इसने अपने स्वरूपमें स्थित होकर, विचार किया और विचार करतेही उसे वो स्मृति ( मैं ब्रह्म हूं ) प्राप्त हुई कि–जो उस पूर्व हंसके वियोगसे नष्ट हो गयी थी ॥ ६४ ॥ हे प्राचीनबर्हि राजा ! मैं तेरे पास साक्षात् आत्मज्ञानकी बात करता तो, यह तेरे समझमें नहीं आती. अतएव पुरंजनराजाके इतिहासके मिषसे यह वार्ता परोक्षरीतिसे मैं आपको दिखा चुका हूं; परोक्षरीतिसे वर्णन करनेका प्रयोजन यह है. कि–जगत्के पालक भगवान् इसप्रकार परोक्षरीतिसे बहुत प्रसन्न होते हैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ उनतीसवें अध्यायमें परोक्ष

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥ स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥ ६४ ॥ बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥ ६५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पुरंजनोपाख्यानेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥ कवयस्तद्विजानंति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पुरुषं पुरंजनं विद्या यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥

कहीहुई वार्ताका स्पष्टार्थ कहे पीछे स्त्रीके प्रसंगसे संसार होता है और भगवान्के प्रसंगसे मोक्ष होता है, इस विषयका वर्णन होगा ॥ १ ॥ प्राचीनबर्हिने प्रश्न किया–हे मुनि ! आपका वचन हमारी समझमें नहीं आ सकता; क्योंकि ऐसी गूढ वार्ता तो ज्ञानीलोक समझ सकते हैं. हम तौ केवल कर्मकांडमें मोहित होकर, पड़ेहुए हैं सो हमारी समझमें नहीं आ सकती ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि–मैंने जो पुरंजन राजा कहा है उसे तुम जीव जानो; क्योंकि जीव अपने अदृष्टरूप द्वारसे पुर अर्थात् शरीरोंको जन यानी प्रकट करता है, कि–जिन शरीरोंमें कितनेएक एक पैरवाले, कितनेएक दो पांववाले, कितनेएक तीन पांववाले, कितनेएक चार पांववाले, कितने एक बहुत पांववाले और कितनेएक विना पांवकेभी हैं ॥ २ ॥ अविज्ञात नाम जो

जीवका सखा कहा गया, वह ईश्वर जानना; क्योंकि नाम, क्रिया व गुणसे वह किसीके जाननेमें नहीं आता ॥ ३ ॥ जीवके जब सब विषय भोगनेकी इच्छा हुई. तब उन शरीरोंमेंसे नौ छिद्र और दो हाथ व दो पांववाले मनुष्य शरीरको उसने अच्छा समझा ॥ ४ ॥ मैंने जो स्त्री कही वह बुद्धि है, कि– जिसके निमित्त मैं और मेरा करनेमें आता है. और इस शरीरमें जीव जिसके अध्याससे इंद्रियोंद्वारा विषयोंको भोगा करता है ॥ ५ ॥ उस बुद्धिके जो सखा कहे गये वे इंद्रियां हैं, कि– जिनमेंसे कितनीएक इंद्रियोंसे विषयोंका ज्ञान होता है और कितनीएकसे केवल कर्म होता है. जो बुद्धिकी सखियां कही गयीं वे इंद्रियोंकी वृ-

यदा जिघृक्षन्पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्तांघ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुंक्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥ ५ ॥ सखाय इंद्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥ सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पंचवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥ बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेंद्रियनायकम् ॥ पंचालाः पंचविषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥ ७ ॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥ द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिंद्रियसंयुतः ॥ ८ ॥ अक्षिणी नासिके आस्यमिति पंचपुरः कृताः ॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥ ९ ॥ पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥ रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ १० ॥

त्तियां हैं. और पांच शिरवाला सर्प कहा गया वह पांच वृत्तिवाला ( प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ) प्राण हैं ॥ ६ ॥ जो महाबली सेनापति कहा गया वह मन है; क्योंकि वह मन, ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियका नायक है. पांचालदेश कहागया वह पांच विषय हैं, कि– जिनमें नौ द्वारकी नगरी ( शरीर ) बसती है ॥ ७ ॥ दो नेत्र, दो नाक, दो कान, मुख, शिश्न और गुदा ये नौ द्वार हैं. इन दरवाजोंसे उन उन इंद्रियोंको साथ लेकर, जीव बाहर जाया करता है ॥ ८ ॥ दो नेत्र, दो नाक और मुख ये पांच पूर्वके दरवाजे हैं, दहिना कान दक्षिणका दरवाजा और बायां कान उत्तरका दरवाजा है ॥ ९ ॥ गुदा और शिश्न ये पश्चिम

१ जो वायु हृदयमें रहती है वह. २ जो वायु गुदामें रहती है वह. ३ जो वायु कंठमें रहती है वह. ४ जो वायु नाभिमें रहती है वह. ५ जो वायु सर्वशरीरमें व्यापकर रहती है वह.

तर्फके दरवाजे हैं. खद्योता और आविर्मुखी नाम जो दरवाजे कहे गये वे बराबर एक सीधमें बनेहुए नेत्र हैं, कि-जिनसे जीवात्मा द्युमान् यानी चक्षु इंद्रियकी सहायतासे इन दोनों द्वारोंसे विभ्राजित नाम देशमें जाता है अर्थात् रूपको देखता है ॥ १० ॥ नलिनी और नालिनी नाम दो द्वार कहे गये वे नाक हैं, और सौरभ देश कहा गया वह गंध है. तथा अवधूत मित्र कहा गया वह घ्राण इंद्रिय है. मुख्यद्वार कहा गया वह मुख है. विपण अर्थात् वाणी और रसज्ञ अर्थात् रसना इंद्रिय ये दोनों मित्र हैं ॥ ११ ॥ आपण देश कहा गया वह भाषण और बहूदन देश जो कहा गया वह नानाप्रकारका अन्न है. पितृहू नाम द्वार दक्षिणकर्ण और देवहूनाम द्वार वह वामकर्ण है ॥ १२ ॥ दक्षिण पांचालदेश कहा गया वह प्रवृत्तिशास्त्र और उत्तरपांचाल देश

नलिनी नालिनी नासे गंधः सौरभ उच्यते ॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥ ११ ॥ आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमंधो बहूदनम् ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ १२ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पंचालसंज्ञितम् ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥ १३ ॥ आसुरीमेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥ १४ ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोंऽधौ तु मे शृणु ॥ हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥ १५ ॥ अंतःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ॥ तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥ १६ ॥

वह निवृत्तिशास्त्र समझना, जो श्रुतिधर कहा गया वह श्रोत्र इंद्रिय है. कि-जिससे कियेहुए शास्त्रश्रवणसे पितृलोक और देवलोककी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ आसुरी नाम जो पश्चिम द्वार कहा गया वह शिश्न है. दुर्मद मित्र जो कहा गया वह उपस्थ इंद्रिय है. व्यवायदेश कहा गया वह पामरलोकोंके करनेयोग्य मैथुन है. निर्ऋति नाम द्वार कहागया, वह गुदा है ॥ १४ ॥ लुब्धक कहा गया वह पायु इंद्रिय है. वैशसदेश कहा गया वह नरक है. अब अंध दरवाजे कहता हूं सो तू सुन. अंध दरवाजे हाथ और पांव ये दो हैं, कि-जिनसे जीव काम करता है और चलता है ॥ १५ ॥ अंतःपुर जो कहा गया वह हृदय है और उसमें जो नाजर कहा गया वह मन है. कि-जिस मनके सत्व, रज और तमोगुणसे हृदयमें प्रसाद, हर्ष और मोह हुआ करता है ॥ १६ ॥

जीवात्मा स्वयंसाक्षी है, तथापि बुद्धिके गुणोंसे आवृत होनेके कारण दर्शन व स्पर्शनआदि जो जो कार्य बुद्धि करती है, उन सब कर्मोंको अपने कियेहुए मानता है. और स्वप्नमें उसीके अनुसार विकारको प्राप्त होता है तथा जाग्रत अवस्थामें वैसेही इंद्रियोंके परिणामोंको बदलता रहता है ॥ १७ ॥ रथ कहा गया वह स्वप्न अवस्थाका शरीर है. घोड़े इंद्रियां हैं. रथकी शीघ्रगति जो कही गयी वह इस हेतुसे कि- वर्षके वेगके समान उसका वेग कहींभी नहीं रुकता. दो पहिये कहेगये वे पुण्यपाप हैं. तीन बांस कहे गये वे तीन गुण हैं. पांच बंधन कहे गये वे पांच प्राण हैं ॥ १८ ॥ बागडोर कही वह मन है. सारथी बुद्धि है. बैठनेकी जगह हृदय है. सुख-दुःखआदि जो द्वंद्व हैं वे जुआ हैं. सामान कहा गया वह पांच विषय हैं. पर्दे कहे गये वे सात

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥ देहो रथस्त्विंद्रियाश्वः संवत्सररयो गतिः ॥ द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबंधुरः ॥ १८ ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वंद्वकूबरः ॥ पंचेंद्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥ आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ एकादशेंद्रियचमूः पंचसूनाविनोदकृत् ॥ संवत्सरश्चंडवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २० ॥ तस्याहानीह गंधर्वा गंधर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥ हरंत्यायुः परिक्रांत्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनंदति ॥ स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥ २२ ॥

धातु हैं ॥ १९ ॥ स्वप्नअवस्थामें बाहिर फिरनेका कहा गया वह मृगतृष्णाके जलके सदृश पदार्थोंपर कर्मेंद्रियोंसे दौड़ना समझना चाहिये. उसके साथ सेना कही गयी वह ग्यारह इंद्रियां हैं. और मृगया कही वह पांच ज्ञानेंद्रियोंसे विषयोंका सेवन है. चंडवेग गंधर्व कहा गया वह प्रचंड वेगवाला वर्ष जानना. कि- जिस वर्षपरसे कालका प्रमाण हुआ करता है ॥ २० ॥ तीनसौ साठ गंधर्व कहे गये वे वर्षके दिन हैं. तीनसौ साठही काली और गोरी गंधर्वियां कही गयीं वे शुक्ल और कृष्णपक्षकी रात्रियां हैं. ये दिन और रात्रियां परिभ्रमण करके आयुका नाश किया करती हैं ॥ २१ ॥ कालकन्या कि- जिसे कोईभी मान नहीं देता उसे जरा अवस्था समझना. यवनोंका राजा अर्थात् मृत्यु उसने लोकोंका नाश करनेके वास्ते जराको अपनी बहन ठहरायी ॥ २२ ॥

मृत्युके चारोंओर फिरनेवाले जो सैनिक यवन कहे गये वे आधि ( मनपीड़ा ) और व्याधि ( शरीरसंबंधी पीड़ा ) जानो. जो प्रज्वार कहागया वह शीतोष्णरूपसे दो प्रकारका ज्वर जानो कि-जो लोकोंको दुःख देनेमें बड़ा वेग धारण करता है ॥ २३ ॥ इसीप्रकार दैवकृत अनावृष्टिआदि, भौतिक सिंहादि प्राणिकृत तथा शरीरकृत कुव्यसनआदि, अनेक दुःखोंसे पीड़ित वह अज्ञानी पुरुष स्वयं निर्गुण होनेपरभी प्राण, इंद्रिय और मनके धर्मोंका अपनेमें अध्यास करके क्षुद्र विषयोंकी तृष्णा रखकर, अहंता ममतासे कर्म करता देहमें सौ वर्षपर्यंत रहा करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह जीवात्मा स्वयं परमेश्वररूप होनेपरभी, परमात्मा

आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥ २३ ॥ एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २४ ॥ प्राणेंद्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २५ ॥ यदाऽऽत्मानमविज्ञाय भगवंतं परं गुरुम् ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥ २६ ॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुते वशः ॥ शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥ २७ ॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमःशोकोत्कटान् क्वचित ॥ २८ ॥ क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमंदधीः ॥ देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथा कर्मगुणं भवः ॥ २९ ॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥ चरन्विंदति यद्दिष्टं दंडमोदनमेव वा ॥ ३० ॥

कि-जो परम गुरु भगवान् हैं, उन्हें न जानकर, जब अविद्याके पदार्थोंमें ( देहादिकमें ) लग जाता है ॥ २६ ॥ तब देहाभिमानसे परवश होकर, सात्विक, राजस और तामस कर्म करता रहता है. और वैसे करनेसे उस कर्मके अनुसार जन्म लेता है ॥ २७ ॥ सात्विक कर्म करनेसे किसीसमय उत्तम और ज्ञानवान् जन्म पाता है. राजस कर्म करनेसे कर्म करनेके परिश्रमसे भरेहुए और परिणाममें दुखदायी जन्म पाता है, ऐसेही तामस कर्म करनेसे अज्ञान और शोकसे पूर्ण जन्म पाता है ॥ २८ ॥ यह मंदमति जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार किसीसमय पुरुषका, कभी स्त्रीका, कभी नपुंसकका, कभी देवताका, कभी मनुष्यका और कभी पशुपक्षीका जन्म पाता है ॥ २९ ॥ जैसे क्षुधातुर कुत्ता दीन होकर, घरघरमें भटकताहुआ कहीं तो भात और कहीं डंडाभी

प्रारब्धके अनुसार पाता है ॥ ३० ॥ ऐसेही विषयोंकी तृष्णावाला जीव स्वर्ग, पृथ्वी और अंतरिक्षमें उच्च नीच योनियोंमें भटकताहुआ प्रारब्धके अनुसार सुख दुःख पाया करता है ॥ ३१ ॥ दुःख मिटानेका सांचा उपाय तौ बिलकुल हैही नहीं. कदाचित् कियाभी जाय तोभी दैवसे, प्राणियोंसे और शरीरसे होतेहुए दुःखोंमेंसे किसी दुःखसे वह यथार्थ रीतिसे छूट नहीं सकता ॥ ३२ ॥ जैसे शिरपर भारी बोझ उठाकर, जो आदमी चला जाता है, वह यदि शिर तप जानेसे शिरके बोझको कंधेपर ले लेवे, पर वैसे करनेसे वह बोझ उतराहुआ कभी न कहा जायगा, ऐसेही दुःख मिटानेके जो उपाय हैं वैभी दुःखरूपही हैं, अतएव यह प्राणी दुःखसे कथमपि छूट नहीं सकता ॥ ३३ ॥ दुःखके मूलभूत तो कर्मही हैं. वे कर्म अन्यकर्म करनेसे कदापि मिट नहीं सकते; क्योंकि

तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ॥ तं स्कंधे न स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥ नैकांततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ मनसा लिंगरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३५ ॥ अथाऽऽत्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरंपरा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥ ३६ ॥

कर्ममात्र ज्ञानरहित और वासनासहित हैं, तासों ऐसे प्रकारका एक कर्म अपनेजैसे दूसरे कर्मको यथार्थ रीतिसे मिटा नहीं सकता, एक स्वप्नमें दूसरा स्वप्न आता है तब वह पहला स्वप्न जैसे दूसरे स्वप्नको यथार्थ रीतिसे नहीं मिटा सकता ऐसे एक कर्म और उसे मिटानेवाला दूसरा कर्म ये दोनों अज्ञानजन्य होनेके हेतु एकसे होनेसे उनमेंका एक कर्म दूसरे कर्मको मिटा नहीं सकता ॥ ३४ ॥ जैसे स्वप्न असत्य है तोभी उपाधिरूप मनकी स्वप्नअवस्था होवे तबतक वह मिट नहीं सकता. ऐसे संसार मिथ्या है तोभी मनमें जबतक विषयोंका ध्यान रहे तबतक वह मिट नहीं सकता ॥ ३५ ॥ अतएव अज्ञान कि-जिसके निमित्तसे परम पुरुषार्थरूप आत्माके अखंड प्रवाहरूप संसार हुआ है, उस अज्ञानका नाश गुरुरूप भगवान्‌की केवल भक्तिसेही होता है ॥ ३६ ॥

वासुदेव भगवान्‌में अच्छीतरह दृढ भक्तियोग किया जाय तो उससे वैराग्य प्रकट हो जाता है ॥ ३७ ॥ महाराज ! इस भक्तियोग-का मुख्य आश्रय केवल भगवान्‌की कथाही है. अतएव जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की कथाका श्रवण व निरंतर अध्ययन करे उसे अल्पदिनोंमें भक्तियोग प्राप्त होजाय ॥ ३८ ॥ हे राजा ! निर्मल अंतःकरणवाले तथा भगवद्गुणोंके श्रवण व वर्णनमें जि-नका मन लग रहा है ऐसे, सज्जन वैष्णवलोक जहां होवें ॥ ३९ ॥ वहां महात्मा लोगोंके मुखमेंसे भगवच्चरित्ररूप केवल शुद्ध अमृतकी नंदियां चारोंओर बहा करती हैं. हे राजा ! इन नदियोंका जो लोग अलंबुद्धिरहित होकर, सावधान कानोंद्वारा पान

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥ सो-ऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥ ३८ ॥ यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्महन्मु-खरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवंति ॥ ता ये पिबंत्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशंत्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥ ४० ॥ एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥ न करोति हरे-र्नूनं कथाऽमृतनिधौ रतिम् ॥ ४१ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः ॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदंता ब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥ अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥ पश्यंतोऽपि न पश्यंति पश्यंतं पर-मेश्वरम् ॥ ४४ ॥

करें, उन भक्तिरसिक लोगोंको भूंख, प्यास, भय, शोक व मोह कोईभी छू नहीं सकता ॥ ४० ॥ सत्संगविना स्वयं आप कथा-का चिंतवन करने बैठे तो,स्वाभाविक भूंख, प्यासआदि उपद्रवोंसे उपद्रवयुक्त मनुष्यके आलस्यादिकोंके हेतु रसकी प्राप्ति होनी अतिकठिन है और रसावेशविना भगवान्‌की कथारूप अमृतके समुद्रमें यथार्थ प्रीतिका होना असंभवित है ॥ ४१ ॥ प्रजापति-योंके पति ब्रह्माजी, महादेव, मनु, दक्षआदि प्रजापति, सनकादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४२ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं ( नारद ) ये सब कि जो ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ और वेदवाणीके अध्यक्ष हैं वे तप, विद्या

और समाधिसे सर्वसाक्षी परमेश्वरको हेर रहे हैं; तथापि अद्यापि जान नहीं सके हैं ॥ ४४ ॥ क्योंकि वेदका विस्तार बहुत बडा है और अर्थोंकाभी पारावार नहीं है. अतएव वेदविषे भ्रमण करतेहुए जो लोग वेदके मंत्रोंमें कहेहुए चिन्हवाले इंद्रादिक देवतानकी कर्मके आग्रहपूर्वक भक्ति करते हैं, उनको परमेश्वरका ज्ञान होना कठिन है ॥ ४५ ॥ अतएव अंतःकरणमें अच्छीतरह चिंतवन करनेसे भगवान् जिसपर कृपा करें, वह मनुष्य व्यवहार और कर्मकांडकी आसक्तिसे निवृत्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ हे प्राचीनबर्हिराजा! इसीलिये यज्ञादिक कर्म कि- जो केवल अज्ञानसे पुरुषार्थरूपसे प्रतीत होते हैं, फल सुननेसे केवल कानोंको प्रिय लगते हैं और सत्यवस्तुका स्पर्शभी नहीं करते, उन्हें कदापि वास्तविक पुरुषार्थरूप समझना यह बुद्धिमानोंका काम नहीं है ॥ ४७ ॥ जो लोग कहते हैं, कि- वेदका अभिप्राय केवल कर्मपर है, वे वेदके तात्पर्यको न जाननेवाले अपनी बुद्धि, यज्ञके

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरंत उरुविस्तरे ॥ मंत्रलिंगैर्व्यवच्छिन्नं भजंतो न विदुः परम् ॥ ४५ ॥ यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥ स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ ४६ ॥ तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥ माऽऽर्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४७ ॥ स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ॥ आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४८ ॥

धूमसे, मलिन होनेके कारण आत्मतत्त्व कि- जिसके विषयमें सब वेदका तात्पर्य है. और जिसमें साक्षात् जनार्दन भगवान्‌काही कथन है उसे नहीं जानते. ( इस विषयमें जैमिनिकृत पूर्वमीमांसाके सूत्रमें स्पष्ट लिखा है कि- वेदका तात्पर्य कर्मपर है, सो प्रथम इस सूत्रमें शंका की है कि- " आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् " इसका अर्थ यह है कि-यदि सर्ववेदको कर्मपर मानेंगे तो जहां कर्म नहीं है, उस स्थलको व्यर्थ मानना पड़ेगा. उत्तर-" तद्भूतानां क्रियार्थत्वेन समन्वयः," अर्थ-जिनवाक्योंमें कर्म नहीं है उन्हें कर्मवाले वाक्योंके साथ जोड़ देना. जैसे " वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता " अर्थ-वायु यह बड़ी वेगवाली देवता है. इसर वाक्यमें कर्म करनेकी बात नहीं है, इसलिये इसे "वायव्यं श्वेतमालभेत" अर्थ-वायुदेवताके वास्ते श्वेत पशु मारना, इस वाक्यके साथ जोड़ देना, अर्थात् इस वाक्यमें जो वायु देवताका वर्णन है उसी वायुके स्वरूपादिजाननेके वास्ते पूर्ववाक्य है,ऐसे

सर्ववेद कर्मपर हैं यह कथन है ) ॥ ४८ ॥ तू तो बड़ा मूर्ख है, क्योंकि पूर्वकी तर्फ अग्रवाले दर्भसे सब पृथ्वीको ढककर यज्ञोंमें अनेक पशुवधके अभिमानसे अक्कड़ बनगया है, अतएव तू यथार्थ कर्म और यथार्थ विद्याको नहीं जानता. जिससे भगवान् प्रसन्न होवें वही तो सत्य कर्म है और जिससे भगवान्में मन लग जाय वही सत्य विद्या है ॥ ४९ ॥ भगवान्ही सर्वप्राणीमात्रके आत्मा स्वतंत्र कारण और ईश्वर हैं. तासों उन्हींके चरणारविंदका शरण लेनेसे मनुष्योंके सब प्रकारके कल्याण यहां सिद्ध होते हैं ॥ ५० ॥ और उनको प्रसन्न करनेमें कोई कठिनता नहीं है; क्योंकि वे सबके प्रियतम आत्मा हैं और उनके भजनमें किसीतर-

आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमंडलम् ॥ स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥ ४९ ॥ हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ॥ तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥ ५० ॥ स वै प्रियतमश्चाऽऽत्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५१ ॥ नारद उवाच ॥ प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडंघ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यांतं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५३ ॥

हका अणुमात्रभी भय नहीं है. जो मनुष्य इसतरह जानता है वही विद्वान् माना जाता है और जो विद्वान् होता है वही गुरु व भगवान् है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार स्पष्टार्थ कहकर, अब उसका उपसंहार करते हैं. हे पुरुषोत्तम ! राजा ! तूने मेरे कहेहुए इतिहासका जो स्पष्टार्थ पूंछा वह मैंने कहा. अब इस विषयमें पूर्ण निश्चय कीहुई जो गूढ़ वार्ता है, वह मैं कहता हूं सो सुन ॥ ५२ ॥ क्षुद्र-पदार्थ चरनेवाला एक मृग पुष्पवाटिकामें स्त्रीके साथ उसीमें आसक्त हो रहा है. उसके कान भ्रमरगणकी गुंजाहटसे ललचा रहे हैं. मुखके सामने फाड़ खानेवाले भेड़िये खड़े हैं. तथापि यह मृग उनको न गिनकर, आगे बढ़ता चला जाता है. और इसकी पीठ व्याधके बाणसे विदारण हो गई है. सो हे राजा ! इसका तू अन्वेषण कर ( ढूंढ ) ॥ ५३ ॥

रूपष्टार्थ-हे राजा ! मैंने जो मृग कहा वह तू आपही है. विचार ले; क्योंकि, तू पुष्पवाटिका यानी पुष्पकी नाईं परिणाममें रसरहित स्त्रियों-वाले घरोंमें फूलकी मधुर सुगंधिके समान अत्यंत क्षुद्र जिव्हा और उपस्थ आदिका अल्पसुख कि-जो सकाम कर्मोंके फलसे मिलता है उसे ढूंढ़ रहा है. स्त्रियोंके साथ मिल, उन्हींमें मन रखता है. भ्रमरगणकी गुंजाहटके समान स्त्रीआदिके अतिमनोहर भाषणमें तेरे कान बहुत ललचा रहे हैं. मुखके सामने भेड़ियोंकी तरह दिन, पक्ष, मासआदि कालके विभाग तेरी आयुका हरण करते हैं. तू उन्हें न गिनकर, घरमें विहार कर रहा है. और परोक्षरीतिसे तेरे पीछेलगाहुआ यह काल भीतर छुपायेहुए बाणसे तेरा हृदय बेधता है,

सुमनः समधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगंधवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादिविचिन्वंतं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडंघ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रांतान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरंतं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतांतोऽतःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥ सत्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽतश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥ जह्यंगनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥५५॥ राजोवाच ॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥ नैतज्जानंत्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि॥५६॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यंति यत्र नेंद्रियवृत्तयः॥५७॥

सो आपको अपने आत्माका विचार करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इस प्रकार तेरी निजकी चेष्टा पूर्वोक्त मृगकीसी है. इस बातका विचार करके, अपने चित्तको हृदयमें रोंक. और जितनी बहिर्वृत्ति है उसे चित्तमें रोंक, यानी सब इंद्रियोंको विषयोंसे रोंक. यह गृहस्थाश्रम कि-जिसमें नीच कामीपुरुषोंके यूथकी बातें हैं उनका त्याग कर. भगवान् कि-जो जीवलोकके शरणरूप हैं उन्हें प्रसन्न कर. इस तरह अनुक्रमसे सबसे मुक्त हो ॥ ५५ ॥ यह वार्ता सुनकर, राजा प्राचीनबर्हि बोला कि- हे ब्रह्मन् ! आपने जो कहा वह मैंने सुना. और उसपर विचारभी किया. इस बातको मेरे उपाध्याय नहीं जानते थे. जो जानते होते तो क्या ये नहीं कहते ? ॥ ५६ ॥ हे नारदजी ! इस विषयमें उपाध्यायोंने जो असंभावनारूप ( मैं ईश्वरांश हूं कि-नहीं ) बड़ा संदेह मेरे उत्पन्न

करदिया था वह आपकी कृपासे कटा. परंतु ऐसाही एक दूसरा संदेह है कि-जिसमें ऋषिलोगभी मोहित हो जाते हैं और इंद्रियोंकी वृत्तियां नहीं पहुँचतीं ॥ ५७ ॥ वह संशय यह है कि-पुरुषने जिस शरीरसे कर्म किये हों उस शरीरको यहीं छोड़कर, वह परलोकमें दूसरे शरीरसे भोगे जायं ऐसे उन उन कर्मोंके फलोंको प्राप्त होता है. अर्थात् इस देहसे कियाहुआ कर्म दूसरे देहसे भोगा जाता है, ऐसे वेदवेत्ता लोग सर्वत्र कहा करते हैं. और आपभी कह चुके हो कि-पुरंजनने जो जो कर्म किये थे उनका फल मरनेके अनंतर उसे दूसरे जन्ममें मिला. सो ठीक. परंतु इसमें मुझे संदेह है; क्योंकि जो करे उसे उस कर्मका फल मिलना उचित है, परंतु दूसरे देहके कियेहुए कर्मका फल दूसरा देह भोगे, यह कहना ठीक नहीं. जो देह कर्म करे उसे उसके फल न मिलते, जिसने कियाही नहीं उसे उसका फल मिलना यह बात न्यायसे विरुद्ध है. फिर दूसरा संदेह यह है कि-मनुष्य, वेदवि-

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ५८ ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥ कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवाऽमुत्र तत्पुमान् ॥ भुंक्ते ह्यव्यवधानेन लिंगेन मनसा स्वयम् ॥ ६० ॥ शयानमिममुत्सृज्य श्वसंतं पुरुषो यथा ॥ कर्माऽऽत्मन्याहितं भुंक्ते तादृशी नेतरेण वा ॥ ६१ ॥

हित जो कर्म करता है वह तो थोड़े समयके अनंतर तुर्त अदृश्य हो जाताहै जैसे आपन होम करनेको बैठे वहां जितनी बेरतक आपन होम करें, उतने समयतकही वो देखनेमें आता है और होम हुए पीछे वह तुर्त अदृश्य हो जाता है. अर्थात् जो कर्म अदृश्य हो गया, अथवा नष्ट हो गया, उसका फल पीछेसे मिले; यह बातभी सिद्ध होनी कठिन है, फिर यह किसतरह घट सकती है ? ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ नारदजी बोले कि-कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूलदेहको नहीं है; किंतु लिंगदेह यानी मन जिसमें मुख्य है ऐसे अंतःकरणको है. और यह अंतःकरण स्थूल देहके साथ नाश नहीं होता. अर्थात् एक स्थूलदेहका नाश होकर, दूसरा जो स्थूलदेह मिलता है, उसमें अंतःकरण वोका वो रहता है. तासों जिस अंतःकरणने एक स्थूल देहमें कर्म किया था, वही अंतःकरण दूसरे स्थूलदेहमें उस कर्मका फल भोगता है. यानी कर्ता एक और भोक्ता दूसरा यह विवाद इसमें कथमपि नहीं आ सकता ॥ ६० ॥ ( लिंगदेहका भोक्तृत्व स्वप्नदृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं. ) आपनेको स्वप्न आता है, उससमय जाग्रत अवस्थाके इस-

स्थूलदेहका अभिमान दूर हो जाता है, तब वैसेही अथवा दूसरे प्रकारके उत्पन्न भयेहुए स्वप्नअवस्थाके देहसे आपन कर्मके फलरूप सुख-दुःखको भोगा करतेहैं. परंतु उसमें वास्तविक रीतिसे भोक्तृत्व अंतःकरणका है. और वह अंतःकरण जाग्रत अवस्थाके देहमें जो था वही स्वप्नके देहमें है. अतएव मैं कहताहूं कि–जैसे अपने जीते रहनेपरभी जुदे जुदे देह प्राप्त होते हैं, पर उसमें भोक्ता नहीं फिरता, ऐसे मरनेके अनंतर देह बदल जानेपरभी उसमें भोक्ता जो अतःकरण है वह नहीं बदलता. जाग्रत अवस्थामें मनके अंदर संस्काररूपसे जो कर्म लगा हुआ है, वही स्वप्नअवस्थामें दूसरा देह प्राप्त होनेपर भोगा जाता है. इसीतरह एक जन्ममें मनके भीतर संस्काररूपसे जो कर्म लगा हुआ होवे, वही कर्म दूसरे जन्ममें भोगा जाता है. तात्पर्य यह है कि–स्थूलदेहको कर्तृत्व नहीं है; किंतु अंतःकरण जो कर्म करता है उसमें यह स्थूलदेह केवल द्वाररूप है ॥ ६१ ॥ अंतःकरण, जैसे पुत्रादिकोंके शरीरमें ममता रखता है कि–ये पुत्रादिक मेरे हैं, ऐसे अपने स्थूल देहमेंभी ब्राह्मणत्व या क्षत्रियत्वआदिका अ-

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ॥ गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥ ६२ ॥ यथाऽनुमीयते चित्तसुभयैरिंद्रियेहितैः ॥ एवं प्राक्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६३ ॥

भिमान कर बैठता है; तो इससे यह प्रतीत होता है कि–इस अंतःकरणके केवल अभिमान करनेका स्थल स्थूलदेह है, पर इतनेसे स्थूलदेहके कर्त्तापन नहीं कहा जा सकता. वास्तविक कर्ता अंतःकरण है. और अंतःकरणने जिस देहमें अभिमान किया हो उसी देहमें रहकर, कियेहुए कर्मसे अंतःकरणकेही पुनर्जन्म हुआ करता है. इससे यह सिद्ध हुआ कि–कर्ताभी अंतःकरण और भोक्ताभी अंतःकरणही है ॥ ६२ ॥ पूर्वशंकाका समाधान कर अब द्वितीय प्रश्नका उत्तर कहते हैं. कर्मका नाश होता जाता है यह बात युक्तिसे विरुद्ध है. और पूर्वदेहका कर्म रहता है यह बात युक्तिसे सिद्ध है. सब इंद्रियोंको अपने अपने विषयोंके साथ एक समयमें संबंध होनेपरभी उन सब विषयोंका ज्ञान अपनेको एकसाथ नहीं होता, तिससे ऐसा अनुमान होता है कि–इंद्रियोंपर अधिकार रखनेवाला कोई एक पदार्थ अवश्य है, वोही चित्त नामसे प्रसिद्ध है. चित्तका जबतक इंद्रियके साथ संबंध नहीं होता तबतक इंद्रियका विषयके साथ संबंध होनेपरभी अपनेको उस विषयका ज्ञान नहीं होता, यह बात अनुभवसिद्ध है. इसीतरह चित्तकी वृत्तियांभी एकही समयमें उत्पन्न नहीं होतीं; किंतु अनुक्रमसे होतीं हैं. इसीसे अनुमान होता है कि–चित्तकी वृत्तियोंको

उत्पन्न करनेवाला पूर्वदेहसंबंधी कर्म है. जो कर्म जिस समय भोगनेका होवे उस समयमें वह कर्म अपना भोग देनेके लिये अनुकूल चित्तकी वृत्तिको उत्पन्न करता है, इससे पूर्वदेहसंबंधी कर्म नष्ट नहीं होता; किंतु अवशेष रहता है, यह मानना युक्तिसिद्ध है ॥ ६३ ॥ हे राजा ! इस वतर्मान देहसे किसी समयमें और किसी स्थलमें जैसे प्रकारकी और जैसे स्वरूपकी वस्तु अनुभवमें आयी न होवे तथा देखनेमें न आयी होवे और सुननेमेंभी न आयी होवे, वैसे प्रकारकी और वैसे स्वरूपकी वस्तु किसी समय-में स्वप्न और मनोरथमें अपने मनमें आती है, तो उसपरसे अवश्य मानना पड़ता है कि-पूर्वदेहमें उस वस्तुका वैसा अनुभव अवश्य हुआ है; क्योंकि जिस वस्तुका अनुभव न हुआ हो वह वस्तु मनमें बिलकुल नहीं आया करती. इससेभी उसका अनुभव करनेके योग्य पूर्वदेह होनेका तथा पूर्वदेहका और इस देहका, मन एक होनेका और पूर्वदेहके कर्मका संस्कार मनमें ल-

नानुभूतं क चानेन देहे नादृष्टमश्रुतम् ॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥ ६४ ॥ तेनास्य तादृशं राजन् लिंगिनो देहसंभवम् ॥ श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ६५ ॥ मन एवमनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ ६६ ॥ अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ॥ यथा तथाऽनुमंतव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥ ६७ ॥

गा रहनेका निश्चय होता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ वर्त्तमान कालीन प्राणीका पूर्वजन्म उच्च योनिमें था के नीच योनिमें और अब भविष्य जन्म उच्च योनिमें, होगा अथवा नीच योनिमें यह बातभी शुभाशुभ मनकी वृत्तिपरसे जानी जा सकती है, इससेभी पूर्वजन्म था और परजन्म होगा यह मानना युक्तिसे सिद्ध हो सकता है ॥ ६६ ॥ इस विषयमें कितनेएक तर्क करते हैं कि-जो पूर्वजन्ममें अनुभव कीहुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नमें देखनेमें आती हो तो जो वस्तु किसी समय-मेंभी देखनेके अयोग्य है वह वस्तु स्वप्नमें किसतरह दीखपड़ती है ? स्वप्नमें तो किसी समय पर्वतकी चोटीपर समुद्र दीख पड़ता है, दिनमें नक्षत्र दीख पड़ते हैं, और अपना शिर कटाहुआ दीखता है सो यह कैसे ? इसका उत्तर यह है कि-समुद्र पृथ्वीपर, नक्षत्र रातमें और अपने कटेहुए शिरका प्रतिबिंब जल अथवा तेलआदिमें देखना, यह बात यथार्थ है, वहां पर्वतके शिखररूप स्थानका, दिवसरूप कालका और युद्धआदि क्रियाको जा फर्क पड़ा, वह केवल निद्राआदिके दोषसे पड़ा यह मानना

अतिसुगम है. पूर्वजन्मको न मानकर, इस जन्ममें जो अनुभवित होवे वही स्वप्नमें दीखता है, ऐसे माननेवालेकोभी देश, काल और क्रियामें फर्क पड़नेके कारण केवल निद्रादि दोषही मानने पड़ेंगे. इस विषयमें अनुपपत्ति दोनों पक्षोंमें समान है, तासों प्रतिपक्षीके तर्कका करना अयोग्य है ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य अत्यंत दरिद्री होवे वहभी स्वप्नमें किसी समय अपने आत्माको चक्रवर्ती राजा देखता है इस बातमेंभी कुछ असंभव नहीं है. क्योंकि सर्वविषय अनुक्रमसे मनमें आया करते हैं और भोगनेके अनंतर पीछे चले जाते हैं. यदि कोईभी मनुष्य मनरहित हो जाय तो ऐसे न होवे, परंतु सब मनुष्य मनवाले हैं और जब मनवाले हैं, तब मनमें अनुक्रमानुसार सर्वपदार्थोंका प्रवेश होना संभवित है. अतएव बिलकुल जिस पदार्थका अनुभव न हुआ हो ऐसा पदार्थ कोईभी किसीकेभी नहीं हैं. सब लोकोंके सब पदार्थ अनुक्रमसे अनुभवमें आते हैं. केवल इतनाही कहनेसे बस नहीं होता, क्योंकि किसीसमय सब पदार्थ एकसाथभी अनुभवमें आते हैं ॥ ६८ ॥ केवल एक सत्व गुणमें निष्ठा पायाहुआ

सर्वे क्रमानुरोधेन मनसींद्रियगोचराः ॥ आयांति वर्गशो यांति सर्वे समनसो जनाः ॥ ६८ ॥ सत्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥ तमश्चंद्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ६९ ॥ नाहंममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ॥ यावद्बुद्धिमनोक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥ ७० ॥

मन भगवान्के विराट्स्वरूपका ध्यान करने लगता है, उस समय सब जगत् मानों मनमें लगाहुआ हो ऐसे प्रतीत होता है. राहु यद्यपि देखनेमें आवे ऐसा नहीं है तथापि चंद्रमाके संबंधमें आवे तब देखनेमें आता है. इसीतरह यद्यपि सब जगत्का दीखना अपनेको असंभवित लगता है, तौभी शुद्ध भयेहुए मनमें सब जगत्का इकठा दीखना योगिजनोंके प्रत्यक्ष है ॥ ६९ ॥ इसप्रकार स्थूलदेहका नाश होनेपरभी लिंगदेहका नाश नहीं होता तासों कर्त्ता दूसरा और भोक्ता दूसरा यह दोष यहां नहीं आता. इसमें यदि तुझे यह शंका होगी कि– लिंगदेहके कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूलदेहद्वारा है, पर स्थूलदेहरहित केवल लिंगदेहके कर्तृत्व या भोक्तृत्व नहीं है. तासों किसीसमय स्थूलदेह न होवे, तब लिंगदेहमें कर्तृत्व या भोक्तृत्व न रहनेसे मुक्ति अवश्य होनी चाहिये. परंतु सिद्धांत यह है कि– बुद्धि, मन इंद्रियां और विषयोंका समूहरूप यह अनादि लिंगशरीर जबतक है तबतक जीवके स्थूलदेहका संबंध नहीं मिटता ॥ ७० ॥

सुषुप्ति, मूर्छा, महादुःख ( पुत्र मरणआदि ) मृत्यु और ज्वरमें इंद्रियोंका विघात होनेसे ' स्थूल देह मैं हूं ' ऐसा अहंकार बराबर नहीं प्रकाशता, किंतु सूक्ष्मरूपसे रहता है, यानी उस समय स्थूलदेहका लिंगदेहसे विच्छेद हो जाता है यह कदापि न समझना ॥ ७१ ॥ गर्भमें और बालपनमेंभी इंद्रियां अपूर्ण होनेसे तरुण अवस्थामें जैसा स्थूलदेहाभिमान ग्यारह इंद्रियोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है ऐसा नहीं दीखपड़ता, अर्थात् अमावास्याके दिन जैसे चंद्रमाका बिंब विद्यमान होनेपरभी स्पष्ट नहीं दीखता, ऐसे गर्भादिक अवस्थामें स्थूलदेहका अभिमान विद्यमान होनेपरभी स्पष्ट नहीं दीखता. अतएव जबतक लिंगशरीर है तबतक स्थूलदेहका संबंध न मिटनेसे संसारभी नहीं मिटता यह सिद्धांत है ॥ ७२ ॥ जैसे स्वप्नमें शिर कटजानेआदि जो अनर्थ दीख पड़ता है, वह जबतक

सुप्तिमूर्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥ नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७१ ॥ गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥ लिंगं न दृश्यते यूनः कुह्वां चंद्रमसो यथा ॥ ७२ ॥ अर्थेह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ७३॥ एवं पंचविधं लिंगं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥ ७४ ॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुंचति ॥ हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विंदति ॥ ७५ ॥

स्वप्न रहता है, तबतक दूर नहीं होता ऐसे यह जीवात्मा जबतक विषयोंकी चिंतामें लगा रहता है तबतक अवस्तुभूत संसारकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ७३ ॥ पांच तन्मात्रा ( शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ) तीन गुण ( सत्व, रज, तम ) और सोलह विकार ( ग्यारह इंद्रिय पांच महाभूत ) रूपसे विस्तार पायाहुआ यह लिंगशरीर चैतन्य परमात्माकी चेतना ( अंश ) से युक्त होनेपर जीव इस नामसे कहा जाता है, अर्थात् परमेश्वरका अंश यह आत्मा जब लिंगशरीरसे युक्त रहता है तब जीव कहलाता है और जब लिंगशरीरका त्याग कर देता है तब साक्षात् ब्रह्मरूप है ॥ ७४ ॥ यह जीवात्मा इसी लिंगशरीरसे कितने एक शरीर धारण करता है और इसीसे छोड़ता है. यानी लिंगशरीर जिस स्थूलदेहको छोड़ देता है उस स्थूलदेहका मरण कहा जाता है. और जिस दूसरे स्थूलशरीरको लेता है उस स्थूलशरीरका जन्म हुआ कहलाता है. हर्ष, शोक, भय, सुख, दुः

सभी लिंगशरीरके निमित्तही जीवात्माको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ एक स्थूल देहमेंसे निकलाहुआ लिंगशरीर दूसरे शरीरमें प्रवेश न करे उससे पहले मुक्ति होनी चाहिये, ऐसी शंकाभी नहीं करनी; क्योंकि जैसे तृणजलूका दूसरी घासको पकड़े, तबतक पहले पकड़ीहुई घासको नहीं छोड़ती, वैसे मरनेके समयभी जीवको जबतक पूर्वदेहका प्रारब्ध समाप्त होकर, दूसरा स्थूलदेह नहीं मिलता तबतक उसके पहले स्थूलदेहका अभिमान नहीं मिटता. हे राजा इससे तुम जानो कि– प्राणियोंके इस संसारका हेतु केवल एक मनही है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ इंद्रियोंसे उपभोग कियेहुए विषयोंका ध्यान करताहुआ यह मनुष्य बारंबार जो कर्म किया करता है, उन्हीं कर्मोंके संबंधसे मन संसारका कारण है. और आत्मा अ-

यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमार्तिं जनः ॥ ७६ ॥ यावदन्यं न विंदेत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥ मन एवमनुष्येंद्र भूतानां भवभावनम् ॥ ७७ ॥ यदाऽक्षैश्चरितान् ध्यायन्कर्माण्याचिनुते सकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बंधः कर्मण्यनात्मनः ॥ ७८ ॥ अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥ पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ७९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामंत्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥ ८१ ॥ तत्रैकाग्रमना वीरो गोविंदचरणांबुजम् ॥ विमुक्तसंगोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥ ८२ ॥

संग है तौभी अविद्याके निमित्त देहादिक जड़ पदार्थके संबंधी कर्ममें आत्माका बंधन होताहै ॥ ७८ ॥ अतएव सकल बंधन मिटानेके वास्ते सब जगत्को भगवत्रूप जानकर, सब प्रकारसे भगवान्की भक्ति करो. कि– जिन भगवान्से इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार हुआ करते हैं ॥ ७९ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–वैष्णवोंमें प्रधान वैष्णव नारदजी इसप्रकार प्राचीनबर्हि राजाको जीव तथा ईश्वरके स्वरूपका उपदेश कर, इस राजासे आज्ञा मांग कर, वहांसे सिद्धलोकको गये ॥ ८० ॥ और प्राचीनबर्हि राजा मेरे पुत्र आवें तब उन्हें राज्य दे देना और प्रजाकी रक्षा करनेकी उन्हें शिक्षा देना, इसप्रकार अपने मंत्रियोंको आज्ञा देकर, तप करनेको कपिलमुनिके आश्रममें यानी गंगासागरका संगम है वहां गया ॥ ८१ ॥ वहां जाकर, एकाग्रमनसे गोविंद भगवान्के

चरणारविंदका भक्तिसे भजन करता मुक्तसंग होकर, वह राजा मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ ८२ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे निष्पाप विदुर ! नारदजीके कहेहुए इस परोक्षरूपसे वर्णित आत्मज्ञानसंबंधी आख्यानको जो सुने वा सुनावे, वे दोनों लिंगदेहसे मुक्त हो जांय ॥ ८३ ॥ भगवान्‌की कीर्तिके प्रभावसे जगत्‌को पवित्र करनेवाला व अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला और सर्वोत्तम फल देनेवाला, यह नारदजीके मुखसे निकला हुआ आख्यान जो मनुष्य सुने, वह सर्वबंधनोंसे मुक्त हो जाता है. कदापि इस संसारमें भ्रमण नहीं करता ॥ ८४ ॥ यह गूढ़ और अद्भुत ब्रह्मज्ञानका विषय मुझसे आपको ज्ञात हुआ है. इससे देहाभिमान दूर हो जाता है और परलोकमें कर्मफ-



एतदध्यात्मपारोऽक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिंगेन विमुच्यते ॥ ८३ ॥ एतन्मुकुंदयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ॥ यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८४ ॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाऽश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे विदुरमैत्रेयसंवादे प्राचीनबर्हिनारदसंवादो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ विदुर उवाच ॥ ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ॥ ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥ १ ॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाऽथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः॥ आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥ २ ॥

ल भोगनेका संदेहभी मिट जाता है ॥ ८५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ तीसवें अध्यायमें, तपके प्रभावसे प्रसन्न भयेहुए भगवान्‌से वरदान प्राप्त भयेहुए प्रचेता वृक्षोंकी कन्याके साथ व्याह करके, राज्य करने लगे, यह कथा होगी ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा कि–हे मैत्रेयजी ! आप जिन प्राचीनबर्हिके पुत्रोंके विषयमें कहचुके हो. वे रुद्रगीतसे भगवान्‌को प्रसन्न करके, कौन सिद्धिको प्राप्त हुए ? ॥ १ ॥ हे बृहस्पतिके शिष्य मैत्रेयजी ! भगवान्‌के परमप्रेमी महादेवको यदृच्छासे प्राप्त होकर, महादेवजीके अनुग्रहके पात्र प्रचेता मोक्ष तो अवश्य

पाये होंगे, परंतु मुक्ति होनेके पूर्व इसलोकमें तथा परलोकमें उनको क्या मिला ? ॥ २ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-आज्ञाकारी वे प्रचेता पिताकी आज्ञाको शिरपर चढ़ाकर, समुद्रके भीतर रुद्रगीतके जपरूप यज्ञसे और तपस्यासे भगवान्‌को प्रसन्न करने लगे ॥ ३ ॥ तपस्या करते करते दश हज़ार वर्ष व्यतीत हो गये, तब भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिया. और अपनी शांत कांतिसे उनकी तपस्याका क्लेश दूर किया ॥ ४ ॥ जैसे श्यामघटा मेरुपर्वतके शिखरपर शोभती है ऐसे भगवान् गरुड़के कंधेपर विराज रहे थे. पीतांबर पहने, कौस्तुभमणि कंठमें धारण किये, दिशाओंको अंधकार रहित कररहे थे ॥ ५ ॥ सुवर्णमय सुंदर और तेजस्वी आ-

मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसोंऽतरुदधौ पितुरादेशकारिणः ॥ जपयज्ञेन तपसा पुरंजनमतोषयन् ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्रांते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शांतेन शमयन् रुचा ॥ ४ ॥ सुपर्णस्कंधमारूढो मेरुशृंगमिवांबुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥ काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेंद्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥ पीनायताष्टभुजमंडलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाऽद्यः ॥ बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनंदनाः ॥ सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥ ८ ॥ योऽनुस्मरति संध्यायां युष्माननुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥ ९ ॥

भूषणोंसे कपोल और मुख शोभ रहे थे. किरीट देदीप्यमान हो रहा था. आठ शस्त्र भुजावोंमें धारणकर रहे थे. पार्षद, मुनि, और देवता सेवा करते थे. गरुड़जी किन्नरकी तरह अपनी परोंके शब्दसे उनकी कीर्ति गा रहे थे ॥ ६ ॥ वनमाला कि- जिसकी शोभा, पुष्ट अष्ट लंबी भुजाओंके बीच ( वक्षःस्थलमें ) विराजमान लक्ष्मीजीके साथ सरवर करती थी. उससे आवृत, आदिपुरुष भगवान्‌ने दयाभरी दृष्टिसे देखकर, शरणागत प्रचेतानको मेघके शब्दके सदृश गंभीरवाणीसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे राजपुत्रो ! तुम मुझसे वरदान मांगो. तुम्हारा भला होगा. तुम कि-जो स्नेहके कारण केवल एकही धर्मका पालन करते हो. उनका परस्परका प्रेम देखकर, मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य संध्यासमयमें प्रतिदिन

तुम्हारा स्मरण करेगा, उसके भाइयोंके बीच जैसी तुम्हारे बीच आपसमें प्रीति है, वैसी प्रीति रहेगी और सब प्राणीमात्रसे मित्रता रहेगी ॥ ९ ॥ जो मनुष्य संध्या और प्रभातसमयमें सावधान होकर, रुद्रगीतसे मेरी स्तुति करेंगे, उनकोभी मनवांछित वर और उत्तम बुद्धि देऊंगा, तब तुमको देऊं, इसमें तो कहनाही क्या ? ॥ १० ॥ तुमने परमआनंदके साथ पिताकी आज्ञा शिरपर चढाई, इसवास्ते तुम्हारी पवित्रकीर्ति सब लोकोंमें व्याप्त होवेगी ॥ ११॥ और ब्रह्माजीसे कुछ कम नहीं ऐसा गुणकी खान म-

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ॥ स्तुवंत्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥ १०॥ यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ॥ अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥११॥ भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥ १२ ॥ कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनंदनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ॥ देशिनीं रोदमानाया निदधे सदयाऽन्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत माचिरम् ॥ १५ ॥

हाप्रसिद्ध पुत्र तुम्हारे होगा जो पुत्र अपने संतानोंसे इस सब त्रिलोकीको पूर्ण कर देगा ॥ १२ ॥ हे राजपुत्रो ! कंडुऋषिके प्रम्लोचा नाम अप्सरामें कमलसे नेत्रवाली एक कन्या हुई, उस कन्याको जनमतेही वृक्षोंमें पटक कर, अप्सरा स्वर्गको चली गयी, तो वृक्षोंनें उस कन्याको अपने पास रक्खा ॥ १३ ॥ वह कन्या भूखसे कृश होकर, रोने लगी; तो उस समय वृक्षोंके राजा चंद्रमाने दयायुक्त होकर, उसके मुखमें अपनी तर्जनी अंगुली, कि- जिसमेंसे अमृत चुआ करता है वह दी ॥ १४ ॥ मेरा अनुसरण करनेवाले तुम्हारे पिताने प्रजाकी सृष्टि करनेके वास्ते तुमको आज्ञा दी है, तो उस आज्ञाको सफल करनेके वास्ते इस दिव्य

१ इसकी कथा ऐसी है कि–एक समय कंडुऋषि तपस्या कर रहे थे. इतनेमें इन्द्रने जाना कि–इनका तप सिद्ध हो जायगा तो मेरा आसन लेलेंगे. इस भयसे इनके तपभग्नार्थ प्रम्लोचानाम अप्सराको भेजा. तो यह इनके पास आई और हावभावकटाक्षसे इसने मुनिको मोहित किया. तो ये महर्षि इस अप्सराके साथ रमे. ऐसे बहुतकाल रमे, वह अप्सरा स्वर्गको पधारने लगी. तब उसमें कंडुऋषिके सकाशसे उत्पन्न कन्याको वृक्षोंमें पटक दिया. इति ।

कन्याका शीघ्र पाणिग्रहण करो;इसमें विलंब मत करो ॥ १५ ॥ तुम सब कि- जो सब एकही धर्म और एकही स्वभाववाले हो उन सबोंके बीचमें यह एकही स्त्री होगी. इसका चित्त सदा तुममें रहेगा. और धर्म व स्वभावभी तुम्हारेजैसाही होगा ॥ १६ ॥ मेरे अनुग्रहसे देवतानके हजारों वर्षपर्यंत तुम्हारा सामर्थ्य अप्रतिहत रहेगा और पृथ्वीके तथा स्वर्गके दिव्य भोग भोगोगे ॥ १७ ॥ अंततः इस नरकरूप संसारके सुखोंमें वैराग्य उत्पन्न होनेपर मेरी अखंड भक्ति करनेसे तमाम काम क्रोधादिवासनाओंको भस्म करके, मेरे धामको प्राप्त होओगे ॥ १८ ॥ जो लोक घरमें रहकरभी ईश्वरार्पण कर्म करें और मेरी वार्ताहीसे कितनाएक

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥ १७ ॥ अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ॥ उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥ १८ ॥ गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ॥ मद्वार्तायातयामानां न बंधाय गृहा मताः ॥ १९ ॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यंति न शोचंति न हृष्यंति यतो गताः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्रांजलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥ २१ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥

समय व्यतीत करें, उनके घरका बंधन कभी नहीं होता ॥१९॥ जो मैं सर्वज्ञ ईश्वर हूं वह ब्रह्मवेत्ता कथा करते हों वहां श्रोताजनोंके हृदयमें क्षण २ में नये नयेके समान प्रगट होता हूं और इस प्रकार मेरी प्राप्ति होनेसे लोकोंके मोह, शोक और हर्ष नहीं रहता, सो यदि तुम मेरी कथाका श्रवण करते रहोगे, तो तुम्हारे घरका बंधन नहीं होवेगा ॥ २० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि इस प्रकार पुरुषार्थ देनेवाले और परमउपकारी भगवान्‌का बचन सुनकर, प्रचेता कि- जिनका रजोगुण व तमोगुणरूप मल भगवान्‌के दर्शनसे दूर हो गया है वे हाथ जोड़, गदगदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ प्रचेतानने कहा कि-क्लेशके मिटानेवाले मन वचनके वेगसेभी आगे बढ़ते वेगवाले, सर्व इंद्रियोंकी वृत्तियोंसे जिनकी पदवी जाननेमें नहीं आती ऐसे

और जिनके उदय, नाम व गुण वेदमें गाये जाते हैं ऐसे, आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ स्वरूपस्थितिसे शुद्ध, शांत और मनके निमित्त जिनमें यह मिथ्याभूत संसार भासा करता है ऐसे, आपको प्रणाम है. जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये मायाके गुणोंसे जो ब्रह्मादि मूर्ति धारण करते हैं. उन्हें हमारा प्रणाम है ॥ २३ ॥ शुद्धसत्वस्वरूप और अपने ज्ञानसे संसारको हरनेवाले, सर्वव्यापक और सर्वभक्तजनोंके स्वामी, कृष्ण हरि भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलनयन ! कमलोंकी माला धारण करनेवाले, कमलसे चरणवाले, कमलनाभ, भगवान् आपको हमारा बारंबार प्रणाम है॥ २५॥

शुद्धाय शांताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥ २३ ॥ नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥ २४ ॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः कमलकिंजल्कपिशंगामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुंक्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकंपितम् ॥ २७ ॥ एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररंधन ॥ २८ ॥ येनोपशांतिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अंतर्हितोऽतर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥ २९ ॥ असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥

कमलके केसरसे निर्मल पीत पट ओढ़े, सर्वप्राणीमात्रनके अंतर्यामी, साक्षी, आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ हम कि– जो क्लेश पाये हुए हैं, उनके सर्वक्लेशमिटानेवाला जो आपने अपने स्वरूपका दर्शन दिया, इससे बढ़कर ! दूसरी क्या दया होगी ? ॥ २७ ॥ हे अमंगलनाशक ! हे देव ! दीनलोगोंको अपने समझकर, योगसमयमें उनका निजबुद्धिसे स्मरण करना दीनवत्सल प्रभुनका इतनाही होना बहुत है ॥ २८ ॥ क्योंकि प्रभुलोग स्मरण करें उससे दीन पुरुषोंको शांति मिल जाती है. जब आप क्षुद्रप्राणियोंके हृदयमेंभी अंतर्यामीरूपसे विराजते हो, तब हम कि– जो आपके उपासक हैं, उनके मनोरथोंको कैसे न जानोंगे ? ॥ २९ ॥ हे जगत्पति ! मोक्षमार्गके दिखानेवाले और परमपुरुषार्थरूप आप प्रसन्न हुए यही वरदान हम चाहते थे ॥३०॥

तथापि हे नाथ ! आप कि-जो कारणकेभी कारण हो उनसे एक वरदान हम मांगते हैं. क्योंकि भक्तोंको देनेयोग्य आपकी विभूतियोंका अंत नहीं है. इसीसे आप अनंत इस नामसे प्रसिद्ध हो ॥ ३१ ॥ भ्रमरको जब कल्पवृक्ष अनायाससे मिल जाता है, तब वह दूसरे किसी वृक्षकी इच्छा नहीं करता ऐसे हमको साक्षात् आपका चरणमूल प्राप्त हो गया. अब हम आपसे दूसरा क्या क्या वर मांगें ? और मांगें तो क्या मांगें ? क्योंकि मनारथोंका अंत नहीं है ॥ ३२ ॥ इसीसे हम इतनाही मांगते हैं कि-आपकी मायासे आवृत हम अपने कर्मोंसे जबतक इस संसारमें भटकते रहें, तबतक जन्मजन्ममें आपके उत्तम भक्त-

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ॥ न ह्यंतस्त्वद्विभूतीनां सोऽनंत इति गीयसे ॥ ३१ ॥ पारिजातेऽजसा लब्धे सारंगोऽन्यन्न सेवते ॥ त्वदंघ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥ ३२ ॥ यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसंगानां संगः स्यान्नो भवे भवे ॥ ३३ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ३४ ॥ यत्रेड्यंते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥ ३५ ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसंगैः पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ॥ भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥ ३७ ॥ वयं तु साक्षाद्भगवान्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसंगमेन ॥ सुदुश्चिकित्सस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म ॥ ३८ ॥

जनोंका समागम सदा हमारेको हुआ करे ॥ ३३ ॥ आपके भक्त लोगोंके समागमके एक क्षणके बराबरभी, न तो हम स्वर्गको मानते हैं और न मोक्षको तोलते हैं, तब मनुष्योंके राज्यआदि सुखकी तो बातही कौन ? ॥ ३४ ॥ जिनके समागममें तृष्णाको मिटानेवाली पवित्र कथायें प्रवृत्त रहती हैं और प्राणीमात्रके साथ निर्वैर भाव हुआ करता है और किसीप्रकारका उद्वेग नहीं रहता ॥ ३५ ॥ और जहां संन्यासियोंके शरणरूप साक्षात् नारायण भगवान्की प्रशस्त कथाओंमें मुक्तसंग लोग वारंवार भगवान्की स्तुति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ वे आपके भक्तलोक तीर्थोंकोभी पवित्र करनेकी इच्छासे जगत्में चरणोंसे विचरा करते हैं, उनका समागम संसारसे भयभीत पुरुषको अच्छा क्यों न लगे ? ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! आपके साक्षात् प्रिय मित्र महादेवजीके क्षण-

मात्रके समागमसे जन्म-मरणरूप असाध्य रोगके मिटानेवाले महावैद्यरूप आपके आज हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ दूसरा वरदान यह मांगते हैं कि-हमने जो वेदका अध्ययन किया है और गुरु, ब्राह्मण तथा वृद्धलोकोंको निरंतर सेवाकरके प्रसन्न किया है, महात्मा पुरुष, मित्र तथा भाइयोंको प्रणाम किया है तथा किसीसे द्रोह नहीं किया है ॥ ३९ ॥ और अन्न खाना छोड़कर, चिरकाल पर्यंत जलके अंदर यह तप किया है, इन सब सत्कर्मोंसे हे ईश ! पुरुष ! भूमा ! भगवान् ! आपकी हमपर कृपा हो जाय ॥ ४० ॥ मनु, ब्रह्माजी, महादेव तथा तपसहित ज्ञानसे शुद्ध अंतःकरणवाले दूसरे महात्मालोगभी आपकी महिमाका अंत



यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ॥ आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥ ३९ ॥ यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरंधसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४० ॥ मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्वाः ॥ अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवंत्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥ ४१ ॥ नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ॥ वासुदेवाय सत्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥ अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः ॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥ ४४ ॥ ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुंचन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥ ४५ ॥

न पाकर, अपनी बुद्धिकी पहुँचके अनुसार आपकी स्तुति करते हैं, वैसे हमभी आपकी स्तुति करते हैं ॥ ४१ ॥ सर्वमें समानरूप, शुद्ध, परपुरुष, वासुदेव, सत्वमूर्ति भगवान् आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४२ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इसप्रकार प्रचेतानने स्तुति की, तब शरणागतवत्सल हरि भगवान्ने प्रसन्न होकर, 'तथास्तु' ऐसे कहा. दर्शन करते २ नेत्र तृप्त न होनेसे प्रचेता वहांसे भगवान्का जाना नहीं चाहते थे, तथापि अकुंठितप्रभाववाले हरि अपने धाम पधारे ॥ ४३ ॥ फिर प्रचेता समुद्रके जलमेंसे बाहिर निकलकर, रवाना हुए, वहां मानों आकाशको रोकनेके वास्तेही ऊंचे बढ़े हों, ऐसे प्रतीत होते वृक्षोंसे पृथ्वीको ढकीहुई देखकर, प्रचेतानको महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ हे विदुर ! क्रोधके हेतु प्रचेतानने पृथ्वीको वृक्षरहित करनेके वास्ते

प्रलयकालीन कालाग्नि रुद्रके समान अपने मुखमेंसे अग्निको और पवनको प्रगट किया ॥ ४५ ॥ उस अग्निसे सब वृक्षोंको भस्म होते देखकर, ब्रह्माजी वहां आये और उन्होंने नीतिके वचनोंसे प्रचेतानको शांत किया ॥ ४६ ॥ इस अग्निसे जो वृक्ष बचे, उन्होंने प्रचेतानके भयसे और ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी कन्या प्रचेतानको दीनी ॥ ४७ ॥ प्रचेतानने ब्रह्माजीकी आज्ञासे इस वृक्षोंकी कन्याको स्वीकार किया. इस स्त्रीमें प्रचेतानके दक्ष नाम पुत्र हुआ. यह दक्ष पूर्वजन्ममें ब्रह्माका पुत्र था, परंतु महादेवजीके अपमान करनेके पापसे उसका दूसरा जन्म क्षत्रियजातिमें हुआ ॥ ४८ ॥ जो देह ब्रह्माका पुत्र था, वही कालगतिसे मरकर, दूसरे जन्ममें प्रचेतानके घर पैदा हुआ. इस दक्षने

भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः ॥ आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥ ४६ ॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ॥ उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वंतरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥ ४९ ॥ यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥ ५० ॥ तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरंत आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥ १ ॥

ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुष नाम मन्वंतरमें जैसी चाहिये ऐसी प्रजा उत्पन्न की ॥ ४९ ॥ इस दक्षने जन्मतेही अपनी कांतिसे तेजस्वी पुरुषोंके तेजका हरण किया और उसकी कर्म करनेमें चतुरताको देखकर, सब लोक उसे दक्ष कहते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने इस दक्षका अभिषेक करके, उसे प्रजाकी सृष्टिकी रक्षा करनेमें सबका पति नियत किया. तासों वह दुसरे सब प्रजापतियोंका अपने अपने काम करनेमें आज्ञा किया करता था ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ इकतीसवें अध्यायमें, राज्यका कार्य दक्षको देकर, वनमें गयेहुए प्रचेतानकी नारदजीके कहेहुए मार्गसे मुक्ति हुई, यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-संसारके सुख भोगते हजारों वर्ष व्यतीत हो गये, तब प्रचेतानको ज्ञान उत्पन्न हुआ. और भगवान्-

की कहीहुई बातका स्मरण आया. तासों अपनी पुत्रको रानीकी भलामन देकर, वे शीघ्र घर छोड़कर, वनमें गये ॥ १ ॥ पश्चि-
मदिशामें समुद्रके तटपर जिस स्थलमें जाजलि ऋषि सिद्ध हुए थे. वहां जाकर, सर्वपदार्थोंमें आत्मा है ऐसे ज्ञानसे संयुक्त ब्रह्म-
विचार करनेका उन्होंने संकल्प किया ॥ २ ॥ मन, वचन, प्राण व दृष्टिको वशकर, दृढ़ आसन बांध, शरीरको शांत तथा सरल
रखकर, परब्रह्ममें मन लगाकर, वे बैठे; वहां नारद मुनि कि-जिनकी स्तुति देवता और दैत्यभी किया करते हैं, वे पधारे ॥ ३ ॥
नारदजीको आये देखकर, उन्होंने खड़े होकर, प्रणाम व सत्कार किया. तथा विधिसहित पूजा की. फिर अच्छे प्रकार बैठेहुए ना-

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥ २ ॥ ता-
न्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान् शांतसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरा-
सुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥ तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनंद्य च ॥ पूजयित्वा यथादेशं
सुखासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ॥ तव चं-
क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥ यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ॥ तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रा-
यशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥ तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ॥ येनांजसा तरिष्यामो दुस्त-
रं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ॥ भगवत्युत्तमश्लोक
आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥

रदमुनिसे उन्होंने इसप्रकारसे कहा ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि-हे नारदजी ! आज आपका पधारना बहुत ठीक हुआ. हमें आपका
दर्शन हुआ. यह बहुतही ठीक हुआ. हे ब्रह्मन् ! सूर्यकी नाई आपभी जगत्का भय दूर करनेके वास्ते विचरते हो ॥ ५ ॥ हे
प्रभु ! भगवान् महादेवजी और विष्णु भगवान्ने हमें जो ज्ञान दिया था, वह ज्ञान तो घरके प्रसंगसे विस्मृतप्राय होगया है
॥ ६ ॥ इसवास्ते हमारे पास इस सत्यवस्तुके प्रदर्शक ज्ञानको प्रकाशित करो, कि-जिससे इस दुस्तर भवसागरको अनायाससे
हम पार हो जांय ॥ ७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इसप्रकार प्रचेतानने प्रार्थना की, तब महाकीर्ति और भगवान्‌मेंही जिनका चि-

त है ऐसे, नारदमुनिने उनसे इसप्रकार कहा कि- ॥ ८ ॥ महाराज ! जिससे जगत्‌के आत्मा भगवान् ईश्वरकी सेवा बन सके, वही मनुष्योंका जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन सफल समझना चाहिये क्योंकि बाकी सब व्यर्थ हैं ॥ ९ ॥ यदि अपने स्वरूपके देनेवाले भगवान्‌की सेवा और उनका ज्ञान न बन सके तौ शौक्ल ( शुद्ध माता पितासे जन्म ) सावित्र ( यज्ञोपवीतसे होनेवाला दूसरा जन्म ) और याज्ञिक ( यज्ञकी दीक्षा लेनेसे तीसरा जन्म ) इन तीन प्रकारके जन्ममोंसेभी क्या हुआ ? और वेदविहित कर्म करनेसेभी क्या ? और देवतानके जितनी बड़ी आयुसेभी क्या हुआ ? ॥ १० ॥ शास्त्रश्रवण, तप, वाणीका बिलास, अनेक अवधानका सामर्थ्य, निपुण बुद्धि, बल, इंद्रिय, सामर्थ्य, ॥ ११ ॥ प्राणायाम आदियोग, सांख्य, ज्ञान, संन्यास,

नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥ नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥ १० ॥ श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ॥ बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेंद्रियराधसा ॥ ११ ॥ किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्राऽऽत्मप्रदो हरिः ॥ १२ ॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥ १३ ॥ यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यंति तत्स्कंधभुजोपशाखाः ॥ प्राणोपहाराच्च यथेंद्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥

वेदाध्ययन और दूसरे व्रत व वैराग्यआदि अनेक साधनोंसेभी क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ सब फलोंमें मुख्य और अंतिमफल केवल आत्माही है; क्योंकि दूसरे सब पदार्थ केवल आत्माके वास्ते होनेसे प्रिय लगते हैं, सर्वप्राणीनमें जो आत्मा है, वही भगवान् हैं, कि-जो भगवान् अविद्याको दूर करके स्वरूपको प्रकाशित करते हैं और परमानंदरूप होनेसे प्रिय हैं, अतएव भगवान्‌की सेवा और उनका ज्ञान होवे तो सब सफल है ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षके मूलमें जल सींचा जाय तो उसके स्कंध शाखा, उपशाखा, फूल व पत्रआदिभी तृप्त हो जाते हैं. तथा प्राणको भोजन देनेसे सब इंद्रियां तृप्त हो जाती हैं; ऐसे भगवान्‌का पूजन करनेसे सब देवतानका पूजन हो जाता है. अर्थात् भगवान्‌का पूजन करनेवालेके दूसरे जुदे २ देवतानका पू-

जन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है. जैसे पेड़के मूलमें जल सींचा जाय तो, दूसरे भागोंमें जल सींचनेकी आवश्यकता नहीं है. और प्राणको भोजन दिया जाय तो, दूसरी इंद्रियोंमें जुदा २ अन्न चुपड़नेसे कोई प्रयोजन नहीं है और ऐसा करनेसे कुछ होनाभी नहीं है ॥ १४ ॥ सबके मूल भगवान्‌ही हैं; क्योंकि जैसे जल वर्षाऋतुमें सूर्यमेंसे उत्पन्न होता है और ग्रीष्म ऋतुमें पीछा सूर्यमेंही लीन हो जाता है और स्थावरजंगम पदार्थ जैसे पृथ्वीमेंसेही उत्पन्न होते हैं और पीछे पृथ्वीमेंही लीन होजातेहैं, उसी तरह यह सब प्रपंच भगवान्‌मेंसेही तो उत्पन्न होता है, और पीछा उन्हीमें लीन होता है ॥ १५ ॥ यह जो जगत् है वो परमात्माका सर्व उपाधिरहित स्वरूप है. क्योंकि यह उससे उत्पन्न हुआ है, तासों उससे पृथक् नहीं है. सूर्यकी कां-

यथैव सूर्यात्प्रभवंति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशंति काले ॥ भूतानि भूमौ स्थिरजंगमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥ १५ ॥ एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥ १६ ॥ यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवंति भूपा न भवत्यनुक्रमात् ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ॥ १७ ॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥ १८ ॥

ति जैसे सूर्यसे भिन्न नहीं है ऐसे जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं है. आकाशमें जैसे गंधर्वनगर किसी समय दीख पड़ता है, ऐसे परमात्मामें जगत् किसीसमय अर्थात् स्वरूपाज्ञान रहे तबतक दीख पड़ता है. जैसे जाग्रत् अवस्थामें सब इंद्रियां स्पष्ट दीख पड़ती हैं; परंतु सुषुप्तिमें उनका कुछभी पता नहीं लगता, ऐसे अज्ञानकालमें जगत् देखपड़ता है. पर ज्ञानकालमें उसका कुछभी पता नहीं रहता. पंचभूत, इंद्रियां और इंद्रियोंके देवताआदिका यह भेद भ्रम भगवान्‌के स्वरूपमेंही उत्पन्न हुआ है तासों भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होनेसे यह सब भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ १६ ॥ हे प्रचेताओ ! आकाशमें जैसे बादल अंधकार और प्रकाश देखनेमें आते हैं और पीछे लीन हो जाते हैं, इसीप्रकार परब्रह्ममें ये रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण देखनेमें आते हैं और पीछे लीन हो जाते हैं. उसीतरह यह जगत्‌का प्रवाह है ॥ १७ ॥ अतएव सर्वप्राणीमात्रके अधिष्ठानरूप भगवान् कि

जो काल प्रकृति व पुरुषरूप होनेसे सर्वके कारण हैं तथा जिनके स्वरूपका ज्ञान होनेपर संसारका प्रवाह कहीं देखनेमें नहीं आता है, उन परमेश्वरको अपनेसे अभिन्न जानकर, अपरोक्ष रीतिसे भजो ॥ १८ ॥ सर्वप्राणीमात्रपर दया रखनेसे जो कुछ मिले उसीसे संतोष रखनेसे और सब इंद्रियोंको शांत रखनेसे, भगवान् तुरंत प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ लोक, धन व पुत्रकी तृष्णा निवृत्त होनेसे, निर्मल भयेहुए अंतःकरणमें, निरंतर बढ़ती हुई भक्तिसे, आव्हान करके बुलायेहुए और अपना भक्ताधीनपन प्रगट करते, भगवान् भक्तोंके हृदयमेंसे हृदयके आकाशके समान खसक नहीं सकते हैं॥२०॥ अकिंचन होनेपरभी आप ( भगवान् )

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा ॥ सर्वेंद्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ १९ ॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ॥ निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥ २० ॥ न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु ॥ २१ ॥ श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ॥ न भजति निजभृत्यवर्गतंत्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥२२॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ॥ श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ॥ २३ ॥ तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायंतस्तद्गतिं ययुः ॥२४ ॥

कोही धनरूप माननेवाले, भक्तोंके ऊपर प्रीति रखनेवाले और भक्तिरसके जाननेवाले भगवान्, दुर्बुद्धि लोक कि—जो शास्त्रअभ्यास, धन, कुल और कर्मके अभिमानसे निष्किंचन महात्मा पुरुषोंका तिरस्कार करते हैं उनकी पूजाकोभी नहीं स्वीकारते हैं ॥ २१ ॥ आप पूर्णकाम होनेपरभी अपने दासवर्गके आधीन रहनेवाले भगवान्, अपनी इच्छाके अनुकूल बरतती हुई लक्ष्मीको और लक्ष्मीकी इच्छा करतेहुए राजाओंका तथा देवतानकाभी, दानवर्गके वास्ते अनादर करते हैं; उन भगवान्को कृतज्ञ पुरुष किस प्रकार छोड़ सकता है ?॥ २२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हेविदुर ! इस प्रकार ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी प्रचेतानको यह आख्यान और ध्रुवचरित्रआदि औरभी कथायें सुनाकर, ब्रह्मलोक सिधारे ॥ २३ ॥ प्रचेताभी नारदजीके मुखसे जगत्के मलको मिटानेवाली

भगवान्‌की कीर्ति सुनकर, भगवान्‌के चरणका ध्यान करते मोक्षगामी हुए ॥ २४ ॥ हे विदुर ! जिसमें भगवान्‌का वर्णन है ऐसा प्रचेता और नारदजीका संवादरूप आख्यान जो तुमने मुझे पूंछा था, वह मैंने तुमसे कहा है ॥ २५ ॥ शुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि-हे राजसत्तम ! इस प्रकार स्वायंभुव मनुके पुत्र उत्तानपाद राजाका वंश तुमको मैंने कहा. अब प्रियव्रतका वंश कहता हूं सो सुनो ॥ २६ ॥ जो प्रियव्रत राजा नारदजीसे ब्रह्मविद्याको पाय, तदनंतर पृथ्वीका राज्य कर, अंतमें यह पृथ्वी अपने पुत्रोंको बांटकर, परमेश्वरके पदको प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ मैत्रेयजीकी कहीहुई भगवान्‌के चरित्रसंबंधी यह पवित्र कथा सुनकर,

एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ॥ वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥ २६ ॥ यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥ २७ ॥ इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥ २८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना ॥ दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यानम्य तमामंत्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥ ३० ॥ एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

भक्तिकी वृद्धिके प्रभावसे अश्रुबिंदुओंसे आकुल भयेहुए विदुरजीने महामुनि मैत्रेयजीका चरण, अपने शिरपर और भगवान्‌का चरण अपने हृदयमें, धारण किया ॥ २८ ॥ विदुरजीने कहा कि-हे महायोगी ! मैत्रेयजी महाराज ! करुणचित्तवाले आपने कृपा करके मुझे अज्ञानसे पार लँघा दिया, कि-जिससे विरक्त पुरुषोंके प्राप्य हरि भगवान्‌के स्वरूपका मुझे ज्ञान हुआ है ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-शांत अंतःकरणवाले विदुरजी इस प्रकार मैत्रेयजीको प्रणाम कर, उनसे आज्ञा पाकर, अपने बंधुजनोंके दर्शनकी इच्छासे हस्तिनापुर गये ॥ ३० ॥ हे राजा ! हरि भगवान्‌मेंही जिनका मन लगाहुआ है ऐसे, राजाओंका चरित्र जो मनुष्य सुने,

वह आयु, धन, यश, कल्याणकारी गति और ऐश्वर्यको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे

इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कंधे
प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥

रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ॥



इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहितः
चतुर्थस्कंधः समाप्तः

॥ श्रीजगन्नाथाय नमः ॥ पंचमस्कंधके प्रथम अध्यायमें ज्ञानवान् राजा प्रियव्रतके राज्यके आनंदका वर्णन होगा ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि–हे मुनिराज ! राजा प्रियव्रत भगवान्का परमभक्त और आत्माराम था, सो उसने घरमें किस प्रकार रमण किया ? क्योंकि घर तो कर्मबंधनका और स्वरूपतिरस्कारका मूल कारण है ॥ १ ॥ हे विप्रवर ! वैसे मुक्तसंग पुरुषोंका घरोंमें अभिनिवेश होना संभवे नहीं ॥ २ ॥ क्योंकि हे विप्रर्षि ! जो महत्पुरुष उत्तमश्लोक भगवान्के चरणारविंदकी छायासे सदा आनं-

राजोवाच ॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥ गृहे रमत यन्मूलः कर्मबंधः पराभवः॥ १ ॥ न नूनं मुक्तसंगानां तादृशानां द्विजर्षभ ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ॥ छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुंबे स्पृहामतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु ॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविंदमकरंदरसआवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदंतरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वंति ॥ ५ ॥ यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयांऽजसाऽवगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाऽऽम्नातप्रवरगुणगणैकांतभाजनतया स्वपित्रोपामंत्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनंदद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥ ६ ॥

दितचित्त हैं, उनकी कदापि कुटुंबकी ओर लालसायुक्त बुद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस बातका मुझे बड़ा संदेह है कि–स्त्री, पुत्र, घरआदिमें आसक्त पुरुषका मोक्ष होना और श्रीकृष्णभगवान्में ऐसी अस्खलित बुद्धि होनी ॥ ४ ॥ यह सुनकर, श्रीशुकदेवजीने कहा कि–सत्य है, हरिभक्तलोगोंका घरआदिमें अभिनिवेश नहीं होता है तथापि उत्तमश्लोक भगवान्के श्रीमत् चरणारविंदसंबंधी मकरंदरूप रसमें जिनका मन आसक्त हो गया है, वे किसी विघ्नके होनेसे यदि विछुरभी जाते हैं, परंतु भगवद्भक्तरूप परमहंसलोगोंके प्यारे हरि भगवान्की कथारूप अपने अतिशय कल्याणमय मार्गका प्रायः त्याग नहीं करते हैं ॥५॥ हे राजा भगवान्का !

परमभक्त वह राजपुत्र प्रियव्रत नारदजीके चरणारविंदकी सेवासे अनायासपूर्वक आत्मतत्त्वको यथार्थ रीतिसे जान गया था, अतएव अध्यात्मज्ञानके काज वह दीक्षा लेना चाहता था; क्योंकि पहलेहीसे उसने निरंतर समाधियोगसे सकल इंद्रियोंका क्रियाकलाप केवल वासुदेव भगवान्के अर्पण कररक्खा था, सो जब उसके पिता स्वायंभुव मनुने उसे नीतिशास्त्रोक्त अनेक उत्तम गुणगणोंका एकांतपात्र समझकर, पृथ्वीतलके पालनके अर्थ नियोग किया, तब यद्यपि पिताकी आज्ञाका प्रत्याख्यान करना अनुचित था, तथापि राज्याधिकारमें मिथ्याभूत राज्यके प्रपंचसे अपने पराभवको शोच कर, उसने बिलकुल राज करना न चाहा ॥ ६ ॥ जैसे चक्रवर्ती राजा हरकारोंद्वारा निज शासनवर्ती मंडलेश्वर राजानके अभिप्रायका निश्चय करता

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥ ७ ॥ स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगंधर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गंधमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥ तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवंतं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहितांजलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥

है, वैसे इस गुणमय सृष्टिको बढ़ानेकी चिंतासे जिन्होंने सकल जगत्के अभिप्रायका निश्चय कर रक्खा है ऐसे, आदिदेव भगवान् स्वयंभू ब्रह्माजी, सर्व मूर्तिमान् वेद और अपने मरीचिआदि प्रजापतियोंको साथ लेकर, अपने सत्यलोकसे नीचे उतरे ॥ ७ ॥ वे ब्रह्माजी, जैसे गगनमंडलमें चंद्रमा प्रकाशता है. वैसे प्रकाशित होते, जहां तहां मार्गमें ठौर २ विमानोंकी कतारकी कतारमें बैठेहुए उत्तम देवतानकी की हुई पूजाको अंगीकार करते और यूथके यूथ मिलकर, सिद्ध, गंधर्व, साध्य, चारण व मुनिजनोंसे गाये जाते यशको श्रवण करते, गंधमादन पर्वतकी गुफाको प्रकाशमान करते, प्रियव्रतके निकट पधारे ॥ ८ ॥ हंसपर सवार होकर, पधारे ऐसे, अपने पिता भगवान् ब्रह्माजीको देखकर, नारदजी पिता पुत्र यानी स्वायंभुव मनु और प्रियव्रत इन दोनोंके साथ झट

उठ खड़े हुए. और हाथ जोड़ कर, ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ महाराज ! नारदजीने यथोचित वाणीसे ब्रह्माजीके गुणगण अवतार और सर्वोत्कर्षका अतिशयके साथ वर्णन करके, जो भेंट अर्पण की, उसे कृपादृष्टिसे स्वीकार करके, भगवान् आदिपुरुष ब्रह्माजीने हास्यसहित कृपादृष्टिसे देखकर, प्रियव्रतसे कहा ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले कि–हे तात ! जो मैं यह सत्य वचन कहता हूं वह सुन, प्रवृत्तिनिष्ठ मेरे वचनको प्रतिकूल मानकर, मुझमें दोषारोप न करना; क्योंकि मेरे मुखसे अप्रमेय प्रभुही तुझे आज्ञा करते हैं कि–जिन परमेश्वरकी आज्ञाको हम (ब्रह्मा) महादेव, तेरा यह पिता तेरा गुरु यह महर्षि नारद, ये सब परतंत्र होकर, धारण करते हैं॥११॥कोईभी देहधारी उस परमेश्वरकी आज्ञाको तप, विद्या, योगबल, बुद्धि धर्म व अर्थआदि किसी

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाक्येनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥ ११ ॥ न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहंतुं तनुभृद्विभूयात् ॥१२ ॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदाऽभयाय॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽग धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तंत्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ १४ ॥ ईशाभिसृष्टं ह्यवरुंध्महेंऽग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसंगात् ॥ आस्थाय तत्तद्यदयुंक्त नाथश्चक्षुष्मतांऽधा इव नीयमानाः ॥ १५ ॥

साधनसे न तो अपने आप तोड़ सकता है और न किसी दूसरेके आश्रयसे तोड़ सकता है ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत ! जन्म, मृत्यु, कर्म करना, शोक, मोह, भय सुख और दुःखके वास्ते प्रभुने जो यह शरीर दिया है, उसे यह जीवसमूह प्रभुकी इच्छानुसार सदा धारण करता है, जीवसमूहको स्वतंत्रता नहीं है, कि–प्रभुकी इच्छासे अन्यथा कुछभी कर सके ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! जिसकी वेदलक्षणा वाणीरूप रज्जुमें कर्मरूप छोटी २ गुण व कर्मरूप दृढ़ डोरियोंसे बँधकर, हम सब जैसे नथनीसे पोयेहुए बैल बंजारेको कमा कमाकर देते हैं ऐसे परमेश्वरको बलि देते हैं, अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे कर्म करते हैं ॥ १४ ॥ बंजारा अपनी इच्छानुसार बैलोंको जो कुछ देता है वही खाकर, जैसे वे बैल निर्वाह करते हैं, ऐसे हे प्रियव्रत ! परमेश्वर अपनी इच्छासे हमारे गुण व

कर्मके अनुसार जो कुछ मनुष्य, तिर्यक् पशुपक्षीआदिकी योनि देता है, उसे स्वीकार करके, अपने सुख दुःखको भोगा करते हैं, जैसे देखनेवाला मनुष्य अंधे मनुष्योंको धूपमें ले जावे, छायामें ले जावे, चाहे परंतु जिधरको वह ले जाता है, उधर उनको जानाही पड़ता है, ऐसे परमेश्वर जैसा करना चाहता है वैसाही हमें करना पड़ता है ॥ १५ ॥ दैवइच्छासे कर्मभोग केवल अज्ञानीके वास्तेही नहीं है, किंतु ज्ञानीकोभी उसीकी इच्छानुसार भोगना पड़ता है, चाहे मुक्तदशाभी हो जाय, तथापि जबलों प्रारब्धकर्म रहेगा तबलों अपने देहको तो अवश्य धारण करनाही पड़ेगा परंतु जैसे जाग्रत अवस्थामें, स्वप्नमें देखेहुए पदार्थका केवल स्मरणमात्र रहनेसे उसमें जाग्रत अवस्थावाले पुरुषको अभिमान नहीं रहता है, वैसे उस

मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ॥ यथाऽनुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृंक्ते ॥ १६ ॥ भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेंद्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किंनु करोत्यवद्यम् ॥ १७ ॥ यः षट्सपत्नाविजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ॥ अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥ १८ ॥ त्वं त्वब्जनाभांघ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ॥ भुंक्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसंगः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥

देहके विद्यमान रहनेपरभी अभिमान न रहनेसे जीवन्मुक्तके दूसरे देहकी प्राप्तिके लिये गुण कर्म और वासनासंबंधी बंधन नहीं होता है ॥ १६ ॥ जो असावधान होकर, रहेगा तो, उसको वनमेंभी भय अवश्य होगा, क्योंकि पांच इंद्रिय और छठा मन व बुद्धिरूप शत्रु तो उसके साथही हैं. और जो आत्माराम ज्ञानी गृहस्थाश्रममेंभी रहेगा और इंद्रियरूप शत्रुओंको वशमें रक्खेगा तो, उसका गृहस्थाश्रम क्या बुरा कर सकेगा ? ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इंद्रियरूप शत्रुओंको जीतना चाहे, वह प्रथम गृहस्थाश्रममें रहकर, उनको जीतनेके लिये यत्न करे और जब ये इंद्रियरूप शत्रु क्षीण हो जांय, तब वह विद्वान् चाहे घरमें रहे चाहे अन्यत्र विचरे, क्योंकि जो किलेमें रहता है, वह महाबली शत्रुओंकोभी जीत सकता है, जब शत्रु अपने आधीन हो जांय, तब चाहे किलेमें रहे चाहे दूसरे स्थानमें रहे ॥ १८ ॥ घररूप किलेका आश्रय प्राकृतपुरुषोंके वास्ते है, सो तू तो

कमलनाभ भगवान्‌के चरणकमलकोशरूप किलेका आश्रय ले छःही शत्रुओंको जीत कर, प्रथम तो परमेश्वरके दियेहुए इस लोकके भोगोंको भोग, फिर मुक्तसंग होकर, भले आत्मनिष्ठ हो जाना ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—भगवान्‌के परमभक्त प्रियव्रतको त्रिलोकीके गुरु ब्रह्माजीने इसप्रकारसे कहा तब भगवान् ब्रह्माजीकी आज्ञाको गर्दन नीची करके बड़े गौरवके साथ 'जो आज्ञा' ऐसे कहकर, बहुत मानपूर्वक अंगीकार किया ॥ २० ॥ यद्यपि प्रियव्रतका योग, भ्रष्ट हुआ और नारदजीके शिष्यका नाश हुआ. इसलिये उनकी कुटिलदृष्टि होना चाहिये, तथापि प्रियव्रत और नारदजीके अविषम दृष्टिसे दे..ते, मनुने संतुष्ट हो-

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो बाढमिति स बहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनाऽऽत्मजमखिलधरामंडलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥ २२ ॥ इति ह वा व स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बंधध्वंसनापरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्यांघ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरंधितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥

कर, ब्रह्माजीकी यथार्थरीतिसे पूजा की. उसे अंगीकार करके, ब्रह्माजी व्यवहारसे विषण्ण होनेसे व्यवहारातीत स्वरूपका चिंतवन करते, मन व वाणीके अगोचर, अपने विराजनेके उत्तम स्थान, सत्यलोकको सिधारे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने इसप्रकार जिसका मनोरथ पूर्ण किया है वह, मनुभी नारदजीकी संमतिसे अपने पुत्रको समग्र भूमंडलकी स्थिति और रक्षाके अर्थ स्थापित करके, आप इस महाविषम विषयरूप विषके तालावरूप घरकी वासनाको छोड़कर, उपरत हुआ ॥ २२ ॥ समस्त जगत्‌के बंधन काटनेवाला जिनका बड़ा प्रताप है ऐसे आदिपुरुष भगवान्‌के चरणयुगलका निरंतर ध्यान करनेके प्रभावसे जिसके रागादि मल और आशय भस्म हो गये हैं. अतएव परम शुद्ध और महत्पुरुषोंके मानको बढ़ानेवाला, पृथ्वीपति प्रियव्रत कि—जिसको इस-

प्रकार ईश्वरकी इच्छासे कर्म करनेका अधिकार मिला है वह, पृथ्वीतलका पालन करने लगा ॥ २३ ॥ फिर उसने विश्वकर्मानाम प्रजापतिकी कन्या बर्हिष्मतीके साथ विवाह किया, उसमें उसके अपने समान शील गुण, कर्म, रूप व पराक्रमसे उदार दश १० पुत्र हुए और सबसे छोटी ऊर्जस्वतीनाम एक कन्या हुई ॥ २४ ॥ आग्नीध्र, १ इध्मजिह्व २ यज्ञबाहु, ३ महावीर ४ हिरण्यरेता ५ घृतपृष्ठ ६ सवन ७ मेधातिथि ८ वीतिहोत्र ९ और कवि १० इन सबके अग्निके पर्यायवाचक नाम थे ॥ २५ ॥ इनमेंसे

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामुह वा व आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥ २४ ॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः ॥ २५ ॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविंदाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितांतर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवाऽऽत्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ २७ ॥ अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वंतराधिपतयः ॥२८ ॥

कवि १० महावीर ४ और सवन ७ ये तीन पुत्र तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए क्योंकि बचपनसेही आत्मविद्यामें इनका परिचय बहुत था, इसलिये इन्होंने परमहंसआश्रमको धारण किया ॥ २६ ॥ उस परमहंसाश्रममेंही वे महाज्ञानी राजपुत्र शांतस्वभाव होकर, सकलजीवसमूहके निवासभूत और भयभीत पुरुषोंके शरणरूप वासुदेव भगवान्के श्रीमत् चरणारविंदका निरंतर स्मरण करनेसे प्राप्त भयेहुए अखंडित भक्तियोगके प्रभावसे शुद्ध भयेहुए अंतःकरणके भीतर प्रतीत होते, सकलप्राणीमात्रके आत्मरूप व प्रत्यक्आत्मरूप भगवान्में, अपने ( त्वं पदार्थके ) देहादि उपाधिसे रहित होकर, तादात्म्यभाव ( भगवद्रूपता ) को प्राप्त हुए ॥ २७॥ और दूसरी रानीमेंभी मन्वंतरोंके अधिपति उत्तम, तामस और रैवत ये तीन पुत्र हुए ॥ २८ ॥

इसप्रकार शांत जिसके पुत्र हैं ऐसे, उस उदारचित्त राजाने ग्यारह अर्बुद वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन किया. कैसा है वह राजा कि–जिसने अनायाससे सारे पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले बलसे परिपूर्ण भुजदंडके युगलसे खैंचीहुई पनचके टंकार शब्दसेही विना युद्ध किये सकलधर्मके प्रतिपक्षीलोगोंका नाश कर दिया था; तथा जो बर्हिष्मतीके प्रतिदिन वर्द्धमान प्रमोद, प्रसरण ( उत्तम गमन ), स्त्रीस्वभाव, लज्जा, मनहरण करना, हास, अवलोकन व सुंदर ठट्ठा ठठोलीआदिसे मानों विवेकरहित होगया हो ऐसे, अतएव मानों विषयासक्तिसे आत्मस्वरूपको भूल गया हो ऐसे प्रतीत होता था ॥ २९ ॥ मेरुपवर्तको परिक्रमा देतेहुए सूर्यनारायण लोकालोक-

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादशपरिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दंडयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥ २९ ॥ यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रमन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनंदन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद्द्वितीय इव पतंगः ॥ ३० ॥ ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्तसिंधव आसन्यत एव कृताः सप्तभुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥

पर्यंत पृथ्वीतलको प्रकाशित करते हैं परंतु एकसाथ समग्र भूमंडलको प्रकाशित नहीं करते किंतु आधे भागको तो प्रकाशित करते हैं और आधे भागको अंधकारसे ढक देते हैं. प्रियव्रतको यह बात पसंद न आयी, इसलिये उसने विचार किया कि– रातकोभी दिन बनादूंगा. ऐसे शोचकर, सूर्यके समान वेगवाला ज्योतिर्मय रथ बनाया और उसमें बैठकर, वह मानो दूसरे सूर्य होवे, ऐसे सातबेर सूर्यके पीछे २ चौतरफ फिरा. कदाचित् कोई कहे कि–इस बातका होना असंभव है सो कदापि नहीं समझना क्योंकि भगवत्की उपासनाका प्रभाव सब पुरुषोंके प्रभावको उल्लंघ कर, होता है ॥ ३० ॥ जो उस रथके पहियोंकी पूठियोंके

गढ़े पड़ गये, वे तो सात समुद्र हुए और उन्हीं समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीप हुए हैं ॥ ३१ ॥ जंबूद्वीप १, प्लक्षद्वीप २, शाल्मलिद्वीप ३ कुशद्वीप ४ क्रौंचद्वीप ५ शाकद्वीप ६ पुष्करद्वीप ७ ये सातों द्वीप उत्तरोत्तर एक एकसे प्रमाणमें दूने हैं और समुद्रके बाहर चौतरफ बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥ क्षारोद १ इक्षुरसोद २ सुरोद ३ घृतोद ४ क्षीरोद ५ दधिमंडोद ६ और शुद्धोद ७ ये सातों समुद्र सातों द्वीपोंकी खाईकी नाईं द्वीपके बाहिरकी तर्फ भीतरके द्वीपके बराबर प्रमाणवाले एक एक द्वीपके बाहिर एक एक समुद्र इस रीतिसे बनाये गये हैं. ( पृथ्वीके बीचोबीच एकलाखयोजनप्रमाणवाला जंबूद्वीप है उसके बाहर

जंबूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्उत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समंतत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ ॥ क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमंडोदशुद्धोदाः सप्तजलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यंतरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक् परित उपकल्पितास्तेषु जंब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानीनाम काव्यसुता ॥ ३४ ॥

खाईकी नाईं एकलाखयोजनप्रमाणवाला क्षारसमुद्र है. उस क्षार समुद्रके बाहर २ लाखयोजनप्रमाणवाला प्लक्षद्वीप है; उस प्लक्षद्वीपके बाहर २ लाखयोजनप्रमाणवाला इक्षुरसोद समुद्र है. इसीतरह इक्षुरसोदके बाहर ४ लाखयोजनप्रमाणवाला शाल्मलिद्वीप है फिर उसके बाहर उतनाही सुरोद समुद्र है. इसीतरह सातों द्वीप और समुद्रोंकी स्थिति व प्रमाण है ) इन जंबूद्वीपआदि सातों द्वीपोंमें बर्हिष्मतीके पति राजा प्रियव्रतने अपने आज्ञाकारी आग्नीध्र, इध्मजिव्ह, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि व वीतिहोत्रनामक सातों पुत्रोंको एक एक द्वीपमें एक एकको राजा बना दिया ॥ ३३ ॥ प्रियव्रतके ऊर्जस्वतीनाम जो कन्या थी, वह उशना-( काव्य ) को दी गयी, जिसमें उशना ( शुक्राचार्य ) के देवयानी नाम कन्या हुई ॥ ३४ ॥

उरुक्रम भगवान्के चरणारविंदकी रजके प्रभावसे जिन्होंने छः इंद्रियां वा छः ऊर्मियां जीत लीन्ही हैं, उन भक्तलोगोंका ऐसा पुरुषार्थ होना यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि अंत्यज ( चांडाल ) भी यदी उरुक्रम भगवान्के नामको एकवारभी उच्चारण करे तो वह उसीक्षण संसाररूप बंधनसे मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अतुल जिसका बल व पराक्रम है ऐसा वह, राजा एक समय नारदजीके चरणोंकी उपसत्तिके बीच जो राज्यादि प्रपंच आ पड़ा, उसके संबंधसे अपने आत्माको अकृतार्थसा मानता, मनमें वैराग्यको प्राप्त होकर, यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ ३६ ॥ कि–अहो ! मैंने बहुत बुरा किया, कि–जो मैं इंद्रि-

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदंघ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ॥ चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बंधम् ॥३५॥ स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवाऽऽत्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ ३६ ॥ अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिंद्रियैरविद्यारचितविषमविषयांधकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयांचकार ॥ ३७॥ परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य ह वा एते श्लोकाः ॥प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥ यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्तवारिधीन् ॥३९॥

योंके वश होकर, अविद्यारचित विकट विषयरूप अंधकूपमें गिर पड़ा. बस ! बस ! अब विषयोंसे बहुत होचुका. बारंबार धिक्कार है मुझे कि–जो मैं इस स्त्रीका क्रीडामृग बना. इसप्रकार उसने अपनी बहुतसी गर्हा ( निन्दा ) की ॥ ३७ ॥ हरि भगवान्की कृपासे विवेक प्राप्त होतेही वह दायविभागके अनुसार इस पृथ्वीका विभाग करके, अपने आज्ञाकारी पुत्रोंको देकर, चक्रवर्ती राज्यकी संपदासहित अपनी भुक्तभोग रानीकोभी मृतकशरीरके समान त्याग कर, मनमें वैराग्यको धारण करता, हरि भगवान्की लीलाके प्रभावसे हृदयमें पक्का निश्चय ठान कर, भगवान् नारदजीके उपदेश कियेहुए मार्गके अनुसार पीछा बरतने लगा ॥३८॥ प्रियव्रतकी महिमाके विषयमें लोक ये श्लोक कहा करते हैं. जिस प्रियव्रतने सूर्यकी छाया मिटानेके वास्ते अपने रथके पहि-

योंकी पृथियोंके गढ़ोंसे सात समुद्र पैदाकिये उस प्रियव्रतके कियेहुए कर्मकी बराबरी परमेश्वरविना दूसरा कौन करसक्ता है ? ॥ ३९ ॥ जिसने लोकोंके विवाद मिटानेद्वारा सुख करनेके वास्ते द्वीपोंसे पृथ्वीका विभाग किया और द्वीप द्वीपमें नदियां, पर्वत व वनआदिसे सीमाभी बांध दी ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तोंके प्यारे जिस प्रियव्रतने पातालका, स्वर्गका और मनुष्यलोकका, क्या तो कर्मज वैभव और क्या योगज वैभव? दोनोंको नरकके समान समझा, उससे बराबरी कौन कर सकता है ? ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें

भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्त्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥ भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्म योगजम् ॥ यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जंबूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥ स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवंतं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयांबभूव ॥ २ ॥ तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायंतीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥

स्त्रीपरतंत्र पुरुषोंके परम माननीय आग्नीध्र राजाका चरित्र कहा जायगा, जिसके पूर्वचित्तिनाम अप्सरामें नाभिआदि पुत्र हुए ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इसतरह पिता प्रियव्रत राज देकर, चला गया, तब उसके आज्ञाकारी आग्नीध्र राजाने जंबूद्वीपकी रहनेवाली प्रजानका, धर्मकी ओर दृष्टि रखकर, अपने पुत्रकी तरह पालन किया ॥ १ ॥ पुत्रकी कामनावाले उस आग्नीध्र राजाने किसी समय पूजाकी पुष्पआदि सब सामग्री तैयार करके, तपस्वी बनकर, देवांगनाओंके क्रीड़ा करनेकी भूमि मंदराचल पर्वतकी गुफामें बैठकर, एकाग्रचित्तसे आराधन किया ॥ २ ॥ यह जान कर, भगवान् आदिपुरुष ब्रह्माजीने अपनी सभामें गानकर-

तीहुई पूर्वचित्तिनाम अप्सरा उसके संभोगके अर्थ भेजी ॥ ३ ॥ वहभी उस राजाके आश्रमसंबंधी अतिरमणीय उपवनके निकट आकर, फिरने लगी. कैसा है उपवन कि–जहां अनेक सघन वृक्षोंकी टहनियोंके समूहसे मिलीहुई स्वर्णवल्लियोंपर बैठेहुए स्थलपक्षी यानी मयूरादिकोंसे उच्चारण किये जाते षड्जआदि स्वरोंको सुनकर, सावधान हुए जो कारंडव, जलमुर्गाबियां और राजहंसआदि जलपक्षी, वे कमलोंकी खानरूप निर्मल जलाशयोंके भीतर विचित्र प्रकारसे नाद कर रहे हैं ॥ ४ ॥ अत्यंत ललित

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहंगममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारंडवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥ तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ ५ ॥ तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रंतीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदांधमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गु स्पंदनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ६ ॥

रीतिसे गमन करते समय जो वह चरण रखती हैं, उन्हींके हेतु अद्भुत जिसकी गतिका विलास है ऐसी, उस अप्सराके पगपगमें खणखणाहट करतेहुए सुंदर चरणोंके आभरणोंका शब्द सुनतेही, समाधियोगके निमित्त मीचेहुए नेत्ररूप कमलकुड्मलके युगलको कुछ जरा खोलकर, राजपुत्रने उसकी तर्फ़ देखा ॥ ५ ॥ जैसे भ्रमरी पुष्पोंको सूंघती फिरती हो वैसे अपने समीपमें फिरतीहुई और देवता व मनुष्योंके मन व नेत्रोंको आनंदित करनेवाले गमन, विहार, विनयसहित अवलोकन, सुस्वरभाषण व सुंदर अंगोंसे मनुष्योंके मनमें पुष्पोंके धनुषवाले कामदेवके प्रवेश होनेके द्वार करती हुई अपने मुखसे निकलेहुए अमृतके समान मधुर और आसवके समान मादक हास्यसहित भाषणके निःश्वासगंधसे मदांध भ्रमरसमूहके घेरनेसे डरकर, जो जल्द २ पांव र-

खती है, उससे स्तनकलश, केशपाश व रशना ( कटिमेखला ) जिसकी कुछ डोलरही है ऐसी, उस अप्सराको देखतेही, भगवान् कामदेवको अवसर मिलनेसे कामदेवने राजपुत्रको वश कर लिया. उसीसे जड़ ( मूर्ख )-की तरह उसने यह बचन कहा कि- ॥ ६ ॥ हे मुनिवर्य ! आप कौन हो ? इस पर्वतमें आप क्या करना चाहते हो ? क्या आप परदेवतारूप भगवान्की कोई माया हो ? भौंहकी तर्फ देखकर, कहता हैं कि-हे सखा ! ते रे पास ये दो बिना पनचके धनुष हैं सो क्या ये तेरे निजके वास्तेही हैं ? अथवा हमारे जैसे मृगतुल्य अजितेंद्रिय पुरुषोंको यहां जंगलमें ढूंढ़ते हो ? ॥ ७ ॥ कटाक्षोंको देखकर, कहता है कि-कमलरूप नेत्रही जिनके पिच्छ हैं ऐसे, विभ्रमके कारण परमशांत, विनाही पुंखके सुंदर व अतितीक्ष्ण दांतोंवाले ये बाण आप

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि काऽपि भगवत्परदेवतायाः ॥ विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ ७ ॥ बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शांतावपुंखरुचिरावतितिग्मदंतौ ॥ यस्मै युयुंक्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ८ ॥ शिष्या इमे भगवतः परितः पठंति गायंति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजंत्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥ ९ ॥ वाचं परं चरणपंजरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा कंदबरुचिरंकविटंकबिंबे यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ १० ॥

वनमें विचरतेहुए किसपर चलाना चाहते हो ? हमें इस बातकी खबर नहीं है, इसलिये हमारी यह प्रार्थना है कि-यह आपका पराक्रम हम जड़बुद्धियोंके कल्याणके वास्ते हो जाय तो ठीक ॥ ८ ॥ उसके अंगकी सुगंधिके लोभसे पीछे जातेहुए भ्रमरोंको देखकर, कहता है कि- ये आपके शिष्य हैं, सो आपके चारों ओर फिरते रहस्यसहित सामवेदको निरंतर पढ़ रहेहैं और गा रहे हैं. हे ईश ! आपकी शिखामेंसे जो फूलोंकी बरसा होती है, उसका जैसे ऋषिगण वेदकी शाखाओंका सेवन करें, ऐसे सब भ्रमरगण सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ नूपुरका शब्द सुनकर, कहताहै कि-हे ब्रह्मन् ! आपके चरणगतनूपुररूप पिंजरेके भीतर रहेहुए, अंतर्गत रत्नरूप तीतरियोंकी अतीव स्पष्टतर केवल वाणीको सुनते हैं, परंतु उन बोलनेवाली व्यक्तियोंका मुख दृष्टि नहीं आता.

पीले पहिरनेके वस्त्रको नितंबकी कांति मानकर, कहता है-सुंदर नितंबमंडलमें यह कदंबके पुष्पकीसी दीप्ति तुमने कहांसे पायी ? मेखलाको देखकर कहता है. जिसमें अलात ( जलती हुई किसी चीजको घुमानेसे जो चक्राकार देखनेमें आता है उस ) की परिधि है, वह नितंबपरका तेरा वस्त्र कहां है ? ॥ १० ॥ स्तनोंकी तर्फ देखकर, कहता है- हे विप्र ! जिनमें मेरी दृष्टि लग रही है और मध्यभाग अतिकृश होनेसे जिनको आप बड़े कष्टके साथ धारण करते हो, इसलिये मैं आपसे पूंछता हूं कि- जो ये दो अतिसुंदर सींग दीखते हैं इनके अंदर आपने क्या भर रक्खा है ? स्तनोंपर लगीहुई केसरको देखकर, कहता है कि-आपने अपने सींगोंपर यह ऐसा सुगंधि लाल लालसा कीचड़ क्या लगा रक्खा है ? हे सुभग ! जिससे मेरे इस आश्रमको सुगंधित

किं संभृतं रुचिरयोर्द्विजश्रृंगयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पंकोरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥ ११ ॥ लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥ १२ ॥ का वाऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरंगवाति विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ॥ उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपंक्तिशोचिरासन्नभृंगनिकरं सर इन्मुखं ते ॥१३॥ योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतंगो दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लंपट एष नीवीम्॥१४॥

करते हो ॥ ११ ॥ हे परममित्र ! मुझे आपका लोक यानी रहनेका स्थान दिखाओ, कि-जहांके रहनेवाले लोग मेरेजैसे पुरुषके मनको क्षोभित करनेवाले ऐसे अपूर्व अवयवों ( स्तनों ) को उर ( हृदय ) से धारण करते हैं. और मुखमें मधुर भाषण व विलाससहित अधरामृत व स्मित, नर्मआदि अतिआश्चर्यकारी अद्भुत पदार्थ धारण करते हैं ॥ १२ ॥ तांबूलकी सुगंधि लेकर, कहता है कि-हे अंग ! आप क्या खाते हो ? जिसके खानेसे हविकीसी सुगंधि आती है. क्या आप विष्णुकी कला हो ? क्योंकि आपके कानोंमें निमेषशून्य देदीप्यमान मकराकृत कुंडल शोभायमान हैं. आपका मुख तो मुझे सरोवरके समान दीख पड़ता है; क्योंकि इसमें चंचल मीनयुगल ( नेत्र ) खेल रहा है और द्विज यानी दांतों ( राजहंसों ) की श्रेणीकी शोभा छा रही है और परिमल- ( सुंगधि ) का लोभी भौंरोंका झुंड-( केशपाश ) के समीपमें विद्यमान है ॥ १३ ॥ तू जिस कंदुक ( गेंद ) को

अपने करकमलसे ताड़ित करता है, वह यह कंदुक दिशाओंमें घूमताहुआ मेरे नेत्रोंको चंचल करता है. अरी ! जो यह तेरा कुटिल जटाजूट खुलगया है, इसे तू नहीं सँभालती, अरी री ! यह धूर्त लंपट पवन तेरी नीवीको हरण करता है; क्या इसकोभी नहीं संभालती ? ॥ १४ ॥ हे तपोधन ! तप करनेवाले पुरुषोंके तपका नाश करनेवाला यह रूपरंग आपको किस तपस्याके प्रभावसे मिला है ? हे मित्र ! मेरे साथ आप तप करनेको योग्य हो; क्योंकि सृष्टिको बढ़ानेवाले भगवान् ब्रह्माजी आपको मेरी स्त्री बनानेकी कल्पना करते हैं ॥ १५ ॥ आपमें मेरी दृष्टि और मन ऐसे लग गये हैं कि–एक क्षणभरभी पीछे नहीं

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ॥ चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ १५ ॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ॥ मां चारुशृंग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरंतु शिवाः सचिव्यः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनाऽनुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥ १७ ॥ सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयःश्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जंबूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥ १८ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजयत् ॥ १९ ॥

हटते; इसलिये ब्रह्माजीके दियेहुए प्यारे आपको मैं कदापि नहीं छोडूंगा. हे सुंदरशृंगवाली ! जहां तेरा मन हो वहीं मुझे ले चल; क्योंकि मैं तो तेरे आधीन हूं और तेरी सखियोंकोभी कह दे कि–ये अनुकूल होकर, मेरे पास रहें ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–स्त्रियोंके अनुनय यानी मनानेमें अतिचतुर ऐसे उस महाबुद्धिमान् राजा आग्नीध्रने ग्राम्यजनोंके भीतर चतुरतावाली परिभाषासे उस अप्सराका सबप्रकारसे बहुत अच्छीतरह सत्कार किया ॥ १७ ॥ वह अप्सराभी उस वीर यूथपति राजाके शील, रूप, अवस्था, बुद्धि, लक्ष्मी, उदारता इत्यादि गुणोंसे क्षोभितचित्त होकर, उस जंबूद्वीपके पति राजाके साथ दश करोड़ वर्षपर्यंत पृथ्वीके और स्वर्गके भोग भोगती रही ॥ १८ ॥ उन उत्तम राजा आग्नीध्रके उस अप्सरामें नाभि १ किंपुरुष २

हरिवर्ष ३ इलावृत ४ रम्यक ५ हिरण्मय ६ कुरु ७ भद्राश्व ८ व केतुमाल ९ नाम नव पुत्र पैदा हुए॥ १९ ॥ वह पूर्वचित्तिनाम अप्सरा एक एक वर्षमें एक एक पुत्रके हिसावसे नौ वर्षोंमें नव पुत्रोंको पैदा करके, उनको घरके भीतरही छोड़कर, फिर पीछी ब्रह्माजीके पास जा, उपस्थित हुई ॥२०॥ वे आग्नीध्रके पुत्र माताकी कृपासे स्वभावहीसे बड़े दृढांग और बलवान् हुए. पिता आग्नीध्रने इनको राजके योग्य समझकर, उन्हीं पुत्रोंके नामवाले नौ खंड बनाकर, जंबूद्वीपका राज बराबर विभाग करके, बांट दिया. तब वे अपने २ राज्यके वैभव भोगने लगे ॥ २१ ॥ राजा आग्नीध्र विषयभोगसे तृप्त नहीं हुआ था, अतएव उसी अप्सराको वह प्रतिदिन बहुत अधि-

सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥ २० ॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जंबूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुंध यत्र पितरो मादयंते ॥ २२ ॥ संपरेते पितरि नवभ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे आग्नीध्रवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवंतं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥ १ ॥

क मानताहुआ वदोक्तकर्म करके, उस पूर्वचित्तिके लोकमें गया, जहां पितृगण आनंदसे विराजते हैं ॥ २२ ॥ जब पिता आग्नीध्र मर गया, तब उन नौही भाइयोंने मेरुदेवी १, प्रतिरूपा २, उग्रदंष्ट्री ३, लता ४, रम्या ५, श्यामा ६, नारी ७, भद्रा ८ और देववीति ९ नामक मेरुकी नौ कन्याओंके साथ क्रमसे विवाह किया ॥ २३ ॥ इति श्रीभा० म० पंच०रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें परममंगलरूप नाभिराजाका चरित कहा जायगा, जिसके यज्ञमें प्रत्यक्ष प्रगट होकर, फिर भगवान्ने उसके घर ऋषभअवतार धारण किया ॥१॥ नाभि राजाके संतान नहीं था, इसलिये उसने अपनी सं-

तानहीन मेरुदेवी नाम स्त्रीके साथ पुत्रकी कामनासे एकाग्रचित्त होकर, यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन किया ॥ १ ॥ वह राजा शुद्धभावसे श्रद्धापूर्वक यजन करता था और प्रवर्ग्य नाम यज्ञके कर्म हो रहेथे; यद्यपि द्रव्य, देश, काल, मंत्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि इन उपायोंकी संपदासे भगवान्‌की प्राप्ति होनी अतिदुर्लभ है, तथापि अपने भक्तजनोंके मनवांछित कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे जिनको हृदय भक्तोंकी ओर आकर्षण कियाहुआ है, ऐसे हरि भगवान्‌ने अपने भक्तलोगोंपर दयालु होनेके कारण सुंदर अंगोंवाला शरीर धारण करके, मन व नत्रोंके आनंद देनेवाले अवयवोंसे अतिसुंदर व सुखकारी स्वतंत्र अपने स्वरूपका आविर्भाव किया ॥ २ ॥

तस्य हवाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमंत्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानंदनावयवाभिराममाविश्चकार ॥ २ ॥ अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयांबरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुंडलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यंगभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य स बहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ३ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान्प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४ ॥

प्रगट चार जिसमें भुजा हैं ऐसा तेजोमय, पुरुषोत्तम, पीले पीतांबर धारण किये, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका सुंदर चिन्ह धारण किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, कौस्तुभमणिआदि लक्षणोंसे लक्षित, जिनकी किरणें प्रगट देदीप्यमान हो रही हैं ऐसी उत्तम मणियोंके मुकुट, कुंडल, कटक, कटिमेखला, हार, केयूर ( भुजबंध ) व नूपुरआदि अंगसंबंधी आभूषणोंका शृंगार धरेहुए, प्रभुके स्वरूपका दर्शन करके, जैसे निर्धनको उत्तम धन यानी निधि मिल जाय और वह प्रसन्न होवे, ऐसे प्रसन्न होकर, ऋत्विज सभासद और यजमान इन सबोंने बहुत मानके साथ पूजा की और शिर झुकाकर, स्तुति की ॥ ३ ॥ ऋषि बोले कि-हे

अर्हत्तम! आप परिपूर्ण हो, तोभी हम भृत्यलोगोंका पूजन बारंबार आपको स्वयमेव अंगीकार करना चाहिये. आपके स्वरूपको जानना अतिकठिन है, इसलिये सत्पुरुषोंसे हमने केवल "नमोनमः" इतनाही सीखा है, अतएव हम आपकी स्तुति नहीं कर सकते. ( वही कहते हैं ) प्रकृतिके गुणोंके व्यतिकर अर्थात् प्रपंचमेंही जिसकी बुद्धी है ऐसा, असमर्थ कौन पुरुष अर्वाक्तन यानी प्रपंचान्तर्गत नाम, रूप व आकारसे प्रकृतिपुरुषसे पर परमेश्वर आपके स्वरूपका निरूपण कर सक्ता है? ॥ ४ ॥ हां, सकलजनसमूहके संकट काटनेवाले आपके परमकल्याणमय उत्तम गुणगणोंके एकदेशका अवश्य वर्णन कर सक्ता है, परंतु इसके सिवाय कुछभी नहीं कर सक्ता ॥ ५ ॥ हे परम ! भक्तलोग प्रीतिपूर्वक गद्गदाक्षर उच्चारण कर, आपकी स्तुति करते हैं. और जल, शुद्ध

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥ ५॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वांकुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परमपरितुष्यसि ॥ ६ ॥ अथानयाऽपि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ७ ॥ आत्मन एवानुसवनमंजसाव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परमपरमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन्स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥ ९ ॥

पल्लव, तुलसी, दूबके अंकुरआदि तयार करके पूजन करते हैं, तो उससेभी आप प्रसन्न हो जाते हो ॥ ६ ॥ और प्रीतिविना तो बहुत सामग्रीवाले यागसेभी आपका भले यजन किया जाय, परंतु इससे यहां हमको कुछभी मनचाहा प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दीखता ॥ ७ ॥ हे नाथ! आप तो सदा स्वतएव साक्षात् अतिशय करके होतेहुए समस्त पुरुषार्थोंके स्वरूपभूत यानी परमानंदस्वरूप हो, परंतु हम जो सकाम भक्त हैं, उनके वास्ते यह आपका आराधनमात्र करना बन सकता है ॥ ८ ॥ हम मूर्ख हैं, अतएव हम हमारे सर्वोत्कृष्ट कल्याणके पथको स्वयं नहीं जान सकते, परंतु आपने परात्पर पुरुषार्थके उत्कर्षवाली करुणासे अपवर्ग ( मोक्ष ) नामक अपनी महिमा तथा मनवांछित कामना सिद्ध करनेके वास्ते बिनाही पूजा किये सर्वज्ञ पुरुषकी नाईं स्वयमेव दर्शन दिया है ॥ ९ ॥

हे पूज्यतम! अब हमारे तंई यही एक बड़ा वरदान हुआ कि-जो राजर्षि नाभिके यज्ञमें बरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् आप निज-
भक्त हमलोगोंके नेत्रगोचर हुए, यानी हमें दर्शन दिया ॥ १० ॥ आत्माराम मुनिलोग जिसके गुणगणोंका सदा अभ्यास करते
रहते हैं ऐसे, हे प्रभु! वैराग्यकरके तीक्ष्ण हुआ जो ज्ञानानल उससे भस्म हो गये हैं सकलमल जिनके ऐसे, अतएव आपका-
सा जिनका स्वभाव है ऐसे, आत्माराम मुनिलोगभी आपके परम मंगलिक गुणगणोंका वर्णन करते हैं, परंतु दर्शन होना तो
उन्हेंभी दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इसीलिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि-किसी तरह स्खलन (आखड़ना) भूख, गिरना, जँभाई

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ १० ॥
असंगनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणित-
गुणगणपरममंगलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ ११ ॥ अथ कथंचित्स्खलनक्षुत्पतनजृंभणदुरवस्था-
नादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनाम-
धेयानि वचनगोचराणि भवंतु ॥ १२ ॥ किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ई-
श्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवंतमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥
॥ १३ ॥ को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयाना-
वृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १४ ॥

लेनाआदि दुःखकी स्थितिमें अथवा ज्वर वा मरणकी दशामेंभी जब हम आपका स्मरण करनेको विवश हो जावें, उस समय
भी सकल कश्मल (दुःख) को दूर करनेवाले आपके गुणोंके कियेहुए नामोंका हमसे उच्चारण होता रहे ॥ १२ ॥ स्वर्ग और
अपवर्ग यानी निर्वाण मोक्षकी कामना पूर्ण करनहारे ईश्वर आपके पास यह राजा, आपकासा पुत्र चाहता हुआ पुत्रकी कामनासे
भगवान् आपका आराधन करता है; यह मांगना जैसे कोई निर्धन पुरुष कुबेरके पास जाकर, नाजके ऊपरका भूसा मांगे वैसा
है; परंतु यह तो अभी संतान होनेकोही पुरुषार्थकरके मानता है ॥ १३ ॥ और यह कोई अचरजकी बात नहीं है; क्योंकि-
जिसने महत्पुरुषोंके चरणोंकी सेवा नहीं की है, वह ऐसा कौन है? कि-जो, जिनके मार्गको पहचानना अतिकठिन है ऐसे:

आपकी अपराजित मायासे, पराजित न हुआ हो अथवा जिसकी बुद्धि घिरी हुई न हो या विषयरूप विषके बेगका जिसकी प्रकृतिपर आवरण न पड़ा हो ॥ १४ ॥ हे बहुतकार्य करनेवाले प्रभु! थोड़ेसे कार्यके वास्ते प्रजा होनेको पुरुषार्थ समझ कर जो हम मंदबुद्धियोंने आपको यहां बुलाया है, सो हे देवदेव! सबपर समभाव रखनेसे हम कुबुद्धियोंका वह अपराध क्षमा होना चाहिये ॥ १५ ॥ शुकदेवजी बोले कि—देवतानमें उत्तम हरि भगवान्‌की ऋत्विजोंने इसतरह गद्यात्मक स्तोत्रसे स्तुति की

यद्‌ह वा व तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मंदानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥१५॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवंदितचरणः सदयमिदमाह ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद्द्विजदेवकुलम् ॥ १७ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निशामयंत्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायांतर्दधे भगवान् ॥ १९ ॥

और नाभिराजा जिनके चरणोंको वंदन किया करता है ऐसे, उन ऋत्विजोंने वंदनभी किया, तब दयाकरके भगवान्‌ने यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ १६ ॥ भगवान् बोले कि—अहो हे ऋषियो! सत्य जिनकी वाणी है ऐसे आपने यह वरदान बहुत कठिन मांगा, कि—इस राजाकेमेरे जैसा पुत्र होना चाहिये. देखो, मेरेजैसा तो मैंही हूं; क्योंकि मैं अद्वितीय हूं. तथापि ब्राह्मणोंका वचन असत्य न होना चाहिये; क्योंकि उत्तम ब्राह्मणोंका जो कुल है, वह तो मेराही मुख है ॥ १७ ॥ मेरेजैसा जगत्‌में कोई दूसरा नहीं है, इसलिये नाभिराजाके घर मैंही अपनी अंशकलासे प्रगट होऊंगा ॥ १८ ॥ शुकदेवजी बोले कि— मेरुदेवीके

सुनते नाभिराजाको ऐसे आज्ञा करके भगवान् अंतर्धान हुए ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे विष्णुदत्त राजा! नाभिराजाके यज्ञमें महात्मा ऋषिलोगोंने इसप्रकार भगवान्को प्रसन्न किया, तब नाभिराजाके प्रिय करनेकी इच्छासे उसकी रानी मेरुदेवीमें शुक्ल शरीर धारण करके, दिग्वस्त्र, नैष्ठिक ब्रह्मचारी तपस्वी, ऋषियोंका धर्म प्रगट करनेके लिये भगवान्ने ऋषभअवतार लिया ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ चौथे अध्यायमे ऋषभदेवजीके सौ पुत्र हुए और उनके राजमें सब लोग संतोषरुप अमृतसे तृप्त थे, सो उनके राजका वर्णन होगा ॥ १ ॥

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमंथिनां शुक्लया तनुवाऽवततार॥२०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे नाभिचरित्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच॥ अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥ तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥ तस्य हींद्रः स्पर्द्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्याऽऽत्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥

श्रीशुकमुनि बोले कि- जन्मसेही जिनके भगवान्के लक्षण थे, अर्थात् दाहिने हाथमें चक्र और चरणमें वज्रआदि प्रगट दीख रहे थे और समभाव, वैराग्य, उपशम, ऐश्वर्य व बड़ी २ सकल संपत्तियोंसे जिनका प्रभाव प्रतिदिन उन्नतिपर आ रहाथा, उनको पृथ्वीतलका पालन करनेके अर्थ अमात्यआदि प्रकृति, प्रजा, ब्राह्मण और देवता सब कोई चाहते थे ॥ १ ॥ उनका शरीर, ओज (तेज), बल, लक्ष्मी, यश प्रभाव व उत्साहके कारण अतिश्रेष्ठ और बड़ा यशवाला था, इसलिये पिता नाभिने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) ऐसा रक्खा ॥ २ ॥ इंद्रने ईर्षा रखकर, जब भगवान् ऋषभदेवजीके खंडमें वर्षा न की, तब उस बात-

को शोचकर, योगेश्वर भगवान् ऋषभदेवजीने हँसकर, अपनी योगमायासे अपने अजनाभ नाम खंडमें वर्षा की ॥ ३ ॥ नाभि राजाके जैसी मनमें थी वैसाही सुपुत्र पुत्र हुआ, तासों वह राजा नाभि आनंदके पूरसे विव्हल हो, अपनी इच्छासे जिन्होंने मनुष्यआकार धारण किया है ऐसे, पुराणपुरुष भगवान्का गद्गद अक्षरोंवाली वाणीसे हे, वत्स ! हे तात ! इसतरह अनुरागसे प्यार करताहुआ, भगवान्की मायासे यह मेरा पुत्र है ऐसी बुद्धिकरके, परम आनंदको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ पुरके लोगोंको प्रमाण माननेवाले राजा नाभिने प्रकृति और पुरके लोगोंको अपने पुत्रसे राजी जानकर, धर्ममर्यादाके रक्षणार्थ अपने पुत्रको, रा-

नाभिस्तु यथाऽभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवंतं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥ ४ ॥ विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवंतं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥ ५ ॥ यस्य ह पांडवेय श्लोकावुदाहरंति ॥ को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥ अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मंगलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥

ज्याभिषेक करके, ब्राह्मणोंकी गोदमें रख दिया फिर आप अपनी रानी मरुदेवीको साथ ले, बदरिकाश्रममें जाकर, निर्मल और तीव्र तपके प्रभावसे चित्तको एकाग्र करके, नरनारायण नाम वासुदेव भगवान्की सेवा करता २ समय पाकर, जीवन्मुक्त हो गया ॥ ५ ॥ हे परीक्षित ! उसके विषयमें लोक दो श्लोक कहा करते हैं; जिसके शुद्ध कर्मके प्रभावसे साक्षात् हरि पुत्र हुए, उस राजर्षि नाभिके बराबर कर्म कौन पुरुष कर सकता है ? ॥ ६ ॥ जिसके यज्ञमें दक्षिणासे तृप्त होकर, ब्राह्मणोंने साक्षात् यज्ञपति विष्णु भगवान्का मंत्रबलसे दर्शन करवा दिया, उस नाभिराजासे बढ़कर दूसरा कौन ब्राह्मणोंका भक्त होसकता है ? ॥ ७ ॥

फिर भगवान् ऋषभदेवजीने अपने अजनाभनाम खंडको कर्मक्षेत्र मानकर,विद्या पढ़नेको गुरुकुलमें निवास किया. फिर उन्हें गुरुदक्षिणा दे, आज्ञा ले, गृहस्थियोंको गृहस्थके धर्म सिखलाते, श्रुतिस्मृतिविहित कर्मका अनुष्ठान करते, ऋषभदेवजीने इंद्रकी दीहुई जयंती नाम रानीमें आपके जैसे गुणवान् सौ पुत्र पैदा किये ॥ ८ ॥ उनमें भरत सबसे बड़ा, बड़ा योगी और उत्तम गुणी था. जिसके नामसे इस खंडका भारत नाम पड़ा ॥ ९ ॥ उससे छोटे १ कुशावर्त, २ इलावर्त, ३ ब्रह्मावर्त, ४ मलय, ५ केतु, ६ भद्रसेन, ७ इंद्रस्पृक्, ८ विदर्भ और ९ कीकट, ये नौ पुत्र थे. जो नब्बे पुत्रोंसे बड़े थे,॥ १० ॥ उनसे छोटे कवि ,१,

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयंत्यामिंद्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुंजन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ ८ ॥ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशंति ॥ ९ ॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इंद्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ ११ ॥ यवीयांस एकाशीतिर्जायंतेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रियो यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥ १२ ॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतंत्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरंपरः केवलानंदानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशांतो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानंदामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १३ ॥

हरि २, अंतरिक्ष ३, प्रबुद्ध ४, पिप्पलायन ५, आविर्होत्र ६ द्रुमिल ७, चमस ८ और करभाजन ९, ये नव योगेश्वर थे. जो भगवद्धर्मके बतलानेवाले भगवान्के परमभक्त थे, भगवान्की महिमासे बढ़ाहुआ व शांतिका अयन जो इनका चरित्र है, वो वसुदेवजी और नारदजीके संवादमें आगे ( एकादशस्कंधमें ) कहा जायगा ॥ ११ ॥ इनसे छोटे इक्यासी ८१ पुत्र थे, वे पिताके आज्ञाकारी, बड़े विनीत, वेदके ज्ञाता, यज्ञ करनेवाले कर्मसे शुद्ध ब्राह्मण होगये ॥ १२ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी स्वतंत्र,

स्वयमेव अनर्थकी परंपरासे सदा दूर, शुद्ध, आनंदके अनुभवी, साक्षात् ईश्वर थे; तथापि अनीश्वरकी भांति वे कर्मोंका आचरण कर, समयप्राप्त धर्म आचरणद्वारा अज्ञानीलोकोंको धर्मानुष्ठान करना सिखाते थे. और परमदयालु, समदृष्टि, शांत व सबसे मित्रता रखनेवाले ऋषभदेवजी धर्म अर्थ यश संतान ( काम ) व मोक्षके संग्रहके साथ लोकोंको घरोंमें चलाते थे ॥ १३ ॥ क्योंकि लोककी यह रीति है कि-मुखिया जो आचरण करता है, तो लोकभी वैसाही करते हैं ॥ १४ ॥ यद्यपि आप सकल धर्मको बतानेवाला बेदका रहस्य जानते थे, तथापि ब्राह्मणोंको पूंछनेपर जैसा वे ब्राह्मण कहते, उसीके अनुसार, वे साम, दान, भेद व दंड इन उपायोंसे प्रजाकी शिक्षा करते ॥ १५ ॥ जिनमें द्रव्य, देश काल, अवस्था, श्रद्धा व ऋत्विजआदि सब

यद्यच्छीर्षण्या चरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १४ ॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥ १५ ॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १६ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वांच्छत्यविद्यमानमिवाऽऽत्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृंभितस्नेहातिशयमंतरेण ॥ १७ ॥ स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयंतीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयंत्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

साधनोंकी बहुतायत है ऐसे, सर्व यज्ञ विधिपूर्वक उन्होंने सौ सौ बेर किये॥१६॥जिस समय भगवान् ऋषभदेवजी इस खंडकी रक्षा करते थे, उस समय इस खंडमें कोईभी मनुष्य किसी दूसरेसे किसीतरहभी अपने स्वामी ऋषभदेवजीमें वृद्धिंगत स्नेहके उद्रेकके सिवाय और कुछभी नहीं चाहता था ॥ १७ ॥ एक समय वे भगवान् ऋषभदेवजी घूमते २ ब्रह्मावर्तमें चले गये, वहां उत्तम २ ब्रह्मर्षिलोगोंकी समाज जुड़ रही थी, उसमें जाकर, सब प्रजानके सुनते अपने पुत्र कि-जो संयतचित्त व नम्रता और विनयके पूरसे बहुत यंत्रित थे; तथापि उनको शिक्षा देनेके मिषसे सब लोकोंको उपदेश करनेके वास्ते यह वक्ष्यमाण बचन बोले ॥१८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥

पांचवे अध्यायमें, मोक्षधर्मके उपदेशवचनोंसे पुत्रोंको शिक्षा दी और आप सुखदुःखादि द्वंद्वका सहन करके परमहंस हुए. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीऋषभदेवजीने कहा कि-हे पुत्रो ! देहधारियोंका यह शरीर दुःखदायी विषयभोगोंके योग्य नहीं है; क्योंकि विषयभोग तो विष्ठा खानेवाले नारकी जीवोंकोभी मिल जाता है, अतएव मैं कहता हूं कि-यह शरीर दिव्य तप करनेके योग्य है, कि-जिस तपसे अंतःकरण शुद्ध हो जाता है और अंतःकरणशुद्धिसे अनंत ब्रह्मसुख प्राप्त होता है ॥ १ ॥ विद्वान्लोग कहते हैं कि-महत्पुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है और स्त्रीसंगी पुरुषोंकी संगत नरकका द्वार है. और महत्पुरुष उन्हें समझना चाहिये कि-जो सदाचार पालते हों, सबमें एकसा जिनका चित्त हो, शांत जिनकी वृत्ति हो, क्रोध जिनके न हो और जो सब-

ऋषभ उवाच ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ॥ तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनंतम् ॥ १ ॥ महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम् ॥ महांतस्ते समचित्ताः प्रशांता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥ २ ॥ ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ ३ ॥ नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिंद्रियप्रीतय आपृणोति ॥ न साधु मन्ये यत आत्मनोयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ ४ ॥ पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ॥ यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबंधः ॥ ५ ॥

का भला करना चाहते हों ॥ २ ॥ और जो, परमेश्वर जो मैं हूं उसमें सुहृद्भाव रखते हों और उसी सुहृद्भावको परम पुरुषार्थ जानते हों तथा देहके भरण पोषणकीही जिनके बात है किंतु धर्मसंबंधी नहीं ऐसे लोकोंमें व स्त्री, पुत्र व धनवाले घरोंमें जिनकी प्रीति नहीं हो और देहनिर्वाहके सिवाय अधिक किसी वस्तुकी जिनके चाह नहीं हो ॥ ३ ॥ यह मनुष्य जब असावधान होकर इंद्रियप्रीतिके वास्ते व्यापार करता है, तब निश्चय पाप करता है और उसी प्राचीन कर्मसे क्लेशका देनेवाला यह शरीर आत्माका न होनेपरभी उसे प्राप्त हुआ है, इसलिये बारंबार कर्म किये करना, इसे मैं ठीक नहीं समझता ॥ ४ ॥ जबतक यह आत्मस्वरूपको नहीं जानता, तबतक इसके यह अज्ञानकृतस्वरूपतिरस्कार रहता है और जबतक क्रिया रहती हैं तब-

तक यह मनभी कर्मोंमें लगा रहता है, कि-जिससे यह शरीरका बंधन बना रहता है ॥ ५ ॥ इसतरह जबतक आत्मा अविद्यासे आच्छादित रहता है, तबतक पूर्वकर्म मनको अपने वशमें रखता है और मन मनुष्यको कर्मवश करदेता है, सो जबतक वासुदेवस्वरूप मुझमें प्रीति नहीं होती, तबतक यह देहका संबंध नहीं मिटता ॥ ६ ॥ जब इंद्रियोंकी चेष्टाके आत्मासे कुछभी संबंध नहीं है, इस प्रकार विवेकी बनकर, नहीं जानता, तब यह मूर्ख तुर्त स्वरूपस्मृतिशून्य हो, अपने स्वार्थमें प्रमत्त होनेसे केवल मैथुनसुखप्रधान घरको प्राप्त होकर, उसमें अनेक प्रकारके संतापोंको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ प्रत्येक स्त्री पुरुषके एक एक हृदयग्रंथि

एवं मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥ यदा न पश्यत्ययथागुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृतिर्विंदति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥ ७ ॥ पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रंथिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहंममेति ॥ ८ ॥ यदा मनो हृदयग्रंथिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥ हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वंद्वतितिक्षया च॥ सर्वत्र जंतोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसंगाद्गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ११ ॥

तो हैही, परंतु ये दोनों जब दंपतीभावसे रहते हैं, तब इनके परस्परके देहाभिमानरूप दूसरी दृढ़ हृदयग्रंथि बँध जाती है, कि-जिस ग्रंथिसे लोकोंके घर, क्षेत्र, पुत्रसंबंधी और धनमें मैं और मेरा ऐसा बड़ा मोह होता है ॥ ८ ॥ कर्मोंसे बँधीहुई यह मनरूप दृढ़ हृदयग्रंथि जब इसकी शिथिल हो जाती है, तब यह मनुष्य मिथुनीभावसे निवृत्त हो जाता है. और फिर अहंकारको त्याग, मुक्त हो परंपदको प्राप्त हो, जाता है ॥ ९ ॥ अहंकार त्याग करनेके पचीस साधन हैं, जैसे- १ ईश्वरकी भक्ति, २ गुरुसेवा, ३ तृष्णाका त्याग, ४ सुखदुःखादिकोंका सहना, ५ सर्वत्र यानी लोकांतरमेंभी दुःखका अनुसंधान, ६ तत्त्वजिज्ञासा, ७ तप, ८ काम्यकर्मका त्याग, ॥ १० ॥ हे पुत्रो ! ९ मेरे अर्थ कर्म करना, १० मेरी कथा सुनना और कहना, ११ मेरे भक्तोंकी संगति

करना, १२ मेरे गुणोंका कीर्तन करना, १३ वैरका अभाव, १४ समभाव, १५ उपशम, १६ देह व घरमें अहंताममताको त्यागनेकी इच्छा, ॥ ११ ॥ १७ आत्मतत्त्वके प्रकाशक शास्त्र( वेदांतशास्त्र ) का अभ्यास, १८ एकांतमें रहना, १९ अच्छे प्रकार प्राण, इंद्रियां और मनको जीतना, २० उत्तम श्रद्धा, २१ ब्रह्मचर्य, २२ सदा सावधान रहना यानी अपने कर्तव्य कर्मका त्याग न करना, २३ वाणीको नियममें रखना ॥ १२ ॥ २४ सर्वत्र मेरी भावना रखनेसे दृढ़ भयेहुये अनुभवपर्यंत ज्ञान और समाधि २५ इन पचीस साधनोंसे धीरज, प्रयत्न और विवेकसे युक्त होकर, चतुर पुरुषको चाहिये कि,—अहंकारनामक उपाधि-

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेंद्रियात्माभिजयेन सध्र्यक् ॥ सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचाम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिंगं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥ कर्माशयं हृदयग्रंथिबंधमविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ॥ अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥ १४ ॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥ इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ १५ ॥ लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतोरनंतदुःखं च न वेद मूढः ॥ १६ ॥

को दूर करे ॥ १३ ॥ कर्म जिसमें सदा शयन करते हैं ऐसे, अविद्याप्राप्त इस हृदयग्रंथिके बंधनको, सावधान हो, इस उपायसे जैसे शास्त्रमें कहा है उसी रीतिके अनुसार, अच्छीतरह छोड़कर, फिर साधन करनेके परिश्रमसे निवृत्त हो जाना चाहिये ॥ १४ ॥ जो राजा पिता वा गुरु, मेरे लोकको चाहता हो और मेरे अनुग्रहकोही पुरुषार्थ समझता हो, उसे प्रजा, पुत्र व शिष्योंको क्रोध छोड़कर, इसीप्रकार उपदेश करना चाहिये, किंतु बिचारे कर्ममूढ़ अज्ञानी लोकोंको कर्मोंके भीतरही न लगा देना चाहिये, जो जन्मसे सकामकर्म करनेवाले पुरुष हैं, उन्हें फिर सकाम कर्ममें जोड़ना, यह तो अंधको गढ़ेके अंदर पटकनेके बराबर है, इसलिये ऐसा काम करनेवालेको कौन पुरुषार्थ प्राप्त हो सक्ता है ? ॥ १५ ॥ यह लोक अपना कल्याण देखनेमें स्वयं

तो बिलकुल अंधाही है; क्योंकि यह अत्यंत लोभी पराया धन चाहता है और उसीसे इस मूर्खके आपसमें बैर बंध जाता है, फिरभी यह थोड़ेसे सुखके लिये उद्यम करता है, वहां अपार दुःख आ पड़ता है, उसे नहीं जानता ॥ १६ ॥ जो ज्ञानी पुरुष आप इस बातका ज्ञाता और दयालु है, वह तो अज्ञानके बीच भटकतेहुए ऐसे कुबुद्धि मनुष्यको देखकर, उसे पीछा संसारके मार्गमें कदापि नहीं जोड़ेगा. स्वभावसे जो अज्ञानी है, उसको अज्ञानका मार्ग बताना, यह तो उलटे मार्ग चलनेवाले अंधको "इसीरस्ते चला जा" ऐसे कहनेके बराबर है ॥ १७ ॥ इस संसारी जीवको जो संसारसे नहीं छुड़ा सकता, उसे देवता न कहना चाहिये और जो शिष्यको नहीं छुड़ा सकता उसे गुरु न कहना चाहिये और जो अपने बंधुको नहीं छुड़ा सकता उसे स्वजन न कहना

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्ययामंतरे वर्तमानम् ॥ दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथांधम् ॥ १७ ॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ॥ दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ १८ ॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ॥ पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ १९ ॥ तस्माद्भवंतो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥ २० ॥ भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ॥ ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गंधर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ २१ ॥

चाहिये तथा जो पुत्रको नहीं छुड़ाते वे माता पिता नहीं हैं और जो अपने दासको अथवा स्त्रीको नहीं छुड़ाता वह पति नहीं है ॥ १८ ॥ इसतरह मोक्षधर्मका उपदेश कर, अब भाईकी सेवारूप धर्म कहते हैं. यह मेरा शरीर मनुष्याकार हैं, परंतु इसमें किसीकी तर्कणा नहीं चलती; क्योंकि यह शरीर मैंने मेरी इच्छासे ग्रहण किया है, अर्थात् मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं जिसमें धर्म सदा रहता है वह शुद्धसत्व मेरा हृदय है और अधर्मको मैंने दूरहीसे पीठपर किया है, अतएव आर्यलोग मुझे ऋषभ कहतेहैं. ॥ १९ ॥ और तुम सब शुद्धसत्वमय मेरे हृदयसे पैदा हुए हो, अतएव मत्सरता त्यागकर, सबसे बड़े इस सहोदर भाई भरतकी सेवा करो, भरतकी सेवामें मेरी सेवा और प्रजाका पालन ये दोनों तुम्हारे आ जायंगे ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये इस लिये कहते हैं. चेतन व अचेतन

सब प्राणीनमें स्थावर अतिउत्तम हैं, उनसे सांपबीछूआदि जंगम अतिउत्तम हैं, उनसे ज्ञानसहित स्थितिवाले पशु अतिउत्तम
हैं, उनसे मनुष्य, उनसे प्रमथ ( भूतप्रेतआदि ), उनसे गंधर्व, गंधर्वोंसे सिद्ध और सिद्धोंसे किन्नरआदि ॥ २१ ॥ उनसे दैत्य, दैत्योंसे देवता,
देवतानसे इंद्रादि, उनसे ब्रह्माजीके पुत्र दक्षआदि, उनमेंभी महादेवजी और उनसे उनके कारणरूप ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं और ब्रह्माजीसे मैं
श्रेष्ठ हूं और मुझसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; क्योंकि मैं उनकी पूजा करता हूं ॥ २२ ॥ सभामें बैठेहुए ब्राह्मणोंकी तर्फ देखकर कहते हैं. हे ब्राह्मणो!
मुझे ब्राह्मणोंके बराबर दूसरा कोईभी प्राणी नहीं दीखता, तब इनसे उत्तमकी तौ बातही कहां रही? क्योंकि जैसा मैं मनुष्योंके

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ॥ भवः परः सोऽथ विरिंच्यवीर्यः स मत्प-
रोऽहं द्विजदेवदेवः ॥ २२ ॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं च ॥ यस्मिन्नृ-
भिः प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि कामं न तथाऽग्निहोत्रे ॥ २३ ॥ धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह स-
त्त्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥ २४ ॥ मत्तोप्यनंतात्प-
रतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ॥ येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्ति-
भाजाम् ॥ २५ ॥ सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि संभावितव्यानि पदे
पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥ २६ ॥

श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंके मुखमें होमेहुए पदार्थको स्वीकार करता हूं, वैसा अग्निहोत्रमें होमेहुए पदार्थको स्वीकार नहीं करता ॥ २३ ॥
जो ब्राह्मण मेरे प्राचीन देहरूप वेदको धारण करते हैं और जिनमें परमपवित्र सत्वगुण, शम ( मनोनिग्रह ), दम ( इंद्रियनिग्रह ),
सत्य, दया[1], तप, तितिक्षा ( सहनशीलता ) और स्वरूपानुभव ये आठ गुण हैं, इनसे अधिक मैं किसे देखूं? ॥ २४ ॥ मैं कि–जो
स्वर्ग और मोक्षका अधिपति व अनंत और परात्पर हूं, उससेभी जिनके कुछ मांगना नहीं है उन, अकिंचन मेरे भक्तोंके राज्या-
दिककी इच्छा तो कैसे हो सकती है? ॥ २५ ॥ हे पुत्रो! सकल स्थावरजंगम प्राणीमात्रको मेरे निवासरूप समझकर, मत्सररहित



१ परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा । आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ १ ॥ इत्यत्रिस्मृतिः । अर्थ–परायेमें तथा बन्धुवर्ग यानी सगेवालोंमें, मि-
त्रमें, द्वेषीमें तैसेही शत्रुमेंभी अपनासा आत्मा समझे. यही दया कही है ॥ १ ॥

दृष्टिसे क्षणक्षणमें तुम उनका सन्मान करो, क्योंकि सकलप्राणीमात्रका सत्कार यही मेरा मुख्य पूजन है ॥ २६ ॥ जो कुछ कर्म करे वो ईश्वरार्पण करनेके वास्ते कहते हैं. मेरे अर्पण करना, यही मन, वचन, दृष्टि और दूसरी इंद्रियोंकी चेष्टाका फल है; क्योंकि सब व्यापार मेरे अर्पण कियेविना यह पुरुष महामोहरूप कालपाशमेंसे छूटनेको समर्थ नहीं होता ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इसप्रकार महाप्रतापी और सर्वके परममित्र ऋषभ भगवान्‌ने यद्यपि अपने पुत्र सबप्रकारसे शिक्षितही थे, तथापि लोकोंको

मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतांतपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्याऽऽत्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्तइव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २८ ॥ जडांधमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णींबभूव २९ ॥

शिक्षा देनेके वास्ते, उन्हें उपदेश कर, शांतस्वभाव और कर्मबंधनसे रहित, महामुनियोंके भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसआश्रमके धर्मकी लोकोंको शिक्षा करनेके उद्देशसे, अपने सौही पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र भरत कि-जो महावैष्णव और वैष्णवोंका सेवक था, उसका पृथ्वीका पालन करनेके वास्ते राज्याभिषेक कर, तुरंत संसारका त्याग किया. घरमें जो अग्निहोत्र था उसका अपने स्वरूपमें आरोप कर, केश खुले धर, उन्मत्तकी भांति नग्न हो, केवल शरीरमात्र परिग्रह रखकर, ब्रह्मावर्तमेंसे संन्यास धारण करके, चल निकले ॥ २८ ॥ अवधूतवेष बनाय, जड़, अंध, मूक, बधिर, पिशाच और भूतप्रेतादिकोंके समान वृत्ति धारण

कर, लोकोंके बतलानेपरभी पीछा न बोलते भगवान् ऋषभदेवजी मौनव्रत धारण कर, चुपचाप रहे ॥ २९ ॥ नगर, गांव खानें, किसानोंके गांव, फुलवाड़ियां, सेनाके डेरे, गौवनका स्थान, ग्वालोंका निवासस्थान, यात्री लोगोंका संघ, पर्वत, वन, ऋषियोंके आश्रमआदिमें जहां तहां ठौर ठौर मार्ग २ में नीच मनुष्य उन ऋषभदेवजीका अनेक प्रकारसे तिरस्कार करते थे, यानी डराना, पीटना, पेशाब करना, थूंकना, पत्थर फेंकना, विष्ठा डालना, धूलि उड़ाना, अपशब्द करना, दुर्वचन कहना, आदि अनेकप्रकारकी दुष्टता करते थे. परंतु हाथी जैसे मक्खियोंको न गिने, वैसे वे किसीकोभी बिलकुल गिनते नहीं थे. क्योंकि

तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखंडितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३० ॥ अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसयुगलवदनाद्यवयवविन्यासःप्रकृतिसुंदरस्वभावहाससुमुखोनवनलिनदलायमानशिशिरताराऽरुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकंठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलंबमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥ ३१ ॥

आत्मा और अनात्माके अनुभवके कारण आप अपने स्वरूपमेंही रहते, तासों कहनेमात्रसे सत् और वस्तुतः असत् स्थितिवाले इस देहरूप आकारमें उनके अहंता वा ममता बिलकुल नहीं थी और मन सदा अखंडित स्वरूप रहता; अतएव वे पृथ्वीपर सदा इकले विचरा करते ॥ ३० ॥ इनके हाथ, पांव और वक्षःस्थल बहुत सुकुमार थे; बाहू, कंधे, गला और मुख ये बड़े थे; स्वभावसे सुंदर और स्वतःसिद्ध हँसनेसे मुख अत्यंतशोभायमान था, नेत्र नवीनकमलके पत्रसे अतिसुंदर अरुण, लंबे और ठंढी कनीनिकावाले थे; कपोल, कान, कंठ व नाक ये सब बराबर और सुशोभित थे; और इनके गुप्त मंदहास्यवाले मुखके महोत्सवको देखकर, चतुर स्त्रियोंके मनमें कामदेव उत्पन्न हुआ करता था, तथापि उनके कुटिल, पिंगल और जटिल केशोंका अति-

शय आर आगे लटक रहा था और शरीरकी सँभाल न रहनेसे वह मलिन हो गया था, तासों मानों कोई भूत लग गया हो ऐसे देखनेमें आते थे ॥ ३१ ॥ जब अपने ध्यानमें आया कि-जबतक ये लोग पिंड नहीं छोड़ें तबतक योग बराबर सधे नहीं; क्योंकि लोकोंका समागम साक्षात् शत्रुरूप है, इसलिये इसका उपाय तो यही है कि-यदि अतीव बीभत्सित ( घिनकारी ) कर्म किया जाय तो, कोईभी पासमें न आ सके, ऐसा विचार कर उन्होंने आजगरका व्रत धारण किया, यानी एकही ठौर रहने लगे. खाना, पीना, मूतना, हगना ये सब सोते सोतेही करने लगे. और विष्ठामें लोट लोटकर सारा शरीर विष्ठासे लिपायमान

यर्हि वाव स भगवान्लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाऽऽचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥ ३२ ॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगंध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समंतात्सुरभिं चकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥ ३४ ॥ इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानंदानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानंतरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवांतर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नांजसा नृप हृदये नाभ्यनंदत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा० म० पंचमस्कंधे ऋषभदेवानुचरिते पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कर दिया ॥ ३२ ॥ उनकी विष्ठामेंसे ऐसी सुगंधिपवन निकलने लगी कि-चौतर्फ दश दश योजनमें सब जगह सुगंधमय हो गयी ॥ ३३ ॥ इसप्रकार बैल, मृग और काकके समान आचरण करते ऋषभदेवजी चलते, खड़े रहते, बैठते और सोते, अपनी इच्छासे खाते और हगते ॥ ३४ ॥ ऋषभदेवजी आप तो मोक्षके पति और अखंडितपरमानंदके अनुभवरूप साक्षात् भगवान्ही थे तथापि लोकोंकी भीड़भाड़ न हो जाय इसलिये योगीजनोंको इसप्रकार वर्तना चाहिये इसतरह दिखानेके वास्ते ऐसे करते थे. सर्वप्राणीमात्रके आत्मरूप और अपने स्वरूपभूत केवल परब्रह्मसे देहादिकके अनुसंधानरहित एकता पानेके कारण आप स्वतः सिद्ध समस्त फलोंसे परिपूर्ण और कृतार्थ थे. तासों आकाशगमन, मनसदृश शरीरवेग, अंतर्धान, दूसरे शरीरमें प्रवेश करना और दूरके पदार्थोंको जानलेना

आदि सिद्धियां यदृच्छासे प्राप्त हुई थीं, परंतु प्रभुने अपने मनसे उनका सत्कार नहीं किया ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठे अध्यायमें, देहाभिमानरहित ऋषभदेवजीनेंजलाते हुए दावानलको देखनेपरभी न देखा और इसी क्रमसे देहत्याग किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि– आत्माराम मुनि कि–जिनके रागद्वेषादिक कर्मबीज योगसे प्रदीप्त भयेहुए ज्ञानरूप अग्निसे भस्म हो गये हों, उनके यदृच्छासे प्राप्त भयीहुई सिद्धियां पीछी अहंता ममता देनेवाली न होनी चाहिये. फिर उन ऋषभदेवजीने सिद्धियोंका अनादर क्यों किया ?

राजोवाच ॥ न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हंति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किं त्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रंभमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छंते ॥ २ ॥ तथाचोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रंभाच्चिराच्चीर्णं चस्कंद तप ऐश्वरम् ॥ ३ ॥ नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥ ४ ॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबंधश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–आपने सत्य कहा; परंतु कई मुनिलोग इस अनवस्थित मनका, जैसे शठ किरात पकड़ेहुएभी हिरणोंका विश्वास नहीं करता ऐसे, साक्षात् विश्वास नहीं करते. शास्त्रमें कहा है कि–इस चंचल मनसे कदापि मित्रता न करना; क्योंकि इसका विश्वास करनेसे चिरकालसे संचय कियाहुआ महादेवजीकाभी तप मोहिनीरूपके दर्शनसे क्षीण हो गया था ॥ २ ॥ ३ ॥ जैसे पुंश्चली स्त्री जारोंको अवकाश देकर, अपने पतिको मरवा देती है, ऐसे भरोसा करनेवाले योगीका मनभी उस योगीके शत्रु कामदेवको और उसके अनुगामी दूसरे शत्रु क्रोधादिकोंकोभी अवकाश देकर, भ्रष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, शोक और भयआदि शत्रु तथा कर्मबंधनभी जिसके निमित्तसे होता है उस, मनको कौन ज्ञानी मनु

ष्य अपने अधीन माने ? ॥ ५ ॥ सकललोकपालशिरोमणि तथा जड़के समान अवधूतवेष, भाषा व आचरणसे जिनका ईश्वरीय प्रभाव जाननेमें नहीं आता था ऐसे, ऋषभदेवजीके, योगीजनोंको देहत्यागका प्रकार सिखानेके वास्ते, जब अपने देहका त्याग करनेकी इच्छा हुई तब उन्होंने परब्रह्मके साथ आत्मस्वरूपका अत्यंत अभेद विचार कर, देहाभिमानका पीछा संस्कारभी उत्पन्न न होवे ऐसी रीतिसे, देहाभिमानका त्याग किया ॥ ६ ॥ इसप्रकार भगवान् ऋषभदेवजी कि-जिन्होंने लिंगशरीरका परित्याग कर दियाथा, उनका स्थूलशरीरभी अन्य जीवन्मुक्तोंके समान अविद्याकी वासनारूप प्रारब्धके संस्कारसे नहीं, पर ईश्वर होनेके

अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थांतरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥ तस्य ह वा एवं मुक्तलिंगस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोंकवेंककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥ ७ ॥ अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥ ८ ॥ यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोंकवेंककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणो भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषंडमसमंजसं निजमनीषया मंदः संप्रवर्तयिष्यते ॥ ९ ॥

कारण योगमायाकी वासनासे अभिमानाभासरूपसे इस पृथ्वीमें विचरताहुआ यदृच्छासे कोंक, वेंक, कुटक और दक्षिण कर्णाटक देशोंकी तर्फ चला गया. वहांभी कुटकाचलके उपवनमें मुंहमें पत्थरका कवल रखकर, बावलेकी भांति खुले केश बिलकुल नंगेशरीर फिरता था ॥ ७ ॥ फिर पवनके वेगसे बांसोंके परस्पर रगड़ खानेसे जो उग्र दावानल प्रगट हुआ उससे वनके साथ ऋषभदेवजीका शरीरभी भस्म हो गया ॥ ८ ॥ कलियुगमें जब अधर्म बढ़ेगा, तब कोंक, वेंक और कुटकदेशका अर्हन् नाम मूर्ख राजा इन ऋषभदेवजीके परमहंसपनका चरित्र सुनकर, आप उसे सीखकर, पूर्वजन्ममें संचय कियेहुए पापसे मोहित होनेके

कारण अपने निर्भय वेदमार्गको छोड़ कर, अपने विचारसेही दुष्ट पाखंडरूप कुमार्ग यानी जैनधर्मको प्रवृत्त करेगा ॥ ९ ॥ इस पंथमें चलनेवाले नीच मनुष्य कलियुगमें अज्ञानसे मोहित हो, अपनी पवित्रता और सदाचार कि-जो वेदशास्त्रमें कहा हुआ है उसे त्याग देंगे. और स्नान न करना, आचमन न लेना, मलिनता रखना और केश लूंचना इत्यादि दुष्ट नियम कि-जिनसे देवतानका अपमान होता है, उन नियमोंको अपने मनसेही ग्रहण करेंगे और अधर्म बढ़ानेवाले कलियुगसे बुद्धिभ्रष्ट होनेके कारण वेद, ब्राह्मण, विष्णु और सज्जन पुरुषोंकी बहुधा निंदा करेंगे ॥ १० ॥ ये लोक अपने पंथियोंमें पड़ीहुई वेदबाह्य अंधपरंपरामें

येन ह वा व कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुंचनादीनि कलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यंति ॥ १० ॥ ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयांऽधपरंपरयाऽऽश्वस्तास्तमस्यंधे स्वयमेव प्रपतिष्यंति ॥ ११ ॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः तस्यानुगुणान् श्लोकान्गायंति ॥ १२ ॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायंति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवंति ॥ १३ ॥ अहो नु वंशो यशसोऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥

विश्वास रखनेसे अपने हाथसेही घोर नरकमें पड़ेंगे ॥ ११ ॥ यद्यपि यह अवतार राजसी मनुष्योंके मोक्षमार्गके उपदेशके लियेही हुआ था तथापि कलियुगमें लोकोंके मंदभाग्यके कारण उनके आचरण परसे नरकमें पटकनेवाला जैनधर्म प्रवृत्त होगा. ऋषभदेवजीके चरित्रसंबंधी कितनेएक श्लोक प्रसिद्ध हैं, जिन्हें लोक गाया करते हैं ॥ १२ ॥ अहो ! सातसमुद्रवाली पृथ्वीके सब द्वीपोंमें और सब खंडोंमें यह भरतखंडही अधिक पुण्यवान् है; क्योंकि इस खंडमें जनमेहुए लोक भगवान्के अवतारोंका पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ १३ ॥ अहो ! प्रियव्रतराजाके वंशकी बड़ी भारी उज्वल कीर्ति है कि-जिस वंशमें आदिपुरुष भगवान्ने

अवतार धारणकरके, मोक्षदेनेवाले धर्मका पालन किया ॥ १४ ॥ भला, दूसरा कोईभी योगी इन अजन्मा ऋषभदेवजीके मार्ग-में चलनेका मनोरथभी करसकता है ? क्योंकि दूसरे योगी तो सिद्धियोंकी इच्छा रखते हैं और उन्होंने तो, सिद्धियोंको अपने समीप आनेका प्रयत्नभी किया था, तथापि उन्हें असत् समझकर, परित्याग कर दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार सर्ववेद, देव, लोक, ब्राह्मण और गौवनके रक्षक ऋषभदेव भगवान्का परम पवित्र चरित्र कि-जो मनुष्योंके सकलपापोंका हरनेवाला और परममंग-लका अयन है, इसे जो मनुष्य वृद्धिंगत श्रद्धासे सावधान होकर, सुने अथवा श्रवण करावे, उन दोनों मनुष्योंकी एकांतभक्ति

को न्वस्य काष्ठामपरोनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया ये नकृतप्रयत्नाः ॥ १५ ॥ इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य वि-शुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामंगलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयाऽनुशृ णोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकांततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १६ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयंतस्तयैव परया निर्वृत्त्या ह्यपवर्गमात्यंतिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियंते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमंग भगवान्भजतां मुकुंदो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १८ ॥

वासुदेव भगवान्में सदा प्रवृत्त रहा करती है ॥ १६ ॥ निरंतर अनेकप्रकारके दुःखरूप संसारके तापोंसे बारंबार तपाये जाते चित्तको समय समयपर जो भक्तिमें न्हिलाते हैं और जो भगवदीयपनसेही अपनेको कृतार्थ मानते हैं, वे विद्वान् पुरुष भक्तिमेंही परमानंद मानकर, यद्यपि भगवान् परमपुरुषार्थरूप मोक्ष विना मांगे देते हैं, तथापि उस मोक्षपर प्रीति नहीं रखते॥ १७॥ महाराज ! यद्यपि भगवान् तुम्हारे कुलके और यादवोंके पालक, गुरु, इष्टदेव, संबंधी और नियंता थे, इतनाही नहीं, परंतु किसी २ समय दासभावभी करते थे, तथापि हे राजा ! सामान्य रीतिसे देखते हैं तो, ऐसा प्रतीत होता है कि-आपको निरंतर भजनेवालोंको मोक्ष दे देते हैं, परंतु प्रेम-

लक्षणा भक्ति नहीं देते ॥ १८ ॥ निरंतर अनुभव कियेहुए अपने स्वरूपके लाभसेही कृतार्थ भयेहुए, जिन ऋषभदेवजीने देहादिक असत्पदार्थोंके मनोरथसे चिरकालपर्यंत अपने सच्चे कल्याणको न जाननेवाले, लोकोंपर करुणा करके निर्भय आत्मस्वरूपका उपदेशकिया, उन भगवान्को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें, भरतने राज्य पाकर, बहुत कालतक यज्ञोंसे हरिका यजन किया और प्रारब्धकर्मकी समाप्ति होने लगी, तब हरिक्षेत्र-( गंडकीनदीके तट ) में जाकर, हरि भगवान्का भजन किया, यह

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥ लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ १९॥ इति श्रीभा० महा० पंचमस्कंधे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिंतितस्तदनुशासनपरः पंचजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥ तस्यामुह वा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पंच जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥ २ ॥ सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशंति ॥ ३ ॥ स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥ ४ ॥

कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-महावैष्णव भरतजीको भूमंडलकी रक्षाके वास्ते जब उनके पिता ऋषभदेवजीने आज्ञा की, तब उनकी आज्ञा शिर पर चढ़ाकर, विश्वरूपकी कन्या पंचजनीसे विवाह किया ॥ १ ॥ जैसे अहंकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच तन्मात्रा प्रगट हुईं, वैसे भरतजीकेभी पंचजनीमें सब प्रकारसे अपने सदृश सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण व धूम्रकेतु ये पांच पुत्र हुए. जबसे इस अजनाभ नाम खंडका राजा भरत हुआ, तबसे इस खंडका नाम भारत इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ उस सर्वज्ञ राजाने बड़ी दयालुतासे अपने २ स्वधर्ममें चलनेवाली प्रजाओंका, जैसे

उसके बाप दादे पालते आये थे, उसी प्रकारसे अपने धर्मका अनुसरण करके, पालन किया ॥ ४ ॥ समय समयमे चातुर्हो-त्रकी विधिसे छोटे मोटे यज्ञ करके भगवान् कि-जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं, उनका श्रद्धासे पूजन किया. अग्निहोत्र, दर्श, पूर्ण-मास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग इनकी प्रकृतियां ओर विकृतियां दोनों की गयीं थीं ॥ ५ ॥ जिनकी अंगभूत क्रिया बराबर करनेमें आती थी ऐसे, अनेक प्रकारके यज्ञोंके होते उनमें धर्मनामक जो अपूर्व फल होताथा, उसे केवल यज्ञपुरुष

ईजे च भगवंतं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाऽऽहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥ संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचितांगक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिंगानां मंत्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरिं परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हाविष्विध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥

वासुदेव भगवान्में भरतजी अर्पण कर देतेथे. क्योंकि यह अपूर्व फल यजमानमें रहता है, ऐसे मानें तो यजमानके अंतर्यामीभी तो भगवान्ही हैं तासों भगवान्ही मुख्य यजमान होनेसे उनके अर्पण करदेना संभवित है और यह अपूर्व फल यज्ञके देवतानमें रहता है ऐसे माना जाय, तोभी वेदके मंत्रोंने बोधित कियेहुए इंद्रादिक देवतानके नियंता होनेसे परमदेव भगवान्ही हैं, तासों उन्हींके अर्पण कर देना बन सकता है, इसप्रकार केवल परब्रह्म यज्ञपुरुष भगवान्के कर्मका फल अर्पण करदेनेरूप निपुणतासे जिसके रागद्वेषादिक मल निवृत्त हो गये हैं ऐसे, यजमान भरतजी, जिस समय अध्वर्यु ब्राह्मण हाथमें हवि लेतेथे,

---

१ होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा इन चारोंका जो कर्म वह चातुर्होत्र. २ पशुरहित यज्ञ. ३ पशुसहित क्रतु. ४ सर्व अंग जिसमें परिपूर्ण होवें वह प्रकृति. ५ जिसमें कम अंग होवें वह विकृति. ६अपूर्व अर्थात् कर्म करते समय जो सूक्ष्म फल उत्पन्न होता है वह, कितने एक कहते हैं कि-अपूर्व यानी दूसरे समयमें फल उत्पन्न करनेवाली कर्ममें जो शक्ति वह. ७ देवता कर्मके अंगभूत हैं और कर्म प्रधान है इस सिद्धांतके अनुसार कर्मका फल कर्तामें यानी यजमानमें रहता है ऐसे माना जाता है. ८ कर्म अंगभूत हैं और देवता प्रधान हैं इस सिद्धांतके अनुसार कर्मका फल देवतानमें रहता है. ऐसे माना जाता है. ९ यज्ञमें होमनेके पदार्थ.

उस समय उस हविके भागके लेनेवाले देवताभी भगवान्के अवयवोंमेंही हैं ऐसे विचार करते थे ॥ ६ ॥ इसप्रकार कर्मोंकी ईश्वरार्पण-रूप शुद्धि होनेसे जिनका अंतःकरण शुद्ध हो गया था ऐसे भरतजीके, भक्तलोगोंके हृदयमें पहिंचानेहुए स्वरुपसे, मनमें वि-राजमान भगवान्में प्रतिदिन बढ़ती हुई और अतिउत्कट भक्ति उत्पन्न हुई, हृदयगत आकाशमें प्रतीत होनेवाले परब्रह्म भगवान् श्री-वत्स, कौस्तुभ, वनमाला, चक्र, शंख और गदाआदिसे शोभायमान महापुरुषरूपसे भरतके मनमें दर्शन देते थे ॥ ७ ॥ इस प्रकार हजारों बल्कि लाखों वर्ष व्यतीत हो जानेपर अपने राज्यसंबंधी भोगके प्रारब्धका अंत आया जानकर, उन्होंने अपने बाप दादोंका

एवं कर्मविशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्यांतर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदाभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनाऽऽत्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥ ७ ॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यंतावासितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥ ८ ॥ यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन सन्निधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ९ ॥ यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्री करोति ॥ १० ॥ तस्मिन्वाव किल एकलः स पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयातुलसिकांऽबुभिः कंदमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥ ११ ॥

राज्य कि–जिसको आप भोगते थे, वह अपने पुत्रोंके बीचमें विभाग करके, बांट दिया. और आप सर्व संपत्तियोंसे भरेहुए घरको छोड़कर, तप करनेके वास्ते हरिक्षेत्रमें गये ॥ ८ ॥ कि–जहां विद्याधरकुंडमें वहांके रहनेवाले भक्तजनोंपर प्रेमके हेतु अद्यापि भक्तोंकी इच्छाके अनुसार भगवान् दर्शन देते हैं ॥ ९ ॥ इस क्षेत्रमें गंडकी नाम उत्तम नदी है कि–जिसकी शिलाओंके ऊपर और नीचे नाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं और उन चक्रोंसे आश्रमके प्रदेश चारोंओरसे पवित्र होते हैं ॥ १० ॥ इस पुलहाश्रम यानी हरिक्षेत्रके उपवनमें भरतजी इकले रहते थे और अनेक प्रकारके पुष्प, कोंपल, तुलसी, जल, कंद, मूल

फल इत्यादि अनेकप्रकारके नैवेद्योंसे भगवान्का आराधन करते थे और शुद्ध, विषयोंकी तृष्णासे रहित तथा शांतिसे परिपूर्ण होकर, परम आनंदको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार निरंतर भगवान्का पूजन करनेसे भगवान्के ऊपर स्नेह बढ़नेसे उनका हृदय द्रवीभूत होकर, शिथिल होता जाता था, आनंदके वेगसे शरीरमें पुलकावली होती जातीथी और उत्कंठाके हेतु बारंबार आतेहुए स्नेहके आंसुओंसे नेत्रकी दर्शनशक्ति बंद होगयी थी. अपनेको प्रीति देनेवाले भगवान्के अरुण चरणारविंदके ध्यानसे बढ़ेहुए भक्तियोगके हेतु चारोंतर्फ फैलते हुए परमआनंदरूप गहरे ऱ्हदमें बुद्धि मग्न हो जानेसे, करनेमें आती हुई भगवत्पूजाकाभी उन्हें

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनाऽऽत्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कंठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविंदानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगंभीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ १२ ॥ इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवंतं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमंडलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदुहोवाच ॥ १३ ॥ परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसाऽदः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः ॥ १४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भरतचरित्रे भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥

बराबर स्मरण नहीं रहता था ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवत्संबंधी नियमोंका पालन करते तथा मृगचर्म धारण किये व प्रति समय स्नान करनेके हेतु भीनी, पिंगलवर्ण और कुटिल जटासे शोभायमान भरतजी प्रातःकालमें सूर्यमंडल पृथ्वीमेंसे बाहर निकलता, उस समय उसके सामने खड़े हो, उसमें विद्यमान सुवर्णसे तेजवान् सूर्य नारायण भगवान्की इस निम्नलिखित मंत्रसे स्तुति किया करते थे ॥ १३ ॥ प्रकृतिसे पर, कर्मोंका फलदेनेवाला, बुद्धिको गति देनेवाला, मनहीसेजगत्का सरजनहारा और रचेहुए जगत्में अंर्यामीरूपसे प्रवेश करके तृष्णावाले जीवको चैतन्यशक्तिसे पालनेवाला, जो सूर्यनारायणका आत्मरूप भर्ग ( तेज ) है उसका हम शरण लेते हैं ॥ १४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवें अध्यायमें विष्णु भगवान्‌का भजन करते उन भरतके कर्मोंके अंतरायसे हिरणकी रक्षामें आसक्त होनेसे हिरणका जन्म हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–एक समय अपने शरीरकी क्रियासे निपटकर, गंडकी नदीमें स्नानसंध्या- आदि नियम पहुँचनेके अनंतर भरतजी ॐकारका जप करते छः ६ घडीका नियम लेकर, नदीके तटपर विराजे थे ॥ १ ॥ उस समय एक हिरनी तृषासे अतिआकुल होकर, जल पीनेको नदीके तटपर इकछी आयी ॥ २ ॥ वह हिरनी अतीव प्यास लगनेसे नदी- का जल पीती थी. इतनेमें पासही एक सिंहने लोकोंको त्रास उत्पन्न होवे ऐसी गर्जना की ॥ ३ ॥ यह गर्जना सुन कर, स्वभा-

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्त- त्रयमुदकांत उपविवेश ॥ १ ॥ तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ २ ॥ तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयंकर उदपतत् ॥ ३ ॥ तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्र- हृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥ ४ ॥ तस्या उत्पतंत्या अंतर्वत्न्या उरुभ- यावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥ ५ ॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणे- न वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥ ६ ॥ तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बंधुरिवानुकंपया राजर्षिभरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमप- दमनयत् ॥ ७ ॥

वसेही विव्हल जातिवाली यह हिरनी चकितदृष्टि होकर, देखने लगी और सिंहके भयसे उसका हृदय अत्यंत व्याकुल होगया. और दृष्टि भ्रमण करने लगी. तासों उसने प्यास बुझनेके पहलेही भयके मारे जल्दी नदीके सामनेके किनारेकी तर्फ फलांग भ- री ॥ ४ ॥ यह हिरनी गर्भिणी थी, तासों फलांग भरते अत्यंत भयसे उसका गर्भ चलायमान हो कर, योनिद्वारमेंसे निकलकर, प्रवाहमें पड़गया ॥ ५ ॥ गर्भपात, फलांग भरना और भयके संयोगसे पीड़ित होना इन दुःखोंसे दुःखी और अपने झुंडसे जुदी पड़ीहुई, यह काली हिरनी किसी पर्वतकी गुफामें जा पड़ी और पड़तेही मरगयी ॥ ६ ॥ इस अनाथ हिरणके बच्चेको जलमें बहता

हुआ देखकर, मातापिताके परित्याग कियेहुए लड़केको जैसे कोई बंधु ले लेवे, वैसे राजर्षि भरतजी इस बिचारे बच्चेकी माताको मरी जानकर, दयाके कारण अपने आश्रममें ले आये ॥ ७ ॥ यह बच्चा अपनाही है ऐसा अभिमान बँध जानेसे नित्य प्रति घासआदि खिलाकर, उसका पोषण, पालन, लालन और प्रीणन करने लगे. निदान उसमें आसक्ति बँध जानेसे उनके स्नान, भगवत्सेवा और अहिंसाआदि सकल यम नियम प्रतिदिन एक एक छूटते २ कितनेएक दिनोंमें सब छूट गये ॥ ८ ॥ भरतजीके मनमें ऐसी आसक्ति हुई कि—अहो ! यह गरीब बिचारा हिरणका बालक कालके बेगसे अपने झुंड और सुहृद और बांधवोंसे विछुर

तस्य हवा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्याने-नाऽऽत्मनियमाः सह यमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ८ ॥ अहो बतायं हरिणकुणकः ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बंधुभ्यः परि-वर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चातएव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षा दोषविदुषा ॥ ९ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षंते ॥ १० ॥ इति कृतानुषंग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥ ११ ॥

कर, मेरे शरण आगया है और मुझकोही माता, पिता, भाई, बंधु, ज्ञातिवाला और अपना झुंड करके मानता है. दूसरे किसी-को नहीं पहिँचानता; केवल मेरे ऊपरही अत्यंत विश्वास किये रहता है, इस लिये इसके वास्ते मेरा स्वार्थ भ्रष्ट होता है. ऐसी कुदृष्टि न रखकर, इस शरण आयेहुए बच्चेका पालन पोषण लालन व प्रीणनआदि मुझे अवश्य करना चाहिये; क्योंकि मैं जानता हूं कि शरणागतका अनादर करना यह महाअपराध है ॥ ९ ॥ जो आर्य, साधु, शांतस्वभाव, दीनबंधु होते हैं, वे ऐसे काममें अपने बहुत भारी स्वार्थकीभी कुछ परवाह नहीं करते ॥ १० ॥ इसप्रकार आसक्ति बांध कर, वे भरतजी स्नेहसे हृदय बँध जानेके कारण बैठना, सोना, फिरना, ठहरना, भोजनआदि जो कुछ करते उस समयभी निरंतर उस बच्चेको अपने साथके

साथ रखते ॥ ११ ॥ दर्भ, पुष्प, समिध, पत्र, फल, मूल व जल लेनेको जाते, तबभी पीछे कोईभी भेड़िया कुत्ताआदि इसे फाड़ खायगा, इस डरसे वे वनमें जाते तो इसे साथ ले जाते ॥ १२ ॥ वनमें जातेसमय यह बच्चा भोला भाला होनेसे मार्गमें इधर उधर आसक्त हो जाता, तो अत्यंतस्नेहसे हृदय भर जानेके कारण करुणासे कंधेपर उठालेते, इसीतरह कभी गोदीमें, कभी छातीपर धरकर, लालन करतेहुए भरतजी परमआनंदको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ पूजा करते २ बीचमें उठकर, उसे देखते हैं और देखकर, स्वस्थ मनसे उसे आशीर्वाद देते हैं, कि–हे पुत्र ! तेरा सब ठौर कल्याण होवे ॥ १४ ॥ यह बच्चा जब इधर उधर

कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ १२ ॥ पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कंधेनोद्वहति एवमुत्संग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ १३ ॥ क्रियाया निर्वर्त्यमानायामंतरालेप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वा व स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥ १४ ॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरंभित इति होवाच ॥ १५ ॥ अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रंभ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवाऽगमिष्यति ॥ १६ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरंतं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥ १७ ॥

चला जाता, तब जैसे द्रव्य जानेसे कृपण मनुष्य उद्विग्न होजाता है ऐसे, भरतजीके मनमें उद्वेग होजाता और अतिउत्सुकताके हेतु उस हिरणके बच्चेके विरहसे व्याकुल, हृदयमें तप्त होकर, करुणाके साथ उसीका सोच करते. और बड़े मोहको प्राप्त होकर इस प्रकार कहते कि– ॥ १५ ॥ अहह ! यह बिचारा गरीब मृतक माताका बच्चा मृगबालक, मैं कि–जो दुष्ट, कपटी और निर्भाग्य हूं, उसके अपराधको न गिनकर, पीछा आवेगा ? अपना चित्त निर्मल होनेसे कपटीका विश्वास करनेवाले सुजन जैसे कपटीके दोषको नहीं गिनते वैसे यहभी मेरे अपराधको न गिनकर, आवेगा ? ॥ १६ ॥ उसे मैं इस आश्रमके वनमें कुशलता-

पूर्वक घास खाते देखूंगा ? ईश्वर इसकी रक्षा करे ॥ १७ ॥ व्याघ्र, कुत्ता वा औरभी कोई दूसरा ऐसाही हिंसक प्राणी कि– जो झुंडके साथ फिरनेवाला वा इकल्ला फिरनेवाला हो. कदाचित् इसे खाय न जाय ? ॥ १८ ॥ अहह ! उदित होकर, सर्व जगत्का कल्याण करनेवाले ये सूर्यनारायणभी अस्त होते हैं. और अबभी यह हिरणीकी धरोहररूप मेरा बालक नहीं आता ॥ १९ ॥ अनेकप्रकारकी सुंदर और देखनेलायक अपनी बाललीलासे स्नेहीजनोंके खेदको मिटानेवाला यह कृष्णमृगका कुमार ( बच्चा )

अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥ १८ ॥ निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥ १९ ॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदन् ॥ २० ॥ क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरंभेन चकित चकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥ २१ ॥ आसादित हविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥ २२ ॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपंक्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयंत्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥ २३ ॥

मैं कि–जो निर्भाग्य हूं उसके पास आकर, क्या सुख देगा ? ॥ २० ॥ गम्मत करते झूंठी समाधिके मिषसे मैं आंख बंद कर लेता, तब यह बालक स्नेहके कोपसे डरता २ इधर उधर फिर कर, जलके बिंदुके समान सुकोमल, सींगकी अनीसे मेरा स्पर्श करता ॥ २१ ॥ मैंने जिसपर भगवत्पूजाकी सामग्री फैला रक्खी थी, उस दर्भको दांतआदिसे खैंच कर, चपलतासे दूषित कर देता, तब मेरे धमकानेसे यह बालक ऋषिकुमारकी नांई तुर्त अपनी क्रीड़ा बंद करके, निश्चल होकर, बैठ जाता ॥ २२ ॥ अरे ! इस भाग्यवती पृथ्वीने क्या तप किया होगा? क्योंकि नम्रतावाले इस कृष्णमृगके पुत्रकी छोटी, सुंदर सुखदायी

१ इसप्रकार प्रलाप कर, उठ कर, बाहर आये वहां पृथ्वीपर चरणोंका चिह्न देखकर, घबराकर बोले.

और सुकोमल खुरीवाले पैरोंकी पंक्तियोंसे चौतर्फसे शोभित होकर, यह पृथ्वी मैं कि-जोमृगके बालकरूप धनसे रहित और दुःखित हूं उसके धनका मार्ग बतलाती है. और आपभी स्वर्ग व मोक्षकी इच्छा रखनेवाले द्विजलोगोंके यज्ञ करनेकी स्थान बनी है ॥ २३ ॥ अनाथोंपर प्रीति रखनेवाले ये चंद्र महाराज, कदाचित् मेरे आश्रमसे बिछुरेहुए इस मृतक माताके पुत्रपर दया करके, उसे अपनी गोदीमें लेकर, सिंहके भयसे रक्षा करते होंगे ? ॥२४॥ मैं कि-जिसका हृदयरूप स्थलकमल पुत्रवियोगके संताप-

अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकंपया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २४ ॥ किं वाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मासुपसृतमृगीतनयं शिशिरशांतानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥ २५ ॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारंभणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यंतर एणकुणक आसंगः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमंतरायविहतयोगारंभणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषंगेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥ २६ ॥

रूप दावानलकी ज्वालासे संतप्त होरहा है, उसके पास यह हिरनीका पुत्र पीछा आकर, अपने थूँकके शीतल, शांत और स्नेहसे बढ़ेहुए अमृतकी किरणोंके सदृश बिंदुओंसे शीतल करेगा ? ॥ २५ ॥ इसप्रकार अवटमान मनोरथोंसे उनका हृदय व्याकुल होगया. इस योगी और तपस्वी भरतराजाको मृगछौनेरूप भासते अपने प्रारब्धनेही योगसे व भगवत्पूजनसे भ्रष्ट किया. नहीं तो जो भरतराजा प्रथम जिनका त्याग होना अतिकठिन है ऐसे पुत्रोंकोभी, मोक्षमार्गके शत्रु समझकर, त्याग करके आया था, उसके दूसरी जातके इस मृगके बच्चेपर आसक्ति किसप्रकार हो सक्ती है ? इस प्रकार विघ्न पड़जानेके



१ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य. २ इतनेमें चंद्रमाको उदय होता देख, उसके कलंकको अपना बच्चा मानकर, बोले. ३ जलका कमल तो जलके आश्रयसे ताप सह सकता है परंतु स्थलकमल नहीं इसलिये हृदयको स्थलकमल कहा.

हेतु योगारंभसे भ्रष्ट भयेहुए और मृगछौनेके पालन, लालन, प्रीणन व पोषणमें लगे रहनेसे, अपने आत्माकी चिंतासे निश्चित भरतराजाका, चूहेके बिलपर जैसे सर्प आवे वैसे, विकराल बेगवाला और टालनेपरभी न टले ऐसा, काल आ प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ मरणसमयमेंभी यह मृगका बच्चा कि-जो पार्श्ववर्ती पुत्रकी नाईं शोच करता था, उसे देखनेसे भरतराजाका मन उसीमें रहा, तासों शरीर और मृगका संबंध छूट जानेपरभी पामर मनुष्यकी भांति उसको मृगजन्म लेना पड़ा. परंतु उस जन्ममेंभी उसके पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ २७ ॥ पूर्वजन्ममें जो भगवत्सेवा की, उसके प्रभावसे अपने मृगजन्म आनेका

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचंतमभिवीक्षमाणो मृगएवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ २७ ॥ तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमाना आह ॥ २८ ॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसंगस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥ २९ ॥ इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीं मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्प्रत्याजगाम ॥ ३० ॥

जो कारण हुआ था. उसे याद रखकर, अत्यंत पछताकर, इसप्रकार अपने मनमें कहने लगा कि- ॥ २८ ॥ अहो !! बहुत बुरा हुआ. मैं ज्ञानीजनोंके मार्गसे भ्रष्ट हुआ. सकल संगको त्यागकर, एकांत और पवित्र वनमें रहकर, योगमार्गसे सर्वप्राणीमात्रके आत्मा वासुदेव भगवान्का भजन करता था और भगवान्के श्रवण, कीर्तन, मनन, आराधन और स्मरणमें लगा रहनेके कारण कोईभी प्रहर मेरा व्यर्थ नहीं जाता था, परंतु यह सब मेरी मूर्खतासे मृगके बच्चेके पीछे दूरहीसे निकलगया ॥ २९ ॥ इस प्रकार गूढ़ बैराग्यसे, अपनी माता हिरनीको, जिस कालंजर पर्वतमें जन्मा था वहीं, छोड़कर, वहांसे पीछा हरिक्षेत्रमें आया;

इस क्षेत्रमें शांतस्वभाववाले बहुतसे मुनिजन प्रेमसे रहते हैं. पुलस्त्य और पुलह मुनिका वहां आश्रम है. और शालके वृक्षोप-रसे वहांके गांवका नाम शालग्राम कहलाता है ॥ ३० ॥ इस क्षेत्रमें रहकर, कालकी राह देखता था अर्थात् जिस प्रारब्धसे मृगशरीर आया है वह प्रारब्ध कब पूरा हो चुकेगा उसका हिसाब गिनता था, किसीकाभी संग न होजाय इस वास्ते बड़े डरके साथ वह इकल्ला फिरता था और सूखे पत्ते तथा घास, लताका आहार कर, निर्वाह करता था, इसप्रकार कितनेएक दिन रहनेके अनंतर उसने गंडकी नदीके प्रवाहके बीच खड़ा होकर, मृगशरीरको त्याग दिया ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः संगाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधावर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे-पंचमस्कंधे भरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ॥श्रीशुक उवाच॥ अथ कस्यचिद्द्विजवरस्यांगिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयाऽऽत्मज्ञानानंदयुक्तस्याऽऽत्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अंगजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम्॥ १ ॥यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वंगतमाहुः ॥ २॥

पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें जड़भरतके रागादिक न होनेसे इनको भद्रकालीका पशु बना दिया, तोभी इनके विकार न हुआ, यह कथा वर्णन होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– शम[१], दम[२], तप, वेदाध्ययन, दान, संतोष, तितिक्षा ( सहनशीलपन, ) नम्रता, कर्म करनेकी विद्या, गुणोंमें दोषका आरोप करना, देहादिकसे भिन्न रहकर, आत्मा भोक्ता है ऐसा ज्ञान और धर्म, संपत्तिका आनंद, इन सब गुणोंसे संपन्न अंगिरावंशी एक उत्तम ब्राह्मण था, उसके बड़ी स्त्रीमें आपने सदृश शास्त्राभ्यास, शील, आचार, रूप और उदारतावाले नौ पुत्र हुए और छोटी स्त्रीमें एक मिथुन ( जोड़ा ) पैदा हुआ ॥ १ ॥ इसमिथुनमें जो पुत्र था, वह भरतका जन्म हुआ था, यह भरत पूर्वजन्म-





१ शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः। निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ १ ॥ इत्यत्रिः । अर्थ–जो सदा वनवासमें रत हुवा, शाक, पत्र, फल, मूल इन्हींसे रोज २ श्राद्ध तथा आहारभी करता है वह ब्राह्मण मुनि कहा है ॥ १ ॥ २ मनोनिग्रह. ३ इंद्रियनिग्रह.

में महावैष्णव चक्रवर्ती राजा था, दूसरे जन्ममें मृग हुआ था और इस तीसरे चरम ( अन्तके ) जन्ममें मृगका शरीर त्यागकर, ब्राह्मण हुआ ऐसे कहते हैं ॥ २ ॥ ब्राह्मणजन्ममेंभी अपने कुटुंबी लोगोंके संगसे बहुत डरता था, जिसका श्रवण, कीर्तन और स्मरण कर्मबंधनका काटनेवाला है उस भगवच्चरणारविंदका मनमें ध्यान करता था और भगवान्‌के अनुग्रहसे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण करता, कदाचित् अपने किसीके संगसे बंधन न हो जाय ऐसी शंकासे लोकोंको अपना स्वरूप उन्मत्त, जड़, अंधा और बहिरासा दिखलाता था ॥ ३ ॥ यह पुत्र जड़ है, इसलिये इसे गृहस्थाश्रमका तो अधिकार नहीं

तत्रापि स्वजनसंगाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबंधविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविंदयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशंकमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडांधबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य॥ ३ ॥ तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥ ४ ॥ स चापि तदु ह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छंदांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासंतिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥ ५ ॥

है, परंतु उससे प्रथम होनेवाले समावर्तनपर्यंत सकलसंस्कार शास्त्रविधिके अनुसार करने चाहिये. ऐसे विचारसे पुत्रके स्नेहबंधनके कारण उसके पिताने उस्के संस्कारकरना प्रारंभ किया. यज्ञोपवीत देकर, तदनंतर यदपि, शौच[1] और आचमनआदि कर्मके नियम, जड़भरतको प्रिय नहीं लगते थे, तथापि पिताको पुत्रको सिखानेके वास्ते अवश्य श्रम करना चाहिये ऐसे आग्रहसे, उसे सिखाने लगा ॥ ४ ॥ पर किसीतरह पिता पढ़ानेका आग्रह छोड़देवे इस हेतुसे यह जड़भरत अपने पिताके देखते आचारआदिमें गड़बड़ करने लगा. वेद पढ़ानेके आरंभमें इस जड़भरतको उसका पिता व्याहृति, ओंकार और शिरसहित गायत्री

१ गुरुके घर विद्याभ्यास करके, पीछा आना. २ अभक्ष्यपरिहारश्चासंसर्गश्चापि निन्दितैः । आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ १ ॥ इति अत्रिः । अभक्ष्यभक्षण और निन्दनीक पुरुषोंका संसर्ग यानी छूना इन्हें वर्जित करना. और सदाचारोंमें दृढ़ निष्ठा रखनी. यही शौच कहा जाता है ॥ १ ॥

मंत्र पढ़ाने लगा; पढ़ाते २ ग्रीष्म और वसंतके चार महीने व्यतीत हो गये, परंतु बराबर शुद्ध नहीं पढ़ सका ॥ ५ ॥ पवित्रता वेदाध्ययन, व्रत, नियम व गुरु और अग्निसेवाआदि ब्रह्मचारीके कर्म यदपि जड़भरतको प्रिय नहीं लगते थे, तोभी पुत्रपर स्नेहबंधनसे और पुत्रको पढ़ाना चाहिये इस दुराग्रहसे पढ़ानेमें लगा रहा. तथापि पुत्रको पंडित बनानेका मनोरथ पूर्ण न होते, घरमेंही असावधान रहाहुआ यह ब्राह्मण सदा सावधान रहनेवाले कालकी झपटमें आ गया ॥ ६ ॥ फिर इस ब्राह्मणकी छोटी स्त्री अपने गर्भसे पैदा भयेहुए उस मिथुनको अपनी सपत्नीको सौंपकर, सतीविधानकी रीतिसे पतिलोकको प्राप्त हुई ( मरगयी.) पिता मरनेके अनंतर जड़भरतके भाई कि–जो जड़भरतके प्रभावको नहीं जानते थे और ब्रह्मविद्यामें नहीं पर केवल कर्मविद्यामें

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं ग्रह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥ ६ ॥ अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्यस्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्या विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बंधान्न्यवृत्सत ॥ ७ ॥ स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याञ्चया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहुमिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेंद्रियप्रीतिनिमित्तम् ॥ ८ ॥ नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानंदस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वंद्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥

पुरुषार्थ समझते थे, उन्होंने भरतको जड़बुद्धि जानकर, पढ़ानेका आग्रह छोड़ दिया ॥ ७ ॥ पशुओंके समान पामर मनुष्य जब इस भरतको हे बावला ! हे जड़ ! हे बहरा ! ऐसे बतलाते, तब भरतभी उनको वैसेही शब्दोंसे पीछा बतलाता. कोई मनुष्य उससे अपना काम करवाता, परंतु वह दूसरेकी इच्छासे करता. विष्टि ( बेगार ) से, मूल्यसे, भिक्षासे अथवा यदृच्छासे थोड़ा या बहुत मीठा या बुरा जो कुछ अन्न मिलता, वह केवल प्राणनिर्वाहके वास्ते खाया करता. परंतु इंद्रियोंको प्रसन्न करनेके लिये कुछभी नहीं खाता ॥ ८ ॥ जिसका न तो कोई उत्पन्न करनेवाला है और न कोई प्रगट करनेवाला है, ऐसे विशुद्ध

अनुभवरूप परमानंद आत्माकी उसे प्राप्ति हो गयी थी, तासों मान वा अपमानआदिसे होतेहुए सुख कै दुःखमें उसके देहा-
भिमानका बिलकुल संभवही नहीं था॥ ९ ॥ सर्दी, गर्मी, वायु और वर्षामें बैलके समान खुले पुठे रहा करता. अंग सब दृढ व पुष्ट थे,
पृथ्वीपर सोनेसे, मर्दन न करनेसे और स्नान न करनेसे लगीहुई रजके हेतु विना साफ किये हुए मणिके तेजके समान उसका ब्रह्मतेज
स्पष्ट जाननेमें नहीं आता था. फटासा चीर कमरमें लपेटे रहता था. अतिशय मलिन यज्ञोपवीतसे मूर्खलोक उसे ब्रह्मबंधु यानी
ब्राह्मणोंमें अधम और जातका ब्राह्मण ऐसे नाम ले लेकर, अपमान करते थे. ऐसे उन अज्ञ लोकोंसे अपमानित होकर, वह

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृतांगः पीनः संहननांगः स्थंडिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महा-
मणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबंधुरिति संज्ञ-
याऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥ यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि
केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीक-
रणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥ अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै
पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥ १२ ॥ तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावंतो नि-
शि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगव-
राहादिभ्यः संरक्षमाणमंगिरप्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥

विचरता था ॥ १० ॥ इसप्रकार भटकतेहुए भरतने जब मजदूरीके मूल्यके तरीकेसे लोकोंसे खानेका पदार्थ लेना प्रारंभ किया.
तब उसके भाइयोंने उसे आहारका लालच देकर, चांवलोंके खेतमें क्यारे बनानेका काम करनेको रक्खा, तो वह उस कामको
करने लगा; परंतु यहां मिट्टी डालनेसे क्यारा बराबर होगा और यहांसे मिट्टी निकालनेसे क्यारा विषम हो जायगा अथवा वै-
से न्यून वा अधिक हो जायगा, ऐसी उसे खबर नहीं थी. चाँवलोंकी कनी, खल, तुष, घुनेहुए उड़द और बटलोहीके तले लगा-
हुआ जला अन्न आदि जो कुछ भाई देते, उसे अमृतसा मानकर, वह खाया करता ॥ ११ ॥ फिर एक दिन किसी चोरोंके राजा-
ने अपने संतान होनेकी इच्छासे भद्रकाली देवीको मनुष्य बलिदान देनेकी तैयारी करी ॥ १२ ॥ उसमें जिस मनुष्यको पकड़ा

था, वह तो दैवगतिसे बंधनसे छूटकर, भाग गया, तब उसे ढूंढ़नेके लिये जो उस राजाके मनुष्य निकले, उनको दौड़ते २ मध्यरात्रके समय अंधियारी रात्रिमें जो मनुष्य भाग गया था, उसका तो बिलकुल पता नहीं मिला, परंतु दैवइच्छासे अंगिरा गोत्रियोमें श्रेष्ठ ब्राह्मणका पुत्र यह जड़भरत कि-जो बीरासनसे यानी खड़ा पहरा देकर, हिरण और शूकरआदि जानवरोंसे क्यारोंकी रक्षा करता था, वह दृष्टिमें आया ॥ १३ ॥ फिर वे उसे दूषणरहित लक्षणवाला जान, इससे अपने स्वामीका काम सिद्ध होगा ऐसे मान, रज्जुसे बांधकर, आनंदसे प्रफुल्लितमुख होकर, उसे देवीके मंदिर ले आये ॥ १४ ॥ फिर उन चोरलोकोंने उस जड़भरतको अपनी रीतिके अनुसा-

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चंडिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥ १४ ॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाऽभिषिच्याहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवंतं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयांकुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदंगपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमंत्रितमसिमतिकरालं निशितमुपाददे ॥ १६ ॥ इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कला वीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालंभनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसाऽतिदुर्विषहेण दंदह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ १७ ॥

र स्नान कराया. नवीन वस्त्र पहिराया. आभूषण, चंदन, माला और तिलकआदिसे अलंकृत किया. फिर भोजन कराय, गान, स्तुति, मृदंग और ढोलका बड़ा शब्द करते उस पुरुषपशुको भद्रकालीके सामने बिठलाया. धूप, दीप, पुष्प, चांवल कोंपल, अंकुर, फल और नैवेद्यआदि सकल हिंसा करनेकी विधि हो चुकी ॥ १५ ॥ तब इस चोरराजाके पुरोहितने इस पुरुषपशुके रक्तरूप आसवसे भद्रकालीको तृप्त करनेके लिये देवीके मंत्रसे मंत्राहुआ अतिविकराल तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया ॥ १६ ॥ इस प्रकार राजसी और तामसी प्रकृतिवाले, धनके मदरूप रजोगुणसे छकेहुए और भगवान्‌का जिसमें अंश है ऐसे ब्राह्मणकुलको तु-

च्छ मानकर, अपनी इच्छानुसार उलटे रस्ते चलनेवाले तथा हिंसाको तो केवल एक क्रीड़ारूप माननेवाले ये शूद्रलोक, यद्यपि साक्षात् ब्रह्मभूत, ब्रह्मर्षिके पुत्र, वैररहित और सर्वप्राणीमात्रके मित्रका वध करनेकी हिंसक शास्त्रोंमेंभी आज्ञा नहीं है; तथापि वैसे महात्माका वध करनेरूप अत्यंत दारुण कर्म करने लगे. यह देखकर, भद्रकाली देवीका शरीर जड़भरतके असह्य तेजसे जलने लगा. तब देवी अपनी मूर्तिको त्यागकर, तुर्त उसमेंसे बाहिर निकली ॥ १७ ॥ उन लोगोंका अपराध सहन न होनेसे और जो शरीरका दाह होने लगा, उससे उसीसमय मूर्तिमेंसे उछलकर, माताजीने भारी बेग किया. उसके नेत्ररूप वृक्षकी

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हंतुकाममेवेदं महाट्टहासमतिसंरंभेण विमुंचति तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात्स्रवंतमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त चविजहार च शिरःकंदुकलीलया ॥ १८ ॥ एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनाऽऽत्मने फलति ॥ १९ ॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रंथीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवताऽनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे जडभरतचरितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शाखारूप भ्रुकुटि ऊंची कपालमें चढ़ गयी. कुटिल दाढ़ें और रक्तनेत्रके आडंबरसे मुख अत्यंत भयंकर हो पड़ा और मानों सारे जगत्का प्रलय करनेका विचार हो ऐसे बड़े क्रोधसे खड़खड़ खड़खड़ हँसने लगीं. पुरोहितके हाथमेंसे खड्ग छीनकर, उसी खड्गसे इन चोरोंके शिर उड़ा दिये. उनके गलोंमेंसे निकलतेहुए अत्यंत उष्ण रक्तरूप आसवका माताजीने अपने पार्षदोंके साथ पान किया और पान करनेके अनंतर उस अत्यंत पानके मदसे विव्हल होकर, अपने पार्षदोंके साथ अतीव उच्च स्वरसे गान और नृत्य किया तथा उनके शिररूप गेंदोंसे गेंदका खेल खेला ॥ १८ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य बड़े पुरुषोंका बुरा करने जाय, तो उसका सब प्रकारसे बुरा होता है यह निश्चय है ॥ १९ ॥ हे परीक्षित ! महावैष्णव परमहंसोंको

अपना शिर काटनेके समयमेंभी बिलकुल संभ्रम नहीं होता; इस बातमें कोई आश्चर्य नहीं है. क्योंकि देहादिक जड़ पदार्थोंको आत्मा माननेरूप हृदयकी हृदग्रंथिको वे छोड़ रखते हैं. और सर्वप्राणीमात्रके मित्र, आत्मरूप, वैररहित भगवान्‌के निर्भय चरणारविंदके मूलमें रहनेवाले इन लोकोंकी साक्षात् भगवान्‌ही अपने सावधान कालरूप चक्रद्वारा और दूसरेभी उन उन पदार्थोंद्वारा रक्षा करते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दशवें अध्यायमें अपनी पालकी उठाये चलते महामुनि जड़भरतका राजा रहूगणने तिरस्कार किया. तब उसने उसके दुर्वचनोंका पीछा उत्तर दिया. उसे सुन, जड़भरतको पहँचानकर, तुर्त राजाने क्षमा मांगी यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशु-

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सिंधुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननांगो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥ १ ॥ यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥

कदेवजी बोले कि- तदनंतर सिंधु और सौवीर देशका अधिपति राजा रहूगण कपिलदेवजीके आश्रम जाता था. वहां रास्तेमेंही इक्षुमती नदीके तटपर उस राजाकी पालकी उठानेवाले कहारलोगोंका जमादार दूसरे कहारोंको बेगारमें पकड़ लेनेका प्रबंध करता था. वहां उसके हाथमें दैवसे यह जड़भरत आ गया. यह मनुष्य पुष्ट जवान और मजबूत होनेसे बैल और गधेके समान भार उठानेमें समर्थ है ऐसे शोचकर, दूसरे बेगारियोंके साथ इसेभी बलात्कारसे पकड़ लिया. यद्यपि यह जड़भरत इस कामके योग्य नहीं था, तथापि इसने महाज्ञानी होनेसे दूसरे बेगारियोंके साथ पालकी उठायी ॥ १ ॥ यह जड़भरत मार्गमें कोई जीव पांवसे दब न जाय, इसलिये एक बाणजितनी जगह देख देखकर, चलता था. तासों दूसरे कहार लोगोंकी चाल बराबर न होनेसे पालकी टेढ़ी हो जाती थी. उसे देखकर, रहूगण राजाने बेगारियोंसे कहा कि-'अरे कहारो! बराबर चलो. पालकी टेढ़ी

क्यों होती चली जाती है ? ॥ २ ॥ इसप्रकार राजाका उलाहनासहित वचन सुनकर, दंडसे डरते कहार लोगोंने बिनती की कि-'हे राजा ! हमारी गफलत नहीं है, हम तो आपकी आज्ञानुसार बराबर चलते हैं, परंतु यह मनुष्य कि- जो अभी पकड़ कर, लाया गया है, यह जल्दी जल्दी नहीं चलता और हमभी इसके साथ नहीं चल सकेंगे' ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऐसा इन दीनजनों-का वचन सुनकर, राजाने यह निश्चय किया कि-सच बात है एकका अपराध होवे, वहभी उसके सब सहयोगी पुरुषोंपर आया करता है. यद्यपि राजा रहूगणने वृद्धपुरुषोंकी सेवा की थी, तथापि राजसी और राजकीय स्वभावके हेतु राजा कछुक क्रोध आ

अथ त ईश्वरवचः सोपालंभमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छंकितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमुह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसावृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रांतो दीर्घमध्वानमेकएवोहिवान्सुचिरं नातिपीवा न संहननांगो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयः स्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥

जानेसे बलात्कारसे उसके परवश होकर, जड़भरत कि- जिसका तेज भस्ममें दबेहुए अग्निके समान स्पष्ट देखनेमें नहीं आता था, उससे इसप्रकार हँसीके बचन कहने लगा ॥ ५ ॥ कि-अहो ! हे भाई ! बड़ी शोचकी बात है कि- तू बेशक बहुत थक गया होगा ? बहुत लंबे रास्तेमें बहुत देरसे तू इकला पालकी उठाये चला आता है. तू बहुत पुष्ट नहीं है. न तेरा शरीर दृढ़ है. और बुढ़ापेने तुझे जुदा घेर लिया है. हे मित्र ! ये तेरे साथ चलनेवाले दूसरे बेगारी बिलकुल तेरेजैसे नहीं हैं. इस प्रकार रहूगणने बहुतसी हँसी की; तथापि उन जड़भरतके, अपने चरमशरीररूप अवस्तुभूत संस्थान विशेष कि- जो पंचमहाभूत, इंद्रिय, कर्म और

अंतःकरणरूप मायाके पदार्थोंसे बनाहुआ है, उसमें मैं और मेरा ऐसी मिथ्या प्रतीति नहीं थी और आप ब्रह्मभूत थे, तासों कुछभी न कहकर, पहलेकी भांति पालकी उठाकर, चलने लगे ॥ ६ ॥ फिर पालकी टेढ़ी होने लगी, तब राजा रहूगण क्रोध करके, बोला कि-' अरे ! यह क्या ?, तू जीताहुआ मुर्दा है. तू मुझे न गिनकर, मेरी आज्ञाका अपमान करता है. यमराजा जैसे प्राणीसमूहको शिक्षा देता है, वैसे मैंभी तेरी असावधानताके वास्ते शिक्षा करूंगा कि-जिससे तू सीधा हो जायगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार रहूगण राजा कि-जो रजोगुण और तमोगुणसे वृद्धिंगत अभिमानके हेतु किसी वैष्णवजनको नहीं गिनता था. और राजा-

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दंडपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥ ७ ॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पंडितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ॥ गंतुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥ ९ ॥

पनके अभिमानसे दृष्टिमें आवे ऐसे बहुत बोलता था. उसे ब्रह्मभूत गर्वरहित सर्वप्राणीमात्रके मित्र, सबके आत्मारूप और योगेश्वरोंकी रीतिमें अतीव व्युत्पत्तिवाले, जड़भरतने मानों हँसते हों ऐसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ ८ ॥ जड़भरत बोले कि- हे राजा ! आपने जो कहा वह ऐसेही है. इसमें कुछभी मेरी हँसी नहीं हुई. जो भारनामक कुछभी पदार्थ होवे, वह फिर उठानेवाले देहको लगता होवे. और उसके साथ मेरे कोईभी संबंध होवे तो, तैंने मेरी हँसी की ऐसे मैं समझूं. परंतु भार यह क्या है ? और देह यह क्या वस्तु है ? इसका निरूपण नहीं हो सकता और भार व देहके साथ मेरे कुछभी संबंध नहीं है, इसलिये तेरे वाक्योंको मैं हँसीरूप नहीं समझता. वैसेही जो कोई चलकर, पहुँचनेका स्थल अथवा

चलनेका मार्ग होवे और उसके साथ मेरे किसी प्रकारका संबंध होवे, तो तूने मेरी हँसी की, ऐसे मैं समझूं. परंतु उसमेंका कुछभी नहीं है; तासों तूने जो कहा है वह सत्यही कहा है, ऐसे मैं मानता हूँ. आत्माको 'पुष्ट हो' ऐसा कहना तो केवल मूर्खोंकिही सभंवे, क्योंकि पंचभूतोंका समूहरूप देहही पुष्ट होता है, पर आत्मा कदापि पुष्ट नहीं होता, तासों देहही पुष्ट है, परंतु मैं पुष्ट नहीं हूं ॥ ९ ॥ स्थूलपन, पतलापन, व्याधि, आधि, क्षुधा, तृषा, भय, कलह, इच्छा, जरा, निद्रा, मैथुन, क्रोध, शोच और अहंकारसे होनेवाला मद ये सब जो जन देहके साथ जनमा होवे उसके होते हैं, परंतु मैं देहके साथ नहीं जनमा, इसलिये मेरे इनमेंसे कुछभी नहीं है ॥ १० ॥ हे राजा ! मैं इकला जीवन्मुर्दा नहीं हूं; पर सब जगत् जीवता मुर्दा है.

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रारतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न संति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यंतवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥ ११ ॥ विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ॥ क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ॥ अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥

क्योंकि विकृतपदार्थमात्र आदिअंतवाला देखनेमें आता है, अर्थात् क्षणक्षणमें यह जगत् होता जाता है और मरता जाता है. हे ईड्य ! स्वामीभाव और दासभाव जो अविचल होवे, तो तेरे आज्ञा करना और मेरे काम करना यह बन सकता है, परंतु यह अविचल नहीं है; अर्थात् जो तू राज्यसे भ्रष्ट होवे और मुझे राज्य मिले तो मैं आज्ञा करूं और तुझे काम करना पड़े ॥ ११ ॥ यह राजा है और यह दास है इत्यादि भेदबुद्धिका अवकाश व्यवहार सिवाय थोड़ाभी देखनेमें नहीं आता तासों यद्यपि इस प्रकार व्यवहारदृष्टि छोड़ कर, वास्तविक विचार किया जाय, तो उसमें राजा कौन और उसका सेवक कौन ? यह कुछभी नहीं है. तथापि तेरे जो राजापनका अभिमान होवे, तो हे राजा ! जैसे तू कहे वैसे करनेको हम तैयार हैं ॥ १२ ॥ मैं कि–जो उन्मत्त, मत्त और जड़के समान रहता हूं और ब्रह्मभाव प्राप्त भया हुआ हूं, उसे दंडसे अथवा शिक्षासे क्या होनेवाला

है ? क्योंकि जीवन्मुक्तके अर्थ अथवा अनर्थ इन दोनोंमेंसे कुछभी नहीं रहता. कदाचित् मैं जीवन्मुक्त नहीं हूं; अक्कड़ और बावला हूं, तथापि पीसेहुए पदार्थको पीसनेके समान मेरे ऊपर दंड वा शिक्षा ये सर्व व्यर्थ हैं क्योंकि जड़प्रकृति मनुष्य किसी प्रकारभी समझदार नहीं बन सकता ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– स्वभावसे शांत और देहाभिमान करानेवाली अविद्यासे मुक्त भया हुआ जड़भरत कि–जो सुखदुःखादिकोंको भोगकर, प्रारब्धकर्मका क्षय करता था, वह इस प्रकार रहूगणकी कहीहुई सब वक्रोक्तिका अनुवाद कर, उत्तर दे, पूर्ववत् पालकी उठाकर, चलने लगा ॥ १४ ॥ हे परीक्षित ! यह सिंधु और सौवीर देशका अधिपति राजा रहूगण कि–जिसको उत्तम श्रद्धाके हेतु तत्त्वजिज्ञासामें अधिकार मिलचुका है, वह स्वयं इसप्रकार देहाभि-

श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥ १४ ॥ स चापि पांडवेय सिंधुसौवीरपति-स्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रंथिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रंथसंमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥ १६ ॥ नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दंडात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ १७ ॥

मानको काटनेवाला और योगके बहुतसे ग्रंथोंका अनुसरण करनेवाला जड़भरतका वचन सुनकर, तुर्त पालकीसे उतर कर, राजापनका अभिमान छोड़कर, उस जड़भरतके चरणोंमें शिर धरकर, क्षमा मांगता बोला कि– ॥ १५ ॥ गुप्तरूपसे विचरनेवाले आप कौन हो ? द्विजन्मानमेंसे आप कौन मुनि हो ? क्योंकि आप यज्ञोपवीत धारण करते हो. दत्तात्रेयजीआदि अवधूतोंमेंसे आप कौन अवधूत हो ! आप किसके पुत्र हो ? कहां विराजते हो ? और यहां किस प्रयोजनसे आपका पधारना हुआ है ? हमारा कल्याण करनेके वास्ते यहां पधारे हो तो आप कपिलदेवजी तो नहीं हो ? ॥ १६ ॥ मैं न तो इंद्रके वज्रसे डरता हूं, न महादेवके त्रिशूलसे, न यमराजके दंडसे और न अग्नि, सूर्य, वायु वा कुबेरके अस्त्रसे; परंतु ब्राह्मणकुलका अपमान करनेसे

बहुत डरता हूं ॥ १७ ॥ इस लिये हे साधु ! अपारमहिमावाले और ज्ञानरूप गुप्तप्रभाववाले आप कि-जो जड़की भांति विचर-ते हो, वो मेरे पूर्वोक्त प्रश्नोंका उत्तर देओ. योगसे गुंथेहुए आपके वचन हमसे तो क्या ? परंतु सूक्ष्मदृष्टिवाले विद्वानोंसेभी बरा-बर भेदन करके समझे जायं ऐसे नहीं हैं ॥ १८ ॥ मैंभी महायोगेश्वर आत्मवेत्ता मुनिजनोंके परमगुरु और ज्ञानशक्तिसे अवतार धारण करनेवाले, कपिल भगवान्‌के पास, 'इस संसारमें सच्चा शरण कौन है'? यह बात पूंछनेके लिये जाता हूं ॥ १९ ॥ सो कदाचित् लोकोंको देखनेके वास्ते गुप्तरूपसे विचरते वे कपिलदेवजीही तो आप नहीं हो ? अंधबुद्धि और घरमेंही दृढ़बंधन-से बँधाहुआ पुरुष योगेश्वरोंकी गतिको किस प्रकार जान सकता है ? ॥ २० ॥ आपने कहा कि-श्रम बिलकुल हैही नहीं, परंतु

तद्ब्रूह्यसंगो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ॥ वचांसि योगग्रंथितानि साधो न नः क्षमं ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥ १८ ॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमि-हारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥ १९ ॥ स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिंगो विचरत्य-पि स्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमंधबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबंधः ॥ २० ॥ दृष्टः श्रमः कर्मत आ-त्मनो वै भर्तुर्गंतुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूलइष्टो व्यवहारमार्गः ॥ २१ ॥ स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तंडुलगर्भरंधिः ॥ देहेंद्रियास्वाशयसन्निकर्षात्तत्संसृतिः पु-रुषस्यानुरोधात ॥ २२ ॥

यह बात मेरे मनमें नहीं बैठती; क्योंकि मैं किसी समय युद्धआदि काम करता हूं, तब श्रमित हो जाता हूं. वैसे आपकोभी भार उठाने और चलनेआदिका श्रम अवश्य होना चाहिये, ऐसे अनुमान करता हूं. व्यवहारमार्गको आप असत् कहते हो, परंतु जैसे असत् घड़ेसे जल लानेआदि कार्य नहीं होता, वैसे व्यवहारभी असत् होवे तो उससे कुछभी कार्य न होना चाहिये. व्यवहार-( संसार ) से तो सकलकार्य होता है, इसलिये वह असत् किसप्रकार कहा जा सके ? ॥ २१ ॥ आपने कहा कि-सुखदुःखआदि धर्म केवल देहके हैं आत्माके नहीं, इस विषयमें मुझे संदेह है कि-जैसे तपेलीके ताप लगनेसे उसके मध्यव-र्ती दूधको ताप लगता है, दूधके ताप लगनेसे चांवलोंके ऊपरके भागमें ताप लगता है और ऊपरके भागके ताप लगनेसे भीतर

के भागमें ताप लगता है. इसी प्रकार देहको दुःख होनेसे उसके अंतर्गत इंद्रियोंको दुःख होना चाहिये, इंद्रियोंके दुःख होनेसे प्राणको दुःख होना चाहिये, प्राणको दुःख होनेसे मनको दुःख होना चाहिये और मनको दुःख होनेसे उसके संबंधी आत्माको दुःख होना चाहिये ॥ २२ ॥ आपने कहा कि- स्वामित्व और दासत्व अविचल नहीं है, परंतु जिस समय जो राजा होवे उस समय वह प्रजाका शासन और पालन करे इसमें क्या झूंठा है ? जो राजा भगवान्‌का भक्त होकर, योग्य रीतिसे अपना राज्याधिकार चलाता होवे और असावधानआदि लोकोंको शिक्षा करता रहे वह पिष्टपेषण ( निष्फल ) किस प्रकार कहा जायगा ? मैं तो ऐसे जानता हूं कि-यह राजा अपना धर्मपालनरूप भगवद्भक्ति करनेसे अपने पापसमूहका नाश करता है ॥

**शास्ताऽभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किंकरो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥ २३ ॥ तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ॥ कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबंधो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥ २४ ॥ न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥ महद्विमानात्स्वकृताद्धिमादृङ्नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥ न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहाऽऽमनंति ॥ १ ॥**

॥ २३ ॥ आपने जो कहा वह मुझे विपरीत प्रतीत होता है, इसलिये हे दीनबंधु ! मैं कि-जो राजापनके अभिमानसे महात्मा पुरुषोंका तिरस्कार करनेवाला हूं,तिसपर स्नेहदृष्टि करो कि-जिससे महात्मानके अपमान करनेरूप पापसे मुक्त हो जाऊं॥२४॥ आप कि-जो सर्वजगत्के संबंधी,सखा और समताके हेतु देहाभिमानरहित हो,उनके यद्यपि कोईभी विकार नहीं है तथापि मेरेजैसा मनुष्य तो महादेवजैसा समर्थ होवे तोभी अपने कियेहुये महात्मानके अपमानसे शीघ्र नाशहुये विना रहेही नहीं॥२५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः॥ १० ॥॥ ग्यारहवें अध्यायमें रहूगण राजाने प्रश्न किया तब जड़भरतने उसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया यह कथा होगी ॥ १॥ जड़भरतने कहा कि- तू मूर्ख होकरभी विद्वानकीसी बातें बनाता है, परंतु इससे तू महाविद्वान् नहीं माना ज सकता; क्योंकि विद्वान् लोग कहते हैं कि-वास्तविक रीतिसे विचार किया जाय,

तब यह व्यवहार सत्य नहीं ठहेरता ॥ १ ॥ हे राजा! जैसे लोकव्यवहार सत्य नहीं है वैसे वेदमें कहाहुआ कर्मव्यवहारभी सत्य नहीं है. घरसंबंधी बहुतसे यज्ञोंके विस्तारविषयक विद्याओंके प्रतिपादक बहुतसे वेदवाक्योंमें तत्त्वज्ञानकी वार्ता प्रायः नहीं प्रकाशती, क्योंकि तत्त्वज्ञान हिंसादिक दोषसे रहित है; और कर्मकांडकी विद्यामें हिंसादिक दोष विद्यमान हैं. तत्त्वज्ञानमें रागद्वेषादिक दोष नहीं रहते और कर्मकांडकी विद्यामें राग द्वेषादिक रहते हैं. अर्थात् सकाम कर्म करनेसे तत्त्वज्ञान नहीं होता, किंतु जो कर्म करे वह ईश्वरार्पण किया जाय तो अंतःकरणशुद्धिद्वारा परमार्थफलरूप तत्त्वज्ञानका हेतु हो जाता है ॥ २ ॥ जैसे स्वप्नसुख दृश्य और अनित्य होनेसे त्याज्य है, वैसे गृहस्थाश्रमका सुखभी दृश्य और अनित्य होनेसे त्याज्य है, ऐसा दृढ़ अनुमान

तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृंभितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥ २ ॥ न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वाऽनुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरंकुशं कुशलं चेतरं वा ॥ ४ ॥ स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ्नामभिरूपभेदमंतर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥ ५ ॥ दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ॥ आलिंग्य मायारचितांतरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यने अपने मनसे न किया होवे, उस मनुष्यको, वेदांतके वाक्य, यद्यपि तत्त्वज्ञानके वास्ते अतिउत्तम हैं तथापि यथार्थ तत्त्वज्ञान नहीं दे सकते ॥ ३ ॥ जबतक मनुष्यका मन सत्व, रज और तम इनके वश रहता है, तबतक निरंकुश रहकर, ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियसे पाप पुण्य किया करता है ॥ ४ ॥ यह मन पापपुण्यकी वासनाके हेतु विषयोंसे रंजित होकर, विषयोंमें इधर उधर भटका करता है. पंचमहाभूत और ग्यारह इंद्रियोंमें मुख्य तथा कामक्रोधादिक अनेक विकारवाला यह मनही देव, मनुष्य और पशुपक्षीआदि अनेक देह और भिन्न भिन्न नाम धारण कर, उस उस देहके हेतु उच्च नीचत्वभी विस्तारता है ॥ ५ ॥ अनिवार्य व कालप्राप्त सुख, दुःख और मोह सर्वप्रकारसे पैदा करनेवालाभी मनही है. यह मन जीवकी मायारचित उपा-

थि है, तासों जीवका अपने अंदर मिथ्या अध्यास करवाकर, ( मैंही मन हूँ ऐसे मनाकर ) संसाररूप चक्रमें ग्रामकूटककी भांति छल कर भ्रमण कराता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार जाग्रत और स्वप्नरूप यह सारा संसार मनकी कल्पनासेही खड़ा हुआ है और मनके प्रमाणमेंही प्रकाश करता है. आत्मा यह मनसे पैदा भयेहुए संसारका केवल द्रष्टा होनेसे वास्तविक रीतिसे उसके साथ दूसरा कुछभी संबंध नहीं रखता; तथापि यह 'मन मैं हूं' ऐसे मिथ्या अध्याससे उच्चनीचत्वआदि धर्म अपने अंदर मान लेता है. इसप्रकार आत्माको देहाभिमानरूप अधमता देनेवाला यद्यपि मनही है, तथापि देहाभिमानसे मुक्त होनेरूप उत्तमता देनेवालाभी यही है ॥ ७ ॥ मन विषयोंमें लगा रहे तो जीवको जन्म मरणादिक दुःख देता है. और वही मन जो विषयोंसे

तावानयं व्यवहारः सदाऽऽविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ॥ तस्मान्मनो लिंगमदो वंदति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जंतोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदास्वम् ॥ पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ ८ ॥ एकादशाऽऽसन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पंचधियोऽभिमानः ॥ मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदंति हैकादश वीर भूमीः ॥ ९ ॥ गंधाकृतिः स्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥ १० ॥

अलग रहे तो मोक्षभी देता है. जैसे दीपक घृत और बत्तीको खाता रहे तबतक उसमेंसे धूमवाली शिखा निकलती रहती है. और जब घी व बत्ती सब जल जाय, तब बुझकर तेजरूप हो जाता है ॥ ८ ॥ इसीतरह जबतक मन, विषय और कर्मोंमें लगारहता है तबतक, उसमें ग्यारह वृत्तियां दीख पड़ती हैं. और जब विषय और कर्मोंसे मुक्त हो जाय, तब वह ब्रह्माकार हो जाता है. मनकी जो ग्यारह वृत्तियां हैं उनमें पांच तो क्रियारूप हैं. और पांच ज्ञानरूप हैं. और एक अभिमानरूप है ॥ ९ ॥ हे राजा ! पांच विषय, पांच कर्म और एक पुर, ये ग्यारह पदार्थ पूर्वोक्त ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि हैं, इनमें शब्द, स्पर्श रूप, रस, और गंध ये पांच विषय हैं अर्थात् ज्ञानेंद्रियरूप द्वारसे मनकी वृत्तियोंकी भूमि हैं. मलोत्सर्ग, मैथुन, गति, भाषण और

शिल्प ये पांच कर्म हैं. यानी कर्मेंद्रियरूप द्वारसे मनकी वृत्तियोंकी भूमि है ॥ १० ॥ ग्यारवां जो पुर कहा गया है; वह अभिमान ( ममता ) रूप मनकी वृत्तिकी भूमि यानी मेरा है ऐसे स्वीकार कियाहुआ शरीर है. कितनेएक विद्वान् ऐसेभी कहते हैं कि– अहंकारनामक मनकी एक बारहवीं वृत्तिभी है. और उसकी भूमिभी पूर्वोक्त शरीरही है. यद्यपि इसप्रकार मुख्य करके मनकी वृत्तियां ग्यारह गिनी जाती हैं; तथापि वे वृत्तियां स्वभाव, पदार्थ, संस्कार, अदृष्ट और कालके हेतु अपने अंतर्गत भेदोंसे सैकड़ों, हजारों और करोड़ों हो जाती हैं अब ये वृत्तियां किससे पैदा होती हैं? ऐसा विचार किया जाय तो, जीवमेंसे पैदा होना तो संभवे नहीं, क्योंकि जीव निर्विकार है. न परस्पर पैदा होना संभवे, क्योंकि ऐसे माननेमें अन्योन्याश्रय दोष आता है. वैसे आप अपनेमेंसेभी पैदा नहीं हो सकतीं; क्योंकि ऐसे होनेमें आत्माश्रयदोष आता है, इसतरह किसी प्रकारसेभी इन

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ॥ सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमायया ऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजंगमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥

वृत्तियोंकी उत्पत्तिका निरूपण नहीं हो सकता; तासों ये वृत्तियां केवल मिथ्याभूत हैं. ऐसा निश्चय हो सकता है ॥ ११ ॥ इसप्रकार विषय और कर्मोंके संबंधसे मनकी वृत्तियां उठा करती हैं. और वह संबंध जब मिटे, तब वह मन आत्माकार हो जाता है, कि–जो आत्मा अपनेको अपवित्र करदेनेवाले और मायासे निर्माण कियेहुए, मनके प्रवाहरूपसे निरंतर प्रवृत्त होतीं इन वृत्तियोंको शुद्ध रहकर, देखा करता है, जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें इन वृत्तियोंको आविर्भूत जाननेवाला और सुषुप्तिमें तिरोहित जाननेवाला अर्थात् तीनों अवस्थानका साक्षी यह क्षेत्रज्ञ आत्मा है ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ दोप्रकारका है. एक तो त्वंपदार्थ जीव और दूसरा तत्पदार्थ ईश्वर. वहां जीवका निरूपण तो किया, अब उसके प्राप्य ईश्वरका निरूपण करते हैं. पुराणपुरुष स्वयंप्रकाश, अपरोक्ष, अजन्मा, ब्रह्मादिकोंकेभी ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, आत्मा, भगवान् नारायण वासुदेव अपनी मायासे जीवमात्रके नियामक हैं ॥ १३ ॥ जैसे वायु सब स्थावर जंगममें प्राणरूपसे प्रवेश कर, सबको वशमें रखती है. ऐसे भगवान् परमेश्वर वासुदेव

आत्मा क्षेत्रज्ञ इस जगत्में प्रवेश कर, वशमें रखते हैं॥१४॥हे राजा रहूगण! जबतक यह प्राणी संगमात्रको त्याग, छः इंद्रियरूप शत्रुओंको जीतकर, ज्ञानके उदयसे देखनेमें आती इस समग्र मायाको दूर करके जबतक अपने स्वरूपको नहीं जानता. तबतक संसारमें भटका करता है ॥ १५ ॥ शोक, मोह रोग; राग, लोभ, वैर और ममता करनेवाला तथा स्वरूपकी उपाधिरूप, यह मनही लोकोंके संसारके तापका मूल है. इस प्रकार जबतक इस मनुष्यको ज्ञान नहीं होता, तबतक संसारमें भटका करता है॥ १६ ॥ इसलिये तू आपभी यह मनरूप शत्रु कि-जो, जैसे जैसे उपेक्षा कीजाय वैसे वैसे बढ़ता जाताहै, महाबलवान् है और मिथ्या होनेपरभी स्वरूपज्ञानका

न यावदेतां तनुभृन्नरेंद्र विधूय मायां वयुनोदयेन ॥ विमुक्तसंगो जितषट्सपत्नो वेदाऽऽत्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥ १५ ॥ न यावदेतन्मन आत्मलिंगं संसारतापावपनं जनस्य ॥ यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबंधं ममतां विधत्ते ॥ १६ ॥ भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ॥ गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रहूगणसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ रहूगण उवाच ॥ नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमोऽवधूतद्विजबंधुलिंगनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्य यथा गदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमांभः ॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥

नाश कर देता है; उसका सावधान होकर, भगवान्‌रूप गुरुके चरणोंकी उपासनारूप अस्त्रसे नाश कर ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापु० पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ बाहरवें अध्यायमें राजा रहूगणने फिर संदेहकरके प्रश्न किया. तब उस योगीने सब संदेहोंको निवृत्त किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ रहूगणने कहा कि-हे योगेश्वर! आप कि-जो ईश्वरकेही स्वरूप, परमानंदके प्रकाशसे देहादिकको तुच्छ माननेवाले और सामान्य ब्राह्मणके वेषसे अपने स्वतंत्र अनुभवको गुप्त रखनेवाले हो, तिन्हें बारंबार नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ ज्वररोगसे पीड़ित मनुष्यके जैसे औषध अमृतरूप है और गर्मीसे तपेहुए पुरुषके जैसे शीतल जल अमृतरूप है, वैसे मैं कि-जो इस अधम शरीरके अभिमानरूप

सर्पके काटनेसे अंध भयाहुआ हूं उसके आपका वचन अमृत और औषधरूप है ॥ २ ॥ इसलिये मेरे मनमें जो संदेह है, वह तो मैं आपसे पीछे पूंछूं गा. परंतु अभी तो ज्ञानयोगसे गुंथा हुआ जो वचन आप कहगये, वही जिस प्रकारसे ठीक २ मेरी समझमें आ जाय वैसे वर्णन करो. यह सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ ३ ॥ हे योगेश्वर! यह भार उठानेआदि क्रिया और उससे होनेवाला परिश्रमआदि कि-जो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और जो व्यवहारका कारण है, यह सब वास्तविक रीतिसे विचार कर, देखाजाय तो कुछ हैही नहीं ऐसे जो आप कहगये इस बातमें मेरे मनकी भ्रांति नहीं मिटती ॥ ४ ॥ जड़भरतने कहा कि-हे राजा पृथ्वीमेंसे बनाहुआ जो पदार्थ किसी कारणसे पृथ्वीपर चलता है उसे आपन कहारआदि नामों-

तस्माद्भवंतं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥ ३ ॥यदाह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ॥ न ह्यंजसा तत्त्ववि-मर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ॥ तस्यापि चांघ्र्योरधिगुल्फजंघाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५॥ अं-सेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ॥ यस्मिन्भवान् रूढनिजाभिमानो रा-जाऽस्मि सिंधुष्विति दुर्मदांधः ॥ ६ ॥

से जानते हैं. और जो नहीं चलता उसे आपन पत्थरआदि नामसे जानते हैं. परंतु विचार कर, देखें तो कहार और पत्थरमें कुछभी भेद नहीं है. और पत्थरके जड़ होनेके कारण कुछभी श्रम वा भारआदि नहीं है, ऐसे कहारकेभी भार वा श्रमआदि न होना चाहिये; जिसे श्रम होता है, उसका जो निरूपण हो सकता हो तो कदाचित् आपन श्रम होनेकी बात सत्यभी मानें. परंतु उसीका होना असंभव है, क्योंकि अवयवोंके सिवाय अवयवीका निरूपणही नहीं हो सकता. प्रथम विचार करो कि-क-हारके शरीरमें कितने अवयव हैं, मिट्टीमेंसे बनेहुए कहारके पांवोंपर तो गुल्फ ( गुड्वा ) हैं. गुल्फपर जंघा हैं. और उसपर घु-टना और घुटनापर साथल और साथलपर कमर. और कमरपर छाती. और छातीपर गर्दन. और गर्दनके अनंतर कं-धे हैं ॥ ५ ॥ कंधोंपर लकड़ेकी पालकी है. जिस पालकीमें सौवीरदेशका राजा ऐसे नामसे प्रसिद्ध यह मिट्टीका ढेला बै-

ठां है. जिस ढेलेमें 'सिंधुदेशका राजा हूं' ऐसा अभिमान करके तू राजापनके मदसे अंधा होकर, ॥ ६ ॥ विचारे महादुखी इन दीन जनोंको बेगारमें पकड़ता है, इसलिये तू निःसंदेह निर्दय और घातक होनेपरभी निर्लज्ज होकर, बकता है कि–'मैं मनुष्योंकी रक्षा करनेवाला हूं,' इसीलिये विवेकी पुरुषोंकी सभामें तुझे शोभा मिले ऐसे नहीं है ॥ ७ ॥ ऊपर ऊपरके अवयवोंका भार नीचेनीचेके अवयवोंको लगता है ऐसेभी नहीं कह सकते; क्योंकि अवयववाले एक पदार्थका जैसे निरुपण नहीं होसकता ऐसे अवयवोंकाभी निरुपण नहीं होसकता; क्योंकि हम जानते हैं कि–स्थावर और जंगम सकल जगत्‌को उत्पत्ति और नाश पृथ्वीमें-ही होता है. यह बात प्रसिद्ध है, इसलिये सब अवयव पृथ्वीकेही विकार हैं, केवल उन उन पदार्थोंके नाममात्र जुदे २ हैं.

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्ट दीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥ यदाक्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम् ॥ ८ ॥ एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥ ९ ॥ एवंकृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म नाम्नाऽजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥ १० ॥

तासों नाममात्रके सिवाय व्यवहारका कोईभी कारण कार्य करनेके हेतु सत्य है ऐसा अनुमाननहीं हो सकता, जो यह अनुमान हो सकता हो तो तूही कह ॥ ८ ॥ इससे यहभी न जानना कि 'पृथ्वी सत्य है;' क्योंकि वास्तविक रीतिसे विचार कर देखिये तो पृथ्वीभी सत्य नहीं ठहेरती. पृथ्वी अपने कारणरूप सूक्ष्म परमाणुओंमें लय पाती है, तासों परमाणु सिवाय पृथ्वी कुछभी पदार्थ नहीं है और परमाणु कि जिनके समूहसे पृथ्वीकी कल्पना की गयी है और पृथ्वीको सिद्ध करनेके वास्तेही जिनकी केवल मनसे कल्पना हुई है, वेभी सत्य नहीं हैं; क्योंकि सब प्रपंचकी भांति परमाणुभी उनके परमकारणके अज्ञानसे कल्पन किये गये हैं ॥ ९ ॥ इसीप्रकार दूसराभी कृश, स्थूल, छोटा, बड़ा, कारण, कार्य, सचेतन और जड़ यह सब द्वैतमात्र माया-



१ अब इतने सब टुकड़ोंमेंसे किस टुकड़ेको भार या परिश्रम है जो टुकड़ों विना एकही पदार्थ होवे तो आपन उसके भार या श्रम मान सकते हैं परंतु टुकड़ोंको छोड़े पीछे शरीरनामक कोई पदार्थ बाकी नहीं रहता तासें भार पर अभिमान किसे लगता है इसका साक्षात् निरुपण बिलकुल नहीं होता.

कल्पित है. और द्रव्य, स्वभाव, संस्कार, काल और अदृष्ट ये सब मूलतत्त्व मायाकेही नाम हैं. यह तू जान ॥ १० ॥ तब सत्य क्या है? यह जानना होवे तो ज्ञानमय एक परब्रह्मही सत्य है. जो परब्रह्म, शुद्ध, एक, स्वयं परिपूर्ण, निर्विकार परमार्थस्वरूप प्रत्यक्रूप है. और जिसके बाहिर और भीतर दूसरा कुछभी नहीं है और ज्ञानीलोग जिसे ऐश्वर्यादि षड्गुणसंपन्न भगवान् वासुदेव कहते हैं ॥ ११ ॥ हे रहूगण! इस परब्रह्मकी प्राप्ति महत्पुरुषोंके चरणरजकी सेवा किये विना न तो तप करनेसे, होती है, न वेदोक्त कर्म करनेसे, न अन्नआदिका विभाग करनेसे, न गृहस्थाश्रमसे यानी गृहस्थसंबंधी परो-

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनंतरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशांतं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदंति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ न च्छंदसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥ अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसंगबंधः ॥ आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसंगाद्धतार्थः ॥ १४ ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ॥ अथो अहं जनसंगादसंगो विशंकमानोऽविवृतश्चरामि ॥ १५ ॥

पकारसे, न वेदाभ्याससे और न जल, अग्नि व सूर्य इनकी उपासना करनेसे होती है. किंतु परब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय केवल महत्पुरुषोंके चरणरजका सेवनही है ॥ १२ ॥ जिन महात्मापुरुषोंमें विषयवार्ताका नाश करनेवाली भगवत्कथाही निरंतर प्रवृत्त रहती है. इस कथाका प्रतिदिन सेवन करे तो, मुमुक्षुपुरुषको भगवत्संबंधी उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ विषयका संग तो योगसे भ्रष्ट करनेवाला है. इसका मैं स्वयं अनुभव कर चुका हूं. मैं प्रथम भरतनाम राजा था, इस लोककी और परलोककी सब तृष्णाको त्याग कर, भगवान्का आराधन करता था, वहां मृगकी संगतिसे सब स्वार्थका नाश हो जानेपर मृगजन्म पाया ॥ ॥ १४ ॥ हे राजा ! मैंने भगवान्का आराधन किया था, उसके प्रभावसे मृगजन्ममेंभी स्मृति बनी रही, इसीसे लोकोंका संग हो जानेके डरसे गुप्त और असंग होकर, विचरता हूं ॥ १५ ॥

वैराग्यवान् महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे उत्पन्न भयेहुए ज्ञानरूप खड्गसे जो मनुष्य मोहको काट देता है, उसको भगवल्लीलाके कथन और स्मरणसे स्वरूपज्ञान होजाता है. और उसीसे संसारका अंत आ जानेके हेतु भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें, वैराग्यशून्य मनुष्यको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करना वृथा है, ऐसे जानकर, रहूगणको दृढ वैराग्य प्राप्त हो जाय, इसलिये संसारका अटवी (जंगल) के रूपकसे वर्णन करेंगे. यह कथा होगी ॥ १ ॥ जड़भरतने कहा कि– इस दुस्तर प्रवृत्तिमार्गमें मायासे गिरायाहुआ

तस्मान्नरोऽसंगसुसंगजात ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ब्राह्मणरहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विंदति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुंपंति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो यत्र हरंति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥ २ ॥ प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ॥ क्वचित्तु गंधर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्कचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥

और रजोगुण, तमोगुण व सत्वगुणसे जुदे २ विभाग कियेहुए कर्मोंको अपना अपना कर्तव्य जानताहुआ यह जीवलोकोंका संघ सुखकी कामनासे, जैसे बनियोंका संघ कमानेकी इच्छासे जंगलमें चला जाता हो वैसे भटकता २ संसाररूप अटवीमें चला जाता है. परंतु सुख नहीं पाता ॥ १ ॥ हे राजा ! जिस अटवीमें खराब नायकवाले इस संघको छह ६ चोर बलात्कारसे लूटते हैं, जैसे वृक (भेंड़िया) घुसकर, भेंड़ीको खैंच लेता है, ऐसे शृगाल (सियार) घुसकर, असावधान मनुष्यको इधर उधर खैंचते हैं ॥ २ ॥ सघन लता, घास और गुच्छोंसे गहन स्थलमें भयंकर डाँस और मच्छरोंका बड़ा उपद्रव है; किसी जगह यह

१ बुद्धि. २ छः इंद्रियां. ३ धर्ममें उपयोगी होवे ऐसा धन उपयोगद्वारा लूट लेते हैं, ४ स्त्रीपुत्रआदि ५ तू मेरा स्वामी तू मेरा पिता, ऐसे रीतिसे घुसकर. ६ तृष्णा और कर्मआदिसे गहन गृहस्थाश्रममें अर्जन दुःख देते हैं

संघ गंधर्वनगरको सच मानता है. और किसी २ स्थलमें बड़े बेगसे जातेहुए भूतके बौंड़रको लेनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥ ठहेरनेकी जगह, जल और धनके लालचवाली बुद्धिसे इस अटवीमें इधरका उधर दौड़ा करता है. किसी जगह नेत्रोंमें धूल पड़ जानेसे बौंड़रसे उड़ीहुई धूलसे ढकी हुई दिशानको नहीं जानता, देखनेमें न आवें ऐसी झिंल्लियों–( सारों ) के शब्दसे कानको पीड़ा होती है, उर्लूकके शब्दोंसे अंतःकरणमें खेद होता है, भूखके मारे अपवित्र वृक्षका सेवन करता है और कभी २ मृगतृष्णा-

निवासतो यद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् ॥ क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितांतरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधाऽर्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरंधः ॥ आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥ ६ ॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ क्वचिच्च गंधर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥ चलन् क्वचित्कंटकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवाऽऽस्ते ॥ पदे पदेऽभ्यंतरवह्निनाऽर्दितः कौटुंबिकः क्रुद्ध्यति वै जनाय ॥ ८ ॥

का जल पीनेकोभी दौड़ता है, ॥ ४ ॥ ५ ॥ कभी २ सूखी नदियां कि–जिनमें पड़ जानेसे शरीर भाग जानेसे तुर्त दुःख होवे और जलभी मिले नहीं, उनमें जाता है, कभी अन्न चुक जानेसे दूसरोंसे लेना चाहता है, कभी दांवानलको पाकर, अग्निसे तपकर, घबरा जाता है, कभी यक्षलोकें प्राण ले लेते हैं ॥ ६ ॥ कभी बलवान् लोग धन हर लेते हैं. तासों खेद पाकर, शोच करते हैं मोहित होजाते हैं और मूर्छित हो जाते हैं, किसी समय गंधर्वपुरमें घुसकर, सुखीकी भांति थोड़ी देर आनंद मान लेते हैं ॥ ७ ॥ कहीं जलते कांटे व कंकर पैरमें लगते हैं, तासों पर्वतपर चढ़नेकी इच्छाको पार न पड़ते उदाससा होकर, बैठ जाता है

१ गंधर्वपुरके समान मिथ्या होनेपरभी देखनेमें आते देहादिकको सत्य जानता है. २ भूतके मंडलके समान सुवर्ण. ३ विषय दोनों पक्षोंमें समान है ४ रजोगुण. ५ स्त्री. ६ कर्मके साक्षीरूप दिशानके देवता. ७ परोक्ष अप्रियबोलनेवाला. ८ प्रत्यक्ष अप्रिय बोलनेवाला. ९ अधर्मी लोग. १० खोटे विषय. ११ इसलोक और परलोकमें दुःख देनेवाले पाखंडोंमें मिलता है. १२ पुत्र और भाईआदिके पाससे. १३ घर. १४ शोक. १५ यक्षसे राजालोग. १६ धन. १७ गंधर्वपुरके समान मिथ्याभूत पितापुत्रआदिके समानमें. १८ विघ्न दुःख देतेहैं. १९ बड़ा कामकरनेकी इच्छा.

क्षणक्षणमें अंतर्गत अग्निसे पीड़ित होकर, यह कुटुंबीजन दूसरोंपर क्रोध करता है ॥ ८ ॥ कभी अजगर सर्पके निगल जानेसे जंगलमें फेंकेहुए मुर्दोंके समान कुछभी नहीं जानता. किसी जगह हिंसक प्राणियोंके कॉटते अंधा होकर, गहन अंधकूपमें पड़कर, दुःखमेंही सोता रहता है ॥ ९ ॥ किसी जगह शहद ढूंढ़नेको जाता है वहां उसकी मक्खियोंके कॉटनेसे व्यथित हो जाता है, कदाचित् शहद हाथ लग जाय तो उसे दूसरे बलात्कारसे लूट लेते हैं ॥ १० ॥ कभी कभी सर्दी, गर्मी, वायु और वर्षासे बचनेका उपाय नहीं बन सकता तब योंही बैठ रहता है. किसी समय थोड़ा बहुत लेन देन करते धनके विषयमें ठगाई करने

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः ॥ दष्टः स्म शेते क्व च दंदशूकैरंधोंऽधकूपे पतितस्तमिस्रे ॥ ९ ॥ कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ॥ तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुंपंत्यथ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥ क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ॥ क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥ ११ ॥ क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः ॥ याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥ १२ ॥ अन्योन्यवित्तव्यतिषंगवृद्धवैरानुबंधो विवहन्मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥ १३ ॥ तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥ १४ ॥

से द्वेषका पात्र बन जाता है ॥ ११ ॥ किसी २ जगह धन क्षीण होनेपर इस अटवीमें शय्या, आसन, स्थान वा सवारी न मिलनेसे दूसरेके पास जाकर, मांगता है. परंतु जब वहांभी नहीं मिलती तब परायी वस्तु लेनेकी इच्छा करता है. जिससे वह अपमान पाता है ॥ १२ ॥ एक दूसरेमें पदार्थके बदले पदार्थ देनेका व्यवहार करते बैर बढ़ जाता है तथापि फिर उन्होंके साथ परस्पर विवाहआदि संबंध करता है. महाकष्ट, परिश्रम, धनहानि और द्वेषआदि उपद्रवोंके हेतु इस मार्गमें मुर्देके समान हो जाता है ॥ १३ ॥ हे राजा ! अटवीके मार्गमें जो कोई मरजाय, उसे ये वहीं धर देते हैं. और जो नये जन्मते हैं उन्हें साथ

१ जठराग्नि—भूख. २ निद्रा. ३ दुर्जन. ४ दुःख देते. ५ विवेकरहित. ६ मोह. ७ उनके मालिक ८ मारने लगनेसे.

ओंका कल्याण होओ ॥ २३ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–हे उत्तराके पुत्र ! परीक्षित ! इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता जड़भरतने अपना अ-पमान करनेवाले रहूगणराजाकोभी करुणाकरके ब्रह्मविद्याका उपदेश किया. रहूगण राजानेभी बड़ी दीनताके साथ उनके चरणों-में नमस्कार किया. फिर यह जड़भरत कि–जिसके अंतःकरणकी तरंगें स्थिर और भरपूर समुद्रके समान शांत थीं, वह इस पृ-थ्वीमें विचरने लगा ॥ २४ ॥ जड़भरतके उपदेशसे आत्मतत्त्व जब यथार्थ समझमें आगया, तब रहूगणनेभी आत्मस्वरूपमें

श्रीशुक उवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिंधुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभा-वः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवंदितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्या-शयो धरणिमिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यवि-द्याऽध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥ २५ ॥ राजोवा-च ॥ यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वासह्यार्य-मनीषया कल्पितविषयो नाऽजसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भ० ना० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अज्ञानके हेतु आरोपण कीहुई देहात्मबुद्धि त्याग दी. हे राजा ! भगवद्भक्तोंका आश्रय लेनेका प्रभाव ऐसाही है अर्थात् जो आ-श्रय लेता है उसका देहाभिमान तुरंत निवृत्त हो जाता है ॥ २५ ॥ परीक्षितने कहा कि–हे महाभागवत ! शुकदेवजी ! महावि-द्वान् आपने परोक्षवचनसे जो यहां जीवलोककी भवाटवीका निरूपण किया, उसके विषय गंभीरविचारसे कल्पित होनेके कारण अल्पबुद्धिमनुष्यके सहज समझमें आ जायं ऐसे नहीं है. इसलिये इस दुर्बोध विषयको संसारके विषयके साथ अनुरूप कल्पना करके समझाओ कि–जिससे हमारी बुद्धिमें आ जाय ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्व-

दीपिकानाम भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ चौदहवें अध्यायमें संसारको अटवीरूपसे वर्णन किया. तहां उसका व्याख्यान करनेके वास्ते संसारपक्षमें सियार और मच्छरआदि अर्थ कल्पन किया जायगा यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- देहको आत्मा करके माननेवाले पुरुषोंके जुदे जुदे सत्वआदि गुणोंसे विभाग कियेहुए, शुभ, अशुभ और मिश्र कर्मोंसे रचेहुए जुदे २ प्रकारके अनेक जन्मोंमें जन्ममरणादिक होनेरूप अनादि संसारका अनुभव करनेमें द्वाररूप छः इंद्रियोंसे परमेश्वरके आधीन रहनेवाली मायाके हेतु अटवीके समान इस संसाररूप विषयमार्गमें यह जीवलोक आ पड़ा है. जैसे बनियोंका

स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिंद्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविंदमधुकरानुपदवीमवरुंधे यस्यामु ह वा एते षडिंद्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥ तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय उदाहरंति तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुंपंति ॥ २ ॥

समूह धन कमानेकी इच्छासे परदेश जाता अटवीमें चला जाय, ऐसे मरघटके समान अमंगलरूप संसाररूप अटवीमें चला जाता है. और वहां अपने देहसे रचेहुए कर्मोंका फल भोगता रहता है. उद्योग करता है. वहांभी बहुतसे उद्योग व्यर्थ चले जाते हैं. और कितनेएकमें बहुतसे विघ्न होते हैं. तथापि भक्ति कि-जो संसारके तापको शांत करनेवाली और हरिरूप गुरुके चरणारविंदको भ्रमरके समान सेवक भक्तलोगोंका मार्ग है उसे अद्यापि नहीं पाता. इस अटवीमें छः इंद्रियां चोरका काम करती हैं ॥ १ ॥ क्योंकि बड़े कष्टसे उपार्जन कियाहुआ मनुष्यका धन कि-जो परलोकके वास्ते भगवान्‌का आराधन करनेरूप धर्म-

में उपयोग करनेके योग्य है. उसका दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पोंसे घरसंबंधी तुच्छ सुखोंका अनुभव करनेमें उपयोग कराकर, चोरलोग जैसे खराब जागीरदारवाले और असावधान संघका धन लूट ले जायं ऐसे कुबुद्धि और अजितेंद्रिय पुरुषका धन ये लूट लेती हैं ॥ २ ॥ इस भवाटवीमें स्त्री और पुत्रआदि कुटुंब तो कहानेमात्र है. परंतु कामसे तो ये सचमुच भेंड़िये और सियारही हैं, क्योंकि अत्यंत लोभी कुटुंबी मनुष्यका बड़े प्रयत्नसे संचयकियाहुआ धन, उसकी इच्छा विना उसके देखते २ जैसे भेंड़िया भेंडीको ले जाय ऐसे ले जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस खेतमें प्रति-

अथ च यत्र कौटुंबिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुंबिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरंति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवाऽऽवपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदंति यदयं कामकरंड एष आवसथः ॥ ४ ॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुंततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गंधर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥ ५ ॥ तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥

बरस हल चलाया जाय, उस खेतकी धरतीकाभी बीज जल नहीं जाता. किंतु फिर वह खेत नाजबोतेसमय गुल्म, घास और बेलोंसे जैसे अगोचरसा हो जाता है, ऐसे यह गृहस्थाश्रमभी कि–जो वासनावोंका करंडियारूप है, वह अपनेमें रहेहुए कर्म नाश न होनेसे पूर्वोक्त क्षेत्रके समानही है ॥ ४ ॥ इस संसारमें पड़ाहुआ मनुष्य डाँस और मच्छरोंके जैसे नीच मनुष्योंसे और टीड़ी पक्षी, चोर और चूहाआदिसे उपद्रवयुक्त रहा करता है. क्योंकि उसका धनरूप प्राण तो बाहिरही रहता है. यह मनुष्य इस मार्गमें किधरका किधर भटकता रहता है. यह मनुष्यलोक यद्यपि गंधर्वनगरके समान केवल मिथ्या प्रतीत होता है, तथापि अज्ञान, वासना और कर्मसे रँगेहुए मनके हेतु मिथ्याविचारसे इसे सत्य करके मान लेता है ॥ ५ ॥ खाना, पीना और

मैथुनआदि व्यसनोंमें लंपट होकर, किसी समय मृगतृष्णाके जलके समान विषयोंकी ओर दौड़ता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य अग्निके वास्ते बहुत आतुर हुआ हो, वह जैसे उल्मुकपिशाच ( आगियावैताल ) को लेनेके वास्ते दौड़ता है, ऐसे यह संसारी जीवभी किसी समय रजोगुणने बुद्धि विरजानेके हेतु सुवर्ण कि-जो अग्निसे पैदा भयाहुआ और सब दोषोंका स्थानरूप है, उसे हस्तगत करनेको दौड़ता है ॥ ७ ॥ किसी समय रहनेका स्थान, जल और धनआदि अपने निर्वाहके साधनोंके अत्यंत अभिनिवेशसे इस भवाटवीमें चारोंतर्फ दौड़ा करता है ॥ ८ ॥ किसी समय बौंड़रके समान स्त्रीकी गोदीपर चढ़ बैठता है. यानी उसके प्रसंगमें आता है. त-

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥ क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाऽऽटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुंडाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान्जीवन्मृतान्स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥

ब उस समयके रजोगुणरूप धूलिसे आप मानों अंधकारमय होगया हो, ऐसे मर्यादाको त्याग देता है. आंखोंमें और बुद्धिमें रजोगुणरूप धूलि भर जानेसे दिशाओंके देवता कि-जो शुभ अशुभ कर्मके साक्षी हैं, उन्हेंभी नहीं जानता ॥ ९ ॥ किसी समय मनमें एकवार ऐसा विचार हो जाता है कि-विषय व्यर्थ हैं. तथापि देहाभिमानके कारण उस स्मरणके न रहनेसे मृगतृष्णाके जलके समान उन्हीं विषयोंके पीछे दौड़ा करता है ॥ १० ॥ किसी समय उलूक और झिल्लीके समान राजकुल और शत्रुलोगोंके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कहेहुए अत्यंत क्रूरता और कठोरताभरे तिरस्कारवचनोंसे इसके कान और हृदय बहुत व्यथित हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जब पूर्वसंचित पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब जीवत मुर्दा आप दूसरे जीवतमुर्दे लोक कि-जिनका धन कारस्क-

र ( माकाल ) और काकतुंडआदि अपवित्र वृक्ष, लता और विषकूपके समान इस लोक और परलोकके प्रयोजनसे रहित हैं; उनके समीप जाता है ॥ १२ ॥ कभी नीचलोगोंके प्रसंगसे वंचित होकर, जलरहित नदियोंमें पड़नेके समान दोनों तर्फसे दुःखदायी पाखंडपंथमें पड़ जाता है ॥ १३ ॥ जब दूसरेको बाधा करतेभी आपको अन्न नहीं मिलता तब पिताको, पुत्रको और जिनके पास पिताका या पुत्रका तृणमात्रभी जो कुछ लेना देखता है उन्हें दुःख देता है ॥ १४ ॥ कभी घर कि—जिसमें दावानलके समान प्रिय पदार्थ कुछभी नहीं है और परिणाममें जिसमें दुःख है उसे पाकर, शोकरूप अग्निसे जलताहुआ बहुत खेदित

एकदाऽसत्प्रसंगान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखंडमभियाति ॥ १३ ॥ यदा तु परबाधयांऽध आत्मनेनोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥ कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥ १७ ॥ क्वचिद्गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कंटकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥ क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यंतरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुंबाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥

होता है ॥ १५ ॥ कभी कालगतिसे प्रतिकूल भयेहुए राजकीय-लोगरूप राक्षस, धनरूप प्यारे प्राण हर लेते हैं. तब हर्षआदि नष्ट हो जानेसे मुर्देके समान होकर, बैठ रहता है ॥ १६ ॥ किसीसमय मनोरथसे प्राप्त भयेहुए पितादादाआदि झूंठे पदार्थोंको सत्य मानकर, स्वप्नके आनंदका अनुभव करता है ॥ १७ ॥ किसी समय गृहस्थाश्रममें कर्तव्य कर्मके विस्ताररूप पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करता है. तब लोकसंबंधी दुःखसे मनमें दुःखी होकर, कांटा और कंकरवाली भूमिमें जाता हो वैसे सीदायमान हो जाता है ॥ १८ ॥ किसी समय सहन न होवे ऐसी जठराग्निसे निर्बल होकर, अपने कुटुंबपर क्रोध करता है ॥ १९ ॥

जब निद्रारूप अजगर निगल जाता है तब वहीं मनुष्य घोर अंधकारमें बूड़कर, मानों सूने जंगलमें सोता हो ऐसा हो जाता है. और जंगलमें फेंकेहुए मुर्देकी भांति उसे दूसरी किसी बातका ज्ञान नहीं रहता ॥ २० ॥ किसीसमय दुर्जनरूप हिंसक लोग जब मानरूप दाढ़ तोड़ डालते हैं, तब क्षणमात्रभी निद्रा नहीं आती. और मनमें व्यथा होनेके हेतु ज्ञानका नाश हो जानेसे अंधेकी भांति गहरे गढ़ेमें गिरता है ॥ २१ ॥ कभी विषयरूप शहदके टपकेके समान तुच्छ विषयभोगकी तलाश करताहुआ यह मनुष्य परस्त्री और परधनकी ओर झपट करता है. तब राजा अथवा उसके स्वामी उसे मारते हैं. और परलोकमें नरकमें

स एव पुनर्निद्राऽजगरगृहीतोंऽधे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत्किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्र दुर्जनदंदशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोंऽधकूपेंऽधवत्पतति ॥ २१ ॥ कर्हि स्म चित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुंधानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥ २२ ॥ अथ च तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरंति ॥ २३ ॥ मुक्तस्ततो यदि बंधाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरंतचिंतया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥

पड़ता है ॥ २२ ॥ इसीलिये इस प्रवृत्तिमार्गमें जो कर्म है वही इसलोक और परलोकसंबंधी संसारकी जन्मभूमि कहलाती है ॥ २३ ॥ यदि कथंचित् पूर्वोक्त बंधनसे छूट जाय तोभी उसके पाससे वह पदार्थ देवदत्त यानी दूसरा मनुष्य ले लेता है. और देवदत्तके पाससे विष्णुमित्र यानी तीसरा मनुष्य ले लेता है ऐसी अव्यवस्था होती है ॥ २४ ॥ कभी सर्दी गर्मीआदि अनेक प्रकारके शारीरिक आधिदैविक और आधि भौतिक दुःखोंका निवारण करनेमें अशक्त होनेसे दुःखीहोकर, अपार चिंतामें बैठा रहता है ॥ २५ ॥ कभी परस्पर लेन देन करते थोड़ा बहुत यानी काकिणिका ( बीसकौड़ी ) मात्र अथवा उससेभी कम जो कुछ ध-

लेकर, चलते रहते हैं, इस प्रकार चलते २ जहांसे ये चलनेका प्रारंभ किए हैं उस जगह उनमेंसे कोईभी पीछा नहीं आता. और इस मार्गका पाररूप जो योग है उसे कोईभी नहीं पहुँचता ॥ १४ ॥ शूरवीर और दिग्विजय करनेवाले पुरुषभी 'यह पृथ्वी मेरी है यह मेरी है,' इस प्रकार पृथ्वीके निमित्त बैर बांधकर, युद्धमें मर जाते हैं. परंतु निर्वैरभावसे रहनेवाला संन्यासी जिस पदको प्राप्त होता है उसे कोईभी नहीं पहुँच सकता ॥ १५ ॥ इस अटवीमें लतानकी शाखाओंको देखकर, मोहित हो जाता है. और लतासंबंधी कलभाषी पक्षियोंके प्रसंगमें रहना चाहता है. कभी किसी जगह सिंहके झुंडसे त्रसित होकर, उस त्राससे निवृत्त होनेके लिये

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेंद्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे शयीरन्न तु तद्व्रजंति यन्न्यस्तदंडो गत-वैरोऽभियाति ॥ १५ ॥ प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ॥ क्वचित्कदाचि-द्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककंकगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वंचितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयन् शीलमु-पैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेंद्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥ १७ ॥ द्रुमेषु रंस्य-न्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबंधने ॥ क्वचित्प्रमादाद्गिरिकंदरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गज-भीत आस्थितः ॥ १८ ॥

किसीके बहकानसे बंगुले, कांक और गिद्धोंसे मित्रता करता है ॥ १६ ॥ जब ये बकआदि ठग लेते हैं, तब जानता है, कि इनकी संगति करनेमें तो कुछ लाभ नहीं. फिर हंसोंके यूथके साथ हो जाता है, हंसोंकी रीति भांति पसंद न-हीं आती. तब वानरोंमें जाकर, मिल जाता है, इन वानरोंके जातिसंबंधी नाच कूदके खेलसे प्रसन्न परस्पर मुख देखनेसे अप-ने जीनेकी अवधिको भूल जाता है ॥ १७ ॥ वृक्षोंमें रमण करना चाहता हुआ स्त्री व पुत्रोंसे बड़ा प्यार करता है, मैथुनके वा-स्ते दीन बनकर, विवश होनेके कारण आप बंधनमें पड़ जाता है. किसीसमय गफलतसे पर्वतकी गुँफामें पड़ जाता है. तब

१ परब्रह्म. २ सिंहावलोनकी रीति ते पीछा भवाटवीका वर्णन करते हैं. ३ स्त्रियां. ४ शाखाके जैसे सुकुमार हाथ. ५ स्त्रीसंगकी आसक्तिवाले मनुष्य. ६ कालचक्रसे होनेवाले जन्म मरणादिक. ७ बगलोंके समान ठग. ८ काकके समान क्षुद्र. ९ गिद्धके समान क्रूर पाखंडी. १० ब्राह्मण. ११ प्रायश्चित्तपूर्वक पुनः संस्कार करनाआदि ब्राह्मणोंकी रीति भांति पसंद न आनेसे वानरोंके समान आचारभ्रष्ट पुरुषोंसे जा मिलना. १२ स्त्री पुरुष. १३ घर. १४ भयंकररोगआदि दुःख.

इस गुफाके हाथीसे भयभीत होकर, एक लताको पकड़ कर, ठहेर जाता है ॥ १८ ॥ इस आपदामेंसे यदि कथंचित् छूट जाय तो पीछा उसी संघमें जा मिलता है. इस भवाटवीमें मायाने जिसे पटक दिया है वह कोईभी मनुष्य भटकताहुआ अबतक नहीं चेता ॥ १९ ॥ हे रहूगण ! तूभी इसी संघमें शामिल है. इसलिये दंडको त्यागकर, प्राणिमात्रके साथ मित्रभाव रखकर, विषयोंमेंसे आसक्ति छोड़कर, भगवान्‌की सेवासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग हाथमें लेकर, इस मार्गसे पार हो ॥ २० ॥ राजा रहूगणने कहा कि- अहो ! मनुष्यजन्म दूसरे सब जन्मोंसे अच्छा है. क्योंकि जिन जन्मोंमें भगवान्‌के यशसे चित्तको शुद्ध क-

अतः कथंचित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिंदम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमन् जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥ १९ ॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य सन्यस्तदंडः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ अहो नृजन्मा-खिलजन्म शोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥ न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥ २१ ॥ नह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२ ॥ नमो महद्भ्योस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आबटुभ्यः ॥ ये ब्राह्मणा गामवधूतलिंगाश्चरंति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ २३ ॥

रनेवाले आपजैसे महात्मालोगोंका बारंबार समागम नहीं होता उन दूसरे देवादिक जन्मोंसे स्वर्गमेंभी क्या करना है ? ॥ २१ ॥ आपके चरणारविंदकी रजका निरंतर सेवन करनेसे जिसके पाप निवृत्त हो गये हैं उसको भगवान्‌की निर्मल भक्ति प्राप्त हो जाय इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं; क्योंकि आपके केवल मुहूर्त्त मात्रभर समागमसेही मेरा अविवेक कि-जो कुतर्कसे पक्का दृढ हो गया था वह निवृत्त हुआ ॥ २२ ॥ ब्रह्मवेत्ता पहिचाननेमें नहीं आते इसलिये सबको प्रणाम करता है, कि बड़े, छोटे, जवान और बटुकपर्यंत जो हैं, उन सबको मैं नमस्कार करता हूं. जो ब्रह्मवेत्ता अवधूतके रूपसे पृथ्वीमें विचरते हैं. उनसे राजा

१ मृत्यु २ प्रारब्धकर्म ३ प्रवृत्तिमार्ग.

न दूसरोंसे ठग लेता है, उस ठगाईसे द्वेषका पात्र बनता है ॥ २६ ॥ इस संसाररूप मार्गमें ये तथा औरभी सुख, दुःख, राग, द्वेष,भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मत्सरता, ईर्षा, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा और मरणआदि अनेक उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ कभी भगवान्की मायारूप स्त्री अपने हाथरूप लतासे आलिंगन करती है तब विवेक और विज्ञान नष्ट हो जानेसे स्त्रीके साथ विहार करनेके वास्ते घरका आरंभ करनेके निमित्त व्याकुल हो जाता है. और स्त्रीके संबंधसे लगेहुए पुत्र और कन्याआदिके भाषण, दर्शन और अनेक प्र-

अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्ये र्ष्याऽवमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥ २७ ॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारंभाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचे- ष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽधे तमसि प्रहिणोति ॥ २८ ॥ कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्द्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तं- बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवंतं यज्ञ- पुरुषमनादृत्य पाखंडदेवताः कंकगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २९ ॥

कारकी चेष्टानसे मनहरण हो जानेसे अजितेंद्रिय मनुष्य अपने आत्माको अपार ओर गाढ़ अंधकारमें गिरता है ॥ २८ ॥ कभी परमेश्वरका कालचक्र कि-जो परमाणु कालसे प्रारंभ होता है. और ब्रह्माजीके दो परार्द्धसे पूरा होता है. और अवस्थाओं- के फेरफारसे ब्रह्मासे ले,घासके स्तंबपर्यंत सकल प्राणीमात्रको अपने बड़े वेगसे खैंचकर, लिये जाता है. उससे त्रास पाकर, उ- ससे बचनेके वास्ते भगवान् यज्ञपुरुष कि-जिनका यह कालचक्र शस्त्र है, उनका अनादर करके, काक, गिद्ध, वट ( बटेर ) और बक पक्षीके समान पाखंडकल्पित और आर्यशास्त्रमें जिनका नाम निशान नहीं है, ऐसे देवतानको पाखंडशास्त्रकी रीतिके अनु-

सार भजनेयोग्य मानता है ॥ २९ ॥ जिनको पहले आपने ठगा है, वे पाखंडीलोग जब आपको ठग लेते हैं. तब ब्राह्मणोंके निकट जाता है. और वहां पुनःसंस्कार और श्रौत, स्मार्त कर्म करके भगवान्का आराधन करनेरूप ब्राह्मणोंकी रीति पसंद नहीं आती; तब शूद्रलोकोंमें जा मिलता है, कि-जिन शूद्रलोकोंमें वेदोक्त आचार पालनेकी योग्यता न होनेसे बंदरकी जातिके समान केवल मैथुन और कुटुंबपोषणकाही निरंतर धंधा है ॥ ३० ॥ शूद्रलोकोंमें मिलकर, यह कृपणमति मनुष्य किसी बातका प्रतिबंध न रखकर, मनचाही क्रीड़ा करता है. और एक दूसरेका मुख देखना इत्यादि पशुधर्महीसे अपने मरणसमयको भूल

यदा पाखंडिभिरात्मवंचितैस्तैरुरुवंचितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याऽऽराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुंबभरणं यथा वानरजातेः ॥ ३० ॥ तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योऽन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन्यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुंधानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकंदरप्राये ॥ ३३ ॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरंतविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥

जाता है ॥ ३१ ॥ किसी समय वृक्षके समान इस लोकके पदार्थोंमें क्रीड़ा करनेके लिये बंदरके समान केवल मैथुनमेंही आनंद मानकर, स्त्री व पुत्र परही प्रीति रखता है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार इस संसाररूप अटवीके मार्गमें सुख दुःखादिकोंका अनुभव करताहुआ यह प्राणी पर्वतकी गुहाके समान, मृत्युरूप हाथीके भयवाले रोगादिक कष्टमें पड़ता है ॥ ३३ ॥ कभी रोगादि आपदामें पड़कर, सर्दी, हवाआदि अनेक प्रकारके शारीरक, दैविक और भौतिक दुःखोंको निवारण करनेमें अशक्त होकर, अपार विषयोंसे दुःखी होकर, बैठ रहता है ॥ ३४ ॥ कभी परस्पर व्यवहार करता २ ठगाई करके कुछ धन पैदाभी कर लेता है ॥ ३५ ॥

कभी २ धन क्षीण होजानेसे शय्या, आसन और अन्नआदि उपभोगके पदार्थ नहीं मिलते, तब वह किसी अलभ्य वांछित वस्तुका मनमें मनोरथ करता है और उसे पैदा करनेके लिये निश्चयभी करता है, तासों यह चारोंतर्फसे लोगोंके अपमानआदि-का पात्र बनता है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार एक दूसरेमें धनके लेनदेनके संबंधके हेतु वैर बढ़ जाता है. तथापि पहलेकी वासनासे परस्पर विवाह करता है. और व्यवहार छोड़भी देता है ॥ ३७ ॥ इस संसाररूप मार्गमें अनेक प्रकारके क्लेश और विघ्न बाधा करते हैं. कोई दुःखी हो जाय वा मर जाय तो दूसरा मनुष्य उसे छोड़कर, अथवा जो जन्मे उसे साथ लेकर, चला जाता है.

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्त-तस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥ ३६ ॥ एवं वित्तव्यतिषंगविवृद्धवैरानुबंधोऽपि पूर्ववासनया मि-थ उद्वहत्यथापवहति ॥३७॥ एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्त-मुहवावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन् क्रंदन्संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशंति ॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुंधते यन्न्यस्तदंडा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छंति ॥ ३९ ॥ यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किंतु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबंधायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥ कर्मवल्लीमवलंब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद्विमुक्तः पुन-रप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥ ४० ॥

शोच करता है, मोहको प्राप्त होता है, डरता है, विवाद करता है, राजी होता है, चिल्लाता है, गाता है, कमर कसता है, परंतु साधुपुरुषके सिवाय दूसरा कोईभी मनुष्य अद्यापि वहां पीछा नहीं आता, कि-जहांसे यह जीवलोकका संघ चला था. कि-जिसे मार्गका पार कहा करते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसे होनेका कारण यह है कि-इस योगसंबंधी शिक्षाका कोईभी अनुसरण नहीं करता कि-जिस शिक्षाको, सर्वप्राणीमात्रको अभय देनेवाले, शांतस्वभाव और मन वश रखनेवाले मुनिलोक अंगीकार करते हैं ॥ ३९ ॥ यदपि बड़े २ राजर्षि दिग्विजय और यज्ञ करनेवाले हुए हैं. परंतु वेभी सब युद्धमें मरकर, सोगये हैं. इस पृथ्वीमें ममता रखकर,

उन्होंने अनेक वैर बाधे थे. तथापि अंतमें पृथ्वीको छोड़ कर, वे सब चलेगये. कर्मवल्लीको पकड़कर, वह किसीतरह नरककी आपदामेंसे छूट जाय, तथापि पीछा संसारके मार्गमें रहकर, जीवलोकके सार्थमें जा मिलता है. और स्वर्गमें गया हो तोभी पीछा आकर, इसी संघमें मिल जाता है ॥ ४० ॥ इस भरतके चरित्रके श्लोक लोक इसप्रकार गाया करते हैं॥ कि- जैसे मक्खी गरुड़के मार्गका मनसेभी अनुसरण नहीं करसकती, वैसे ऋषभदेवजीके पुत्र इस महात्मा भरतके मार्गका कौन राजा मनसेभी अनुसरण कर सकता है ? ॥ ४१ ॥ जिस भरतने भगवान्‌में आसक्ति होनेके हेतु युवाअवस्थामेंही स्त्री, पुत्र संबंधी और राज्य

तस्येदमुपगायंति ॥ आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महात्मनः ॥ नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४१ ॥ यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट् सेवाऽनुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४३ ॥ यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४४ ॥

कि- जो अति मनोहर और जिनका त्याग करना अतिकठिन है ऐसे इन सब पदार्थोंका मलके समान परित्याग किया ॥ ४२ ॥ जिनका त्याग करना अतिकठिन है ऐसे पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, धन व स्त्रियोंको तथा अपनी कृपादृष्टि चाहती हुई राज्यलक्ष्मी कि- जिसकी उत्तम देवता प्रार्थना करते हैं उसकोभी जिस भरतने न चाहा और महात्मा पुरुषोंके लिये यह बात उचित है, क्योंकि भगवान्‌की सेवामें जिनका मन लगगया है वे मोक्षकोभी तुच्छ मानते हैं ॥ ४३ ॥ यज्ञमूर्ति, यज्ञादिरूप धर्मके फलके देनेवाले, धर्मका अनुष्ठान करनेवाले, अष्टांगयोगरूप[१], ज्ञानरूप फल देनेवाले, मायाके नियंता और सर्वप्राणीमात्रके अंतर्यामी, हरिको मैं प्रणाम करता हूं. इसप्रकार उदार वचनोंका उच्चारण करते २ जिस भरतने अपने मृगदेहकाभी त्याग किया, उसके बराबर दूस-

१ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि यही योगके आठ अंग हैं.

रा कौन हो सकता है ? ॥ ४४ ॥ वैष्णवलोग जिनके शुद्ध गुण कर्मोंका वर्णन करते हैं ऐसे राजर्षि भरतका चरित्र, कि–जो कल्याण करनेवाला, आयुष्य बढ़ानेवाला तथा धन, यश, स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है, उसका जो मनुष्य श्रवण करे, वर्णन करे, प्रशंसा करे, उसको सब इष्ट पदार्थ स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, उसके किसी दूसरेकी बिलकुल अपेक्षा नहीं रहती ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
आठ अध्यायोंसे भरतका चरित्र कहा गया. अब पन्द्रहवें अध्यायमें भरतवंशी राजाओंका वर्णन होगा ॥ १ ॥

य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनंदति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन न परत इति ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० म० पंच० भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखंडिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यंति ॥१॥ तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥ य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥ ४ ॥ प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–भरतके सुमति नाम पुत्र हुआ उसने सर्वत्र दिग्विजय किया था. यह सुमति ऋषभदेवजीका मार्ग ( जीवन्मुक्तके मार्ग ) का अनुसरण करता था इसलिये कलियुगमें कितनेएक अनार्य पाखंडीलोक अपनी पापभरी बुद्धिसे, यदपि वेदमें कहीं उसे देवता करके नहीं गिनाया है; तथापि देवता यानी सुमति बुद्धका अवतार था ऐसे कल्पना करेंगे ॥ १ ॥ उसके वृद्धसेना नाम स्त्रीमें देवताजित् नाम पुत्र हुआ ॥ २ ॥ फिर उसके आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम पुत्र हुआ. देवद्युम्नके धेनुमती स्त्रीमें परमेष्ठी और परमेष्ठीके सुवर्चला नाम स्त्रीमें प्रतीह नाम पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ यह प्रतीह स्वयं परमशुद्ध था. सो बहुतसे लोगोंके पास ब्रह्मविद्याका व्याख्यान करके, परब्रह्मका अपरोक्ष अनुभव करनेवाला हुआ ॥ ४ ॥ प्रतीहके सुवर्चला नाम

स्त्रीमें प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता ये तीन पुत्र हुए; जो कर्मकांडमें अतिकुशल थे. प्रतिहर्ताके स्तुति नाम स्त्रीमें अज और भूमा ये दो पुत्र हुए ॥ ५ ॥ भूमाके ऋषिकुल्या नाम स्त्रीमें उद्गीथ नाम पुत्र हुआ. उद्गीथके देवकुल्या नाम स्त्रीमें प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ. प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभुनाम पुत्र हुआ. विभुके रति नाम स्त्रीमें पृथुषेण, पृथुषेणके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त और नक्तके द्रुति नाम स्त्रीमें गय नाम पुत्र हुआ. यह गयराजा बड़ा यशस्वी और राजऋषियोंमें उत्तम था. यह राजा गय साक्षात् विष्णुभगवान् कि-जिन्होंने जगत्की रक्षा करनेकी इच्छासे सत्वगुण धारण किया है उनका अंशरूप था. और यह रा-

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलाऽऽत्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ६ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनाऽर्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभाविताति शुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ ७ ॥ तस्येमां गाथां पांडवेय पुराविद उपगायंति ॥ ८ ॥ गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ९ ॥

जा ज्ञानीपनआदि लक्षणोंसे महापुरुषताको पहुँच गया था ॥ ६ ॥ सर्वात्मा और सर्वरूप महापुरुष परब्रह्ममें अर्पण करनेसे, परमार्थरूप अपने प्रजापालन, पोषण, प्रीणन, लालन, अनुशासन, लक्षण, राजधर्मसे व यज्ञआदि गृहस्थसंबंधी धर्मसे तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके चरणोंकी सेवासे प्राप्त भयेहुये भगवान्के भक्तियोगसे, वारंवार संस्कार पानेके हेतु इस राजाकी बुद्धि अतीव शुद्ध हो गयी थी. देहाभिमानरहित उसके अंतःकरणमें यदपि साक्षात् परब्रह्मका स्वयमेव यथार्थ अनुभव हो चुका था तथापि उस राजाने निरभिमान रहकर, इस पृथ्वीका पालन किया ॥ ७ ॥ हे राजा ! इतिहासजाननेवाले प्राचीनलोग उसके चरित्रको इस प्रकार गाया करते हैं ॥ ८ ॥ कौन राजा कर्म करके गय राजाकी बराबरी कर सकता है ? भगवान्के अंशरूप गय रा-

जाके विना दूसरा कौन यज्ञ करनेवाला, सबका मानपात्र, बहुत विषयोंका जाननेवाला, धर्मका रक्षक, लक्ष्मीवान्, सभाका पति और सत्पुरुषोंका सेवक है ? ॥ ९ ॥ सत्य जिनके आशीर्वाद हैं ऐसी सती दक्षकन्याओं-( श्रद्धा मैत्री इत्यादि ) ने नदियोंके जलसे परमआनंदके साथ जिसका राज्याभिषेक किया था. यद्पि उस राजाके मनमें किसी प्रकारकी कामना नहीं थी तथापि उसके गुणरूप बछेरेके हेतु जिसका आयन टपक रहा है ऐसी पृथ्वीरूप गौ उसकी प्रजानके सर्व मनोरथ पूर्ण करती थी ॥ १० ॥ यद्पि वह राजा स्वयं निष्काम था तथापि वेद और उसके कियेहुए कर्म उसकी मनोकामना पूर्ण करते थे. युद्ध-

यमभ्यषिंचन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥ १० ॥ छंदांस्यकामस्य च यस्य कामान्दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ॥ प्रत्यंचिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥ ११ ॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १२ ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिंच्यात् ॥ प्रीयेत सद्यः सह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥ १३ ॥ गयाद्गयंत्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥ १४ ॥

के अंदर बाणोंसे सत्कार पाकर, राजालोग उसको भेंटें अर्पण करते थे. और पालनरूप धर्म व दक्षिणाआदिसे पूजा पाकर, ब्राह्मणलोग परलोकमें प्राप्त होनेवाले अपने पुण्यके फलमेंसे छठा भाग देते थे ॥ ११ ॥ बहुत सोमपानवाले उसके यज्ञमें इंद्र जो नशेमें मग्न हो गये थे. श्रद्धासे शुद्ध और अविचलभक्तिसे अर्पण कियेहुए उसके यज्ञफलको यज्ञस्वरूप भगवान्‌ने प्रत्यक्ष रीतिसे स्वीकार किया था ॥ १२ ॥ जिन भगवान्‌के प्रसन्न होनेसे यह सब जीवलोक यानी देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, लता, घासआदि ले, ब्रह्मापर्यंत सब तुर्त प्रसन्न हो जाते हैं. वे हरि गयराजापर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ गयसे गयंती नाम स्त्रीमें चि-

त्ररथ, सुगति और अवरोधन ये तीन पुत्र हुए, चित्ररथसे ऊर्णा नाम स्त्रीमें सम्राट् नाम पुत्र हुआ, ॥ १४ ॥ सम्राट्के उत्कलानाम स्त्रीमें मरीचि और मरीचिके बिंदुमती नाम स्त्रीमें बिंदुमान् पुत्र पैदा हुआ, बिंदुमान्के सरघा नाम स्त्रीमें मधुनाम पुत्र हुआ. मधुके सुमनस नाम स्त्रीमें वीरव्रत पुत्र हुआ. वीरव्रतके भोजामें मंथु और प्रमंथु ये दो पुत्र हुए, मंथुके सत्या नाम स्त्रीमें भौवन, भौवनके दूषणा नाम स्त्रीमें त्वष्टा नाम पुत्र पैदा हुआ. त्वष्टाके विरोचना नाम स्त्रीमें विरज और विरजके विषूची नाम

तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिंदुमत्यां बिंदुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुनामाऽभवन्मधोः सुमनसी वीरव्रतस्ततो भोजायां मंथुप्रमंथू जज्ञाते मंथोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥ १५ ॥ तत्रायं श्लोकः ॥ प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥ अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ उक्तस्त्वया भूमंडलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषांगणैश्चंद्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥

स्त्रिमें शतजित् आदि सौ १०० पुत्र हुए और एक कन्या हुई ॥ १५ ॥ वहां यह श्लोक है-विष्णु भगवान् जैसे अपनी कीर्तिसे देवतानको शोभित करते हैं. वैसे अंतमें उत्पन्न भयेहुए विरज राजाने इस प्रियव्रत राजाके वंशको अपनी कीर्तिसे अतिसुशोभित किया॥१६॥इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें जंबूद्वीपके नौ खंड और ऊपर नीचे, तथा चौतर्फकी स्थितिसे पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिकाके समान मेरुपर्वतकी स्थिति कही जायगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि- जितनेमें सूर्य प्रकाशते हैं. और नक्षत्रोंके मंडलसहि-

त यह चंद्रमा जहां दीख पड़ता है, उतने भूमंडलका विस्तार विशेष आप कह चुके हो ॥ १ ॥ कि–जिसमें प्रियव्रतके रथके चक्रके सात लीकोंसे सात समुद्र हुए हैं. जिन समुद्रोंपरसे इस पृथ्वीमें सात द्वीपकी रचना होनेका आपने सूचित किया था. यह सब विषय और इसका प्रमाण और लक्षण सब मैं जानना चाहता हूं ॥ २ ॥ क्योंकि पहले भगवान्‌के सगुण स्थूल स्वरूप– ( ब्रह्मांड ) में मनका प्रवेश हो जाय तो फिर निर्गुण, अतिसूक्ष्म, स्वयंप्रकाश और सर्वव्यापक परब्रह्ममेंभी उसका प्रवेश हो सकता है, इसलिये हे गुरु ! यह विषय आप

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्तसिंधव उक्ष्णा यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन्खलु सूचित एतदेवाखिलमहंमानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदुहैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगंतुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥ यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यंतरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नव वर्षाणि नव योजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवंति ॥ ६ ॥

मेरे पास वर्णन करनेको योग्य हो ॥ ३ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! भगवान्‌की मायाके गुणोंके वैभवका कोई मनुष्य मन वचनसे पार पाना चाहे सो तो देवतानकी आयुजितने कालसेभी उसका पार नहीं पासकता, इसलिये मुख्य मुख्य जो विषय हैं उसे लेकर नाम, रूप, प्रमाण और लक्षणसे इस भूगोलविशेषका वर्णन करेंगे ॥ ४ ॥ भूमंडलरूप कमलकोशके आभ्यंतरकोशके समान यह पहला जंबूद्वीप लाख योजनके विस्तारमें है. और कमलके पत्तेके समान बराबर गोल है ॥ ५ ॥ इस द्वीपमें नौ खंड हैं, इन सब नौही खंडोंका विस्तार जुदा जुदा नौ नौ हजार योजनका है. ये नौ खंड आठ मर्यादागिरिन-

से अच्छी तरह विभाग किये हुए हैं ॥ ६ ॥ इन सबके बीचोबीच इलावृत नाम खंड है, जो सबके मध्यमें है. और इस इलावृत खंडके मध्यमें कुलाचलोंका राजा सर्वसुवर्णमय मेरु नाम पर्वत है. जो लाख योजन ऊंचा है. और भूमंडलरूप कमलकी कर्णिका रूप है. यह मेरु ऊपरके भागमें बत्तीस हजार योजन और मूलभागमें सोलह हजार योजन मोटा है और सोलहहजार योजनही पृथ्वीके अंदर है ॥ ७ ॥ इलावृतके उत्तर दिशाकी ओर क्रमसे ये तीन मर्यादाचल हैं, नील, श्वेत और शृंगवान् जो

**एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यंतरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्द्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतांऽतर्भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृंगवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तरोत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसंति ॥ ८ ॥ एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥ ९ ॥ तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गंधमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥**

रम्यक, हिरण्मय और कुरु. इन तीनों खंडोंके सीमा ( मर्यादा डांड़ ) हैं, पूर्व दिशाकी तर्फ लंबे हैं. दोनों सिरे इनके क्षारसमुद्रमें पहुँचेहुए हैं, दो दो हजार योजन चौंड़े हैं. इन पर्वतोंमें पहले पहले पर्वतकी अपेक्षा पिछला पिछला पर्वत लंबाईमें दशाशसे कुछ अधिक भागमें कम है ॥ ८ ॥ इसी तरह इलावृतके दक्षिण दिशाकी तर्फ हरिवर्ष, किंपुरुष और भरतखंडके मर्यादाचल ( डांड़ेपरके पर्वत ) निषध, हेमकूट और हिमालय ये तीन पर्वत हैं. येभी पूर्वकी तर्फ लंबे हैं, लंबाई और चौड़ाईमें नीलआदि पर्वतोंके बराबर हैं, दश हजार योजन ऊंचे हैं ॥ ९ ॥ इसीतरह इलावृतके पश्चिमदिशाकी ओर माल्यवान् और पू-

१ महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ १ ॥ अर्थ– महेन्द्राचल १, मलयाचल २, सह्यगिरि ३, शुक्तिमान् पर्वत ४ ऋक्षपर्वत ५, विन्ध्याचल ६, पारियात्राचल ७ ए सात कुलपर्वत हैं ॥

र्वदिशाकी ओर गंधमादन नाम पर्वत है, ये दोनों नील और निषधपर्वततक लंबे हैं, दो दो हजार योजन चौंड़े और दश २ हजार योजन ऊंचे हैं, ये पर्वत केतुमाल भद्राश्व खंडकी सीमा बनाते हैं ॥ १० ॥ मेरुपर्वतके चारों दिशानमें मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व और कुमुद ये चार पर्वत दश दश हजार योजन विस्तारवाले और ऊंचे मेरु पर्वतको थांभनेके लिये खंभे लगाये गये हों ऐसे बनाये गये हैं ॥ ११ ॥ इन चारों पर्वतोंपर ये चार उत्तम वृक्ष हैं, पूर्वदिशामें मंदरके ऊपर तो आम, दक्षिणमें मेरुमंदरके ऊपर जांबुन, पश्चिमदिशामें सुपार्श्वके ऊपर कदंब और उत्तरदिशामें कुमुदके ऊपर बट, ये वृक्ष पर्वतोंकी ध्वजा हों वैसे

मंदरो मेरुमंदरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टंभगिरय उपक्लृप्ताः ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजंबूकदंबन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥ १२ ॥ ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयंति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवंति चत्वारि नंदनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥ येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरंति ॥ १५ ॥ मंदरोत्संग एकादशशतयोजनोत्तुंगदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतंति ॥ १६ ॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगंधिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मंदरगिरिशिखरान्निपतंती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥

ग्यारहसौ योजन उंचे और ग्यारहसौ योजनही शाखाओंके विस्तारवाले, सौ योजन मोटे हैं ॥ १२ ॥ हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! परीक्षित ! वहां दूध, शहद, ऊखका रस और मिष्ट जलके चार न्हद हैं, जिन न्हदोंका सेवन करनेवाले उपदेव लोक स्वाभाविक सिद्धियोंको धारण करते हैं ॥ १३ ॥ इन पर्वतोंपर क्रमसे नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र ये चार देवतानके उद्यान हैं ॥ १४ ॥ जिन उद्यानोंमें देवांगनाओंमें रत्नरूप उत्तम स्त्रीसमूहके स्वामी उत्तम देवतालोग क्रीड़ा करते हैं. और उपदेवगण उनकी महिमा गाया करते हैं ॥ १५ ॥ मंदर पर्वतपर ग्यारहसौ योजन ऊंचा जो देवतानका आमका वृक्ष है, उसके सिरेसे पर्वतके शिखरजितने २ बड़े और अमृतसे मधुर फल गिरा करते हैं ॥ १६ ॥ ये फल नीचे गिरनेसे फट जाते हैं. इससे उनके

अत्यंत मधुर व स्वाभाविक सुगंधिवाले और रक्तवर्ण रससे अरुणोदा नाम नदी मंदरपर्वतके शिखरसे गिरकर, पूर्वदिशाकी ओर इलावृत खंडको प्लावित करती है ॥ १७ ॥ जिसका सेवन करनेसे पार्वतीके अनुचर यक्षोंकी स्त्रियोंके अंगको छूनेवाली सुगंधित वायु चारों ओर दश दश योजन प्रदेशको सुगंधित करती है ॥ १८ ॥ इसीप्रकार अतिसूक्ष्म जिनमें गुठली है ऐसे हाथीके शरीरजैसे बड़े २ जांबुन अतिऊंचेसे गिरकर, फट जाते हैं. उनके रससे जंबू नाम नदी दश हजार योजन ऊंचे मेरुमंदर नाम पर्वतके शिखरसे पृथ्वीपर पड़कर, अपनी दक्षिणदिशाकी ओर सारे इलावृतमें फैलकर, बहती है ॥ १९ ॥ दोनों तटोंकी मिट्टी

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगंधवातो दशयोजनं समंतादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवं जंबूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जंबूनाम नदी मेरुमंदरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतंती दक्षिणेनाऽऽत्मानं यावदिलावृतमुपस्यंदयति ॥ १९ ॥ तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जांबूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥ २० ॥ यदु ह वा व विबुधादयः सहयुवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयंति ॥ २१ ॥ यस्तु महाकदंबः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पंचायामपरिणाहाः पंचमधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतंत्योऽपरेणाऽऽत्मानमिलावृतमनुमोदयंति ॥ २२ ॥ या ह्युपयुंजानानां मुखनिर्वासितो वायुः समंताच्छतयोजनमनुवासयति ॥ २३ ॥

इस रससे मिलकर, वायु और सूर्यके संयोगसे पक जाती है. उससे जांबूनद नाम सुवर्ण पैदा होता है ॥ २० ॥ जिस सुवर्णके, देवताआदि सब अपनी स्त्रियोंके साथ, मुकुट, कटक, कटिमेखलाआदि आभूषण बनाकर, धारण करते हैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्वपर्वतके ऊपर जो बड़ा कदंबका वृक्ष है, उसके कोटरोंमेंसे पांच पांच बांह मोटी पांच मकरंदकी धारा निकलती हैं. वे सुपार्श्वके शिखरपरसे गिरकर, अपने पश्चिमकी तर्फ इलावृत- ( उसमें रहनेवाले लोकों ) को आनंदित करती हैं ॥ २२ ॥ इन मधुधारनका सेवन करनेवाली स्त्रियोंके निश्वाससे सुगंधित वायु चारोंतर्फ सौ सौ योजनतक प्रदेशको सुगंधित कर देती है ॥ २३ ॥

इसीतरह कुमुद नाम पर्वतपर शतवल्श नाम वटका वृक्ष है. उसके स्कंधोंमेंसे अधोमुख होकर, दूध, दही, शहद, घृत, गुड़, अन्नआदि, वस्त्र शय्या, आसन, आभरणआदिके जो नद बहते हैं. वे सब मनोवांछित कामना पूर्ण करते कुमुदपर्वतके सिरेसे पड़कर, अपने उत्तरकी तर्फ इलावृतमें बहते हैं ॥ २४ ॥ उन ह्रदोंका जो प्रजा सेवन करती हैं उनके कदापि धौले बाल, बली (शरीरमें सल पड़ जाते हैं वे) खेद, पसीना, दुर्गंधता, जरा, रोग, मृत्यु, सर्दी, गर्मी, विवर्णता और विघ्नआदि कोईभी संताप नहीं होता. जीवनपर्यंत सर्वोत्तम सुख बना रहता है ॥ २५ ॥ कुरंग १, कुरर २, कुसुंभ ३, वैकंक ४, त्रिकूट ५, शिशिर ६,

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शोनाम वटस्तस्य स्कंधेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतंतस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयंति ॥ २४ ॥ यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गंध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवंति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरंगकुररकुसुंभवैकंकत्रिकूटशिशिरपंतगरुचकनिषधशिनीवासकपिलशंखवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालंजरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥ २६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुंगौ भवत एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृंगमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति कांचनगिरिः ॥ २७ ॥

पतंग ७, रुचक ८, निषध ९, शिनी १०, वास ११, कपिल १२, शंख १३, वैदूर्य १४, जारुधि १५, हंस १६, ऋषभ १७, नाग १८, कालंजर १९ व नारद २० आदि बीस पर्वत कर्णिकाके केसरोंके समान मेरुपर्वतके मूलभागमें चारों ओर बनाये गये हैं ॥ २६ ॥ मेरुपर्वतके पूर्वदिशाकी तर्फ जठर और देवकूट नाम दो पर्वत हैं. वे अठारह सहस्र योजन उत्तरकी तर्फ लंबे और दो दो हजार चौड़े व ऊंचे हैं. इसीतरह मेरुके पश्चिमदिशाकी तर्फ पवन और पारियात्र नाम दो पर्वत हैं, जो दक्षिणकी ओर लंबे हैं. दक्षिणकी तर्फ कैलास और करवीर नाम दो पर्वत हैं. वे पूर्वकी ओर लंबे हैं. वैसेही उत्तरकी तर्फ त्रिशृंग और

मकर नाम दो पर्वत हैं. वे पश्चिमकी ओर लंबे है. इन आठ पर्वतोंसे घिराहुआ सुवर्णमय मेरुपर्वत अग्निके समान चारों दिशानमें प्रकाशता है ॥ २७ ॥ मेरुके मध्यभागमें सबसे ऊपर भगवान् ब्रह्माजीकी पुरी है. जो दशसहस्र योजन बड़ी, सम चतुरस्र व सुवर्णमय है. ऐसे कहते हैं ॥ २८ ॥ इस ब्रह्माजीकी पुरीके पास पासही उसके चौतर्फ आंठों लोकपालोंकी पुरियां हैं. जो अपनी २ दिशामें रूपके अनुसार ब्रह्माजीकी पुरीसे प्रमाणमें चौथे भाग यानी ढाई हजार योजनकी हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते

मेरोर्मूर्द्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौंभीं वदंति ॥ २८ ॥ तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वांडकटाहविवरेणांतःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपंकजावनेजनारुणकिंजल्कोपरंजिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥

महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें चारों दिशाओंमें गंगाजीका गमन और इलावृतखंडमें महादेवजीकृत संकर्षणका सेवन यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–साक्षात् वामन भगवान्ने बलिराजाके यज्ञमें बड़ा स्वरूप धरकर, अपने दाहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर, बायां चरण ऊंचा किया. तब उस चरणके अंगूठेके नखसे ब्रह्मांडका ऊपरका भाग फट गया. उससे उस छिद्रमें बाहरके आवरणके जलकी धा-

१ मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गनाऽपरा ॥ १ ॥ श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ॥ यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥ २ ॥ अर्थ– जैसे कि–ब्रह्माकी मनोवती इन्द्रकी अमरावती २ अग्निकी तेजोवती ३ यमराजकी संयमनी ४ निऋतिकी कृष्णाङ्गना ५ वरुणकी श्रद्धावती ६ मरुत्की गन्धवती ७ कुबेरकी महोदया ८ ईशकी यशोवती ९. ये नव परी सुमेरु पर्वतमें हैं ॥ १ ॥ २ ॥

रा, जो भीतर आयी थी आयी, जिस धारासे भगवान्‌का चरण धुलनेके हेतु चरणसंबंधी अरुण केसरसे वह धारा रंजित हो गयी थी. उसीसे उस धाराका स्पर्श सर्व जगत्‌के पापरूप मलका नाशकरनेवाला था. और स्वयं मलके संबंधसे बिलकुल रहित थी. प्रथम तो यह साक्षात् भगवत्पदी इस साधारण नामसे कहनेमें आती थी, परंतु फिर पीछे जुदे २ प्रसंगोंसे जान्हवी, भागीरथी इत्यादि नामसे प्रसिद्ध हुई वह धारा हजार युगपर्यंतके बहुत बड़े कालसे स्वर्गका मस्तक कि-जिसे विष्णुपद कहते हैं उसपर उतरी ॥ १ ॥ जहां रहनेवाले महावैष्णव और दृढ़संकल्प ध्रुवजी उस गंगाको अपने कुलदैवत हरि भगवान्‌के चरणारविंदका जल जानकर, अद्यापि बड़े आदरसे अपने सिरपर धारण करते हैं. क्षणक्षणमें वर्द्धमान भगवद्भक्तिके

यत्र ह वा व वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविंदोदकमिति यामसनुवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानांतर्हृदय औत्कंठ्यविवशा मीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥ ततः सप्तऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यंतिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहंति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरंतींदुमंडलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥

प्रतापसे ध्रुवजीका अंतर्हृदय अतीव द्रवीभूत होता जाता है और उत्कंठासे उत्पन्न भयी परवशताके हेतु उनके नेत्रयुगलकमल मूंदि जाते हैं तब उनमेंसे निर्मल अश्रुबिंदु पड़ते हैं और उनके साथ उसके रोम खड़े होते हैं ॥ २ ॥ ध्रुवजीके अनंतर उनके नीचे रहनेवाले सप्तर्षि कि-जो गंगाजीके प्रभावको जानते हैं और सर्वके आत्मारूप भगवान्‌की एकांत भक्तिरूप लाभ प्राप्त होनेसे अन्य सर्व पुरुषार्थोंका तथा आत्मज्ञानकाभी अनादर करते हैं. वे, 'जो यह गंगा मिली, यही अपने तपका परमफल मिल चुका' ऐसे विचार कर, मुमुक्षुपुरुष जैसे प्रत्यक्ष आयीहुई मुक्तिको धारण करे, वैसे बड़े आदरके साथ अपनी जटाजूटोंसे अद्यापि धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस सप्तर्षियोंके स्थानसे नीचे अनेक हजारों बल्कि करोड़ों विमानोंका समूह फिरनेसे जिसमें भीड़

आड़ हो रही है ऐसे आकाशपथमें होकर, उतरतीहुई गंगा चंद्रमंडलको प्लावित करके ब्रह्मलोकमें गिरतीं हैं ॥ ४ ॥ वहां चार प्रकारसे विभक्त होकर, चार नामोंसे चारों दिशानमें बहती आखिर नद व नदियोंके पति समुद्रमें जा मिलती है. सीता, अलकनंदा, चक्षु व भद्रा ये चारों धाराओंके नाम हैं ॥ ५ ॥ सीता, तो ब्रह्मलोकसे केसराचलआदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे २ उतरती गंधमादन पर्वतके शिखरोंपर पड़, भद्राश्व खंडके बीचमें बहकर, पूर्वदिशामें क्षारसमुद्रमें मिल जाती है ॥ ६ ॥ इसी तरह चक्षुनाम धारा माल्यवान्‌के शिखरसे पड़कर, निरंतर बहतीहुई केतुमालखंडमें होती, पश्चिमदिशामें समुद्रमें जा मिलती

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पंदंती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनंदा चक्षुर्भद्रेति॥ ५॥ सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवंती गंधमादनमूर्द्धसु पतित्वांऽतरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥ एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतंती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभिचक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥ ७ ॥ भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृंगवतः शृंगादवस्पंदमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ८ ॥ तथैवालकनंदा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयंती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ९ ॥ यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदेपदेऽश्वमेधराजसूयादीना फलं न दुर्लभमिति अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे संति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥ १० ॥

है ॥ ७ ॥ भद्रानाम धारा मेरुपर्वतके उत्तरकी तर्फ मेरुशिखरसे कुमुद पर्वतपर पड़ती है और वहांसे नीलपर्वतपर और नीलसे श्वेतशिखरपर और श्वेतशिखरसे शृंगवान् पर्वतपर पड़ती है. और वहांसे उतरकर, उत्तरकुरुमें होती उत्तरदिशामें समुद्रमें जा-मिलती हैं ॥ ८ ॥ वैसेही अलकनंदानाम धारा दक्षिणकी तर्फ ब्रह्मलोकसे गिरती बहुतसे पर्वतोंके शिखरोंको उल्लंघन कर, हिमकूट पर्वतके शिखरोंको अतिप्रबल वेगके प्रतापसे छुड़काती हिमकूटसे भरतखंडमें होती दक्षिणदिशामें समुद्रमें प्रवेश करती है ॥ ९ ॥ इस गंगामें स्नान करनेके वास्ते जो मनुष्य जाता है, उसको एक एक पैगमें अश्वमेध और

राजसूयआदि यज्ञोंका फल मिलना कुछ दुर्लभ नहीं है. औरभी मेरुआदि पर्वतोंसे निकलीहुई सैकड़ों नदियां और नद खंडखंडमें अनेक हैं ॥ १० ॥ तहांभी कर्मभूमि तो यह भरतखंडही है, क्योंकि बाकीके जो आठ खंड हैं, वे तो स्वर्गीय जीवोंके अवशेष रहेहुए पुण्यका उपभोग करनेके लिये दिव्य भौम और बिलरूप त्रिविध स्वर्गमेंसे पृथ्वीसंबंधी स्वर्गके स्थान कहलाते हैं ॥ ११ ॥ इन खंडोंमें जो पुरुष रहते हैं. उनकी दशसहस्र वर्षकी तो उमर है, देवतासा उनका स्वरूप है, दश सहस्र हाथियोंके बराबर पराक्रम है. वज्रसा कड़ा शरीर है. बल, अवस्था और आनंदके साथ आनंद-

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशंति ॥ ११ ॥ एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणा देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥ १२ ॥ यत्र ह देवपतयः स्वैःस्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रिया नम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुंभमानरुचिरकाननामाश्रयतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारंडवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुंदरीणां कामकलिलविलासहासलीलाऽवलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरंति ॥ १३ ॥

युक्त मिथुन यानी स्त्रीपुरुष महामैथुन करते रहते हैं, मैथुनके अंतमें आयुका एक वर्ष शेष रहे तब स्त्रियोंके एक गर्भ रह जाता है; इन खंडोंमें त्रेतायुगके समान समय वर्तमान है ॥ १२ ॥ अपने २ मुख्य सेवकोंसे सुसेवित बड़े २ देवतालोग आश्रमोंमें, पर्वतोंकी गुफाओंमें और निर्मल जलाशयोंमें जलक्रीड़ाआदि विचित्र क्रीड़ानसे अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं. वहां सर्वऋतुनमें पुष्प, गुच्छक, फल व कोंपल इनकी समृद्धिसे अतीव झुकीहुई शाखा और लतावाले वृक्षोंसे शोभायमान वनवाले आश्रमोंकी छबि छा रही है, विकसित और अनेक नवीन कमलोंकी सुगंधिसे आनंदित राजहंस, जलमुर्गा, कारंडव, सारस और

चकवाआदि अनेक प्रकारके पक्षी तथा अनेक प्रकारके भ्रमरसमुदाय जलाशयोंमें शब्द करते हैं. अतिसुंदर सुरसुंदरियोंका कामदेवसे क्षुभित विलास, हास और लीलापूर्वक देखना इनसे वहां विहार करनेवाले देवलोगोंके मन और नयनका आकर्षण हो रहा है ॥ १३ ॥ नौही खंडोंमें महापुरुष भगवान् नारायण अपने भक्तोंपर कृपा करनेके वास्ते अपनी मूर्तियोंके व्यूहसे अद्यापि सन्निहित विराजते हैं ॥ १४ ॥ इलावृतखंडमें तो साक्षात् महादेव एकही पुरुष हैं, दूसरा कोईभी पुरुष इसमें नहीं जाता. जो पुरुष इस खंडमें जाता है वह पार्वतीके श्रापके कारण स्त्रीरूप हो जाता है, इसका कारण पीछे कहेंगे ॥ १५ ॥ इस इला-

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाऽद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥ इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः संकर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानंतायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥ भजे भजन्यारणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥

वृतखंडमें पार्वतीकी दासियां हजारों अर्बुद स्त्रियां महादेवकी सेवा करतीं हैं. और आप महादेव शेष भगवान्की भक्ति करते हैं. वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस नामकी चार मूर्तिवाले महापुरुष भगवान्की संकर्षण नामक चौथीतमोगुणमूर्ति कि-जिसमेंसे स्वयं आप पैदा हुए हैं, उनका मनमें ध्यान करनेसे प्राप्त हुए स्वरूपको समीपमें स्थापित करके भगवान् महादेवजी इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते आराधन करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि–महापुरुष, सर्वगुणोंके प्रकाशक, अनंत व अप्रमेय भगवान् आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ हे भजनेयोग्य परमेश्वर ! सर्वप्रकारके ऐश्वर्यके परम आश्रयरूप अपने अत्यंत दयालु स्वरूपका भक्तोंको दर्शन देनेवाले, संसार ( जन्ममरण ) को हरनेवाले, अभक्तोंको संसार देनेवाले और जिनका

चरणारविंद शरणरूप है ऐसे आपको मैं भजता हूं ॥ १८ ॥ जगत्को नियममें रखनेके वास्ते आप सदा देखा करते हो, तथापि आपकी दृष्टि, जैसे क्रोधका बेग जीतनेको असमर्थ हमलोगोंकी दृष्टि, लुप्त हो जाती है ऐसे विषयोंसे और इंद्रियोंसे किंचित्मात्रभी लुप्त नहीं होती, अतएव जो अपनी इंद्रियोंको जीतना चाहता है अर्थात् मुक्ति पाना चाहता है; वह कौन पुरुष आपको न भजे ? ॥ १९ ॥ असत् दृष्टिवाले पुरुषको, आप मदमत्तके समान भयंकर और मदिरा व आसवसे अरुणनेत्र हों ऐसे मायासे प्रतीत होते हो; क्योंकि आपके चरणस्पर्शसे कामातुर भयींहुई नागवधू लज्जाके मारे परिपूर्ण पूजनभी नहीं कर सकतीं ॥ २० ॥

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥ २० ॥ यमाहुरस्या स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमंडलं मूर्द्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैंद्रियं सृजे ॥ २२ ॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुंता इव सूत्रयंत्रिताः ॥ महानहं वैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥ २३ ॥

वेदके मंत्र आपको इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहार करनेवाले, अनंत और उत्पत्ति, स्थिति प्रलयसे रहित कहते हैं. आपके हजार मस्तकोंमेंसे किसी एक मस्तकपर यह भूमंडल सरसोंके दानेकी तुल्य रहा है, कि- जिसकी आपको खबरभी नहीं है ॥ २१ ॥ महत्तत्त्व कि- जिसका आश्रय सत्वगुण है. वह आपका, गुणके संबंधके हेतु उत्पन्न भयाहुआ, प्रथम शरीर है. इस देहमेंसे ब्रह्माजी प्रगट भये हैं. और ब्रह्माजीसे उत्पन्न भयाहुआ मैं त्रिगुणात्मक अहंकारसे देवता, पंच महाभूत और इंद्रियोंके वर्गको प्रगट करता हूं ॥ २२ ॥ ये हम सब महत्तत्त्व, अहंकार, देवता, पंचमहाभूत और इंद्रियां जैसे पक्षी डोरीसे बंधकर, परवश रहते हैं. ऐसे बंधकर, आप कि- जो महात्मा हो, उनके वशमें रहकर, आपके अनुग्रहसे इस जगत्को रचते हैं ॥ २३ ॥

संसारमें मोहित भयाहुआ यह जन जिनकी बनायी हुई और कर्मरूप ग्रंथियोंसे बांधनेवाली मायाको सहज जानजाता है. परंतु उसे तिरनेके उपायको कदापि नहीं जानता. उन अपने स्वरूपमेंसे जगत्का लय और सृष्टि करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः॥ १७ ॥ अठारहवें अध्यायमें मेरुसे पूर्वदिशाके क्रमसे तीन खंडोंमें और तीन उत्तर तरफके खंडोंमें इष्टदेव और उनके दासोंका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसीतरह भद्राश्वखंडमें धर्मका पुत्र भद्रश्रवा है उसके कुलके प्रधानलोक तथा उसके

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानीं परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणंत उपधावंति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्मसेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥ ३ ॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यंति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथाऽपि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥

सेवक साक्षात् वासुदेव भगवान्की प्यारी धर्ममयी हयग्रीव नाम मूर्तिको परम एकाग्रतासे हृदयमें स्थापित करके, इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ भद्रश्रवा बोले कि–अंतःकरणको शुद्ध करनेवाले धर्ममूर्ति भगवान् आपको बारंबार हमारा प्रणाम है ॥ २ ॥ अहो! भगवान्की लीला बड़ी विचित्र है कि–यह लोक मारतेहुए- ( काल ) को देखता हुआभी नहीं देखता, क्योंकि यह तुच्छ विषयसुखका सेवन करनेके लिये पापकाही निरंतर विचार करता बालक या वृद्ध जो मर जाता है उसका दाह करके उसके धनसे जीनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥ विद्वान् लोग तो शास्त्रसे इस जगत्को नाशवान् कहते हैं. और योगीजन समाधिमें इसको साक्षात् नाशवान् देखते हैं, तथापि हे अज! ये लोक आपकी मायासे मोहित हो जाते हैं; यह

कृत्य आपका बड़ा विचित्र है. इसीलिये शास्त्रादि श्रमको छोड़ कर, अजन्मा आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥
आप अकर्ता और आवरणरहित होनेपरभी जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयका कार्य करते हो. इसप्रकार वेदने जो स्वीकार किया है. वह कोई ऐश्वर्यात्मक नहीं है; क्योंकि मायाको धारण करके सर्वस्वरूप और सर्वकार्यके कर्ता आपमें सृष्टि-कर्तृत्व संभव सकता है ॥ ५ ॥ और वस्तुतः उपाधिरहित आपमें अकर्तृत्व और आवरणरहितत्वभी संभव सकता है. प्रलय-कालमें तमरूप दैत्य वेदोंको चुराकर, ले गया, तब हयग्रीवमूर्ति धारण करके, प्रार्थना करतेहुए ब्रह्माजीको जिन्होंने पीछे वेद

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्म-नि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥ वेदान्युगांते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्र-त्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथे हिताय इति ॥ ६ ॥ हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरि-रूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दै-त्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्रादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चो-दाहरति ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्मा-शयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥ ८ ॥

दिये उन सत्यसंकल्प आपको मेरा प्रणाम है ॥ ६ ॥ हरिवर्षखंडमें भगवान् नृसिंहरूप धारण करके विराजते हैं. इस स्वरूपके धारण करनेका कारण आगे ( सप्तमस्कंधमें ) कहूं गा. महापुरुषोंके गुणोंका पात्र, परमवैष्णव और दैत्य व दानवोंके कुलको पवित्र करनेवाले शील व आचरणवाले, प्रल्हादजी उस खंडके लोकोंके साथ एकाग्र अनन्यभक्तिसे उस प्यारे स्वरूपकी उपासना करते हैं. और इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ ७ ॥ प्रल्हादजी बोले कि–तेजकेभी तेजरूप नृसिंह भगवानको नमस्कार करता हूं. हे वज्रसे नखवाले ! हे वज्रसी दाढोंवाले ! प्रगट होओ २ कर्मोंकी बासनाको भस्म करो २ अज्ञानका नाश करो. अंतः-

करणमें अभयरूप होओ २ ॐस्वाहा ॐक्ष्रौं. ॥ ८ ॥ जगत्का कल्याण होवे. दुष्ट मनुष्य प्रसन्न रहें सब प्राणीमात्र अपनी बुद्धिसे परस्पर कल्याणका विचार करें और मनसे उपशमआदिका सेवन करें. और हमारी व सब लोगोंकी बुद्धि निष्काम होकर, अधोक्षज भगवान्में लग जावे ॥ ९ ॥ हमारे कहींभी संग न होवे. यदि होवे तो भगवद्भक्तोंके साथ होवे. परंतु स्त्री, पुत्र, घर, धन और बंधुजनोंमें न होवे. क्योंकि अहारमात्रसे संतोष रखनेवाला जो ज्ञानी है, वह जैसा तुर्त सिद्ध हो जाता है, ऐसा इंद्रियोंको प्रसन्न रखनेवाला कदापि नहीं ॥ १० ॥ गंगाप्रभृति तीर्थ तो केवल वारंवार स्नान करनेवाले पुरुषोंके शरीरके मलको

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायंतु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोऽक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥ माऽगारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेंद्रियप्रियः ॥ १० ॥ यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽतः श्रुतिभिर्गतोंऽगजं को वै न सेवेत मुकुंदविक्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ॥ १३ ॥

दूर करते हैं, परंतु भगवद्भक्तोंके संगसे प्राप्त भगवत्कथारूप तीर्थ कि-जिसमें भगवान्के असाधारण प्रभावका अतिशय है, उसका सेवन करनेवाले पुरुषोंके मनमें श्रवणद्वारा प्राप्त भयेहुए भगवान् मनके मलको नाश करते हैं. तासों ऐसे भक्तलोगोंकी सेवा कौन न करे ? ॥ ११ ॥ जिसकी भगवान्में निष्कामभक्ति है; उसमें धर्म, ज्ञानआदि सर्वगुणोंके साथ देवता रहते हैं. और जो भगवद्भक्त नहीं वह मनोरथ बांधकर, विषयोंकी ओर दौड़ता है, उसके धर्म ज्ञानआदि बड़े २ गुण कहां ? ॥ १२ ॥ जैसे मछलियोंके जलही प्यारा आत्मा है, ऐसे साक्षात् भगवान् प्राणीमात्रके प्यारे आत्मा हैं. तासों भगवान्को त्यागकर, यदि महा-

प्रसिद्ध पुरुषभी घरमें आसक्त हो जाय; तो उसका बड़पन स्त्रीपुरुषोंका बड़पन जैसे केवल अवस्थामात्रसे गिना जाता है वैसाही है ॥ १३ ॥ इसलिये तृष्णा, राग अभिनिवेश यानी यह कार्य अवश्य करना होगा ऐसा आग्रह विषाद (दुःख), मन्यु (क्रोध) मान, चाह, भय, दीनता और आधि-(मनोव्यथा) का मूल घर कि-जिसके हेतु जन्ममरण सदा हुआ करते हैं, उसको त्याग कर भयरहित नृसिंह भगवान्के चरणारविंदका भजन करो ॥ १४ ॥ केतुमालखंडमेंभी लक्ष्मी तथा संवत्सरकी कन्या (रात्रिके अभिमानी देवता) और पुत्रों-(दिनके अभिमानी) को प्रसन्न करनेकी इच्छासे भगवान्, कामदेवके स्वरूपसे विराजते हैं. ये प्रजापतिके पुत्र उस खंडके स्वामी हैं. सौ वर्षके अहोरात्रकी जितनी संख्या है उतनीही संख्या इन प्रजापतिके पुत्र और

तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ताव्यसवः संवत्सरांते विनिपतंति ॥ १५ ॥ अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तंभितसुंदरभ्रूमंडलसुभगवदनारविंदश्रिया रमां रमयन्निंद्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ १७ ॥

कन्याओंकी है. अर्थात् छत्तीस ३६००० सहस्र है. भगवान्के चक्रके तेजसे उद्वेग पातीहुई इन प्रजापतिकी कन्याओंके गर्भ वर्षके अंतमें चक्रसे हत होकर, प्राणरहित हो जाते हैं. तासों इस खंडमें लोकोंकी संख्या बढ़ने नहीं पाती ॥ १५ ॥ अतिसुंदर गति और विलाससे शोभायमान मनोहर मंदहास्यसहित अवलोकन (देखने) की लीलाके हेतु कछुक ऊंची कीहुई सुंदर भौंहके मंडलसे वृद्धिंगत (बढ़ीहुई) मुखारविंदकी शोभासे कामदेव भगवान् लक्ष्मीको रमण कराते अपनी इंद्रियोंको तृप्त करते हैं ॥ १६ ॥ लक्ष्मी देवी आप संवत्सरकी रात्रियोंमें प्रजापतिकी कन्याओंके साथ और दिनोंमें उनके पतियोंके साथ चित्तकी अतीव एकाग्र वृत्तिसे भगवान्के मायामय इस कामदेवरूपकी उपासना करतीं हैं. और यह वक्ष्यमाण मंत्र जपतीं हैं ॥ १७ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ इंद्रियोंके अधिपति, सकलश्रेष्ठ वस्तुनसे जिनका स्वरूप जाना जाता है ऐसे, ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय संकल्प व अध्यवसायआदिके तथा उनके विषयोंके अधिपति, ग्यारह इंद्रिय और पांच तन्मात्रा इन सोलह अंशवाले, वेदोक्त कर्मसे प्राप्तहोने-के योग्य, अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय, सह ओज और बलके हेतु, कांत, कामदेवमूर्ति आपको इसलोकमें तथा परलोकमें मेरा प्रणाम होवे ॥ १८ ॥ आप कि- जो स्वयमेव इंद्रियोंके स्वामी हो उनका व्रतसे आराधन करके लोकमें जो स्त्रियां आपके सिवाय दूसरा पति चाहती हैं, उन स्त्रियोंके संतान, प्रियवस्तु, द्रव्य और आयुको वे दूसरे पति नहीं बचा सकते; क्योंकि वे

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमोभगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छंदोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कांताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपांत्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतंत्राः ॥ १९ ॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समंततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधिमन्यते परम् ॥ २० ॥ यातस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साऽखिलकामलंपटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन्प्रतप्यते ॥ २१ ॥

तो आप परतंत्र हैं १९ ॥ पति तो ऐसाही करना चाहिये कि-जो चारों ओरसे भयातुर जनकी रक्षा करै और आप किसीसे डरता न होवे. ऐसे पति तो एक आपही हो; क्योंकि आप अपने स्वरूपके लाभकी अपेक्षा दूसरे किसीको अधिक नहीं मानते. जिसे दूसरेसे सुख मिलता हो वह स्वतंत्र नहीं कहलाता. और परतंत्र लोकोंके परस्पर भय उत्पन्न हुए विना नहीं रहता ॥२०॥ हे भगवन् ! जो स्त्री केवल आपके चरणारविंदकी पूजाकीही इच्छा करती है परंतु और दूसरा फल नहीं चाहती उसे सबसे अधिक कामनावाली समझनी चाहिये. अर्थात् जो आपका निष्काम होकर, आराधन करती है उसे सर्वकामना प्राप्त हो जातीं हैं और जो कामनाके साथ आराधन करती है, उसे जो वह मांगती है वही तो फल मिलता है परंतु उससे अधिक नहीं मिल-

ता. अतएव जो किसी फलकी इच्छासे आपकी पूजा करती है तो उसे जितना उसने अपने मनमें विचारा हो उतनाही फल देते हो, कि-जिस फलको भोगनेके अनंतर नाश होनेपर उस स्त्रीको पीछा दुःख भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ हे अजित! जिनका मन केवल विषयसुखमें लगाहुआ है ऐसे ब्रह्माजी, महादेव, सुर ( देवता ) और असुर ( राक्षस ) आदि सब मेरी प्राप्तिके वास्ते उग्रतप करते हैं परंतु आपके चरणारविंदके शरणविना वे मुझे नहीं पा सकते, क्योंकि मेरा हृदय आपमें लगा हुआ है ॥२२॥सत्पुरुषोंसे स्तुति कियाजाता आपका हस्तकमल कि- जिसे आप भक्तलोकोंके शिरपर धरते हो वह मेरे शिरपरभी धरो .हे वरेण्य !

मत्प्राप्तयेऽजेश सुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐंद्रिये धियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विंदंत्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥ स त्वं ममाप्यच्युतशीर्ष्णि वंदितं करांबुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥ २३ ॥ रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐनमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥ अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥

मुझे आप चिन्हरूपसे अपने श्रीअंगमें धारण करते हो तासों यदपि मेरे विषे आपका अनादर नहीं है, तथापि भक्तलोकोंकी अपेक्षा मेरेऊपर आपकी कृपा कमप्रतीत होती है. परंतु उसका यथार्थ कारण कैसे जाना जाय ? आप जो ईश्वर हो उनके मायासे ईहित ( चेष्टित ) कृत्य ( कार्य ) को कौन तर्क करके जान सकता है ?॥२३॥ रम्यक खंडमें भगवान् अपने अतिप्रिय मत्स्यावतारके रूपसे विराजते हैं. जो स्वरूप उस खंडके मुख्य पुरुष मनुको पूर्व दिखाया गया था. यह मनु अबतक बड़ी भावभक्तिसे इस स्वरूपका आराधन करते हैं और वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ २४ ॥ सर्वमुख्य, सत्वगुणप्रधान, प्राणरूप और शरीर, मन व इंद्रियोंके बलरूप महामत्स्यमूर्ति भगवान् आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ वेदरूप नादवाले तथा सकल लोकपाल जिनके स्वरूपको नहीं देखते ऐसे आप भीतर और बाहिर सर्वत्र व्याप्त हो, जैसे मनुष्य काठकी पुतलीको अपने आधीन रखता है ऐसे विधिनिषेध

रूप वाक्योंसे सकल जगत्को जो अपने वशमें रखता है, वे ईश्वर आप हो ॥ २६ ॥ मत्सर ( परसंताप ) रूप ज्वरके कारण आपको त्याग कर, लोकपाल देवतानने जुदा रहकर और फिर शामिल होकरभी, जगत्की रक्षाका यत्न किया था, परंतु दो पैरवाले ( मनुष्यादि ) चौपाये ( पशुआदि ) और पेटसे चलनेवाले ( सर्पादि ) व स्थावर ( पर्वतादि ) जो कुछ इस जगत्‌में दीख पड़ता है, उसमेंके एककीभी रक्षा नहीं कर सके. अर्थात् प्राणरूपसे सबके पालक और ईश्वर आपही हो ॥ २७ ॥ बड़ी २ तरंगें जिसमें उठ रही हैं ऐसे प्रलयकालके समुद्रमें औषधि और लताओंकी निधिरूप इस पृथ्वीको तथा इसके साथ

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥ भवान्युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरुक्रमतेजओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तात्प्रियतमां तनुमर्यमासह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मंत्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥ ॐनमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥

मुझकोभी धारण करके जो आप बड़े जोरसे बहुत विचरे थे. उन सर्वजगत्के प्राणके नियंता, अजन्मा आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ हिरण्मय खंडमेंभी कच्छपमूर्ति धारण करके भगवान् विराजते हैं. भगवान्‌की इस प्यारी मूर्तिको पितृगणके अधिपति अर्यमा उस खंडके पुरुषोंके साथ भजते हैं. और वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ २९ ॥ जिनका स्थान जाननेमें नहीं आता ऐसे सत्वगुणवाले, कच्छपमूर्ति आपको प्रणाम करता हूं. कालसे जिनका परिच्छेद नहीं होता ऐसे सर्वगत यानी सबमें व्याप्त व सर्वके आधारभूत आपको मैं बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ आपकी मायासे प्रकाशित और अनेक रूपोंसे निरूपण किया जाता यह पृथ्वीआदि सकल दृश्य यानी देखनेके योग्य पदार्थ आपकाही स्वरूप है. आपसे भिन्न नहीं है. तथा मिथ्या

होनेपर भी दीखनेके कारण मृगतृष्णाके जलके समान इसकी कथमपि ( कैसेभी ) संख्या नहीं हो सकती अतएव अनिर्वचनीय यह जगत, जिनका स्वरूप है ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जरायुज, स्वेदज, अंडज और उद्भिज व स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितृ, भूत, इंद्रियोंकी सृष्टि, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदियां, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र, ऐसे ऐसे नामों-के वाच्य ( बांचने योग्य ) एक आपही हो ॥ ३२ ॥ जिसमें असंख्यात भेदवाले नाम रूप व जातियां हैं ऐसे आपके स्वरूपमें

जरायुजं स्वेदजमंडजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय त इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान्यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सहकुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्त्तयति ॥ ३४ ॥ ॐनमो भगवते मंत्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नंति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥

कपिलआदिकी कल्पना कीहुई चौबीस तत्त्वआदिकी संख्या जिस तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है उस तत्वज्ञानरूप आपको नमस्कार करता हूं ॥ ३३ ॥ उत्तर कुरुखंडमें यज्ञपुरुष भगवान् वराहरूप धारण करके, विराजते हैं. उन वराहरूप भगवान्को यह पृथ्वी देवी वहांके लोकोंके साथ अखंड भक्तिसे भजती है. और इन परमसिद्धांत वाक्योंका उच्चारण करती है ॥ ३४ ॥ मंत्रोंसे यथार्थ जाने जाते, यज्ञ और क्रतुमूर्ति, महायज्ञरूप अवयववाले, यज्ञका अनुष्ठान करनहारे, तीन युगोंमें प्रगट होनेवाले, महापुरुष भगवान् आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३५ ॥ कर्म और कर्मोंके फलोंसे प्रकाशमान आपके स्वरूपको देखनेकी इच्छा करते

---

१ जिसका निरूपण नहीं किया जासक्ता. २ जो खोलमेंसे पैदा होता है वह मनुष्यआदि. ३ पसीनेसे पैदा होनेवाला जुंवा लीखआदि. ४ अंडेसे पैदा होनेवाला कबूतरआदि. ५ पृथ्वी फोड़कर निकलनेवाला घासपातआदि.

विचक्षण विद्वान्लोग मंथनरूप साधनद्वारा काठमेंसे अग्निके समान विवेकके साधनरूप मनद्वारा देह और इंद्रियआदि कार्य पदार्थोंमेंसे ढूंढ़ते हैं और इस प्रकार ढूंढ़ते जो आप अपने स्वरूपको प्रगट करते हो, उन्हें मैं प्रणाम करती हूं ॥ ३६ ॥ विषय, इंद्रियव्यापार, इंद्रियोंके देवता, देह, काल और अहंकार, इतनेमें मायाके कार्योंपरसे जिनका यथार्थस्वरूप देखनेमें आता है और विचार तथा यमनियमादिक साधनोंसे निश्चित बुद्धिवाले लोक जिनके स्वरूपमेंसे मायाके संबंधके हेतु भयीहुई आकृतिको निकाल देते हैं, उन आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ३७ ॥ आपके वास्ते नहीं परंतु जीवोंके उपभोगके वास्ते आपके इच्छेहुए जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय माया अपने गुणोंसे करती है. यद्यपि माया स्वयं जड़ है तथापि जैसे चुंबकके सामीप्यसे

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांऽगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भुवनकोशवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवंतमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताऽभिरामं रामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥

लोह स्वयमेव फिराकरता है. वैसे आपके सामीप्यसे यह सकलक्रिया माया किया करती है. अतएव मायाके गुणोंके और जीवोंके साक्षी आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ३८ ॥ जो आप जगत्की कारणरूप सूकरमूर्ति धारण करके पातालमेंसे मुझे दाढ़के अग्रपर रखकर, प्रलयके समुद्रमेंसे हाथीके समान बाहिर निकले थे. और निकलनेके अनंतर जिन्होंने सोंही आते हाथीके समान हिरण्याक्ष दैत्यको युद्धमें क्रीड़ा करते २ मार दिया, उन सर्वव्यापी परमेश्वर आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें किंपुरुष और भरतखंडमें स्वामी सेवकका निरूपण होगा. और भरतखंडका श्रेष्ठत्वभी कहा जायगा. ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-

किंपुरुषखंडमें लक्ष्मणके बड़े भाई, सीतापति, आदिपुरुष, भगवान् रामचंद्रजीको उनके चरणारविंदके ध्यानमें अभिरत महावैष्णव हनुमानजी वहांके रहनेवाले किंपुरुषलोगोंके साथ अखंडित भक्तिसे भजते हैं ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणके साथ गंधर्वोंसे गायी जाती परमकल्याणमय अपने स्वामी रामचंद्रजीकी कथा श्रवण करते हैं. और आप वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ २ ॥ हनुमानजी बोले कि-उत्तम कीर्तिवाले, उत्तम शील, व्रत और लक्षणवाले मनको जीतनेवाले, लोकका अनुसरण करनेवाले, सज्जनताकी प्रसिद्धिके कसोटीरूप अर्थात् निर्धाररस्थान, ब्रह्मण्यदेव, महापुरुष व महाराज रामचंद्र भगवान्‌को

आर्ष्टिषेणेन सह गंधर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥ ॐनमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासित-लोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशांतं सुधियोपलंभनं ह्यनाम-रूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्य-था स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥ न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥

वारंवार मेरा प्रणाम है ॥ ३ ॥ शुद्ध अनुभवस्वरूप, शांतस्वरूप प्रकाशसे जाग्रत्आदि अवस्थाओंको मिटानेवाले, दृश्यपदार्थोंसे भिन्न, नामरूपरहित,शुद्धचित्तसे जाननेमें आते और अहंकाररहित जो वेदांतप्रसिद्ध परब्रह्म है, उसे मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीने मनुष्यअवतार धारण किया था, वह केवल राक्षसोंके वधके वास्तेही नहीं, किंतु स्त्रीसंगादिजनित दुःख निवारण होना महाकठिन है इस बातकी मनुष्योंको शिक्षा देनेके वास्तेभी था.नहीं तो अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले जगतके आत्मा परमेश्वरके सीताके विरहजनित दुःख कैसे संभवे ?॥५॥धीर पुरुषोंके आत्मा और परमसुहृद भगवान् रामचंद्रजी त्रिलोकीमें कहींभी आसक्त नहीं थे. तासों

उनको स्त्रीकृत दुःख न भोगना चाहिये. और लक्ष्मणका त्यागभी न करना चाहिये, परंतु वह सब हुआ, तासों यह सब लोक-शिक्षाके वास्ते थे ऐसा जाना जाता है ॥ ६ ॥ महत्पुरुषसे जन्म, सुंदररूप, मधुरवाणी, श्रेष्ठबुद्धि, के उत्तम जातिसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते; क्योंकि ये गुण जिनमें बिलकुल नहीं हैं ऐसे हम वानरोंकोभी भगवान् रामचंद्रजीने अपने सखा बनाये ॥ ७ ॥ देवता, दैत्य, वानर अथवा नर, चाहे सो होवे, परंतु उसे चाहिये कि–थोड़ेसे भजनकोभी बहुत अधिक माननेवाले और

न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्च-कार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥ सुरोऽसुरो वाऽप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तम-म् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोशलान्दिवमिति ॥ ८ ॥ भारतेऽपि वर्षे भगवा-न्नरनारायणाख्य आकल्पांतमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलंभनमनुग्रहायाऽऽत्मव-तामनुकंपया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥ तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भ-गवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसर-ति इदं चाभिगृणाति ॥ १० ॥

सर्वअयोध्यावासीनको स्वर्गमें लेजानेवाले, मनुष्यअवतार धारण किये रामचंद्रजीका सर्वप्रकारसे भजन करे ॥ ८ ॥ भरतखंडमेंभी नरनारायण भगवान् अप्रगटस्वरूपसे विराजते हैं. वे कल्प समाप्त होवे वहांतक दयाके कारण धीरलोकोंपर अनुग्रह करनेके वास्ते वृद्धिंगत ( बढ़ेहुए ) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और निरहंकारतासे आत्मस्वरूपका ज्ञान करानेवाली तपश्चर्या करते हैं ॥ ९ ॥ महात्मा नारदमुनि कि–जो भगवान्‌के प्रभावके वर्णनरूप पंचरात्रशास्त्रका भगवान्‌के कहेहुए सांख्य और योगशास्त्रके

१ देवदूतने आकार, सलाह करते समय कहा कि– जो अपने सलाह करते आजावे उसे मारनेकी प्रतिज्ञा करो फिर मै अपना सब वृत्तांत कहूंगा. रामचंद्रजीने स्वीकार किया; फिर दुर्वासाने आकर, लक्ष्मणको कहा कि–या तो तू रामके पास मेरी खबर दे नहीं तो सबकुलको श्राप देताहूं. तब लक्ष्मणने विचारा कि–कुलकी रक्षा होती हो तो मेरा मरण होजावे ऐसा विचार कर, दुर्वासाकी खबर देने भीतर गये तब रामचंद्रजीने वसिष्ठजीकी आज्ञासे त्यागको मरणकी समान जानकर, लक्ष्मणका त्याग किया.

साथ सावर्णिमनुको उपदेश करनेवाले हैं, वे आप वर्ण और आश्रमधर्मवाली भरतखंडकी प्रजाके साथ परमभक्तिसे नरनारायण भगवान्‌को भजते हैं और इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ १० ॥ शांतस्वभाव, अहंकाररहित, वैराग्यवान् पुरुषोंके धनरूप ऋषियोंमें उत्तम, परमहंसलोकोंके परमगुरु और ज्ञानीजनोंके अधिपति नरनारायण भगवान्‌को बारंबार नमस्कार करता हूं ॥ ॥ ११ ॥ इस मंत्रका जप करते इस प्रकार स्तुति करते हैं. जो स्वयं इस जगत्की सृष्टिआदिके कर्ता होनेपरभी 'मैं कर्ता हूं' ऐसा अभिमान नहीं रखते. देहमें रहनेपरभी भूंखप्यासआदि देहके धर्मोंसे पराभव नहीं पाते. और द्रष्टा होनेपरभी जिनकी

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ ११ ॥ गायति चेदम्। कर्त्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः॥ द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्त-साक्षिणे ॥ १२॥ इदं हि योगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ॥ यदंतकाले त्वयि नि-र्गुणे मनो भक्त्याऽऽदधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धने-षु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्मायायाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिंद्याम येनाऽऽशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्व-यि नः स्वभावमिति ॥ १५॥

दृष्टिको दृश्यपदार्थ विकारयुक्त नहीं कर सकते. उन आसक्तिरहित, शुद्ध और सर्वके साक्षी भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥ हे योगेश्वर! अंतकालके समय इस दुष्टदेहका अभिमान त्याग कर, आपके निर्गुण स्वरूपमें भक्तिपूर्वक मन लगाना, यही ब्रह्माजीकी कही हुई योगसंबंधी बड़ी विचक्षणता है ॥ १३ ॥ इस लोक और परलोकके सुखोंमें लंपट तथा स्त्री, पुत्र और धनकी चिंता करनेवाला मूर्ख मनुष्य जैसे इस अधम देहके मरणसे डरता है, वैसे जो विद्वान् पुरुषभी इस देहके मरणसे डरता है, तो उसने जो विद्याआदिका यत्न किया है वह केवल श्रमही हुआ ॥ १४ ॥ इसीलिये हे प्रभु! हे अधोक्षज! हमें आपके

विषे सहज वासना रहनेरूप योग देओ कि- जिसके प्रभावसे हम इस दुष्टदेहमें आपकी मायाकी कराईहुई अतिदृढ अहंता, ममताको तुर्त तोड़ डारें ॥ १५ ॥ इस भरतखंडमेंभी इलावृतखंडकी नाईं नदी व पर्वत बहुत हैं. मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेंद्र, वारिधार, विंध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इंद्रकील व कामगिरि ये और दूसरेभी सैकड़ों हजारों पर्वत हैं.



भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः संति बहवो मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रेवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इंद्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितंबप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ १६ ॥ एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनंतीनामात्मना चोपस्पृशंति ॥ १७ ॥ चंद्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विंध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुरंधः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ १८ ॥

और इनके तटोंसे निकलेहुए नद और नदियांभी असंख्यात हैं ॥ १६ ॥ केवल नामग्रहणमात्रसे पवित्र करनेवाली इन नदियोंके जलका भरतखंडकी प्रजा देहसेभी स्पर्श करती हैं ॥ १७ ॥ चंद्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधु, अंध व शोण ये दो नद, महानदी, वेदस्मृति ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चंद्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी व विश्वा ये बड़ी नदियां हैं ॥ १८ ॥

मनुष्यजन्म पाकर, अपने कियेहुए सात्विक, राजस और तामस कर्मोंके अनुसार अनुक्रमसे स्वर्ग, पृथ्वी और नरकसंबंधी अनेक जन्म पाते हैं. परंतु वर्णाश्रमके धर्म इसी खंडमें हैं. तथा मोक्षके वास्ते भिन्न भिन्न अनेक साधन होनेका संभव और उन साधनोंसे होता मोक्षभी इसी खंडमें होता है ॥ १९ ॥ अनेक योनियोंमें जन्म देनेवाला देहाभिमान छूट जाय तब सर्वप्राणीमात्रके आत्मा भगवान् वासुदेव कि- जो रागादिकोंसे रहित, वाणीसे अगोचर और स्वाश्रय परमात्मा हैं, उनमें निष्काम भक्ति होती है. और यही मोक्षका यथार्थ स्वरूप है. यह मोक्ष कब होता है ? कि-जब महापुरुष भगवान्‌के भक्तलोगोंका समा-

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वय आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयंते यथा वर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १९ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताऽविद्याग्रंथिरंधनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसंगः ॥ २० ॥ एतदेव हि देवा गायंति ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥

गम होता है, तब यह मोक्ष होता है ॥ २० ॥ इसी विषयमें देवतालोक कहते हैं कि-अहो ! ! इन भारतवासी लोगोंने क्या कोई पुण्यका साधन किया है? अथवा साधन विना स्वयमेव हरि भगवान् इनपर प्रसन्न हुए हैं. क्योंकि पुण्य वा हरिकृपा विना मुकुंद भगवान्‌की सेवाके उपयोगी मनुष्यजन्म इस भरतखंडमें नहीं मिलता, जिस मनुष्यजन्मकी हम केवल इच्छाही किया करते हैं ॥ २१ ॥ किसीसे न बन सके ऐसे यज्ञ, तप, व्रत और दानादिकसे जो यह तुच्छ स्वर्गलोक हमें मिला है इससे क्या हुआ ? क्योंकि इस स्वर्गमें नारायणके चरणारविंदका स्मरण नहीं बनता; प्रत्युत इंद्रियोंको अतिशयित भोग मिलनेके हेतु

वह स्मरण चुराया गया है ॥ २२ ॥ इस स्वर्गलोकको पाकर, हमलोग एक एक कल्पपर्यंत जीवेंगे, परंतु हमें पीछा जन्मले-
ना पड़ेगा, अतएव उसकी अपेक्षा अल्प आयुष्य होनेपरभी यदि भरतखंडमें मनुष्यजन्म हो जाय तो बहुत ठीक
क्योंकि इस खंडमें मरणधर्मा इस देहसेभी क्षणभरमें अपने कियेहुए कर्मको छोड़कर, विद्वान् पुरुष हरि भगवान्के अभयपदको
प्राप्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ जहां वैकुंठ भगवान्की कथारूप अमृतनदी नहीं और जहां भगवान्की कथारूप
अमृत नदियोंके आश्रयरूप भगवान्के भक्त साधुजन नहीं तथा जहां बड़े २ उत्सववाली भगवान्की पूजाका प्रकार नहीं,
उस ब्रह्मलोककाभी सेवन न करना चाहिये ॥ २४ ॥ ज्ञान व ज्ञानकी साधनक्रिया व तदुपयोगी पदार्थकी सामग्रीवाले इस म-

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारत भूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सं-
न्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥ न यत्र वैकुंठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह
ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति
बंधनम् ॥ २५॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमंत्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिरा-
हुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पु
नरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥

नुष्यदेहको पाकर, जो प्राणी मोक्षके वास्ते यत्न नहीं करते; वे पक्षियोंकी नाईं पीछे बंधनमें जा पड़ते हैं ॥ २५ ॥ भरतखंडके
लोक भाग्यवान् हैं, क्योंकि उन्होंके श्रद्धासहित विधि मंत्र और उन उन वस्तुओंके भेदसे व अग्निमें उन २ देवतानके उद्देशसे,
भागके अनुसार होमेहुए और 'नमम' ऐसे करके अपने स्वामित्वसे जुदा कियेहुए पदार्थोंको भगवान् कि- जो एक होनेपरभी
इंद्रादिक जुदे जुदे नामोंसे कहनेमें आते हैं, वे स्वयंपूर्णकाम होनेपरभी स्वीकार करते हैं ॥ २६ ॥ भगवान्के पास मांगा जाय
तो प्रभु वह प्रार्थितपदार्थ देते हैं यह बात सत्य है; परंतु ऐसे करनेसे वे मोक्ष नहीं देते; क्योंकि एक वस्तु मांगनेके अनंतर
फिर मांगनेका संभव है. और निष्कामभावसे जो भजते हैं उनको तो भगवान् स्वयमेव अपना चरणारविंद देते हैं, कि- जिससे

दूसरी सर्व इच्छा परिपूर्ण हो जाती हैं ॥ २७ ॥ यहां हमने इतना स्वर्गसुख भोग लिया है, सो जो इसके उपरात यज्ञ, व्याख्यान वा दूसरे किसी सत्कर्मके फलमें कुछ शेष रहा होवे, तो उस फलसे भरतखंडमें इसी प्रकारके स्मरणवाला हमारा जन्म होवे, क्योंकि इस खंडमें भजनेवाले लोगोंको भगवान् परमसुख देते हैं ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि – हे राजा परीक्षित !

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ❀ ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जंबूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशंति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चंद्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मंदरहरिणः पांचजन्यः सिंहलो लंकेति ॥ ३० ॥ एवं तव भारतोत्तम जंबूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे जंबूद्वीपवर्णनं नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

कितनेएक विद्वान् कहते हैं कि–जंबूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं. सगरराजाके पुत्र घोड़ा ढूंढ़ने गये, उस समय उन्होंने पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा उससे ये आठ उपद्वीप हुए ॥ २९ ॥ जैसे स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका ॥ ३० ॥ इस प्रकार हे परीक्षित ! जंबूद्वीपके खंडोंका विभाग यथायोग्य मैंनें आपसे कहा ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ बीसवें

❀ अतोपिदेवाइच्छंतिजन्मभारतभूतले ॥ संचितुंसुमहत्पुण्यमक्षय्यममलंशुभम् ॥ १ ॥ कदावयंहिलप्स्यामोजन्मभारतभूतले ॥ कदापुण्येनमहताप्राप्स्यामःपरमंपदम् ॥ २ ॥ दानैर्वाविविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाब्धिशायिनम् ॥ पूजयित्वाकदायामोयद्ब्रैपश्यंतिसूरयः ॥ ३ ॥ हरिकीर्तनशीलोवातद्भक्तानांप्रियोऽपिवा ॥ शुश्रूषुर्वापिमहतांसवंद्योऽस्माभिरुत्तमः ॥ ४ ॥ वेदार्थश्रवणेवुद्धिःपुराणश्रवणेतथा ॥ सत्संगेऽपिहियस्यास्तिसवंद्योऽस्माभिरुत्तमः ॥ ५ ॥ संप्राप्यभारतेजन्मसत्कर्मसुपराङ्मुखः ॥ पीयूषकलशंहित्वाविषभांडंसइच्छति ॥ ६ ॥ वासुदेवार्चनंहित्वादुष्कर्माणिकरोतियः ॥ कामधेनुमतिक्रम्यअर्कक्षीरंसइच्छति ॥ ७ ॥ एवंभारतभूभागंप्रशंसंतिदिवौकसः ॥ तंप्राप्यविषयासक्तास्तेमुष्टामायया हरेः ॥ ८ ॥ ये श्लोक भागवतमेंके नहीं हैं परंतु कोई २ ठिकानेमें देखे तिससे इहां लिखे हैं ॥

अध्यायमें प्लक्षआदि छह द्वीप, सात समुद्र व लोकालोकपर्वत इत्यादि सबकी बाहिर और भीतरके प्रदेशआदिके प्रमाणसे स्थिति वर्णन की जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–अब प्लक्ष आदि द्वीपोंके प्रमाण व लक्षणद्वारा खंडोंका विभाग वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ यह जंबूद्वीप लक्ष योजनप्रमाण है. और लाखही योजनप्रमाण समुद्रसे घिरा हुआ है. लक्ष योजन ऊंचा मेरुपर्वत जैसे लक्ष योजन विस्तारवाले जंबूद्वीपसे घिराहुआ है, ऐसेही जंबूद्वीपभी अपने जितने प्रमाण विस्तारवाले क्षार समुद्रसें घिराहुआ है. क्षार

श्रीशुक उवाच ॥ अतःपरं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जंबूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जंब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन प्लक्षो जंबूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वः तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥ शिवं यवयसं सुभद्रं शांतं क्षेममम्रतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥

समुद्रभी आपसे द्विगुण विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे बाहरके उपवनकी खांईके समान घिराहुआ है. इस द्वीपमें लक्ष योजन ऊंचा सुवर्णसा प्लक्षका वृक्ष है. उसीके नामसे इस द्वीपका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा है. इस वृक्षमें सात जीभवाले अग्नि रहते हैं. इस द्वीपका अधिपति प्रियव्रत राजाका पुत्र इध्मजिव्ह, अपने द्वीपके सात खंडकर, उन्हीं खंडोंके समान नामवाले अपने पुत्रोंको जुदा जुदा खंडोंका राज देकर, आप आत्मयोगसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ शिव, यवस, सुभद्र, शांत, क्षेम, अमृत और अभय येही तो पुत्रोंके नाम हैं और येही खंडोंके नाम हैं, इन सातों खंडोंमें सातही तो मर्यादागिरि हैं और सातही प्र-



१ काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा ॥ उग्रा प्रदीप्ता च कृशानुयोनेः सप्तैव कीलाः कथिताश्च जिव्हाः ॥ १ ॥ अर्थ–काली १, कराली २, मनोजवा ३, सुलोहिता ४, सुधूम्रवर्णा ५, उग्रा ६, प्रदीप्ता ७, ये सातों शिखा अग्निजीकी और जिव्हाभी कही हैं ॥ १ ॥

सिद्ध नदियां हैं ॥ ३ ॥ मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल ये सीमापर्वत हैं अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतंभरा व सत्यंभरा ये महानदियां हैं. इस द्वीपमें हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग ये चार वर्ण हैं. इन लोगोंका रजोगुण व तमोगुण नदियोंके जलके स्पर्शहीसे निवृत्त हो जाता है. वहांके रहनेवाले सब लोगोंकी हजार वर्षकी आयु है. इन लोगोंकी उत्पत्ति और दिखावट देवतानकीसी है. ये लोक वेदत्रयीमय स्वर्गके द्वाररूप भगवान् सूर्यनारायणकी उपासना करते हैं. और इस मंत्रका जप करते हैं ॥ ४ ॥ अनुष्ठीयमान धर्म, प्रमीयमाण धर्म, ब्रह्मबोधकवेद,

मणिकूटो वज्रकूट इंद्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतंभरा सत्यंभरा इति महानद्यः यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतंगोर्ध्वायनसत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवंतं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजंते ॥ ४ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पंचसु पुरुषाणामायुरिंद्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥ प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृंक्ते ॥ ७ ॥ यत्र ह वै शाल्मलीप्लक्षायामा यस्यां वा व किल निलयमाहुर्भगवतश्छंदःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥

अमृत, अर्थात् शुभ फल, मृत्यु अर्थात् अशुभ फल इन सबके अधिष्ठाता जो सूर्यनारायण पुराण पुरुष विष्णु भगवान्के स्वरूप हैं, उनके हम शरण जाते हैं ॥ ५ ॥ प्लक्षआदि छह द्वीपोंके मनुष्योंमें आयु, इंद्रियसुख, शरीरका बल, मनका बल, इंद्रियोंका बल, बुद्धि और पराक्रम इतनी स्वाभाविक सिद्धियां समानभावसे बर्तती हैं ॥ ६ ॥ जैसे प्लक्षद्वीप अपने प्रमाणजितने ऊंखके रसके समुद्रसे घिराहुआ है ऐसेही उसके बाहिर उससे द्विगुणप्रमाणविस्तारवाला शाल्मलिद्वीप है. जो उतनेही प्रमाणवाले मदिराके समुद्रसे घिराहुआ है ॥ ७ ॥ इस द्वीपमें प्लक्षके जितनाही बड़ा शाल्मलीका वृक्ष है. उसमें पक्षियोंके राजा गरुड़जी कि-

जो वेदसे भगवान्‌की स्तुति किया करते हैं उनका स्थान बतलाते हैं. इसी शाल्मलीके वृक्षपरसे इस द्वीपका नाम शाल्मलिद्वीप पड़ा है ॥ ८ ॥ इस द्वीपका अधिपति प्रियव्रतका पुत्र यज्ञबाहु है. इसने खंडके नामवाले अपने सातों पुत्रोंको सातही खंडोंको विभाग करके दे दिये. खंड व पुत्रोंके नाम–सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ॥ ९ ॥ इन खंडोंमेंभी सातही तो सीमापर्वत और सातही महानदियां हैं. पर्वत–स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुंद, मुकुंद, पुष्पवर्ष और सहस्रस्तुति. नदियां–अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा और राका ॥ १० ॥ इन खंडोंमें श्रुतधर, वीर्यधर,

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृंगो वामदेवः कुंदो मुकुंदः पुष्पवर्षः सहस्रस्तुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नंदा राकेति ॥ १० ॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुंधरेषंधरसंज्ञा भगवंतं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजंते ॥ ११ ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजाऽधः सोमो न आस्त्विति ॥ १२ ॥ एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तंबो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥ १३ ॥ तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन्हिरण्यरेतोनाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥ १४ ॥

वसुंधर और इषंधर नाम चारवर्ण हैं. ये लोग वेदमय चंद्ररूप भगवान्‌को वेदसे भजते हैं और इस मंत्रका जप करते हैं ॥ ११ ॥ शुक्लपक्षमें देवतानको और कृष्णपक्षमें पितृनको अपनी किरणोंसे विभाग करके अन्न देनेवाले सोम देवता हमारे और सब प्रजानके राजा होवें ॥ १२ ॥ इसी प्रकार मदिराके समुद्रसे बाहिर उससे द्विगुण आर उसी प्रकार घृतके समुद्रसे घिराहुआ कुशद्वीप है. इस द्वीपमें देवतान्‌का कियाहुआ कुश अर्थात् दर्भका स्तंब ( गुच्छा ) है. उसीके नामसे इस द्वीपका नाम कुशद्वीप हुआ है. मानों दूसरा अग्निही न होवे ऐसा तेजवाला यह दर्भका स्तंब अपने पत्तोंकी कांतिसे दशोंदिशानको प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥ इस द्वीपका अधिपति प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता अपने खंडोंके समान नामवाले पुत्रों-

को द्वीपका राज बाटके अनुसार देकर, आप तप करनेको चलागया. खंड व पुत्रोंके नाम-वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव ॥ १४ ॥ इस द्वीपके खंडोंमेंभी सातही तो मर्यादागिरि और सातही महानदिया हैं. सात पर्वत-चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण. महानदियां-रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतविंदा, देवगर्भा, घृतच्युता व मंत्रमाला ॥ १५ ॥ इन नदियोंके जलसे पवित्र भयेहुए कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक ये चार वर्ण कुशद्वीपमें रहकर, अग्निरूप भगवान्का कर्मकौशलसे यजन करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्नि! आप साक्षात् परब्रह्म भग-

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्तसप्तैव चक्रतुः श्रृंगः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युता मंत्रमालेति ॥ १५ ॥ यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवंतं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजंते ॥ १६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥ तथा घृतोदाद्बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौंचो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिवर्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितंबकुंजोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥ तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्तरिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविंदमुपजगाम ॥ २० ॥

वान्को हव्य पहुंचाते हो, इसीलिये भगवान्के अंगरूप देवतान्के नामसे कीहुई पूजा भगवान्को पहुँचाओ ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुशद्वीपसे बाहिर उससे द्विगुण विस्तारवाला क्रौंचद्वीप है. यह जैसे कुशद्वीप घृतके समुद्रसे घिराहुआ है ऐसे अपने समान प्रमाणवाले दूधके समुद्रसे घिराहुआ है. इस द्वीपमें क्रौंच नाम एक बड़ा पर्वत है. उसीसे इसका नाम क्रौंचद्वीप पड़ा है ॥ १८ ॥ स्वामिकार्तिकने अपनी शक्तिसे उसके तट और कुंज तोड़ दिये थे. तथापि दूधके समुद्रसे सींचा जानेके कारण और वरुणदेवताके रक्षा करनेसे यह सदा निर्भय रहता है ॥ १९ ॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठनेभी अपने द्वीपके

सात खंड कर, अपने पुत्रोंके नामसे खंडोंके नाम रखकर, उनमें पुत्रोंको राज्य दिया. फिर वह भगवान् कि–जो सर्वके आत्मा और अतिकल्याणरूप कीर्तिवाले हैं उनके चरणारविंदको प्राप्त हुआ॥ २० ॥ घृतपृष्ठके पुत्रोंके और खंडोंके नाम–आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति. इनमें सातही तो मर्यादागिरि और सातही नदियां हैं. पर्वतोंके नाम–शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नंद, नंदन और सर्वतोभद्र. नदियोंके नाम–अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला ॥ २१ ॥ इन नदियोंके पवित्र और निर्मल जलको उपयोगमें लातेहुए पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक



आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरय सप्तसप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्द्धमानो भोजन उपबर्हिणो नंदो नंदनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥ २१ ॥ यासामंभः पवित्रममलमुपयुंजानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनांजलिना यजंते ॥ २२ ॥ आपः पुरुषवीर्या स्थ पुनंतीर्भूर्भुवःसुवः ॥ ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥ २३ ॥ एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमंडोदेन परीतो यस्मिन् शाकोनाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगंधस्तं द्वीपमनुवासयति ॥ २४ ॥

नामक इस द्वीपके निवासी चारों वर्ण जलभरी अंजलिसे जलरूप भगवान्का यजन करते हैं. और इस मंत्रका जप करते हैं ॥ २२ ॥ हे जल ! तुमको ईश्वरसे सामर्थ्य मिला है, अतएव स्वयमेव पाप निवृत्त करनेवाले तुम, हम कि–जो तुम्हारा स्पर्श करते हैं उनके शरीरोंको पवित्र करो ॥ २३ ॥ इसीप्रकार दूधके समुद्रसे परे चारों ओरसे घिराहुआ शाकद्वीप है. उसका विस्तार बत्तीसलक्ष ३२००००० योजनका है. यह द्वीप अपने समान प्रमाण दहीके समुद्रसे घिराहुआ है. इस द्वीपमें शाकनाम एक वृक्ष है. उसीके नामसे इस द्वीपका नाम शाकद्वीप पड़ा है. इस वृक्षकी अतुल सुगंधि इस समग्र द्वीपको सुगंधित करती है॥ २४ ॥

इसका अधिपति प्रियव्रतका पुत्र मेधातिथि अपने द्वीपमें अपने पुत्रके समान नामवाले सात खंडोंका विभाग कर, उनमें सातों पुत्रोंको सातों खंडोंका राज्य दे, भगवान्में मन लगाकर, तपोवनमें गया. पुत्र व खंडोंके नाम-पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप व विश्वधार ॥ २५ ॥ इन खंडोंमें सातही तो मर्यादागिरि और सातही महानदियां हैं. पर्वतोंके नाम ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस; महानदियोंके नाम-अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपरा-

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्तवर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाय्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनंत आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥ एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्तसप्तैव ईशान उरुशृंगो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पंचपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥ २६ ॥ तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवंतं वाय्वात्मकं प्राणायामविधुतरजस्तमसः परमसमाधिना यजंते ॥ २७॥ अंतःप्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अंतर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८॥ एवमेव दधिमंडोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समंतत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बाहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥ २९ ॥

जिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति ॥ २६ ॥ इस द्वीपमें ऋत, सत्यव्रत दानव्रत और अनुव्रत ये चार वर्ण हैं, ये लोग प्राणायामसे रजोगुण व तमोगुणको दूर कर, बड़े एकाग्रचित्तसे वायुरूप भगवान्की भक्ति करते हैं और इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ २७ ॥ साक्षात् अंतर्यामी ईश्वररूप वायु कि-जो सबके अंदर प्रवेश करके प्राण और अपानआदि अपनी वृत्तियोंसे प्राणीमात्रका रक्षण करते हैं. और जिनके आधीन सब जगत् है, वे हमारी रक्षा करें ॥ २८ ॥ इसी प्रकार दधिमंडोदसे परे उससे द्विगुणप्रमाण पुष्करद्वीप है. यह द्वीप अपनेजितने प्रमाणवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा हुआ है. इसमें जगदीश्वर ब्रह्माजीका

आसनरूप एक बड़ा पुष्कर यानी कमल है. जिसकी करोड़ों पँखुरियां अग्निकी शिखाके समान स्वच्छ हैं ॥ २९ ॥ इस द्वीपके बीच-में मानसोत्तर नाम एक पर्वत है. इसीमे दो खंडोंकी सीमा बांधी गयी है. अर्थात् इसमें दो खंड हैं, एक तो भीतरका, और दूसरा इस पर्वतके बाहिरका. यह मानसोत्तरपर्वत दशसहस्र योजन ऊंचा और चौड़ा है. इस पर्वतके ऊपर चारों दिशाओंमें इंद्रादिक चारों लोकपालोंकी चार पुरियां हैं. सूर्यका रथ ...-जो मेरुपर्वतके चौगिर्द फिरा करता है. उसका वर्षरूप पहिया दक्षिणायन और उत्त-

तद्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिंद्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥ तद्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्याऽऽत्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥ ३१ ॥ तद्वर्षपुरुषा भगवंतं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाऽऽराधयंतीदं चोदाहरंति ॥ ३२ ॥ यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयेत् ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नम इति ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरंतराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥

रायणसे इस मानसोत्तर पर्वतके उपर फिरा करता है ॥३०॥ प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र इसका अधिपति था' इसके रमणक और धातकि नाम दो पुत्र थे. पुत्रोंके समान नामवाले खंडोंमें इन दोनों पुत्रोंको राज्य देकर, आप अपने बड़े भाइयोंकी नाई भगवान्‌की पूजा व आराधनामें लग गया ॥ ३१ ॥ इस खंडके निवासीलोक ब्रह्मरूप भगवान्‌का सकाम कर्मसे पूजन करते हैं. और इस वक्ष्यमाण मंत्रका जप करते हैं ॥ ३२ ॥ कर्मके फलरूप, परब्रह्मके ज्ञापक, एक परमेश्वरमेंही निष्ठावाले, अद्वैत व शांत जिस स्वरूपका लोक पूजन करते हैं उन भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इस मीठे जलके समुद्रके परे लोका-

लोक नाम पर्वत है. उसे लोक अर्थात् सूर्यआदिके प्रकाशवाला स्थान और अलोक अर्थात् सूर्यआदिके प्रकाशरहित स्थानके मध्यमें उनके विभागके वास्ते परमेश्वरने सबके चारोंतर्फ घेरा दिये रक्खा हैं ॥ ३४ ॥ मानसोत्तर और मेरुपर्वतके मध्यमें जितना अंतर है, उतनेही प्रमाणवाली यानी डेढ़ करोड़ और साढ़ेसातलाखयोजन प्रमाण दूसरी भूमि मीठे समुद्रके परे है, उसमें प्राणीभी रहते हैं. उससे परे सुवर्णमय पृथ्वी है यह आठ करोड़ और उनचालीस लाख योजन प्रमाण है. वह आदर्श यानी आइनेके तलसी स्वच्छ है. उसमें यदि कुछभी पदार्थ धरा जाय तो पीछा हाथ नहीं लगता, इसी वास्ते वहां

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरंतरं तावती भूमिः कांचन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः पुत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्वपरिहृताऽऽसीत् ॥ ३५ ॥ लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यांतर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते ॥ ३६ ॥ स लोकत्रयांते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीँल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहंते तावदुन्नहनायामः ॥ ३७ ॥ एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पंचाशत्कोटिश्च गणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८ ॥ तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ३९ ॥

कोईभी प्राणी नहीं रहता ॥ ३५ ॥ इसके अनंतर लोकालोक नाम पर्वत है, उसका लोकालोक नाम पड़नेका कारण यह है कि– लोक और अलोकके मध्यमें उसकी स्थिति है ॥ ३६ ॥ तीनोंही लोकोंके अंतमें त्रिलोकीका मर्यादारूप यह पर्वत ईश्वरने त्रिलोकीके चौगिर्द रख छोड़ा है. सूर्यसे ले, ध्रुवपर्यंत सर्वतेजस्वी पदार्थोंकी किरणें कि– जो त्रिलोकीमें चारोंओर प्रकाश करती हैं, वे परेकी तर्फ न पहुँच सकें इतनी इस पर्वतकी उँचाई और चौड़ाई है ॥ ३७ ॥ प्रमाण, लक्षण और स्थितिसे लोककी रचना इसी प्रकारसे विद्वानोंने निश्चय की है, यह लोकालोक पर्वत पचास करोड़ योजन भूमंडलका चतुर्थभाग पूर्ण होवे इतना प्रमाणमें है, अर्थात् मेरुसे चौतर्फ साढ़े बारह करोड़ योजन दूर है ॥ ३८ ॥ इस पर्वतके ऊपर चारों दिशाओंमें सर्व जगत्के

गुरु ब्रह्माजीने ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन और अपराजितनामक चार दिग्गज रख छोड़े हैं. उन्हींसे सर्व लोकोंकी स्थिति रहती है ॥ ३९ ॥ इन दिग्गज हाथियोंकी और अपनी विभूतिरूप इंद्रादिक लोकपालोंकी अनेक प्रकारकी शक्तियोंकी वृद्धिके वास्ते परम महापुरुष और महाविभूतिपति अंतर्यामी भगवान् सब लोकोंके कल्याणके वास्ते उस उत्तम लोकालोक पर्वतपर विराजते हैं. धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यआदि अष्ट महासिद्धिरूप अपना शुद्धसत्व गुण धारण कर रहे हैं. विष्वक्सेनआदि अपने

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपति-रंतर्याम्यात्मनोविशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्ष-दप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदंडैः संधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समंतात्सक-ललोकस्वस्तय आस्ते ॥ ४० ॥ आकल्पमेवं वेषंगत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविध-लोकयात्रागोपीथायेत्यर्थः ॥ ४१ ॥ योंऽतर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोका-लोकाचलात् ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरंति ॥ ४२ ॥ अंडमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्यो-र्यदंतरम् ॥ सूर्याडगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः ॥ ४३ ॥

उत्तम पार्षदोंसे घिरेहुए भगवान् अपने उत्तम आयुधोंसे शोभित भुजदंडोंसे शोभायमान हो रहे हैं ॥ ४० ॥ अपनी योगमाया-विरचित अनेक प्रकारके लोगोंकी मर्यादाका रक्षण करनेके वास्ते भगवान् कल्पसमाप्तिपर्यंत ऐसीही लीला करते विराजते हैं, ॥ ४१ ॥ जितना लोकके भीतरका विस्तार है उतनाही अलोकका विस्तार कहा गया है; जो अलोक लोकालोक पर्वतसे बाहिर है, इस अलोकसे परे योगेश्वरोंकी शुद्ध[१] गति है. यानी यागेश्वेरोंके सिवाय दूसरा वहां नहीं जा सकता ॥ ४२ ॥ द्यौ यानी सब-से ऊपरके लोकसे भूमि अर्थात् सबसे नीचेके लोकपर्यंत ब्रह्मांडका जो मध्य है वहां सूर्य रहता है, अर्थात् सूर्यसे नीचे ब्रह्मां-डके अंतिम प्रदेशपर्यंत और सूर्यसे ऊपर ब्रह्मांडके ऊपरकी तर्फ अंतिम प्रदेशपर्यंत पचीस पचीस करोड़ योजनका अंतर है ॥ ४३ ॥

१ यह गति श्रीकृष्णजीने ब्राह्मणके पुत्र लानेके समय अर्जुनको दिखायी थी.

यह ब्रह्मांड अचेतन था. उस समय वैराजरूपसे सूर्यने इसमें प्रवेश किया. इस लिये सूर्यका नाम मार्तंड पड़ा. सुवर्णके समान प्रकाशमान ब्रह्मांड इनमेंसे उत्पन्न हुआ. इससे इनका नाम हिरण्यगर्भ पड़ा ॥ ४४ ॥ दिशा, अंतरिक्ष, ऊपरके लोक, पृथ्वी, दूसरे लोक, स्वर्ग यानी भोगस्थान, अपवर्ग यानी मोक्षस्थान, नरक और पाताल ये सब सूर्यसेही विभक्त होते हैं ॥ ४५ ॥ देव, पशु, पक्षी, मनुष्य, पेटसे चलनेवाले ( सांप, बीछू आदि ) और लताआदि सब जीवसमूहके आत्मा

मृतेंऽड एष एतस्मिन्यदभूत्ततो मार्तंड इति व्यपदेशः ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः ॥ ४४ ॥ सूर्येण हि विभज्यंते दिशः खं द्यौर्महीभिदा ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ ४५ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाणलक्षणो विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ १ ॥ एतेन हि दिवो मंडलमानं तद्विद उपदिशंति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अंतरेणांतरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ २ ॥

और नेत्रोंके अधिष्ठाता सूर्यही हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥इक्कीसवें अध्यायमें कालचक्रसे निरंतर भ्रमण करते सूर्यनारायणका उन उन राशियोंमें जानेसे जगतकी यात्राका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– प्रणाम और लक्षणसे भूमंडलकी रचना इसी प्रकार शास्त्रकारोंने कही है. इसी प्रमाणसे खगोलका प्रमाणभी विद्वान् लोग कहा करते हैं ॥ १ ॥ जैसे द्विदल यानी चना, अरहर, उड़द-आदि धान्यकी दाल की जाय तो उसके दोनों टुकड़े बराबर होंगे, ऐसे भूगोल और खगोल ये दोनों प्रमाणसे बराबर हैं, इन

१ यह पृथ्वीका प्रमाण पाद्मकल्पका है इस वराहकल्पका नहीं है. क्योंकि जिस समय वराह भगवान् पृथ्वीको लेकर, जलसे बाहर आये हैं उस स्थलमें लिखा हैं. कि "– मेरुः खुरखुरायते" अर्थ–मेरुपर्वत खुरोंके बीच लड़खड़ाता है. इससे प्रतीत होता है कि– इस वराहकल्पमें वराह भगवान् गेंदकी तरह थोड़ीसी पृथ्वी उसमेंसे उठालाये जैसे जमीनमेंसे गड़ेहुए पत्थरको उखाड़ लिया करते हैं ऐसे जमीनमेंसे थोड़ासा भाग उठा लाये. इसीसे आधुनिक ज्योतिर्विद लोकोंके प्रमाणसे इस पृथ्वीका प्रमाण बराबर नहीं मिलता.

दोनोंके बीचमें अंतरिक्ष है सो वह दोनोंसे जुड़ा हुआ है ॥ २ ॥ इस अंतरिक्षके मध्यमें स्थित, प्रकाशक पदार्थोंके पति सूर्य आतप (धूप) से सब त्रिलोकीको तपाते हैं और अपने प्रकाशसे प्रकाशित करते हैं. ये सूर्य उत्तरायन, दक्षिणायन और वैषुवत नामक अपनी मंद, शीघ्र और समगतिसे ऊंचे चढ़ना, नीचे उतरना और समान भूमिपर चलनेके हेतु अपने नियत समयपर मकर-आदि तीनों राशियोंमें आकर, अहोरात्रको बड़ा, छोटा और सम कर देते हैं ॥ ३ ॥ जब मेष व तुला राशिके सूर्य आते हैं,



यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मांद्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥ यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवंति यदा वृषभादिषु पंचसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्द्धंते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥ यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवंति ॥ ५ ॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्द्धंते यावदुदगयनं रात्रयः ॥ ६ ॥ एवं नवकोटय एकपंचाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशंति तस्मिन्नैंद्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिनिवृत्तिनिमित्तानि समविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

तब रात्रि और दिन बराबर हो जाते हैं. जब वृषआदि कन्यापर्यंत पांच राशिके रहते हैं तब दिन बड़े रहते हैं और रात्रियां एकएक महीनेमें एक एक घड़ी कम हो जाती हैं. और जब वृश्चिकआदि मीनपर्यंत पांच राशियोंमें फिरते हैं तब दिन छोटे और रात्रियां बड़ी होती हैं ॥ ४ ॥५॥ वृषराशिसे दिन बढ़ना प्रारंभ होता है वह दक्षिणायनतक बढ़ता रहता है और वृश्चिकसे रात्रियां बढ़ने लगतीं हैं सो उत्तरायणतक बढ़ती हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकार मानसोत्तर पर्वत और मेरुके बीचमें भ्रमण करनेका रास्ता नवकरोड़ और इक्यावन लाख योजन है. ऐसे कहते हैं. इस मानसोत्तर पर्वतपर पूर्वदिशामें देवधानी नाम इंद्रकी पुरी है. दक्षिणमें संय-

मनी नाम यमराजकी पुरी है. पश्चिममें निम्लोचनी नाम वरुणकी पुरी है. और उत्तरमें विभावरी नाम सोमकी पुरी है. इन पु- रियोंमें समयानुसार सूर्यके आनेसे उदय, मध्यान्ह, अस्त और मध्यरात्र ये चार काल कि- जो प्राणीमात्रकी प्रवृत्तिके कारण हैं वे हुआ करते हैं. तत्रापि मेरुसे दक्षिणकी ओर रहनेवालोंके इंद्रकी पुरीसे और जो पश्चिममें रहते हैं उनके यमकी पुरीसे और जो उत्तरमें रहते हैं उनके वरुणकी पुरीसे और जो पूर्वमें रहते हैं उनके सोमकी पुरीसे उदयादिक होते हैं. ऐसे कहते हैं ॥ ७ ॥ जो मेरुके ऊपर रहते हैं उनके तो सदा मध्यान्हकालीन सूर्य तपा करते हैं नक्षत्रोंके सन्मुख अपनी गतिसे सूर्य यदपि मेरुको बायीं तरफ रखते भ्रमण करते हैं, तथापि प्रवहनामक वायुसे भ्रमण करते ज्योतिश्चक्रकी गतिसे मेरुपर्वत सूर्यके दक्षिणतर्फ

तत्रत्यानां दिवसमध्यंगत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति त- स्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यंदेनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्र- स्वापयति तत्र गतं न पश्यंति ये तं समनुपश्येरन् ॥ ९ ॥ यदा चैंद्र्याः पुर्याः प्रचलते पंचदशघटि- काभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्द्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥ एवं ततो वारुणीं सौम्यामैंद्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यंति सह वा निम्लोचंति ॥ ११ ॥ एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीम- योऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२ ॥

रहता है ॥ ८ ॥ जहां उदय होते हैं उससे समान सूत्रपर अस्त होते हैं और जहां मध्यान्ह होता है वहांसे समान सूत्रपर मध्यरात्र होती है. सूर्यको जो लोक देखते होवें वे सामनेको सूत्र पड़नेकी जगहपर गयेहुए सूर्यको नहीं देख सक्के ॥ ९ ॥ सूर्य इन्द्रकी पुरीसे चलकर, पन्द्रह घड़ीमें यमकी पुरी पहुँचते हैं इतनी देरमें सवादो करोड़ साढ़े बारह लाख और पचीस हजार योजन रास्ता काटते हैं ॥ १० ॥ इसी प्रकार यमकी पुरीसे वरुणकी पुरी पहुँचते हैं. और वरुणकी पुरीसे सोमपुरी और सोमकी पुरीसे पीछे इंद्रकी पुरी पहुंचते हैं. इसी तरह दूसरे ग्रह चंद्रआदिभी ज्योतिश्चक्रमें नक्षत्रोंके साथही तो उदय होते हैं. और नक्षत्रोंके साथही अस्त होते हैं ॥ ११ ॥ वेदमय यह सूर्यका रथ चारों पुरीयोंमें फिरता है तहां दो घड़ीमें चौंतीस लाख और आठसो

योजन रस्ता काटता है ॥१२॥ सूर्यके रथका संवत्सररूप एक पहिया है; उसके बारह मासरूप आरा हैं, छहऋतुरूप पहियोंकी धारा हैं और सरदी, गरमी और बरसाद ये तीन नाभि हैं, ऐसे काहाते हैं. इसकी डेढ़ करोड साढ़े सात लाखप्रमाण पहली धुरीका ऊपरका भाग मेरुपर्वतके ऊपर है, जिसमें पोहाहुआ और कोल्हूके चक्रके समान फिरताहुआ सूर्यके रथका पहिया मानसोत्तरपर्वतपर फिरा करता है ॥१३॥ उसी धुरीमें जिसका मूल लगाहुआ है ऐसी और उससे चतुर्थभाग प्रमाण यानी उनचालीस लाख और साढ़ेसैंतीस

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनंति तस्याक्षो मेरोर्मूर्द्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयंत्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयंत्राक्षवद्ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छंदोनामानः सप्तारुणयोजिता वहंति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलाऽऽस्ते ॥ १६ ॥ तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवंति ॥ १७ ॥

हजार योजनकी दूसरी धुरी है. जिसका ऊपरका भाग ध्रुवमें वायुपाशसे बंधाहुआ है. अतएव इसकी घटना तेल निकालनेके कोल्हूकी धुरीकीसी है ॥ १४ ॥ रथमें बैठनेकी जगह छत्तीस सहस्र योजन लंबी और उससे चतुर्थभाग प्रमाण चौंड़ी है. सूर्यके रथका युग यानी जुआंभी उतनाही बड़ा है. जिसमें अरुणके जोतेहुए गायत्रीआदि छंदके नामवाले सात घोड़े भगवान् सूर्य नारायणको ले जाते हैं ॥ १५ ॥ सूर्यके सारथी अरुण यद्पि सूर्यके मुखके आगे बैठते हैं, तथापि उनका मुख पश्चिमकी तरफ रहता है ॥ १६ ॥ अंगूठेके पर्व ( पोर ) के समान प्रमाणवाले वालखिल्य नामक साठ हजार ऋषि सूर्यके मुखके आगे स्तुति



१ गायत्री, बृहती, उष्णिक् पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् यही गायत्रीआदि छन्द हैं और यही सूर्यके घोड़ोंकेभी नाम हैं. २ अश्वस्थानं च वायुनोक्तम् । सप्ताश्वरूपछन्दांसि वहन्ते वामतो रविम् । चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रे चाक्षः समाहितः ॥ १ ॥ अर्थ-घोड़ोंका स्थान वायुपुराणमें लिखा है. छन्दरूप सात घोड़े सूर्यको बाईतरफ़से ले जाते हैं. और चक्रपक्षमें बँधे हैं. चक्रमें धुरी लगी है ॥ १ ॥

करनेके वास्ते नियुक्त हैं. अतएव वे सदा सूर्यकी स्तुति किया करते हैं ॥ १७ ॥ इसीतरह दूसरे ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता कि– जो एक एक करके चौदह हैं और जोड़ेके हिशाबसे सात हैं, वे महीनेके महीने जुदे जुदे नामवाले सूर्यनारायणकी जुदा जुदा कार्य करनेद्वारा सेवा करते हैं. और इनके नामभी जुदे जुदे हैं ॥ १८ ॥ साढ़े नव करोड़ और एक लाख योजन प्रमाण भूमंडलके फिरनेके रास्तेमेंसे एकक्षणमें यह सूर्य दो हजार योजन और दोकोशप्रमाण रास्ता काटते

तथाऽन्ये च ऋषयो गंधर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवंतं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथुङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वंद्वश उपासते ॥ १८ ॥ लक्षोत्तरं सार्द्धनवकोटियोजनपरिमंडलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुंक्ते ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमंडलवर्णनंनामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ राजोवाच ॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥ १ ॥ स होवाच ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशांतरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रांतरे राश्यंतरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥ २ ॥

हैं ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ बाईसवें अध्यायमें चंद्रमा और शुक्रआदिका उत्तरोत्तर स्थान और उन उन ग्रहोंकी गतिपरसे मनुष्यलोकके शुभ अशुभ फलका निरूपणा होगा ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने पूंछा कि–ये भगवान् सूर्यनारायण कि– जो ध्रुव और मेरुको दाहनी तरफ रखकर, फिरा करते हैं; उनकी राशियोंके सन्मुख और मेरु और ध्रुव बायीं तरफ रहे इस तरहकी गति जो आप कह आये हो इसमें बिलकुल विरोध प्रतीत होता है. सो इस विरुद्ध बातका हम किस प्रकार निश्चय करें ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–जैसे कु-

म्हारके चाकपर चलतेहुए चींटीआदि प्राणी, इस फिरतेहुए चाकके साथ फिरते हों तोभी उनकी गति चाककी गतिसे जुदीही है; क्योंकि चाकके एक एक भागको त्याग कर, दूसरे दूसरे भागोंमेंभी वे आते प्रतीत होते हैं. इसीप्रकार नक्षत्रसंबंधी राशियोंसे प्रतीत होता कालचक्र कि—जो ध्रुव और मेरुको प्रदक्षिण करके दौड़ा चला जाता है, उसके साथ उसमें रहनेवाले सूर्यादिक ग्रह यद्यपि फिरा करते हैं तथापि इन ग्रहोंकी गति अपनी जुदीही है क्योंकि कालचक्रके एक एक भागको छोड़कर दूसरे नक्षत्रोंमें और दूसरी राशियोंमें वे आते प्रतीत होते हैं. अर्थात् कालचक्रकी गतिसे उनके मेरु व ध्रुव दाहिनी तरफ रहते हैं. परंतु अपनी गतिसे वे राशियोंके सन्मुख चलते हैं. तासों उनके मेरु और ध्रुव बायीं तरफ रहते हैं ॥ २ ॥ विद्वान्‌लोग वेद-



स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसंतादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति ॥ ३ ॥ तमेतामिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजंतोऽजसा श्रेयः समधिगच्छंति ॥ ४ ॥ अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरंतरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुंक्ते राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशंति यावता षष्ठमंशं भुंजीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥

द्वारा जिनका स्वरूप जानना चाहते हैं ऐसे ये भगवान् सूर्यनारायण, लोकोंके कल्याणके अर्थ वेदमय और उस उस कालके नियमसे कर्मोंकी शुद्धिके कारणरूप, अपने स्वरूपके बारह बारहप्रकारसे विभाग करके वसंतआदि छः ऋतुओंमें प्राणियोंके प्रारब्धके अनुसार शीत व उष्णआदि ऋतुओंके धर्मोंको प्रगट करते हैं ॥३॥ वर्णाश्रमके आचारके अनुसार चलनेवाले लोक वेदविहित उच्चनीचकर्मोंसे और योगके अंगोंसे श्रद्धापूर्वक उन सूर्यका पूजन करते हैं. और उससे उनका विनाश्रम कल्याण होता है ॥४॥ स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें जो अंतरिक्ष है उसके बीच कालचक्रगत और लोकोंके आत्मा यह सूर्य, वर्षके अवयवरूप बारह महीनोंको भोगते हैं. जो महीने राशियोंपरसे नियत किये गये हैं. दो पक्षका जो महीना गिना जाता है वह चंद्रमाके हिसाबसे है. सूर्य सवादो

नक्षत्र भुगत चुके वहभी महीना कहलाता है. एक महीनेका पितरोंका अहोरात्र होता है. सूर्य जितने कालमें दो राशियोंको भोग लेवें वह काल ऋतु इस नामसे प्रसिद्ध है जो ऋतु वर्षका अवयव रूप है ॥ ५ ॥ सूर्य जितने समयमें आकाशके अर्ध-भागमें फिरलें वह अयन इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ और स्वर्ग व पृथ्वीके मध्यगत सकल आकाशमंडलमें जितने कालमें सूर्य फिरलें वह काल वर्ष इस नामसे प्रसिद्ध है. एक वर्षमें मंद, शीघ्र व समान ऐसी तीन प्रकारकी सूर्यकी गतियां होतीं हैं. संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर इसतरह वर्षभी जुदे २ हिसाबसे पांच प्रकारका है. ( शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिन संक्रांति होवे तो उस दिनसे सौरमास और चांद्रमास दोनोंका आरंभ होताहै और ऐसे वर्षका नाम संवत्सर कहलाता है

अथ च यावताऽर्द्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथ च यावन्नभोमंडलं सह-द्यावापृथिव्योर्मंडलाभ्यां कात्स्न्र्येन सह भुंजीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं व-त्सरमिति भानोर्मांद्यशैध्र्यसमगतिभिः समामनंति ॥ ७ ॥ एवं चंद्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्ल-क्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभु-क्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुंक्ते ॥ ८ ॥ अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च क-लाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्ष-त्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुंक्ते ॥ ९ ॥

फिर सूर्यके हिसाबसे छे ६ दिन बढ़ते हैं और चंद्रमाके हिसाबसे ६ दिन घटते हैं इसतरह बारह दिनका अंतर पड़नेसे सौर और चांद्रमास आगे पीछे हो जाते हैं. सो पांच वर्षोंके बीच दो अधिक मास पड़नेसे छठे वर्ष दोनोंका हिसाब बराबर मिल जाता है और फिर प्रतिपदाके दिन संक्रांति होनेसे छठा वर्ष संवत्सर कहलानेमें आता है. इसतरह पहला वर्ष संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इड़ावत्सर, चौथा अनुवत्सर और पांचवां वत्सर कहलाता है ) ॥ ७ ॥ इसीप्रकार चंद्रमा, सूर्यकी किरणोंसे ऊपर लाख योजन दूर ज्ञात होता है. सूर्य एक वर्षमें जितना चलते हैं चंद्रमा उतना दो पक्षोंमें चलता है. सूर्य एक महीनेमें जितना चलते हैं उतना चंद्रमा सवादो दिनमें चलता है. सूर्य पक्षमें जितना चलते हैं उतना चंद्रमा एक दिनमें चलता है. क्योंकि चंद्रमाकी गति ऐसीही अतिशीघ्र और उग्रगति है॥८॥चंद्रमाकी कलायें पूर्ण होती जायं यह तो शुक्लपक्ष और घटती जांय यह कृष्णपक्ष कहलाता

है. इन दोनों पक्षोंसे देवता व पितरोंके अहोरात्रको बनाता अन्नमय होनेसे सकल प्राणीमात्रका प्राणरूप और समस्तजीवोंका जीवनरूप यह चंद्रमा साठ साठ घड़ीमें एक एक नक्षत्रको भोगता है ॥९॥ सोलह कलावाले, मनोमय, अन्नमय व अमृतमय भगवान् इस चंद्रमाका स्वभाव देव, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और लतानको तृप्ति व जीवन देनेवाला होनेसे पुरुषमय चंद्रमाको सर्वमय कहाकरते हैं ॥१०॥ चंद्रमासे ऊपर तीनलाख योजन दूर नक्षत्र हैं कालचक्रके अंदर ईश्वरके जोड़ेहुए ये नक्षत्र मेरुकी प्रदक्षिणा किया करते हैं. इनकी संख्या अभिजित् नक्षत्रके साथ अट्ठाईस २८ है ॥ ११ ॥ नक्षत्रोंसे दोलाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देते

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयंति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥ तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमांद्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टंभग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥ उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत तदाऽतिवाताऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥ १३ ॥ अत ऊर्ध्वमंगारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुंक्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥

हैं. यह शुक्र सूर्यके आगे अथवा पीछे अथवा साथ शीघ्र, मंद व समान गतिसे प्रायः सूर्यके समान फिरा करते हैं. ऐसे इनको चार गतिपरसे जाना जाता है. यह शुक्र लोकोंके वास्ते सदा शुभ हैं. और जो ग्रह वृष्टिका प्रतिबंधक होवे उसेभी यह शांत कर देते हैं ॥१२॥ बुधभी शुक्रके जैसेही हैं. शुक्रसे ऊपर दोलाख योजन दूर चंद्रमाके पुत्र बुध रहते हैं. वह बहुधा सबका शुभ करते हैं, परंतु जब सूर्यसे जुदा पड़ जाते हैं, तब उनका अतिचार हो जानेसे खाली बादल और अनावृष्टिआदि भय होनेकी सूचना करते हैं ॥ १३ ॥ बुधसे ऊपर दोलाख योजन दूर मंगल हैं. वह जो वक्र न होवें तो तीन तीन पक्षमें एक एक राशिको भोगते

हैं. और प्रायः अशुभ तथा दुःखके सूचक हैं ॥ १४ ॥ मंगलसे ऊपर दोलाख योजन दूर बृहस्पति हैं. वह वक्र न होवें तो प्रायः एक एक वर्षमें एक एक राशिको भोगते हैं. और ब्राह्मणोंके सदा अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥ बृहस्पतिसे ऊपर दो लाख योजन दूर शनैश्वर हैं. वह एक एक राशिको तीस तीस महीनोंमें भोगते हैं. और उतनेही यानी तीसही बरसोंमें सब राशियोंपर आजाते हैं. यह शनिश्चर बहुधा सबके अशांतिकारक हैं ॥ १६ ॥ शनैश्चरसे ऊपर ग्यारह लाख योजन दूर सप्तर्षि दीख पड़ते हैं. जो लोकोंका कल्याण करते, ध्रुवके स्थितिरूप भगवान्‌के परमपदको प्रदक्षिणा करते फिरते हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे

तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनांतरगतो भगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥ तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलंबमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशांतिकरः ॥ १६ ॥ तत उत्तरस्माद्दृषय एकादशलक्षयोजनांतर उपलभ्यंते य एव लोकानां शमनुभावयंतो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमंति ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनांतरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदंति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेंद्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥

पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें ज्योतिश्चक्रके आश्रयरूप ध्रुवका स्थान और शिशुमारके रूपसे हरि भगवान्‌की स्थिति कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—सप्तर्षियोंसे ऊपर तेरहलाख योजन दूर लोकप्रसिद्ध विष्णु भगवान्‌का परमपद है ऐसे कहलाता है. इस विष्णुपदमें महावैष्णव उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव कि जो कल्पपर्यंत जीनेवालोंके आधाररूप हैं और जिनका प्रभाव इसी ग्रंथमें पूर्व वर्णन हो चुका है, वह रहते हैं. इन ध्रुवके साथ एकही समयमें जोड़ेहुए अग्नि, इंद्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म अबतकभी प्रदक्षिणा करते फिरा करते हैं ॥ १ ॥

कदापि जिसकी गति बंद नहीं होती ऐसा बड़ा बेगवाला महासमर्थ काल जिन्हें फिराया करता है ऐसे नक्षत्र और ग्रहआदि सब ज्योतिर्गणोंको बांधकर रखनेवाले एक ठूंठसे ईश्वरके बनाये हुये यह ध्रुव निरंतर प्रकाशते हैं. जैसे धान्यको गाहने ( माड़ने ) के वास्ते मेढीस्तंभ ( कीली ) में बंधेहुए बैल अपने अपने स्थानमें रहकर समय समयपर कीलीके आश्रयसे फिरा करते हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकार कालचक्रके भीतर और बाहर जुड़ेहुए ग्रहआदि तारा कि-जिन्हें वायु धक्का दिया करते हैं वे ध्रुवके आश्रयसेही कल्पसमाप्तिपर्यंत फिरा

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टंभ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ २ ॥ यथा मेढीस्तंभ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मंडलानि चरंत्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नंतर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलंब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पांतं परिचंक्रमंति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तंते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतंति ॥ ३ ॥ केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयंति ॥ ४ ॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुंडलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लांगूले प्रजापतिरग्निरिंद्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्या सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्तकुंडलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयंति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुंडलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवंति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगंगा चोदरतः ॥ ५ ॥

करते हैं जैसे बादल और श्येन ( बाज ) आदि पक्षी अपने २ कर्मकी सहायतासे वायुके आधीन रहकर, आकाशमें फिरा करते हैं परंतु नीचे नहीं पड़ते; इसीतरह प्रकृतिपुरुषके संयोगसे अनुग्रह पायेहुए और अपने २ कर्मोंसे जिनकी गति बनायी गयी है ऐसे ये ज्योतिर्गण पृथ्वीपर नहीं पड़ते ॥ ३ ॥ कितनेएक विद्वान् कहते हैं कि-यह ज्योतिश्चक्र भगवान्‌की योगधारणामें बैलके आकारसे रहा है ॥ ४ ॥ शिर फिराकर, कुंडलाकार हो, बैठेहुए इस ज्योतिश्चक्ररूप बैलकी पुच्छके अग्रपर तो ध्रुव

हैं. पुच्छके अग्रसे अधोभागमें प्रजापति, अग्नि, इंद्र व धर्म ये हैं, पुच्छके मूलभागमें धाता और विधाता हैं. सप्तर्षि कटिभागमें हैं. दाहिनी तर्फ कुंडलाकार शरीरवाले इस बैलके दक्षिण पार्श्वमें अभिजित्आदि पुनर्वसुपर्यंत चौदह उत्तरचारी नक्षत्र स्थित हैं पुष्यआदि उत्तराषाढ़ापर्यंत दक्षिणचारी चौदह नक्षत्र वाम पार्श्वमें स्थित हैं. इस कुंडलीभूत शिशुमारचक्रके अवयव दोनों पार्श्वमें समसंख्यावाले हैं. अजवीथी इसकी पीठपर हैं. आकाशगंगा उदरमें हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु दक्षिणनितंबपर है. पुष्य वामनितंबपर है. आर्द्रा पिछले दक्षिण चरणमें है. आश्लेषा पिछले वामचरणमें है. अभिजित् दक्षिणनासिकापर है. उत्त-

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राऽऽश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तरा-षाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठामूलं च दक्षि-णवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्टनक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युंजीत तथैव मृगशीर्षादीन्यु-दगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुंजीतशतभिषाज्येष्ठे स्कंधयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चांगारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्ष-स्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चंद्रो नाभ्यामुशनास्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वांगेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥

राषाढ़ा वामनासिकापर है. श्रवण दक्षिणनेत्रमें है, पूर्वाषाढ़ा वामनेत्रमें हैं. धनिष्ठा दक्षिण कर्णमें, मूल वामकर्णमें है. मघाआदि आठ दक्षिणचारी नक्षत्र वामपार्श्वके अस्थियोंमें हैं. मृगशिरआदि आठ उत्तरचारी नक्षत्र उससे उलटे यानी दक्षिणपार्श्वके अस्थियोंमें स्थित हैं शतभिषा दक्षिणकंधेपर. और ज्येष्ठा वाम कंधेपर स्थित है ॥ ६ ॥ ऊपरके होंठमें अगस्त्य, नीचेके होंठमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनैश्चर, ककुद ( लाठ ) में बृहस्पति, वक्षःस्थलमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चंद्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, केतु सब अंगोंमें और रोमकूपमें सर्वतारागण विद्यामान है ॥ ७ ॥

प्रतिदिन संध्यासमयमें सावधान हो, मौनव्रत धारण कर, भगवान्के इस ज्योतिश्चक्ररूप सर्वदेवतामय रूपका दर्शन करते २ इस मंत्रसे स्तुति करनी- तेजके आश्रयरूप, कालचक्ररूप और देवतानके स्वामी महापुरुषका हम ध्यान करते हैं और नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ ग्रह, नक्षत्र और तारामय, अधिदैवतरूप और त्रिकालसमयमें पूर्वोक्त मंत्रका जप करनेवालोंका पाप मिटानेवाले इस शिशुमार चक्रको तीनों समयमें जो मनुष्य नमस्कार करे अथवा स्मरण करे उस मनुष्यका उस उस समयका पाप तुर्त नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषा-

एतदुहैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषांपतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥ ग्रहर्क्षताराममयमाधिदैविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे शिशुमारसंस्थानवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं चाऽलभत भगवदनुकंपया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥ यददस्तरणेर्मंडलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबंधः सूर्याचंद्रमसावभिधावति ॥ २ ॥

टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ चौबीसवें अध्यायमें सूर्यके नीचे अनुक्रमसे राहुआदिकी स्थिति और अतलआदि सात पातालोंकी मर्यादानका वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-सूर्यसे नीचे दश हजार योजन दूर नक्षत्रकी भांति राहु फिरता है ऐसे कितनेएक आचार्य कहते हैं. दैत्योंमें अधम और सिंहिकाका पुत्र राहु भगवान्की कृपासे अमरताको और ग्रहभावको स्वयं योग्य न होनेपरभी प्राप्त हुआ है. इस राहुके जन्म और कर्मोंका वर्णन आगे (अष्टमस्कंधमें) किया जायगा ॥ १ ॥ सबको तपानेवाला सूर्यका मंडल दशहजार योजनप्रमाण है. बारहहजार योजनप्रमाण चंद्रमाका मंडल है, और राहुका मंडल तेरहहजार योजनका है ऐसे कहते हैं. यह राहु अमृतपान करते समय सूर्य और चंद्रमाके बीचमें जाकर बैठा था, वहां

उन्होंने सूचित किया कि– यह दैत्य है देवता नहीं है. तब विष्णु भगवान्‌ने अपने चक्रसे राहुका शिर उड़ा दिया. इसी बैरके हेतु अमावास्याके दिन सूर्यके सन्मुख और पूर्णिमाके दिन चंद्रमाके सन्मुख दौड़ा करता है इसे देखकर, दोनोंकी रक्षाके वास्ते भगवान्‌ने अपना प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्र रख छोड़ा है. जिसे तेजके हेतु कोईभी सह नहीं सकता, उसे वारंवार फिरता देखकर, केवल मुहूर्तमात्र उसके सन्मुख खड़ा रहकर, उद्वेग पाताहुआ राहु त्रासके कारण दूरहीसे पीछा लौट जाता है. जितनी देरतक राहु खड़ा रहता है उतने समयको लोक ग्रहण कहकर, पुकारते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ इस राहुसे नीचे दशहजार योजन दूर सिद्ध,

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदंति लोकाः ॥ ३ ॥ ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥ ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमंतरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यंते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनांतर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतंतीति ॥ ६ ॥ उपवर्णितं भूमेर्यथा संनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्तभूविवरा एकैकशो योजनायुतांतरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥ ७ ॥

चारण और विद्याधर लोगोंके स्थान हैं ॥ ४ ॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतलोगोंके यूथोंके खेलनेका स्थान अंतरिक्ष है, जहांतक वायु तीव्रवेगसे बहती है. और जहांतक बादल देखनेमें आते हैं ॥ ५ ॥ उस अंतरिक्षके नीचे सौ योजन दूर यह पृथ्वी है. जहां हंस, भास,श्येन ( बाज ) व गरुडआदि पक्षीप्रवर सौ योजनतक ऊंचे उड़ा करते हैं ॥ ६ ॥ पृथ्वीकी जैसी स्थिती है वह मैं आपसे कह चुका हूं. पृथ्वीके तलेभी सात पाताळ हैं. वे प्रत्येक दश २ हजार योजनकी उंचाई और चौड़ाईसे कल्पन किये गये हैं. सातोंके नाम– अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल रसातल, और पाताळ हैं ॥ ७ ॥

इन बिलरूप स्वर्गोंमें अर्थात् पातालोंमें कामभोग, ऐश्वर्य, आनंद और विभूति स्वर्गसेभी अधिक है, तासों घर, उपवन, विहारभूमि और रमण करनेकी भूमियोंमें अद्भुत समृद्धि बन रही है. इन स्थानोंमें घरोंके अधिपति दैत्य दानव और नागलोक कि–जिनकी इच्छा ईश्वरसे प्रतिहत नहीं होती वे मायासे विनोद करते निवास करते हैं. इन लोगोंके स्त्री, संतान, बंधु, पितर और अनुचर निरंतर आनंद व स्नेहसे सदा संपन्न रहते हैं ॥ ८ ॥ महाराज! इन पाताल लोकोंमें मायावी मयदैत्यकी बनायी सुशोभित नगरियोंमें विचित्र भवन, प्राकार, गोपुर, सभा, विश्रामस्थान, चौहटा और दूसरेभी अनेक स्थान अनेक प्रकारकी उत्तम और मु-

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानंदविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडाविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबंधुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसंति ॥ ८ ॥ येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥ उद्यानानि चातितरां मनइंद्रियानंदिभिः कुसुमफलस्तवकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लतांऽगालिंगितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहंगमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लंघनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिंद्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥

ल्य मणियोंके बने हैं. नाग और असुर लोगोंके मिथुन व पारावत, तोता और मैनानसे व्याप्त कृत्रिम भूमियोंवाले पातालाधिपतियोंके उत्तम भवन प्रकाश रहे हैं ॥ ९ ॥ देवलोककी शोभासे बढ़कर, शोभावाले जहां बाग बगीचे हैं; जो मन व इंद्रियोंको सदा आनंदित करते हैं. पुष्प, फल, गुच्छक व सुंदर किसलयोंसे नम्रभूत सुंदर शाखावाले और लतानसे आलिंगन किये-हुए वृक्ष जहां शोभायमान हैं. निर्मल जलसे भरेहुए जलाशयोंके अंदर अनेक प्रकारके पक्षी मिथुनोंकी अधिकतर शोभा जहां छा रही है. मछलियोंके उछलनेसे जिनके जलके अंदर भारी आंदोलन हो रहा है ऐसे जलाशयोंके बीच प्रकटित कमल, कुमुद,

कुवलय, कल्हार, नील, उत्पल व रक्तकमलआदिके वनोंमें रहेनेवाले पक्षियोंके अखंड विहारसे आकुल व मधुर अनेक प्रकार-के शब्दआदिसे इंद्रियोंको जहां अधिकतर आनंद मिला करता है ॥ १० ॥ जहां सूर्यआदि न होनेसे अहोरात्रआदि कालके विभागका बिलकुल भय नहीं है ॥ ११ ॥ जहां बड़े २ नागलोगोंकी उत्तम मूर्द्धमणियांही अंधकारका नाश करती हैं ॥ १२ ॥ इन पातालोकोंमें जो निवास करते हैं उनके दिव्य औषधि, रस, रसायन, अन्न, पान व स्नानके हेतु आधि, व्याधि, पलित

यत्र ह वा व न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधंते ॥ १२ ॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गंध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोवस्थाश्च भवंति ॥ १३ ॥ न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवंति पतंति च ॥ १५ ॥ अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयंति यस्य च जृंभमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यंत स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयंति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदांध इव ॥ १६ ॥

( धोयेबाल ), बली ( शरीरके अंदर सल ) और जराआदि देहकी अवस्था और विवर्णपन, दुर्गंधता, पसीना, परिश्रम के ग्लानि कुछभी नहीं होता ॥ १३ ॥ इन महाकल्याणरूप लोगोंका भगवान्के तेजरूप चक्रके शिवाय दूसरे किसीसेभी मृत्यु नहीं होती ॥ १४ ॥ जब चक्र पातालमें आता है तब दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ भयसे झर जाते हैं और पड़ जाते हैं ॥ १५ ॥ अतल नाम पहले पातालमें मय दानवका पुत्र बलसुर नाम दानव रहता है, जिसकी प्रगट कीहुई छानवे ९६ प्रकारकी मायाओंमेंसे कितनी एक माया अबतक मायावी लोग धारण करते हैं यह बलासुर जंभाई खाता था तब इसके मुखमेंसे स्वैरिणी ( अपनी

जातके पुरुषसे प्रीति रखनेवाली ) कामिनी ( परजातिके पुरुषसेभी प्रीति करनेवाली ) और पुंश्चली ( किसी प्रकारका नियम न रखते अतीव व्यभिचार करनेवाली ) जातिवाली स्त्रियोंके तीन यूथ प्रगट हुए. ये स्त्रियां पातालमें जो पुरुष जाता है उसे सुवर्णरसके पानेसे संभोग करनेमें समर्थ बनाकर, अपने विलास, अवलोकन, स्नेहभरा मंदहास, भाषण व आलिंगनआदिसे इच्छानुसार रमण कराती हैं. इस रसके पीनेसे मनुष्यमें दश हजार हाथियोंका बल आ जाता है, उससे वह पुरुष ' मैं ईश्वर हूं मैं सिद्ध हूं ' ऐसे अभिमानसे मदांधकी तरह बका करता है ॥ १६ ॥ उससे नीचे वितललोकमें अपने पार्षदरूप भूतगणसे घिरे हुए साक्षात् हाटकेश्वर महादेव, ब्रह्माजीकी सृष्टि बढानेके वास्ते पार्वतीके साथ मिथुन होकर, विराजते हैं इन महादेव और पार्व-

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान्हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेंद्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयंति ॥ १७ ॥ ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेंद्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकंपयैव पुनः प्रवेशित इंद्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवंतमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥ १८ ॥

तीके वीर्यसे हाटकी नाम बडी नदी बहती है. पवनके उत्तेजनसे अग्नि इस वीर्यको पराक्रमसे पी जाता है. और पीकर, पीछा उगलता है. वह हाटक नाम सुवर्ण पैदा होता है, इस सुवर्णको बड़े २ दैत्योंके अंतःपुरोंमें स्त्री व पुरुष सब आभूषण बना २ कर, धारण करते हैं ॥ १७ ॥ वितलके तले सुतललोकमें पवित्रकीर्ति, विरोचनका पुत्र बलिराजा रहता है. इंद्रका प्रिय करनेकी इच्छासे भगवान्‌ने अदितिके उदरमें अवतार धर कर, बटुक वामनके रूपसे त्रिलोकीका राज्य हरण किया. परंतु दया आ जानेसे भगवान्‌ने पीछा उस बलिको सुतललोकमें रक्खा, इंद्रादिकोंके पासभी नहीं ऐसी समृद्धिवाली लक्ष्मी उसके पास है. आराधन करनेयोग्य भगवान्‌कीही स्वधर्मसे वह भक्ति करता रहता है. और निर्भयरीतिसे अबतक वह वहीं रहता है ॥ १८ ॥

सर्व जीवोंके नियंता, आत्माराम, उत्तम पात्र, सर्वके जीवरूप और स्वरूपभूत परमात्मा भगवान् दानके पात्र मिलनेसे इस बलिराजाने बड़े आदरसे सावधानचित्त होकर, पृथ्वीका दान दिया. जो साक्षात् मोक्षका द्वार है. उसके फलकी रीति पर उसे पातालका राज्य मिला ऐसे कल्पना करना यह कथमपि नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ क्योंकि छींक पड़जाना या ठोकर खानाआदि अवस्थाओंमें परवश होकरभी जो मनुष्य एकवारभी भगवान्का नाम ले तो कर्मबंधन कि- जिनको तोड़नेके वास्ते मुमुक्षुलोग सांख्य और योगआदि साधन साधनेको अनेक प्रकारके दुःख पाया करते हैं उन बंधनोंको अनायाससे तोड सकता

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥ १९ ॥ यस्य ह वा व क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबंधनमंजसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभंते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥ न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥ यत्तद्भगवताऽनधिगतान्योपायेन याञ्चाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रति मुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥

है ॥ २० ॥ वे प्रभु कि-जो भक्तोंको अपना स्वरूप देनेवाले और ज्ञानी लोगोंको ज्ञानके देनेवाले तथा अत्यंत प्रिय हैं उनको पृथ्वीदान देनेका फल मोक्षही होना उचित है ॥ २१ ॥ वस्तुतः विचार किया जाय तो भगवान्ने बलिराजा पै अनुग्रहही नहीं किया; क्योंकि मायामय राज्यका ऐश्वर्य कि- जो आत्मस्वरूपके स्मरणका नाश करनेवाला है वह उसे दिया ॥ २२ ॥ भगवान्को जब दूसरा कुछभी उपाय न दीख पडा. तब भीख मांगनेका छल करके उसके केवल शरीरमात्रको अवशेष रखकर, सब त्रिलोकीका राज्य छीन लिया, फिर वरुणपाशसे बाधा और पर्वतकी गुफाके समान पाताललोकमें गिराया, तथापि उस समय

बलिराजाने इसप्रकार कहा कि- ॥ २३ ॥ इंद्रने यदपि विचार करनेके वास्ते बृहस्पतिको गुरु थाप रक्खा है. तथापि वह अपने सच्चे स्वार्थमें निपुण नहीं है, क्योंकि भगवान्‌कोही मांग लेना चाहिये था. वहां उसके बदले भगवानको मेरेपास भेज कर, उसने भगवान्‌से राज्यसुख जाँचा, परंतु भगवान्‌का दासभाव नहीं मांगा. एकमन्वंतरमें फिर जानेवाला त्रिलोकीका राज्य, इंद्रको इतने परिश्रमसे मिला, वह अत्यंत गंभीर वेगवाले कालके सामने क्या चीज है ? ॥ २४ ॥ हमारे दादा प्रल्हादजी अपने स्वार्थमें बड़े निपुण थे, क्योंकि उनका पिता हिरण्यकशिपु मारागया, तब भगवान् यदपि उन्हें उनके पिताका निष्कंटक राज्य देने

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविंद्रो यस्य सचिवो मंत्राय वृत एकांततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेंद्रेणाऽऽत्मानमयाचताऽऽत्मनश्चाऽऽशिषो नो एव तद्दास्यमतिगंभीरवयसः कालस्य मन्वंतरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥ यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न-तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥ २५ ॥ तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वाऽस्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥ २६ ॥ तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकंपितहृदयो येनांगुष्ठेन पदा दशकंधरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥

लगे, तथापि यह अनित्य और भगवान्‌से भिन्न है ऐसे जानकर, उसे स्वीकार न करते उन्होंने भगवान्‌का दासभावही मांगा ॥ २५ ॥ भगवान्‌की कम कृपावाला हमारे जैसा जन कि-जिसके रागद्वेषादिक क्षीण नहीं हुए हैं वह तो इन महानुभाव प्रल्हादजीके मार्गके अनुसार चलनेकी इच्छाभी कैसे करे ? ॥ २६ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि-इस बलिराजाका चरित आगे ( अष्टमस्कंधमें ) वर्णन किया जायगा. जिसके द्वारपर साक्षात् सर्वजगत्‌के गुरु और अपने भक्तोंपर परमकृपा करनेवाले नारायण भगवान् हाथमें गदा लिये निरंतर खड़े रहते हैं. जिस समय दशशिर रावण दिग्विजय करता २ सुतललोकमें आया. तब इन वामन भगवान्‌ने अपने चरणके अंगूठेसे

उसे लाखों योजन दूर चला दिया था ॥ २७ ॥ सुतललोकके नीचे तलातललोकमें त्रिपुरका अधिपति मयनाम बड़ा दानव रहता है. त्रिलोकीके सुख करनेकी इच्छासे महादेवने इसके तीनों पुर भस्म करके फिर कृपा कर, यह स्थान उसे दिया है. यह मायावी लोकोंका आचार्य मयदानव महादेव रक्षक होनेसे सुदर्शनचक्रकाभी भय न रखकर, तलातल लोकमें पुजाता है ॥ २८ ॥ तलातल लोकके तले महातललोकमें अनेक सिरवाले कद्रूके पुत्र सर्पलोगोंका क्रोधवश नाम गण रहता है, इनमें कुहक, तक्षक,

ततोऽधस्तात्तलातले मयोनाम दानवेंद्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥ ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवंतः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुंबसंगेन क्वचित्प्रमत्ता विहरंति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसंति ये वै सरमयेंद्रदूत्या वाग्भिर्मंत्रवर्णाभिरिंद्राद्बिभ्यति ॥ ३० ॥

कालिय और सुषेणआदि सर्प मुख्य माने जाते हैं. बड़े कायवाले ये सर्पलोग भगवान्के वाहन गरुड़जीसे निरंतर उद्विग्न रहा करते हैं. तथापि किसी समय अपने स्त्री, पुत्र, संबंधी और कुटुंबके प्रसंगसे असावधान होकर, क्रीड़ा करते हैं ॥ २९ ॥ उससे नीचे रसातल लोकमें निवातकवच कालेय और हिरण्यपुरवासी ये तीन यूथवाले पणिनाम दैत्य और दानव रहते हैं. ये देवतानके शत्रु जन्मसेही पराक्रमी और बड़े साहसी हैं. तथापि सर्व लोकोंमें अखंड प्रभाववाले भगवान्के सुदर्शनचक्रसे उनके बलका अभिमान प्रतिहत हो जानेके कारण वे जैसे बिलमें सर्प रहते हैं ऐसे रसातल लोकमें रहा करते हैं. एक कुत्ती कि-जो इंद्रकी

१ वेदमें ऐसी आख्यायिका है कि-पणिनाम दैत्योंकी छिपाई हुई गायें तलाश करनेके वास्ते इंद्रने एक देवशुनीनाम कुत्ती भेजी. संधि करनेकी इच्छासे पणिदैत्य

द्गती है उसकी उच्चारण की हुई मंत्ररूप वाणी सुनकर, ये लोक इंद्रसे डरा करते हैं ॥ ३० ॥ रसातलके तले पाताल नाम सातवें लोकमें बड़े शरीरवाले और महाक्रोधी बड़े २ नाग लोक रहते हैं. इन सबका राजा वासुकि नाग हैं. शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड कंबल, अश्वतर और देवदत्तआदि नाग इनमें मुख्य माने जाते हैं. पांच, सात, दश, सो, हजार शिरवाले ये नागलोग अपने फणोंपर विद्यमान बड़े प्रकाशवाली उत्तम मणियोंकी कांतिसे पातालके गाढ अंधकारको

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शंखकुलिकमहाशंखश्वेतधनंजयधृतराष्ट्रशंखचूड-कंबलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसंति येषामु ह वै पंचसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमंति ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रांतर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनंत इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं संकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥ यस्येदं क्षितिमंडलं भगवतोऽनंतमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥

नाश कर देते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ पचीसवें अध्यायमें सातवें पातालके नीचे शेषजीकी स्थिति और शेषजीसे प्रलयकालमें इस जगत्का संहार करनहारे श्रीरुद्रके प्राकट्यका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—पातालके तले तीस हजार योजन दूरपर शेषजी विराजे हैं. जो भगवान्का तमोगुणी अंश कहलाते हैं ये अहंकारके अधिष्ठाता है. और अहंकाररूपसे देह और आत्माको एक मनाय देते हैं. इसीलिये पंचरात्रके सिद्धांतकी निष्ठावाले पुरुष उन्हें संकर्षण कहा करते हैं ॥ १ ॥ अनंतमूर्ति और सहस्र शिरवाले



उस कुत्तीसे कहते हैं कि—तेरी क्या इच्छा है ? इत्यादि तब संधि करना न चाहती वह कुत्ती इंद्रकी स्तुतिपूर्वक पीछा कठोर वचन कहती है कि—हे पणियो ! तुम इंद्रके हाथसे मरकर, सो रहो यह उसका वचन सुनकर, ये पणि सदा इंद्रसे डरते रहते हैं ॥

जिन शेषजीके एक शिरपर विद्यमान यह भूमंडल सर्षप (सिरसों) के दानेके समान प्रतीत होता है ॥ २ ॥ जो शेष भगवान् प्रलयकालमें इस जगत्का संहार करना विचारते हैं, तब क्रोधसे कुटिल और घूमती उनकी भ्रुकुटिके मध्यसे सांकर्षण नामक त्रिलोचन व त्रिशिख ग्यारह रुद्रगण त्रिशूल हाथमें लिये प्रगट होते हैं॥ ३॥ उत्तम भक्तलोगोंके साथ परमभक्तिसे प्रणाम करतेहुए नागलोक देदीप्यमान कुंडलकी कांतिसे शोभायमान कपोलवाले और अतिसुंदर अपने मुखको जिन शेष भगवान्के चरणकमलयुगलसंबंधी रक्त व स्वच्छ मणिसदृश नखस-

यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरंतरेण सांकर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्यांघ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषंडमंडलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकांतभक्तियोगेनावनमंतः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुंडलप्रभामंडितगंडस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयंति ॥ ४ ॥ यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वंगवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तंभेष्वगुरुचंदनकुंकुमपंकानुलेपेनावलिंपमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणाऽवलोकनयनवदनारविंदं सव्रीडं किल विलोकयंति ॥ ५ ॥ स एव भगवाननंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥

मूहमें आनंदपूर्वक देखा करते हैं॥ ४॥ संसारसंबंधी सुखकी कामनावाली नागकन्यायें जिन शेष भगवान्के कंकणसे शोभायमान स्वच्छ, मोटे व धोले, अत्यंतसुंदर भुजारूप रौप्यस्तंभोंमें अगरु, चंदन व केसरके पंकसे लेपन करते समय उनके स्पर्शसे विकारयुक्त हृदयमें कामदेवका आवेश होनेसे अत्यंत मनोहर रीतिसे मंद २ मुसकुराती हैं. और उनका मुखारविंद कि–जो स्नेह व मदसे आनंदयुक्त तथा मदसे घूमती व राती करुणाभरी रीतिसे अवलोकन करनहारी दृष्टिवाला है, उसे लज्जासहित देखा करती हैं ॥ ५ ॥ वे अनंत गुणोंके समुद्ररूप, अनंत व आदिदेव, शेषनाग अभी अमर्ष व क्रोधके वेगको रोककर, लोकोंके कल्याणके वास्ते

विराजते हैं ॥ ६ ॥ सुर, असुर, नाग, सिद्ध, विद्याधर और मुनिलोग उनका ध्यान करते हैं. उनके नेत्र सदा मदके हेतु विकारयुक्त विह्वल और आनंदभरे रहा करते हैं. सुंदरभाषणरूप अमृतसे अपने बड़े २ पार्षद और देवलोकके अधिपतियोंको सदा आनंद दिया करते हैं. नीलांबर ओढ़े, एक कुंडल धारण किये, हलके ऊपर अपना अतिसुंदर हाथ रखकर, विराजमान, ये महात्मा शेष भगवान् इंद्रका हाथी जैसे सुवर्णकी तंग धारण करे ऐसे अपनी वैजयंतीनाम वनमालाको बड़ी लीलाके साथ धारण किये हैं. जिसकी कांति कदापि न्यून नहीं होती नवीन ऐसी तुलसीके सुगंधमय मकरंदरससे मदोन्मत्त होतेहुए अनेक भ्रमर इस

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगंधर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयंतीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुंडलो हलककुदि कृतसुभगसुंदरभुजो भगवान्माहेंद्रो वारुणेंद्र इव कांचनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥ ७ ॥ य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रंथिं सत्त्वरजस्तमोमयमंतर्हृदयंगत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुंबुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥ ८ ॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाऽधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥

मालापर मधुरगान करते शोभा देते हैं ॥ ७ ॥ जो शेषभगवान् इसप्रकार श्रवण करने और ध्यान धरनेसे मुमुक्षु लोगोंके अंतःकरणमें आकर, उनका देहाभिमान कि-जो सत्व, रज व तमोगुणसे बनाहुआ और अनादिकाल संबंधिकर्मवासनाओंसे गुंथाहुआ अविद्यामय है उसे तुर्त काट देते हैं. उनके प्रभावके श्लोक, ब्रह्मपुत्र नारदजीने तुंबुरु गंधर्वके साथ ब्रह्माजीकी सभामें वक्ष्यमाण प्रकारसे गाये थे ॥ ८ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारणरूप सत्वआदि मायाके गुण जिनकी दृष्टि पड़नेसे अपने २ कार्यमें समर्थ होते हैं. और जिनके अनंत व अनादिरूपसे स्वयं एक होनेपरभी अपने स्वरूपमें अनेक प्रकारका कार्य

प्रपंच उत्पन्न हुआ करता है, उन परब्रह्मरूप शेषभगवान्के तत्वको यह लोक किसप्रकार जान सकता है? ॥ ९ ॥ भक्तलोगोंके अंतःकरण वश करनेके वास्ते कीहुई जिनकी उत्तम लीलाको सिंहभी स्वीकार किया करता है ऐसे और जिनके, स्वरूपमेंही यह सब कार्यकारणात्मक जगत् प्रकाशता है तथा जिन्होंने हमपर पूर्ण कृपा करके, यह शुद्धसत्वरूप स्वरूप धारण किया है उन उदार पराक्रमवाले शेषजीको त्यागकर, यह मुमुक्षु पुरुष अन्य किसके शरण जाय? ॥ १० ॥ जिनके अन्य पुरुषके मुखसे सुनेहुएभी नामका यदि महापापीभी पुरुष अकस्मात् अथवा आर्त होकर या ठट्ठा ( ठठोली ) मेंभी उच्चारण करे तो वह

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥ यन्नामश्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलं-भनाद्वा ॥ हंत्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥ मूर्धन्यर्पितम-णुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥ आनंत्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्य-धिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥ एवं प्रभावो भगवाननंतो दुरंतवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतंत्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥ १३ ॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगंतव्या गतयो य-थाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ॥ १४ ॥

नाम तुरंत मनुष्योंके सब पापोंको नाश करता है; उन शेष भगवान्को तजकर, यह मुमुक्षुजन अन्य किसके शरण जाय ? ॥ ११ ॥ अनंतताके हेतु अपार पराक्रमवाले और हजार शिरवाले जो शेष भगवान् अपने एक शिरपर पर्वत, नदियां, समुद्र और सकल प्राणीसहित इस भूमंडलको परमाणुकी तद्वत् धारण करते हैं उनके पराक्रमोंको हजार जीभोंसेभी कौन जन गिन सकता है? ॥ १२ ॥ ऐसे प्रभाववाले, अनंत, अपार बलवाले, स्वतंत्र और अनेक गुण व प्रभाववाले ये शेष भगवान् पातालमूलमें विराजकर, जगतकी रक्षा करनेके वास्ते लीलासे धरणीको धारण करते हैं ॥ १३ ॥ संसारसंबंधी सुखकी कामनावाले मनुष्य अपने २ कर्मसे जो लोक पाते हैं, वे इतनेही हैं कि-जिनका मैं शास्त्ररीतिके अनुसार आपसे वर्णन कर चुका हूं ॥ १४ ॥

महाराज! पुरुषोंको प्रवृत्तिरूप धर्मसे मिलनेवाली और एक एकसे भिन्न २ प्रकारवाली उच्चनीच इतनीही गतियां हैं कि-जिनका वर्णन मैं आपके प्रश्नके अनुसार करचुका हूं. अब और क्या कहें ? ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते म० पु० पंचमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ छब्बीसवें अध्यायमें पृथ्वीके नीचे नरकोंकी स्थिति कही जायगी, कि- जिन नरकोंमें यमदूत पापीलोगोंको यथायोग्य दंड दिया करते हैं ॥ १ ॥ राजाने कहा कि-हे महर्षि ! जीवलोकके सुखदुःखके भोगकी यह विचित्रता क्योंकर है ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- श्रद्धाकी विचित्र-

एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥ १५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥राजोवाच ॥ महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवंति ॥ २ ॥ अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥

तासे फलमें विचित्रता है. जो मनुष्य सात्विकश्रद्धासे कर्म करे उसे केवल सुख मिलता है. जो राजसीश्रद्धासे कर्म करे उसे सुख और दुःख दोनों मिलते हैं. जो तामसीश्रद्धासे कर्म करे उसे केवल दुःख उठाना पड़ता है; और फिर इन्हींके अंतर्गत अनंत भेद और फेरफारके कारण एकप्रकारका कर्म करनेवालोंकोभी जुदी २ गतियां मिलती हैं. प्रयोजन यह है कि-श्रद्धाके तारतम्यसे सबके सुखादिकनमें तारतम्य है ॥ २ ॥ इसीप्रकार अधर्म कि- जिसका वेद व शास्त्रोंमें निषेध किया है, उसका आचरण करनेवालोंकी श्रद्धानमेंभी फेरफार रहता है और उसीसे अधर्मीलोगोंको जुदा जुदा कर्मफल भुगतना पड़ता है. अब अनादिकालसंबंधी अविद्याके हेतु प्रगट होती इच्छानके परिणामरूप जो हजारों नरक हैं उनमेंसे मुख्य २ नरकोंका

तनामें आयेहुए उस मनुष्यको उसीतरह पीछा मारते हैं. अतएव इस नरकका नाम रौरव है. रुरु यह जंतु सर्पसेभी अत्यंत क्रूर हुआ करता है ॥ ११ ॥ इसीतरह जो मनुष्य केवल अपने देहका पोषण करता है, वह महाँरौरव नाम नरकमें पड़ता है. इस नरकमें पड़ेहुए मनुष्यको क्रव्याद नाम रुरु मांसके वास्ते मारा करते हैं ॥ १२ ॥ जो क्रूर मनुष्य जीतेहुए पशु अथवा पक्षियोंको रींधते हैं, उन निर्दय और राक्षसोंसेभी धिक्कार किये जाते मनुष्योंको यमपुरीमें यमराजके दूत कुंभीपाक नाम नरक कि-जिसमें

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयंति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥ यस्त्विह वा उग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरंधयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितम-मुत्र यमानुचराः कुंभीपाके तप्ततैले उपरंधयंति ॥ १३ ॥ यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरक अयुतयोजनपरिमंडले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानांतर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावंति पशु-रोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यगतः पाखंडं चोपगतस्तमसि-पत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरंति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्य-मानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखंडानुगतं फलं भुंक्ते ॥ १५ ॥

तेल खौला करता है, उसमें रींधा करते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य पिता, ब्राह्मण व वेदसे द्रोह करता है, उस मनुष्यको कालसूत्र नाम नरकमें पटकते हैं. इस नरकका घेर दश हजार योजनका है. इसकी भूमि बिलकुल ताम्रमय गर्म और सम धरातलवाली है. यह ऊपर सूर्यसे तपा करती है. ओर नीचे अग्निसे संतप्त रहती है. इस नरकमें पड़ाहुआ प्राणी भूख व प्याससे बाहिर और भीतरकी तर्फ शरीरको दग्ध करता पशुके जितने रोम होते हैं उतने हजार वर्षपर्यंत वहीं बैठा रहता है, सोता है, चेष्टा करता है, खड़ा रहता है और दौड़ता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य आपत्कालविना अपने वेदमार्गको त्यागकर, पाखंडमें जा मिले उसे अ-सिपत्रवनँ नाम नरकमें डालकर, कोड़ोंसे पीटते हैं. इस नरकमें पीटनेसे चारोंतर्फ दौड़ते इस प्राणीके ऊपर तालवनके दुधारे त-

लवारसे पत्ते गिरते हैं, जिनसे उस जंतुके सब अंग कट जानेके कारण वह जंतु 'हाय मैं मरा हाय मैं मरा' इसप्रकार चिल्लाता, अतिशय वेदनासे मूर्छित होकर, पग पगपर गिर पड़ता है. जो अपने स्वधर्मका त्याग करता है और पाखंडमें मिल जाता है, उसे यह फल भुगतना पड़ता है ॥ १५ ॥ इस जगत्‌में राजा या राजाका मनुष्य जो दंडके योग्य नहीं उसे दंड देता है और ब्राह्मणको देहांत दंड देता है, वह जन मरणके अनंतर सूकरमुख नाम नरकमें पड़ता है. इस नरकमें महाबली यमदूत उसके शरीरके अवयवोंको कोल्हूमें पेरे जाते ऊंखकी भांति पेरते हैं. जिससे वह अतिपीड़ित होकर, चिल्लाया करता है. और

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदंड्ये दंडं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदंडं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखंड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रांधकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जंतुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये केचाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥ १७ ॥

कभी २ मूर्छितभी हो जाता है. जिसप्रकार उसने कैद करके निरपराधी लोगोंको दुःख दिया है, उसीतरह उसे पीछा दुःख भुगतना पड़ता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य स्वयं ईश्वरके नियत कियेहुए धर्मवाला और परपीड़ासे जानकार होकर, खटमलआदि जन्तु कि-जिनकी मनुष्योंका रुधिर पीनाआदि वृत्ति ईश्वरने कल्पन की है. और जो पराई पीड़ा नहीं जानते, उन्हें दुःख देते हैं, वे मनुष्य मरणके अनंतर उस पापके हेतु अंधकूप नाम नरकमें पड़ते हैं. इस नरकमें पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप, मच्छड़, जूं, खटमल व मक्खीआदि प्राणी कि-जिन्हें उस मनुष्यने दुख दिया हो, वे चारोंओरसे उसे दुख देने लगते हैं. उसे न तो निद्राका सुख मिलता है. और न एक जगह स्थिति मिलती है. कीड़ेआदिके शरीरमें जीव जैसे तड़फा करता है ऐसे इस

वर्णन करेंगे ॥ ३ ॥ परीक्षितने कहा कि– हे भगवन् ! जिन्हें नरक कहते हैं. क्या वे कोई देशविशेष हैं ? अथवा ब्रह्माडसे बाहिरके आवरणोंमेंसे हैं ? वा ब्रह्मांडके भीतरही पृथ्वीके शिवाय किसी दूसरे भागपर हैं ? ॥ ४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि– ये नरक त्रिलोकीके भीतरही हैं. यह दक्षिणदिशामें पृथ्वीके नीचे और जलके ऊपर हैं, जिस दिशामें अग्निष्वात्तआदि पितृगण सच्चे अंतःकरणसे अपने वंशजोंको सत्य आशीर्वाद देते विराजते हैं ॥ ५ ॥ पितृगणके अधिपति यमराजभी मरेहुए प्राणियोंको

राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदंतराल इति ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अंतराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसंति ॥ ५ ॥ यत्र ह वा भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जंतुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लंघितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥ तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयंति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽधतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुंभीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमंधकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकंटकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधा विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति किं च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दंदशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥

अपने दूतोंद्वारा अपने पास बुलाकर, भगवान्‌ने जो नियम बांध दिया है उस नियमके अनुसार चित्रगुप्तआदि अपने गणोंकी सहायतासे सबको उनके अपराधके अनुसार दंड देते हैं ॥ ६ ॥ कितनेएक विद्वान् वहां इक्कीस नरक बतलाते हैं. इन नरकोंके नाम, रूप व लक्षणोंसे जो अनुक्रम हम वर्णन करते हैं वह सुनो. तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटकशालमली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान ये इक्कीस नरक कहलाते हैं. क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनि-

रोधनं, पर्यावर्तनं और सूचीमुखं ये सात नरक फिर जुदे हैं. ये अठ्ठाईस नरक अनेक प्रकारके दुःख भोगकरनेकी भूमि हैं ॥ ॥ ७ ॥ उनमें जो मनुष्य पराया धन, संतान के स्त्रीका हरण करता है, उसे महाविकरालरूप यमदूत कालपाशसे बाधकर, बलात्कारसे तामिस्रनाम नरकमें पटकते हैं. इस नरकमें न तो खानेको देते हैं, न पीनेको; दंडसे प्रहार करते हैं और तिरस्कारकरनेआदि दुःखोंसे यमराजके दूत इस प्राणीको ऐसा दुःख देते हैं कि–यह प्राणी अंधकारमय उस स्थलमें एकसाथ मूर्छित हो जाता है ॥ ८ ॥ इसीतरह जो मनुष्य, पतिको छलकर, उसकी स्त्रीआदिका उपभोग करता है, उसे अंधतामिस्र

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदंडताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जंतुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥ एवमेवांधतामिस्रे यस्तु वंचयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुंक्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादंधतामिस्रं तमुपदिशंति ॥ ९ ॥ यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुंबमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥ १० ॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जंतवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसंति तस्माद्रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥ ११ ॥

नाम नरकमें पटकते हैं. इस नरकमें पात्यमान और यातनास्थित प्राणीकी मति और दृष्टि वेदनाओंसे नष्ट हो जाती है. मूलछेदके समय वृक्षकी जैसी दशा होती है ऐसीही इस जीवकी दशा होती है. इसीसे इस नरकका नाम अंधतामिस्र कहलाता है. ॥ ९ ॥ जो मनुष्य 'यह शरीर मैं हूं' और 'यह धनआदि मेरा है,' ऐसे आसक्त होकर, दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करता केवल अपने कुटुंबका प्रतिदिन भरण पोषण करता है, वह मनुष्य कुटुंबको यहीं छोड़कर, आप इकल्ला उस पापसे महाघोर रौरवनाम नरकमें पड़ता है ॥ १० ॥ इस मनुष्यने यहां जिन जीवोंको जिस प्रकारसे मारा हो, वे जीव रुरुनाम प्राणी बनकर, यमया-

अंधकारमय नरकमें तड़फा करता है ॥ १७ ॥ जो कुछ खानेको मिले उसे दूसरोंको बांट कर, दिये विना जो खाय और वैश्वदे-
वादिक पंचमहायज्ञ नहीं करे, वह काकके समान कोटिवाला मनुष्य मरणके अनंतर कृमिभोजन नाम अधमनरकमें पड़ता है.
लक्षयोजनप्रमाण इस कृमिकुंडरूप नरकमें कीड़ेके रूपसे पड़ेहुए इस प्राणीको दूसरे कीड़े खाते हैं. और आपको वे कीड़े
खाने पड़ते हैं बिना बांटे और विना होम किये खानेवाला और उसका प्रायश्चित्त न करनेवाला मनुष्य जहांतक उसका पाप
बना रहता है, तबतक वेदना भोगा करता है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य चोरीसे अथवा बलात्कारसे ब्राह्मणके सुवर्ण और रत्न-

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपंचयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभो-
जने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुंडे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः
कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ता प्रहुताऽदोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८ ॥ यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा
हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वाऽपहरत्यन्यस्य वाऽनापदि पुरुषस्तममुत्र राजन्यमपुरुषा अयस्म-
यैरग्निपिंडैः संदंशैस्त्वचि निष्कुषंति ॥ १९ ॥ यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिद-
भिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयंतस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिंगयंति स्त्रियं च पुरुषरूप-
या सूर्म्या ॥ २० ॥ यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकंटकशाल्मलीमारोप्य
निष्कर्षंति ॥ २१ ॥

आदि पदार्थ हर लेवे अथवा आपत्कालविना दूसरेके सुवर्णआदि पदार्थ हरण करे, वह मनुष्य मरणके अनंतर संदंश नाम
नरकमें पड़ता है. वहां उसकी खालको यमराजके दूत लोहेके तपाये हुए चिमटोंसे तोड़ते हैं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य अगम्यास्त्रीसे
गमन करे और जो स्त्री अगम्य पुरुषसे गमन करे, वे दोनों तप्तसूर्मि नाम नरकमें पड़ते हैं. वहां यमदूत उन्हें कोड़ोंसे पीटते
हैं, पुरुषको तपायी हुई लोहेकी स्त्रीकी मूर्तिके साथ और स्त्रीको उसीतरह पुरुषकी मूर्तिके साथ आलिंगन करवाते हैं ॥ २० ॥
जो मनुष्य पशुआदिके साथभी मैथुन करे वह मरे पीछे वज्रकंटकशाल्मली नाम नरकमें पड़ता है. वहां यमदूत उसे वज्रसमान

कांटोंवाले सेमलके वृक्षपर चढ़ाकर, सींचते हैं ॥ २१ ॥ जो राजा या राजपुरुष स्वयं उत्तमकुलमें उत्पन्न होनेपरभी धर्मकी मर्यादानको तोड़ देते हैं. वे नरककी खांईरूप वैतरणीनदी नाम नरकमें वहां पड़ते हैं, धर्ममर्यादा तोड़नेवाले इन लोगोंको जलजंतु चारों तर्फसे खाने लगते हैं, प्राण नहीं निकलते, उसीसे वे प्राणी जीनेके वास्ते इस नदीमें इधर उधर, खींचे जाते हैं. आपने जो पापकर्म किये हों, उनका स्मरण करते हैं, अतीव परिताप पाते हैं. और विष्ठा, मूत्र, पूय, रुधिर, केश, नख, हड्डियां, मेद, मांस व चर्बी ये जिसमें बहते हैं ऐसी इस नदीमें सदा संतप्त रहा करते हैं॥ २२ ॥ नीच रंडियोंको रखनेवाले,

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखंडा धर्मसेतून्भिदंति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतंति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरंतो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यंते ॥ २२ ॥ ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरंति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतंति तदेवातिबीभत्सितमश्नंति ॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नंति तानपि संपरेतांल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यंति ॥ २४ ॥ ये त्विह वै दांभिका दंभयज्ञेषु पशून्विशसंति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसंति ॥ २५ ॥

निर्लज्ज व पवित्रता, आचार तथा नियमोंका नाश करनेवाले जो लोक पशुकी भांति यथेष्ट आचरण करते हैं, वे मरणके अनंतर पूयोदनामें नरकमें पड़ते हैं. यह नरक पूय, विष्ठा, मूत्र, कफ व मलसे भराहुआ सागरसा है. उसमें पड़कर वही अतिबीभत्सित पदार्थ उसे खाना पड़ता है ॥ २३ ॥ कुत्ते और गधेआदि पालनेवाले जो ब्राह्मणआदि लोक शिकारको केवल खेलसा मानते हैं. और शास्त्रमें कहेहुए समयविनाभी पशुओंको मारते हैं. वे मरनेके अनंतर प्राणरोध नाम नरकमें पड़ते हैं. वहां यमदूत उन्हें लक्ष्य बनाकर, बाणोंसे बेधते हैं ॥ २४ ॥ जो दांभिकलोक दंभयुक्त यज्ञोंमें पशुओंको मारते हैं. वे मरणके अनंतर वि-

क्रोधयुक्त रावण रथमें बैठ, रामचंद्रजीके सन्मुख आया और मातलिके लाये प्रकाशमान इंद्रके रथमें विराजमान रामचंद्रजीपै तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करने लगा ॥ २१ ॥ तब रामचंद्रजीने कहा कि-हे राक्षसोंमें विष्ठारूप ! तुझ दुष्टने लाज छोंड़कर, हमारे असमक्षमें श्वानके समान, हमारी स्त्रीका हरण किया है, सो जैसे काल निंद्य कर्म करनेवालेको उसका फल देता है, वैसे मैं अपने अमोघ पराक्रमसे तुझे उस कर्मका फल देता हूं ॥ २२ ॥ रामचंद्रजीने इस तरह तिरस्कार कर, अपने धनुष्यमें बाणका संधान कर, तीर चलाया, इस वज्रकेसे बाणके लगतेही उसका हृदय फट गया और दसों मुखोंमेंसे लोहू बहने लगा, यह रावण, जैसे

रामस्तमाह पुरुषाद पुरीषयन्नः कांतासमक्षमसताऽपहृता श्ववत्ते ॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन्धनुषि संधितमुत्ससर्ज बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः ॥ मंदोदर्या समं तस्मिन्प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान्बंधून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नंत्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥ हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ॥ कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥ नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः ॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनंदन ॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥

पुण्यवान् पुरुष पुण्य क्षीण होनेपर विमानमेंसे गिरता है वैसे अपने रथमेंसे लोकोंके हाहाकार करते गिर पड़ा ॥ २३ ॥ तब मंदोदरीके साथ हजारों राक्षसियां रोतीं विलाप करतीं लंकामेंसे निकलकर, रणभूमिमें आयीं ॥ २४ ॥ अपने हाथोंसे अपनी छातियां कूटतीं ये दीन राक्षसियां लक्ष्मणके बाणोंसे मरे अपने २ बांधवोंसे आलिंगन कर, मुक्तकंठ हो, रोने और विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ हा नाथ ! हा लोकरावण रावण ! हाय! हाय ! हम मरीं, शत्रुओंसे पीड़ित और आपसे रहित यह लंका अब किसके शरण जाय ? ॥ २६ ॥ आपने कामदेवके बश होकर सीताके तेजका प्रभाव जाना नहीं, कि-जिससे आपकी यह दशा हुई और लंका व हम विधवा हुईं ॥ २७ ॥ हे कुलनंदन ! अपने अपना शरीर तौ गृध्रपक्षियोंका भक्ष्य बनाया और आत्माको

हाथोंसे जिनके वृक्षोंके शाखा आदि सब अंग हलाय मारे हैं ऐसे अनेक पर्वतोंके सिखरोंसे समुद्रमें सेतु बांधकर, बिभीषणकी सलाहके अनुसार, सुग्रीव, नील और हनुमान जिनमें मुखिया हैं ऐसी सेनाओंके साथ रामचंद्रजी लंकाको पधारे, जिस लंका-को प्रथम हनुमानजी जला चुके थे ॥ १६ ॥ वानरोंकी सेनासे लंकाके क्रीड़ास्थान, कोठार, भंडार, खिरकी दरवाजा, सभा, छज्जे और सब भाग रुंक रहे थे, वेदियां ( चबूतरे ) ध्वजा, सोनेके कलश और चौहटे टूटने लगे, महाराज ! हाथियोंका यूथ आ पड़नेसे नदियोंकी जो दशा होती है वह दशा लंकाकी हुई. यानी थरथराहट करने लगी ॥ १७ ॥ यह देखकर, राक्षसा-

सा वानरेंद्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका ॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुंभशृं-गाटकागजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥ रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुंभकुंभधूम्राक्षदुर्मुखसुरांतनरांतका-दीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकंपनादीन्सर्वानुगान्समहिनोदथ कुंभकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृत-नामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगंधमादनीलांगदर्क्षपनसा-दिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वंद्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ॥ जघ्नु-र्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥ २० ॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वःस्यंदने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहन-न्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥

धिपति रावणने निकुंभ, कुंभ धूम्राक्ष, दुर्मुख, देवांतक, नरांतक आदि और अपना बड़ा पुत्र इंद्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय और विकंपन -आदि सब अनुगामी राक्षसोंको युद्ध करनेको भेजा; फिर कुंभकर्णकोभी पठाया ॥ १८ ॥ यह राक्षसोंकी सेना कि-जो तल-वार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति बाण भाला व खड्ग, इन शस्त्रोंसे अतिदुर्गम थी, उसपर सुग्रीव, हनुमान, लक्ष्मण गंधमादन, नील, अंगद, जांबवान और पनस आदि अपने योधानके संग चढ़े ॥ १९ ॥ अंगद आदि रामचंद्रजीके सेनापति हाथी, प्यादे, रथ व घोड़ोंकी सेनाके बीच एक दूसरेसे भिड़ २ कर, राक्षसोंको वृक्ष, पर्वत और गदा व बाणोंसे मारने लगे कि-जिनके स्वामी रावणका पुण्य सीताके स्पर्शसे बिलकुल नाश हो गया था ॥ २० ॥ अपनी सेनाका नाश होता देखकर,

को विदित करनेको लक्ष्मणके साथ दीनके समान वनमें विचरने लगे ॥ ११ ॥ सीताकी रक्षाके वास्ते रावणसे युद्ध कर, मराहुआ जटायु पक्षी कि-जिसे दाहका अधिकार नहीं था, उसका कृपासे दाह किया और उसके पश्चात् कबंधका वध किया वानरोंके साथ मित्रता कर, बालिको मार, वानरोंके परिश्रमसे सीताकी सोध कराय, पता लगाय, ब्रह्मा व महादेवसे पूजितचरण रामचंद्रजी बानरोंकी सेना संग ले, अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ, समुद्रके तीरपर पहुंचे ॥ १२ ॥ वहां तीन रात्रितक उपवास कर, राह देखी, परंतु समुद्र आया नहीं. तद रामचंद्रजीने कोप किया. क्रोधके विभ्रमसे फटीहुई तिरछी दृष्टि, पड़तेही,

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबंधं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्ध्वाऽथ वालिनि हते प्लवगेंद्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रिः ॥ १२॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रांतनक्रमकरोभयगीर्णघोषः ॥ सिंधुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविंदमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायंति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्धोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपींद्रकरकंपितभूरुहांगैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणदृशा विशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥

जिसके मगर और नक्र घबरा गये हैं, ऐसा वह समुद्र त्रासके मारे गर्जना बंद कर मूर्तिमान् हो, सिरपै पूजाकी सामा ले, रामचंद्रजीके चरणके निकट आया और यह बोला कि- ॥ १३ ॥ हे भूमन् ! आप कि-जो कूटस्थ, आदिपुरुष और जगत्के स्वामी हो, उन्हें जड़ताके कारण हम अपनी बुद्धिसे आपको नहीं जानते हैं, जिनके सत्वगुणसे देवता, रजोगुणसे प्रजापति और तमोगुणसे भूतनाथ हुए हैं वे गुणोंके नियंता आप हो ॥ १४ ॥ आप सुखेन पधारो, त्रिलोकीको रुलानेवाले विश्रवा ऋषिके विष्ठारूप रावणको मारो और सीताको प्राप्त होओ और आपका यश जगत्में फैला रहे, इसलिये यहां सेतु बांधो, कि-जिसके निकट आकर, दिग्विजय करनेवाले राजा आपका यश गाया करें ॥ १५ ॥ महाराज ! समुद्रके वचन सुन, कपिराजोंने अपने

यंवरकी सभामें जगतके सब वीर पुरुष इकठे हुए, वहा तीनी सौ ३०० मनुष्योंके लायेहुए महाभयंकर महादेवके धनुषको ले,सज्ज कर,खैंचके, जैसे बाल गज ऊखको तोर डारे वैसे बीचमेंसे तोड़ दिया था ॥ ६ ॥ सीता कि–जिसके गुण, शील, अवस्था, अंग व रूप आपकेही योग्य थे और जो आपकेही वक्षःस्थलमें रहकर, मान पायी. हुई लक्ष्मीका अंशरूप थी, उसका पाणिग्रहण कर रवाने हुए, तो मार्गमें परशुरामजी आगये उसकाल जिन्होंने उनका गर्व दूर कियाकि जिन परशुरामजीनें इक्कीसवार पृथ्वीको निछत्री की थी ॥ ७ ॥ सत्यके पाशसे बंधेहुए अपने पिता दशरथ कि–जो स्त्रीके वश थे, तौभी उनकी आज्ञाको सिरपर चढ़ाय,योगी जैसे प्राणको तजे, वैसे राज, लक्ष्मी,

जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोंऽगरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७ ॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चादिशिरसा जगृहे सभार्यः ॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः ॥ ८ ॥ रक्षः स्वसुर्व्यकृतरूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबंधून् ॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदंडपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकंधरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽदकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोऽधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥

मित्र, संबंधी व घरबार सब छोड़, सीताको संग ले, वनमें पधारे ॥ ८ ॥ दुष्टबुद्धि रावणकी बहन शूर्पणखाको उसकी नाक कान काट विरूप की. खर, दूषण और त्रिशिरा वगैरः शूर्पणखाके चौदह हजार बंधुजनोंको असह धनुष हाथमें ले मारे. और वनमें रहकर अतीव कठिन कष्ट सहा ॥ ९ ॥ महाराज ! सीताकी बात सुनकर, कामदेवसे प्रदीप्तचित्त रावणने ललचानेके वास्ते मारीचको अद्भुत सुवर्णका मृग बनाकर, पठाया, तिसे देख, लालचमें आ, आश्रमसे दूर जाकर, जैसे रुद्रने दक्षको मारा था वैसे अपने बाणसे तुर्त मारीचको मार लिया ॥ १० ॥ रामचंद्रजी वहांसे हिरणके पीछे दूर चले गये, तद वह नीच रावण उनकी असमक्षमें वृषकी तरह सीताको हर ले गया, तद सीतामें बिछुरेहुए रामचंद्रजी स्त्रीसंगी पुरुषोंकी ऐसी दशा होती है, इसतरह लोकों

दशवें अध्यायमें खट्वागका वंश और उसमें प्रगटहुए रामचंद्रका रावणके वधसे अयोध्यापीछे पधारनेतकका चरित्र कहा जायेगा ॥ १ ॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज ! खट्वांगेके दीर्घबाहु, उसके महाप्रख्यात रघु, रघुके अज, अजके दशरथ पुत्र हुआ ॥ १ ॥
दशरथके घरमें देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म हरि भगवान् अपनी अंशांश कल्पना कर, चार पुत्ररूपसे प्रगट हुए ॥ २ ॥ इनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न ये थे, सीतापति रामचंद्रका चरित्र तत्त्ववेत्ता वाल्मीकि आदि ऋषियोंने बहुत वर्णन किया है, सो तुमने वारंवार सुनाही होगा, तौभी इस प्रसंगमें संक्षेपसे मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ३ ॥ जिन रामचंद्रजीने

श्रीशुक उवाच ॥ खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराज तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः॥ अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरींद्रानुजाभ्याम् ॥ वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोपितभ्रूविजृंभत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेंद्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचरः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलीलइवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभंज मध्ये ॥ ६ ॥

पिताके वास्ते राजका त्याग किया और जो सीताके हाथके स्पर्शकोभी न सह सकें ऐसे कमलकेसे कोमल चरणोंसे बनमें विचरें, सुग्रीव और लक्ष्मणने जिनका मार्गका श्रम दूर किया था, जिन्होंने शूर्पणखाकी नाक कान काट लेनेसे रावण सीताको हर ले गया, तद सीताके विरहसे प्रगट हुआ जो क्रोध तिससे भृकुटी चढाय, समुद्रको त्रासयुक्त कर, उसमें सेतु बांध, राक्षसरूप वनको जलाकर भस्म किया था, वे रामश्चंद्रजी हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोलेकि—जिन्होंने विश्वामित्रजीके यज्ञमें लक्ष्मणके देखते २ मारीच आदि बड़े २ राक्षसोंका वध किया था ॥ ५ ॥ महाराज ! जिन्होंने सीताके स्व-

कर, न तौ प्राण, न पुत्र, न लक्ष्मी, न पृथ्वी, न राज और न स्त्रियां कुछभी प्रिय नहीं हैं ॥ ४३ ॥ बालपनमेंभी मेरी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं रमती थी, अतएव मैं भगवान्‌के शिवाय दूसरी कुछभी वस्तु नहीं देखता हूं ॥ ४४ ॥ यदपि त्रिलोकीके अधिपति देवतानने मुझे मनवांछित वर देनेको कहा है; पर मैं उस वरदानको नहीं चाहता; क्योंकि हरि भगवान्‌की भावना मेरे मनमें लग रही है ॥ ४५ ॥ जिनकी इंद्रियां और बुद्धि विषयोंसे विक्षिप्त हो रहीं हैं वे देवताभी अपने हृदयमें रहे, निरंतर प्रिय, आत्माको नहीं जानते, तब दूसरे तौ कैसे जान सकें ? ॥ ४६ ॥ इसलिये भगवान्‌की मायासे रचेहुए और गंधर्वपुरके स-

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ नपश्याम्युत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेंद्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ न विंदंति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु संगं गुणेषु गंधर्वपुरोपमेषु ॥ रूढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ॥ ४८ ॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥ भगवान्वासुदेवेति यं गृणंति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥
॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

मान, विषयोंमें जो मेरे मनकी स्वाभाविक प्रीति लग रही है उसे भगवान्‌की भावनाहीसे छोड़कर, मैं भगवान्‌के शरण प्राप्त हुआ हूं ' ॥ ४७ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने कहा कि–नारायणके ध्यानवाली बुद्धिसे इसतरह निश्चय कर, वह खट्वांग-राजा देहादिकके अभिमानरूप अज्ञानको तजकर, अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ जिस स्वरूपको भक्तलोक ' भगवान् वासुदेव ' ऐसा नाम देते हैं, वह स्वरूप परमसूक्ष्म और शून्य नहीं होतेभी शून्यके समान कल्पन करनेमें आता परब्रह्मही है ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

पतिके अस्थि इकठ्ठे कर, अग्नि जलाय, उसमें डालकर, आपभी उसमें जलकर, पतिलोकको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ बारह बरस हो गये, तब राजा श्रापसे मुक्त होकर, मैथुन करनेको तैयार हुआ, उस समय ब्राह्मणीके श्रापको जानकर, मदयंती रानीने मना किया ॥ ३७ ॥ तबसे उसने मैथुनसुखका त्याग कर दिया और अपने कर्मसे संतानहीन हुआ, तदनंतर उसकी अनुज्ञासे वसिष्ठजीने उसकी मदयंती नाम रानीमें गर्भ धारण किया ॥ ३८ ॥ मदयंतीके गर्भ रहे सात वर्ष हो गये, पर वह गर्भ जन्मा नहीं. तब वसिष्ठमुनिने उसके पेटमें पत्थर मारा, जिससे उसके प्रसव हो गया और उस बालकका नाम अश्मक रक्खा गया ॥ ३९ ॥ अश्मकके मूलक नाम पुत्र हुआ, परशुरामजीने पृथ्वी निःक्षत्रि करी, उस समय स्त्रियोंने उसको अपने साथमें रखकर, बचाया,

विशापो द्वादशाब्दांते मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥ तत उर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयंत्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सावैसप्तसमा गर्भमबिभ्रन्नव्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्या सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वांगश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्त्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥

तासों उसका दूसरा नाम नारीकवचभी हुआ और निछत्री होनेपर यह क्षत्रियोंका मूलरूप रहा इससे इसे मूलकभी कहते हैं ॥ ४० ॥ मूलकके दशरथ, दशरथके ऐड़विड़ उसके विश्वसह और विश्वसहके चक्रवर्ती खट्वांग नाम पुत्र हुआ ॥ ४१ ॥ इस दुर्जय खट्वांग राजासे आकर, देवतानने प्रार्थना की, तब उनकी प्रार्थनासे इसने दैत्योंका वध किया, तब प्रसन्न होकर, देवतानने कहा कि–' वर मांगो ' तब राजाने कहा कि–' प्रथम मेरी आयुष्य बताओ कितनी बाकी है ?' तब देवतानने कहा कि–' आपकी उमर केवल दो घड़ी बाकी है, जब इस बातका निश्चय हो गया, तब तुर्त विमानमें बैठ, अपने नगरमें आकर, राजाने भगवान्में मन लगाया ॥ ४२ ॥ और विचार किया कि–' ब्राह्मणोंका कुल कि–जो हमारे कुलका इष्ट देव है, उनसे बढ़-

र्थोंको सिद्ध करनेवाला है, तासों इस मनुष्यदेहको मारना यह सकल पुरुषार्थोंका वध किया कहलाता है ॥ २८ ॥ और यह ब्राह्मणभी कैसा है कि-जो विद्वान् और तप, शील और गुणोंसे संपन्न व सब प्राणीमात्रको आत्मरूप जानकर, प्राणियोंमें देहादिकसे आच्छादित महापुरुष परब्रह्मका आराधन करनेकी इच्छावाला है सो ॥ २९ ॥ हे विभु ! हे धर्मज्ञ ! इस ब्रह्मर्षियोंमें उत्तम ब्राह्मणका राजर्षियोंमें उत्तम आप अपने हाथसे जैसे पिताके हाथ पुत्रका मरण ऐसे इसका वध किसतरह योग्य समझते हो? ॥ ३० ॥ सत्पुरुषोंके माननीय आप, यह ब्राह्मण कि-जो साधु, निष्पाप श्रोत्रिय और ब्रह्मवादी है, उसके गोवधके समान

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वंतर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते संमतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं तथा ॥३२॥ एवं करुणभाषिण्या विलपंत्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः॥ ३३॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम्॥ शोचंत्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्त्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञदर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्त्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥

वधको किसतरह ठीक मानते हो ? ॥ ३१ ॥ महाराज ! जो इसे खानाही हो तौ पहले मुझे खाओ; क्योंकि इसके विना मुर्दासी मैंभी पलभरभी नहीं जीऊंगी' ॥ ३२ ॥ इसतरह दीनवचन कहती यह ब्राह्मणी अनाथकी तरह विलाप कर रही थी, परंतु उसे न गिनकर, श्रापसे मोहित सौदास राजा व्याघ्र जैसे पशुको मार, खाजाय वैसे ब्राह्मणको खा गया ॥ ३३ ॥ अपने गर्भाधान करनेवाले पतिको राक्षस खा गया, उसे देखकर, अपने आत्माका सोच करती इस पतिव्रता ब्राह्मणीने क्रोधकर, राजाको श्राप दिया कि- ॥ ३४ ॥ " हे पापी ! हे मूर्ख ! मैं कि-जो कामदेवसे पीड़ायमान हूं, उसके पतिको तू खा गया, इसलिये तूभी यदि मैथुन करेगा तौ मर जायगा " ॥ ३५ ॥ इसतरह मित्रसह ( सौदास ) को श्राप दे यह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने

उसीके घरमें रसोईदार बनकर रहा, राजाका बिगाड़ करनेकी अभिलाषासे इसने एक दिन भोजन करनेको आये हुए वसिष्ठमुनिको मनुष्यका मांस तैयार करके, परोस दिया ॥ २१ ॥ परोसते समय उस मांसको सहजमेंही अभक्ष्य जानकर, वसिष्ठजीने क्रोध करके, श्राप दिया कि–"तूने ऐसा काम किया इस लिये तू राक्षस होगा ॥ २२ ॥ फिर यह निश्चय हुआ कि यह काम तौ राक्षसका कियाहुआ है, तद वसिष्ठजीने उसी श्रापकी बारह बरसकी अवधि की, राजाभी हाथमें जल ले, गुरुको श्राप देने लगा ॥ २३ ॥ उस वख्त मदयंतीने मना किया, तद दिशा, आकाश, धरती और सब जग-

परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमंजसा ॥ राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥ रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोंऽजलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयंत्यापोरुशतीः पादयोर्जहौ ॥ दिशः खमवनिं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौको दंपती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो-जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवात्राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयंत्या पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥

त्को जीवमय जान, उसने वह श्रापका तेज जल अपने पैरोंपै डाल लिया ॥ २४ ॥ इस जलसे राजाके पांव श्याम हो गये, जिससे उसे कल्माषपाद कहा करते हैं. फिर यह राजा राक्षस होकर, वनमें घूमने लगा वहां वनवासी ब्राह्मण और ब्राह्मणी जो कि–उस समय मैथुन कर रहे थे, उन्हें इसने देखे ॥ २५ ॥ महाराज ! क्षुधासे पीड़ित इस राक्षसने ब्राह्मणको पकड़ा, उस समय उसकी स्त्री ब्राह्मणी दीनकी तरह भोली कि–आप राक्षस नहीं हो, आप तौ मदयंतीके पति और महारथी इक्ष्वाकुवंशी राजा हो ॥ २६ ॥ हे वीर ! आप ऐसा अधर्म करनेके योग्य नहीं हो, पृथ्वीनाथ ! मेरे संतानकी इच्छा है, सो यह, ब्राह्मण कि जिसका संभोगसुख पूर्ण नहीं हुआ है, उसे न मारकर, मुझे दो ॥ २७ ॥ हे राजा ! यह मनुष्यदेह मनुष्यके सब पुरुषा-

स्वर्गमें गये तौ, जो श्रद्धासहित नियम धारण कर गंगाजीका सेवन करते हैं वे स्वर्गगामी होवें इसमें तौ कहनाही क्या ॥ १३ ॥ भगवान्‌के चरणारविंदसे प्रगट हुई और संसारके बंधनोंको काटनेवाली गंगाजीका जो माहात्म्य यहां कहा गया है वह कोई बड़ी आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ १४ ॥ क्योंकि निर्मल मुनिलोग, श्रद्धासे भगवान्‌में मन लगाकर दुस्त्यज देहके संबंध-को छोड़कर, तुरतही भगवद्रूपताको प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥ महाराज इस महात्मा भगीरथके श्रुत और श्रुतके नाभ, उसके सिंधुद्वीप, उसके अयुतायु ॥ १६ ॥ उसके ऋतुपर्ण नाम पुत्र हुआ, यह राजा नलका मित्र था, इस राजाने नलसे अश्व-

न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनंतचरणांभोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ सन्निवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिंधुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयंतीपतिर्नृपः ॥ आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषांघ्रिमुत क्वचित् ॥ वसिष्ठशा-पाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो मृगयां कंचिच्चर-न्रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥ स चिंतयन्नघं राज्ञः सूदरूपध-रो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥

विद्या सीखनेके लिये नलको द्यूतविद्या सिखायी थी. राजा ऋतुपर्णके सर्वकाम ॥ १७ ॥ उसके सुदास, सुदासके सौदास नाम पुत्र हुआ, जो मदयंती रानीका भर्तार था, इसे मित्रसह और कल्माषांघ्रिभी कहते हैं यह राजा वसिष्ठजीके श्रापसे राक्षस हुआ और अपने कर्मसे संतानहीन रहा ॥ १८ ॥ परीक्षितने कहा कि—महात्मा सौदासको गुरुका श्राप क्यों हुआ ? यह बात जो रहस्यकी न हो तौ मुझे श्रवण करनेकी इच्छा है सो आप कहिये ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—सौदास राजाने शिकारमें फिरते किसी राक्षसको मारा और उसके भाईको छोड़ दिया, ॥ २० ॥ वह राक्षस बदला लेनेके वास्ते

नहीं हूं; क्योंकि लोग अपने पाप मुझमें धोवेंगे, परंतु उस पापको मैं कहां धोऊं ? इस बातका विचार करो ॥ ५ ॥ भगीरथने कहा कि-संगका त्याग करनेवाले व जगत्को पवित्र करनेवाले शांत और ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुष लोग आपके जलमें स्नान कर, आपके पापका हरण करेंगे क्योंकि सब पापोंके हरनेवाले हरि भगवान् उनमें विराजे हैं ॥ ६ ॥ देहधारियोंके आत्मा, महादेव कि-जिनमें यह जगत् जैसे तंतुओंमें साड़ी ओत-प्रोत रही है ऐसे ओतप्रोत रहा है वे आपके वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! इस तरह गंगाजीको कह कर, भगीरथराजाने महादेवके ऊपर तप करना प्रारंभ किया, तिससे महादेव तुर्त प्रसन्न हो

भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शांता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥ हरंत्यघं तेऽगसंगात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तंतुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसा तोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥ तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूता स्म शेरते ॥ १० ॥ रथेन वायुवेगेन प्रयांतमनु धावती ॥ देशान्पुनंती निर्दग्धानासिंचत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदंडहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूतगांसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवंते धृतव्रताः ॥ १३ ॥

गये और भगीरथकी प्रार्थनाका स्वीकार किया ॥ ८ ॥ फिर सब लोगोंके हित करनेवाले महादेवने सावधान रहकर, भगवच्चरणके संबंधसे पवित्र जल गंगाजीको धारण किया ॥ ९ ॥ भगीरथ राजा, जहां अपने बड़ेके शरीर भस्म होकर, पड़े थे वहां जगत्पावनी गंगाजीको ले गया ॥ १० ॥ वायुके समान वेगवाले रथमें बैठकर, भगीरथ रवाना हुए उस वख्त राजाके पीछे २ दौड़ती और देशोंको पवित्र करती गंगाजीने सगरराजाके पुत्रोंको सींच दिया ॥ ११ ॥ यद्यपि सगरके पुत्र ब्रह्मदंडसे हत हुए थे तथापि गंगाजलके स्पर्शमात्रसे और वह स्पर्शभी साक्षात् नहीं किंतु केवल शरीरकी भस्मके होनेसे स्वर्गको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकमुनि बोले कि-महाराज ! भस्म हुए शरीरमें गंगाजलका स्पर्श हुआ. उससेभी सगरके पुत्र जो

ये जलेहुए तेरे काके, गंगाजल मिलनेहीसे मोक्ष प्राप्त होंगे; दूसरे किसी उपायसे इनकी मुक्ति होनी नहीं है यह वचन सुन ॥ २९ ॥ अंशुमान् कपिलमुनिको मस्तकसे प्रणाम कर, परिक्रमा दे, प्रसन्न कर, घोड़ा ले, पीछा आया, उस घोड़ेसे राजा सगरने अपना अश्वमेध यज्ञ समाप्त किया ॥ ३० ॥ फिर अंशुमानको राज दे, स्पृहा व बंधनसे मुक्त हो, राजा सगर और्वऋषिके कहे प्रकारसे सर्वोत्तम गति ( मोक्ष ) को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें खट्वांग राजातक अंशुमान्का वंश कहा जायगा जिसका पौत्र भगी-

तं परिक्रम्य शिरशा प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३० ॥ राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबंधनः ॥ और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे सगरोपाख्यानेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गंगानयनकाम्यया ॥ कालं महांतं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत्तपः ॥ २ ॥ दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतंत्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४ ॥ किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजंत्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिंत्यताम् ॥ ५ ॥

रथ गंगाजीको पृथ्वीमें लाया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–फिर अंशुमान राजाने गंगाको लानेकी इच्छासे बहुत अर्सेतक तप किया; परंतु उसे ला नहीं सका और काल आ पहुंचनेसे मर गया ॥ १ ॥ अंशुमान्के दिलीप नाम पुत्र हुआ, वहभी अपने पिताके समान गंगाको नहीं ला सका और वहभी मर गया, फिर दिलीपके भगीरथ नाम पुत्र हुआ, वहभी बड़ा तप करने लगा ॥ २ ॥ उसे दर्शन देकर, गंगाजीने कहा कि–'मैं तुझे प्रसन्न होकर, वरदान देने आयी हूं' भगीरथने प्रणाम करके गंगाजीसे अपना अभिप्राय कहा ॥ ३ ॥ तद गंगाजीने कहा कि–मैं पृथ्वीपर पडूंगा वहां मेरे वेगको धारण करनेवाला कोई होना चाहिये, हे राजा ! नहीं तो पृथ्वीको विदार कर, मैं पातालमें चली जाऊंगी ॥ ४ ॥ महाराज ! मैं पृथ्वीपे आनेसे राजी

आपकी मायासे मोहित होकर, जो प्राणी बुद्धिके परतंत्र और केवल बहिर्ज्ञानवाले हैं. वे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें तो केवल विषयोंकोही देखते हैं और सुषुप्तिमें अज्ञानकोही देखते हैं, परंतु आप कि-जो अपनेही स्वरूपमें विराजो हो, उन्हें नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ आप कि-जो शुद्ध ज्ञानमय और स्वभावसे मायाके गुणसंबंधी भेद तथा मोहका नाश करनहारे सनकादिकभी जिनका ध्यान करते हैं, उनका मूढ़ मैं किस रीतिसे विचार कर सकूं ? ॥ २४ ॥ हे शांतरूप ! आप कि-जो मायाके गुण और कर्मोंसे ज्ञानमय व नाम-रूपरहित और पुण्य पापसे मुक्त हो और जिन्होंने ज्ञानके उपदेशके वास्ते अवतार धा-

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यंत्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥ तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशांतमायागुणकर्मलिंगमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमंति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य नः सर्वभूतात्मन्कामकर्मेंद्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलो मुनिः ॥ अंशुमंतमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ॥ इमे च पितरो दग्धा गंगांभोऽर्हंति नेतरत् ॥ २९ ॥

रण किया है उन पुराणपुरुष आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ २५ ॥ हे प्रभु ! आपकी मायासे रचेहुए लोकमें काम लोभ ईर्षा व मोहसे भ्रमित चित्त ये पुरुष घर-आदि पदार्थोंको तत्त्व समझ कर, उनमें भटका करते हैं ॥ २६ ॥ हे भगवन् हे सर्वप्राणियोंके आत्मा ! आज आपके दर्शनसे हमारा दृढ़ मोहरूप पाश कि-जो काम, कर्म व इंद्रियोंका आश्रयरूप है वह कट गया है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह अंशुमानने स्तुति की तद भगवान् कपिलदेवजीने उसके ऊपर चित्तसे अनुग्रह कर, उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ २८ ॥ कपिलदेवने कहा कि- हे पुत्र ! यह तेरे दादेका घोड़ा ले जा और

जन्म लेना पड़ा, इस असमंजसको अपने पूर्वजन्मका स्मरण था इसलिये किसीका संग न लग जाय, इस अभिप्रायसे अपने शरीरको बुरी हालतमें दिखलाया करता था ॥ १६ ॥ जगतमें निंदित और लोगोंको अप्रिय लगे ऐसे काम किया करता और लोगोंको उद्वेग देनेके वास्ते कितनेएक खेलतेहुए लड़कोंको सरयूनदीमें पटक देता ॥ १७ ॥ इस तरह आचरण करनेसे उसके पिता सगरने स्नेह छोड़ कर, उसे निकाल दिया, तद अपने योगसे प्रभावसे, उन सब लड़कोंको पीछे दिखलाकर, वहांसे जाता रहा ॥ १८ ॥ महाराज ! सब अयोध्याके रहनेवाले लोग अपने लड़कोंको पीछे आये देख कर, विस्मय करने लगे और सगर

आचरन्गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयन्जनम् ॥ १७ ॥
एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ॥ योगैश्वर्यण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥
अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥
अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मांति ददृशे हयम् ॥ २०॥ त-
त्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोऽक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्रांजलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥
अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनो जनो न बुद्ध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे
तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥

राजाकोभी अपने पुत्रको निकाल देनेका पछताना हुआ ॥ १९ ॥ इस असमंजसके पुत्र अंशुमान्‌को सगरराजाने घोड़ा हेरनेके लिये आज्ञा की तब वह, अपने काकोंकी खोदीहुई पृथ्वीके रस्ते २ चला गया सो आगे भस्मके ढेरके नगीच बँधाहुआ घोड़ा देखा ॥ २० ॥ वहां विराजमान साक्षात् विष्णु भगवान्‌के अवतार कपिलमुनिके दर्शन कर, एकचित्त हो, उन्हें प्रणाम कर, हाथ जोड़, यह महात्मा अंशुमान् उनकी स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ अंशुमानने कहा कि-ब्रह्माजीभी पर व ईश्वर आपको नहीं देखते और समाधि अथवा मुक्तियोंसे आजतक नहीं जानते, तब उनमें अर्वाचीन लोक कि-जो ब्रह्माजीके तन मन व बुद्धिसे रचीहुई सृष्टिमें सरजेहुए हैं वे तो किसतरह जानें वा देखें ? जब ऐसा है तो हम अज्ञानी लोगोंकी तो बातही कौन ? ॥ २२ ॥

निदान ईशानकोणमें कपिलदेवजीके पास एक घोड़ा बंधाहुआ उनके, देखनेमें आया. उसे देखकर, यही ( कपिलदेवजी ) आस मूंदिके बैठा हुआ घोड़ा ले जानेवाला चोर है ॥ १० ॥ ऐसा निश्चय कर, वे साठ हजारही राजकुमार 'मारो मारो इस पापीको मारो' इसतरह पुकारते शस्त्र उठाकर, उन्हें मारने दौड़े; तब कपिलमुनिने ज्यों आंख खोली ॥ ११ ॥ त्योंहीं ये राजकुमार कि-जिनकी मति इंद्रने हरलीनी और महात्माओंके अपराधसे जो मर चुके थे वे कपिल मुनिके शरीरसे प्रगट हुए अग्निसे क्षणभरमें जल बल, भस्म हो गये ॥ १२ ॥ कितनेएक कहते हैं कि'ये राजकुमार कपिलदेवजीके कोपसे जल गये, परंतु

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलांतिके॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेंद्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥ १२ ॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेंद्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमोरोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १४ ॥ योऽसमंजस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥ असमंजस आत्मानं दर्शयन्नसमंजसम् ॥ जातिस्मरः पुरासंगाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥

यह कहना योग्य नहीं है; क्योंकि जगत्को पावन करनेवाले कपिलदेवजीके क्रोधरूप अज्ञानका होना बिलकुल संभवे नहीं, जैसे पृथ्वीकी रजका आकाशमें होना संभवे नहीं, वैसे सत्वमूर्ति भगवान्में क्रोधका होना संभवे नहीं ॥ १३ ॥ जिनकी चलायी सांख्यशास्त्ररूप दृढ नौकासे मुमुक्षुलोग, मृत्युके मार्गरूप अपार भवसागरको पार उतरते है, उन सर्वज्ञ और ब्रह्मभूत कपिलदेवजीके शत्रु-मित्रआदि भेददृष्टि किस भांति संभवे ?॥ १४ ॥ सगरके दूसरी केशिनी नाम रानी थी उसके असमंजस नाम पुत्र हुआ और असमंजसके अंशुमान् नाम पुत्र हुआ, वह अपने दादे सगरका हित करनेमें लगा रहता था ॥ १५ ॥ असमंजस पूर्वजन्ममें योगी था, परंतु संगदोष लगनेसे योगसे भ्रष्ट हो गया, तासों उसे सगरराजाके यहां

विजयके भरुक, भरुकके बाहुक पुत्र हुआ, इस बाहुक राजाका राज शत्रुओंने छीन लीया. तद वह अपनी स्त्रियोंको संग ले, वनमें चला गया ॥ २ ॥ यह राजा वृद्ध था इसलिये तुर्त मर गया, उसकी रानी पीछे सती होने लगी तौ, उसे गर्भसहित जानकर, और्वऋषिने मना किया ॥ ३ ॥ इसे गर्भ है, ऐसे जानकर उसकी सौतोंने इसे अन्नके साथ विष दे दिया, परंतु वह गर्भ उससे मरा नहीं किंतु उस गर-( विष ) के साथही प्रगट हुआ तासों उसका नाम सगर पड़ा ॥ ४ ॥ यह राजा चक्रवर्ती और बड़ा यशस्वी हुआ. सगर राजाके पुत्रोंने सागर बनाया है. इस सगर राजाने अपने गुरु और्वऋषिके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक,

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्बृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभूराजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पंचतां प्राप्तं महिष्युनुमरिष्यति ॥ और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावंतं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोंऽधसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजंघान्यवनान् शकान्हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुंडान् श्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्द्धमुंडितान् ॥ ६ ॥ अनंतर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरंदरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समंतान्न्यखनन्महीम् ॥ ९ ॥

हैहय और बर्बर, लोकोंमेंसे कितनेएकको न मार कर, विकृत वेष बना दिये, कितनेएकके तौ शिर मूंड़कर दाढ़ी मूछ बाकी रख दी, कितनेएकको खुले केश कर दिये, कितनेएकको आधे मूंड डारे, ॥ ५ ॥ ६ ॥ कितनेएकको उत्तरीय वस्त्र विना कर दिये कितनेएकको बाहिरके वस्त्र विना कर दिये, और्वके कहे उपायसे इस राजाने सर्व वेद और सर्व देवमय ईश्वर व परमात्मा हरि भगवान्का अश्वमेधनाम यज्ञोंसे यजन किया, जब इसके यज्ञमेंसे छोंड़ेहुए घोड़ेको इंद्र हर ले गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब राजाकी आज्ञासे रानी सुमतिके साठ हजार पुत्र घोड़ेको ढूंढने निकले, उस प्रसंगसे इन अभिमानी राजकुमारोंने चारोंनेओरसे धरती खोद डारी ॥ ९ ॥

वरुण-आदि देवतानका यजन किया, जिससे महत्पुरुषोंमें उसका बड़ा नाम हुआ. इस यज्ञमें विश्वामित्रजी तौ होता, आत्मवेत्ता जमदग्नि, अध्वर्यु वसिष्ठजी, ब्रह्मा और अयास्य मुनि उद्गाता हुए, उसपै प्रसन्न होकर, इंद्रनें सुवर्णका रथ दिया ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ यहां जो शुनःशेपकी बात शेष रह गयी है सो विश्वामित्रजीके पुत्रोंके आख्यानके प्रसंगमें आगे कहेंगे, हरिश्चंद्रराजाका और उसकी रानीका सत्यभरा धीरज देखकर, ॥ २४ ॥ अतिप्रसन्न मन विश्वामित्रजीने उस राजाको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया. महाराज ! हरिश्चंद्रने उस ज्ञानके प्रभावसे अपने मनका पृथ्वीमें, पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें ॥ ५ ॥ वायुका आकाशमें, आकाशका अहंकारमें और अहंकारका महत्तत्त्वमें लय किया. फिर विषयाकारको जुदा

जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्य सामगः ॥ तस्मै तुष्टो ददाविंद्रः शातकौंभमयं रथम् ॥ २३ ॥ शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्ष्यते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत् ॥ २५ ॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तया ज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६ ॥ हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबंधनः ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चंपस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चंपापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चाऽऽत्मजः ॥ १ ॥

पटक कर, महत्तत्त्वमें शुद्ध ज्ञानांशका आत्मस्वरूपसे ध्यान कर, उस ध्यानरूप वृत्तिसे अज्ञानको भस्म कर, दिया ॥ २६ ॥ फिर मोक्षानंदके सुखकर ज्ञानसे उस ध्यानरूप वृत्तिकाभी त्याग कर, सब बंधनमात्रसे मुक्त हो, स्वस्वरूप कि-जिसे किसी तरह कह नहीं सक्ते और जिसमें किसी प्रकारकी तर्कणाभी नहीं चलती, उसीमें रहने लगा ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें रोहितके वंशकी और उसमें उत्पन्न हुए सगरराजाके पुत्र कि-जो कपिलमुनिके अपराधसे भस्म हो गये उनकी कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-रोहितके हरित, हरितके चंप नाम पुत्र हुआ. जिसने चंपानाम नगरी बसायी. चंपके सुदेव सुदेवके विजय, ॥ १ ॥

णने कहा, तद महाराज ! राजाने कहा कि-क्षत्रियजाति पशु तौ जब संग्राम करनेमें समर्थ होवे तब पवित्र होवे ॥ १४ ॥ इसतरह पुत्रके स्नेहसे बँधे हुए वंचना करते राजाने जो जो समय किया, उस उस समयकी वरुण देवता राह देखते रहे ॥ १५ ॥ इतनेमें अपने पिताका कृत्य रोहितके जाननेमें आगया तद वह अपना जी बचानेके वास्ते धनुष हाथमें ले, जंगलमें चला गया. ॥ १६ ॥ तद वरुण देवताने कोप करके, हरिश्चंद्रके जलोदरका रोग पैदा कर दिया, उससे उसका पेट बहुत बढ़ गया, यह बात सुनकर, रोहित पीछा गाँवमें आने लगा, तौ इंद्रनें उसे मनाकर दिया ॥ १७ ॥ और कहा कि-हे तात! तीर्थयात्रा

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयंत्रितचेतसा ॥ कालं वंचयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तद-भिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुःपाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिंद्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थ-क्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्ये वसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पंचमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥ षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रो-हितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥ २० ॥ शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रादाय समवंद त ॥ ततः पुरुषमेधेन हरिश्चंद्रो महायशाः ॥ २१ ॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः ॥ विश्वा-मित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥

किया करना और भूमिमें विचरना यही ठीक है, इसतरह इंद्रने रोहितको उपदेश दिया जिससे वह फिर बारह महीनातक वनमें रहा ॥ १८ ॥ इसी तरह दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षभी वृद्धब्राह्मणका भेष बनाकर, उसके निकट आ २ इंद्रने मना किया ॥ १९ ॥ निदान रोहित छह वर्षतक वनमें फिरकर अपने पिताके नगर जाने लगा, तद अजीगर्त नाम ब्राह्मणसे उसके मध्यम पुत्र शुनःशेपको मोल लिया ॥ २० ॥ इस शुनःशेपको अपनी एवजमें बलिदान देनेको अपने पिता राजा हरिश्चंद्रके हाथमें देकर, रोहितने प्रणाम किया. तद बड़े यशस्वी हरिश्चंद्र राजाने अपना रोग मिट जानेपर, पुरुषमेध, नाम यज्ञसे

विश्वामित्रजी और वसिष्ठजीको पक्षीरूपमें कितनेएक वर्षोंतक युद्ध प्रवृत्त रहा ॥ ७॥ हरिश्चंद्रके संतान नहीं था, इसलिये खेद पाकर, नारदजीके उपदेशसे वरुणदेवताकी शरण जाके, बोला कि-' हे प्रभु ! मेरे पुत्र होना चाहिये ॥ ८॥ महाराज ! जो मेरे पुत्र होगा तौ वह वीर मैं आपहीके बलिदान अर्पण कर, आपका यजन करूंगा, ' तद वरुणने 'तथास्तु कहा ' इससे उसके रोहित नाम पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ वरुणने कहा कि-'हे अंग तेरे पुत्र हो गया, सो इसे मारकर, मुझे बलिदान दे. हरिश्चंद्रने कहा कि-पशुकी तरह

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८ ॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥ जातः सुतो ह्यनेनांग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ दंताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११ ॥ जाता दंता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ यदा पतंत्यस्य दंता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२ ॥ पशोर्निपतिता दंता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः पुनर्दंता जायंतेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदाराजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥

जब इसके दश दिन निकल जायं तौ पवित्र होवे ॥ १० ॥ दश दिन हो गये, तद वरुणने आकर, कहा कि- अब मुझे बलिदान दे, तद राजाने कहा कि-' इस पशुके जब दांत आवेंगे तब पवित्र होगा ' ॥ ११ ॥ दांत आगये तद वरुणने फिर कहा कि-' अबदे ' तद राजाने कहा कि-जब इसके दांत पड़ेंगे तब यह पवित्र होगा ॥ १२ ॥ दांत पड़गये तद वरुणने कहा कि-' अब दे' तद राजाने कहा कि-फिर पीछे दूसरी बेर दांत आवें तब पशु पवित्र होवे ॥ १३ ॥ दूसरीबेर दांत आ गये तद वरु-

१ इसकी कथा अन्य पुराणोंमें है. कि-विश्वामित्रने राजसूययज्ञके दक्षिणाके छलसे हरिश्चन्द्रराजाका सब धन ले लिया यह सुन, हरिश्चन्द्र राजाके गुरु वसिष्ठजीने विश्वामित्रको शाप दिया कि-हे विश्वामित्र ! तुम बगला होवो. विश्वामित्रनेभी वसिष्ठजीको शाप दिया कि-हे वसिष्ठ ! तुमभी बगलाही होवो. पीछे पक्षीरूपसे उनका युद्ध हुआ.

जो अंबरीष नाम था, उसे उसके दादा युवनाश्वने अपना पुत्र करके रक्खा था, इस अंबरीषके यौवनाश्व नाम पुत्र हुआ ॥ १ ॥ उसके हारीत नाम पुत्र हुआ. यह अंबरीष यौवनाश्व और हारीत ये तीनों मांधाताके वंशमें प्रवर हुए—महाराज ! मांधाताके पुत्र पुरुकुत्सको सर्पोंने अपनी बहिन नर्मदा दी ॥ २ ॥ वासुकीकी आज्ञासे यह नर्मदा अपने पति पुरुकुत्सको पातालमें लेगयी. वहां उसने गंधर्व कि—जो मारनेके योग्य थे, उन्हें विष्णुकी शक्तिके प्रतापसे मारे ॥ ३ ॥ तब नागसे उसे वरदान मिला

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥ तया रसातलं नीतो भुजगेंद्रप्रयुक्तया ॥ २ ॥ गंधर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥ नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ ३ ॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबंधनः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशंकुरिति विश्रुत ॥ प्राप्तश्चांडालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ ५ ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ पातितो ऽवाग्शिराः देवैस्तेनैव स्तंभितोबलात् ॥ ६ ॥ त्रैशंकवो हरिश्चंद्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७

कि—' इस बातका जो स्मरण करेंगे उन्हें सर्पका भय नहीं होगा ' पुरुकुत्सके त्रसद्दस्यु, उसके अनरण्य ॥ ४ ॥ अनरण्यके हर्यश्व उसके अरुण, अरुणके निबंधन, निबंधनके सत्यव्रत नाम पुत्र हुआ. इस सत्यव्रतका दूसरा नाम ' त्रिशंकु ' ऐसा प्रसिद्ध था ॥ ५ ॥ यह त्रिशंकु अपने गुरु वसिष्ठजीके श्रापसे चांडाल हुआ, परंतु विश्वामित्रजीने अपने सामर्थ्यसे उसे उसी शरीरसे स्वर्गमें भेज दिया, सो वह अद्यापि ( अभीभी ) आकाशमें दीख पड़ता है ॥ ६ ॥ इस त्रिशंकुको देवताओंने उलटे सिर पीछा गिरा दिया, परंतु विश्वामित्रजीने अपने सामर्थ्यसे वहीं रख दिया. त्रिशंकुके हरिश्चंद्र नाम पुत्र हुआ कि— जिसके वास्ते

---

१ ' त्रयः शंकव ' इव दुःखहेतवो दोषा यस्य सः त्रिशंकुः । तेच दोषा हरिवंशे उक्ताः । पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ॥ अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १ ॥ अर्थ—तीन शंकु ( भाले ) की तरह दुःखहेतु दोष जिसके होवें उसे त्रिशंकु कहना. वे दोष तो हरिवंशपर्वमें कहे हैं. कि—पिताकी अप्रसन्नतासे, गुरुकी गौ मारनेसे और अप्रोक्षितोपयोगसे तुह्मारे तीन तरहका व्यतिक्रम है ॥ १ ॥

वाला था, उसकी यह कैसी खराबी हुई ? जलके अंदर मछलीका प्रसंग देखकर, चिरकालसे संचित कियाहुआ तप खो बैठा ॥ ५० ॥ मुमुक्षुपुरुषको चाहिये कि-दांपत्यधर्मवालोंके संगका सर्वथा त्याग करे और इंद्रियोंको छूटी न छोडे, किंतु इकला विचरा करे और एकांतमें बैठकर, परमात्मामें चित्त लगावे. कदाचित् दांपत्यधर्मवालोंका संग करना पडे तौ ईश्वरसंबंधी धर्म पालनेवाले साधुजनोंकाही संग करे ॥ ५१ ॥ मैं तप करते समय इकला था, वही, जलमें मत्स्यका संग देखकर, पचासरूप हुआ, फिर पचास स्त्रियोंमें प्रत्येकमें सौ सौ पुत्र पैदा करनेसे पांच हजार रूप हुआ, तौभी मायाके गुणोंसे बुद्धि हरी जानेके

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिंद्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसंगः ॥ ५१ ॥ एकस्तपस्व्यहमथांभसि मत्स्यसंगात्पंचाशदासमुत पंचसहस्रसर्गः ॥ नांतं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२ ॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेन अग्निं शांतमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीभा० महा० नवम० सौभर्याख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मांधातुः पुत्रप्रवरोऽयोंबरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥

कारण और विषयोंको पुरुषार्थ माननेके हेतु इसलोक व परलोकसंबंधी प्राप्त कर्म करनेके मनोरथोंका अंत नहीं पाता हूं"॥५२॥ इसतरह घरमें रहते २ वैराग्य प्राप्त हुआ, तद सब संग छोडकर, सौभरिऋषि वनमें चले गये और उनकी पतिव्रता स्त्रियांभी उनके साथ गयीं ॥ ५३ ॥ वहां शरीर जिससे कृश हो जाय ऐसा तीव्र तप करके, ज्ञानी सौभरिऋषिने अग्निहोत्रसहित अपने आत्माको परमात्मामें लगादिया ॥ ५४ ॥ महाराज ! वे स्त्रियांभी अपने पतिकी मोक्षगति देखकर, अग्नि शांत होनेपर जैसे उसकी ज्वालायें चलीजायं वैसे पतिके प्रभावसे मोक्षगामी हुईं ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा० म० नवम० रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें मांधाताके वंशमें पुरुकुत्स तथा हरिश्चंद्रकी कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-मांधाताका उत्तम पुत्र

समृद्धियुक्त अंतःपुरमें ले गया उस समय मुनिने ऐसा स्वरूप धारण किया कि–वे पचासही राजकन्या एक सौभरि ऋषिकोही वरीं ॥ ४३ ॥ सौभरिऋषिमें उनका चित्त लग गया, अतएव उन राजकन्याओंके जो परस्पर प्रेम था वह इन मुनिके वास्ते जाता रहा, प्रत्युत 'ऐसा सुंदर पति मेरेही योग्य है, तेरे योग्य नहीं इस तरहका बड़ा भारी कलह मच गया ॥ ४४ ॥ ये ऋग्वेदी सौभरिऋषि, उन पचास स्त्रियोंके साथ घरोंमें सदा रमण करने लगे. कि–जहां अपनी अपार तपकी समृद्धिसे अमूल्य सरसामान भर रहे हैं, अनेकप्रकारके बगीचे और निर्मल जलभरे तालाव शोभा दे रहे हैं और सौगंधिक कमलोंका वन डहडहा रहा है

तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥ स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलांभःसरस्सु सौगंधिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महाऽर्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृंगवंदिषु ॥ ४६ ॥ यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तंभमजहत्सार्वभौमश्रियान्वितः ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसंगसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ॥ अंतर्जले वारिचरप्रसंगात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥

॥ ४५ ॥ शय्या, आसन, वस्त्र, भूषण, न्हानेके पदार्थ, चंदन, अरगजे, भोजन व पुष्प ये सब अमूल्य पदार्थ बन रहे हैं. पक्षी, भौंरे और बंदीजन गान कर रहे हैं और सिंगार किये दास व दासियां फिर रहीं हे ॥ ४६ ॥ चक्रवर्तीकी लक्ष्मीवाले और सात द्वीपके पति मांधाता राजाने यह सौभरिका गृहस्थाश्रम देखकर, विस्मित हो, अपने जो वैभवका गर्व था वह छोड़ दिया ॥ ४७ ॥ इसतरह घरोंमें अनुरक्त और विषयभोग करते सौभरिऋषि अग्नि जैसे घृतके बिंदुओंसे तृप्त न होवे ऐसे अनेक प्रकारके सुखोंसे तृप्त नहीं हुए ॥ ४८ ॥ ये ऋग्वेदियोंके आचार्य सौभरिऋषि एक दिन बैठे थे, वहां उन्हें अपनी मत्स्यके संगसे हुई तपकी हानि ध्यानमें आनेपर विचार हुआ कि– ॥ ४९ ॥ ' अहो ! मैं जो तपस्वी, सुपात्र और अच्छे नियम धारण करने-

इस आत्मज्ञानी मांधाताने भगवान् कि-जो सर्वदेवमय, बड़े प्रकाशवाले, सर्वात्मक और इंद्रियोंसे अगम्य हैं तथा मंत्र, द्रव्य, विधि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश व काल यह सब जिनका स्वरूप है उनका पुष्कल दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन किया था ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ महाराज ? जितने दूरमें सूर्य उदय होता है और अस्त होता है वह सब क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मांधाताका था ऐसे कहलाता है ॥ ३७ ॥ इस मांधाताके शशबिंदुकी कन्या बिंदुमतीमें पुरुकुत्स, अंबरीष व योगी मुचुकुंद ये तीन पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ मांधाताराजाके पचास कन्या हुई, वे सब सौभरिऋषिसे व्याही गयीं. यमुनाजीके जलमें गोता लगाकर, सौभरिऋषि

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतींद्रियम् ॥ ३५ ॥ द्रव्यं मंत्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ॥ धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥ यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ शशबिंदोर्दुहितरि बिंदुमत्यामधान्नृपः ॥ पुरुकुत्समंबरीषं मुचुकुंदं च योगिनम् ॥ ३८ ॥ तेषां स्वसारः पंचाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनांतर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥ ३९ ॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥ ४० ॥ सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ स विचिंत्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥ वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ ४१ ॥ साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेंद्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२ ॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यांतःपुरमृद्धिमत् ॥ वृतश्च राजकन्याभिरेकः पंचाशता वरः ॥ ४३ ॥

भारी तप कर रहे थे, वहां मत्स्यके मैथुनसुखको देखकर, उनकेभी उसी प्रकारकी इच्छा हुई; तद उन्होंने मांधाताके पास जाकर, एक कन्या मांगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तद मांधाताने कहा कि-'हे ब्रह्मन् स्वयंवरमें जिस कन्याकी आपपै रुचि हो उसेही आप ले लेवें' सौभरिने विचारा कि- मैं स्त्रियोंके असंमत अप्रिय व वृद्ध हूं ॥ ४१ ॥ मेरे शरीरमें सल पड़ गये हैं, बाल धौले हो गये हैं औ सिर डगमगता है, इसलिये राजा मुझे चतुराईसे नट गया है. खैर अब तो मैं ऐसा स्वरूप धारण करूंगा कि- राजाओंकी कन्याओंका तो क्या ? परंतु देवांगनाभी मेरी इच्छा करें' ॥ ४२ ॥ राजाका द्वारपाल उन मुनिको कन्याओंके

( यज्ञ ) की ॥ २५ ॥ २६ ॥ राजाको रातमें प्यास लगी तद यज्ञभूमिमें गया और सब ब्राह्मणोंको सोते देखकर, किसीको न पूंछ ते, मंत्रोंसे मंत्राहुआ जल जो उसकी रानीके पीनेके वास्ते तैयार किया गया था वह खुद राजा पी गया ॥ २७ ॥ जब ब्राह्मण उठे और कलशको रीता देखा, तद पूंछने लगे कि–'जिससे पुत्र होवे ऐसा यह जल किसने पिया ?' फिर उनको खबर पड़ी कि-यह जल तो दैवइच्छासे राजाने पिया, तद ईश्वरको प्रणाम करके, वे बोले कि–' अहो ! दैवका बल है वोही मुख्य बल है' ॥ २८ ॥ २९ ॥ इतनी कथा सुनाय, शुक मुनि बोले कि-उस जलके पीनेसे खुद युवनाश्व राजाके गर्भ रह गया और जब

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥ दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम्॥ २८ ॥ राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मारोदीरितींद्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥ न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितींद्रोंऽग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्त्रसंति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोऽथ मांधाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥

नव महीने पूरे हुए तद उसकी दाहिनी ओर पेट फाड़कर वह चक्रवर्ती गर्भ बाहिर निकला ॥ ३० ॥ यह कुमार बहुत रुदन करता है सो किसका थन पीवेगा, इसतरह ब्राह्मणोंके कहते ' हे पुत्र ! तू रोवे मत ' तू मुझे पीवेगा, ऐसे कहकर, इंद्रने उसके मुखमें अमृतस्राविणी अपनी तर्जनी ( अंगुली ) दी, तासों इस कुमारका ' मांधाता ' नाम पड़ा ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणोंकी और देवतानकी कृपासे मांधाताका पिता नहीं मरा और उसी वनमें रहकर, तप करके, मोक्ष पाया ॥ ३२ ॥ महाराज ! इंद्रने मांधाताका नाम ' त्रसद्दस्यु ' रक्खा. कारण यह कि–इससे रावण-आदि दुष्ट कांपते और त्रास खाते थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वका पुत्र मांधाता चक्रवर्ती हुआ यह भगवान्‌के तेजसे सातों द्वीपवाली पृथ्वीका इकल्ला राज करता था ॥ ३४ ॥

तद दैत्योंका लक्ष्मीसहित पुर और सकल धन जीतकर, इस राजाने इंद्रको दिया. इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकमुनि बोले कि इन कर्मोंसे इसके तीन नाम हुए. पुरको जीता इस लिये पुरंजय, इंद्र वाहन हुआ इसलिये इंद्रवाह और ककुद (लाठ) पर बैठा इस लिये ककुत्स्थ नाम पड़ा ॥ १९ ॥ पुरंजयके अनेनाः, अनेनाःके पृथु, पृथुके विश्वरंधि, उसके चंद्र, चंद्रके युवनाश्व, उसके शावस्त नाम पुत्र हुआ. इस शावस्तने शावस्ती नाम नगरी बसायी. शावस्तके बृहदश्व और उसके कुवलयाश्व नाम पुत्र हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ इस बलवान् कुवलयाश्वने अपने इक्कीस हजार पुत्रोंको संग लेकर, उत्तंकऋषिको प्रसन्न करनेके वास्ते

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ॥ विश्वरंधिस्ततश्चंद्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शावस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥ यः प्रियार्थमुतंकस्य धुंधुनामासुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥ धुंधुमारइति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुंधोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुंभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ॥ युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैंद्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥

धुंधु नाम दैत्यको मारा ॥ २२ ॥ तासों इसका 'धुंधुमार' नाम पड़ा. हे राजा ! धुंधुदैत्यके मुखमेंसे जो अग्नि निकली उससे इसके पुत्र जल गये. तिनमेंसे केवल दृढ़ाश्व, कपिलाश्व व भद्राश्व ये तीन पुत्र शेष रहे. इनमेंसे दृढ़ाश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके निकुंभ, ॥ २३ ॥ २४ ॥ निकुंभके बर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, उसके सेनजित, उसके युवनाश्व नाम पुत्र हुआ. इस युवनाश्वके संतान नहीं था, इसलिये यह खिन्न होकर, अपनी सौ रानियोंको संग ले, वनमें चलागया. वहां ऋषियोंको इसपै दया आगयी. तासों उन लोगोंने सावधान होकर, इसके पुत्र होनेके वास्ते इंद्रकी इष्टि

प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ पिता मर गया तब विकुक्षिने पीछा आकर, पृथ्वीका राज्य किया और अनेक यज्ञोंसे भगवान्‌का यजन किया. यह राजा शश ( खरगोस ) खा गया था, तासों इसका 'शशाद' ऐसा नाम विख्यात हुआ ॥ ११ ॥ उस विकुक्षिके जो पुत्र हुआ उसके पुरंजय, इंद्रवाह व ककुत्स्थ ये तीन नाम कर्मके अनुसार हुए वे कर्म कहता हूं सुनो ॥ १२ ॥ देवता और दैत्योंके नाश करनेवाला भारी संग्राम हुआ, वहां देवता दैत्योंसे हार गये, तब उन्होंने विकुक्षिसे सहायता मांगी ॥ १३ ॥ 'इंद्र जो मेरा वाहन होवे तौ मैं दैत्योंको मारूं' इसतरह विकुक्षिके पुत्रने कहा तब यह बात लाजके मारे इंद्रको अच्छी नहीं

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरंजयस्तस्य सुत इंद्रवाह इतीरितः॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतांत आसीत्समरो देवानां सहदानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेंद्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान्शितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥ १७ ॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगांताग्निमिवोल्बणम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥

लगी तौभी हे राजा ! जगत्‌के आत्मा देवदेव विष्णु भगवानके कहनेसे इंद्र बड़ा सांड़ ( बैल ) का रूप धरकर, उसका वाहन बना ॥ १४ ॥ वह दिव्य धनुष और तीक्ष्ण बाण ले, कमर कस, लोकोंके प्रशंसा करते युद्ध करनेकी अभिलाषासे उस सांड़पर चढ़कर, ककुद ( लाठ ) पर बैठा ॥ १५ ॥ महापुरुष विष्णु भगवान्‌के तेजसे उत्तेजित इस राजाने देवतानको संग लेकर, दैत्योंका पुर कि-जो पश्चिम दिशामें था उसे घेर लिया ॥ १६ ॥ उन दैत्योंके साथ इस राजाके रोम खड़े हो जायं ऐसा तुमुल युद्ध हुआ. जो जो दैत्य युद्धमें सन्मुख आये उन्हें भालोंसे मार मार, यमराजके पास पठाये ॥ १७ ॥ उसके बाणोंका पात प्रलयकालके अग्निके समान भयंकर था. उसे देखकर, मारे जाते दैत्य युद्ध छोड़ २ कर, पातालमें भाग गये ॥ १८ ॥

रथीतरके गोत्रमें प्रवर यानी मुख्य कहे गये ॥ ३ ॥ वैवस्वतमनुको छींक आयी, तब उनकी नाकमेंसे इक्ष्वाकु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ. इक्ष्वाकुके सौ १०० पुत्र हुए. तिनमेंसे विकुक्षि निमि व दण्डक ये पुत्र सबसे बड़े थे ॥ ४ ॥ इन सौ पुत्रोंमेंसे पचीस २५ आर्यावर्त्त-( विंध्य और हिमालयके मध्य ) में पूर्वकी तर्फ राज करते थे और २५ पचीस आर्यावर्त्तमें पश्चिमकी तर्फ और ये तीन बड़े पुत्र आर्यावर्तके मध्यप्रदेशमें राज करते थे, बाकीके सब पुत्र दक्षिण व उत्तरआदिकी ओर राज करते थे ॥ ५ ॥ इस इक्ष्वाकुने एक दिन अष्टकाश्राद्धमें अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि-' हे विकुक्षि ! तू जा और शीघ्र पवित्र मांस ला,

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदंडकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पंचविंशति पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाऽष्टकाश्राद्ध इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ॥ श्रांतो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः ॥ देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् ॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ इस आज्ञाको स्वीकार कर, विकुक्षिने वनमें जाकर, श्राद्धके योग्य पशु मारे, परंतु श्रमसे और भूखसे स्मरण जाता रहा, तासों इन पशुओंमेंसे एक शश ( चौगड़े ) को खा गया ॥ ७ ॥ और जो शेष रहा वह पिताके सिपुर्द किया. इक्ष्वाकुने मांसके प्रोक्षणके वास्ते गुरु ( वसिष्ठजी ) से कहा तद गुरु ( वसिष्ठजी ) बोले कि-' यह मांस उच्छिष्ट है तासों श्राद्धके कर्मके योग्य नहीं ' ॥ ८ ॥ गुरुके कहनेसे पुत्रका अपराध जानकर, क्रोधयुक्त हो, इक्ष्वाकु राजाने शास्त्रकी मर्यादा उल्लंघन करनेवाले अपने पुत्र विकुक्षिको देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुराजा, वसिष्ठजीके साथ संवाद कर, योगी हो, देहको तज, परब्रह्मको



१ सप्तम्यादित्रयं चैव तथा चैव त्रयोदशी ॥ चतस्रस्त्वष्टकाः प्रोक्ता सर्वपक्षाद्विशेषतः ॥ १ ॥ अर्थ-सप्तमीआदि तीन ( सप्तमी, अष्टमी, नवमी, ) और त्रयोदशी ये चार तिथी शुक्ल तथा कृष्णपक्षमें अष्टका कहीं हैं इनतिथियोंमें जो श्राद्ध की जातीं है उसे अष्टका कहते हैं ॥ १ ॥

रज रहा, इत्यादिक जो कुछ हुआ, सो सब भगवान्‌के प्रभावसे ही हुआ, ऐसे राजा अंबरीषने माना ॥ २४ ॥ ऐसे २ अनेक गुणवाला वह अंबरीष राजा उत्तम उत्तम कर्म करता, परमात्मा भगवान्‌की भक्ति करता था. कि–जिस भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मलोकतकके सब वैभव उसकी दृष्टिमें नरकके समान तुच्छज्ञात होते थे ॥ २५ ॥ आखिर वह धीर राजा अंबरीष अपने समान स्वभाववाले पुत्रोंको राज दे, वनमें चला गया, वहांभी केवल परमात्मा वासुदेवमेंही चित्त लगाये रहा, उससे संसारके बंधनसे छूट गया ॥ २६ ॥ अबंरीष राजाके इस पवित्र आख्यानका जो मनुष्य कीर्तन करे वा चिंतवन करे वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाय ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवम-

एवं विधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिंचान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथांबरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमंबरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्त्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे अंबरीषचरितं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमाञ्शंभुरंबरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तंतवेऽर्थितः ॥ अंगिरा जनयामासब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥

स्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥५॥ छठे अध्यायमें अंबरीषका वंश कहे पीछे शशादसे लेकर, मांधातातक इक्ष्वाकुका वंश और उस प्रसंगसे सौभरिऋषिकी कथा कही जायगी ॥ १ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेजी बोले कि–अंबरीषके विरूप, केतुमान व शंभु ये तीन पुत्र हुए. उनमेंसे विरूपके पृषदश्व और पृषदश्वके रथीतर पुत्र हुआ. रथीतरके प्रजा नहीं थी तासों उसने अंगिराऋषिसे प्रार्थना की. तद अंगिराऋषिने रथीतरकी स्त्रीमें ब्रह्मतेजवाले पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ ये अंगिराके वीर्यसे रथीतरके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए, तासों आंगिरस और रथीतर गोत्रकेभी कहलाये. ये क्षत्रियजाति ब्राह्मण

१ तेषां भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धकत्वात् । तदुक्तम् विष्णुपुराणे । वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ॥ तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ १ ॥ अर्थ–जो ब्रह्मलोकादिकोंके वैभव भगवत्प्राप्तिके बाधक हैं; इसीलिये वह अम्बरीष उनको नरककी तुल्य समझता था. सोही विष्णुपुराणमें कहा है । कि– जिसका मन विष्णुभगवान्‌के जप होम पूजनादिकोंमें लगा है तिसको देवेन्द्रत्वादिक फल विघ्नरूप होते हैं, ॥ १ ॥

यह मुझपै बड़ा अनुग्रह किया ॥ १७ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोलेकि–राजा अंबरीषभी दुर्वासाके पीछे आनेकी राह देखता रहा कि–वे आजांय तौ भोजन करूं, जबतक दुर्वासा न आये तबतक उसनेभी भोजन नहीं किया, जब वे आये तब दुर्वासाके चरण पकड़कर, उन्हें प्रसन्न करके, भोजन करावाया ॥ १८ ॥ अंबरीषराजाने आदरभावसे सब प्रकारसे संतोष देनेवाला अन्न परोसा, उसे भोजनकर, तृप्त हो, दुर्वासाने राजासे प्रीतिपूर्वक कहा कि– 'तुम भोजन करो' ॥ १९ ॥ और कहा कि–'तुम जो वैष्णव हो तिनके दर्शन, स्पर्शन, भाषण और सात्विक अन्नसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं और मुझपै यह बड़ा अनुग्रह हुआ है

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकांक्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनाऽऽत्ममेधसा ॥ २० ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायंति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्त्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ॥ ययौ विहायसाऽऽमंत्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकांक्षी राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोंऽबरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ इस तुम्हारे पवित्र कर्मको स्वर्गकी स्त्रियां वारंवार गाया करेंगी और पृथ्वीके लोगभी आपके परमपवित्र यशका कीर्तन करेंगे' ॥ २१ ॥ प्रसन्नचित्त दुर्वासा इसतरह राजाको कह, आज्ञा ले, आकाशमार्ग हो, ब्रह्मलोक पधारे. कि–जहां निष्काम कर्म करनेवाले जाया करते हैं ॥ २२ ॥ जबसे मुनि अंबरीषके यहांसे चक्रके भयसे भागे और पीछे न आये इतने अर्सेमें एक वर्ष व्यतीत होगया था, परंतु इतने अर्सेतक अंबरीष राजा, मुनिके दर्शनकी अभिलाषासे केवल जलका भक्षण करके, रहा ॥ २३ ॥ दुर्वासाके जानेके अनंतर ब्राह्मणभोजनसे अतिपवित्र अन्नसे अंबरीषराजाने भोजन किया. ऋषिमें दुःख पड़ा और पीछे वे दुःखसे छूटे और अपना धी-

ते हैं सो हमारे कुलको उत्तम भाग्यका लाभ होवे इस लिये इस ब्राह्मणका कल्याण करो, यही हमपै बड़ा अनुग्रह होगा ॥ ९ ॥ हमने जो कुछ दान वा यज्ञादिक किये हों, स्वधर्मका पालन किया हो और हमारे कुलमें ब्राह्मण देवरूपसे माने जाते हों तौ दुर्वासाका दुःख निवृत्त हो जाय ॥ १० ॥ एक व सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् जो हमपै सब प्राणियोंमें आत्मभाव रखने-से प्रसन्न हुए हैं तौ इस ब्राह्मणका संताप निवृत्त होवे ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- इसतरह राजाने स्तुति की, तब भगवान्का चक्र सुदर्शन कि-जो चारों ओरसे दुर्वासाको जला रहा था, वह राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर, शांत हो गया

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥ यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उ-वाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाञ्चया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युंजानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनंतदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मंगलानि समी-हसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः संगृहीतो भगवान्सात्वतामृष-भो हरिः ॥ १५॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्य-ते ॥१६॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः॥१७॥

॥ १२ ॥ चक्रकी अग्निके तापसे मुक्त और सुखी, दुर्वासाने उत्तम आशीर्वाद दिये और राजाकी प्रशंसा की ॥ १३ ॥ दुर्वासानें कहा कि-अहो ! भगवान्के दासोंका बड़प्पन मैंने आज देखा है, क्योंकि-हे राजा ! मैं अपराधी हूं तौभी तुम मेरा भला चाहते हो ॥ १४ ॥ ऐसा कौन पदार्थ है ? कि-जिसे महात्मा भक्तलोग कि-जिन्होंने भक्तपति भगवान्का ग्रहण किया है वे नहीं कर सक्के और नहीं छोड़ सक्के ॥ १५ ॥ जिनके केवल नाममात्रके श्रवण करनेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है उन भगवान्के दासजनोंको कौन पुरुषार्थ दुर्लभ है ? ॥ १६ ॥ महाराज ! तुमने मेरा अपराध न गिनकर, बड़ी दया करके, मेरे प्राण बचाये

स्तुति की ॥ २ ॥ अंबरीष बोला कि– हे सुदर्शन ! तुमही अग्निहो, तुमही भगवान् सूर्य हो, तुमहीं नक्षत्रोंके पति चंद्र हो, तुमहीं जल हो, तुमहीं पृथ्वी हो, तुमहीं आकाश हो और तुमहीं पवन, शब्दादिक पांच विषय व इंद्रिय हो, ॥ ३ ॥ हे हजारधारवाले ! हे भगवत्के प्यारे ! हे सब अस्त्रोंके नाश करनेवाले ! हे पृथ्वीपति ! मैं आपको प्रणाम करता हूं आप ब्राह्मणका कल्याण करो ॥ ४ ॥ धर्म, ऋतं, सत्यं, यज्ञ, सब यज्ञोंके भोक्ता, लोकपाल, सर्वात्मा और भगवान्के परमतेज तुमहीं हो ॥ ५ ॥ हे सुदर्शन ! तुम कि– जो सर्व धर्मोंके मर्यादारूप, अधर्मी दैत्योंको भस्म करनहारे, त्रिलोकीके

अंबरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेंद्रियाणि च ॥ ३ ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७॥ यदा विसृष्टस्त्वमनंजनेन वै बलं प्रविष्टोऽजितदैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९॥

रक्षक, शुद्ध तेजवाले, मनके समान वेगवाले और अद्भुतकर्म करनहारे हो तिन्हें मैं केवल प्रणाम करूं हूं ॥ ६ ॥ तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होय है और सूर्यादिकका प्रकाशभी तुम्हारेही तेजसे होय है. हे वाणीपति ! तुम्हारी महिमा अपार है और कार्य-कारण व छोटा-मोटा जो कुछ है वह सब आपहीका स्वरूप है ॥ ७ ॥ जब भगवान् तुम्हें छोड़ते हैं तब तुम दैत्य व दानवोंकी सेनामें प्रवेश कर, निरंतर उनके हाथ, उदर, साथल, पैर और गले काटते रणमें अतिशोभा देते हो ॥ ८ ॥ तुम कि– जो सबसे बढ़कर, बलवान् हो उन्हें भगवान् दुष्टजनोंका नाश करनेके वास्ते और जगत्की रक्षाके लिये धारण कर-

१ ऋतं च सूनृता वाणी सत्यं च समदर्शनम् ॥ अर्थ–सत्यं और प्रिय वाणीको ऋत कहते हैं. और समदृष्टिको सत्य कहते हैं ॥

मेरी सेवाके प्रभावसे सालोक्य¹आदि चारों मुक्तियां प्राप्त होती हों तौ उन्हेंभी नहीं चाहते, तब कालके बेगसे नाश होनेवाले दूसरे पदार्थोंकी तौ उनके आगे बातही कौन ? ॥ ६७ ॥ साधुलोग मेरे हृदय हैं और साधुलोगोंका हृदय मैं हूं. वे मेरे शिवाय दूसरा कुछ नहीं जानते और मैं उनके शिवाय दूसरा कुछ नहीं जानता ॥ ६८ ॥ हे विप्र! मैं तुम्हें एक उपाय कहता हूं सो सुनो. तुम्हारे जिससे यह दुःख पैदा हुआ है तुम उसीके पास जाओ ॥ ६९ ॥ साधुलोगोंपर चलायी शक्ति चलानेवालेकाही बुरा करती है, यदपि तप और विद्या ये दोनों ब्राह्मणोंका कल्याण करनेवाली हैं तथापि अविनयवाले ब्राह्मणका इन्हींसे अकल्याण होता है ॥ ७० ॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत्ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९ ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥ ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शांतिर्भविष्यति ॥७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेऽबरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अंबरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ॥ अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपका भला हो, तिससे आप अंबरीषराजाके शरण जाओ और उस महाभाग राजाके पास क्षमा मांगो, सो शांति हो जायगी ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवे अध्यायमें अंबरीषराजाने भगवान्के चक्रकी स्तुति कर, उसे प्रसन्न करके ब्राह्मणकी रक्षा की यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- इसप्रकार भगवान्ने आज्ञा की तब चक्रके तापसे संतप्त दुर्वासा ऋषिने पीछे आकर, अंबरीषराजाके पांव पकड़ लिये ॥ १ ॥ दुर्वासाका उद्यम देखकर, चरणस्पर्शसे शर्माते और दयासे अतीव दबाये राजा अंबरीषने भगवान्के आयुध ( चक्र ) की

१ सलोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सायुज्य, यही चार प्रकारकी मुक्तियां हैं.

अग्निसे जलते और कांपते दुर्वासा ऋषि भगवान्‌के चरणमूलमें पड़कर, बोले कि-' हे अच्युत ! हे अनंत ! हे सत्पुरुषोंके इच्छित ! हे प्रभु ! हे जगत्‌रक्षक ! मुझ अपराधीकी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ आपके बड़े प्रभावको नहीं जान कर, मैंने आपके प्रियभक्तोंका अपराध किया है, सो हे विधाता ! इस अपराधका प्रतीकार करो, क्योंकि नारकी जीवभी जो आपका नाम लेता है वह दुःखसे मुक्त हो जाता है ॥ ६२ ॥ दुर्वासाकी ऐसी विनती सुनकर, श्रीभगवान् बोले कि-हे ब्राह्मण ! मैं तौ भक्तोंके

अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाऽघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ॥॥ ६४ ॥ ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परं ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ॥ वशे कुर्वंति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादि चतुष्टयम् ॥ नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥

आधीन होनेसे परतंत्रसा हूं मैं भक्तजनप्रिय हूं अतएव उन साधु भक्तजनोंने मेरा हृदय अपने आधीन कर, रक्खा है ॥ ६३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिन साधुजनोंकी मैंही परमगति हूं, उन मेरे भक्तोंको तजकर, मैं न तौ मेरे शरीरको और न निरंतर निकट रहनेवाली लक्ष्मीको चाहाता हूं ॥ ६४ ॥ जो भक्तजन स्त्री, पुत्र, घर, बंधु, प्राण व इस सर्वोत्कृष्ट धनको तजकर, मेरे शरण आये हैं उन्हें मैं किस तरह छोड़सकूं ? ॥ ६५ ॥ जिन्होंनें मुझमें चित्त लगा दिये हैं, ऐसे समदृष्टि साधुलोग, जैसे पतिव्रता स्त्रियां अपने श्रेष्ठ पतिको वश करतीं है, वैसे मुझे वशमें कर लेते हैं ॥ ६६ ॥ जो अपने तईं सेवासेही परिपूर्ण मानते हैं ऐसे भक्तलोग

१ प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥ क्योंकि ऐसा कहा है कि-महात्माओंके क्रोधका प्रतीकार नम्रताही है ॥

नहीं कर सक्ता ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-जब ब्रह्माजीने जबाब दिया, तद विष्णुके चक्रसे संतप्त दुर्वासा कैलासमें महादेवजीके शरण गये ॥ ५५ ॥ और विनती करी तद महादेवजीने कहा कि-हे तात ! जिन व्यापक व पर भगवान्‌में यह ब्रह्मांड और ब्रह्मारूप जीवोंके शरीरभूत दूसरेभी ऐसे २ हजारों ब्रह्मांड हुवा करते हैं और पीछे लीन होते हैं. अर्थात् जो समय समय पर जगत्का आविर्भाव तिरोभाव करता है और लोकेश्वरपनका अभिमान रखनेवाले हमभी जिनके भीतर चक्कर खाते

प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः॥ भवंति काले न भवंति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपांतरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययावृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ॥ वैकुंठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानंत सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽवहि विश्वभावन ॥ ६१ ॥

रहते हैं. उनके विषे हमारी शक्ति नहीं चलती ॥ ५६ ॥ मैं, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा, कपिल, अपांतरतम, देवल, धर्म, आसुरी ॥ ५७ ॥ तथा मरीचिआदि दूसरेभी बड़े २ सिद्धलोग सर्वज्ञ होनेपरभी जिनकी मायाके आवरणसे जिनकी मायाको नहीं जानते हैं ॥ ५८ ॥ उन जगन्नाथ भगवान्‌का यह शस्त्र हमसेभी सहा जाय ऐसा नहीं है. तासों तुम उन्हींके शरण जाओ. हे तात ! भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ५९ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि-जब दुर्वासा निराश होगये, तब भगवान्‌का धाम वैकुंठ कि-जहां लक्ष्मीजीसहित लक्ष्मीनिवास भगवान् विराजते हैं वहां गये ॥ ६० ॥ भगवान्‌के चक्रके

पीछे लगा, पृथ्वीनाथ ! अपने परिश्रमको निष्फल जान और पीछे दौड़ते आते चक्रको देखकर, भयभीत दुर्वासा अपने प्राण बचानेकी इच्छासे दिशाओंमें दौड़ने लगे ॥ ४९ ॥ लहकाहुआ अग्नि जैसे सर्पके पीछे लगे तैसे यह भगवान्‌का चक्र दुर्वासाके पीछे लगा, महाराज ! चक्रको पीछे लगा देख कर, दुर्वासाऋषि मेरुपर्वतकी गुफामें घुसनेको दौड़े ॥ ५० ॥ और इसीतरह दिशा, आकाश, पृथ्वी, पाताल, समुद्र, लोक, लोकपालोंके स्थान व स्वर्गमेंभी गये, परंतु जहां जहां दौड़कर, गये वहीं असह्य सुदर्शन चक्रको पीछे आता देखा ॥ ५१ ॥ महाराज ! त्रस्तचित्त दुर्वासाको जब कहीं मालिक न मिला, तब अनाथ

तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्भूतशिखो यथाऽहिम् ॥ यथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्रान् लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्द्धसंज्ञे ॥ भ्रूभंगमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरो भविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४ ॥

दुर्वासा शरण ढूंढ़ते ब्रह्माजीके पास गये और बोले कि–'हे विधाता हे स्वयंभू ! इस भगवच्चक्रसे मेरी रक्षा करो' ॥ ५२ ॥ दुर्वासाकी पुकार सुन, ब्रह्माजीने कहा कि–हे मुनि ! जब दो परार्द्धसंज्ञावाला क्रीड़ाका अंतसमय आवेगा, तब भस्म करनेकी इच्छावाले जिन कालरूप भगवान्‌की केवल भृकुटी चढ़नेसे जगत्सहित यह मेरा धाम तिरोभाव हो जायगा ॥ ५३ ॥ हे तात ! मैं महादेव, दक्ष, भृगुआदि प्रजापति, भूपति तथा बड़े २ देवआदि सब लोग जिनकी आज्ञाको पाकर, लोकोंका हित हो वैसी रीतिसे उस आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं उन भगवान्‌के भक्तसे तुमने द्रोह किया, इसलिये मैं तुम्हारी रक्षा

१ ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी आयु है. तिसके पचास पचास वर्षके दो भाग हैं. उन भागोंको परार्द्ध कहते हैं. तिनमें जो प्रथम भाग है सो पूर्वपरार्द्ध कहलाता है. और दूसरा भाग परार्द्ध कहलाता है. और दोनों परार्द्ध हो चुकते हैं तब प्रलय होता है. उस समय सब सृष्टिका नाश हो जाता है.

भगवान्‌का ध्यान करता यह राजा, दुर्वासाके आनेकी राह देखने लगा ॥ ४१ ॥ नित्यकृत्यसे निपटकर, यमुनाजीके तीरसे दुर्वासा आये तद राजाने उनका सत्कार किया. परंतु राजाने जो किया वह सब कृत्य मुनिने बुद्धिसे जान लिया ॥ ४२ ॥ तासों दुर्वासाको बड़ा क्रोध आया, सब शरीर कांपने लगा, भौंह चढ़नेसे मुख तिरछा होगया, मुनिको बहुतही तेज क्षुधा लग रही थी तासों वेगमें आकर, हाथ जोड़े खड़े अंबरीष राजाके विषयमें दुर्वासाने कहा कि- ॥ ४३ ॥ 'अहो ! यह अंबरीष, किजो क्रूर, लक्ष्मीसे उन्मत्त, विष्णु भगवान्‌का अभक्त व समर्थपनका अभिमान रखनेवाला है, इसने धर्मका उल्लंघन किया सो

दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाभिनंदितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृतांजलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो माततिथिमायातमातिथ्येन निमंत्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥ एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतंतीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयंतीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥

देखो ॥ ४४ ॥ मैं जो अतिथि बनकर, तेरे यहां आया हूं उसे अतिथिसत्कारके निमित्त निउता देकर, जिस तूने मेरा आतिथ्य किये विना भोजन किया सो तुझे इस अपराधका फल तुर्त दिखलाऊंगा ॥ ४५ ॥ क्रोधसे प्रदीप्त दुर्वासा ऋषिने ऐसे कह, अपनी जटाको जलदी उखेड़ कर, उसमेंसे काल व अनलके समान अंबरीष राजाके लिये एक कृत्या ( मूंठ ) प्रगट करी ॥ ४६ ॥ जलती हुई पावोंसे धरतीको कंपायमान करती हाथमें खड्ग लिये वह कृत्या आयी. उसे आती देखकर, अंबरीषराजा वहांसे एक कदमभी पीछा नहीं हटा ॥ ४७ ॥ इतनेमें अपने दासकी रक्षाके लिये महापुरुष भगवान्‌के पहलेहीसे दियेहुए सुदर्शन चक्रने आकर, अग्नि जैसे क्रोधित सर्पको भस्म करे, वैसे उस कृत्याको भस्म कर दिया ॥ ४८ ॥ और फिर दुर्वासाके

बछड़े दूध, स्वभाव, अवस्था व रूप ये अतिसुंदर थे और उपस्करभी सर्वोत्तम तैयार किया था. प्रथम मधुर व गुणयुक्त अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय, ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उनको मनवांछित पदार्थ दे, उनकी आज्ञा ले, पारणा करनेकी तैयारी करी, इतनेमें साक्षात् भगवान् दुर्वासा ऋषि उसके यहां अतिथि बनकर, आये ॥ ३५ ॥ इतनी कथा कह, शुकमुनि बोले कि–राजानो सन्मुख जाकर, आसन दिया और गंध पुष्पादिकसे उन अतिथिकी पूजा की और चरणोंमें पड़कर, भोजन करनेके वास्ते प्रार्थना करी ॥ ३६ ॥ वे राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर, मध्यान्हिक नित्यकृत्य करनेको यमुनाजी गये और निर्मल यमुनाजलमें बैठकर,

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनंद्य स तद्याञ्चां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिंदीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्त्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिंतयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अंभसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिंतयन्मनसाऽच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥

परब्रह्मका ध्यान करने लगे ॥ ३७ ॥ पारणा करनेमें द्वादशी केवल एक घड़ीही शेष रह गयी और दुर्वासा वहीं रुक रहे, इस धर्मसंकटमें धर्मके ज्ञाता अंबरीष राजाने पारणाके विषे ब्राह्मणोंके साथ विचार किया कि– ॥ ३८ ॥ 'दुर्वासाके आये विना जो पारणा करूं तो दोष और द्वादशीमें पारणा न करूं तो दोष, तासों अब मैं क्या करूं? कि–जिससे मेरा भला होवे ओर मुझे अधर्मका स्पर्शभी न होवे' ॥ ३९ ॥ ऐसे विचार कर, फिर राजाने विचार किया कि–'अभी केवल जलसेही पारणा करना उचित है' क्योंकि ब्राह्मणलोग कहते हैं कि–'जलभक्षण भोजनमें गिनाभी जाता है और नहींभी' ॥ ४० ॥ महाराज! ऐसे विचार कर जलका प्राशन कर, मनमें



१ तथाच श्रुतिः । अपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितमिति । तैसेही श्रुतिनेभी कहा है कि–जो जलभक्षण किया जाता है वह भोजनभी नहीं और अभोजनभी नहीं।

य कभी प्रसन्न नहीं करते, कारण यह है कि-स्वरूपलाभके सुखकी अपेक्षा वे किसीप्रकार अधिक नहीं हैं ॥ २५ ॥ इसतरह तप, भक्तियोग व स्वधर्मसे भगवान्को प्रसन्न करते उस राजाने धीरे २ सब संग छोड़ दिये ॥ २६ ॥ घर, स्त्रियां, पुत्र, बंधु, उत्तम हाथी, रथ, घोड़ा, प्यादा व रत्न, आभरण व आयुधआदि अक्षय पदार्थोंसे भरपूर अनेक खजानेभी उसने मिथ्या करके जान लिये ॥ २७ ॥ एकांत भक्तिभावसे प्रसन्न भये भगवान्ने अपने दासकी रक्षाके वास्ते शत्रुओंको भय देनेवाला सुदर्शन नाम चक्र इस राजाको दिया ॥ २८ ॥ इस राजाने भगवान्का आराधन करनेके वास्ते अपने समान स्वभाववाली रानीके साथ एकवर्ष-

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्संगान्सर्वान् शनैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बंधुषु द्विपोत्तमस्यंदनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिष्वनंतकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकांतभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतांते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिंद्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥ महाऽभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा ॥ अभिषिच्यांबराकल्पैर्गंधमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतांतरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥

पर्यंत अखंड एकादशीका व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ व्रतके अंतमें कार्तिकमासमें त्रिरात्र व्रत किया और यमुनामें स्नान करके, मधुवनमें यह राजा एक दिन भगवान्का पूजन करने लगा ॥ ३० ॥ महाराज ! सब उपस्कर तैयार कर, महाभिषेककी विधिसे भगवान्का अभिषेक कर, केवल भगवान्में चित्त लगाये वस्त्र, आभूषण, गंध, पुष्प और नैवेद्य वगैरःसे भगवान्का पूजन करते समय ॥ ३१ ॥ इस राजाने महाभाग ब्राह्मण कि-जो अपनी पूजाकी अपेक्षा नहीं रखते उनकीभी भक्तिभावसे पूजा करी ॥ ३२ ॥ और ब्राह्मणोंके घर छासठकरोड़ गायें पठायीं. उनके सोनेके सींग व रूपेके खुर करवाये; सुथरे वस्त्र ओढ़ाये, महाराज ! उनके

र्थमें, ॥ १९ ॥ पाव भगवत्के क्षेत्र ( गंगाआदि ), व मंदिर जानेके काममें, मस्तक भगवान्के चरणोंको अभिवंदने करनेमें, लगाये रहता और चदंनपुष्पादिक जो सुखकारी पदार्थ हैं उनकाभी दास्यभावसे प्रसाद स्वीकार करनेके निमित्त सेवन करता पर विषयभोगकी इच्छासे नहीं; वह सब काम इस तरह किया करता कि-जिस भांति भक्तलोकोंके साथ प्रीतिकी रीति बंधे ॥ २० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार वह जो कुछ कर्मकलाप करता वह सब अधियज्ञ व अधोक्षज पुरुषोत्तम भगवान्के अर्पण किया करता और सबमें आत्मा है ऐसी भावना रखताहुआ यह अंबरीष राजा



पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचितांगदक्षिणैः ॥ ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यंत सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥ समर्धयंति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ॥ दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुंदं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥

वैष्णव ब्राह्मणोंके उपदेशके अनुसार पृथ्वीका पालन करता था ॥ २१ ॥ इस राजाने बसिष्ठ, असित और गौतमआदि ऋषियोंसे प्रयोग बढ़ा २ कर, निर्जलदेशमें सरस्वतीके तीर २ अनेक अश्वमेधोंसे यज्ञेश्वर भगवान्का यजन किया और आप बड़ा समृद्ध था इसलिये इसने उन यज्ञोंमें अंग व दक्षिणाओंमें बहुत कुछ बढ़ाव किया ॥ २२ ॥ इसके यज्ञमें सभासद, ऋत्विज, ब्राह्मण व दूसरे लोगभी सुथरे वस्त्र व आभूषणआदिसे देवताओंके समान शोभा देते थे और उनके नेत्रभी आश्चर्य देखनेसे देवताओंके समान निमेषरहित प्रतीत होते थे ॥ २३ ॥ भगवान्की महिमा गाती व सुनती उसकी प्रजा, देवतानको प्रिय लगे ऐसा स्वर्गभी नहीं चाहती थी ॥ २४ ॥ क्योंकि-जो हृदयमें सदा भगवान्को देख रहे हैं उन्हें सिद्ध पुरुषोंकोभी दुर्लभ ऐसे विष-

और अपने स्वरूपकोभी पहचान लेता है ॥ १२ ॥ इस नाभागके अंबरीष नाम पुत्र हुआ, यह अंबरीष महावैष्णव और बड़ा धर्मात्मा था, ब्राह्मणका श्राप कि-जो किसीसे नहीं टलता वहभी इसे छू न सका ॥ १३ ॥ परीक्षितने पूंछा कि-महाराज ! यह बुद्धिमान अंबरीष राजा कि-जिसपर ब्राह्मणका चलाया महाभयंकर ब्रह्मदंडभी नहीं चल सका; उसका चरित मैं सुनना चाहता हूं ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाभाग्यशाली अंबरीष राजाको सात द्वीपवाली पृथ्वीका राज्य, अक्षय लक्ष्मी और सर्वोत्तम वैभव ॥ १५ ॥ कि-जो अन्य पुरुषोंको मिलना अतिदुर्लभ है ये सब प्राप्त थे, तौभी आखिर वैभव नाशवान् है

नाभागादंबरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदंडो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंबरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ठवत्स्मृतम् ॥ १७ ॥ स वै मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मंदिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥ मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंगसंगमम् ॥ घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥

ऐसे ज्ञानवाला राजा अंबरीष इन सबको स्वप्नके समान माना करता; क्योंकि वैभवसे मनुष्य मोहमें पड़ जाता है ॥ १६ ॥ पृथ्वीनाथ ! भगवान् वासुदेव और उनके भक्त साधु जनोंमें बड़ा भाव था. जिससे वह इस सब संसारको मिट्टीके समान जानता था ॥ १७ ॥ यह राजा मन तौ सदा भगवान्के चरणारविंदमें, वाणी भगवान्के गुणानुवादके वर्णनमें, हाथ भगवान्के मंदिर झाड़नेआदि कामोंमें, कान भगवान्की उत्तम कथा श्रवण करनेमें ॥ १८ ॥ नेत्र भगवान्की मूर्तियोंके दर्शन करनेमें, अंगसंग भगवद्भक्तोंके अंगस्पर्शमें, नाक भगवत्के चरणकमल संबंधी तुलसीकी सुगंधिमें और जीभ भगवदर्पण किये भगवत्प्रसादीपदा-

वह सब नाभागको देकर, स्वर्गमें गये ॥ ५ ॥ नाभागने यह धन बटोरना शुरु किया, इतनेमें कृष्णवर्ण एक पुरुष उत्तर दिशामेंसे आया और बोला कि– 'इस यज्ञभूमिमें जो धन पड़ा है वह मेरा है' ॥ ६ ॥ नाभाग बोला कि–' यह धन ऋषिलोग मुझे दे गये हैं' तद उस पुरुषने कहा कि–, अपना यह विवाद तेरे पिताके पास निवेदन कर, सो वह जो कहेगा सो सही मान लिया जायगा. तब नाभागने जाकर, अपने पितासे पूंछा, तद उसको पिताने कहा कि–सच है ॥ ७ ॥ यज्ञभूमिमें जो कुछ शेष पड़ा रहे वह सब रुद्रभाग है. इस तरह एक समय ऋषिलोग नियत करचुके हैं. सो इस सब धनके अधि-

तं कश्चित्स्वीकरिष्यंतं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ॥ स्यान्नो ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥ ७ ॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय सदेवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मंत्रदृशे ज्ञानं ब्रह्मसनातनम् ॥ १० ॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वांऽतर्हितो रुद्रो भगवान्सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत्संस्मरेत्प्रातः सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मंत्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥

कारी रुद्रही हैं" ॥ ८ ॥ पिताके वचन सुन, नाभागने महादेवजीके पास जाय, प्रणाम करके, रुद्रसे कहा कि–' हे ईश यह सब द्रव्य आपकाही है. ऐसे मेरे पिताने कहा है सो हे ब्रह्मरूप ! यह आप लीजिये. और मेरा अपराध हुआ इस लिये शिरसे दंडवत् करके, मैं आपसे क्षमा मांगता हूं' ॥ ९ ॥ महाराज ! नाभागकी सौजन्यता देखकर, रुद्रने कहा कि–' तेरे पिताने धर्मकी बात कही और तूनेभी आकर सत्य कहा, इसलिये मंत्रके द्रष्टा तुझको मैं सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं ॥ १० ॥ और इस यज्ञमें, जो शेष रहा है वह धनभी मैं तुझे देता हूं, सो तू मुझसे ले, ऐसे कहकर, सत्यवत्सल भगवान् रुद्र अंतर्धान हुए ॥ ११ ॥ महाराज ! जो मनुष्य सायंप्रातः सावधान होकर, इसका स्मरण करे वह विद्वान् और मंत्रका ज्ञाता हो जाय

चौथे अध्यायमें मनुके पुत्र नभगकी और उसके पुत्र अंबरीष राजा कि–जिससे मृत्युभी भाग निकला उसकी कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–मनुके पुत्र नभगके नाभाग नाम पुत्र हुआ, यह गुरुके घर विद्याभ्यास करने गया. तब इसके बड़े भाइयोंने विचार किया कि–यह तौ नैष्ठिक ब्रह्मचारीही रहेगा, इस लिये इसका भाग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं इस विचारसे इसके लिये कुछभी बांट न रख कर, पिताका सब द्रव्य बांट लिया, फिर उसके पीछे घरमें आकर, इस विद्वान् नाभागने अपना भाग मांगा. तब इसके भाइयोंने इस छोटे भाईके भागमें अपने वृद्ध पिताको नियत किया ॥ १ ॥ नाभागने आकर, पूंछा कि–हे भाईयो ! मेरे 'बांटमें आपने क्या रक्खा है' ? तब इसके बड़े भाइयोंने कहा कि–तेरे भागमें हमने अपने वृद्ध पिताको रक्खा है' नाभागने

श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यंततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतं ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां ममार्यास्तताभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ ॥ २ ॥ इमे अंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यंति कर्मणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ ते स्वर्यंतो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥ दास्यंत्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान्यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥

अपने पिताके निकट आकर, कहा कि–' मेरे बड़े भाइयोंने मेरे बांटमें आपको दिया है' पिताने कहा कि–' तू इस बातको मंजूर मत करे, क्योंकि मुझसे तेरी आजीविका चलेगी नहीं, तौभी तेरे बांटमें मुझे दिया है तौ मैं अभी तुझे जीवनका उपाय बताऊंगा ' ॥ २ ॥ ऐसे कह, पिताने पुत्रसे कहा कि–हे कवि ! अभी ये अंगिरागोत्रके विद्वान् ब्राह्मण अभिप्लव और पृष्ठ्य नाम यज्ञ कर रहे हैं सो वे बेरबेर छठे छठे दिन कर्म करनेमें भूल जाते हैं ॥ ३ ॥ तासों तू उनके पास जा और विश्वेदेवोंके दो सूक्त कह, जिससे वे अपना यज्ञ समाप्त कर, स्वर्गमें जायंगे तब अपने यज्ञमें जो शेष रहेगा वह सब धन तुझे दे जायंगे. ॥ ४ ॥ सो तू वहां जा. महाराज ! पिताके वचन मान, नाभागने वैसाही किया, तब वे ब्राह्मण जो धन यज्ञमें अवशेष रहा

---

१ इदमित्थारौद्रमिति ॥ १ ॥ येयज्ञेनदक्षिणयेति ॥ २ ॥ येही विश्वेदेवोंके दो सूक्त हैं.

तिउत्तम सौ पुत्र हुए, तिनमें सबसे बड़ा ककुद्मी नाम पुत्र था. रेवतराजा अपनी कन्या रेवतीको संग ले, कन्याके लिये योग्य वर पूंछनेके वास्ते ब्रह्मलोकमें गया. पर वहां गान होरहा था, इसलिये अवकाश न मिलनेसे उसे वहां कुछ देरतक बैठना पड़ा ॥ २९ ॥ ३० ॥ महाराज ! गान होचुका तब नमस्कार कर, उसने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय कहा, वह सुन कर, ब्रह्माजीने हँसकर कहा कि- ॥ ३१ ॥ 'अहो ! हे राजन् ! तैंने जिन जिन वरोंके वास्ते विचार किया रहा वे तो सब नाश हो गये हैं, इतनाही नहीं पर उनके पुत्र पौत्र या प्रपौत्रके वंशभी नहीं रहे हैं, क्योंकि-पृथ्वीमें सत्ताईस युग बीत गये हैं ॥ ३२ ॥ महा-

कन्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्त्तमाने गंधर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदंत आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोभियातस्त्रिणव चतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भो ॥ भुवोभारावताराय भगवान्भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवंद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

राज ! अब तू पृथ्वीपै जा और रत्नके समान तेरी कन्या श्रीकृष्ण भगवान्के अंशरूप मनुष्योंमें रत्नरूप महाबली बलदेवजीको दे, ॥ ३३ ॥ जो अभी पृथ्वीका भार उतारनेके वास्ते पुण्यकारी जिनके श्रवण कीर्तन हैं ऐसे भूतभावन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके साथ उनके अंशसे बलदेव नामसे अवतरे हैं ॥ ३४ ॥ महाराज ! इसतरह ब्रह्माजीने आज्ञा की, तद उन्हें प्रणाम कर, राजा रेवत पीछा अपने नगरको आया ॥ ३५ ॥ कि जहांसे यक्षोंके भयसे उसके भाई पुरीको छोड़कर भाग गये थे, फिर बलशाली बलदेवजीको अपनी सुंदर कन्या दे, राजा नारायणके आश्रम बदरिकाश्रममें तप करनेको गया ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

जारपुरुषको ले, बैठी है सो यह तैंने कुलको कलंक लगाया, इससे तू पिताके और भर्ताके कुलको नरकमें गिराती है ॥ २१ ॥ इसतरह कहतेहुए अपने पितासे सुकन्याने कहा कि– , हे पिता ! ये आपके दमाद च्यवन मुनिही हैं ' ॥ २२ ॥ फिर जिसतरह मुनिको रूप व अवस्था प्राप्त हुई, वह वृत्तांत सब कह सुनाया. राजा शर्याति बहुत विस्मित और प्रसन्न होकर, अपनी कन्यासे मिला ॥ २३ ॥ फिर राजाने सोमयज्ञका आरंभ किया. यद्यपि अश्विनीकुमारोंको सोमपानका भाग नहीं मिलता था, तौभी च्यवनमुनिने अपने सामर्थ्यसे उनके सोमका भाग दिया ॥ २४ ॥ तब तुर्त इंद्रने क्रोधयुक्त होकर, इस बातका सहन

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनंदनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलंभनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हंतुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ॥ स वज्रं स्तंभयामास भुजमिंद्रस्य भार्गव ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हिरानर्त्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्त्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोंऽतः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितो भुंक्तविषयानानर्त्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वमादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥

न होनेसे च्यवनमुनिको मारनेके लिये वज्र उठाया परंतु च्यवनमुनिने वज्रसहित इंद्रका हाथ स्तब्ध कर दिया ॥ २५ ॥ तबसे सबोंने अश्विनीकुमारोंको सोम देना स्वीकार किया. पहले इनको सोमके भागसे उन्होंने बाहिर कर रक्खा था. उसका कारण यह था कि–ये वैद्यका नीच कार्य करते हैं इसलिये ये सोमके योग्य नहीं हैं ॥ २६ ॥ शर्यातिके उत्तानबर्हि, आनर्त्त व भूरिषेण ये तीन पुत्र हुए, आनर्तके रेवत पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ हे शत्रुदमन ! इस रेवत राजाने समुद्रके भीतर कुशस्थली ( द्वारका ) नाम पुरी बसायी यह उसमें रहताहुआ आनर्त ( ओखामंडल ) आदि देशोंमें राज करता था ॥ २८ ॥ इस रेवत राजाके अ-

द्में प्रवेश कराया और आपभी प्रवेश हुए ॥ १४ ॥ थोड़ी देरके अनंतर उस ह्रदमेंसे तीन पुरुष निकले जो अतिसुंदर स्त्रियोंको प्रिय लगें ऐसे, कमलोंकी माला पहिरे, कुंडल धारण किये, सुथरे वस्त्र धरे, तुल्यरूप दीख रहे हैं ॥ १५ ॥ उन सूर्यसे तेजस्वी समानरूप पुरुषोंको देख कर, वरारोहा पतिव्रता सुकन्या पतिको न पहिंचानकर, अश्विनीकुमारोंके शरण गयी ॥ १६ ॥ महाराज ! उसका पतिव्रतापन देखकर, अतिप्रसन्न अश्विनीकुमार उसे उसके पतिको दिखला कर, च्यवनऋषिसे आज्ञा ले, विमानमें बैठ, स्वर्गको चले गये ॥ १७ ॥ फिर एक दिन शर्याति राजा यज्ञका मनोरथ कर, च्यवनमुनिके आश्रममें गया. वहां कन्याके

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुंडलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामंत्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवंदनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुंजानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलंभितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ यत्त्वं जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विमम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥

पास बैठा हुआ सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष उसके देखनमें आया ॥ १८ ॥ कन्याने आकर, प्रणाम किया, तौभी राजाने आशीर्वाद नहीं दिया और अतिउदासमन होकर, राजाने अपनी कन्यासे कहा कि- ॥ १९ ॥ अरे ! यह तूने क्या किया ? सर्व लोग जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे च्यवनमुनिसे तूने छल किया. हे असति! जरासे जर्जर और अप्रिय लगें ऐसे पतिको त्याग कर, इस किसी बटोही जार पुरुषका तू सेवन करती है ! ! ! ॥ २० ॥ हे सत्पुरुषोंके कुलकी कन्या ! अच्छे कुलमें जन्म लेनेपरभी तेरी यह विपरीतबुद्धि कैसे हो गयी ? जो तू निर्लज्ज होकर,

भोली मैं कांटा हाथमें ले, उससे तेजवाले दो पदार्थ बींध डारे हैं ॥ ७ ॥ कन्याके वचन सुन, शर्याति मनमें घबराया और वल्मीक ( बांबी ) के अंदर विराजमान च्यवनऋषिके पास जा कर, धीरे २ क्षमा मांगने लगा ॥ ८ ॥ वहां बांतचीतसे ऋषिका अभिप्राय जान कर, राजाने अपनी वह कन्या च्यवनऋषिको दी. फिर कष्टमुक्त राजा च्यवनमुनिसे आज्ञा मांग, सावधानीसे अपने नगर आया ॥ ९ ॥ अतिक्रोधी च्यवनऋषिसे व्याही हुई और उनके चित्तको जाननेवाली सुकन्याने सावधान हो,

दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकांतर्हितं शनैः ॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामंत्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनंद्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन्ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ॥ ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥ १४ ॥

सेवा कर, पतिको प्रसन्न किया ॥ १० ॥ कितनेएक दिन बीतनेके अनंतर अश्विनीकुमार अपने आश्रममें आये, उनकी पूजा कर, च्यवनऋषिने कहा कि-हे उत्तम वैद्यो ! मुझे यौवन अवस्था देओ ॥ ११ ॥ मेरी अवस्था और रूप स्त्रियोंके मनवांछित कर दोगे तो आपको आजतक यज्ञमें सोमका भाग नहीं मिलता सो वह मैं तुम्हें दे दूंगा ॥ १२ ॥ उत्तम वैद्य अश्विनीकुमारोंने उस बातको स्वीकार कर तथा सत्कार कर, च्यवनऋषिसे कहा कि-'सिद्धलोगोंके बनाये इस ह्रद ( कुंड ) में आप गोता लगाइये ॥ १३ ॥ ऐसे कहकर, च्यवनऋषि कि-जो जरासे जर्जरशरीर और नसोंसे व्याप्त तथा वलि व पलितसे अप्रिय लगतेथे उन्हें ह-

१ जब च्यवन महर्षिके पास शर्याति नाम राजा गया और उन पूर्वोक्त मुनिसे कहा कि-महाराज ! यह मेरी कन्या अजान है इससे इसका अपराध क्षमा करो. यह बात राजाकी सुन, उन्होंने कहा-हे राजन् ! तुम्हारी कन्या कितने बरसकी है ? अभी तुमने उसका विवाह किया है, या नहीं? इत्यादि बातचीतसे राजाने उनका विवाहका अभिप्राय जाना.

कृशाश्वके सोमदत्त नाम पुत्र हुआ. जो अश्वमेधयज्ञोंसे भगवान्‌का यजनकर, योगेश्वरोंका शरण ले, मोक्षगतिको प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ सोमदत्तके सुमति, सुमतिके जनमेजय नाम पुत्र हुआ, विशालके वंशके ये राजा तृणविंदुके यशको धारण करनेवाले हुए ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटिकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ मनुपुत्र शर्यातिके वंशमें सुकन्या और रैवतका बड़ा अद्भुत आख्यान वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–मनुका पुत्र शर्याति राजा वेदके तत्त्वका ज्ञाता था और उसने अंगिराकुलके ब्राह्मणोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्तव्य कर्म कहा था ॥ १ ॥ उसके कमलनयनी सुकन्या नाम

कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिंदोर्यशोधराः ॥३६॥ इति श्रीभा० महा० नवम० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥१॥ सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना ॥ तया सार्द्धं वनगतो ह्यगमच्च वनाश्रमम् ॥ २ ॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यंघ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरंध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥ ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कंटकेन वै ॥ अविद्धयन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक्ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान्विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥ सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित्कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानंत्या निर्भिन्ने कंटकेन वै ॥ ७ ॥

कन्या हुई. राजा उस कन्याको संग ले, च्यवन मुनिके आश्रममें गया ॥ २ ॥ सखियोंसे आवृत वनमें वृक्षोंको ढूंढ़ती फिरती उस कन्याने वल्मीक ( बांबी ) के छिद्रमें समान दो तेजवान् पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ इस भोली कन्याने दैवप्रेरणासे कांटेसे इन दोनों जुगनूके पदार्थोंको बींध डाला, उनमेंसे बहुतकुछ रुधिर निकला ॥ ४ ॥ उसी समय सब सेनाके लोगोंका हगना मूतना बंद होगया, यह बात देखकर, विस्मययुक्त राजाने अपने आदमियोंसे पूंछा कि– ॥ ५ ॥ तुमने कुछ च्यवनऋषिका अपराध तो नहीं किया है ? अवश्य आपनमेंसे किसीने उनके आश्रममें उपद्रव किया हो ॥ ६ ॥ सुकन्याने डरते २ अपने पितासे कहा कि–महाराज ! मैंने कुछ किया है, सो यह है कि–

उसके अवीक्षित, उसके मरुत्त चक्रवर्ती पुत्र हुआ, महाराज ! अंगिराके पुत्र बड़े योगी संवर्तने मरुत्तको यज्ञ करवाया ॥ २६ ॥ जैसा मरुत्त राजाका यज्ञ हुआ वैसा और किसीका नहीं हुआ. इसके यज्ञमें जो कुछ पात्रादिक थे वे सब सुवर्णके सुशोभित थे ॥ २७ ॥ इसके यज्ञमें सोमपानसे इंद्र और दक्षिणासे ब्राह्मण प्रसन्न हुए, इसके यज्ञमें मरुत (देवता) तौ परोसनेवाले और विश्वेदेव सभासद थे ॥ २८ ॥ मरुत्तके दम नाम पुत्र हुआ. उसके राज्यवर्द्धन, उसके सुधृति और सुधृतिके नर नाम पुत्र हुआ ॥ २९ ॥

तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्त्तो याजयद्यं वै महायोग्यंगिरः सुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरणमयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥ अमाद्यदिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥ मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्द्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद्बंधुमान्वेगवांस्ततः ॥ बंधुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः ॥ ३० ॥ तं भेजेऽलंबुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥ वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालः शून्यबंधुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचंद्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ॥ तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥

उसके केवल, उसके बंधुमान्, उसके वेगवान्, उसके बंधु, बंधुके तृणबिंदु नाम पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ इस अतिगुणोंके धाम तृणबिंदु राजाका अलंबुषा नाम अप्सराने वरण किया; इस अप्सरामें इसके पुत्र हुए व इड़विड़ा नाम कन्या हुई ॥ ३१ ॥ इस कन्यामें विश्रवासे कुबेर नाम पुत्र हुआ जो विश्रवाऋषि अपने पिता बड़े योगेश्वर पुलस्त्य ऋषिसे उत्तम विद्या पढ़े थे ॥ ३२ ॥ तृणबिंदुके विशाल, शून्यबंधु और धूम्रकेतु ये तीन पुत्र उस अप्सरामें प्रगट हुए, वंशको रखनेवाले विशाल राजाने वैशाली नाम नगरी बसायी ॥ ३३ ॥ विशालके हेमचंद्र, उसके धूम्राक्ष, उसके संयम, उसके कृशाश्व और सह देवज ये दो पुत्र हुए ॥ ३४ ॥

मनुके पुत्र धृष्टके वंशमें धार्ष्टनाम क्षत्रिय हुए उनमेंसे बहुतसे पृथ्वीपर ब्राह्मण हो गये, मनुके पुत्र नृगके सुम तिसुमतिके, भूतज्योति, भूतज्योतिके ॥ १७ ॥ वसु, वसुके प्रतीक और प्रतीकके ओघवान् नाम पुत्र हुआ. ओघवान्के ओघवान् नाम पुत्र और ओघवती कन्या हुई, इसका सुदर्शनसे पाणिग्रहण हुआ ॥ १८ ॥ मनुके पुत्र नरिष्यंतके चित्रसेन नाम पुत्र हुआ, उसके दक्ष, दक्षके मीढ्वान्, उसके कूर्च, कूर्चके इंद्रसेन ॥ १९ ॥ उसके वीतहोत्र वीतिहोत्रके सत्यश्रवा, उसके उरुश्रवा, उरुश्रवाके देवदत्तनाम पुत्र हुआ ॥ २० ॥ इस देवदत्तके घर अग्निका अवतार हुआ उसका अग्निवेश्य नाम हुआ; यह क्वारीमें जनमें तासों इन्हें का-

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ॥ कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यंताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इंद्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विंद्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत्॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥ ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१ ॥ ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यंतान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ भलंदनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलंदनात् ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः॥ खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रंभः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करंधमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप ॥ २५ ॥

नीनभी कहते हैं और जातूकर्ण्य नामसे जो बड़े ऋषि प्रसिद्ध हैं वहभी अग्निवेश्यकाही नाम है ॥ २१ ॥ इन अग्निवेश्यके वंशमें 'आग्निवेश्यायन' इस नामका ब्राह्मणकुल हुआ. यह नरिष्यंतका वंश कहा गया, अब दिष्टका वंश कहते हैं सो सुनो ॥ २२ ॥ मनुपुत्र दिष्टके नाभाग नाम पुत्र हुआ. जो आगे एक नाभाग आवेगा उससे यह जुदा है, यह नाभाग कर्मसे वैश्य हो गया. नाभागके भलंदन, उसके वत्सप्रीति, ॥ २३ ॥ उसके प्रांशु, उसके प्रमति प्रमतिके खनित्र, उसके चाक्षुष उसके विविंशति ॥ २४ ॥ विविंशतिके रंभ, रंभके धर्मात्मा खनिनेत्र, उसके करंधम, ॥ २५ ॥

खकर, अत्यंतही खेद करने लगा ॥ ८ ॥ महाराज ! जिससे अनजानमें अपराध होगया ऐसे उस पृषध्रको कुलगुरु वसिष्ठजी-
ने श्राप दिया, कि-इस पापसे तू क्षत्रियजातिमें न रहकर, शूद्र हो जायगा ॥ ९ ॥ इस तरह गुरुने श्राप दिया. तब हाथ जो-
ड़, उस श्रापको शिरपर चढ़ाय, उसी दिनसे पृषध्रने ब्रह्मचर्य धारण कर, मुनिलोगोंका प्रिय व्रत धार लिया ॥ १० ॥ सर्वके
आत्मा, सर्वसे पर व निर्मल भगवान् वासुदेवकी भक्ति करनेसे एकाग्रचित्त, सर्व प्राणीमात्रका मित्र, समदृष्टि ॥ ११ ॥ जितें-
द्रिय, संगरहित, परिग्रहरहित व शांत अंतःकरणवाला वह पृषध्र जो कुछ यदृच्छासे मिलता उसीसे अपना निर्वाह करने ल-

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ॥ न क्षत्रबंधुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भविताऽमुना ॥ ९ ॥ एवं
शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः ॥ अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १० ॥ वासुदेवे भ-
गवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एकांतित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसंगः शांता-
त्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन्वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥ आत्मन्यात्मानमाधा-
य ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडांधबधिराकृतिः ॥ १३ ॥ एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा
दावाग्निमुत्थितम् ॥ तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४॥ कविः कनीयान्विषयेषु निःस्पृ-
हो विसृज्य राज्यं सह बंधुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः
॥ १५॥ करूषान्मानवादासन्कारूषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥

गा ॥ १२ ॥ जिसे ज्ञानसे तृप्ति प्राप्त हो गयीहै ऐसा वह पृषध्र अपने जीवात्माको परमात्माके स्वरूपमें धर कर, समाधि लगाये
जड़, अंध व बहरेके समानाकारसे पृथ्वीमें विचरने लगा ॥ १३ ॥ महाराज ! ऐसी वृत्ति धारण कर, पृषध्र बनमें चला
गया वहां जो बनकी आग लगी उसे देखकर, उसमें अपने शरीरको जलाय, परब्रह्मको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ मनुके पुत्रोंमें-
सबसे छोटा कवि बालपनमेंही परब्रह्मको जान कर, सर्वप्रकारकी विषयोंकी स्पृहा छोड़, बंधु व राजको तज, वनमें चला
गया. वहां अपने चित्तमें स्वप्रकाश परमात्माका ध्यान कर, मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ मनुके पुत्र करूषके वंशमें
कारूष नाम क्षत्रिय उत्पन्न हुए, वे सब ब्राह्मणोंके भक्त व धर्मवत्सल थे और उत्तरदिशामें राज करते थे ॥ १६ ॥

विरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें मनुके पुत्रोंमेंसे दो पुत्र वैराग्यसे जो अपुत्र रहे उनकी और करूषकआदि पांच पुत्रोंके वंशकी कथा होवेगी ॥ १ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि–इसतरह अपना पुत्र सुद्युम्न वनमें चला गया तब वैवस्वतमनुने दुसरे पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छासे यमुनाजीपर सौ वर्षतक तप किया व संतानके वास्ते भगवानका पूजन किया, तासों उसको इक्ष्वाकुआदि अपने समान दश पुत्र हुए ॥ २ ॥ मनुका पुत्र पृषध्र कि– जिसे गुरु वसिष्ठजीने गायोंका पालन करनेके वास्ते रख छोड़ा था, वह रात्रिमें सावधान रह कर, खड़ा पहरा देता गायोंकी रक्षा करने लगा ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥ ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान्पुत्राँल्लेभे स्वसदृशान्दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान्सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रंदितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥

एक दिन रात्रिमें वर्षा हो रही थी उस समय एक शार्दूल गायोंके बाड़ेके अंदर आगया. उससे सोती हुई गायें त्रासके मारे उठकर, बाड़ेके अंदर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥ उनमेंसे एक गायको उस बलवान् शार्दूलने पकड़ ली और वह चिल्लाने लगी तब गायकी पुकार सुन, पृषध्र खड्ग हाथमें ले, तुर्त वहां पहुंचा कि–जहां गाय पुकार रही थी ॥ ५ ॥ महाराज ! रातमें नक्षत्रभी न दीख पड़ते थे ऐसे वनघोर अंधेरमें अनजानमें उसने शार्दूल समझकर, एक कपिला गौके शिरपर प्रहार किया ॥ ६ ॥ खड्गकी अनीसे शार्दूलके कान कट गये. तद वह तौ मार्गमें रुधिर डारता २ अतिभयाभीत हो, भाग गया ॥ ७ ॥ मैंने शार्दूल मारा है इसतरह जानता हुआ शत्रुओंको मारनेवाला पृषध्र भोरमें देखता है तौ वहां अपने हाथसे गौका बध हुआ है. यह दे-

और उस सुभ्रूनेभी चंद्रमाके पुत्र बुधको पतित्वसे चाहा और बुधके उसमें पुरूरवा नाम पुत्र हुआ ॥ ३५ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकमुनि बोले कि–महाराज! इस प्रसंगमें ऐसा सुना है कि–इसप्रकार स्त्रीपनको प्राप्त मनुपुत्र सुद्युम्नने कितने-एक दिनोंके बाद अपने कुलाचार्य वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ सुद्युम्नकी यह दशा देख, दयासे अतिपीड़ित वसिष्ठमुनिने सुद्युम्नको पीछा पुरुष बनानेके वास्ते महादेवजीका आराधन किया ॥ ३७ ॥ हे प्रजानाथ! तब महादेवने प्रसन्न हो, वसिष्ठजीको प्रसन्न करते अपना वचनभी सत्य रखनेके लिये वसिष्ठ मुनिसे कहा कि– ॥ ३८ ॥ यह आपका गोत्रज सुद्युम्न एक महीनेतक

साऽपि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥ तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनंदन् स्म तं प्रजाः ॥ ४० ॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥

पुरुष और एक महीनेतक स्त्री रहेगा, इस व्यवस्थासे भले सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करे ॥ ३९ ॥ महाराज! वसिष्ठजीके अनुग्रहसे इस व्यवस्थासे पुरुषपन पाकर, सुद्युम्न राज्य करने लगा, पर एकांतर महीनेमें उसे स्त्री बनकर, गुप्त रहना पड़ता और उसीसे प्रजा उसे पसंद नहीं करती ॥ ४० ॥ महाराज! उस सुद्युम्नके उत्कल, गय व विमल तीन पुत्र हुए, जो धर्मवत्सल दक्षिणदेशके राजा हुए ॥ ४१ ॥ फिर बहुत काल व्यतीत होनेपर प्रतिष्ठान–( यह ग्राम प्रयागके समीप झूंसी नामसे प्रसिद्ध है ) पुरका राजा सुद्युम्न अपने उदरसे प्रगट हुए पुरूरवाको राज्य दे, वनमें गया ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्याम-

महाराज ! शत्रुओंके वीरपुरुषोंको मारनेवाले सुद्युम्नने उस वनमें जातेही अपने शरीरको स्त्रीरूप और घोड़ेको घोड़ीके स्वरूपमें देखा ॥ २६ ॥ वैसेही उसके सब अनुचरभी अपने शरीरमें विपरीत चिन्ह देख, उदास हुये. और परस्पर एक दूसरेके सामने देखने लगे ॥ २७ ॥ परीक्षितने पूंछा कि–हे भगवन् ! इस प्रदेशमें ऐसा गुण किस कारणसे था? और किसने किया? इस प्रश्न-का उत्तर फरमावें, क्योंकि इस विषयमें हमें बड़ा कौतुक है ॥ २८ ॥ यह सुन, श्रीशुकमुनि बोले कि–एक दिन अपनी कांतिसे दिशाओंको अंधकाररहित करते पवित्र व्रत धारण करनेवाले मुनि इस वनमें महादेवके दर्शनार्थ आ निकले ॥ २९ ॥ उन्हें देख-

तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ॥ अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिंगविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिरा भासा कुर्वंतः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान्विलोक्यांबिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरंकात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥ तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयंति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥ ३४ ॥

कर, वस्त्रहीन पार्वतीने अतिलज्जित हो महादेवके अंकमेंसे उठकर, तुर्त वस्त्र पहन लिया ॥ ३० ॥ ऋषिभी उस समय शिवपार्वतीके रमणका प्रसंग देख, कलुषित चित्त हो, वहांसे नरनारायणके आश्रमको लौट गये ॥ ३१ ॥ उस समय पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये महादेवजीने कहा कि–'जो इस स्थानमें आवेगा वह स्त्री हो जायगा' ॥ ३२ ॥ उस दिनसे पुरुषोंने उस वनमें जाना छोड़ दिया, वह इला अपनी अनुचरियोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें और दूसरेसे तीसरेमें इस तरह वनमें विचरने लगी ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंके साथ उस उत्तम स्त्रीको अपने आश्रमके निकट फिरती देखकर, भगवान् बुधने उसे चाहा ॥ ३४ ॥

हे ब्रह्मन् ! यह क्या हुआ ? आपजैसे ब्रह्मवेत्तानकी क्रियामें विपरीत फल होना यह बड़ी चिंताकी बात है. मंत्रोंमें ऐसा विकार नहीं होना चाहिये ॥ १७ ॥ आप मंत्रके ज्ञाता, तपसे निष्पाप और सावधान हो, फिर देवतानमें जैसे असत्य-भाषण चलता, है तैसे यहांभी यह संकल्पका फेरफार कैसे हुआ ? ॥ १८ ॥ इसप्रकार मनुके वचन सुन, होताका अपराध जानकर, वसिष्ठजीने मनुसे कहा कि- ॥ १९ ॥ यह जो संकल्पमें फेरफार हुआ है सो आपके होताके दोषसे हुआ है तौभी

भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ यूयं मंत्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनंदनम् ॥ १९ ॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥ एवं व्यवसितो राजन्भगवान्सुमहायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम् ॥ २३ ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान्रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥

मेरी शक्तिसे मैं तुमको पुत्र देऊंगा ॥ २० ॥ महाराज ! इसप्रकार निश्चय कर, इलाको पुरुष बनानेके लिये महायशवान् वसिष्ठजीने भगवान्की स्तुति की ॥ २१ ॥ भगवान्ने प्रसन्न होकर, उनको मनवांछित वरदान दिया. उससे जो इलानाम कन्या थी वह सुद्युम्ननाम पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ महाराज ! यह सुद्युम्न एक दिन कितनेएक कारिंदोंको संग ले, सिंधुदेशके घोड़ेपर बैठकर, ॥ २३ ॥ सुंदर धनुष और अद्भुत बाण ले, कवच पहन, मृगयाके लिये वनमें गया वहां मृगके पीछे दौड़ता २ उत्तरदिशामें जा निकला ॥ २४ ॥ यह कुमार मेरुपर्वतके नीचे एक वनमें घुसा. जहां महादेवजी पार्वतीके साथ रमण किया करते हैं ॥ २५ ॥

सैकड़ों वर्षोंमेंभी कहा जाय ऐसे नहीं है ॥ ७ ॥ जो छोटे मोटे सब पदार्थोंका आत्मा परपुरुष है वही ईश्वर कल्पांतकालमें इस जगतरूप था. उस समय ईश्वरके सिवाय दूसरा कुछभी पदार्थ नहीं था ॥ ८ ॥ उनकी नाभिमेंसे सुवर्णमय पद्मकोश उत्पन्न हुआ और उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ ब्रह्माजीके मनसे मरीचि नाम प्रजापति पैदा हुए, मरीचिके कश्यपजी और कश्यपजीकी स्त्री अदिति कि–जो दक्षकी कन्या थी उसमें सूर्य प्रगट हुए ॥ १० ॥ सूर्यकी संज्ञा नाम स्त्रीमें श्राद्धदेव नाम मनु उत्पन्न हुए और उसके श्रद्धानाम स्त्रीमें दश पुत्र हुए ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकु १ नृग २ शर्याति ३ दिष्ट ४ धृष्ट ५ करूषक ६ नरिष्यं-

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पांतेऽन्यन्न किंचन ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो हिरण्मयः ॥ तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरिष्यंतं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥ प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन् द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥

त ७ पृषध्र ८ नभग ९ और कवि १० ये दश पुत्र हुए ॥ १२ ॥ पहले इन मनुके संतान नहीं हुआ तब संतान होनेके वास्ते वसिष्ठजीने मित्रावरुणकी इष्टि ( यज्ञ ) की ॥ १३ ॥ इस इष्टिमें मनुकी स्त्री श्रद्धा कि–जिसने नियमार्थ पयोव्रत धारण किया था उसने होताके निकट आकर, प्रणामपूर्वक प्रार्थना की कि–मेरे कन्या होवे ऐसा करना ॥ १४ ॥ अध्वर्युकी प्रेरणासे होताने हविष्य लिया उस समय मनुकी स्त्रीके कहनेपर ध्यान रखकर, वषट्कार उच्चारण करते होताने यजनमें फेरफार कर दिया ॥ १५ ॥ होताके किये फेरफारसे मनुके इलानाम कन्या हुई. उसे देखकर, अतिअप्रसन्नचित्त मनुने वसिष्ठजीसे कहा कि– ॥ १६ ॥

॥ श्रीविघ्नहर्त्रेनमः ॥ पहले अध्यायमें वैवस्वतमनुके पुत्रके वंशमें चंद्रवंशका प्रवेश कहनेके लिये सुद्युम्न राजा स्त्री हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-आपने सब मन्वंतर कहे और उनमें अनंतपराक्रम भगवान्‌के किये पराक्रम जो कहे सोभी मैंने सुने ॥ १ ॥ तथा द्रविड़देशका अधिपति राजा सत्यव्रत कि-जिसे गतकल्पके अंतमें भगवान्‌की सेवासे ज्ञान प्राप्त हुआ था वह सूर्यका पुत्र श्राद्धदेव ( वैवस्वत ) नाम मनु हुआ और उसके इक्ष्वाकुआदि राजा पुत्र हुए. यह आपके

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पांते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथक् ब्रह्मन् वंश्यानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवंत्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषा वद विक्रमान् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥

मुखसे सुना है सो अब- ॥ २ ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे महाभाग ! हम कि-जो निरंतर श्रवण करनेकी इच्छा रखते हैं, उनसे इन इक्ष्वाकुआदि राजाओंका पृथक् २ वंश और उस वंशमें उत्पन्न हुए जो राजा उनके चरित्र कहो ॥ ४ ॥ तथा इस वंशमें जो पवित्रकीर्ति राजा हुए हैं, जो अब होंगे और जो अभी विद्यमान हैं उन सबके पराक्रम हमसे कहो ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा कि-ब्रह्मवादियोंकी सभाके बीच राजा परीक्षितने ऐसा प्रश्न किया तब उत्तम धर्मके ज्ञाता शुकदेवजीने कहा ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! वैवस्वतमनुके वंशसंबंधी मुख्य मुख्य विषय जो मैं कहता हूं सो सुनो; क्योंकि-विस्तारपूर्वक तौ

की किसीको खबर नहीं है, तथा जिसका नामभी किसीके जाननेमें नहीं है ऐसा एक उसके मित्र-( ईश्वर ) था ॥ १० ॥ यह पुरंजन राजा अपनी राजधानीके योग्य नगरी ( विषयभोग करनेका स्थानरूप ) शरीरकी खोज करनेको तमाम पृथ्वीमें फिर गया. परंतु चाहिये ऐसी नगरी नहीं मिली, तब वह उदाससाहो गया ॥ ११ ॥ विषयसुख भोगनेकी इच्छावाले उस राजाको पृथ्वीमें जितनी नगरियां हैं उनमेंसे एकभी नगरी सकलसुखकी प्राप्तिके वास्ते योग्य प्रतीत न हुई ( मनुष्य शरीर शिवाय पशु और पक्षी आदिके जो जो शरीर हैं उनमेंसे किसीमेंभी सर्व सुख भोगनेका सुव्योंत नहीं आता, तासों उनमेंसे कोईभी शरीर पसंद नहीं आया ) ॥ १२ ॥ फिर फिरता २ एक दिन वह राजा हिमालय पर्वतके दक्षिणकी तर्फके शिखरोंमें चला गया. वहां उसने एक नव दरवाजोंवाली एक नगरी-( मनुष्य शरीर ) देखा. जिस नगरमें किसी प्रकारका दोष नहीं था. ( मनुष्य शरीरमें

सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाऽविंददभूत्स विमना इव ॥११ ॥ न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२ ॥ स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥ ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ॥ स्वर्णरौप्यायसैः शृंगैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥ नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ कॢप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥

मुख, नेत्र, कान, नासिका, गुदा और लिंग ये नौ दरवाजे हैं. अंधा या पांगलाआदि कोईभी अंगवैकल्यरूप दोष नहीं था. हिमालयके दक्षिण तर्फ कहनेका प्रयोजन यह है, कि-यह भरतखंड हिमालयके दक्षिणतर्फही है, कि-जो भरतखंड कर्मभूमि कहलाता है ) ॥ १३ ॥ यह नगर प्राकार, उपवन, अटारियां, खाइयां, झरोखा व तोरण, इनसे अति शोभायमान थी. तथा सुवर्ण, रौप्य और लोहेके शिखरोंवाले अनेक घरोंसे सर्वत्र व्याप्त थी. ( प्राकार आदिकी कथा शोभार्थ जो बर्णन है वह अवयव पर है. शरीरमें जो छः चक्र हैं वे घरकी ठौर हैं, और राजस तामसआदि स्वभाव जो हैं वह घरके शिखर यानी मेड़ियोंकी जगह हैं. ) ॥ १४ ॥ इस नगरीके महलका स्थल नीलमणि, स्फटिकमणि, वैदूर्यमणि, मोती, मरकतमणि व माणिकका बनाहुआ था. ( महलकी ठौर हृदय और मणियोंकी जगह नाड़ियां अथवा जुदी जुदी विषयवासना ) इस नगरीकी शोभा नागलोकोंकी भोग-

नारदजीने उसे ज्ञानका उपदेश दिया ॥ ३ ॥ नारदजीने कहा कि-हे राजा ! आप कर्म कर कर, कौनसे अपने कल्याणकी इच्छा रखते हो ? एक कल्याण उसे कहते हैं, जिसमें दुःखका नाश हो जावे और सुख मिले. सो यह तो इस कर्ममें होता दीखता नहीं ॥ ४ ॥ राजा प्राचीनबर्हिने कहा कि-हे महाभाग ! मैं तो कर्मोंसे विक्षिप्तबुद्धि हूं. इसलिये मुझे इस बातकी खबर नहीं. सो आप मुझे ऐसे निर्मल ज्ञानका उपदेश करो कि- जिससे मैं कर्मबंधनसे छूट जाऊं ॥ ५ ॥ जिनमें छल छिद्रवाले धर्म हैं ऐसे, घरोंमें स्त्री, पुत्र और धनको पुरुषार्थ जाननेवाला यह मूर्ख संसारके मार्गमेंही चक्कर खाता रहता है. पर मोक्षको नहीं पासकता

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणाऽऽत्मन ईहसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते॥ ४॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदाराधनार्थधीः ॥ न परं विंदते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥६॥ नारद उवाच ॥ भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७॥ एते त्वां संप्रतीक्षंते स्मरंतो वैशसं तव ॥ संपरेतमयःकूटैश्छिदंत्युत्थितमन्यवः ॥ ८॥ अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरंजनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥ तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ नारदजीने कहा कि-हे प्रजापति ! हे राजा ! आपने निर्दय होकर, यज्ञके भीतर जिन हज़ारों पशुओंका बध किया है, उन्हें देखो ॥ ७ ॥ ये सब आपके दियेहुए दुःखका स्मरण करते आपकी राह देखते हैं. सो जब तुम मरोगे तब, ये क्रोधित होकर, लोहेके यंत्रमय शृंगोंसे तुम्हें मारेंगे ॥ ८ ॥ इस विषयमें मैं आपको एक पुरातन इतिहास कहता हूं कि-जिसमें पुरंजनराजाका चरित्र है. वह मुझसे सुनो ॥ ९ ॥ हे राजा ! एक बड़ा यशस्वी पुरंजन ( जीव ) नाम राजा था. और जिसके कर्तव्यकर्म-

१ राजाने यज्ञमें जितने पशु मारे थे उन सबको प्रत्यक्ष दिखाकर, नारदजीका यह कहना वैराग्य उत्पन्न करनेके वास्ते है यानी पैदा करता है. २ पुरंजन अर्थात् जीव; क्योंकि वह अपने कर्मसे पुर यानी शरीरको जन यानी पैदा करता है.

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक मेरे कहेहुए इस भगवान्‌के स्तोत्रका पाठ करे, वह दुराराध्य हरि भगवान्‌को तुरंत प्रसन्न कर लेता है ॥ ॥७६॥ जो मनुष्य मेरे कहेहुए इस स्तोत्रका पाठ करे, उसपै सकलकल्याणोंको एक प्यारे हरि अत्यंत प्रसन्न हो जाते हैं और भगवत्कृपासे यह मनुष्य जो जो चाहता है, वह सब तुरंत उसे मिल जाता है ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य प्रातःकालमें उठकर, हाथ जोड़ श्रद्धायुक्त हो, इस स्तोत्रको सुने या सुनावे, वह सब कर्मबंधनोंसे मुक्त हो जाय ॥ ७८ ॥ हे राजपुत्रो ! मेरे कहेहुए परमपुरुष परमात्माके इस स्तोत्रको जप करो और एकाग्रचित्त होकर, भारी तपस्या करो कि– जिससे अंतमें तुम्हारा मनवांछित कार्य पूर्ण होगा ॥ ७९ ॥ इति

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विंदते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरन् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्रांजलिः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबंधनैः ॥ ७८ ॥ गीतं मयेदं नरदेवनंदनाः परस्य पुंसः परमात्मनस्तवम् ॥ जपंत एकाग्रधियस्तपोमहच्चरध्वमंते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवांतर्दधे हरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपंतस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥ नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥

श्री० भा० म० चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ पचीसवें अध्यायमें आत्माके बुद्धिकी संगतिसे जो जन्ममरणादिक होते हैं, उसका विषय पुरंजनराजाके इतिहासके रूपकसे नारदजीके मुखसे वर्णन किया जायगा ॥१॥ मैत्रेयजीने कहा कि–इस प्रकार महादेवजीने उपदेश किया तब प्रचेतानने महादेवजीकी पूजा की, उसे स्वीकार कर, राजपुत्रोंके देखते २ महादेवजी वहीं अंतर्धान हो गये ॥१॥ महादेवजीके कहे हुए भगवान्‌के स्तोत्रका जप करते उन सब प्रचेतानने जलके भीतर दशसहस्र वर्षपर्यंत तपस्या की ॥ २ ॥ हे विदुर ! प्राचीनबर्हिराजा कर्मोंमें अत्यंतही आसक्त था. इसलिये आत्मज्ञानके ज्ञाता दयालु

किया है ॥ ६७ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मा ! यह सारा जगत् रुद्रके भयसे त्रासयुक्त है. अतएव जाननेवाले जो हम हैं, उनके आपही निर्भय शरणरूप हो ॥ ६८ ॥ महादेवने कहा कि– हे राजकुमारो ! शुद्धबुद्धि होकर, इस रुद्रगीताका जप करो. और स्वधर्मका अनुष्ठान करो व भगवान्में मन लगाओ. इससे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ६९ ॥ अपने स्वरूपमें और सर्वप्राणीमात्रमें विराजमान उन्हीं परमात्मा हरिकी बारंबार स्तुति व पूजन करो. तथा उन्हींका ध्यान करो ॥ ७० ॥ इस योगादेशनाम स्तोत्रको मनसे धारण कर, एकाग्रचित्त हो, आदरपूर्वक तुम सब इसका पाठ करो. और अभ्यासपूर्वक इसका जप करो ॥ ७१॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् ॥ विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भयागतिः ॥ ६८ ॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनंदनाः ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठंतो भगवत्यर्पिताशयाः ॥ ६९ ॥ तमेवाऽऽत्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ पूजयध्वं गृणंतश्च ध्यायंतश्चासकृद्धरिम् ॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयंतो मुनिव्रताः ॥ समाहितधियः सर्व एतदभ्यसताऽऽदृताः ॥ ७१ ॥ इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः ॥ भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७२ ॥ ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥ अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७३ ॥ अथेदं नित्यदायुक्तो जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ॥ सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥

भृगुआदि हम सब ब्रह्माजीके पुत्र सृष्टि रचनी चाहते थे. तब पहले प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टि बढ़ानेकी कामनासे हमें यह मंत्र बताया था ॥ ७२ ॥ और हम सब प्रजापतियोंसे कहा कि– " तुम प्रजा रचो " तब हम इस मंत्रके जपसे निष्पाप होकर, अनेक प्रकारकी प्रजा रचने लगे ॥ ७३ ॥ अतएव वासुदेव भगवान्का शरण ले कर, जो पुरुष सावधान हो, एकाग्रचित्तसे नित्य इस मंत्रका जप करे. वह तुरंत कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ इस जगत्में सर्वकल्याणोंमें ज्ञान यह सबसे बड़ा कल्याण है. जिसे ज्ञानरूप नौका मिल जाती है. वह इस दुःखरूप अपार सागरको सुखसे पार उतर जाता है ॥७५॥

ज्ञानमें प्रवृत्त हैं. वे विचक्षण नहीं हैं. ॥ ६२ ॥ आप एक आदिपुरुष हो; क्योंकि प्रलयकालमें तो आपकी मायाशक्ति सो जाती है. और सृष्टिके प्रारंभसमयमें उस मायाशक्तिसे जब आप सत्व, रज व तमोगुणरूपसे विभाग करते हो, तब उन विभागोंमेंसे महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि, भूतगण और दूसरेभी अनेक पदार्थोंका पुंजरूप यह जगत् पैदा हुआ करता है ॥ ६३ ॥ जरायुज, स्वेदज, अंडज और उद्भिज्ज ऐसे चार प्रकारका यह जगत् अपनी मायासे उत्पन्न करके, उस जगत्‌रूप पुरमें अपने अंश यानी जीवरूपसे आप प्रवेश करते हो; अतएव यह जीव पुरुष इस नामसे प्रसिद्ध है. जो जीव अपनी इंद्रियोंसे क्षुद्र विषयोंका सुखभोग करता रहता है ॥ ६४ ॥ वेही आप अतिदुःसह और अतिप्रचंड वेगवाले कालरूपसे,

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६३ ॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं संतमंतर्भुंक्ते हृषीकैर्मधुसारघं यः ॥ ६४ ॥ स एष लोकानतिचंडवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥ भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाऽविषह्यः ॥ ६५ ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिंतया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥ ६६ ॥ कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पंडितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥ विशंकयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६७ ॥

वायु जैसे बादलको चलायमान कर खींच ले जाती है. ऐसे प्राणियोंको दूसरे प्राणियोंसे चलायमान कर, खींच ले जाते हो, परंतु यह सबको खींचनेवाला आपका कालस्वरूप किसीके लक्ष्यमें नहीं आता ॥ ६५ ॥ यह काम इसप्रकार करना और यह कार्य इसीतरह करना, ऐसी अनेक चिंताओंसे असावधान, विषयोंका लोभी और विषय प्राप्त होनेपरभी अति लालच करनेवाले प्राणीको सदा सावधान रहनेवाले कालरूप आप, क्षुधासे गलफें चाटताहुआ सर्प जैसे, चूहेको झपट लेता है, ऐसे तुरंत झपट लेते हो ॥ ६६ ॥ आपका भजन किये विना जिसका शरीर जीर्ण होता चला जाय है ऐसा, कौन विद्वान् पुरुष आपके चरणारविंदका परित्याग करे ? कि- जिस चरणारविंदका हमारे गुरु ब्रह्मा और चौदह मनुओंने मरणके भयसे दृढ विश्वासपूर्वक भजन

आधे क्षणके बराबरभी न तौ मैं स्वर्गको मानता हूं और न मोक्षको. तब मनुष्योंके राज्यआदि सुखकी तौ बातही कौन ? ॥ ५७ ॥ अतएव पापका नाश करनेवाला जिनका चरणारविंद है ऐसे, आपके यशके सेवनसे और, तीर्थ यानी गंगाजीके स्नानसे भीतर तथा बाहिर पापरहित भयेहुए प्राणियोंपर दया रखनेवाले और निर्मल अंतःकरण व उत्तम स्वभाववाले वैष्णवोंका हमारे समागम हुआ करै; यही आपका अनुग्रह है ॥ ५८ ॥ ऐसें वैष्णवलोगोंकी सेवा करनेके हेतु जब चित्त विषयोंके विक्षेपसे रहित और तमोगुणमें प्रवेश न करनेसे शुद्ध हो जाय, तब उस चित्तमें योगीको आपका स्वरूप देखनेमें आता है

अथानघांघ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरंतर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५८ ॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमंजसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ५९ ॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुस्थया तमात्मतंत्रं भगवन्प्रतीमहि ॥ ६१ ॥ क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजंति सिद्धये ॥ भूतेंद्रियांतःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२ ॥

॥ ५९ ॥ जिस स्वरूपमें यह सब जगत् दीख पड़ता है और सकल जगत्में जो स्वरूप दीख पड़ता है, वे स्वयंप्रकाश और आकाशकी भांति व्यापक परब्रह्म आप हो ॥ ६० ॥ महाराज ! जिससे भेदबुद्धि हुवा करती है और जो आपके विषे कुछभी अपना काम नहीं कर सकती ऐसी, अनेक रूपवाली मायासे जो परमेश्वर स्वयं निर्विकार होकरभी इस जगत्को रचते पालते और लीन करते हैं उन स्वतंत्र आपको हम अखंड परब्रह्म जानते हैं ॥ ६१ ॥ यदपि आप भेदभावरहित हो. तथापि पंचमहाभूत, इंद्रियां और अंतःकरणसे जाननेमें आते; आपके इस साकार रूपका जो योगीजन श्रद्धापूर्वक अनेक प्रकारकी क्रियाओंसे मुक्तिके वास्ते भलीभांति पूजन करते हैं, उन्हींको हम वेद व शास्त्रमें विचक्षण समझते हैं. अर्थात् जो इसको छोड़कर, केवल

नाभि मानो उसीमेंसे निकलेहुए जगतको पीछा प्रवेश करा देनेके वास्ते राखी हो ऐसे प्रतीत होती है ॥ ५० ॥ श्यामवर्ण कटिभागपर धरेहुए पीतांबरके ऊपर कंचनकी कटिमेखला धारण किये, समान व सुंदर चरण, जंघा, ऊरु व नम्रीभूत घुटनोंसे सुंदर दर्शनवाले ॥ ५१ ॥ और शरदऋतुसंबंधी कमलके पत्रसी कांतिवाले और नखकी कांतिसे अंतर्गत अज्ञानका नाश करनहारे, चरणारविंदसे उपलक्षित तथा प्रल्हादादिक भक्तलोगोंके भयके मिटानेवाले, अपने स्वरुपका दर्शन देओ. क्योंकि हे गुरु! हमारे जैसे अज्ञानीलोगोंको मार्गके दिखानेवाले गुरु आपही हो ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य अपने आत्माको शुद्ध करना चाहे. वह

श्यामश्रोण्याधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥ समचार्वंघ्रिजंघोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥ ५१ ॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽतरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५२ ॥ एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ॥ यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥ भवान्भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ स्वराज्यस्याप्यभिमत एकांतेनात्मविद्गतिः ॥ ५४॥ तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ॥ एकांतभक्त्या को वांछेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५५ ॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतांतो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५६ ॥ क्षणार्द्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥

आपके इस स्वरुपका ध्यान करे; क्योंकि स्वधर्ममें चलकर, जो भक्तलोग आपके भक्तियोगको साधते हैं. वे निर्भय हो जाते हैं ॥ ५३ ॥ स्वर्गमें राज्य करनेवालेभी जिनकी स्पृहा रखते हैं ऐसे और एकांती आत्मवेत्ता पुरुषोंके गम्य, आप यदपि सब देहीमात्रको दुर्लभ हो. तथापि भक्तलोगोंको आपकी प्राप्ति सुलभ है ॥ ५४ ॥ सत्पुरुषोंकोभी जिसका मिलना अतिकठिन है ऐसी, एकांतभक्तिसे दुराराध्य, आपका आराधन करके, आपके चरणमूलको तजकर, कौन पुरुष स्वार्गादि सुखकी अभिलाषा करे? ॥ ५५ ॥ प्रताप व उत्साहसे अपनी भ्रुकुटिके चढ़ानेहीसे जो जगतका विध्वंस करनेवाला काल है वहभी आपके चरणके शरण आये हुए पुरुषपर "यह मेरे अधीन है" ऐसा अभिमान नहीं करता ॥ ५६ ॥ आपके भक्तलोगोंकी संगतिके

योगके ईश्वर कृष्णमूर्ति आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४२ ॥ कर्ता, कर्म व करण इन तीनों शक्तियोंसहित, अहंकारमय रुद्रमूर्ति आपको मेरा प्रणाम है; ज्ञान तथा क्रियारूप और अनेक प्रकारकी वाणीको रचनेवाले ब्रह्मामूर्ति आपको मेरा प्रणाम है ॥ ४३ ॥ भक्तलोगोंके अतिवल्लभ, सबकी इंद्रियोंके विषयविषयीरूप और वैष्णवलोकोंसे, पूजित आपने स्वरूपका हमें दर्शन देओ; क्योंकि हम इस दर्शनकी इच्छा रखतेहैं ॥ ४४ ॥ वर्षाऋतुके सचिक्कण सघन मेघसे श्यामवर्ण, सकलसौंदर्यके आश्रय, सुंदर लंबी चारभुजा धारण किये, जैसे चाहिये ऐसे सब अवयवोंसे, सुंदर मुखसे विराजमान, ॥ ४५ ॥ कमलकोशकी पंखुरियोंकेसे नेत्रोंसे शोभायमान, सुंदर

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥ चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ४३ ॥ दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेंद्रियगुणांजनम् ॥ ४४ ॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौंदर्यसंग्रहम् ॥ चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुंदरभ्रु सुनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥ प्रीतिप्रहसितापांगमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पंकजकिंजल्कदुकूलं मृष्टकुंडलम् ॥ ४७ ॥ स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शंखचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥ सिंहस्कंधत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥ श्रियाऽनपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ४९ ॥ पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ॥ प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ ५० ॥

भौंह, सुंदरनासिका, सुंदर दांत, सुंदरकपोलवाला मुख, जो समान कानरूप आभूषणसे शोभायमान ॥ ४६ ॥ जिसमें प्रभुके कटाक्ष मानों प्रीतिसे हँसते हों ऐसे प्रतीत होते हैं. अलकावलीसे शोभायमान, देदीप्यमान कमलकी केसरकेसे पीतांबर पहिने, उज्ज्वल कुंडल धारण किये ॥ ४७ ॥ देदीप्यमान किरीट, वलय, हार, नूपुर व मेखला लसाये, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, वनमाला व कौस्तुभमणिकी उत्तम ऋद्धिसे संपन्न ॥ ४८ ॥ सिंहकेसे कंधोंपर कुंडलआदिकी कांति धारण किये, कौस्तुभ मणिके कारण सौभाग्ययुक्त ग्रीवासे शोभायमान, कसौटीमें जैसे सुवर्णकी रेखा शोभा देती हो ऐसे वक्षःस्थलमें सदा अविचल रहनेवाली लक्ष्मीसे देदीप्यमान, ॥ ॥ ४९ ॥ पीपलके पत्तेसा पेट, श्वास और उच्छ्वासके हेतु चलायमान त्रिवलीसे शोभायमान है. जलके भ्रमरसमान गंभीर

यसमयमें जगत्को भस्म करनेवाले हो. और प्रद्युम्नरूपसे बुद्धिके नियंता और जगत्को बोध देनेवाले हो उन्हे मै प्रणाम करताहूं ॥ ३५ ॥ और अनिरुद्धरूपसे मन व इंद्रियोंके नियंता हो, उन्हें मैं बारंबार प्रणाम करता हूं. जो आप सूर्यरूप होकर, सारे जगत्को अपने तेजसे प्रकाशित करतेहो. तथा जो आप स्वयं क्षयवृद्धिरहित व स्वर्ग और मोक्षके द्वाररूप तथा निरंतर पवित्र अंतःकरणमें निवास करतेहो, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं. सुवर्णको उत्पन्न करनेवाले, यज्ञोंके साधनरूप और यज्ञोंका बिस्तार करनेवाले अग्निरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पितृ तथा देवतानके अन्नरूप, तीनों वेदोंके पति और यज्ञरूप वीर्यवाले चंद्ररूप

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेंद्रियात्मने ॥ नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तंतवे ॥ ३७ ॥ नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्माने ॥ ३८ ॥ सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥ ३९ ॥ अर्थलिंगाय नभसे नमोंऽतर्बहिरात्मने ॥ नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमोधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥ नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने ॥ नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥

आपको मैं प्रणाम करता हूं. जीवोंकी तृप्ति करनेवाले और सर्वरसमय जलरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ सर्वप्राणिमात्रके देहरूप और विराट्शरीररूप पृथ्वीरूप आपको मेरा प्रणाम है. त्रिलोकीके पालक मन इंद्रिय व देहके बलरूप वायुरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ अपने शब्दगुणसे सबको नाम देनेवाले और बाहिर व भीतरके व्यवहारके आश्रय आकाशरूप आपको मेरा प्रणाम है. अतिशयतेजवाले, पवित्रस्वर्गरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ ४० ॥ प्रवृत्तिकर्मसे पितृलोकके देनेवाले और निवृत्तिकर्मसे मुक्ति देनेवाले व मृत्युरूपसे अधर्मका फलरूप दुःख देनेवाले आपको मेरा प्रणाम है ॥ ४१ ॥ हे ईश! सर्वकर्मोंके फल देनेवाले, सर्वज्ञ और मंत्ररूप आपको मेरा प्रणाम है. परमधर्मरूप अखंडज्ञानवाले पुराणपुरुष और सांख्य व

प्यारा है ॥ २८ ॥ स्वधर्ममें चलनेवाला पुरुष सैकड़ों जन्मोंसे ब्रह्माजीकी पदवीको पाताहै. और उससे अधिक पुण्य होवे तो मुझे प्राप्त होताहै परंतु जो भगवद्भक्त है वह तो मरणके अनंतर तुरंत निर्विकार विष्णु भगवान्‌के पदको प्राप्त होताहै. मैं और दूसरे देवताभी वासना-के नाशके अनंतरही विष्णुपदको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ अतएव मुझे भगवद्भक्त तुम ऐसे प्रिय लगते हो जैसे कि— भगवान् और वैष्णवोंकेभी मेरे जैसा दूसरा कोईभी कदापि प्रिय नहीं है ॥ ३० ॥ जो स्तोत्र परमपवित्र व परममंगलमय तथा कल्याण करनेवाला यानी मोक्षदायी व विविक्त यानी संकीर्णतारहित जैसे हो वैसे जप करनेके योग्य है. वह मैं तुमसे कहता हूं सो तुम सुनो ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजीनें कहा

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिंचतामेति ततःपरं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं प-दं यथाऽहं विबुधाः कलाऽत्यये ॥ २९ ॥ अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा ॥ न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ ३० ॥ इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मंगलं परम् ॥ निःश्रेयसकरं चापि श्रू-यतां तद्वदामि वः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह तान् शिवः ॥ बद्धांजली-न् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं त आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ॥ भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥ नमः पंकजनाभाय भूतसूक्ष्मेंद्रियात्म-ने ॥ वासुदेवाय शांताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥ संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरंतायांतकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायांतरात्मने ॥ ३५ ॥

कि—परमदयालुहृदयवाले व भगवान्‌के परमभक्त भगवान् महादेवजीने हाथ जोड़कर, सन्मुख ठाढ़े उन राजकुमारोंको उपदेश किया (ब्रह्माजीका कहाहुआ भगवान्‌का स्तोत्र कहा) ॥ ३२ ॥ श्रीरुद्र बोले कि—हे प्रभु ! आपकी बड़ाई बड़े २ आत्मज्ञानी लोगोंको स्वरूपानंद देतीहै. तो मुझेभी यह आनंद मिलना चाहिये. जो आप सदा परमानंदरूप व सर्वरूप हो. उन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ पंचमहाभूत तन्मात्रा और इंद्रियोंके नियंता कमलनाभ आपको मेरा प्रणाम है. जो आप वासुदेवरूपसे चित्तके नि-यंता, निर्विकार, शांत व स्वयंप्रकाश हो ॥ ३४ ॥ तथा संकर्षणरूपसे अहंकारके नियंता, सूक्ष्म, अनंत और मुखानलसे प्रल-

जहां नीलकमलोंकी बहुतायत है. और रक्तकमल, अंभोज व कल्हारजातिके कमलोंकी खाने हैं; जहां हंस, सारस, चकवा व कारंडव पक्षी कूज रहे हैं ॥ २१ ॥ मदोन्मत्त भौंरोंके सुस्वर शब्दसे लंता और वृक्षोंकेभी रोम खड़े हो रहे हैं. चौतर्फ कमलकोशके रजकी उड़ती पवनसे आनंद छा रहा है ॥ २२ ॥ इस सरोवरमें मृदंग और पणव ( ढोल ) आदि वाद्यके नादके पीछे दिव्य रीतिका मनोहर गान होता था, उसे सुनकर, ये राजकुमार विस्मित हुए ॥ २३ ॥ उसी अवसरमें महादेवजी अपने पार्षदोंके साथ उस सरोवरसे बाहिर निकले. सो महादेवजीके उनको दर्शन हुए. इन देवोत्तम महादेवजीके निकट देवतानके भृत्य



नीलरक्तोत्पलांभोजकह्लारेंदीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारंडवनिकूजितम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलतांघ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २२॥ तत्र गांधर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदंगपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामंतं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २४ ॥ तप्तहेमनिकायाभं शितिकंठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २५ ॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ धर्मज्ञान् शीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥ अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥ यः परं रंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ॥ भगवंतं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥ २८ ॥

यानी गंधर्व गान करते थे ॥ २४ ॥ तपेहुए सुवर्णके पुंजसी कांतिवाले, नीलकंठ और त्रिलोचन महादेवजीको प्रसादसे सुमुख देखकर, बड़े कौतुकके साथ इन्होंने प्रणाम किया ॥ २५ ॥ शरणागतोंकी आर्ति मिटानेवाले धर्मवत्सल भगवान् महादेवने धर्मके ज्ञाता और शीलसंपन्न प्रीतियुक्त प्रचेतानसे प्रीतिसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र बोले कि–तुम प्राचीनबर्हिके पुत्र हो, मैं तुम्हारा कर्तव्य कर्म जानता हूं. तुमपर कृपा करनेके वास्तेही मैंने तुमको इसतरह दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ क्योंकि जो सूक्ष्म यानी त्रिगुणप्रकृतिसे व पुरुषसेभी पर वासुदेव भगवान्का भक्त है, वह मेरा

नाम व व्रत धारण करनेवाले व धर्ममें निपुण थे ॥ १३ ॥ प्राचीनबर्हिराजाने सृष्टि करनेके वास्ते आज्ञा की. तब ये तप करनेके वास्ते समुद्रपर गये. वहां जलमें रहकर, इन्होंने दश हजार वर्षपर्यंत भगवानका आराधन किया ॥ १४ ॥ वे तप करनेको जाते थे. उस समय महादेवने मार्गमें दर्शन देकर, प्रीतिसे जो मंत्रका व पूजनका उपदेश किया. उसी उपदेशके अनुसार जितेंद्रिय होकर, ध्यान करते जप और पूजन करने लगे ॥ १५ ॥ विदुरजीने कहा कि—हे ब्रह्मन्! प्रचेता और महादेवजीका जिस प्रकार मार्गमें समागम हुवा. और प्रसन्न होकर, महादेवने जो उपदेश किया वह अवश्य सारभरा होगा, इसलिये यह सब कथा

पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दशवर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥ १४ ॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायंतो जपंतश्च पूजयंतश्च संयताः ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रचेतसां गिरित्रेण यथाऽऽसीत्पथि संगमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥ १६ ॥ संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसंगाद्यमभीप्सितम् ॥ १७ ॥ आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥ शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥ १९ ॥ समुद्रमुपविस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २० ॥

हमारे पास वर्णन करो ॥ १६ ॥ हे विप्रर्षि! वैराग्यवाले मुनिलोगभी जिन इष्टदेवका केवल ध्यानमात्र करते हैं. परंतु साक्षात् नहीं पा सकते. उन महादेवजीका समागम होना तो प्राणियोंको यहां अतिदुर्लभ है ॥ १७ ॥ भगवान् महादेवजी स्वयं आत्माराम हैं तथापि इस जगतकी रचनाका पालन करनेके वास्ते भयंकर शक्तिको संग लेकर, विचरा करते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—वे सज्जन प्रचेता पिताकी आज्ञा पा, उसे शिरपर चढ़ाय, तप करनेका निश्चय कर, पश्चिमदिशाको रवाने हुए ॥ १९ ॥ रास्तेमें जाते जाते समुद्रके जैसा बहुत बड़ा एक लंबा चौंड़ा सरोवर देखनेमें आया. यह सरोवर महात्मा पुरुषोंके मनके समान अतिस्वच्छ जलसे भराथा. और जलमें रहनेवाले मछलीआदि जलजंतु इसमें बहुत प्रसन्नताके साथ रहतेथे ॥ २० ॥

निपुण चित्तकी एकाग्रतासे यजन करता वह आत्मज्ञानी विजिताश्व भगवत्लोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर! हविर्धानके हविर्धानी नाम स्त्रीमें बर्हिषद गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ये छः पुत्र हुए ॥ ८ ॥ हे कुरुकुलदीपक! हविर्धानका पुत्र प्रजापति बर्हिषत् बड़ा भाग्यशाली और कर्मकांडमें तथा योगमें बड़ा विचक्षण था ॥ ९ ॥ इस राजाने तमाम पृथ्वीमें किसी स्थलको यज्ञ किये विना नहीं रक्खा और प्राचीदिशाकी ओर अग्रभागवाले दर्भोंसे सारे पृथ्वीतलको छा दिया. इसीसे इस राजाका नाम प्राचीनबर्हि पड़ा ॥ १० ॥ इस राजाने ब्रह्माजीके कहनेसे शतद्रुति नाम समुद्रकी कन्याके साथ विवाह किया. यह कन्या सब अंगोंसे अतिसुंदर, किशोर अवस्थावाली, सुंदर सिंगारसे सजीहुई, विवाहमें अग्निकी प्रदक्षिणा देती थी. उसे देख-

हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट्सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥ ८ ॥ बर्हिषत्सु महाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ॥ क्रियाकांडेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥ ९ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥ १० ॥ सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वांगीं किशोरीं सुष्ठ्वलंकृताम् ॥ परिक्रमंतीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥ ११ ॥ विबुधासुरगंधर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयंत्यैव नूपुरैः ॥ १२ ॥ प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ १३ ॥

कर, उस समय अग्नि जैसे शुकीपर आसक्त हुये थे. ऐसेही प्राचीनबर्हिराजाभी उसपर आसक्त हुआ ॥ ११ ॥ नवविवाहिता इस शतद्रुतिने चारोंओर अपने नूपुरकी झनझनाहटसेही देवता, दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नागलोकोंको मोहित किया था ॥ १२ ॥ प्राचीनबर्हिके शतद्रुति नाम स्त्रीमें दश पुत्र हुए ये, 'प्रचेता' इस नामसे प्रसिद्ध थे और सबके सब एकसे

१ इस पर यह इतिहास है कि-एक समय सप्तर्षियोंकी यज्ञमें उन सप्तर्षियोंकी स्त्रियोंको देख, अग्नि कामसंतप्त हुये. तब तिन अग्निको तिनकी स्त्री स्वाहाने तिन सात ऋषियोंकी स्त्रीरूप हो रातदिन रमाया. फिर रमाके, उन अग्निजीका वीर्य शुकी ( सुई ) रूपसे शरस्तंब यानी मूंजके थूहेमें रस आई, जैसे उसको देख अग्नि सप्तऋषियोंकी स्त्री हैं इस भ्रांतिसे, रमनेकी इच्छा करते भये ऐसेही राजाभी मोहित हुवा.

र्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ चौबीसवें अध्यायमें पृथुराजाके प्रपौत्र प्राचीनबर्हि राजाके प्रचेतानाम पुत्र हुवे. और उनको महादेवजीने रुद्रगीतका उपदेश दिया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-तदनंतर महायशस्वी पृथुराजाका पुत्र विजिताश्व चक्रवर्ती हुआ और उसने प्रेमसे अपने छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंका राज्य दिया ॥ १ ॥ उस प्रभुने हर्यक्षको पूर्व, धूम्रकेशको दक्षिण, वृकको पश्चिम और द्रविणसको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥ यह विजिताश्व पृथुराजाके अश्वमेधयज्ञमें इंद्रके पाससे घोड़ा ले आया था. तब इंद्रने इसे अंतर्धान होनेकी विद्या

मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥ हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥२॥ अंतर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वांऽतर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिखंडिन्यां सुसंमतम् ॥ ३ ॥ पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ॥ वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥ ४॥ अंतर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविंदत ॥ य इंद्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदंडशुल्कादिदारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥ ६ ॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७॥

दीथी तासों इसका नाम अंतर्धानभी कहलाता था. इसके शिखंडिनी नाम स्त्रीमें पावक, पवमान और शुचि ये तीन उत्तम पुत्र हुए ॥ तीनों अग्नियोंको प्रथम वसिष्ठ ऋषिका श्राप हुआ था. तासों वे तीनों विजिताश्वके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए. यहांसे फिर पीछे अपनी अग्निकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ अंतर्धान ( विजिताश्व ) राजा कि-जिसने, इंद्र घोड़ेको चुराकर, जाताहै ऐसे जाननेपरभी, इंद्रको नहीं मारा. उसके दूसरी नभस्वती नाम स्त्रीमें हविर्धान नाम पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ कर, दंड और दान ( टैक्स ) आदि लेनेसे राजाओंकी जीविका दूसरोंको दुख देनेवाली है, ऐसे जानकर, विजिताश्वराजाने दीर्घकालपर्यंत यज्ञ करनेके मिषसे उस आजीविकाको त्याग दिया ॥ ६ ॥ वहांभी अपने भक्तलोगोंका क्लेश मिटानेवाले परमात्मा पुरुष भगवानका

जो पाठ करे तो धनाढ्य होवे और शूद्र पवित्र हो जाय ॥ ३२ ॥ जो स्त्री वा पुरुष आदरपूर्वक तीन बेर इस चरित्रको श्रवण करे उस अपुत्रको उत्तम पुत्र मिले और निर्धनको धन मिले ॥ ३३ ॥ अप्रसिद्ध पुरुषकी जगतमें सुंदर कीर्ति बढ़े, मूर्ख पंडित हो जाय, यह चरित्र मनुष्योंका परमकल्याणकारी और अमंगलताका मिटानेवाला है ॥३४॥ यह चरित्र धन, यश, आयु व स्वर्गका देनेवाला तथा कलियुगके मलको हटानेवाला है. जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको अच्छी तरह सिद्ध करना चाहे वह इस चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुने; क्योंकि यह इन चारोंका परमकारण है ॥ ३५ ॥ जो राजा दिग्विजय

त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवाऽऽदृता ॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥ ३३ ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममंगल्यनिवारणम् ॥ ३४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥ ३५॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरंत्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥ ३६ ॥ मुक्तान्यसंगो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥ ३७ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८॥ अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसंगः ॥ भगवति भवसिंधुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभा०म०चतुर्थस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३॥ ॥

करनेको निकले. वह उस समय इसको सुनकर, जाय; क्योंकि जिनपर वह जाय. वे राजा जैसे पृथुको राजालोग भेंटें देते थे. वैसे भेंटें लालाकर, उसके आगे रख देते हैं ॥ ३६ ॥ इसलिये मनुष्यको चाहिये कि– दूसरे सब संग छोड़कर, केवल भगवानमें निष्कामभक्ति रखकर, यह पृथुराजाका पवित्र चरित्र सुनें, सुनावें और पढ़े ॥ ३७ ॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र विदुर! भगवान्के माहात्म्यका सूचक यह आख्यान मैंने तुमसे कहा है. सो जो मनुष्य इसमें बुद्धि राखे. वह पृथुकी गति यानी मोक्षको प्राप्त होजाय ॥३८॥ जो मनुष्य मुक्तसंग होकर, आदरपूर्वक इस पृथुचरितको प्रतिदिन सुने वा सुनावे. वह भगवान् कि– जिनका चरणारविंद संसारसागरसे पार उतरनेको नौकारूप है, उनकी उत्तम गति यानी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतु-

परस्पर उसकी चर्चा करने लगीं ॥ २४ ॥ देवांगनावोंने कहा कि-अहो ! यह आर्चि जगत्में बड़ी भाग्यशील है; क्योंकि इसने लक्ष्मीजी जैसे भगवान्का सेवन करती हैं, वैसे सर्वप्रकारसे अपने पति राजाधिराज पृथुका सेवन किया ॥ २५ ॥ देखो ! यह आर्चि अपने अचिंत्य कर्मके प्रभावसे अपनेको उल्लंघकर, अपने पतिपृथुके पीछे पीछे ऊंचे लोकमें चली जाती है ॥२६॥ पृथ्वीमें जो मनुष्य अतिचंचल आयुको पाकर, भगवत्पदको प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानको सिद्ध करें. उन मनुष्योंको कोईभी दूसरी वस्तु

देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजांपतिम् ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥ २५ ॥ सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २६ ॥ तेषां दुरापं किंत्वन्यमर्त्यानां भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयंत्युत ॥ ॥ २७ ॥ स वंचितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ॥ लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ॥ यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥ २९ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ॥ कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥ ३० ॥ य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् ॥ श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥ ३२ ॥

दुर्लभ नहीं है ॥ २७ ॥ मोक्ष देनेवाले मनुष्यदेहको पाकर, जो मनुष्य विषयोंमें आसक्त होजाय, उसे ठगायाहुआ और आत्मद्रोही समझना चाहिये ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इस प्रकार देवांगनानके स्तुति करते ब्रह्मज्ञानियोंमें अग्रणी और भगवद्भक्त पृथुराजा जिस लोकमें गया था. उसी लोकमें वह आर्चिभी गयी ॥ २९ ॥ महापराक्रमी पृथु ऐसा बड़ा प्रभाववाला था. उस उदारचरित पृथुका जो चरित्र था वह मैंने तुमको कहा ॥ ३० ॥ महापवित्र इस चरित्रको जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर, श्रद्धासे पढ़े अथवा सुने वा सुनावे; वह पृथुके पदको प्राप्त हो जाय ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण ब्रह्मतेजवान् होवे, क्षत्रिय पृथ्वीका पति होवे. वैश्य

रूप महत्तत्वको मायोपाधिक जीवमें लगाया. फिर ज्ञान व वैराग्यके बलसे परब्रह्ममें स्थित होकर, प्रथम जीवत्वाभिमान करानेवाली अपनी उपाधिरूप मायाको त्याग दिया. अर्थात् ब्रह्मरूप होकर, वह कैवल्य ( मोक्ष ) को प्राप्त हुआ॥ १८॥ उसकी महाराणी अर्चि, कि-जो अतिसुकुमार और चरणसे पृथ्वीका स्पर्श करनेको अयोग्य होनेपरभी उसके पीछे बनमें गयी थी ॥ १९॥ वह वहां पति पृथु जिस धर्मका अनुष्ठान करता था. उसीका अनुष्ठान करती थी. और ऋषियोंकीसी देहयात्रा ( वृत्ति ) यानी कंद, मूल, फलआदि खाकर, पतिकी सेवा करती थी. उससे वो बहुत दुबली हो गयी. तथापि अपने प्यारे पृथुके करस्पर्श

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ १९ ॥ अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चारषदेहयात्रया ॥ नाविंदतार्तिं परिकर्शिताऽपि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥ २० ॥ देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चाऽऽत्मनः ॥ आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सा सती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २१ ॥ विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ॥ नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २२ ॥ विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ॥ तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २३ ॥ कुर्वंत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मंदरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणंति स्म परस्परम् ॥ २४ ॥

और मान मिलनेके सुखसे उस दुःखको कुछभी नहीं गिनती थी ॥ २० ॥ उस सतीने अपने और पृथिवीके प्यारे पति पृथुराजाके शरीरको शवरूप यानी मरा देखकर, कुछ विलाप किया. फिर पर्वतके शिखरपर चिता चुनकर, उसपर राजाके शरीरको धरा ॥ २१ ॥ फिर वह आपभी नदीमें न्हाय, उस समयके उचित क्रिया कर, महात्मा पतिको दाहांजलि दे, आकाशमें देखनेको उपस्थितहुए देवतानको नमस्कार कर, अग्निकी तीन प्रदक्षिणा दे, अपने पतिके चरणोंका ध्यान कर, अग्निमें प्रवेश हुई ॥ २२ ॥ अपने पति महावीर पृथुराजाके पीछे उस पतिव्रता अर्चिको सती हुई देखकर, हजारों वरदान देनेवाली देवांगना देवतानके साथ उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ २३ ॥ उस मंदराचल पर्वतके शिखरपर फूल बरसाय बरसाय, देवांगना देवतानके दुंदुभि बजातीं

भिमान कटा था, उस ब्रह्मज्ञानमें शिथिलप्रयत्न हुआ, यानी उस ब्रह्मज्ञानके प्रयत्नकोभी उसने त्याग दिया. जबतक भगवानकी कथाओंमें प्रीति नहीं की जाती. तबतक योगीके सिद्धियोंमें आसक्त होनेरूप भूल हुआ करती है अतएव पृथु राजाके भगवत्प्रीति होनेके कारण सिद्धियोंमें लालच नहीं हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार अपने आत्माको परब्रह्ममें अच्छी तरह जोड़कर, वह वीरपुरुषोंमें श्रेष्ठ पृथु साक्षात् ब्रह्मरूप हुआ. फिर समय पाकर, उसने अपने शरीरको त्याग दिया ॥ १३ ॥ एंड़ियोंसे गुदाको दाबकर, मूलाधारसे धीरे धीरे वायुको ऊंचा चढ़ाकर, उसे प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, तदनंतर उरःस्थल, कंठ तथा भ्रुकुटिके बीचमें लाकर, (इससे मुक्तासन सूचित हुवा )॥ १४ ॥ अनुक्रमसे ब्रह्मरंध्रमें चढ़ाया. फिर निःस्पृह भयेहुए पृथुराजाने देहगत वा-

एवं स वीरप्रवरः संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि ॥ ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥ संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकंठशीर्षणि ॥ १४ ॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः ॥ वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ॥ क्षितिमंभसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ १६ ॥ इंद्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥ १७ ॥ तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥ १८ ॥

युको वायुमें और शरीरके पार्थिवभागको पृथ्वीमें, तेजके भागको तेजमें ॥ १५ ॥ छिद्रोंको आकाशमें और रसभागको जलमें, इस प्रकार अपने अपने स्थान और विभागके अनुसार पांच तत्त्वोंको पांच तत्त्वोंमें जोड़ दिया. फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें ॥ १६ ॥ और मन तथा देवतानको इंद्रियोंमें और इंद्रियोंको अपने अपने विषयोंमें लीन कर, आकाश और विषयोंको अहंकारमें लीन कर, अहंकारको महत्तत्त्वमें लीन किया ॥ १७ ॥ और सर्वकार्योंके निवास-

---

१ संपीड्य सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु मध्यतः ॥ सव्ये दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमितीरितम् ॥ अर्थ– वाम एड़ीसे सूक्ष्म गुदाको बीचसे दाहिनीतरफ एड़ीसे दबाके, स्थित रहे. इसे मुक्तासन कहतेहैं.

किया ॥ ५ ॥ वह वीर मुनि उष्णकालमें पंचाग्निकी आतापना लेता और वर्षा- ( चातुर्मास्य- ) में वर्षाको सहा करता तथा शिशिर ऋतु ( माघ, फाल्गुन इन महीनों )- में कंठजितने जलमें डूबा रहता. और सदा पृथ्वीपर शयन करता ॥ ६ ॥ उस क्षमाशील, मौनव्रत, जितेंद्रिय, ऊर्ध्वरेता ( नैष्ठिक ब्रह्मचारी ) पृथु राजाने पवनको जीतकर, श्रीकृष्ण भगवान्का आराधन करनेकी इच्छासे अतिउत्तम तपस्या की ॥ ७ ॥ शनैः शनैः बढ़तेहुए तपके प्रभावसे कर्म कट जानेसे राजाका अंतःकरण निर्मल होगया. प्राणायामके प्रभावसे षड्वर्ग ( कामक्रोधादि ) वश हो गये और सब बंधन

ग्रीष्मे पंचतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकंठमग्नः शिशिर उदके स्थंडिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यतवाग्दांत ऊर्ध्वरेता जितानिलः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः ॥ प्राणायामैः सन्निरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबंधनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारो भगवान्यदाहाऽऽध्यात्मिकं परम् ॥ योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥ १० ॥ तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्त्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

कट गये ॥ ८ ॥ सनत्कुमार भगवान्ने जो परम आध्यात्मिक योगका उपदेश किया था. उसीसे वह पुरुषोत्तम पृथुराजा भगवानका आराधन करता था ॥ ९ ॥ श्रद्धासे भगवद्धर्मोंका आचरण करते उस महात्मा पृथु राजाके भगवान् परब्रह्ममें एक ईश्वरकी निष्ठावाली अनन्य भक्ति हुई ॥ १० ॥ और भगवान्की भक्ति करनेसे राजाका मन शुद्धसत्व होनेके कारण राजाको वैराग्यसहित ज्ञान प्राप्त हुआ. कि-जिस, भगवानके अनुस्मरणसे पूर्ण भयीहुई भक्तिके प्रभावसे तीक्ष्ण भयेहुए, ज्ञानसे उसने संभावनाआदि अनेक विषयोंकी आश्रयभूत अपनी हृदयग्रंथि काट दीनी ॥ ११ ॥ देहात्मबुद्धि ( देह जो है यही आत्मा है ऐसा अभिमान ) कट जानेसे स्वरूपको प्राप्त भयाहुआ और उस समयमें आयीहुई सिद्धियोंमेंभी लालच न रखनेवाला, वह पृथुराजा जिससे देहा-

जहां जहां सत्पुरुष लोग त्रिलोकीमें ऊंचे स्वरसे उसकी कीर्ति गाया करते थे. तिससे उसकी कीर्ति रामचंद्रजीकी कीर्तिके समान स्त्रियोंकेभी सुननेमें आती थी॥ ६३ ॥इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें वनमें नित्य निवास करता, स्त्रीसहित वह पृथुराजा समाधिद्वारा विमानमें बैठकर, वैकुंठको प्राप्त हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-अपनी रचीहुई अन्नआदिकी उत्पत्ति और पुर, गांव-आदिकी रचनाको बढ़ानेवाला और समग्र स्थावर जंगमको जीविका देनेवाला व सत्पुरुषोंके धर्मको धारण करनेवाला वह जि-

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुंभिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरंध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥ ६३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुचरिते द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम् ॥ निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥ २ ॥ आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ॥ प्रजासु विमनःस्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥ कंदमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥

तेंद्रिय प्रजापति पृथु जिस प्रयोजनसे यहां प्रगट हुआथा, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार उस प्रयोजनके सिद्ध किये पीछे एक समय अपने मनहीसे अपने शरीरकी वृद्ध अवस्था देखकर, प्रजानके शोच करते अपनी स्त्रीको साथ ले इकल्ला तप करनेको वनमें चला. उस समय अपनी कन्या पृथ्वी कि-जो विरहसे मानों रुदन करती हो, ऐसे दुखी थी. उसको अपने पुत्रोंके पास रख दिया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ वहांभी दृढ़ नियम धारण करके पृथुराजाने प्रथम जैसा पृथ्वीका जय करनेमें बड़ा प्रयत्न किया था. वैसाही वानप्रस्थ लोगोंके परममान्य उग्र तप करनेमें प्रयत्न किया ॥ ४ ॥ कभीतो वह कंद, मूल, फल, खाया करता. कभी सूखे पत्ते खाया करता. कितनेएक पक्षोंतक उसने केवल जलपान किया. फिर उसके अनंतर केवल पवनमात्रका आहार

देता था और जैसे सूर्य सबपर तपता है. ऐसे वह सबपर आज्ञा करता था ॥ ५६ ॥ तेजसे वह अग्निके समान दुर्धर्ष और इंद्रके समान दुर्जय था. क्षमामें पृथ्वीके समान और मनुष्योंको मनवांछित कामना देनेमें स्वर्गके समान था ॥ ५७ ॥ जैसे मेघ सर्व-जगत्को तृप्त करताहुआ वर्षा करता है. एसे वह मनवांछित पदार्थ देकर, सबको तृप्त करताथा. वह समुद्रके समान गंभीर और मेरुपर्वतके समान धैर्यवान् था ॥ ५८ ॥ वह शिक्षा करनेमें धर्मराजके समान, आश्चर्यमें हिमालयके समान, कोश ( खजाने ). में कुबेरके समान और गुप्त पदार्थ रखनेमें वरुणके समान था ॥ ५९ ॥ सब ठौर फिरनेमें तथा बल, सहसा और ओजमें वायुके



दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेंद्र इव दुर्जयः ॥ तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥ ५७ ॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥ ५९ ॥ मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान्भूतराडिव ॥ ६० ॥ कंदर्प इव सौंदर्ये मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥ ६२ ॥

समान तथा असह्यपनमें भगवान् श्रीरुद्रके समान, ॥ ६० ॥ रूपमें कामदेवके समान, मनस्विता-( हिम्मत- ) में सिंहके समान, मनुष्योंपर वत्सलता रखनेमें मनुके समान और प्रभुपनमें भगवान् ब्रह्माजीके समान, ॥ ६१ ॥ ब्रह्मवादमें बृहस्पतिके समान, जितेंद्रियपनमें साक्षात् विष्णुके समान तथा गौ, ब्राह्मण, गुरु, और भगवद्भक्त, इनकी भक्ति करनेमें तथा लज्जा, विनय सुशीलता और परार्थ उद्यममें सदा अपने आत्माके समान था. अर्थात् इन बातोंमें किसीकी उपमा देवें ऐसा कोई नहीं था ॥ ६२ ॥

१ श्रुत्वा दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः । न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ अर्थ-जो मनुष्य सुनके, देखके तथा स्पर्श करके, खाके, सूंघके, प्रसन्न न हो और नाराज न हो उसे जितेन्द्रिय जानना ॥

ब्रह्मज्ञानसे प्रगट भयीहुई चित्तकी एकाग्रतासे अपने स्वरूपमें स्थित और महात्मानमें अग्रणी वह पृथुराजा अपने आत्माको कृतार्थसा मानने लगा ॥ ४९ ॥ वह राजा देश, काल, बल, योग्यता और धनके अनुसार कर्म करके सब ब्रह्मार्पण करता था ॥ ५० ॥ और कर्मोंका फल ब्रह्मार्पण कर, कर्मोंकी आसक्ति छोड़, अपने आत्माको सर्व कर्मोंका साक्षी तथा देहादिकसे पर मानताहुआ यह राजा सावधान होकर, घरमें रहता था ॥ ५१ ॥ वह घरमें रहता था. वहां उसके चक्रवर्ती राजाकी संपदायें थीं. तथापि वह निरहंकार होनेसे सूर्यके समान किसी विषयमें आसक्त नहीं हुआ था ॥ ५२ ॥ इसप्रकार अंतःकरणमें ज्ञाननिष्ठा रखकर, लोक-

**वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवाऽऽत्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथा कालं यथा देशं यथा बलम् ॥ यथोचितं यथा वित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृत-म् ॥ ५० ॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषंगः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः प-रम् ॥ ५१ ॥ गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियाऽन्वितः ॥ नासज्जतेंद्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कव-त् ॥ ५२ ॥ एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पंचार्चिष्यात्मसंमतान् ॥ ५३ ॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरंजयन्प्र-जाः ॥ ५५ ॥ राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु ॥ ५६ ॥**

संग्रहके वास्ते कर्मका आचरण करते उस पृथुराजाके अर्चिनाम रानीमें आपके समान पांच पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ विजिताश्व, धूम्र-केश, हर्यक्ष, द्रविण, और वृक. यह पृथुराजा सब लोकपालोंके गुणोंको इकट्ठा धारण करता था ॥ ५४ ॥ अपने अपने समयमें जगत्की सृष्टिकी रक्षाके अर्थ भगवान्के अवताररूप पृथुने अपने मनवचनकी वृत्तियोंसे और सौम्यगुणोंसे प्रजाको राजी किया ॥ ५५ ॥ इसी लिये दूसरा सोमराजा हो, ऐसे पृथुको 'राजा' यह पदवी मिली. जैसे सूर्य आठ महीना जल खींचता रहता है. और चातुर्मास्यमें पीछा छोड़ता है. इसी प्रकार यह राजाभी समयपर प्रजासे धन लेता था. और पीछा समयपर

की थी, हे ब्रह्मन् ! उसे परिपूर्ण करनेको आपका पधारना हुआ है ॥ ४२ ॥ और आप दयालु महात्माानने कृपा करके, वो सब कार्य परिपूर्ण किया है. जो मेरा राज्य और शरीरआदि है, वह सब महात्मानकाही है, इसलिये गुरुदक्षिणाकी ठौर अब मैं क्या देऊं ? ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्त्री, पुत्र, प्राण, घर, घरकी सामग्री, राज्य, सेना, पृथ्वी, भंडार, यह सब महात्मानकाही है, इसीसे मेरा इनपर स्वामित्व नहीं है. अब मैं इनको गुरुदक्षिणामें क्योंकर दे सकता हूं. ? तासों नौकर जैसे राजाकीही वस्तु राजाके निवेदन करे, ऐसे मैंने यह सब आपके अर्पण किया है ॥४४॥ वेद व शास्त्रका ज्ञाता ब्राह्मणही सेनापति, न्यायाधीश और सर्व लोकोंके अधिपतिपनके



निष्पादितश्च कार्त्स्न्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥ ४३ ॥ प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ॥ राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुंजते क्षत्रियादयः ॥ ४६ ॥ यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकांततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यंत्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः ॥ शीलं तदीयं शंसंतः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥ ४८ ॥

योग्य है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपनाही पदार्थ खाता है, अपनाही पहनता है और अपनाही देता है, क्योंकि जो कुछ है वो सब ब्राह्मणकाही है. और दूसरे क्षत्रियादिक तो ब्राह्मणोंकी कृपासे उनका दियाहुआ अन्न खाते हैं. तासों क्षत्रियोंको देनेका अधिकार नहीं है ॥ ४६ ॥ आत्मविचारमें एक निश्चयवाले और वेदके ज्ञाता, आपने जो ब्रह्मज्ञानका मुझे उपदेश दिया. उसका पलटा हाथ जोड़नेके सिवाय दूसरा कुछभी मैं नहीं दे सकता. और जो पलटा देना चाहे, वह अवश्य उपहासका आस्पद ( पात्र ) होवे, इसलिये परमदयालु आपलोग अपने कियेहुए उपकारहीसे हमपर प्रसन्न होओ ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– इसप्रकार पृथुराजाने उनका बड़ा सत्कार किया. तब उसके स्वभावकी प्रशंसा करते वे ब्रह्मज्ञानी सनकादिक सब लोकोंके देखते आकाशमार्गसे बिदा हुए ॥ ४८ ॥

जो अंतर्यामीरूपसे प्रत्यक्ष तथा देश, काल तथा वस्तुके प्रमाणसे रहित हो, प्रकाशते. और अंतर्वृत्तिसे जो प्रतीतभी होते हैं. वे परब्रह्म भगवान् मैंही हूं ऐसे जानो ॥ ३७ ॥ विवेक उत्पन्न होनेपर निवृत्त हो जानेवाला, यह उच्च-नीच और कार्य-कारणरूप, संसार जिसमें मालामें सर्पके समान मायारूप प्रतीत होता है. वे परब्रह्म कि-जो नित्यमुक्त, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सत्य और कर्मोंसे मलिन भयीहुई मायाका तिरस्कार करनेवाले आप हो. तिनके मैं शरण आया हूं ॥ ३८ ॥ जिनके चरणकमलके पल्लवरूप अंगुलियोंकी कांतिकी भक्ति करनेसे बड़े बड़े महात्मालोग देहाभिमानरूप दृढ़ ग्रंथिको जिस प्रकारसे तोड़देते हैं. इसीतरह, विष-

यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति मायाविवेकविधुति स्रजि वाऽहिबुद्धिः ॥ तं नित्यमुक्तपरिशुद्ध-विबुद्धतत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥ यत्पादपंकजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयंति सन्तः ॥ तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषंति ॥ तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमंघ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥ ४० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणाऽऽत्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानुकंपिना ॥ तमापादयितुं ब्रह्मन्भगवन् यूयमागताः ॥ ४२ ॥

योंमें जातीहुई अपनी इंद्रियोंको रोंकनेवाले और मनमेंसेभी विषयोंकी आसक्ति त्याग देनेवाले, योगीजनभी तोड़ नहीं सकते. उन वासुदेव भगवान्का शरण लो. और उन्हींका भजन करो ॥ ३९ ॥ जिसमें षड्वर्ग[1]रूप ग्राह हैं ऐसे, इस संसाररूप समुद्रको जो योगादिक साधनोंसे परमेश्वररूप नावके विना पार उतरना चाहते हैं. उनको बहुत परिश्रम पड़ता है इसलिये हे पृथुराजा ! तुम तो भगवान्के भजनेयोग्य चरणारविंदको नौका बनाकर, इस दुस्तर और दुःखरूप संसार सागरसे पार उतरो ॥ ४० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्माजीके पुत्र सनत्कुमारोंने इस प्रकार आत्मज्ञानका उपदेश किया. यानी वो मार्ग दिखाया. तब वो राजा बहुत प्रशंसा करके उनसे कहने लगा ॥ ४१ ॥ राजाने कहा कि-हे भगवन् ! दीनदयालु हरिने जो प्रथम मुझपै कृपा

१ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इसे षड्वर्ग कहते हैं.

पर वह बात अविवेकी पुरुषोंके लक्ष्यमें नहीं आती, ऐसे पूर्वोक्त इंद्रियआदिकी खिंचावट लक्ष्यमें नहीं आती ॥ ३० ॥ बुद्धिकी विचारशक्तिका नाश हो जाय. तब उसके पीछे आगे पीछेकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है. और स्मरणके नाशसे ज्ञानका ध्वंस हो जाता है. इस प्रकार जो ज्ञानका नाश है वही अपने आप कियाहुआ आत्माका नाश है. ऐसे ज्ञानीलोग कहते हैं ॥ ३१ ॥ और मनुष्यके इससे बढ़कर, दूसरी कोईभी ऐसी स्वार्थकी हानि नहीं है कि-जिस आत्माके वास्ते यह सब प्रिय लगता है. उसकी खराबी करना ॥ ३२ ॥ अर्थ और कामकी तृष्णा रखना, यही मनुष्योंके वास्ते सब पुरुषार्थोंका हानिरूप है; क्योंकि इस

भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥ तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥ यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥ ३२ ॥ अर्थेंद्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥ ३३ ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्संगं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यंतविघातकम् ॥ ३४ ॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यंतिकतयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतांतभयसंयुतः ॥ ३५ ॥ परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥ तत्त्वं नरेंद्रजगतामथ तस्थुषां च देहेंद्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक्चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥

तृष्णाके रखनेसे शास्त्रजन्य ज्ञान और स्वरूपानुभव ये दोनों नष्ट हो जाते हैं. और इनका नाश हो जानेसे वह स्थावरभावको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस गाढ़ अंधकाररूप नरकको पार उतरना चाहे; वह पुरुष कदापि किसीका संग न करे; क्योंकि यह संग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी अत्यंत हानि करनेवाला है ॥ ३४ ॥ इन चारों पुरुषार्थोंमेंभी मोक्ष सर्वोत्तम पुरुषार्थ गिना जाता है; क्योंकि दूसरे तीनोंमें सदा कालका भय रहता है ॥ ३५ ॥ सृष्टिमें आपनसे ब्रह्मापर्यंत जो उत्पन्न हुए हैं उन सबके मनोरथोंका काल नाश कर देता है. तासों यथार्थसुख किसीको नहीं मिलता ॥ ३६ ॥ हे राजा ! अनात्मवस्तुमें आसक्ति रखनेसे अनर्थ होता है; इसलिये देह, इंद्रियां, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे आवृत स्थावर-जंगममात्रमें

आत्मव्यतिरिक्त संपूर्ण कार्यकारणरूप पदार्थमें वैराग्य प्राप्त होय है. और निर्गुण परब्रह्ममें रति ( प्रीति ) प्राप्त होय है ॥ २५ ॥ गुरुसेवा करनेवाले पुरुषके परमात्मामें सांची प्रीति होती है. तब अरणीसे उत्पन्न होते अग्निसे अरणीके समान ज्ञान और वैराग्य-के बलसे उसका पंचमहाभूतरूप अथवा अविद्या आदि पंच क्लेशरूप लिंगशरीरका पीछा अंकुर पैदा न हो जाय, ऐसे भस्म हो जाता है ॥ २६ ॥ लिंगशरीरका नाश भये पीछे उसके कर्तृत्वभोक्तृत्वआदि सब गुण निवृत्त हो जाते हैं. और उसीके दृश्य और द्रष्टाका भेद कि-जो प्रथम प्रतीत होता था वह दूर हो जाता है. अर्थात् तदनंतर वह पुरुष, जैसे जाग्रत् पुरुष स्वप्नअव-स्थाके पदार्थोंको नहीं देखे, ऐसे अपने स्वरूपसे बाहिरके घटादिक पदार्थोंको और भीतरके सुख दुःखादिकोंकोभी नहीं देखता

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ॥ दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पंचात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ २६ ॥ दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो नैवाऽऽत्मनो बहिरंतर्विचष्टे ॥ परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात्स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥ २७ ॥ आत्मानमिंद्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ॥ सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥ २८ ॥ निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥ २९ ॥ इंद्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तंबस्तोयमिव ह्रदात् ॥ ३० ॥

॥ २७ ॥ द्रष्टा और दृश्यका भेद केवल अंतःकरणहेतुक प्रतीत होता है; क्योंकि जाग्रत् और स्वप्नमें अंतःकरण होनेसे आप देखनेवाला और देखनेके पदार्थ व उनका संबंध करनेवाला अहंकार देखनेमें आता है. पर सुषुप्तिमें अंतःकरण न होनेसे वह कुछभी देखनेमें नहीं आता २८ ॥ दृष्टांत चाहिये तो लो, जगत्‌मेंभी जल व आदर्शआदि पदार्थ होवें, तभी अपना और अपने प्रतिबिंबका भेद प्रतीत होता है. परंतु जल वा आदर्शआदि पदार्थ न होवें तो, वह भेद देखनेमें नहीं आता ॥ २९ ॥ विषयोंका आसक्तिसे स्मरण करनेवाले पुरुषोंकी इंद्रियोंको विषय खैंच ले जाते हैं. और इंद्रियां मनको खैंच ले जाती हैं. और मन, बुद्धिकी विचारशक्तिको हर लेता है, जैसे तटपर जामाहुआ दर्भका स्तंब अपने मूलके द्वारा जलाशयमेंसे जलको खींचता है.

किक गुणवाले आत्मरूप परब्रह्ममें दृढ रति ( प्रीति ) का होना ॥२१॥ और प्रीति होनेके साधन ये हैं कि–श्रद्धा रखना, भगवद्धर्मका आचरण करना, आत्मस्वरूपकी जिज्ञासा करना, अध्यात्म योगमें निष्ठा रखना, योगेश्वरोंकी उपासना करना और पवित्रकीर्ति हरि भगवानकी नित्य पवित्र कथा सुनना ॥ २२ ॥ अर्थ पुरुषार्थमें आराम माननेवाले तामसी और इंद्रियाराम यानी काम पुरुषार्थमें निष्ठावाले राजसी जीवोंके साथ बात चीत करनेमें तृष्णा न रखना, अर्थ और कामका परिग्रह न करना, विजन एकांत स्थानमें रुचि रखना

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ॥ योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥ २२ ॥ अर्थेंद्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण च ॥ विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥ २३ ॥ अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुंदाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिंदया निरीहया द्वंद्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृंभमाणया ॥ भक्त्या ह्यसंगः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चांजसा रतिः ॥ २५ ॥

हरि भगवानके गुणरूप अमृतपानके शिवाय अपने मनमें संतोष रखना ॥ २३ ॥ अहिंसा (परमहंसवृत्ति) धारण करना, आत्महितका अनुसंधान करना, मुकुंद भगवान्के चरित्ररूप उत्तम अमृतका पान करना, निष्काम यम नियम धारण करना, किसीकी निंदा न करना, योग क्षेमके वास्ते चेष्टा न करना, द्वंद्व यानी सुख-दुःखादिकोंको सहन करना ॥ २४ ॥ हरि भक्तलोकोंके कर्णपूर यानी कर्णाभूषणके समान जो हरि भगवानके गुणगण उनका वारंवार कथन करना और प्रबल भक्ति. इन साधनोंसे बिना श्रम

१ आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥ प्रीतिः प्रसादो माधुर्य्यं मार्दवञ्च यमा दश ॥ इत्यत्रिसंहितायाम् ॥ अर्थ– आनृशंस्य यानी दयाभाव १, क्षमा ( सहनशीलता )२, सत्यभाषण ३, अहिंसा यानी दूसरेको पीड़ा न देना ४, दान ५, आर्जव यानी सरलता ६, प्रीति ७, प्रसाद ८, मधुरता ९, मार्दव यानी दूसरेका दुःख न सहना ( द्रवीभाव ) १० ऐसे दश यम हैं ॥ यह अत्रिसंहितामें लिखा है ॥ २ शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ॥ व्रतमौनोपवासाश्च स्नानं च नियमा दश ॥ इत्यत्रिसंहितायाम् ॥ अर्थ–शौच १, यज्ञ २, तप ३, दान ४, स्वाध्याय वेदपाठादिमें स्थित रहना अर्थात् वेदपाठादि करना ५, उपस्थ निग्रह ६, व्रत यानी पुण्यसाधन ७, मौन ८, उपवास ९, स्नान १० ऐसे दश नियम हैं. यह अत्रिसंहितामें लिखा है ॥

अकुशल ऐसी बुद्धिकी वृत्तियांही नहीं हैं ॥ १४ ॥ आप तपस्वीलोगोंके सुहृद हैं, इसलिये आपका विश्वास रखकर, मैं आपसे पूछता हूं कि-इस संसारमें कल्याण अनायासपूर्वक किस साधनसे हो जाय ? ॥ १५ ॥ धीर पुरुषोंमें आत्मस्वरूपसे प्रकाशमान और आत्मस्वरूपको प्रकाशित करनेवाले, आप साक्षात् भगवान्‌ही हो. अजन्मा आपका सिद्धरूप धारण करके, जो पृथ्वीपर विचरना है. यह अपने भक्त लोगोंपर अनुग्रह करनेके वास्ते है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- पृथुके सारभरे, सुंदर, परिमित, मधुर, प्रियवचन सुनकर, प्रीतिसे मुसक्याते हों ऐसे सनत्कुमार पीछे बोले ॥ १७ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि- महाराज ! आप

तदहं कृतविश्रंभः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनांजसा भवेत् ॥ १५ ॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ॥ स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥ ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ॥ भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥ १८ ॥ संगमः खलु साधूनामुभयेषा च संमतः ॥ यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषा वितनोति शम् ॥ १९ ॥ अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविंदस्य गुणानुवादने ॥ रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमंतरात्मनः ॥ २० ॥ शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ॥ असंग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥ २१ ॥

सब बात जानते हो. तथापि समग्र प्राणीमात्रका हित विचार कर, जो आपने यह प्रश्न किया. सो बहुत अच्छा किया. ठीक है, साधुजनोंकी बुद्धि ऐसीही परोपकारपरायण होतीहै ॥ १८ ॥ सज्जनपुरुषोंका समागम दोनोंके वास्ते हितकारी है; क्योंकि उनके प्रश्नोत्तरसे सब जगत्‌का भला होता है ॥ १९ ॥ हे राजा ! आपके मोक्षका साधन तो बनाही है; क्योंकि मुरारि भगवान्‌के चरणारविंदके गुणानुवादमें दृढ़ रति यानी प्रीति होनी. यह मोक्षका साधन है. और यह अतिदुर्लभ है. सो तो आपके है ही, कि-जिस परमेश्वरकी प्रीतिसे अंतःकरणका कामरूप कषाय और मल दूर हो जाता है ॥ २० ॥ शास्त्रोंका अच्छीतरह विचार करके मनुष्योंके कल्याणके वास्ते यही साधन निश्चय किया गया है कि-आत्मासे भिन्न पदार्थमें वैराग्यका होना. और निर्गुण यानी अलौ-

राजते हैं, ऐसे सुवर्णके आसनोंपर विराजेहुए उन महादेवजीके बड़े भाई सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धा और संयमके साथ प्रसन्न होकर, पूंछा ॥ ६ ॥ पृथुने कहा कि– हे मंगलके अयनो ! अहो ! मैंने ऐसा क्या शुभ काम किया ? कि–योगीजनोंको जिनके दर्शन दुर्लभ हैं ऐसे, आपके मुझे दर्शन हुए ॥ ७ ॥ जिसपर ब्राह्मण और अपने भक्तलोगोंके साथ हरि हर प्रसन्न हो जायं, उसके इस लोकमें और पर लोकमें कौन बात दुर्लभ है ? कोई नहीं ॥ ८ ॥ जैसे इस जगत्के कारणरूप महत्तत्त्वादिक अथवा मन्वादिक सब सर्वके द्रष्टा साक्षी परमेश्वरको नहीं जानते. ऐसे जगत्में विचरतेहुए आपको यह लोक नहीं जानता ॥ ९ ॥ जिन गृह-

पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितं किं मे मंगलं मंगलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥ ७ ॥ किं तस्य दुर्लभतरमिहलोके परत्र च ॥ यस्य विप्राः प्रसीदंति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ ८ नैव लक्षयते लोको लोकान्पर्यटतोऽपि यान् ॥ यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥ ९ ॥ अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः ॥ १० ॥ व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः ॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरंति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहंति च ॥ १२ ॥ कच्चिन्नः कुशलं नाथ इंद्रियार्थार्थवेदिनाम् ॥ व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न संति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥

स्थीलोकोंके वरका जल, तृण ( आसन ), भूमि, नौकर चाकर और गृहपतिको महात्मा लोक स्वीकार करें, वे निर्धन यानी दरिद्री क्यों न हों, उन्हें महाभाग्यशालीही समझना चाहिये ॥ १० ॥ जिन घरोंमें वैष्णवलोगोंका चरणरूप तीर्थ नहीं है. वे घर संपूर्ण समृद्धियोंसे परिपूर्ण होनेपरभी सर्पोंके रहनेके वृक्षोंके बिलोंके समान हैं ॥ ११ ॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! आपके बड़े नियमोंको दूसरे धीर लोक बालकपनमेंही मोक्ष होनेकी इच्छासे धारण करते हैं. सो आपका आगमन भले हुआ ॥ १२ ॥ हे अधिपतियो ! हम कि–जो इंद्रियार्थ यानी विषयोंकोही स्वार्थ करके मानते हैं. और इस दुःखमय संसारमें अपने कर्मोंसे पड़े हुए हैं ? वे कुशल हैं ॥ १३ ॥ और आपजैसे आत्माराम पुरुषोंको कुशल पूंछना संभवे नहीं, क्योंकि आपके कुशल और

ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें प्रवेश करके, अपनी शक्तिसे उनका और जगत्का पालन करनेवाले सत्वगुणके बढ़ानेवाले, जो महापुरुष विष्णु भगवान् हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ बाईसवें अध्यायमें भगवान्की आज्ञाके अनुसार सनत्कुमारोंने पृथुराजाको आकर, ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– महापराक्रमी पृथुकी इस प्रकार लोग प्रशंसा करते थे. कि–इतनेमें वहां सूर्यकेसे तेजवाले चार मुनि सनक, सनंदन, सनातन और सनत् आ उपस्थित हुए ॥ १ ॥ अपनी कांतिसे

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ॥ यो ब्रह्मक्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ ससदस्यानुगो वैन्य इंद्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यंत्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकंधरः ॥ विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीतान्यर्हणासनान् ॥ ४ ॥ तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबंधनः ॥ तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥

लोकोंका पाप दूर करते, आकाशसे उतरते, उन सिद्धेश्वरोंको राजाने और राजाके अनुचर लोकोंने देखा. और तेजके पुंजसे ये सनकादिक हैं. ऐसे पहिँचानभी लिया ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे ऊपरकी तर्फ गयेहुए प्राणोंको मानों पीछा लाना चाहता हो ऐसे, वह राजा पृथु सभासद और अनुचरोंके साथ उठ बैठा. जैसे कि–जीवात्मा गंधादिक विषयोंको सन्मुख उत्सुकताके साथ जाया करताहै ॥ ३ ॥ विनयसे गर्दनको नीची झुकाकर, उससमय पृथुराजाने गौरवके वश हो, उन ऋषियोंको आसन अर्घ्य अङ्गीकार करनेके अनंतर, विधिपूर्वक पूजा व सत्कार किया ॥ ४ ॥ उनके चरणारविंदके प्रक्षालनके जलको अपने शिरपर चढ़ाया, सो पृथुका यह आचरण मानों शीलवान् पुरुषोंके आचरणको मान देनेके वास्ते था ॥ ५ ॥ जैसे अपने रहनेके स्थान कुंडमें अग्नि वि-

पुरुषोंका सेवक है. उसे ये संपदायें स्वयमेव स्वीकार करती हैं. अतएव मैं प्रार्थना करता हूं कि– ब्राह्मण, गौ, भगवान् और भगवान्के भक्त ये सब मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ४४ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–राजा ऐसे कहता था, तब पित्रीश्वर, देवता, ब्राह्मण और सज्जन पुरुष प्रसन्नमन होकर, साधुवाद ( धन्यवाद ) देकर, राजाकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ लोक बोले कि–पुत्रसे परलोक सुधर जाता है. यह जो वेदवाक्य है, वह सत्य है; क्योंकि ब्राह्मणोंके शापरूप दंडसे मराहुआ पापी वेन पृथुके प्रतापसे नरकसे पार उतरा ॥ ४६ ॥ हिरण्यकशिपुभी भगवान्की निंदाके प्रभावसे नरकमें पड़ता था. परंतु पुत्र प्रल्हादके प्रभावसे पार



मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥ पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मदंडहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥ ४६ ॥ हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निंदया तमः ॥ विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४७ ॥ वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४८ ॥ अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुंदनाथाः ॥ य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥ ४९ ॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥ ५० ॥ अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ५१ ॥

उतरा ॥ ४७ ॥ हे वीरवर्य ! हे पृथ्वीके पिता ! परमेश्वर आपको अनेक वर्षोंपर्यंत चिरायु करें, क्योंकि आपकी सब जगत्के एक पति भगवान्में ऐसी दृढ भक्ति है ॥ ४८ ॥ हे पवित्रकीर्ति ! आज आप हमारे स्वामी हुए. इससे हम यह जानते हैं कि–साक्षात् मुकुंद भगवान्ही हमारे स्वामी हैं; क्योंकि आप अतिशय पवित्रकीर्ति और ब्रह्मण्यदेव विष्णु भगवान्की कथा श्रवण कराते हो ॥ ४९ ॥ हे नाथ! आप अपने आश्रित लोगोंको शिक्षा करो– इसमें कोई बड़ी आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि करुणाचित्त महात्मा पुरुषोंका यह स्वभावही है कि– प्रजापर प्रीति रखना ॥ ५० ॥ हे प्रभु ! हम कि–जो अपने प्रारब्धकर्मोंसे नष्टदृष्टि होकर, इस संसारमें भटकते हैं, उनको अज्ञानसे आज आपने पार लँघाया ॥ ५१ ॥

जगत्को पवित्र करनेवाली कीर्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ और जिनकी सेवा करनेसे सर्वांतर्यामी, स्वयंप्रकाश और ब्राह्मणोंपर प्रीति रखनेवाले हरि अतीव प्रसन्न होते हैं, उन ब्राह्मणोंके कुलकी आपलोग सर्व प्रकारसे नम्रतापूर्वक उनके कहेहुए धर्मोंमें तत्पर रहकर, सेवा करो ॥ ३९ ॥ जिनकी निरंतर सेवा करनेसे स्वयमेव तुर्त अंतःकरण शुद्ध होजाताहै. और उसके द्वारा मनुष्यको मोक्ष प्राप्त हो जाता है. उन ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा देवतानका मुख कौन है? ॥ ४० ॥ ब्राह्मण भगवान्‌की सचेतन मूर्ति हैं, ऐसे जानकर, देवतानका नाम ले लेकर, ब्राह्मणोंके मुखमें तत्त्ववेत्तानके हाथसे होमेहुए पवित्र पदार्थोंको अंतर्यामी

यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराड्विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३९ ॥ पुमान्लभेताननतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यंतशमं स्वतः स्वयम् ॥ यं नित्यसंबंधनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥ ४० ॥ अश्नात्यनंतः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥ ४१ ॥ यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमंगलमौनसंयमैः ॥ समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥ ४२ ॥ तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजंति ॥ ४३ ॥ गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणुतेऽनुसंपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥ ४४ ॥

और ज्ञानघन भगवान् जैसा स्वीकार करते हैं, ऐसा अग्नि कि–जो अचेतन है. उसमें होमेहुए पदार्थोंको अंगीकार नहीं करते ॥ ४१ ॥ हे आर्यलोको! दोषरहित, सनातन और जिसमें यह सब जगत् आदर्शकी नाईं प्रकाशता है, उस वेदको जो ब्राह्मणलोग श्रद्धा, तप, सदाचार, मौन और जितेंद्रियपनसे निरंतर धारण करते हैं, और एकाग्रचित्तसे उसके अर्थकाभी विचार करते हैं. उन ब्राह्मणोंकी चरणरजको मैं मेरे जीवनपर्यंत किरीटपर धारण करूं. यह मेरी प्रार्थना है; क्योंकि जो इस रजको सदा धारण करते हैं. उनके पाप दूर हो जाते हैं. और उसे सब गुण प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य गुणवान् शीलधन, कृतज्ञ और वृद्ध

यज्ञरूपभी वेही हैं; क्योंकि–यज्ञमें जुदे जुदे द्रव्य यव आदि, पदार्थ, गुण ( शुक्लादि ), –क्रिया ( अवघातादि ), मंत्र, अर्थ ( अंगसाध्य उपकार ) संकल्प, पदार्थ, शक्ति, भिन्न भिन्न नाम ज्योतिष्टोमादि और इन सबसे होतेहुए कर्म, ये सब भगवान्काही स्वरूप है ॥ ३४ ॥ यज्ञका फलभी भगवद्रूपही है; क्योंकि जैसे अग्नि एक होनेपरभी काष्ठके संयोगसे काष्ठके आकार लंबा चौड़ा और टेढ़ा प्रतीत होता है, ऐसे ये विभु भगवान्ही प्रधान, काल, वासना और अदृष्टसे बनेहुए शरीरमें विषयाकार बुद्धिको प्राप्त

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ॥ क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥ ३५ ॥ अहो मामामी वितरंत्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजंति मामका निरंतरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवंदनात् ॥ अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥ ३८ ॥

होकर, बुद्धिसे अभिव्यक्त होनेवाले आनंदस्वरूपसे यज्ञके फलरूपतासे प्रतीत होते हैं ॥ ३५ ॥ अहो! यह मेरी प्रजा पृथ्वीमें दृढ़ नियम धारण करके, देवदेव सर्वगुरु भगवान्की निरंतर स्वधर्म पालनरूप भक्ति करती हैं, मैं मानता हूं कि–यह इनकी मुझपर बड़ी कृपा है ॥ ३६ ॥ समृद्धि न होनेपरभी सुख दुःखका सहन करनेसे और तप व विद्यासे प्रकाशमान ब्राह्मणोंके और वैष्णवलोगोंके कुलपर, बड़ी बड़ी समृद्धियोंसे बढ़ाहुआ राजकुलका तेज, कदापि अपने प्रभावको प्रगट न करै ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्यदेव और महत्पुरुषोंमें अग्रणी व पुराणपुरुष हरि जिनके चरणारविंदोंको निरंतर अभिवंदन करनेसे अविचल लक्ष्मी और

---

१ यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः । अर्थ–निश्चय विष्णु यज्ञ हैं यह श्रुतिभी कहती है ॥ २ तदेवोक्तम् गीतास्वपि । ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ॥ ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ १ ॥ अर्थ–यही गीतामेंभी कहा है कि–अर्पण यानी देनेका पदार्थ ब्रह्म, हवि खीर आदि शाकल्य ब्रह्म है और ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्महीने होमभी किया है. अर्थात् दान, हवि अग्नि और यजमान यह सब ब्रह्मही है. ऐसी निष्ठा रखके जो पुरुष यज्ञादि कर्म करता है वह ब्रह्मकर्मरूप समाधिसे ब्रह्महीको पाजाता है यानी तन्मय हो जाता है॥१॥ ३एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतेः ॥ अर्थ–इसी आनन्दमय परब्रह्मकेही आनन्दके लेशमात्रको संपूर्ण अन्य प्राणी आश्रय कर रहे हैं.

परमेश्वरको न माननेवाले तो वेनराजा आदिही थे, कि-जो धर्मके विषयमें मोहित अतएव शोच करनेके योग्य थे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष व स्वर्ग मिलनेमें तमाम एकसे कारणोंका विचार किया जाय तो, कर्म आप जड़ होनेसे उनको फलदातृत्व नहीं घटता और दूसरे देवता परतंत्र हैं, इस लिये उनकोभी फलदातृत्व नहीं संभवता ऐसे दो जनोंके कर्म सदृश होनेपरभी उनके फलमें अंतर पड़ जाता है और किसी समय कर्म करनेपरभी उसका फल नहीं मिलता. अतएव स्वतंत्रतासे 'कर्तुं (करने) अकर्तुं (न करने) और अन्यथाकर्तुं (औरतरह करने) का सामर्थ्य रखनेवाला एक परमेश्वर अवश्य है. ऐसा सिद्ध होता है ॥ ३० ॥ जिनके चरणसेवाकी प्रीति, प्रतिदिन बढ़कर, गंगाजी जैसे मलको दूर करती हैं, ऐसे संसारके तापसे तपेहुए मनुष्योंकी बुद्धिके

दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥ ३० ॥ यत्पादसेवाऽभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥ सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित् ॥ ३१ ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसंगविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदंघ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तमेव यूयं भजताऽऽत्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ॥ अमायिनः कामदुघांघ्रिपंकजं यथाऽधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिंगनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३४ ॥

सर्व जन्मोंके वृद्धिंगत मलको तुर्त दूर कर देती है ॥ ३१ ॥ और मनके सकल मल दूर होनेसे वैराग्यके हेतु आत्मज्ञानरूप बलवाला. यह पुरुष जिनके चरणमूलमें रहकर, पीछा दुःखदायी संसारमें नहीं पड़ता ॥ ३२ ॥ उन सकल मनोरथ पूर्ण करनहारे भगवान्‌काही आपलोग अपने अपने उचित कर्मोंद्वारा निष्कपट रीतिसे मन, वचन, कायसे भजन करो; यह निश्चय रक्खो कि-तुम भजन करोगे तो, अधिकारके अनुसार अवश्य सिद्धि होगी; क्योंकि भगवान्‌का चरणकमल सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ३३ ॥ भगवान् यदपि स्वरूपसे शुद्ध, ज्ञानघन और निर्गुण हैं. तथापि कर्ममार्गमें अनेक पदार्थोंसे होते

१ अयं स्वस्त्ययनः पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ १ ॥ अर्थ-और अन्यत्रभी लिखा है कि-गृहस्थी द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का यही कल्याणकारी मार्ग है कि-जो पूर्ण धनसे तथा शुद्धचित्तसे भगवानका पूजन करना ॥ १ ॥

सो मैं जानताहूं कि- जिनपर ईश्वर प्रसन्न हो जाय, उन वेदके अनुसार चलनेवाले मनुष्योंको संपूर्ण मनोरथ पूर्ण करनहारे जो जो स्थान प्राप्त होते हैं, वे स्थान राज्यका यथार्थ रीतिसे अधिकार चलानेसे मुझेभी प्राप्त होवेंगे ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजाको धर्मकी शिक्षा न करे और उनसे कर यानी राजदेय भाग लेवे. वह प्रजानके पापका भागी होता है. और अपने ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥२४॥ इसलिये हे प्रजाओ ! मेरे परलोकके कल्याण करनेके वास्ते ईश्वरार्पण बुद्धिसे तुम स्वधर्मपालनरूप अपना कर्तव्य कर्म करो. तुम अनसूया युक्त होकर कहे ऐसे करोगे तो, मैं तुम्हारा बड़ा अनुग्रह मानूंगा ॥२५॥ हे निर्मल मनवाले पित्रीश्वर देवता और ऋषियो ! तुमभी इस बातका अनुमोदन करो; क्योंकि धर्मके विषयमें कर्ताको शिक्षकको और सम्मति देनेवालेको परलोकमें बराबर फल

तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥ २३ ॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥ प्रजानां शमलं भुंक्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २४॥ तत्प्रजा भर्तृपिंडार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ॥ कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २५ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥ २६ ॥ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यंते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥ २७ ॥ मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरंगस्यास्मत्पितुः पितुः ॥ २८ ॥ ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २९ ॥

मिलता है ॥२६॥ हे महापूज्य पुरुषो ! यदपि कितनेएक नास्तिक हैं, यानी ईश्वरको नहीं मानते, परंतु कितनेएक मानतेभी हैं. और यह पक्ष सयुक्तिकभी प्रतीत होता है; क्योंकि इसलोकमें और परलोकमें किसी किसीको अतिउत्तम स्थान व शरीर प्राप्त होता दीखता है. जो जगत्का नियंता ईश्वर न होवे तो, इसका होना संभवे नहीं ॥ २७ ॥ मनु, उत्तानपाद, राजा ध्रुव, राजा प्रियव्रत और हमारे पिताका पिता यानी दादा अंग, ॥ २८ ॥ ब्रह्मा, महादेव, प्रल्हाद, बलिराजा और ऐसेही दूसरे विद्वान् और महात्मालोगोंने स्वीकार किया है कि- कर्म जड़ होनेसे स्वयं फल देनेको असमर्थ है. तासों कर्मका फल देनेवाला परमेश्वर अवश्य है ॥ २९ ॥

नेत्र हैं सुन्दर नासिका, सुंदर मुख, सौम्य स्वरूप, पुष्ट कंधे हैं. सुंदर दांत और सुंदर मंदहास्य है ॥ १५ ॥ विपुल वक्षःस्थल, बड़ा कटिभाग, त्रिवलीसे शोभायमान पीपलके पत्रसा पेट है. भ्रमरवाली नाभि है, महापराक्रमी, सुवर्णसी उज्ज्वल साथलां हैं, ऊंचे अग्रभागवाले चरण हैं ॥ १६ ॥ सूक्ष्म, कुटिल, श्याम और सचिक्कण केश हैं. शंखसा सुंदर कंठ है. अमूल्य उत्तम रेशमी वस्त्र पहने और ओढ़े है ॥ १७ ॥ उन सूक्ष्म वस्त्रोंमेंसे सब शरीरकी शोभा प्रकट हो रही है. नियमके निमित्त आभूषणोंका त्याग किया है, कृष्णमृगचर्म धारण किया है. कुश हाथमें हैं, लक्ष्मीवान् है, अपने उचित कर्मसे निपट कर बैठे हैं

व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी कांचनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कंबुकंधरः ॥ महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥ व्यंजिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुशपाणिः कृतोचितः ॥ १८ ॥ शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समंततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीश सदः संहर्षयन्निव ॥ १९ ॥ चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ सभ्याः श्रृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २१ ॥ अहं दंडधरो राजा प्रजा(नामिह) योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥ २२ ॥

॥ १८ ॥ शिशिरऋतु संबंधी चमकीले तारोंके समान स्निग्ध अथवा संताप मिटानेवाले स्नेहभरे तारे यानी पुतलियांवाले नेत्र हैं, ऐसा वह राजा चारोंओर देखकर, मानों सभाको आनंदित करता हो, ऐसे सुंदर विचित्र पदरचनावाली कोमल मधुर गंभीर वाणीसे अव्याकुल जैसे हो वैसे यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ १९ ॥ २० ॥ राजाने कहा कि– हे सभ्यो ! आप जो सज्जन यहां आये हैं. वे जो मैं कहता हूं, वह सुनो. इससे आपका भला होगा. मेरा कहनेका तात्पर्य यह है कि– जो मनुष्य धर्मकी जिज्ञासा करना चाहें, वे अपने विचारको सत्पुरुषोंके सामने प्रगट करें ॥ २१ ॥ प्रजाका पालन करने उन्हें आजीविका देने, जुदे जुदे योग्य सब नियमोंको रखने और अपराधियोंको दंड देने आदि कार्य करनेके निमित्त मैं यहां राजा नियत किया गया हूं ॥ २२ ॥

इस कीर्तिको वर्णन करनेवाले मैत्रेयजीका सत्कार करके भगवान्‌के परमभक्त विदुरजीने कहा कि-॥ ८॥ पृथुराजा कि- जिसका ब्राह्मणलोगोंने राज्याभिषेक किया था. और देवतानने उत्तम उत्तम पदार्थ अर्पण किये थे. और जिसने विष्णु भगवान्‌का तेज धारण करके अपनी भुजानसे पृथ्वीका दोहन किया था ॥ ९ ॥ उसकी कीर्तिको कौन ज्ञानी मनुष्य न सुने ? क्योंकि उसके कियेहुए पृथ्वीके दोहनसेही सब राजा, लोक और लोकपाल देवतानको अबतक आजीविका मिलती है, इसलिये उसका पवित्र चरित्र आप हमें कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- जो देश गंगा और यमुनाके बीचमें है. वहां निवास करता राजा पृथु, सुखकी

विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः ॥ बिभ्रत्स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥ ९ ॥ कोन्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः सपाला उपजीवंति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गंगायमुनयोर्नद्योरंतरा क्षेत्रमावसन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदंडधृक् ॥ अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदाऽऽसीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथाऽर्हतः ॥ उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥ १४ ॥ प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कंजारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥ १५ ॥

आसक्तिसे नहीं, पर केवल कियेहुए पुण्यका त्याग करनेकी इच्छासे, प्रारब्ध कर्मके निमित्त उन्हीं कर्मोंके संबंधी सुखोंका भोग करनेलगा ॥ ११ ॥ सर्वत्र अस्खलित जिसकी आज्ञा है ऐसा, वह पृथुराजा ब्राह्मण और भगवद्भक्तको छोड़कर, सातों द्वीपोंमें एकही दंड देनेवाला था. अर्थात् उसके शिवाय दूसरा कोईभी दंडधारी नहीं था ॥ १२ ॥ हे विदुर ! एक समय उस राजाने महासत्रकी दीक्षा ली. वहां देवता, ब्रह्मर्षि और महर्षियोंकी बड़ी समाज हुई ॥ १३ ॥ उस समाजमें जो बड़े बड़े योग्य पुरुष थे. उन सबका यथायोग्य सत्कार व पूजन हो चुका. तब जैसे तारागणके बीचमें चंद्रमा उदय होता है, ऐसे सत्रके बीचमें वह राजा खड़ा हुआ ॥ १४ ॥ कैसा है वह राजा ? कि-लंबा जिसका शरीर है, पुष्ट और लंबी भुजा हैं, गौरवर्ण, कमलसे अरुण

गलियां चौहट्टे और राजमार्गके बीच चंदन व अगरके जलसे छिरकाव किया गया; पुष्प, अक्षत, फल, अंकुर, लाई व दीपमालाकी शोभा बनायी गयी ॥ २ ॥ पुष्प फलसहित कदलीके खंभे व छोटे छोटे सुपारीके वृक्ष खड़े किये गये, औरभी अनेक वृक्षोंके पल्लव और मालानकी शोभा सर्वत्र बनायी गयी ॥ ३ ॥ उज्वल कुंडलसे शोभायमान सुंदर कन्यायें उस समय दही आदि सकल मंगल पदार्थ व दीपक और फूल फल आदि वस्तु हाथमें लिये, उस राजाकी अगोनी करनेको सन्मुख जाती थीं ॥ ४ ॥ शंख और दुंदुभिका शब्द तथा ब्राह्मणोंका वेदघोष चौतर्फ व्याप रहा था. और सब लोक उसकी प्रशंसा करते थे. इस प्रका-

चंदनागुरुतोयार्द्ररथ्या चत्वरमार्गवत् ॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिभिरर्चितम् ॥ २ ॥ सवृंदैः कदली-स्तंभैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥ ३ ॥ प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमंगलैः ॥ अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुंडलमंडिताः ॥ ४ ॥ शंखदुंदुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ॥ विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥ ५ ॥ पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ॥ पौरान्जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥ ६ ॥ स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ॥ कुर्वन् शशासावनिमंडलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ तदादिराजस्य यशो विजृंभितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणंतमर्चयन् ॥ ८ ॥

र सब समृद्धि होनेपरभी मनमें किसी प्रकारका अभिमान न रखकर, उस पृथुराजाने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ महायशस्वी पृथुने जहां तहां प्रजासे सत्कार पाकर, पुर व देशमें रहनेवाले लोकोंका पीछा सत्कार किया. और प्रसन्न होकर उन्हें अनेक प्रकारके प्रियपदार्थ दिये ॥ ६ ॥ निर्दूषण कर्म करनेवाले उस महात्मा पृथुने इत्यादि अनेक कर्म करते भूमंडलका पालन किया. और अपने बढ़ेहुए जसको पृथ्वीमें व्याप्त करके, परमपद यानी मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि-हे सभापति शौनक ! सब गुणोंसे भरीहुई और गुणवान् लोक जिसकी प्रशंसा करते हैं ऐसी, पृथुराजाकी कीर्ति सुनकर

उसका सर्व ठौर कल्याण होता है ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इसप्रकार पृथुराजाके सत्य वचनोंका सत्कार कर तथा उसपर अनुग्रह कर, भगवान्‌ने वहांसे रवाने होनेका विचार किया ॥ ३४ ॥ देवता, ऋषि, पितृ, गंधर्व, सिद्ध, चारण, नाग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, पक्षी और दूसरेभी अनेक प्राणी कि- ॥ ३५ ॥ जिनका पृथु राजाने भगवद्‌बुद्धिसे भक्तिभाव सहित वाणी, धन और हाथ जोड़नेसे सत्कार किया था, वे सब वहांसे रवाना हुए. और ता पीछे भगवान्‌के पार्षदभी चले गये ॥ ३६ ॥ भगवान्‌भी इस राजाका और ब्राह्मणोंका मानों मन हरकर जाते हों ऐसे अपने धाम ( वैकुंठ ) पधारे ॥ ३७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनंद्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गंतुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगंधर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥ ३५॥ यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्तांजलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुंठानुगतास्ततः॥३६॥ भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥ महासुरभिभिर्धूपैर्मंडितं तत्र तत्र वै ॥ १ ॥

आत्मस्वरूपका उपदेश करनेवाले और जिनका स्वरूप जाननेमें नहीं आता ऐसे, देवतानकेभी देवता हरि वहांसे अदृश्य हुए तब उन्हें प्रणाम करके, पृथुराजा अपने नगरमें आया ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ इक्कीसवें अध्यायमें महायज्ञमें देवता आदिनकी बड़ी सभा हुई. वहां पृथुराजाने उपदेश दिया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-पृथुराजा नगरमें गया. उस समय मोती, फूल, माला, वस्त्र और सुवर्णके तोरणोंसे नगर शोभायमान किया गया और महासुगंधि धूपकी सुगंधि की गई ॥ १ ॥

किसीप्रकारका पक्ष नहीं है. ॥ २८ ॥ अतएव आप कि—जो मायाके गुणोंके कार्यसे रहित हो. उन्हें निष्कामपुरुष ज्ञान प्राप्त भये पीछेभी भजा करते हैं, हे भगवन्! आपके चरणके स्मरणके शिवाय दूसरा कुछभी प्रयोजन इन महात्मा लोगोंके हमें नहीं दीखता ॥ २९ ॥ भजन करनेवाले भक्तजनको वरदानके वास्ते कहना, यह आपकी बात जगत्‌को मोहित करनेवाली है. यह मैं मानता हूं; क्योंकि आपकी वाणीरूप दोरीसे लोक बंधेहुए हैं. और जो बंधेहुए न होवें तो, वारंवार फलमें मोहित होकर, कर्म किसप्रकारसे कर सकते हैं? ॥ ३० ॥ हे परमेश्वर! आपकी मायाने लोकोंको आपके सत्यस्वरूपसे जुदे पटक रक्खे हैं; क्योंकि

भजंत्यथ त्वामतएव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम्॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥ २९ ॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजंतमात्थयत्॥ वाचानुतंत्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खंडितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशंकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥

मूर्ख बनकर, स्वरूपानंदके शिवाय दूसरे पुत्रादिक सुखकी कामना करते हैं. अतएव मैंभी कि—जो इन लोकोंमेंसे एक हूं उसे वरदानरूप भूलमें न पटक कर, पिता जैसे प्रार्थना किये विना बालकका हित करता है वैसे आपको मेरा हित करना चाहिये॥ ३१॥ मैत्रेयजीने कहा कि—इसप्रकार पृथुराजाने स्तुति की तब भगवान्‌ने पृथुसे कहा कि—हे राजा! तुमको मेरी भक्ति प्राप्त होवेगी. आपने मेरी भक्ति करनेका विचार किया. यह बहुत अच्छा किया; क्योंकि ऐसे विचारसे मेरी अपार मायाका पार आ गया है ॥ ३२ ॥ हे राजा! अब तुम सावधान रहकर, मेरी आज्ञाके अनुसार चलो. जो मनुष्य मेरी आज्ञाके अनुसार वरतता है,

आपके चरणकमलका मकरंद यानी श्रवणादि सुख नहीं है. अतएव आपकी कथा श्रवण करनेके वास्ते मुझे दश हजार कान देओ. यही वर मैं मांगता हूं ॥ २४ ॥ हे उत्तमश्लोक ! महात्मा लोकोंके मुखमेंसे निकलतीहुई, आपके चरणारविंदकी कथारूप अमृतके कणसे मिश्रित भयीहुई, वायुभी तत्त्वकी विस्मृतिपथमें पड़ेहुए अपक्व योगीजनोंको पीछा आत्मज्ञानका स्मरण दिलाती है, अतएव हम कि-जो सारग्राही हैं, उनके भक्ति विना दूसरे किसी वरदानसे प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ हे सुंदरकीर्ति ! सत्पुरुषोंके समागममें आपके सुखदायी यशको एकवारभी जो मनुष्य सुन लेता है. वह यदि गुणज्ञ होवे तौ, पीछे उससे कदापि विराम नहीं पाता. परंतु जो पशु होवे तो, उसकी बातही न्यारी है. लक्ष्मीभी अपने स्वरूपमें सर्व गुणोंका संग्रह करनेके वास्ते

स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदांभोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥ यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ॥ कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥ २६ ॥ अथाभजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥ अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ ॥ २७ ॥ जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ॥ करोति फल्ग्वप्युरुदीनवत्सलः स्वएव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥ २८ ॥

आपके गुणोंका वर्णन करती है ॥ २६ ॥ अतएव आप कि-जो सर्व पुरुषोंमें उत्तम और गुणोंके निवासरूप हो, उन्हें लक्ष्मीकी नाईं उत्साह रखकर, मैं भजता हूं. यदपि एकही समयमें एकही स्वामीकी एकही प्रकारकी सेवा करनेकी स्पर्धा अर्थात् ( डाह ) रखनेवाले हम दोनोंमें परस्पर कलह होनेका संभव है; तथापि मैं जानताहूं कि- मेरा और लक्ष्मीका दोनोंका चित्त आपके चरणोंमेंही एकाग्र रहेगा. तासों उसमें कलहका अंकुरभी उत्पन्न नहीं होवेगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जगतकी माता लक्ष्मी कि-जिसके काममें भाग लेनेकी हमारी इच्छा है, उसके साथ कदाचित् विरोध होवेगा तौभी, आप दीनवत्सल हो. तासों हमारी किंचिन्मात्र सेवाकोभी आप बहुत करके मानोंगे; क्योंकि आप अपने स्वरूपानंदमेंही रमण करतेहो. तासों आपके लक्ष्मीका

राजाने हरिकी आज्ञा शिरसे धारण करी ॥ १७ ॥ प्रेमसे चरणोंका स्पर्श करते और अपने कर्मसे शर्माते हुए इंद्रसे मिलकर, पृथुने द्वेषका परित्याग किया ॥ १८ ॥ विश्वके आत्मा भगवान्‌को पृथुने भेंटें अर्पण करीं. और उद्रेक पातीहुई भक्तिसे भगवान्‌के चरणकमलका ग्रहण किया ॥ १९ ॥ यद्यपि भगवान् रवाना होते थे. तथापि पृथुपर अनुग्रह होनेसे आपने विलंब किया. और सत्पुरुषोंके बंधु व कमलके पत्रसे नेत्रवाले भगवान् पृथुकी ओर देखकर, ठहर गये ॥ २० ॥ नेत्रोंमें अश्रु आनेसे जो देख नहीं सकताथा और अश्रुसे कायर होनेके कारण जो कुछभी बोल नहीं सकता था, उस आदिराजने हाथ जोड़, हृदयसे भगवान्‌का

स्पृशंतं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥ १८ ॥ भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणांबुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलंबितः ॥ पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥ २० ॥ स आदिराजो रचितांजलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ॥ न किंचनोवाच स बाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥ २१ ॥ अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ॥ पदा स्पृशंतं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरंगविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥ वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ॥ ये नारकाणामपि संति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥ न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणांबुजासवः ॥ महत्तमांतर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥

आलिंगन कर, भगवान्‌को धारण किया ॥ २१ ॥ फिर आंसू पोंछकर, उसने दर्शन किया तौ, दर्शन करते करते उसकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई, तथापि चरणसे पृथ्वीका स्पर्श करते और गरुड़के ऊंचे कंधेपर हाथका अग्र धरे, दृष्टिगोचर आदिपुरुष हरिसे पृथुने कहा ॥ २२ ॥ पृथु बोला कि–हे विभु ! वरदान देनेवालोंके प्रभु आपसे ब्रह्मादिकोंके संबंधी वरदान कि–जो नारकी जीवोंकोभी मिल सकते हैं, उन्हें बुद्धिमान् मनुष्य तौ किसप्रकार मांग सकता है ? हे ईश ! हे मोक्षपति ! अतएव मैं आपसे वे वर नहीं मांगता ॥ २३ ॥ हे नाथ ! वे वर तौ दूर रहे, पर मैं तौ वह मोक्षभी नहीं चाहता; क्योंकि वहां महत्पुरुषोंके अंतर्हृदयसे मुखद्वारा निकलाहुआ

आत्माकोही देह ज्ञानेंद्रिय. कर्मेंद्रिय और मनको अध्यक्ष सा स्थित कूटस्थ आत्मा जाने. वह शुभगतिको प्राप्त होवे ॥ ११ ॥ कूटस्थपन कहते हैं. द्रव्य, क्रिया, कारक और चिदाभासात्मक इस भिन्न लिंगशरीरके संसार है, अतएव जिन्होंने मुझसे प्रीति बांध लीनी है. वे ज्ञानी लोग संपत् और विपत्को देखकर कभी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ हे वीर ! उत्तम, मध्यम और नीचमें समदृष्टि रखकर सुख दुःखमें समदृष्टि होओ और इंद्रियां व अंतःकरणको वश करके, जो मुझ ईश्वरने तुम्हें सब मंत्री आदि परिकर दिया है. उसको साथ रखकर, सर्व लोककी रक्षा करो ॥ १३ ॥ राजाका प्रजाकी रक्षा करनेसेही कल्याण है; क्योंकि जो राजा प्रजाकी रक्षा करता है.

भिन्नस्य लिंगस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ॥ दृष्टासु संपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियंते मयि बद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेंद्रियाशयः ॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥ १३ ॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात् षष्ठमंशम् ॥ हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ॥ ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरं च मत्कंचन मानवेंद्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयंत्रितः ॥ नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥ १७ ॥

वह परलोकमें प्रजाके सुकृतका छठा भाग लेता है और जो रक्षा न करके प्रजासे लेता है. वह क्षीणपुण्य होकर, प्रजाके पापको भोगता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार द्विजमुख्योंके माननीय और परंपराप्राप्त धर्मको प्रधान रखकर, प्रसंगप्राप्त अर्थ कामका सेवन करते धर्मादिकनमें आसक्त न होकर इस पृथ्वीकी रक्षा करनेसे लोक आपसे बहुत राजी रहेंगे. और अल्पकालमें सनकादिक आपके घर आवेंगे. सो उनका आपको दर्शन होगा ॥ १५ ॥ हे राजा ! मैं आपके गुण व शीलसे वश हो गया हूं, सो मुझसे कुछ तौ वर मांगो. देखो, गुण शील विना न तौ मैं यज्ञोंसे सुलभ हूं. न तपसे और न योगसे; क्योंकि मैं तौ उन्हींके हृदयमें रहता हूं कि–जो समचित्त हैं ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–जगत्गुरु भगवान्ने इसप्रकार आज्ञा करी, तौ जगत्जयी उस

वह खाली परिश्रमही हुआ ॥ ४ ॥ अतएव यह शरीर अविद्याजन्य कामनाकृत कर्मोंसे बनाहुआ है, जो इसतरह जानता है, वह आत्मज्ञानी पुरुष इस शरीरमें कभी आसक्त नहीं होता ॥ ५ ॥ जो इस शरीरमेंभी आसक्त नहीं है. वह ज्ञानीपुरुष इस शरीरसे उत्पन्न भयेहुए पुत्र वा धनमें तो कौनसी ममता करे ? ॥ ६ ॥ यह आत्मा देहसे भिन्न है; क्योंकि आत्मा एक है. और देह बाल युवादि भेदसे अनेकरूप है. आत्मा शुद्ध है, देह मलिन है. आत्मा स्वयंप्रकाश है. देह जड़ है. आत्मा निर्गुण है. देह सगुण है, आत्मा गुणोंका आश्रय है, देह कारणभूत गुणोंके आश्रित है. आत्मा सर्वव्यापक है. देह परिच्छिन्न है, आत्मा आव-

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ॥ आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥ ६ ॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्माऽऽत्माऽऽत्मनः परः ॥ ७ ॥ य एवं संतमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ॥ नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥ ८ ॥ यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शांतिं मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ॥ कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥

रणरहित है. देह घर आदिसे आवृत है. आत्मा सर्वका साक्षी है. देह दृश्य है, आत्मा निरात्म है और देह स्वात्म है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य ऐसे आत्माको आत्मामें स्थित जाने. वह मुझ ब्रह्ममें स्थित होनेके कारण देहमें रहनेपरभी उसके विकारोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ जो मनुष्य कामनाको तजकर, श्रद्धायुक्त हो, स्वधर्मसे सदा मेरा भजन करे. हे राजा ! शनैः शनैः उसका मन प्रसन्न हो जाता है ॥ ९ ॥ जब यह मनुष्य प्रसन्नचित्त हो जाता है. तब गुणोंका त्याग करके, सम्यक् दर्शन यानी ज्ञानी होकर, शांतिको प्राप्त हो जाता है. अर्थात् उदासीनतासे मेरी अवस्थितिरूप ब्रह्ममय कैवल्य ( मोक्ष ) को प्राप्त हो जाता है. ॥ १० ॥ सम्यक् दर्शन कहते हैं कि–जो उदासीन इस

कार उस राजासे कहा. तब यज्ञका आग्रह छोड़, स्नेह करके, इंद्रके साथ उसने संधि ( मेल ) किया ॥ ३९ ॥ बहुत कर्म करने वाला पृथु अवभृथ स्नान करचुका. तब जो उसके यज्ञमें तृप्त हुए थे. उन वर देनेवालोंने पृथुको वरदान दिये ॥ ४० ॥ हे विदुर। श्रद्धापूर्वक जिनको दक्षिणा मिली थी. ऐसे सत्य आशिषवाले ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर, आदिराज पृथुको सत्कार पाकर, आशिष दीं ॥ ४१ ॥ और कहा कि- हे महाबाहु ! आपके बुलानेसे हम सब लोग आये, सो आपने पितृ, देवता, ऋषि और मनुष्य सबका दान व मानसे पूर्ण सत्कार किया ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका-

कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥ विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥ ४१ ॥ त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुविजये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भगवानपि वैकुंठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकारषीद्भंगं हयमेधशतस्य ह ॥ क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षंतुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यंति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यंति त्वादृशा देवमायया ॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥

नाम भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ वीसवें अध्यायमें विष्णु भगवान्ने यज्ञमें साक्षात् शिक्षा दी. और वरदानके प्रसंगसे परस्पर प्रीति हुई. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- यज्ञपति व यज्ञके भोक्ता विभु वैकुंठभगवान्नेभी इंद्रको साथमें ले, यज्ञोंसे प्रसन्न होकर, पृथुसे कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि- इसने आपके सौ १०० अश्वमेध यज्ञ होनेमें विघ्न किया था, यह आपसे क्षमा मांगता है, सो आपको इसपर क्षमा करनी चाहिये ॥ २ ॥ हे राजा ! सुबुद्धि व मनुष्योंमें उत्तम साधुलोक जगत्में प्राणियोंसे द्रोह नहीं करते; क्योंकि वे जानते हैं कि- शरीर आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥ और जब आप जैसे पुरुष, भगवान्की मायासे मोहित हो जावें, तब तौ चिरकालतक की हुई वृद्धपुरुषोंकी सेवासे क्या हुआ ? कुछ नहीं. के-

धर्मके ज्ञाता हो ॥ ३२ ॥ आपका कल्याण हो. इंद्र आपकाही स्वरूप है. इसलिये आपको इंद्रपर क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि आप दोनों भगवान्‌केही स्वरूप हो ॥ ३३ ॥ महाराज ! इस विषयमें आप चिंता मत करो. जो मैं कहता हूं. वह वचन आदरयुक्त होकर,सुनो, जिस कामको दैव बिगाड़ना चाहता है. उसका जो मनमें ध्यान करता रहता है. उस पुरुषका मन अति रोषसे अंधा होकर, मोहमेंही पड़ता है. परंतु शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ जब देवतोंने दुराग्रह कर लिया है तौ, आपको यह यज्ञ बंद रखना चाहिये; क्योंकि इसमें इंद्रके रचेहुए पाखंडोंसे धर्मका सत्यानाश होता है ॥ ३५ ॥ जिस इंद्रने आपके

नैवात्मने महेंद्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥ मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिंतां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोतिरुष्टं विशते तमोऽधम् ॥ ३४ ॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र पाखंडैरिंद्रनिर्मितैः ॥ ३५ ॥ एभिरिंद्रोपसंसृष्टैः पाखंडैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥ ३६ ॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलाऽसि वैन्य ॥ ३७ ॥ स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ ऐंद्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचंडपाखंडपथं प्रभो जहि ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च संदधे ॥ ३९ ॥

अश्वका हरण किया. और यज्ञके लिये द्रोह किया. उस इंद्रके रचेहुए चित्ताकर्षक पाखंडोंसे धर्मसे च्युत होते इस जनकी ओर तो आप देखिये ॥ ३६ ॥ वेनके अत्याचारसे लुप्त हुए, लोकोंके सांख्ययोगादि नाना शास्त्रके अनुरूप धर्मकी रक्षाके निमित्त आपने यहां आज अवतार लिया है. सो हे पृथु ! आप तौ भगवान्‌के शरीरसे भगवान्‌की कला प्रगट हुए हो ॥ ३७ ॥ हे प्रजापति ! वे आप इस जगत्‌का कल्याण जैसे हो वैसा विचार करके, प्रजापतियोंके मनोरथको परिपूर्ण करो. और हे प्रभु ! पाखंडकी माता इस इंद्रकी चलायीहुई मायारूप प्रचंड पाखंडमार्गका नाश करो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– ब्रह्माजीने इसप्र-

पाखंड बाहिरी दिखावमें बड़े सुंदर और हेतुवादमें चतुर होते हैं ॥ २५ ॥ यह वार्ता जानकर, महापराक्रमी भगवान् पृथुने इंद्रपर कुपित हो, धनुष उठाकर, हाथमें बाण लिया ॥ २६ ॥ जिसके सामने देखना अति कठिन है ऐसे, अति असह्यवेगवाले पृथुका इंद्रके वधके निमित्त अभिप्राय जानकर, ऋत्विजोंने निषेध किया कि- हे महामति ! यहां यज्ञमें पशुवधके सिवाय दूसरेका वध करना आपको युक्त नहीं है ॥२७॥ यदि इंद्रको मारनेका विचार है तौ, हे राजन् ! आपके यशसे हीनकांति व प्रयोजनको विध्वंस करनेवाले इंद्रको हम हमारे सारसहित आह्वानमंत्रोंसे यहां बुला लेवेंगे और फिर आपके शत्रु इंद्रको बलात्कारसे अग्निकुंडमें होम देवेंगे

तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ इंद्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७ ॥ वयं मरुत्वंतमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवैरनंतरं प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥ इत्यामंत्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्तान् जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥ २९ ॥ न वध्यो भवतामिंद्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इंद्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ पृथुसे ऐसी सलाह मिलाकर, हे विदुर ! इसके ऋत्विज क्रोधकर, स्रुवा हाथमें ले, आहुति देने लगे. इतनेमें ब्रह्माजीने जाकर, मना किया ॥ २९ ॥ और कहा कि-तुमको इंद्रका वध करना उचित नहीं; क्योंकि यज्ञ करके जिस इंद्रको तुम मारना चाहते हो. उसीकी यज्ञद्वारा यजन कियेजाते ये सब देवता मूर्ति हैं. दूसरा यह यज्ञ नाम सातवां इंद्र, भगवान्का अवतार है ॥ ३० ॥ इसलिये इस बली इंद्रके साथ तुमको मैत्री करनी चाहिये. हे ब्राह्मणो ! पृथुके इस कर्मको विध्वंस करना चाहते इंद्रने, जो यह बड़ा, धर्मको लुप्त करनेवाला पाखंड चलाया है, उसे देखो ॥ ३१ ॥ महाकीर्ति पृथुके जो एक कम सौ १०० यज्ञ हुए तौ, क्या ? पृथुसे कहते हैं कि-आपके भलीभांति यजन, कियेहुए बहुतेरे यज्ञ हो चुके. अब आप यज्ञ करके क्या करोगे ? क्योंकि आप तौ मोक्ष-

र्धान होगया. वह वीर अपने घोड़ेको लेकर, पिताके यज्ञमें आया ॥ १७ ॥ बड़ेबड़े महात्मा ऋषिलोगोंने उसके इस अद्भुत चरित्रको देखकर, हे विदुर! घोड़ा जीत ले आनेसे इसे विजिताश्व ऐसा नाम दिया ॥ १८ ॥ समर्थ इंद्रने घोर अंधकार फैलाकर फिर गुप्तरूप धर, चषाल ( यूपके आगे जो काठका टुकड़ा पड़ा रहता है ) सहित यूपसे घोड़ेको खोल कर, सुवर्णकी सांकल-सहित अश्वका हरण किया ॥ १९ ॥ अत्रिने आकाशमार्ग त्वरासे जाते इंद्रको फिर दिखाया. परंतु कपाल व खट्वांग धारण किये देख कर, विजिताश्वने इसपर प्रहार नहीं किया ॥ २० ॥ फिर अत्रिने प्रेरणा की. तब क्रोध करके, उसने इंद्रपर बाणका संधान

तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ॥ नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥ १८ ॥ उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥ १९ ॥ अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ॥ कपालखट्वांगधरं वीरो नैनमबाधत ॥ २० ॥ अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावंतर्हितः स्वराट् ॥ २१ ॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥ २२ ॥ यानि रूपाणि जगृहे इंद्रो हय जिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खंडानि लिंगं खंडमिहोच्यते ॥ २३ ॥ एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ॥ तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखंडेषु मतिर्नृणाम् ॥ २४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रांत्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥ २५ ॥

किया. इतनेमें वह इंद्र घोड़े व उस रूपको छोड़ कर, अंतर्धान हो गया ॥ २१ ॥ वह बीर घोड़ेको लेकर, अपने पिताके यज्ञमें आया. इंद्रने जो पाखंडवेष धारण किया था. वह निंदनीयरूप मूर्खलोगोंने धर्म समझ कर, ग्रहण किया ॥ २२ ॥ घोड़ा हरनेकी इच्छासे इंद्रने जो रूप धारण किये. वेही पापके खंड यानी चिन्ह हुए. यहां खंडका अर्थ लिंग यानी चिन्ह है ॥ २३ ॥ पृथुके यज्ञको विध्वंस करनेकी इच्छासे घोड़ा हरनेके हेतु इंद्रने जो जो स्वरूप धारण करके पीछे छोड़े हैं. उन पाखंडोंमें लोगोंकी बुद्धि लग जाती है ॥ २४ ॥ नग्न ( दिगंबर जैन ) रक्तपट ( बौद्ध ) और कापालिक आदि जो ये धर्मके समान दीखनेवाले पाखंडपथ हैं. इन्हें "ये धर्मके पथ हैं" ऐसा समझ कर, बहुधा लोग भ्रांत होकर, इनमें फँस जाते हैं; क्योंकि ये

सहित सर्व लोकोंने भेंटें अर्पण कीं ॥ ९ ॥ अधोक्षज भगवान् हैं नाथ जिसके ऐसे, पृथुका परम उदयवाला कर्म देखकर, भगवान् इंद्रसे सहन नहीं हुआ, तो उसने यज्ञमें विघ्न डाला ॥ १० ॥ छेला यानी सौवाँ १०० अश्वमेध यज्ञ करके पृथु, भगवानका यजन करनेलगा, तब स्पर्धा करके, इंद्रने अंतर्धान होकर, यज्ञके पशुका हरण किया ॥ ११ ॥ अधर्ममें धर्मकीसी भ्रांति करानेवाले पाखंडवेषको कवचके समान धारण करके, आकाशमार्गसे दौड़ते जाते, उस इंद्रको भगवान् अत्रिऋषिने देखा ॥ १२॥ अत्रि ऋषिने महारथ पृथुके पुत्रको इंद्रके वधके लिये प्रेरणा की. तब सम्यक्प्रकार क्रुद्ध होकर, पृथुका पुत्र पीछे दौड़ा और

इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ॥ असूयन्भगवानिंद्रः प्रतिघातमचीकरत ॥ १० ॥ चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥ ११ ॥ तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा ॥ आमुक्तमिव पाखंडं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥ १२ ॥ अत्रिणा चोदितो हंतुं पृथुपुत्रो महारथः ॥ अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥ तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मशरीरिणम् ॥ जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुंचति ॥ १४ ॥ वधान्निवृत्तं तं भूयो हंतवेऽत्रिरचोदयत् ॥ जहि यज्ञहनं तात महेंद्रं विबुधाधमम् ॥ १५ ॥ एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥ १६ ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अंतर्हितः स्वराट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥

'ठहर ठहर' ऐसे पुकारा ॥ १३ ॥ जटा धारण किये व भस्म लगायेहुए इंद्रका वैसा स्वरूप देखकर, पृथुपुत्रने जाना कि–यह तो मूर्तिमान् धर्म है. अतएव उसने उसपर बाण नहीं चलाया ॥ १४ ॥ जब पृथुपुत्र उसके वधसे निवृत्त हो गया. तब उसके वधके लिये अत्रिने फिर प्रेरणा की, कि–हे तात ! इसे मार. यह तेरे पिताके यज्ञका भंग करनेवाला देवतानमें अधम इंद्र है ॥ १५ ॥ महाराज ! अत्रिऋषिने पृथुके पुत्रको ऐसे कहा. तब आकाशरास्ते त्वरा करते इंद्रके पीछे क्रोधकरके वह ऐसा दौड़ा, कि–मानों रावणके पीछे गिद्धराज जटायु लगा है ॥ १६ ॥ तब वह इंद्र पृथुके पुत्रके वास्ते घोड़े व उस रूपको छोड़कर, अंत-

ब्रह्मावर्त देशमें सौ १००[1] अश्वमेधयज्ञ करनेके लिये संकल्प किया ॥ १ ॥ भगवान् इंद्रने इस कर्मको अपनेसे अधिक समझा-अतएव पृथुके यज्ञसंबंधी महोत्सवका सहन नहीं कर सका ॥ २ ॥ जिस यज्ञमें सर्वके आत्मा और सर्वलोकोंके गुरु साक्षात् यज्ञपति प्रभु परमेश्वर हरि भगवान् प्रत्यक्ष प्रगट हुए थे ॥ ३ ॥ जिनके साथ ब्रह्माजी, महादेव, लोकपाल और लोकपालोंके अनुचर उपस्थित हुए थे. और गंधर्व, मुनि व अप्सरागण उनका चरित्र गा रहे थे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्षआदि, सुनंदनंदआदि भगवान्के पार्षदश्रेष्ठ ॥ ५ ॥ कपिलदेवजी, नारदजी, दत्तात्रेयजी और सनकादिक योगेश्वर औरभी जो भगव-

तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः ॥ शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥ यत्र यज्ञप-तिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥ ३ ॥ अन्वितो ब्रह्मश-र्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४ ॥ सिद्धविद्याधरा दै-त्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनंदनंदप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥ ५ ॥ कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥ ६ ॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ॥ दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥ ७ ॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसा-न् ॥ तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयंत मधुच्युतः ॥ ८ ॥ सिंधवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उ-पायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ ९ ॥

क्त और भगवान्की सेवाके उत्सुक थे, वे सब भगवान्के पीछे वहां आये ॥ ६ ॥ हे विदुर! जहां सर्वकामना पूर्ण करनेवाली, हविको पूर्ण करनेवाली, पृथ्वी गौका रूप धारण करके, यजमानके मनवांछित मनोरथ पूर्ण करती थी ॥ ७ ॥ नदियोंमें दधि, अन्न और गोरसआदि सब प्रकारके रस बहने लगे और वृक्ष अनेक शरीर धरकर, मधुको झरते फलआदि पदार्थ प्रगट करने लगे ॥ ८ ॥ समुद्रोंने रत्नपुंज प्रगट किये, पर्वतोंने भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य चारप्रकारका अन्न प्रगट किया और लोकपाल-

१ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ इति मनूक्तिः ॥ अर्थ-सरस्वती, दृषद्वती, गंगा इनका मध्यभाग और ब्रह्मदेवकरके जो बनाया गया है. उस देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥ १ ॥

थ्वीसे जुदा जुदा दूध दुहा ॥२६॥ हे विदुर! इस प्रकार अन्न खानेवाले पृथुआदि सब लोगोंने पात्रवत्सआदिको बदलकर, अपने मनवांछित जुदे जुदे अन्नका पृथ्वीसे दोहन किया ॥२७॥ फिर प्रसन्न होकर, राजा पृथुने सर्व कामना पूर्ण करनेवाली इस पृथ्वीको प्रेमसे अपनी पुत्री बनायी. जो पृथु पुत्रीपर बड़ा दयालु था ॥२८॥ फिर राजाधिराज व प्रभु पृथुने अपने धनुषकी कोटिसे पर्वतोंके शिखरोंको चूर्ण करके इस भूमंडलको प्रायः बराबर कर दिया ॥२९॥ फिर प्रजाओंको पिताके समान वृत्ति देनेवाले भगवान् पृथुने जहां तहां इस भूमंडलपर यथायोग्य रहनेके लिये गांव, पुर, नगर, अनेक प्रकारके दुर्ग यानी किले, गायोंके रहनेके बाड़ें, अहीरोंके रहनेके

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ॥ दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७ ॥ ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥ २८ ॥ चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमंडलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथाऽर्हतः ॥ ३० ॥ ग्रामान्पुरःपत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥ प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥ यथासुखं वसंति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथाऽऽदीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ॥ ब्रह्मावर्त्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥

स्थान, सेनाके रहनेके स्थान, खानें, किसान लोगोंके गांव, पर्वतके प्रांतभागके गांवआदि अनेक निवास कल्पन किये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस पृथ्वीपर पृथुसे पहले गाँव व पुरआदिकी रचना बिलकुल नहीं थी. किंतु लोग निर्भय होकर, जहां आराम देखते वहीं रहते थे ॥ ३२ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें अश्वमेधका अंगभूत घोड़ा हर लेजानेसे पृथु इंद्रको मारनेके लिये प्रवृत्त हुआ तौ ब्रह्माजीने निवारण किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-फिर उस पृथुराजाने जहां प्राची ( पश्चिमवाहिनी ) सरस्वती बहती है वहां मनुके क्षेत्र

क्रव्य यानी पितृअन्नरूप दूधका दोहन किया ॥ १८ ॥ सिद्धोंने कपिलदेवजीको वत्स बनाकर, संकल्पनामयी यानी अणिमादि सिद्धियोंका दोहन किया और जो विद्याधरआदि थे उन्होंने आकाशपात्रमें खेचर विद्यारूप दूधका दोहन किया ॥ १९ ॥ और दूसरे मायावी किंपुरुषआदि लोकोंने मयदैत्यको वत्स बनाकर, अंतर्धान होनेसे अद्भुत प्रकृतिवाले पुरुषोंसंबंधी व संकल्पमात्रसे पैदा होनेवाली मायारूप दूधका दोहन किया ॥ २० ॥ मांस खानेवाले यक्ष, राक्षस, भूत व पिशाचोंने रुद्रको वत्स बनाकर, कपालमें रुधिररूप आसवका दोहन किया ॥ २१ ॥ वैसे सांप, बिना फणवाले सांप, नाग और बीछूआदि जहरीले जीवोंने

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् ॥ सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामंतर्धानाद्भुतात्मनाम् ॥ मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥ २० ॥ यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥ २१ ॥ तथाऽहयो दंदशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२ ॥ पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ॥ अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेंद्रेण च दंष्ट्रिणः ॥ २३ ॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥ सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥ २४ ॥ वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु ॥ २५ ॥ सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः ॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥

तक्षकको वत्स बना कर, बिलपात्रमें विषरूप दूधका दोहन किया ॥ २२ ॥ पशुओंने नंदिकेश्वरको वत्स बनाकर, वनपात्रमें घासरूप दूधका दोहन किया. डाढोंवाले मांसाहारी जानवरोंने सिंहको वत्स बनाकर, अपने शरीररूप पात्रमें मांसका दोहन किया. पक्षियोंने गरुडको वत्स बनाकर, चर कीडे आदि और अचर फलआदि दूधका दोहन किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ वृक्षोंने वडको वत्स बनाकर, जुदा जुदा रसमय दूध दुहा. पर्वतोंने हिमालयको वत्स बनाकर, अपने शिखररूप पात्रोंमें अनेक धातुओंका दोहन किया ॥ २५ ॥ सबोंने जो अपनेमें मुख्य था. उसे वत्स बनाकर, अपने अपने पात्रमें सर्व कामना पूर्ण करनेवाली पृथुकी वशीभूत की हुई पृ-

हे विभु ! वर्षाऋतु व्यतीत होनेपरभी इंद्रका बरसायाहुआ जल जिसतरह मुझपर सबठौर बना रहे ॥ ११ ॥ इस प्रकार पृथ्वीका प्रिय व हित वचन सुनकर, राजाने मनुको वत्स बनाकर, हाथमें सब अन्न दुहा लिये ॥ १२ ॥ वैसे दूसरे पंडितभी सब ठौरसे सार लेते हैं. सो दूसरेभी ऋषिआदि पंद्रह जनोंने पृथुकी वश की हुई पृथ्वीका अपनी कामनाके अनुसार दोहन किया ॥ १३ ॥ हे विदुर ! ऋषियोंने बृहस्पतिको वत्स बनाकर, इंद्रियांरूप पात्रमें पवित्र वेदमय दूधका दोहन किया ॥ १४ ॥ देवतालोगोंनें इंद्रको वत्स बना कर, सुवर्णमय पात्रमें अमृत, ओज ( इंद्रियशक्ति ) वीर्य ( मनशक्ति ) बल ( देहशक्ति ) रूप दूधका दोहन

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥ १२ ॥ तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथा कामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिंद्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छंदोमयं शुचि ॥ १४ ॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इंद्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुराऽसवम् ॥ १६ ॥ गंधर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥ वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गांधर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ॥ आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥

किया ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने दैत्यश्रेष्ठ प्रल्हादको वत्स बनाकर, लोहपात्रमें सुरा ( मदिरा ) आसव यानी ताडादिकोंका मद्यरूप दूध दुहा ॥ १६ ॥ गंधर्व व अप्सराओंने पद्ममय पात्रमें विश्वावसुको वत्स बनाकर, वाक्माधुरी और सुंदरतासहित गानविद्यारूप दूध दुहा ॥ १७ ॥ श्राद्धके अधिष्ठाता पित्रीश्वरोंने अर्यमा नाम पितृको वत्स बनाकर, हे महाभागो ! कच्चे पात्रमें

१ केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः ॥ वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ १ ॥ अर्थ- मनुष्यको न तो कंकण न चन्द्रकी सदृश हार, न स्नान, न लेपन, न फूल, न सुभूषित बार, भूषित करते हैं किन्तु एक वाणीही पुरुषको शोभित करती है. जो संस्कृता यानी मधुरादिभाषणयुक्त धारण की जाती है ॥ १ ॥

पूर्वजोंके बतायेहुए उन्हीं उपायोंको जो श्रद्धायुक्त होकर, अच्छी तरह अनुष्ठान करे, वह अर्वाचीन मनुष्य उन उपेयोंको यानी उपायसे प्राप्त होनेयोग्य पदार्थोंको विना परिश्रम प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥ जो मूर्ख उन उपायोंका अनादर करके, अन्यरीतिसे स्वयं अपनी बुद्धिसे उपाय करे, उसके उपाय बारंबार आरंभ करनेपरभी सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥ हे राजा ! ब्रह्माजीने जो अन्न प्रथम पैदा किया था, वह वेनआदि व्रतहीन दुष्ट राजा लोगोंके भोगमें आता मैंने देखा ॥ ६ ॥ और लोकके पालक आप लोकोंने न तौ मेरा पालन किया और न आदर किया और सब लोठा चोरप्राय होगये. तब यज्ञके वास्ते यह अन्न मैं निगल गयी ॥ ७॥

तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ॥ अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान्विदतेऽञ्जसा ॥ ४॥ताननादृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयम् ॥ तस्य व्यभिचरंत्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते ॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालितानादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ॥ चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ॥ तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वांछते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥

वे लतायें अब बहुत काल व्यतीत होनेसे मेरे शरीरमें जीर्ण हो गयीं. सो जो उपाय पूर्वजोंने बताया है; उसी उपायसे आप मुझसे ले लेओ ॥ ८ ॥ हे वीर ! एक तौ वत्स बनाओ और दूसरा वैसाही योग्य पात्र कल्पन करो. कि-जिससे मैं आपपर वत्सल होकर, दुग्धमय सर्व कामना पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे महाबाहु ! हे भूतभावन ! जो आप जीवोंके वांछित व बलप्रद अन्न चाहते हो तौ, एक दुहनेवाला नियत करो ॥ १० ॥ हे राजा ! आपका कल्याण होगा, आप मुझे बराबर कर दो. कि-जिससे

१ उद्योगः खलु कर्तव्यो फलं मार्जारवद्भवेत् ॥ जन्मप्रभृति गौर्नास्ति पयः पिवति नित्यशः ॥ १ ॥ अर्थ- देखिये उद्योग जरूर करना चाहिये उससे बिलारकी तरह फल पाता है. जैसे बिलारके जन्मसे ले, गाय कभी नहीं रही तथापि दूध नित्य पीता है. तो शिर्फ उद्योग के बलसे ॥

त्मक इस अपने सरजे हुए जगत्को अच्छे प्रकारसे स्थापित करनेके लिये वराहअवतार धारण करके पातालमेंसे मेरा उद्धार किया था ॥ ३४ ॥ और जलके ऊपर नावरूपसे स्थित आधारभूत मुझपर रहीहुई प्रजाओंकी रक्षा करनेकी इच्छासे जो आज पृथुरूप प्रगट हुए हो. वेही पृथ्वीके धारण करनेवाले आप केवल दूधके निमित्त उग्र बाण चढ़ाकर, मुझे मारना चाहते हो. अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है!! ॥ ३५ ॥ जिनका चित्तपथ भगवान्‌की गुणसर्गरूप मायासे मोहित है, उन मेरे जैसे जनोंके ईश्वरके भक्तलोगोंकी चेष्टाभी जब जाननेमें नहीं आ सकती, तब फिर परमेश्वरकी चेष्टा जाननेकी तो कौन सामर्थ्य? अतएव परमेश्वरकी नाई जितेंद्रिय पुरुषोंके यश करनेवाले उसके भक्त लोगोंकोभी मेरा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ इति श्री-

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥ नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ॥ न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुविजये धरित्रीनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्याऽऽत्मानमात्मना ॥ १ ॥ सन्नियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥ २ ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥ ३ ॥

भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ अठारहवें अध्यायमें पृथ्वीके कहनेसे वत्सपात्रआदि बदलकर, पृथुआदि सब लोगोंनें अपना अपना दूध दुहा; यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– क्रोधसे फड़क रहा है अधर जिसका ऐसे, पृथुको स्तुति करके, भयभीत पृथ्वीने बुद्धिसे मनको स्थिर करके, फिर कहा कि– ॥ १ ॥ हे पृथु! आप क्रोधको शांत करो और जो मैं कहती हूं वह सुनो, जो पंडित होता है. वह सब ठौरसे भ्रमरकी नाई सार सार ले लेता है ॥ २ ॥ इसलोकमें और परलोकमें तत्त्ववेत्ता मुनिलोगोंने मनुष्योंके कल्याणकी सिद्धिके लिये, जो खेतीबारी और अग्निहोत्रआदि उपाय बताये हैं. और उन्होंने अनुष्ठान किये हैं ॥ ३ ॥

वचन कहा ॥ २८ ॥ पृथ्वीने कहा कि-मायाकरके अनेक प्रकारकी शरीररचना करनेवाले, गुणरूपतासे प्रतीयमान, परपुरुष आपको मैं प्रणाम करती हूं. अपने स्वरूपके अनुभवसे जिन्होंने द्रव्य, क्रिया और कारकसंबंधी अहंकार और अहंकारनिमित्तक रागद्वेषादि ऊर्मियोंका त्याग कर दिया है. उन्हें मैं प्रणाम करती हूं ॥ २९ ॥ जिस विधाताने जीवोंके रहनेके निमित्त मेरा निर्माण किया है, कि-जिस मुझपर जारज स्वेदज, अंडज उद्भिज्ज ये चारहू प्रकारके जीव रहते हैं. वही स्वाधीन परमेश्वर शस्त्र उठाकर, आज मुझे मारनेको उपस्थित हुआ है. अब मैं इस परमात्माके सिवाय दूसरे किसके शरण जाऊं ? ॥ ३० ॥ जिस परमेश्वरने जीवविषयक

धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥ येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ॥ स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥ य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययाऽऽत्माश्रययाऽवितर्क्यया ॥ तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥ ३१ ॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ॥ तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेंद्रियांतःकरणात्मकं विभो ॥ संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराऽम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥

अपनी अवितर्क्य मायाकरके सृष्टिके आदिमें इस चराचर जगतको पैदा किया और जो अभी अपनी उसी मायासे जगतकी रक्षा करनेको उद्यत हुआ है, वह धर्मपर परमेश्वर मुझे किस प्रकार मारना चाहता है ? ॥ ३१ ॥ सच है कि-परमेश्वरकी दुर्जय मायासे विक्षिप्तचित्त लोग परमेश्वरकी चेष्टाको नहीं जान सकते, कि-जिस स्वतः एक होनेपरभी मायासे अनेकरूप व स्वतंत्र परमेश्वरने यह विश्व बनाया. और ब्रह्माद्वाराभी चराचर जगत्को पैदा करवाया है ॥ ३२ ॥ जो परमेश्वर, महाभूत, इंद्रियां, देवता, बुद्धि व अहंकाररूप अपनी शक्तियोंसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करता है, उस भली भांति उत्कट व निरुद्ध शक्तिवाले व वेधा परपुरुषको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ३३ ॥ हे विभु ! हे अज ! उन्हीं आपने, महाभूत, इंद्रियां व अंतःकरणा-

दूसरा, जिस मुझपर यह सर्व जगत् रहा है ऐसी दृढ नावरूप मुझे आप विदार दोगे तौ, फिर इस प्रजाको और अपने शरीरको जलपर कैसे धारण करोगे? ॥ २१ ॥ पृथुने कहा कि–हे पृथ्वी! तूने मेरी आज्ञा नहीं मानी. इस लिये तुझे तौ मैं मारही डारूंगा, क्योंकि तू यज्ञमें अपना भाग तौ ले लेती है. और धान्य आदि द्रव्य पीछा नहीं देती ॥ २२ ॥ देख! जो गौ प्रतिदिन घास खाती है. और दूध नहीं देती, तौ उस दुष्ट गौको अवश्य दंड मिलता है. वैसे यहां तुझे दंड देना अनुचित नहीं है किंतु उचितही है ॥ २३ ॥ तुझ मंदबुद्धिने मुझे कुछभी न गिनकर, ब्रह्माजीके प्रथम रचेहुए सब औषधियोंके बीज अपने शरीरके अंदर रोंक

मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमंभसि धास्यसि ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ भागं बर्हिषि या वृंक्ते न तनोति च नो वसु ॥ २२ ॥ यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां दंडो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥ त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा ॥ न मुंचस्याऽऽत्मरुद्धानि मामवज्ञाय मंदधीः ॥ २४ ॥ अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ २६ ॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतांतमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्रांजलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥ २८ ॥

रक्खे हैं. सो तू वे बीज नहीं देती ॥ २४ ॥ अतएव बिचारी यह प्रजा भूखसे व्याप्त होकर, अतिपीड़ित होगयी है. सो अब मेरे बाणोंसे तुझे विदारकर, तेरी मेदसे इनके दुःखको शांत करूंगा ॥ २५ ॥ स्त्री, पुरुष या नपुंसक कोईभी हो. जो नीच अपनी संभावना करता है. यानी अहमेव रखता है. जीवोंपर क्रूर दृष्टि रखता है. उसका वध राजाओंके लिये वध नहीं है ॥ २६ ॥ कपट करके गौरूप, तुझ खोटे मदवाली गर्विष्ठ पृथ्वीका मेरे बाणोंसे तिल तिल जितने टुकड़े करके, अपने योगके प्रभावसे इस प्रजाको मैं धारण करूंगा ॥ २७ ॥ कालके समान इस प्रकार क्रोधमयी मूर्ति धारण करते पृथुको प्रणाम कर, हाथ जोड़, कांपती हुई पृथ्वीने यह

पृथ्वी सब औषधिके बीजको निगल गयी. ऐसा अपनी बुद्धिसे निश्चय कर, धनुष हाथमें ले, जैसे क्रोध करके महादेवने त्रिपुरको बेधनेके लिये बाण चढ़ाया था, वैसे पृथ्वीपर क्रोध करके धनुषमें शरसंधान किया ॥ १३ ॥ शस्त्र उठाये उस पृथुको देखकर, पृथ्वी कांपने लगी. और गौका रूप धारण करके, जैसे व्याधके आगे हरिणी भागती है, वैसे भयभीत होकर, भागने लगी ॥ १४ ॥ अत्यंत अरुण हैं नेत्र जिसके ऐसा, वह पृथु अतिकुपित होकर, जहां जहां वह पृथ्वी भागकर, गयी. वहीं धनुषमें शरका संधान किये उसके पीछे दौड़ा गया ॥ १५ ॥ वह देवी पृथ्वी दिशा, कोन, भूलोक, स्वर्गलोक, उनके बी-

इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ॥ संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥ १३ ॥ प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४ ॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि संधाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥ सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चांतरं तयोः ॥ धावंती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविंदत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७ ॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ॥ त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ॥ अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥ १९ ॥ प्रहरंति न वै स्त्रीषु कृतागःस्वपि जंतवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥ २० ॥

चका अंतरिक्ष, जहां जहां भागकर, गयी. वहीं उसने उसे शस्त्र उठाये पीछे आता देखा ॥ १६ ॥ जैसे प्रजाको मृत्युसे बचानेवाला कोई नहीं है. वैसे जब पृथ्वीको पृथुसे बचानेवाला लोकमें कहीं शरण न मिला. तब संतप्तहृदयसे उद्विग्न होकर, पीछी लौटी ॥ १७ ॥ और महाभाग पृथुसे कहने लगी, कि–'हे धर्मज्ञ! शरणागतवत्सल! आप जीवोंकी रक्षाके लिये उपस्थित हुए हो तौ मेरीभी रक्षा करो ॥ १८ ॥ आप निरपराधिनी और दीन मुझको क्यों मारना चाहते हो? जो आप धर्मज्ञ समझे जाते हो. वे मुझ अबलाको कैसे मारोगे? ॥ १९ ॥ जो स्त्रियां अपराधभी करें. तथापि साधारण लोकभी स्त्रियोंपर प्रहार नहीं करते सो हे राजा! आपसे करुण और दीनवत्सल पुरुष स्त्रियोंपर प्रहार न करें इसमें तौ कहनाही क्या? ॥ २० ॥

कथाके आश्रित पुण्यकारी वश हो, यह आपका और अधोक्षज भगवान्का भक्त जो मैं हूं, उसके तईं आप वर्णन करो कि–जिस पृथुने वेनका पुत्र होकर, इस पृथ्वीका दोहन किया॥ ६ ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि–वासुदेव भगवान्की कथाके लिये इसप्रकार विदुरजीने प्रेरणा की. तब उनकी प्रशंसा कर, प्रसन्नचित्त होकर, मैत्रेयजीने पीछा कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–हे विदुर ! जब ब्राह्मणोंने पृथुका राज्याभिषेक किया. और प्रजाका पालक बनाया. तब सब धरातल अन्नहीन हो गया. और प्रजा सब भूखके मारे दुबली हो गयी. तो अपने पतिके निकट जाकर, बोली कि– ॥ ९ ॥ 'हे राजन् ! जैसे कोटरस्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं. वैसे हम जठरानलसे जल रहे

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥८॥ मैत्रेय उवाच॥यदाभिषिक्तः पृथुरंग विप्रैरामंत्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥ वयं राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेवदेव॥ यावन्न नंक्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥ १२ ॥

हैं. और ब्राह्मणोंने हमको वृत्ति देनेवाला आपको हमारा नाथ बनाया है. इसलिये शरण देनेवाले आपके आज हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ १० हे राजाओंके राजा ! हम भूंखन मरते हैं. सो हमारी रक्षाके निमित्त आप ऐसा उपाय करो कि– जिससे हमको अन्न मिल जाय, वहांभी इतनी जल्दी करो कि–जबतक हम अन्नबिना मर न जांय; क्योंकि हमारे मरे पीछे वह अन्न किसकामका ? आपको यह उपाय करनाही चाहिये; क्योंकि आप जीविकाके पति और लोकोंके पालक हो' ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–प्रजाओंका करुण विलाप सुनकर, हे विदुर ! पृथुने बहुत देरतक विचार किया. निदान उस दुर्भिक्षके निमित्तको जान लिया॥ १२ ॥

१ चौ० तृषित वारिबिनु जिन तनु त्यागा ॥ मुए करहि का सुधातड़ागा ॥

तहां अपने प्रख्यात पराक्रमसंबंधी उन उन प्रबंधोंको श्रवण करता ॥ २६ ॥ सब दिशाओंको जीत, अपने प्रभावसे लोकोंके शल्य ( दुःख ). को उखेड़कर देवता व दैत्यपतियोंको अपने महानुभावके गान करते पृथ्वीका पति होगा. और कहींभी इसकी आज्ञा पीछी नहीं फिरेगी ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सत्रहवें अध्यायमें लोगोंकी क्षुधा शांत करनेके लिये पृथुने बीज निगल जानेके हेतु पृथ्वीके बधका उद्योग किया. जिससे डरी हुई पृथ्वीने स्तुति की यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इस प्रकार उस पृथु भगवान्‌की गुण व

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेंद्रैरुपगीयमान महानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छंदयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौरान्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥ २ ॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥ ५ ॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥ ६ ॥

कर्मोंसे प्रख्याति करी. तब उनका पीछा सत्कार व अभिनंदन करके मनोकामना पूर्ण करके, उन्हें प्रसन्न किया ॥ १ ॥ और ब्राह्मणआदि चारों वर्ण, नौकर, मंत्री, पुरोहित, नगरके नर नारी, देशके लोग कारीगरलोग, और प्रजा इन सबका सत्कार किया ॥ २ ॥ विदुरजीने कहा कि-अनेक रूपवाली पृथ्वीने गौका स्वरूप क्यों धारण किया ? और पृथुने जो उसका दोहन किया वहां वत्स कौन हुआ ? और पात्र क्या था ? ॥ ३ ॥ और स्वभावसे विषम पृथ्वीको इसने बराबर किस प्रकारसे की ? और उसके यज्ञके योग्य घोड़ेको इंद्र क्यों ले गया ? ॥ ४ ॥ हेब्रह्मन् ! ब्रह्मवेत्तानमें उत्तम भगवान् सनत्कुमारसे विज्ञानसहित ज्ञानको प्राप्त होकर, वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ? ॥ ५ ॥ प्रभु श्रीकृष्ण भगवान्‌का औरभी जो कुछ पुण्य कीर्ति पृथुकी

लासे प्रगट हूआ है. कि-जिसमें प्रतीत होतेहुएभी इस अविद्यारचित नानाभावको पंडितलोग निरर्थक देखते हैं ॥ १९ ॥ यह राजाधिराज जय करनेवाले रथपर बैठ, हाथमें धनुष ले, उदयाचलपर्यंत सब भूमंडलको जैसे सूर्य प्रदक्षिणा देता है. वैसे प्रदक्षिणा देता, इकला वीर भूमंडलकी रक्षा करेगा ॥ २० ॥ जहां तहां राजा और लोकपाल सब इसको भेंटें अर्पण करेंगे. और इसकी स्त्रीयां इस आदिराजको बिष्णुकी कला मानकर, इसके यशका गान करेंगी ॥ २१ ॥ यह प्रजाको वृत्ति ( जीविका ) देनेवाला अधिराज प्रजापति गौरूप पृथ्वीका दोहन करेगा. और लीलापूर्वक अपने धनुषके अग्रसे पर्वतोंको तोड़कर, सब पृथ्वी-

अयं भुवो मंडलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथाऽर्कः ॥ २० ॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यंति सलोकपालाः ॥ मंस्यंत एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरंत्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिंदन्समां गामकरोद्यथेंद्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसंतो लांगूलमुद्यम्य यथा मृगेंद्रः ॥ २३ ॥ एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहारषीद्यस्य हयं पुरंदरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४ ॥ एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवंतमेकम् ॥ आराध्य भक्त्या लभताऽमलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदंति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥

को जैसे इंद्र बराबर कर देता है, वैसे बराबर करेगा ॥ २२ ॥ जब यह अपने आजगव धनुषका टंकार करके, युद्धके बीच असह्य जैसे हो वैसे, पृथ्वीपर जैसे पुच्छ उठाकर सिंह घूमता है, वैसे घूमेगा. तब सब दिशाओंमें दुष्टमात्र सब छिप जायंगे ॥ २३ ॥ जहां सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ है. वहां यह सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा, इसके छेले यानी सौं १०० में यज्ञके प्रवृत्त होनेपर इंद्र आकर, इसका घोड़ा हरले जायगा ॥ २४ ॥ यह अपने घरके उपवनमें इकले भगवान् सनत्कुमारको पाकर, भक्तिसे उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल ज्ञानको प्राप्त होगा; कि-जिससे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ यह बड़े पराक्रमवाला पृथु जहां

न सह सकेगा ॥ ११ ॥ सब प्राणीमात्रके बाहिर और भीतरके सब कर्मोंको चार ( दूतों ) द्वारा देखता हुआ यह पृथु जैसे सब जीवोंकी अध्यक्ष और आत्मभूत वायु उदासीनसी रहती है-वैसे उदासीन सा रहेगा ॥ १२ ॥ धर्मके मार्गमें यह ऐसा दृढ़ होगा, कि-शत्रुका पुत्रभी जो दंड देनेके योग्य न होगा तौ, उसे यह दंड न देगा. और अपना पुत्रभी जो दंड देनेके योग्य होगा तौ, उसे यह दंड देगा ॥ १३ ॥ इस पृथुका अखंडशासन मानसाचल पर्वत कि-जहांतक भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाश करते हैं, वहांतक बरतेगा ॥ १४ ॥ यह अपने चरित्रोंसे लोकको राजी करेगा. इसलिये प्रजा अपना मन राजी करनेसे इसे

अंतर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥ १२ ॥ नादंड्यं दंडयत्येषः सुतमात्मद्विषामपि ॥ दंडयत्यात्मजमपि दंड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥ अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते भगवानर्को यावत्तपतिगोगणैः ॥ १४ ॥ रंजयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरंजनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतः सत्यसंधो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्धइवाऽऽत्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नंदिवर्धनः ॥ मुक्तसंगप्रसंगोऽयं दंडपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यंति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥

राजा कहेंगी ॥ १५ ॥ यह राजा, दृढ़व्रत यानी नियम दृढ़ होगा अर्थात् जबतक फल न मिलेगा तबतक कर्म न समाप्त करेगा, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणोंका भक्त, वृद्ध पुरुषोंका सेवक, सब जीवोंका शरण देनेवाला, मान देनेवाला, दीनदयाल ॥ १६ ॥ परस्त्रीका माताके समान जाननेवाला, अपनी स्त्रीको अपने आधे अंगके बराबर समझनेवाला, प्रजामें पिताके समान स्नेह करनेवाला, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंका दास ॥ १७ ॥ देहधारियोंको अपने आत्माके समान प्यारा, सुहृदोंको आनंद बढ़ानेवाला, निःसंग पुरुषोंकी संगतिवाला, दुष्टोंको दंड देनेवाला होवेगा ॥ १८ ॥ यह तौ साक्षात् त्रिलोकीनाथ, निर्विकार, आत्मरूप, भगवान् अपनी क-

धर्मकी मर्यादाकी रक्षाके निमित्त धर्ममर्यादाके तोड़नेवालोंको दंड देवेगा ॥ ४ ॥ यह इकट्ठा अपने शरीरमें समय समयपर दोनों लोकोंका हित जैसे हो, वैसे सब लोकपालोंके देहोंको पालन, पोषण और अनुरंजनादि कार्यके अनुसार धारण करेगा ॥ ५ ॥ कर लेनेके समय यह धन लेगा. दुर्भिक्षआदि समयमें यह पीछा धन देगा. यह विभु सूर्यके समान सब प्राणीनपर समदृष्टि रहकर, प्रकाश करेगा ॥ ६ ॥ जैसे पृथ्वी सर्व सहन करती है, वैसे यह दयालु पृथु पृथ्वीकी वृत्ति धारण करके आर्तजन जो ऊपर आपड़ेंगे, तौभी उनके अपराधको सहन करेगा ॥ ७ ॥ जब इंद्र वर्षा नहीं करेगा. तब यह राजारूप हरि



एष वै लोकपालानां विभर्त्येकस्तनौ तनूः ॥ काले काले यथा भागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुंचति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥ ६ ॥ तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ॥ भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ॥ कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यंजसेंद्रवत् ॥ ८ ॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥ अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गंभीरवेधा उपगुप्तवित्तः ॥ अनंतमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥ १० ॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥

विनाही परिश्रम इंद्रके समान वर्षा करके संकटमें पड़ीहुई प्रजाकी रक्षा करेगा ॥ ८ ॥ जैसे चंद्रमा प्रजाको तृप्त करता है. वैसे यह अपने अनुरागसहित दृष्टिवाले और उज्वल मंदहास्य करके सुंदर मुखचंद्रसे जगत्‌को तृप्त करेगा ॥ ९ ॥ जैसे वरुणके सर्वकार्य गुप्त हैं. वैसे यह पृथु सर्वप्रकारसे संयतमूर्ति होगा. यानी इसके जाने आनेके मार्गकी किसीको खबर न पड़ेगी. और न परिणामके पहले इसके किसी कामकी खबर पड़ेगी. न इसके गंभीर अभिप्रायको कोई जान सकेगा. और इसका धन बड़ा गुप्त रहेगा. और यह अपार महिमावाले गुणोंका धाम होगा ॥ १० ॥ वेनरूप अरणि यानी अग्निमंथनकाष्ठसे प्रगट हुए इस पृथुरूप अग्निका शत्रु कोईभी तिरस्कार न कर सकेगा. और समीपमें रहने परभी दूर बैठा हो, वैसे न तो कोई शत्रु मनसेभी इसे प्राप्त हो सकेगा. और

मुझमें होंगे, इस बातसे वंचित होनेके कारण लोग मुझे हंसेंगे ॥२४॥ जो समर्थलोग लज्जावान् और परमउदार हैं वे, जगत्में अपनी सुख्याति होनेपरभी अपनी स्तुतिकी जैसे ब्रह्मवध आदि पुरुषार्थकी निंदा करते हैं, वैसे निंदाही करते हैं ॥ २५ ॥ हे सूत! हम तो अबतक लोकमें श्रेष्ठ कर्मकरके प्रसिद्ध नहीं हुए हैं. तो फिर मूर्खकी नाईं अपनी स्तुति कैसे करवावें ?॥२६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें सब लोकपालोंने जिनका सत्कार किया है ऐसे, रानीसहित पृथुकी मुनिलोगोंके कहनेसे सूतआदि स्तुतिपाठकोंने

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्संत्यपि विश्रुताः ॥ ह्रीमंतः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुचरिते पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥ नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ॥ वेनांगजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥ २ ॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलाऽवतारस्य कथाऽमृतादृताः ॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥ ३ ॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपंथिनाम् ॥ ४ ॥

स्तुति की. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–राजा तो इसतरह कहता रहा. और मुनिलोगोंके कहनेसे स्तुतिपाठक उसकी वाणीरूप अमृतके सेवनसे प्रसन्नचित्त होकर, स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ सूत मागध, बंदीजन बोले कि–जो आप साक्षात् परमेश्वर अपनी मायासे अवतरे हो, उन वेनके अंगसे प्रगट हुए आपके चरित्रोंका वर्णन करनेमें ब्रह्मादिकोंकीभी बुद्धियां भ्रमित हो जाती हैं तो, फिर आपकी महिमाका वर्णन करनेमें हमारी कौन सामर्थ्य ?॥ २ ॥ तथापि उदारकीर्ति और हरि भगवान्के कलावतार पृथुमूर्ति आपके कथामृतमें सादर होकर, मुनि लोगोंकी प्रेरणासे जैसा इन्होंने योगबलसे हमारे हृदयमें प्रकाश किया है. उसके अनुसार आपके श्लाघनीय चरित्रोंका हम वर्णन करेंगे ॥ ३ ॥ यह धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ लोकको धर्ममें चलावेगा. और

धनुष दिया. सूर्यने किरणमय बाण दिये, पृथ्वीने योगमय पादुका दीनी और स्वर्ग नित्यप्रति पुष्पोंका हार देता रहा ॥ १८ ॥ आकाशमें विचरनेवाले खेचरलोगोंने नाट्य, सुंदर गान, बाजे और अंतर्धान होनेकी विद्या दी. ऋषियोंने सत्य आशीर्वाद दिये, समुद्रने अपना पुत्र शंख दिया ॥ १९ ॥ समुद्र, पर्वत व नदियोंने उस महात्माको रथका मार्ग दिया, सूत, मागध व बंदीजन उसकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उन्हें स्तुति करनेको उपस्थित हुए जानकर, महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघकीसी गंभीर वाणीसे हंसते हंसते यह वचन कहा ॥ २१ ॥ पृथु बोला कि-हे सूत ! हे मागध ! हे सौम्य बंदीजनो ! जगत्में जिसके गुण विदित होते हैं.

नाट्यं सुगीतं वादित्रमंतर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शंखमात्मजम् ॥ १९ ॥ सिंधवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो बंदी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ भो सूत हे मागध सौम्य वंदिँल्लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ॥ २२ ॥ तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयंति सभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कस्तावकैः स्तावयतेऽसतोपि ॥ तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४ ॥

उसकी स्तुति हुआ करती है तो, अभी तुम मेरी किस आधारसे स्तुति करते हो ? तुम्हारी वाणी मेरे विषे मिथ्या न होनी चाहिये. हे सुंदरवाणीवाले स्तुतिपाठको ! इसलिये कालांतरमें जब हमारे गुण विख्यात हो जांय तब ॥ २२ ॥ तुम भले हमारे यशकी अच्छीतरह प्रशंसा करना. यह तुम नहीं कहसक्ते कि-हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करते हैं; क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्के गुणानुवादरूप कार्य विद्यमान होते सभ्यलोग ऐसे निंद्य, आधुनिककी स्तुति करनेके विषे प्रेरणा करें नहीं ॥ २३ ॥ गुणोंकी संभावनासे हम आपकी स्तुति करते हैं. ऐसाभी मत कहो; क्योंकि जो महत्पुरुषोंके गुण आपमें संपादन कर सकता है. वहभी विद्यमान नहीं ऐसे गुणोंकी संभावनामात्रसे कौन स्तुति करवावे ? वह कुमति इस बातको नहीं जानता कि-ये गुण

कलासे प्रगट हुआ है; क्योंकि जिसके हाथसे दूसरी रेखाओंसे नहीं मिलाहुआ रेखाका चक्र होवे. उसे परमेश्वरका अंश समझना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकका आरंभ किया. और सब लोगोंने सब ठौरसे ला लाकर, इसके लिये अभिषेककी सामग्री प्राप्त करी ॥ ११ ॥ नदियां, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, गायें, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी और सब प्राणीमात्रने ला लाकर भेंटें उपस्थित करीं ॥ १२ ॥ वह महाराज अभिषिक हो, सुथरे वस्त्र पहन, अच्छीतरह अलंकार धारण कर, अलंकार धारण की हुई अपनी रानी अर्चिके साथ मानों दूसरा अग्नि हो, वैसे देदीप्यमान दीखने लगा ॥ १३ ॥ हे विदुर ! उसके लिये

पादयोररविंदं च तं वै मेने हरेः कलाम् ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥ ११ ॥ सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥ तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ॥ इंद्रः किरीटमुत्कृष्टं दंडं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥ दशचंद्रमसिं रुद्रः शतचंद्रं तथांऽबिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८ ॥

कुबेरने तो कंचनका उत्तम आसन ला अर्पण किया. और वरुणने जल जिसमेंसे टपकता है ऐसा, चंद्रमाकीसी कांतिवाला छत्र अर्पण किया ॥ १४ ॥ पवनने दो चमर अर्पण किये. धर्मने कीर्तिमयी माला अर्पण की. इंद्रने उत्तम किरीट अर्पण किया. और यमराजने संयमन नाम दंड दिया ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया. सरस्वतीने उत्तम हार दिया. हरि भगवान्‌ने सुदर्शन नाम चक्र दिया और लक्ष्मीजीने अखूट लक्ष्मी दी ॥ १६ ॥ महादेवने दशचंद्र खड्ग और पार्वतीने शतचंद्र ढाल दी. चंद्रमाने अमृतमय घोड़े दिये. और त्वष्टाने अत्यंत सुंदर रथ दिया ॥ १७ ॥ अग्निने अज ( बकड़े ) और गौके सींगोंसे बना हुआ

कहा कि- उस अपुत्र राजाकी फिर उन मुनि लोगोंने भुजाका मथन किया. तो उसमेंसे एक मिथुन ( जोड़ा ) पैदा हुआ ॥ १ ॥ उस मिथुनको प्रगट हुआ देख, वे ब्रह्मवादी ऋषि उसे भगवत्कला जानकर, बहुत प्रसन्न हुए. और बोले ॥ २ ॥ ऋषियोंने कहा कि-यह पुरुष तौ लोककी रक्षाके निमित्त विष्णु भगवान्‌की कला प्रगट हुआ है. और यह कन्या भगवान्‌के सदा साथ रहनेवाली लक्ष्मीकी कला प्रगट हुई है ॥३॥ जो यह पुरुष है. सो तौ राजाओंमें प्रथम व बड़ा यशस्वी महाराज पृथुनामसे विख्यात होगा और यशका बिस्तार करेगा ॥४॥ और यह सुंदर दांतोंवाली वरारोहा अर्चि नाम रानी गुण व आभूषणोंको भूषित करती अपने पति पृथु-

तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालनी ॥ इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥ अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुंधती ॥ ५ ॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसंति स्म तं विप्रा गंधर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यंति स्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥ शंखतूर्यमृदंगाद्या नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितॄणां गणाः ॥ ८ ॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥

की सेवा करेगी ॥५॥ यह तौ लोककी रक्षा करनेकी इच्छासे साक्षात् विष्णुका अंश प्रगट हुआ है और यह भगवान्‌के सदा संग रहनेवाली भगवत्परायण लक्ष्मी भगवान्‌के साथ प्रगट हुई है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-ब्राह्मण लगे उनकी प्रशंसा करने व उत्तम गंधर्वलोग गाने, सिद्ध लोग लगे फूल बरसाने. और अप्सरायें लगीं नृत्य करने ॥ ७ ॥ आकाशमें शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभि आदि वाद्य लगे बजने, वहां सब देवता, ऋषि और पितृगण ॥ ८ ॥ व जगद्गुरु देव ब्रह्माजी देवतानको साथ लेकर, आये. पृथुके दाहिने हाथमें रेखात्मक चक्र और चरणोंमें कमल देखकर, ब्रह्माजीने जान लिया कि-यह हरि भगवान्‌की

नेको दोष लगेगा; क्योंकि जो ब्राह्मण समदृष्टि और शांत होनेपरभी दुखी लोगोंकी उपेक्षा करै तौ, उसका तप फूटे हुए बासनमेंसे जैसे जल झर जाता है. वैसे नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ यदपि आपन इस सब उपद्रवको शांत कर सकते हैं. तथापि अंगराजाका वंश निर्वंश न जाना चाहिये, क्योंकि इस वंशमें बड़े बड़े पराक्रमी और भगवद्भक्त राजा हुए हैं. और होवेंगे. ऐसाभी संभव है ॥ ४१ ॥ इसप्रकार निश्चय करके, वे ब्राह्मण मरेहुए वेनराजाकी साथलका मथन करने लगे. तब उसमेंसे एक नाटासा पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ यह पुरुष काकके समान कृष्णवर्ण था, इसके अंग और हाथ पैर बहुत छोटे छोटे थे,

नागस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४१ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममंथुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४२ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वांगो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्द्धजः ॥ ४३ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किंकरोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४४ ॥ तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ॥ बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥

लंबी डाढ़ी और चिपटीनाक थी, लाल नेत्र और भूरे केश थे ॥ ४३ ॥ यह पुरुष दीनकी तरह 'मुझे क्या आज्ञा है?' इस प्रकार बोला. तब हे विदुर! लोगोंने उससे कहा कि–'निषीद' (बैठ जा) इस शब्दसे उसका निषाद नाम हुआ ॥ ४४ ॥ इसके वंशके नैषाद यानी भील लोग हुए कि–जो वन और पर्वतोंमें रहा करते हैं; महाराज! वेनके शरीरमें भयंकर पाप भरा हुआ था. वही इस निषादके रूपसे बाहिर निकला. तासों उसके वंशवालोंका पुर आदिमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पंद्रहवें अध्यायमें वेनकी भुजा मथनेसे पृथुका प्रागट्य हुआ. और उसका अभिषेक व पूजा आदि हुई. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने

ला वेन, राजाके उत्तम आसनके योग्य नहीं है; क्योंकि यह निर्लज्ज होकर, यज्ञेश्वर भगवान्की निंदा करता है॥ ३२ ॥ जिन्होंने अनुग्रह करके ऐसा ऐश्वर्य दिया है, उन्हीं भगवान्की इस एक दुष्ट वेन विना दूसरा कौन निंदा करै ?॥ ३३ ॥ इसप्रकार क्रोधसे व्याप्त होकर, मारनेका निश्चय करके ब्राह्मणोंने भगवान्की निंदा करनेसे हत भयेहुए इस वेनको केवल हुंकार शब्दसे मार दिया ॥ ३४ ॥ वेनको मारकर, ब्राह्मण अपने अपने आश्रममें गये, फिर शोक करतीहुई सुनीथाने मंत्र और ओषधियोंके प्रयोगोंसे वेनका शरीर धर रक्खा ॥ ३५ ॥ एकदिन सरस्वतीके जलमें स्नान कर, अग्निमें होम करनेके पश्चात् नदीके

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३३ ॥ इत्थं व्यवसिता हंतुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिंदया ॥ ३४ ॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥ हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३६ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयंकरान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥ एवं मृशंत ऋषयो धावतां सर्वतो दिशम् ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुंपताम् ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुंपताम् ॥ ॥ ३८ ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥ चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ ३९ ॥ लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ब्राह्मणः समदृक् शांतो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभांडात्पयो यथा ॥ ४० ॥

तटपर बैठे बैठे वे मुनिलोग उत्तम वार्तालाप कर रहे थे ॥ ३६ ॥ इतनेमें जगत्को त्रास देनेवाले बड़े बड़े उत्पात होने लगे. उन्हें देखकर, मुनिलोगोंने विचार किया कि-पृथ्वीपर राजा नहीं है. इसवास्ते कदाचित् चोरलोगोंका पृथ्वीमें उपद्रव तो न हो जायगा ? ॥ ३७ ॥ इतनेमें तो लुटेरोंकी धाड़ आ पड़ी. और दौड़ादौड़ होने लगी. तिससे चारोंओर धूल उड़तीहुई उनके देखनेमें आयी राजा मरजानेसे लोकोंका धन लूटतेहुए चोरलोकोंका भारी उपद्रव मच गया तथा प्रजानमेंभी परस्पर मार कूट, चोरी और खून खराबी होने लगी. उसे देखकर, मुनिलोगोंने विचार किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदि ऐसाही चलने देवेंगे तो, अप-

परलोकमें किसी स्थलमें सुख नहीं पाते ॥२४॥ वो यज्ञपुरुष विष्णु कौन है ? कि—जिसकी स्वामीकी प्रीतिसे दूर रहनेवाले तुमलोग व्यभिचारिणी स्त्रियां जैसे जारमें प्रीति करती हैं. वैसे ऐसी दृढ भक्ति करते हो ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इंद्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य ( मेघ ), कुबेर, चंद्रमा, पृथ्वी, अग्नि और वरुण ॥ २६ ॥ ये और दूसरेभी देवता कि—जो वर और श्राप देनेमें समर्थ हैं. वे राजाके शरीरमें रहते हैं; क्योंकि राजा सर्वदेवमय है ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसलिये मत्सर छोड़कर, यज्ञादि कर्मसे केवल

को यज्ञपुरुषोनाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ २५ ॥ विष्णुर्विरिंचो गिरिश इंद्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥ २६ ॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवंति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमंगलः ॥ २९ ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पंडितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥ हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवन्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥ ३१ ॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिंदत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥

मेरा पूजन करो. और मुझे बलिदान देओ, मेरे विना दूसरा कौन पुरुष आराधन करनेके योग्य है ? ॥ ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—इसप्रकार विपरीत बुद्धिवाले और उलटेमार्ग चलनेवाले वेनको उन लोगोंने बहुत समझाया तथापि उस हतभाग्यने उनका कहना नहीं माना ॥ २९ ॥ हे विदुर ! पंडितपनका अभिमान करनेवाले इस वेन राजासे इन ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे और अपनी प्रार्थना व्यर्थ जानेसे उनको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३० ॥ इन लोगोंने विचार किया कि—स्वभावसे दुष्ट इस पापीको मारही देना चाहिये; क्योंकि जो यह जीता रहेगा तो, अवश्य सारे जगत्‌को तुर्त भस्म कर देगा ॥ ३१ ॥ यह दुष्टकर्म करनेवा-

१ आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानभंगनम् । पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रवधमुच्यते ॥ १ ॥ अर्थ—राजाओंका हुक्म टूटना और ब्राह्मणोंका मान टूटना और स्त्रियोंका अलग सोना ये विना हथियारका मारना है ऐसा नीतिमें कहा है ॥ १ ॥

राजाको इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह सुख मिलता है ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! जिसके देश और नगरमें वर्णाश्रमकी मर्यादा पालनेवाले लोक स्वधर्मसे भगवान्‌का पूजन करें. वह राजा अपने निजकी आज्ञामें रहा ऐसे जानकर लोकोंके पालक परमात्मा प्रभु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ और जगत्‌के अधिपतियोंकेभी अधिपति हरि प्रसन्न हो जांय, तब फिर कौन वस्तु मिलनी दुर्लभ है ? क्योंकि लोकपालसहित सबलोक आदरसे उसको भेटें अर्पण करते हैं ॥२०॥ महाराज ! सब लोक,देवता और यज्ञ जिनमें रहे हैं ऐसे वेदमय, द्रव्यमय और तपोमय भगवान्‌को, तुम्हारेही कल्याणके वास्ते अनेक प्रकारके यज्ञोंसे

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरंति बलिमाहृताः ॥ २० ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥२१॥ यज्ञेन युष्मद्विषयो द्विजातिभिर्वितायमानेन सुरा कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशंति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥ वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वो अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥ अवजानंत्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविन्दन्ति ते भद्रमिहलोके परत्र च ॥ २४ ॥

पूजा करते हुए अपने देशके लोगोंका तुमको अनुसरण करना चाहिये ॥ २१ ॥ हे वीर ! आपके देशमें द्विजलोग यज्ञोंसे देवतानका यजन करते हैं. तासों प्रसन्न होकर, देवता मनवांछित फल देते हैं. तासों उन देवतानका अपमान करना यह आपको योग्य नहीं है ॥२२॥ ये वचन सुनकर, वेनने कहा कि—अधर्मको धर्म करके माननेवाले तुमलोक मूर्ख हो; क्योंकि आजीविका देनेवाले पतिको छोड़कर, जारपतिकी उपासना करते हो ॥ २३ ॥ जो मूर्खलोक राजारूप ईश्वरकी अवज्ञा करते हैं. वे इस लोकमें और



१ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ॥ पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ॥ १ ॥ अर्थ—क्योंकि--मूर्खोंको उपदेश केवल कोपहीके लिये होता है शान्तिके लिये नहीं. जैसे कि--सर्पोंको दूध पिलाना केवल विष बढानेहीके लिये है ॥ १ ॥ यह नीतिमें कहा है.

पिलानेवालेके वास्तेभी अनर्थकारी होता है. ऐसे स्वभावसे दुष्ट इस सुनीथाके पुत्र वेनको प्रजाओंका राजा बनाया तो, अब यही प्रजाओंका नाश करनेकी इच्छा करता है. खैर ! आपनने इसको राजा बनाया है. इसलिये आपने तो चलकर इसे समझादें कि-जिससे आपन पापके भागी न हो जायें ॥ १० ॥ ११ ॥ आपनने जान बूझकर इस दुष्टको राजा बनाया है. सो अब आपन जाकर समझावेंगे, सो यदि समझाने परभी यह दुष्ट अपना कहना नहीं मानेगा तो, लोकोंके धिक्कारसे भस्म भये हुये इस दुष्टको आपन अपनी शक्तिसे भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ इसप्रकार निश्चय कर, क्रोधको गुप्त रखकर, वे मुनि उसके समीप गये.

निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ॥ तथाऽपि सांत्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सांत्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥ लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सांत्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुःश्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्द्धनम् ॥ १४ ॥ धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वितरत्यथानंत्यमसंगिनाम् ॥ १५ ॥ स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १७ ॥

और जाकर नीतिके वचनोंसे उसे शांत करके बोले ॥ १३ ॥ मुनिलोगोंने कहा कि-हे राजा ! आपकी जिससे आयु, बल, लक्ष्मी और कीर्ति बढ़े ऐसे, हम विनती करते हैं. सो आप सुनो ॥ १४ ॥ मन, वचन, काय और बुद्धिसे धर्मका आचरण किया जाय तो, धर्मके आचरणसे शोकरहित लोककी प्राप्ति होती है. और निष्काम लोकोंको मोक्षभी मिलता है ॥ १५ ॥ तासों प्रजाकी रक्षा करनेरूप आपका राजधर्म नष्ट न होना चाहिये, क्योंकि जिस धर्मका नाश होनेसे राजा राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥ दुष्ट अमात्य यानी कारिंदोंसे और चोरआदिसे प्रजाकी रक्षा करने और शास्त्रमर्यादके अनुसार कर लेनेसे

जैसे मूषक (चूहे) छिप जाते हैं, वैसे सब चोर मात्र छिपगये ॥ ३ ॥ राज्यासनपर विराजमान, लोकपालोंके समान अष्टविध विभूति-योंसे समृद्ध, स्तब्ध रहनेवाला और स्वयमेव अपने आत्माको उत्तम माननेवाला यह वेन महात्मा लोकोंका अपमान करने लगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार निरंकुश हाथीके समान मदांध होकर, उत्सेकयुक्त भयाहुआ और आकाश व पृथ्वीको मानों कंपाय-मान करता हो ऐसे, रथमें बैठकर, पर्यटन करने लगा ॥ ५ ॥ उस दौरेके समयमें उसने इसप्रकार भेरी बजवाकर, धर्मबंद कर-नेके वास्ते डौंडी पिटवा दी कि-हे द्विजलोको! तुम न तो होम करो, न दान देओ और न कभी यजन करो ॥ ६ ॥ इस दुष्ट

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागांस्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदांध उत्सिक्तो निरंकुश इव द्विपः ॥ पर्यटन् रथमास्थाय कंपयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥ अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥

वेनकी ऐसी कुचाल और उससे होता लोकोंको दुःख, देखकर दयाके हेतु सब ऋषि इकठे होकर, विचार करने लगे ॥ ७ ॥ मुनिलो-गोंने परस्परमें कहा कि-अहो! जब लकड़ी दोनों तर्फसे जलनी शुरू हो जाय, तब बीचमें आये हुये कीटकी जो दशा होवे, वो दशा अभी लोकोंकी हो रही है; क्योंकि एक तर्फ तौ चोरोंका भय है. और एकतर्फ यह राजाका भय है. अब यह महा-दुःख कैसे निवृत्त होय? ॥ ८ ॥ राजाविना बहुत खराबी है, इस भयसे तौ इस नालायक बेनको आपनने राजा बनाया, अब इसकी तर्फसेभी त्रास उत्पन्न हुआ है. अब इन जीवोंका भला कैसा होगा? ॥ ९ ॥ सो जैसेकि-सर्पको दूध पिलाना यह उस

में अच्छा मानता हूं क्योंकि-कुपुत्र होवे तो, मनुष्यको दुख देनेवाले घरमेंसे वैराग्य आ जाता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वैराग्ययुक्त और प्रजागरवाला अंगराजा मध्यरात्रिके समय उठकर, वेनकी माता ( सुनीथा ) को सोती छोड़कर, महासमृद्धिवाले घरमेंसे निकल गया ॥ ४७ ॥ पुरोहित, मंत्री और संबंधी आदि लोक तथा प्रजा अपने स्वामीको वैराग्यसे निकलेहुए जानकर, बड़े शोकसे विव्हल होकर, अपक्वयोगी जैसे गूढ़ परमात्माको हेरते हैं, ऐसे पृथ्वीमें ढूंढ़ने लगे ॥ ४८ ॥ हे विदुर ! राजा बहुत दूर नहीं चला गया था. तथापि उसका पता न मिलनेसे उद्यम व्यर्थ होनेके कारण इन लोकोंने पीछा नगरमें आकर,मु-

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयंतः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवंद्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यंतः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥ वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिंचन्पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥

निलोकोंकी सभामें प्रणाम करके, रुदन करते करते राजाका पता न लगनेके समाचार कहे ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ चौदहवें अध्यायमें पुत्रके त्राससे अंगराजा चला गया. तब ब्राह्मणोंने वेनको राज्य दिया. और फिर उसका अपराध देखकर, उसे मारदिया. यह कथा होगी ॥ १॥ मैत्रेयजीने कहा कि-लोकोंके कल्याणका विचार करनेवाले इन ब्रह्मवादी भृगु आदि ऋषियोंने कोईभी राजा न होनेसे मनुष्योंकी पशुके समान स्थिति देखी ॥ १ ॥ तब वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर, यदपि वेनको मंत्रीलोग राजा बनाना नहीं चाहते थे तोभी, उसका राज्याभिषेक किया ॥ २ ॥ अतीव भयंकर शिक्षाकरनेवाले वेनको राज्यासनपर आया सुनकर, सर्पके भयसे

खीर सुनीथाने खायी. जिससे उसके ऋतुकालमें गर्भाधान हुआ. और समय पूर्ण होनेपर पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ वह पुत्र बालअवस्थासेही अपनी माताका पिता मृत्यु कि- जो अधर्मके अंशसे पैदा हुआ था. उसका अनुसरण करनेसें यानी नानेरेकी रीतिपर पड़नेसे अधर्मी हुआ ॥ ३९ ॥ धनुष उठाकर, मृगया करनेके लिये वनमें विचरता यह राजकुमार पशुओंको और बिचारे दीन जनोंको मारता. तासों 'यह वेन आता है.' ऐसी लोकोंमें पुकार पड़ गयी ॥ ४० ॥ निर्दय और अतिक्रूर यह वेन क्रीड़ा करनेके स्थलमें खेलतेहुए अपने समान वय (उमर) वाले बालकोंको पशुकी भांति मार डालता ॥ ४१ ॥

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हंत्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥ आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥ ४१ ॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनंतकः ॥ ४४ ॥ कस्तं प्रजाऽपदेशं वै मोहबंधनमात्मनः ॥ पंडितो बहुमन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत् क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥

इस खल पुत्रको देखकर, राजाने उसे अनेक प्रकारसे शिक्षा दी. परंतु जब राजा अंग उसे किसी प्रकारसे समझा न सका तब वह अतिखेदित होकर, मनमें कहने लगा कि- ॥ ४२ ॥ जिन गृहस्थियोंके संतान नहीं है. उन्होंने भगवान्की पूर्ण पूजन करी है-क्योंकि उनको दुष्ट संतानके निमित्त असत्य दुःख भोगने नहीं पड़ते ॥ ४३ ॥ अपयश, बड़ा अधर्म, सब लोगांके साथ विरोध और निरवधि आधि, जिसके निमित्त होती है ॥ ४४ ॥ और जिसके वास्ते दुखदायी घरमें रहना पड़ता है. उस प्रजानामक अपने मोहबंधनको कौन पंडित पुरुष अनुकूल माने ? ॥ ४५ ॥ शोक देनेवाले सुपुत्रकी अपेक्षा कुपुत्रको

आते हैं. और न अपना अपना भाग लेते हैं. सो मैंने ऐसा क्या अपराध किया है ? वह कहो ॥ ३० ॥ सभासदोंने कहा कि-हे राजा ! इस जन्ममें तो आपका अणुमात्रभी अपराध नहीं है. परंतु पूर्वजन्मका एक पाप है कि-जिससे आप गुणवान् होनेपरभी संतानरहित हो ॥ ३१ ॥ इसलिये आप अपने तईं पुत्रवान् करनेके वास्ते प्रयत्न करो और इसी अभिलाषासे भगवान्का यजन करो कि-जिससे यज्ञभोक्ता भगवान् आपको पुत्र देवेंगे ॥ ३२ ॥ ऐसे होगा तो देवता अपने अपने भागभी ले लेंगे; क्योंकि संतानके वास्ते भगवान्का यजन करेंगे तो, उसमें भगवान्के साथ देवताभी स्वयं आ जायंगे ॥ ३३ ॥ लोकोंके जिस

सदसस्पतय ऊचुः ॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥ ३१ ॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥ तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यंति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलांबरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥ स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वांऽजलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदायुक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥

जिस बातकी कामना होती है, भगवान् उसे पूर्ण करते हैं. क्योंकि मनुष्य जैसे भावसे उनका आराधन करते हैं. उसे भगवान् वैसाही फल देते हैं ॥ ३४ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- इसप्रकार सभासदोंका वचन सुनकर, इसीबातका निश्चय कर कर, राजाके संतानके हेतु ब्राह्मणोंने विष्णुभगवान्के वास्ते पुरोडाशका हवन किया ॥ ३५ ॥ होम करतेही कंचनकी माला और निर्मल वस्त्र धरे एक पुरुष सुवर्णके पात्रमें परिपक्व खीर हाथमें लिये अग्निके कुंडमेंसे निकला ॥ ३६ ॥ अति आनंदयुक्त उदारचित्त राजाने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वह खीर उस पुरुषके हाथसे अपने हाथमें ली. फिर सूंघकर, अपनी रानीको दी ॥ ३७ ॥ पुत्र देनेवाली

साधारण रीति तो यह है कि-राजा पापी होवे तोभी, प्रजाको उसका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि-राजा अपने सामर्थ्यसे लोकपाल देवतानकी शक्ति धारण करता है॥२३॥ हे सर्वज्ञ मुनि! इस वेनका चरित्र मुझे कहो; क्योंकि यह चरित्र सुननेकी मेरी इच्छा है और मैं आपका भक्त हूं ॥ २४ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- अंगराजाने बड़ा अश्वमेध यज्ञ किया था, उसमें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने देवतानका आवाहन किया- तथापि देवता आये नहीं. तब आश्चर्ययुक्त होकर, ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि- ॥ २५ ॥ हे राजा



नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अंगोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णंति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ॥ छंदास्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥ यन्न गृह्णंति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अंगो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ॥ तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥ २९ ॥ नागच्छंत्याहुता देवा न गृह्णंति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥ ३० ॥

आप श्रद्धासे जो यज्ञके पदार्थ देते हो. उनमें कुछभी दोष नहीं है. वैसे नियम पालनेवाले हम जो मंत्र पढ़ते हैं. उनमेंभी निःसारत्त्व नहीं है. फिर आपके हवि पदार्थ (जो होमनेमें आते हैं) उन्हें देवता नहीं लेते. यह हमारी समझमें नहीं आता ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ कर्मके साक्षीरूप देवता जिससे अपने अपने भागको न लेवें. ऐसा तौ अणुमात्रभी यहां उनका अपराध हुआ हमें नहीं दीखता ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- इसप्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुनकर, अतिउदास अंग राजाने ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले, मौनव्रतको त्याग कर, वह बात सभासदोंसे पूंछी ॥ २९ ॥ अंगने कहा कि- हे सभासदो ! देवता आवाहन करनेपरभी न तौ

पुत्र हुए ॥ १३ ॥ और दोषाके प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट ये तीन पुत्र हुए. व्युष्टके पुष्करिणीनाम स्त्रीमें सर्वतेजस नाम पुत्र हुआ ॥ १४ ॥ और उसके आकूति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम मनु पुत्र हुआ. इस मनुके नड्वला नाम स्त्रीमें पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, धृतव्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि और उल्मुक ये ग्यारह पुत्र हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ उल्मुकके पुष्करिणी नाम स्त्रीमें अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय, ये छः पुत्र हुए ॥ १७ ॥ अंगके सुनीथा नाम रानीमें महादारुण वेन नाम पुत्र हुआ, कि–जिसकी दुष्टतासे वो राजा दुखी होकर, नगरसे निकल गया ॥ १८ ॥ हे विदुर ! जिनके पास वाणी-

प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वलासुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवंतमृतव्रतम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अंगं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमंगिरसं गयम् ॥ १७ ॥ सुनीथांऽगस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमंग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममंथुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥ २१ ॥ किं वांऽहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदंडमयूयुजन् ॥ दंडव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥

रूप वज्र है ऐसे, मुनिलोगोंके श्राप देनेसे राजा वेन मरगया. तब मुनि लोगोंने इस वेनके शवके दाहिने हाथका मथन किया ॥ १९ ॥ इस समय पृथ्वीपर कोई राजा नहीं था, तासों प्रजा चोरोंके दुःखके मारे महादुखी होगयी. तब वेनके हाथमेंसे नारायणके अंशरूप और प्रथम राजा पृथु पैदा हुए ॥ २० ॥ विदुरजीने कहा कि– सुशीलके निधिरूप, सज्जन, ब्राह्मणोंके सत्कार करनेवाले और महात्मा अंगराजाके ऐसा दुष्ट पुत्र क्यों हुआ ? कि–जिसके वास्ते उदास होकर, राजाको निकलना पड़ा ॥ २१ ॥ इस वेनका कौन अपराध देखकर, धर्मके ज्ञाता मुनिलोकोंने दंडधारी राजाको श्राप दिया ? ॥ २२ ॥

यज्ञपुरुष भगवान्‌काही भगवान् नारदजीने वर्णन किया होगा॥४॥ हे ब्रह्मन्! अतएव नारदजीने उनके निकट जो कुछ भगवत्‌कथासंबंधी वर्णन किया होवे. वह आप मुझसे कहो; क्योंकि भगवत्कथा सुननेकी मेरे बड़ी अभिलाषा रहा करती है ॥५॥ मैत्रेयजीने कहा कि-ध्रुवके पुत्र उत्कलने, पिता ध्रुव वनमें चला गया तब, चक्रवर्तीपनकी राजलक्ष्मी और पिताके राज्यासनको स्वीकार करना न चाहा ॥६॥ क्योंकि वह जन्मसेही शांत, संगरहित, समदृष्टि और सर्व लोकमें अपने स्वरूपको और अपने स्वरूपमें सब जगत्‌को जानता था ॥ ७ ॥ सुखरूप, सर्व क्लेशरहित, ज्ञानमय आनंदमय और मोक्षरूप परमात्मा परब्रह्मको जानता था ॥ ८ ॥ और अखंडित

यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ॥ सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशांतात्मा निःसंगः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ॥ ७ ॥ आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानंदमनुसंततम् ॥ ८ ॥ अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुंधानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडांधबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशांतार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समंत्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥

योगरूप अग्निसे उसकी सकल वासना भस्म हो गयीं थीं, तासों अपने स्वरूपसे भिन्न दूसरा कुछभी उसके देखनेमें नहीं आता था ॥ ९ ॥ महाविद्वान् और ज्वालारहित अग्निके समान विद्यमान वह उत्कल लोकोंको मार्गके बीचमें जड़, अंध, बधिर और बावला तथा मूकके समान देखनेमें आता था ॥ १० ॥ कुलके वृद्धपुरुष और मंत्रियोंने उसे जड़ और उन्मत्तके सदृश जानकर, उससे छोटे भ्रमिके पुत्र वत्सरको राज्य दिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी स्त्री स्वर्वीथिके पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इषि, ऊर्ज, वसु और जय ये छह पुत्र हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णके प्रभा और दोषा नाम दो स्त्रियां थीं. तिनमें प्रभाके प्रातर् मध्यंदिन और सायं ये तीन

होकर, भगवान्की भक्तिके साथ जो मनुष्य श्रद्धावाले पुरुषोंको यह चरित्र सुनावे, वह आप अपने स्वरूपमें संतुष्ट होनेसे सिद्धिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अज्ञानी मनुष्यको जो पुरुष भगवान्के मार्गमें अमृतरूप ज्ञानका प्रदान करै उस दयालु और दीनजनोंका उद्धार करनहारे पुरुषपर देवतालोग अनुग्रह करते हैं ॥ ५१ ॥ हे विदुर ! विख्यात और पवित्रकर्म करनेवाले ध्रुवका यह चरित्र मैंने तुमको कह सुनाया, कि-जो ध्रुव बालकअवस्थामेंही खिलौने और माताके घरको त्याग कर, भगवान्के शरण गया था ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥ ॥

श्रावयेच्छ्रद्दधानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्राऽऽत्मनाऽऽत्मानं संतुष्ट इति सिध्यति ॥ ५० ॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वाऽर्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे ध्रुवचरितंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुंठपदाधिरोहणम् ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोऽक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसोनाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासते ॥ २ ॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥

तेरहवें अध्यायमें ध्रुवके वंशमें पृथुराजाका जन्म कहनेके लिये वेनका पिता राजा अंग पुत्रकी दुष्टतासे घर छोड़कर चला गया यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि-ध्रुवको विष्णुपद मिला. यह कथा मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान्में भावके बढ़ जानेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न किया ॥ १॥ विदुरजी बोले कि-हे सुव्रत! वे प्रचेता कौन थे ? और किसके पुत्रथे ? किसके वंशमें विख्यात हुए थे ? और उन्होंने सभा कहां की थी ? ॥२॥ नारदजी कि-जिनका दर्शन देवतानके समान है. वे महावैष्णव हैं. ऐसा मैं मानता हूं; क्योंकि उन्होंने भगवान्की अर्चारूप क्रियाका प्रकार पंचरात्र ग्रंथमें कहा है ॥३॥ स्वधर्म पालनेवाले प्रचेतानसे पूजे जाते

अपनी माताकी सपत्नीके वचनरूप बाणोंसे बींधेहुए और धकधकाते हुए हृदयसे वनमें जाकर, मेरे उपदेशके अनुसार चलकर भगवान् कि- जो अजित होनेपरभी भक्तोंके गुणोंसे हार जाते हैं. उनको वश कर लिया ॥ ४२ ॥ ध्रुवको जो गति मिली है. उस गतिको पहुंचनेकी इच्छाभी दूसरे क्षत्रियोंसे अनेक वर्षोंमें की जाय तो की जाय. कि- जो ध्रुव पांच वा छः वर्षकी अवस्थामेंही थोड़े दिनोंमें भगवान्‌को प्रसन्न कर, उनके पदको प्राप्त हुआ ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-महा कीर्ति ध्रुवजीका सत्पुरुषोंका प्रिय चरित्र जो आपने मुझे पूंछा था. वह सब मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह चरित्र धन, यश, आयु, कल्याण, स्वर्ग व ध्रुवपदका

यः क्षत्रबंधुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पंचवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुंठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥ ४४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥ प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥ पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥ ४९ ॥

देनेवाला तथा परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला होनेसे मनको प्रसन्न करनेवाला और प्रशंसनीय है ॥ ४५ ॥ इस भगवत्‌के प्यारे बड़े चरित्रको वारंवार श्रद्धासे जो सुने. उसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाय, कि- जिस भक्तिसे क्लेश दूर हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ इस चरित्रके सुननेसे जो महत्त्व चाहते हैं. उन्हें उसका साधन मिल जाता है. जो इसे सुनते हैं. उनको सुशील आदि गुण प्राप्त हो जाते हैं. तेजस्विताकी इच्छावालोंको तेज मिलता है और महाशय पुरुषोंको मान मिलता है ॥ ४७ ॥ पवित्रकीर्ति ध्रुवका यह बड़ा चरित्र द्विज लोकोंकी सभामें सायंकाल और प्रातःकालमें सावधान होकर, वर्णन करना चाहिये ॥ ४८ ॥ पूर्णिमासी, अमावास्या, द्वादशी, श्रवणनक्षत्रयुक्त दिन, क्षय दिवस, व्यतीपात, संक्रांतिका दिन और आदित्यवार इन दिनोंमें निष्काम

फूल बरसाते थे. ऐसे उनसे आदर पाकर, क्रमसे उसने ग्रहोंको देखा ॥ ३४ ॥ देवमार्गसे त्रिलोकीको उल्लंघनके अनंतर वह सप्त-ऋषियोंकोभी उल्लंघकर, सबसे परे ध्रुवगतिवाले विष्णुपदको प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ जो धाम अपनी कांतिसेही सदा प्रकाशमान है. और जिसके पीछे ये तीनों लोक प्रकाशते हैं. और जीवोंपर दया नहीं रखनेवाले जिसे नहीं पा सकते हैं, किंतु निरंतर कल्याणकारी कर्म करनेवाले जिसे प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ और जिस पदको शांत, समदृष्टि, शुद्ध, सब जीवोंको राजी रखनेवाले और अच्युत भगवान्‌कोही प्रिय और बंधु माननेवाले लोग विना परिश्रम प्राप्त हुआ करते हैं, उस लोकको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥

त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥ ३५ ॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजंत एते ॥ यन्नाव्रजन्जंतुषु येऽननुग्रहा व्रजंति भद्राणि चरंति येऽनिशम् ॥ ३६ ॥ शांताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरंजनाः ॥ यांत्यंजसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबांधवाः ॥ ३७ ॥ इत्युत्तानपदःपुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ ३८ ॥ गंभीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥ महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदन् श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगंतुं प्रभवंति किं नृपाः ॥ ४१ ॥ यः पंचवर्षो गुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥

इसप्रकार उत्तानपादका पुत्र ध्रुव श्रीकृष्णचंद्रके परायण होनेसे त्रिलोकीका निर्मल मुकुटमणि बन गया ॥ ३८ ॥ हे विदुर! गंभीर वेगवाला यह ज्योतिश्चक्र जिसमें लगाहुआ मेढ़ी ( कील )में लगेहुए बैलोंके समान आलसरहित होकर, भ्रमण करता है. उस पदको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ इसकी महिमा देखकर, भगवान् नारदमुनिने वीणा बजाते प्रचेतानके यज्ञमें जाकर, तीन श्लोकोंसे ध्रुवजीकी कीर्ति गाई ॥ ४० ॥ नारदजीने कहा कि–पतिव्रता सुनीतिके पुत्र ध्रुवको तपके प्रभावसे जो गति मिली. उस गतिको ब्रह्मर्षि लोग अनेक उपाय शोचनेपरभी नहीं पा सकते. तब राजाओंकी तो बातही कौन? ॥ ४१ ॥ जिस ध्रुवने पांचवर्षकी अवस्थामें

णि भगवान्ने भेजा है. सो तुम इसपर चढ़ो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–उरुक्रम भगवान्के प्रिय ध्रुवने वैकुंठ भगवान्के प्रधान पार्षदोंकी अमृतस्रावी (अमृत टपकाती) वाणी सुन, स्नान कर, नित्यकृत्यसे पहुंच, मांगलिक अलंकार धारण कर, मुनिलोगोंको प्रणाम कर, उनसे आशीर्वाद ले ॥ २८ ॥ उस उत्तम विमानकी परिक्रमा कर, पूजन करनेके अनंतर, पार्षदोंको प्रणाम कर, प्रकाश बहुल स्वरूपको धारण करके, विमानपर चढ़नेका विचार किया ॥ २९ ॥ उस समय मृत्युने आकर, प्रणाम किया. और कहा कि–महाराज ! मुझे अंगीकार करो. तब ध्रुवने कहा कि–तू आया, यह बहुत अच्छा

मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुंठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतां वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमंगलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवंद्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥ २९ ॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शांतकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुंदुभयो नेदुर्मृदंगपणवादयः ॥ गंधर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥ ३२ ॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥

हुआ. पर तू क्षणभर बैठ जा. ऐसे कह, वहां उसे बिठलाय, उस मृत्युके शिरपर पांव रखकर, मृत्युके देखते वह अतिविचित्र विमानपर चढ़ा ॥ ३० ॥ उस समय दुंदुभि मृदंग, ढोल आदि अनेक प्रकारके लगे वाद्य बजने. मुख्य मुख्य गंधर्वलोग गाने, लगी फूलोंकी वर्षा होने ॥ ३१ ॥ जब वह स्वर्ग लोकमें जाने लगा. तब उसने अपनी माता सुनीतिका स्मरण किया कि–विचारी अबला मेरी माताको छोड़कर, अगम्य स्वर्गको मैं जाऊंगा ? ॥ ३२ ॥ देवोत्तम सुनंद नंदने उसका अभिप्राय जानकर, विमानमें बैठी आगे जाती देवी सुनीतिको दिखाया ॥ ३३ ॥ जहां तहां मार्गमें विमानोंमें बैठे हुए देवता इसकी प्रशंसा करते

श्यामवर्ण, किशोर अवस्थावाले, अरुण कमलसे नेत्रोंसे शोभायमान, सुथरे वस्त्र पहने, किरीट, हार, अंगद ( बजुल्ला ) व सुंदर कुंडल लसाये, गदा हाथमें लिये खड़े थे ॥ २० ॥ उन्हें भगवान्के पार्षद जानकर, वह झट उठ खड़ा हुआ. और संभ्रमके हेतु पूजाका क्रम भूल जानेसे भगवान्के प्रधान पार्षद जानकर भगवान्के नामका उच्चारण करता करजोड़े नमस्कार करने लगा ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्के चरणोंमें चित्त लगा रहनेसे विनयके कारण गर्दन नीची किये, कर जोड़े खड़े ध्रुवके समीप जाकर मंद मंद मुसक्याते भगवान्के परम संमत सुनंद और नंद नाम पार्षदोंने कहा ॥ २२ ॥ सुनंद नंद बोले कि–हे राजा ! तेरा भली-

विज्ञाय तावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहतांजलिः ॥ २१ ॥ तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं ॥ बद्धांजलिं प्रश्रयनम्रकंधरम् ॥ सुनंदनंदावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥ २२ ॥ सुनंदनंदावूचतुः ॥ भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पंचवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चंद्रदिवाकरादयोग्रहर्क्षताराः परियंति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यंग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वंद्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उदस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥

भांति भला होगा. जो हम कहते हैं वह हमारा वचन सावधान होकर, सुनो. तुमने पांच वर्षकी अवस्थामें तप करके, जिन भगवान्को प्रसन्न किया है, उन सकलजगतके पालक शार्ङ्गधनुष धारण करनहारे हरिके हम दोनों पार्षद हैं. हम आपको भगवद्धाम ले जानेके वास्ते यहां आये हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ आपने उस अतिदुर्जय विष्णुपदको जीत लिया है. कि–जिसे सप्तऋषिभी न पहुँचकर, नीचे खड़े खड़े केवल दूरसे देखा करते हैं. उस पदपर चलकर, तुम अब बैठो. कि–जिसे सूर्य चंद्र आदि ग्रह, नक्षत्र व तारागण प्रदक्षिणा दिया करते हैं ॥ २५ ॥ हे ध्रुव ! जहां न तो तेरे बाप दादे पहुँचे हैं. और न कोई कभी दूसरा पहुँचा है. उस जगतवंद्य विष्णु भगवान्के परमपदको तू प्राप्त है ॥ २६ ॥ हे आयुष्मन् ! यह उत्तम विमान पुण्यश्लोकोंके मुकुटम-

वर्षपर्यंत, भूमंडलका राज किया ॥ १३ ॥ वशीकृत हैं इंद्रिया जिसकी ऐसे, उस महात्माने बहुत वर्षोंतक त्रिवर्गके साधक कालको व्यतीत करके, पुत्रको राज्यसिंहासन दिया ॥ १४ ॥ देहादि सकल जगत्को भगवान्की मायासे आत्मामें रचाहुआ जानकर, स्वप्न व गंधर्वनगरके समान अविद्यारचित जानने लगा ॥ १५ ॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, सुहृद्, सेना अखूट भंडार, अंतःपुर, रमणीय विहारभूमियां, समुद्रकी परिधिवाला भूमंडल इन सबको कालसे नाशवान् विचारकर, वह बदरिकाश्रमको चला गया ॥१६॥ वहां जा, शुद्धांतःकरण हो, पवित्र जलमें स्नान आदि कर, आसन जमाय, वायुको जीत, मनसे इंद्रियोंको वश कर, भगवान्के प्रति-

एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेंद्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितस्वप्नगंधर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमंतःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमंडलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसा हृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानंदबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचितांगो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिंगः ॥ १८ ॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः ॥ विभ्राजयद्दशदिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानुदेवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणांबुजेक्षणौ ॥ स्थितावववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहारांगदचारुकुंडलौ ॥ २० ॥

निधिरूप विराट् स्वरूपमें ध्यान लगाया. फिर उसका ध्यान करते करते भेदरहित हो, समाधिमें स्थित होकर स्थूल स्वरूपको छोड़ दिया ॥ १७ ॥ हरि भगवान्की भक्ति करते करते यह दशा हो गयी कि-निरंतर आनंदके अश्रुबिंदुओंके प्रवाहसे बारंबार पीड़ित होने लगा, हृदय द्रवीभूत हो गया. शरीरमें रोमांच हो आये. और लिंगदेहके छूट जानेसे उसे अपने आत्माकाभी स्मरण न रहा ॥ १८ ॥ उस समय आकाशसे उतरताहुआ एक विमान देखनेमें आया. जो चंद्रमा उदय होकर, जैसे दिशाओंको प्रकाशित करता है वैसे दशोंदिशाओंको प्रकाशमान करता था॥१९॥उसके पीछे देवतानमें उत्तम दो भगवान्के पार्षद दृष्टि आये. जो चार भुजा धरे,

त्मभाव रखकर, संसारकी निवृत्तिके लिये भजन करो ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे उत्तानपादके पुत्र ! राजा ! जो तेरे मनमें हो. वही संकोचको छोड़कर व निःशंक होकर, मुझसे वर मांग; क्योंकि तू वरदानके योग्य है. हे अंग ! हमने सुना है कि—तुम भगवान्के चरणोंके अति निकटवर्त्ती हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि— कुबेरने भगवान्के परमभक्त व महामति ध्रुवसे वरदानके वास्ते प्रेरणा की तब उसने यह वर मांगा कि— 'मेरी हरिमें सदा अविचल स्मृति बनी रहे' कि—जिससे यह जन विना श्रम दुरत्यय नरकसे पार उतर जाता है ॥ ८ ॥ प्रसन्न मनसे उसे यह वरदान देकर, कुबेर उसके देखते देखते अंतर्धान हो गये और ध्रुवजीभी अ-

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशंकितः ॥ वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनंतरं त्वां वयमंग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शाऽऽत्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमंडलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥

पने नगरमें लौट आये ॥ ९ ॥ फिर ध्रुव बड़ीदक्षिणावाले यज्ञोंसे द्रव्य, क्रिया व देवतासंबंधी कर्म करके, साध्य जो फलरूप कर्म और उसके फलके देनेवाले यज्ञपति विष्णु भगवान्का यजन करने लगा ॥ १० ॥ और सर्वके आत्मा और सर्वमय अच्युत भगवान्की तीव्र प्रवाहवाली भक्ति करते करते अपने आत्मामें और सर्व प्राणियोंमें विराजमान उसी प्रभु परमात्माको देखने लगा ॥ ११ ॥ इस प्रकार शीलसंपन्न व ब्राह्मणोंके भक्त, दीनवत्सल और धर्मकी मर्यादानके रक्षक उस ध्रुवको सब प्रजा अपना पिता करके मानने लगी ॥ १२ ॥ भोगसे पुण्यको और यज्ञादि अनुष्ठानसे पापको, क्षीण करते उस ध्रुवने छत्तीस हजार

इस तरह स्वायंभुव मनु अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा कर, तिसके प्रणामको स्वीकार कर, सप्तर्षियोंके साथ अपने पुरको रवाना हुए ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ बारहवें अध्यायमें कुबेरके प्रशंसा करनेपर वह ध्रुव पुरमें आ, यज्ञोंसे हरि भगवान्‌का यजन करके ध्रुवपदको प्राप्त हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– क्रोधको त्यागकर, हिंसासे निवृत्त भयेहुए ध्रुवको जानकर, भगवान् कुबेरने चारण, यक्ष व किन्नरोंके स्तुति करते वहां आकर, कर जोड़े खड़े ध्रुवसे कहा ॥ १ ॥ कुबेर बोले कि– हे अनघ ! क्षत्रियपुत्र ! मैं तुझपर बहुत



एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ॥ तेनाभिवंदितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृतांजलिम् ॥ १ ॥ धनद उवाच ॥ भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बंधविपर्ययौ ॥ ॥ ४ ॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवंतमधोऽक्षजम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयांघ्रिमभवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ ६ ॥

प्रसन्न हुआ हूं; क्योंकि जिस तूने दादेके कहनेसे दुस्त्यज वैरको त्याग दिया ॥ २ ॥ न तौ तूने यक्षोंको मारा है. और न यक्षोंने तेरे भाईको मारा है; क्योंकि जीवोंके जन्ममरण होनेमें कालही प्रभु है ॥ ३ ॥ “ मैं तू ” यह जो पुरुषकी बुद्धि है. सो तौ स्वप्नकी मायाके समान अज्ञानजन्य देहके अनुसंधानसे झूंठी प्रतीत होती है. कि–जिससे बंध व दुःख आदि विपर्यय हुआ करता है ॥ ४ ॥ हे ध्रुव ! तुम्हारा कल्याण होगा, तुम जाओ और सर्वप्राणिमय है स्वरूप जिनका ऐसे और भजनेके योग्य हैं चरण जिनके ऐसे व अपनी गुणमयी मायासे युक्त व रहित और संसारको छेदनहारे अधोक्षज भगवान्‌का सर्वप्राणिमात्रमें आ-

क्ष दर्शन करके, त्रिलोकीके शिरपर उच्च पदको प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥ हे पुत्र! वह तू मुक्तसंग व प्रत्यक्‌दृष्टि होकर, मनमें विराजमान, निर्गुण, एक व अक्षर उसी परमात्माको ढूंढ कि–जिसमें यह भेदभाव बिलकुल असत् प्रतीत होता है २९ ॥ जब तू ईश्वरको हेरे. उस समयमें प्रत्यक् आत्मारूप अनंत आनंदमात्र व सर्व शक्तिसंपन्न परमेश्वरकी परमभक्ति करना, जिससे तेरी यह अहंता ममतारूप दृढ़ अविद्याग्रंथि कट जायगी ॥ ३० ॥ हे राजा! जैसे औषधसे रोगको शांत करते हैं. वैसे बहुत शास्त्रसे

तमेनमंगात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ॥ आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनंत आनंदमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रंथिं विभेत्स्यासि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥

कल्याणके परमप्रतिकूल इस क्रोधको शांत कर. तेरा कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ देखो,जो पुरुष क्रोधसे व्याप्त हो जाता है. उससे हरएक मनुष्य बहुत डरता है. इसलिये जो अपने तई अभय चाहे.वह विद्वान् क्रोधके वश न होवे ॥ ३२ ॥ 'ये मेरे भाईके मारनेवाले हैं' ऐसे अमर्ष लाकर, जो तुमने यक्षोंका वध किया. इससे महादेवके मित्र कुबेरका बड़ा अपराध हुआ है ॥ ३३ ॥ हे वत्स! इसलिये जबतक महत्पुरुषोंके प्रभावसे अपने कुलका नाश न होजाय, उससे पहले प्रणाम और विनयसहित बचनोंसे उसे तुम शीघ्र प्रसन्न करो ॥ ३४ ॥

---

१ माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ॥ स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥ १ ॥ विमुक्तानां तु दूत्येका भक्तिरेव विराजते ॥ सेवादौ दृढमाराध्या ततस्तद्व्रतलालसैः ॥ २ ॥ अर्थ– माहात्म्य जाननेसे सब जगहसे अधिक और दृढ़ जो स्नेह होताहै उसीको'भक्ति' ऐसा कहते हैं इसीसे मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १ ॥ मुक्तपुरुषोंकी दूती एक भक्तिही विराजमान है अर्थात् भक्तिहीका आश्रय ले मुक्तभये ऐसी भक्तिका मुक्तिकी इच्छावाले जनोंने सदैव सेवादिमें दृढ़ आराधन करना ॥ २ ॥

अकाल मृत्युसे रक्षा ये दोनों कर्माधीन जीवके प्रभु आप करते हैं. और आप तो सदा स्वस्थ और अपचय व उपचयसे रहित हैं ॥ २१ ॥ हे राजा! उसे कितनेएक तौ कर्म कहते हैं, कितने एक स्वभाव कहते हैं, कई काल कहते हैं. और कई दैव कहते हैं व कितने एक ( वात्स्यायन आदि ऋषि ) उस पुरुषको काम बतलाते हैं ॥ २२ ॥ उस अव्यक्त स्वरूप व अप्रमेय और महत्तत्त्व आदि अनेक शक्तियोंके उत्पादक परमेश्वरका कर्तव्यभी कोई नहीं जानता तौ, फिर अपने पैदा करनेवाले परमेश्वरको कैसे जान सके? ॥ २३ ॥ हे पुत्र! इन कुबेरके अनुचरोंने तुम्हारे भाईको नहीं मारा है; क्योंकि हे तात! मनुष्यके मृत्युजीवनका

केचित्कर्म वदंत्येनं स्वभावमपरे नृप॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हंतारो धनदानुगाः ॥ विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥ २४ ॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हंति च ॥ अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरंति गावो यथा वै नसि दामयंत्रिताः॥ ॥ २७ ॥ यः पंचवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥

कारण तो एक ईश्वरही है ॥ २४ ॥ वही तो जगत्को रचता है. और वही पालता है. और वही संहार करता है. तथापि वह अहंकार न करनेसे गुण व कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ वही जीवोंका अंतर्यामी जीवोंका ईश, जीवोंका पालक, प्रभु अपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर, जीवोंको रचता है. पालता है. व संहार करता है ॥ २६ ॥ हे तात! अभक्तोंके मृत्युरूप और भक्तोंके मोक्षरूप उसी जगत्के परम अयन परमात्माके सब प्रकारसे तू शरण जा. कि-जिसे प्रजापतिभी जैसे रज्जुसे नथनीमें पोयेहुए वशीभूत बैल कमा कमाकर, बनजारेको बलि देते हैं वैसे भेंट अर्पण करते हैं ॥ २७ ॥ जो तू पांच वर्षका था. तब अपनी माताको छोड़कर, अपनी माताकी सौतके वचनोंसे मर्मभेद होनेके कारण वनमें जाय, तपसे आराधन कर, परमात्माका प्रत्य-

सब परमात्माकी माया द्वारा गुणोंके क्षोभसे होता है स्वतः नहीं होता ॥ १६ ॥ उसमें निर्गुण व पुरुषोंमें श्रेष्ठ ईश्वर तौ केवल निमित्तमात्र है. जिस निमित्तसे यह कार्य कारणात्मक जगत् जैसें चमक-पत्थरके निमित्तसे लोह भ्रमण करता है, वैसे भ्रमण करता है ॥ १७ ॥ वह परमात्मा अपनी कालशक्तिसे गुणोंके क्षोभद्वारा सृष्ट्यादि विषयक शक्तिको विभक्त करके स्वयं अकर्ता होनेपरभी इस जगत्को रचता है. और स्वयं हंता न होनेपरभी इस जगत्का संहार कराता है; अतएव कहा जाता है कि भगवान्की कालशक्ति अवश्य अचिंत्य है ॥ १८ ॥ अजी ! पिता आदि पैदा करते हैं और राजाआदि पालते हैं और चोर आदि

निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहंत्यहंता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनंतोऽतकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनांतकम् ॥ १९ ॥ न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावंत्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसंघाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयं जंतोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥

मारते हैं. इसमें ईश्वरका क्या काम है ? तब कहते हैं कि-पिता आदिद्वारा पुत्रादिकको पैदा करता हुआ वही पैदा करनेवाला है, मृत्युद्वारा चोरादिकको मरवाता हुआ वही संहार करनेवाला है और आप तो सदा अनादि अनंत और अक्षीणशक्ति है. तात्पर्य यह है कि-पिता आदि जो पैदा करनेवाले आदि हैं. वे सब स्वतंत्र कारण नहीं हैं किंतु परतंत्र हैं अतएव सबका नियंता व कारण एक ईश्वरही है॥१९॥ उस परमात्माके न तौ कोई अपना पक्ष है और न परपक्ष है. वह तो मृत्युरूप होकर, समभावसे सब प्रजामें प्रवेश करके रहा है. और जैसे पवनके पीछे रज दौड़ी चली जाती है. वैसे ये सब प्राणिसमूह कर्मोंके परतंत्र होकर दौड़तेहुए उस परमात्माके पीछे दौड़े चले जाते हैं ॥ २० ॥ आयुका अपचय यानी अकाल मृत्यु और आयुका उपचय यानी

---

१ तदुक्तम् । द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः संति न संति यदुपेक्षया ॥ १ ॥ अर्थ-सो कहा है कि- द्रव्य, कर्म तथा काल और स्वभाव तथा जीव यह सब जिस ईश्वरकी अनुग्रहसे हैं तथा जिसकी उपेक्षा यानी त्याग करनेसे नहींभी हैं ॥ १ ॥

निंदा करते हैं ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! हे भ्रातृवत्सल ! एक यक्षके अपराधके प्रसंगसे भाईके वधसे संतप्त होकर, तूने बहुतसे यक्षोंका विध्वंस किया ॥ ९ ॥ सो हृषीकेश भगवान्‌के भक्त साधुलोगोंका यह काम नहीं है. कि–जो उस पराङ्भूत देहको आत्मा मानकर, पशुनकी नाई इसके वास्ते जीवोंकी हिंसा करना ॥ १० ॥ जिनका आराधन करना अतिकठिन है ऐसे सब जीवोंके अंतर्यामी हरि भगवान्‌का सर्वजीवोंमें आत्मभाव रखकर, आराधन करनेके प्रभावसे तू विष्णु भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥ तू हरि भगवान्‌का परिचित और हरिदासोंके संमत है. तथा सत्पुरुषोंके व्रतकी शिक्षा पायी है. फिर तूने यह निंद्य

नन्वेकस्यापराधेन प्रसंगाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभिशप्तेन त्वयांऽग भ्रातृवत्सल ॥९॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ॥ यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ १२ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजंतुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥ भूतैः पंचभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥ १६ ॥

कर्म किसतरह किया ? ॥ १२ ॥ क्योंकि–सर्वके आत्मा हरि भगवान् सर्वप्राणीनमें क्षमा, करुणा, मैत्री और समभाव रखनेसे प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जिसपर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं. वह पुरुष प्राकृत गुणोंसे मुक्त होकर, लिंग शरीरसेभी मुक्त हो जाता है. तदनंतर सुखात्मक ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥ भाई आदि संबंध कुछभी नहीं है, यह पक्ष लेकर कहते हैं. देहादि आकारसे परिणत पंच महाभूतही स्त्री और पुरुषरूप हैं, यह वार्ता प्रसिद्ध है. उन्हीं स्त्री पुरुषके मैथुनसे इस संसारमें संपूर्ण स्त्री पुरुषकी उत्पत्ति है ॥ १५ ॥ हे राजा ! इसप्रकार जगत्की सृष्टि है, इसीतरह पालकके आकारसे परिणत पंच महाभूतोंसे जगत्की स्थिति होती है वैसेही मारनेवाले देहके आकारसे परिणत पंचमहाभूतोंसे जगत्का संहार होता है, सो यह

वचन सुनकर, ध्रुवने आचमन लेकर, धनुषमें नारायणास्त्रका संधान किया ॥ १ ॥ हे विदुरजी ! इस अस्त्रका संधान करतेही यक्षोंकी रचीहुई सब माया जैसे ज्ञानका उदय होनेपर सब क्लेशोंका नाश हो जाता है. वैसे तुर्त नाश हो गयी ॥ २ ॥ नारायणास्त्रका धनुषमें संधान करतेही सुवर्णमय पुंखवाले व राजहंसोंके परोंवाले शर ( बाण ) जैसे ऊंचे स्वरवाले मयूर बनमें प्रवेश करते हैं. ऐसे धनुषसे निकलकर, शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करने लगे ॥ ३ ॥ तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे उपद्रवयुक्त होकर, यक्ष लोग जैसे सर्प फण उठाकर, गरुड़के सामने जाते हैं. वैसे कुपित हो, शस्त्र उठाकर, युद्धमें इधर उधरसे ध्रुवपर दौड़कर आये ॥४॥ संग्रा-

संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥ २ ॥ तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुंजतः सुवर्णपुंखाः कलहंसवाससः ॥ विनिःसृता आविविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखंडिनः ॥ ३ ॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधनैः शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥ ४ ॥ स तान्पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ॥ निनाय लोकं परमर्कमंडलं व्रजंति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥ ५ ॥ तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥ ६ ॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्धिगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥

ममें बाणोंसे कटगये हैं साथल, गला और उदर ( पेट ) जिनके ऐसे दौड़तेहुए यक्षोंको ध्रुवने परमधामको पहुंचादिया. कि– जहां संन्यासीलोक सूर्यमंडलको भेदकर जाया करते हैं ॥ ५ ॥ बिचारे निरपराधी बहुतसे यक्षोंको ध्रुवके हाथ मारे जाते देखकर, कृपासे परिपूर्ण ध्रुवके पितामह मनुजीने सप्तऋषियोंके साथ आकर, ध्रुवसे यह वचन कहा ॥ ६ ॥ मनुजी बोले कि–हे वत्स ! पापरूप और नरकके द्वारभूत रोषको छोड़ दे. कि– जिस रोषसे बिचारे निरपराधी इन यक्षोंका तुमने संहार किया ॥ ७॥ हे तात ! बिचारे निरपराधी यक्षोंको जो आपने मारना प्रारंभ किया है. यह काम अपने कुलके उचित नहीं है. इस कामकी सत्पुरुष

मदोन्मत्त हाथी, सिंह व व्याघ्र ये यूथके यूथ चौतर्फ दौड़ने लगे ॥ २६ ॥ भयंकर समुद्र तरंगोंकरके चारोंओरसे पृथ्वीको डुबाता मानों प्रलयसमयमें गरजता हो. वैसे गरजता हुआ भयंकर रूपसे निकट आ पहुँचा ॥ २७ ॥ क्रूरप्रवृत्तिवाले यक्षोंने अपनी आसुरी मायासे कायर पुरुषोंको त्रास देनेवाली ऐसी ऐसी अनेक प्रकारकी माया रची ॥ २८ ॥ यक्षोंने जो अतिदुस्तर माया ध्रुवपर चलायी उसे देखकर, उसके कल्याणके लिये याचना करतेहुए सप्तर्षियोंने कहा कि– ॥ २९ ॥ हे ध्रुव ! भक्तोंकी

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पांत इव भीषणः ॥ २७॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥ २८ ॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ॥ निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥ २९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्त्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽजसा तरति दुस्तरमंग मृत्युम् ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥ १ ॥

आर्ति हरनेवाले, शार्ङ्ग धनुष धरनहारे, भगवान् प्रभु तेरे शत्रुओंका नाश करो. जो मनुष्य उनके नामका उच्चारण करता है. वा श्रवण करता है. वह विना परिश्रम हे ध्रुव ! दुस्तर मृत्युको तिर जाता है ॥ ३० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें यक्षोंका संहार होता देखकर, स्वायंभुव मनुने आकर, तत्त्वके उपदेशसे ध्रुवको मना किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– सप्तऋषियोंका ऐसा

१ छंद म०– हे ध्रुव तू मंगल बहु लहै ॥ तुमसम जगमहँ कोउ नहिँ अहै ॥ तव वैरी कोऊ नहिं रहै ॥ तव सन्मुख धनु कोउ न गहै ॥ भूपशिरोमणि जग यश कहै ॥ तेरो बल जग कोउ न सहै ॥ तुम सम आज न कोऊ भ्राज ॥ तुम पायो देवनको राज ॥ तव कीरति सब जगमें राज ॥ अघ नाशु हरि सब जगपाल ॥ जासु नाम नर जीतैं काल ॥ जाके दर्शन होयं निहाल ॥ श्रीरघुवंश कटै भवजाल ॥ १ ॥

वाली रणभूमि अत्यंत शोभा देने लगी ॥ १९ ॥ क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ जो ध्रुव तिसके बाणोंसे प्रायः जिनके अंग सब कट गये हैं ऐसे जो दूसरे यक्षगण मृत्युसे बच कर, शेष रहे थे. वे रणांगणसे जैसे सिंहके खेलते सब यूथपति भाग जाते हैं वैसे भाग गये ॥ २० ॥ मनुवंशियोंमें उत्तम ध्रुवने जब महासंग्राममें किसी शस्त्रधारीको न देखा तो एकबेर तो पुरीको देखनेका विचार किया. परंतु अपने शत्रुओंकी पुरीमें नहीं गया; कारण यह कि-मायावी लोगोंकी लीलाको मनुष्य नहीं जान सकता ॥ २१ ॥ इस तरह अपने सारथीसे कहकर, शत्रुओंके फिर पीछे उद्योगसे शंकित होकर, सावधानीसे वहीं ठहेरा, इतनेमें तो जैसे समुद्रका श-

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणा क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेंद्रविक्री-डितयूथपा इव ॥ २० ॥ अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दि-दृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः २१ ॥ इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोगशंकितः ॥ शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबंधान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतो दिशम् ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥ अहयोऽशनिनिश्वा-सा वमंतो ऽग्निं रुषाक्षिभिः ॥ अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥

ब्द होता है वैसे शब्द सुनायी दिया. और पवनकी प्रेरीहुई रेणु सब दिशाओंमें दीखने लगी ॥ २२ ॥ पलभरमें सब आकाश बादलके समूहसे चारोंओरसे छा गया. बिजली चमकने लगी. और भयंकर वज्रपात दिशाओंमें होने लगे ॥ २३ ॥ हे विदुर ! बादलमेंसे रुधिर समूह, श्लेष्म आदि कुत्सित पदार्थ, पूय ( पीब ), विष्ठा, मूत्र और मेदकी वर्षा होने लगी. और इसके सामने आकाशसे कबंध गिरने लगे ॥ २४ ॥ फिर आकाशमें पर्वत दिखायी दिया और चारों दिशाओंमें गदा, परिघ, खड्ग, मुसल, पत्थरकी वर्षाके साथ गिरने लगे ॥ २५ ॥ वज्रपातसा है निश्वास जिनका ऐसे सर्प क्रोध करके, नेत्रोंसे अग्नि उगलने लगे, और

धारवाली तलवार ), भुशुंडी ( तोफ ) और विचित्र परोंवाले बाण बरसाते एकलाख तीस हजार १३०००० यक्षोंने उसका बदला लेनेके वास्ते कोपयुक्त होकर, सारथी व रथसहित ध्रुवपर झड़ीसी लगाय दी ॥ ११ ॥ १२ ॥ उस समय शस्त्रोंकी ऐसी बरसा हुई कि- जैसे धाराप्रवाहसे ढकाहुआ सूर्य नहीं दीखता. ऐसे शस्त्रोंकी झड़ीसे ढका हुआ वह ध्रुव बिलकुल नहीं दीखता था ॥ १३ ॥ उस समय स्वर्गमें खड़े देखतेहुए सिद्ध लोगोंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ. कि- अरे ! यह मारा गया. अहो ! यह मनुवंशी सूर्य यक्षरूप सागरके भीतर बूड़ गया ॥ १४ ॥ जयशब्दका उच्चारण करनेवाले यक्ष लोक युद्धके बीच नाद कर

अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छंतस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यत च्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥ नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुंडलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥

रहे थे. इतनेहीमें जैसे कुहासेमेंसे सूर्य निकलता है ऐसे उसका रथ शस्त्रोंसे बाहिर निकला ॥ १५ ॥ अपने दिव्य धनुषका टंकार करते और शत्रुओंके खेदको उत्पन्न करते ध्रुवने जैसे वायु मेघोंको बिखेर देता है, वैसे सब शस्त्रसमूहोंको बाणोंसे काट दिया ॥ १६ ॥ उसके धनुषमेंसे निकले हुए बाण जैसे वज्र पर्वतोंमें प्रवेश करते हैं. वैसे यक्षोंके कवचोंको भेदकर, उनके शरीरके अंदर घुसने लगे ॥ १७ ॥ भालोंसे कटे जाते शिर, सुंदर कुंडल, सुवर्णमय तालके वृक्षकीसी साथलें, वलय ( कंकण ) करके शोभायमान भुजा ॥ १८ ॥ हार, केयूर ( बजुल्ला ), मुकुट, अमूल्य पगड़ियां इनसे व्याप्त वह वीर पुरुषोंके मनको हरने-

उत्तम कुमारका व्याह नहीं हुआ. उससे पहलेही वह मृगयामें हिमालय पर्वतके भीतर एक बलवान् यक्षके हाथ मारा गया; तब उसकी माताभी उसके पीछे मरगयी ॥ ३ ॥ जब ध्रुवने सुना कि-भाई उत्तम मारा गया. तब कोप, अमर्ष व शोचसे व्याप्त हो, जय करनेवाले रथमें बैठकर, वह यक्षोंके निवासस्थान (अलकापुरी) पर चढ़ा ॥ ४ ॥ महादेवके अनुचर जिसमें रहते हैं ऐसी, उत्तरदिशामें जाकर, ध्रुवने हिमालयकी गुफामें यक्षोंसे व्याप्त अलका नाम पुरी देखी ॥ ५ ॥ फिर बड़ी भुजावाले ध्रुवने शंख बजाया. कि-जिससे आकाश और दिशायें गुंज उठीं, कि-जिस शब्दसे हे विदुरजी! यक्षोंकी स्त्रियां उद्विग्नदृष्टि होकर, अत्यंत त्रास खाने

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥ ३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ॥ जैत्रं स्यंदनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥ ५ ॥ दध्मौ शंखं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहंतस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥ स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥ तेऽपि चामुममृष्यंतः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुंडीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥

लगीं ॥ ६ ॥ उस नादको न सहकर, कुबेरके महाभट बली यक्ष शस्त्र उठाकर, पुरीसे बाहिर आये. और ध्रुवके सन्मुख दौड़े ॥ ७ ॥ उग्र है धनुष जिसका ऐसे उस महारथ वीर ध्रुवने उन्हें आते देखकर, एक एक यक्षके तीन तीन बाण एकसाथ सब यक्षोंके लगाये ॥ ८ ॥ सभी यक्षोंके ललाटके बीच जो बाण लगे, उनसे अपने आत्माको पराजित हुआ मान कर, वे यक्ष ध्रुवके उस कर्मकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ जैसे सांपके पांव लग जाय और वह उसको सहन न करै, ऐसे इस कर्मको सहन न करते पीछा बदला लेना चाहते उन यक्षोंने एक साथ द्विगुण यानी छः छः बाण लगाये ॥ १० ॥ परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, परशु, शक्ति, ऋष्टि (दोनों तरफ

है. और मदमत्त भौंरे गुंज रहे हैं ॥ ६३ ॥ वैदूर्यमणिनकी सीढ़ियां हैं ऐसी बावड़ियोंके अंदर कमल, उत्पल व कुमुद डहडहा रहे हैं और हंस, कारंड सारस व चकओके झुंड कलोलें कर रहे हैं ॥ ६४ ॥ राजऋषि उत्तानपाद अपने पुत्र ध्रुवजीके उस अतीव अद्भुत प्रभावको कानोंसे सुन व आंखोंसे देख कर, परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ प्रजा जिससे बहुत प्रसन्न है ऐसे ध्रुवको तरुण अवस्थापन्न व प्रकृतिनके संमत देखकर, राजाने पृथ्वीका पति बनाया ॥ ६६ ॥ राजा उत्तानपादने

वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारंडवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥६४॥ उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ ६५॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः ॥ वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६७॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥९॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥

अपने शरीरको वृद्ध हुआ विचार, विरक्त होकर, अपने आत्माकी गतिका विचार करके वनको प्रस्थान किया ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दशवें अध्यायमें अपने भाईके मारनेवाले यक्षोंका इकले ध्रुवने अलकापुरीमें जाकर,वध किया. यह इसके पराक्रमकी कथा कही जायगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-ध्रुवने प्रजापति शिशुमारकी कन्या भ्रमिसे व्याह किया, उसमें कल्प और वत्सर ये दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ महाबली ध्रुवके दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला थी, उसमें उत्कल नाम पुत्र हुआ. और स्त्रियोंमें रत्नरूप एक कन्या हुई. ॥ २ ॥

१ राजाने यही विचारा ॥ कवित्त-रहा है न कोई यहां रहि है न कोई यह जानै सबकोई पै न मानै मोहपरिगे ॥ हाथी और घोड़े जोड़े छोड़े सब ठौर ठौर भौननमें गाड़े भूरिभांड़े ते विसरिगे ॥ कहै छबिनाथ रघुनाथके भजनबिन ऐसेही विचारे जन्म कोटिन निसरिगे ॥ जंगवाले जोरवाले जाहिर जरबवाले जोसवाले जालिम चिताकी आगि जरिगे ॥ १ ॥

लटक रहे ऐसे दीपसहित जलके कलश इनकी शोभा छा रही है ॥ ५५ ॥ सुंदर विमानके शिखरोंसी जिनकी छबि है ऐसे, सुवर्णकी सामग्रीवाले शहरपनाह, शहरके दरवाजे और घरोंसे जो सब भांति शोभायमान है ॥ ५६ ॥ जिसमें चौहट्टे, गलियां, अटारियां और मार्गमें झार बुहार चंदनके जलसे छिरकाव किया गया है लाजा ( लाई ) अक्षत, पुष्प, फल और तंडुल बिखर रहे हैं. वजा वजा भेटें धरी हैं ॥ ५७ ॥ महाराज ! पुरकी स्त्रियां जहां जहां मार्गमें ध्रुवको देखती हैं वहां वहां सरसों, अक्षत, दही, जल, दूर्वा, पुष्प और फल अर्पण करती हैं ॥ ५८ ॥ और उन पदार्थोंको बिखेरती हुई वत्सलतासे जो सत्य अशीर्वाद

प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुंभपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५६ ॥ मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चंदनचर्चितम् ॥ लाजाऽक्षतैः पुष्पफलैस्तंडुलैर्बलिभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यंबुदूर्वापुष्पफलानि च ॥ ५८ ॥ उपजह्रुः प्रयुंजाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥ ५९ ॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥ ६० ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ६१ ॥ यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभांति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६२ ॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥

देती हैं उन मधुरगीतोंको श्रवण करते ध्रुवने पिताके घरमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ महामणिनके समूहमय उस उत्तम भवनमें पितासे निरंतर लालन किया जाता वह ध्रुव जैसे स्वर्गमें देवता निवास करते हैं. वैसे रहने लगा ॥ ६० ॥ कैसा है वह भवन कि– जिसमें दूधके फेनसी सुफेद दांत व सोनेकी सामग्रीवाली शय्या बिछीहुई हैं, अमूल्य आसन रक्खे हुए हैं और जहां कंचनकी सब सामग्री है ॥ ६१ ॥ जहां स्फटिक मणि व महामरकत मणिकी भीतोंमें स्त्रीरत्नसहित मणियोंके दीप जगमगा रहे हैं ॥ ६२ ॥ जहां अतिसुंदर बाग बगीचे हैं कि– जिनमें विचित्र कल्पवृक्षोंपर बैठेहुए पक्षियोंके मिथुन ( जोड़े ) कूज रहे

मैत्री आदि गुणोंसे प्रसन्न होजाते हैं उसको जैसे जल ढालकी ओर आप चला जाता है वैसे सब प्राणीमात्र नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमसे विह्वल हो, परस्पर अंगका स्पर्श होनेसे रोमांचित होकर, वारंवार आंसू बहाने लगे ॥ ४८ ॥ इसकी माता सुनीतिने अपने प्राणोंसेभी प्यारे पुत्रसे मिलकर, उसके अंगस्पर्शसे आनंदित हो, मनकी व्यथाको त्याग-दिया ॥ ४९ ॥ हे विदुरजी ! तब ध्रुवजीकी माताके टपकते हुए स्तनोंमेंसे दूध और नेत्रोंमेंसे पवित्र जल वारंवार बहने लगा ॥ ५० ॥ उस सुनीतिकी लोग प्रशंसा करने लगे कि–जो बहुत अच्छा हुआ कि–भूमंडलकी रक्षा करनेवाला, दुखभं-

उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अंगसंगादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥ सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदंगस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥ पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ॥ तदाऽभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५० ॥ तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरंनष्टो रक्षिता मंडलं भुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्त्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५२ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥ तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृंदैः कदलीस्तंभैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥ ५४ ॥ चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलंबिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुंभैः सदीपकैः ॥ ५५ ॥

जन आपका पुत्र कि– जो बहुत दिनोंसे नाश होगया था. वह पीछा मिल आया ॥ ५१ ॥ अपने अवश्य भक्त लोगोंके दुखभंजन भगवान्‌का आराधन किया है. कि– जिस परमात्माका ध्यान करनेवाले लोग अतिदुर्जय मृत्युको जीत गये हैं ॥ ५२ ॥ इसप्रकार जिसे लोग लड़ा रहे थे उस ध्रुवको उत्तमके साथ हथिनीपर बिठाय, प्रसन्न हो, राजाने सब लोगोंके स्तुति करते पुरमें प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ कैसा है पुर कि– जिसमें जहां तहां तैयार कियेहुए मकरसे तोरण लस रहे हैं. और द्वारद्वारपै फल व मंजरीसहित केलोंके खंभ, वैसेही सुपारियोंके छोटे छोटे वृक्ष ॥ ५४ ॥ आमके पल्लव, वस्त्र, माला और मोतिनके हार जिनमें

विश्वास करके, आनंदके वेगसे हर्षित हो, ब्राह्मण, कुलवृद्ध, मंत्री और बंधुजनोंको संग ले शंख, दुंदुभि और बंसी बजाते वेदघोषके साथ, अपने पुत्रके दर्शनकी उत्सुकतासे तुर्त नगरके बाहिर निकला ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सुनीति और सुरुचि ये दोनों रानियां सुवर्णके भूषण पहन, पालकीमें बैठ, उत्तमको साथ ले, इस (ध्रुव) की अगोनी करनेचलीं ॥ ४१ ॥ उपवनके निकट आतेहुए उस ध्रुवको देखकर, तुर्त रथसे उतर, प्रेमसे विव्हल हो, राजा तुर्त उसके पास पहुँचा ॥ ४२ ॥ और मनमें बहुत उत्कंठा होनेके

सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबंधुभिः ॥ ३९ ॥ शंखदुंदुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४० ॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयांतं तरसा रथात् ॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ४२ ॥ परिरेभेंऽगजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कंठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनांघ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबंधनम् ॥ ४३ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ४४ ॥ अभिवंद्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमंत्रितः ॥ ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४६ ॥ यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमंति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ ४७ ॥

कारण सांस लेता, भगवानके चरणस्पर्शसे नाश होगये हैं सब पापके बंधन जिसके ऐसे, अपने पुत्रसे बाहं पसारकर, मिले ॥ ४३ ॥ फिर वारंवार उसका शिर सूंघकर, प्रगट हुआ है उत्कटमनोरथ जिसके ऐसे, राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे पुत्रको स्नान कराया ॥ ॥ ४४ ॥ पिताके चरणोंको प्रणाम कर, पितासे आशीर्वाद ले, उनसे बातचीत कर, सत्पुरुषोंमें अग्रणी ध्रुवजीने सत्कार पाकर, माताको शिरसे प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ पैरोंमें पड़ेहुए उन नम्र बालकको उठाय, आलिंगन कर, अश्रुके कारण गद्गद वाणीसे उस सुरुचिने कहा कि–" तू जीता रह " ॥ ४६ ॥ सुरुचि प्रेम करे. उसमें क्या बड़ी बातहै ? जिसपर हरि भगवान् स्वयं

जिसकी आयु नाश होगयी है उसके लिये जैसे कि– चिकित्सा करना व्यर्थ है. वैसे मैंने जो यह मांगा है. वह बिलकुल वृथा है; क्योंकि–अरे ! मुझ भाग्यहीनने जगत्के आत्मा, तपसे अति मुश्किलसे प्रसन्न होनेवाले, संसारको छेदनहारे भगवान्को प्रसन्न करके फिर संसारही मांगा ॥ ३४ ॥ हाय ! भगवान् तो मुझे निजानंद देते थे. परंतु पुण्यहीन मैंने अपनी मूर्खतासे, जैसे निर्धन मनुष्य चक्रवर्ती राजाके निकट जाकर, तुषसहित तंदुलकणकी याचना करता है. वैसे मानके लिये याचना की ॥ ३५ ॥ मैत्रे-

मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छि-
दमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥ ईश्व-
रात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुंदस्य पदारविंदयो रजोजु-
षस्तात भवादृशा जनाः ॥ वांच्छंति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः॥ ३६ ॥
आकर्ण्याऽऽत्मजमायांतं संपरेत्य यथागतम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३७ ॥
श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्त्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ३८

यजीने कहा कि– हे विदुर ! आप जैसे जो भगवान्के चरणारविंदकी रजके सेवक लोग हैं. वे परमात्माके पास भावविना दूस-रा कुछभी पदार्थ अपने लिये नहीं चाहते; क्योंकि उन्हें यदृच्छासे जो मिलता है उसीसे वे अपने मनको समृद्ध मानते हैं ॥ ३६ ॥ पुत्रको आताहुआ सुनकर, राजाने, जैसे मरकर, पीछा आया हो उस बातका विश्वास न किया करे वैसे पुत्रके आने-की बातका विश्वास नहीं किया. कारण मुझ अभद्र ( अकल्याण )के भद्र ( कल्याण ) कहांसे ?॥ ३७ ॥ फिर नारदजीके बचनका

१ जैसे चार पंडित एक व्याकरणी एक वेदान्ती एक नैयायिक एक ज्योतिषी चारोंने विचारा कि– राजासे मुलाकात करें. तो दैवज्ञने मुहूर्त अर्धरात्रिको निकाला. तो अर्धरात्रिसमयमें सबद्वार बन्द होगये तब नापदानरस्तेसे राजभवनको गये. तौ वहां बहुतसी भूसीकी रास देख, कहने लगे हमारी भैंसको चारा होगा. लेकिन राजासे भेंट कैसेहो ? शरीर अशुचि है. तो किसी पण्डितने कहा कि– राजपत्नीको स्पर्श करें तो शुद्ध होजांय ऐसा सुन, सबोंने कहा बहुत अच्छा चलिये पंडितजी ! यह कह रानीके पास चले तो देखा कि– राजा रानी एक पर्यंकमें सोते हैं तो बोले अब क्या करें ? तब एक धृष्ट पण्डितने देहमें हाथ लगाया कि–राजारानी उझक उठे तो इन चारोंको देख, राजाने पुकारा कि– चोर २ तो इन्होंने कहा हम ब्राह्मण पण्डित हैं पावनाके वास्ते हमारा आगमन है. क्या करें? यात्राको मुहूर्त निशीथमें बना तो राजानें कहा मांगिये तो इन्होंने कहा भूसी दीजिये राजाने शीघ्रही दिया, पीछे उन्हें बड़ा संताप हुआ वही दशा ध्रुवजीकी जाननी ॥ इति ॥

अपने नगरकी तर्फ लौटा ॥ २७ ॥ विदुरजीने कहा कि-जो हरि भगवान्‌का परम पद सकाम पुरुषोंको अतिदुर्लभ है. भगवान्‌के चरणकी सेवासे प्राप्त होनेवाले उस पदको एकही जन्मसे पाकर, पुरुषार्थके वेत्ता उस ध्रुवने अपने आत्माको अकृतार्थसा क्यों माना ? ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-माताकी सौतके बाणीरूप बाणोंसे हृदयमें बिधा हुआ वह ध्रुव केवल उन दुर्वचनोंका स्मरण करता रहा. अतएव उसने मुक्तिपति भगवान्‌से मुक्ति नहीं मांगी. तासों संतापको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ ध्रुवजीने कहा कि-समाधि लगाकर, अनेक जन्मोंसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक जिसके पदको जान सके हैं. छःही महीनोंसे उन भगवान्‌के

विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ॥ लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सनंदादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥ अहो बत ममानात्म्यं मंदभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वाऽयाचे यदंतवत् ॥ ३१ ॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥ ३२ ॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्तइव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥

चरणोंकी छायाको प्राप्त होकर, हाय ! मैं भेददृष्टि पीछा दूर पड़ गया ॥ ३० ॥ अहो, हाय ! मुझ मंदभागीकी अज्ञता तौ देखो. कि-संसारके छेदनहारे भगवान्‌के चरणमूलको प्राप्त होकर, मैंने नाशवान फल मांगा ॥ ३१ ॥ मेरी अपेक्षा नीचे रहते अतएव असहनशील देवता लोगोंने मेरी बुद्धिको दूषित कर दिया. मेरी बुद्धि दूषित होनेका कारण यही है कि-जिस मुझ नीचने नारदजीका कहना न माना ॥ ३२ ॥ कोई दूसरा है नहीं. तथापि जैसे सोताहुआ मनुष्य स्वप्नमें आपसे भिन्न अनेक वस्तु देखता है वैसे भगवानकी मायाके बश हो भाईको शत्रु मानकर, हृदयके शोकसे वृथा संतापको प्राप्त होता हूं ॥ ३३ ॥

और ज्योतिषचक्र मेढ़ीमें' लगेहुए बैलोंके समूहके समान चौगिर्द फिरा करता है. जिसका त्रिलोकीका नाश होनेपरभी नाश नहीं होता, धर्म, अग्नि, कश्यप, शक्र बनवासी मुनि यानी सप्तर्षि और तारा जिसे प्रदक्षिणा करके भ्रमण करते फिरते हैं. वह अतिदुर्लभ पदभी मैं तुझे देता हूं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ तेरा पिता तुझे राज्य दे कर, वनमें चला जायगा. तब धर्मके अनुसार छत्तीस हजार बरसतक तू भूमंडलका राज्य करेगा ॥ २२ ॥ तेरा भाई उत्तम मृगयामें मारा जायगा. तब उसीका ध्यान करती उसकी माता बनमें जाकर, दावानलमें प्रवेश करके जल जायगी ॥ २३ ॥ यज्ञही है प्रिय मूर्ति जिसकी ऐसे, मेरा पु-

मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥ चरंति दक्षिणीकृत्य भ्रमंतो यत्सतारकाः ॥ २१ ॥ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताऽव्याहतेंद्रियः ॥ २२ ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषंती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २३॥ इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अंते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥ ततो गंतासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्याऽऽत्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥

ष्कलदक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन कर, यहां सत्य भोग भोगकर, अंतमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ फिर सर्व जनोंके नमस्करणीय, सप्तर्षियोंसेभी ऊपरके मेरे पदको प्राप्त होगा. कि-जहां गये पीछे फिर आवागमनमें नहीं आता ॥ २५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इस प्रकार पूजा अंगीकार कर, अपना पद देकर, वे गरुड़ध्वज भगवान् बालकके देखते २ निजधाम पधारे ॥ २६ ॥ यद्यपि वह ध्रुव भगवानके चरणकी सेवासे प्राप्त और संकल्पके परमावधि मनोरथको प्राप्त हुआ था. तथापि अतिप्रसन्न न होकर,

१ गेहूं वगैरः नाजको भूससे जूदा करते हैं तब खलियानके बीचमें एक खंभा गाड़ देते हैं उसके चौगिर्द बैलोंको फिराते हैं उस खंभेको मेढ़ी कहते हैं.

होता है, आप शुद्ध हो. वह मलिन है. आप सर्वज्ञ हो. वह अज्ञ है. आप आत्मा हो. वह जड़ है. आप कूटस्थ हो. वह विकारी है. आप आदिपुरुष हो. वह आदिमान् है. आप भगवान् हो. वह भगहीन है. आप तीनों गुणोंके अधीश हो. वह परतंत्र है. यह लक्षण क्यों है? तब कहते हैं कि– बुद्धिकी उस उस अवस्थाको अखंडित अपनी चिद्शक्तिसे जानतेहो. तथा स्थितिके निमित्त यज्ञके अधिष्ठाता श्रीविष्णुरूप भये हो ॥ १५ ॥ विद्या आदि अनेक प्रकारकी विरुद्ध गतिवाली शक्तियां जिसके विषे निरंतर अकस्मात् क्रमसे प्रगट होती हैं. उन जगत्के पैदा करनेवाले अनंत अखंड अनादि, निर्विकार, आनंदमय परब्रह्मके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! कामनाओंकी

यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतंति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनंतमाद्यमानंदमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्त्तेः ॥ अप्येव मार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनंद्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषांचक्रमाहितम् ॥ २० ॥

अपेक्षा सत्य आशी अर्थात् परमार्थफल मेरे तो आपही हो. यदपि निष्कामतासे भजनेवाले भक्तलोगोंके परमानंदमूर्ति आपका चरणकमलही राज्य आदि सब सुख निश्चय किया गया है. तथापि हे आर्य ! जैसे नवप्रसूता गौ अपने वत्सको दूध पिलाती है. और वृकआदिसे रक्षा करती है. वैसे अनुग्रह करनेमें परवश हो कर, हरि आप हम दीनजनोंकी संसारके भयसे रक्षा करते हो ॥ १७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–सत्यसंकल्प व बुद्धिमान् ध्रुवने इस प्रकार स्तुति की. तब भक्तलोगोंपर अनुरक्त भगवान्ने पीछी प्रशंसा करके, यह बचन कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे राजपुत्र ! मैं तेरे हृदयके संकल्पको जानता हूं. हे सुव्रत ! तेरा कल्याण होगा. हे कल्याण ! जिस प्रकाशमान ध्रुवपदको आजतक दूसरा कोईभी नहीं पहुँचा. जिसमें, ग्रह, नक्षत्र, तारा

१ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्य च मोक्षस्य षण्णां भग इतीर्यते ॥ १ ॥ अर्थ–सब ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष इन छहोंको भग कहते हैं. सो जिसमें हों वह भगवान् कहा है. ॥ १ ॥

कालसे खंडित होनेवाले विमानमेंसे पड़नेवाले स्वर्गवासियोंको कहा मिलसकता हैं ? ॥ १० ॥ हे अनंत ! आपकी निरंतर भक्ति करनेवाले निर्मलांतःकरण महत्पुरुषोंका प्रसंग मेरे सदा बना रहे कि– जिससे आपके गुणोंकी कथारूप अमृतके पानसे मत्त होकर, बहुत दुखवाले उल्बण भवसागरको बिना परिश्रम पार हो जाऊंगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! हे कमलनाभ ! जिन मनुष्योंको आपके चरणारविंदकी सौगंध्य करके लुब्धहृदय भक्तलोगोंका प्रसंग प्राप्त हो गया है. वे न तौ अतिशय प्रिय अपने शरीरका और न इस देहसंबंधी पुत्र, सुहृद, घर, धन और स्त्रियोंका अनुसंधान रखते हैं ॥ १२ ॥ हे अज ! हे परम ! पशु,

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो भूयादनंतमहताममलाशयानाम् ॥ येनांजसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथाऽमृतपानमत्तः ११ ॥ तेन स्मरंत्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविंदसौगंध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसंगाः ॥ १२ ॥ तिर्यङ्गद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥ कल्पांत एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनंतसखस्तदंके ॥ यन्नाभिसिंधुरुहकांचनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ १४ ॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखंडितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥

पक्षी, वृक्ष और पेटसे चलनेवाले, देव, दैत्य, मनुष्य आदिसे व्याप्त और सत्, असत्, विशेषसहित तथा महत्तत्त्व आदि अनेक कारणवाले आपके केवल इसी विराट् रूपको तो मैं जानता हूं. परंतु अतःपर उस ईश्वरके स्वरूपको नहीं जानता कि–जहां शब्दका व्यापार नहीं है ॥ १३ ॥ अपने भीतरही है दृष्टि जिनकी ऐसे, जो शेष सहायवाले भगवान् कल्पके अंतमें इस सर्वजगतको उदरमें ग्रहण करके शेषजीके अंकमें शयन करते हैं जिनकी नाभिसमुद्रमें प्रगट हुए कंचनमय लोक पद्मकी कर्णिकामें ब्रह्माजी प्रगट हुए हैं, उन भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥ मेरे और जीवके स्वप्न आदि अवस्था तुल्यही हैं. फिर मुझमें जीवसे कौन विशेषता है ? ऐसी शंका होवे तो समाधान करते हैं कि–आपकी जीवसे विलक्षण स्थिति है. आप नित्यमुक्त हो. जीव आपकी कृपासे

ध्रुवने कहा कि- जो सर्वशक्ति धारण करनेवाले परमेश्वर मेरे अंदर प्रवेश करके, मेरी लीन भई हुई इस वाणीको और दूसरेभी हाथ, पांव, कान व त्वचा आदि इंद्रियोंको अपनी चित्शक्तिसे चेतन करते हैं. उन पुरुष भगवान् आपको मेरा प्रणाम है ॥ ६ ॥ अनेक गुणोंवाली अपनी माया नाम शक्तिसे महत्तत्त्व आदि अनेक पदार्थ रचकर, अंतर्यामी आप एकही मायाके गुण इंद्रियादिकोंमें स्थित होकर, जैसे काठमें अग्नि नानारूप हो प्रकाशता है. वैसे उन २ देवतानके रूपसे नानारूप होकर, प्रकाशते हो. अर्थात् आपके सिवाय दूसरा कोईभी ज्ञान और कृपाशक्तिका धारण करनेवाला नहीं है ॥ ७ ॥ हेनाथ ! आपके दियेहुए

ध्रुव उवाच ॥ योऽतःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥ त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबंधो ॥ ८ ॥ नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चंति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छंति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥ या निर्वृत्तिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्किंत्वंतकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥ १० ॥

ज्ञानसे आपके शरणागत ब्रह्माजीने जैसे सोताहुआ मनुष्य जाग्रत होकर, सब देखता है, वैसे इस सब विश्वको देखा है. हे आर्तबंधु ! उन आपके मुक्तलोगोंकोभी शरण देनेवाले चरणमूलको उपकार जाननेवाला पुरुष कैसे भूल सकता है ? ॥ ८ ॥ जन्म-मरण छुड़ानेवाले आपको जो लोग काम आदिके वास्ते भजते हैं. वे बेशक आपकी मायासे वंचित चित्त हैं; क्योंकि कल्पवृक्षके समान आपका पूजन करके, वे लोग कुणप- ( मुर्दा ) के समान देह करके उपभोग्य सुखकी इच्छा करते हैं. अरे ! विषयसंबंधजन्य सुख तो मनुष्योंको नरकमेंभी मिल सकता है ॥ ९ ॥ हे नाथ ! जो आनंद आपके चरणकमलके ध्यानसे अथवा आपके भक्तलोकोंकी कथाश्रवणसे मनुष्योंको प्राप्त होता है. वह निजानंदरूप ब्रह्ममें तो हैही नहीं. फिर अंतकके खड्गरूप

नवमें अध्यायमें हरि भगवान्‌की स्तुति कर, उनसे वर पाकर, ध्रुवने पीछे लौटकर, पिताका दियाहुआ राज्य किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–वे देवता इस तरह निर्भय हो, हरि भगवान्‌को प्रणाम कर, स्वर्गको सिधारे. भगवान्‌भी गरुड़पर विराजकर, अपने भृत्यके दर्शनकी इच्छासे मधुवनको पधारे ॥ १ ॥ योगके विपाकसे तीव्र ऐसी बुद्धि करके, हृदयकमलके कोशमें स्फुरते हुए बिजलीसी कान्तिवाले भगवान्‌के स्वरूपको अंतर्धान हुआ लखकर, ज्यों चौंककर खड़ा हुआ. त्यों बाहिर ठाढ़े हरि भगवान्‌के वैसेही स्वरूपका दर्शन हुआ. जैसा पहिले हृदयमें हुआ था ॥ २ ॥ भगवान्‌के दर्शनसे संभ्रम सहित होकर, उस

मैत्रेय उवाच ॥ त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥ १ ॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववंदतांगं विनमय्य दंडवत् ॥ दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुंबन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥ ॥ ३ ॥ स तं विवक्षंतमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ॥ कृतांजलिं ब्रह्ममयेन कंबुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥ स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ॥ तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥ ५ ॥

बालकने पृथ्वीपर शरीरको नमाकर, मानों नेत्रोंसे पी रहा हो, मुखसे चूंब रहा हो और भुजानसे आलिंगन कर रहा हो वैसे, दंडवत् प्रणाम किया ॥ ३ ॥ वह भगवान्‌के गुण वर्णन करना चाहता था. परंतु स्तुति आदि करना नहीं जानता था. सो इस बालकके और सबके हृदयमें विराजनेवाले हरि भगवान्‌ने यह बात जानकर, करजोड़े खड़े उस बालकपर कृपा करके, वेदमय शंखसे उसके कपोलका स्पर्श किया ॥ ४ ॥ भगवान्‌की दीहुई दैवी वाणीके प्राप्त होनेसे जीव ईश्वरके निर्णयको जानकर, भक्तिरसका प्रेमी और ध्रुवपदका गामी वह ध्रुव, विख्यात है बहुलकीर्ति जिनकी ऐसे भगवान्‌की स्थिरतासे स्तुति करने लगा ॥ ५ ॥

दीखता था ॥ ७७ ॥ महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रकृति और पुरुषके ईश्वर परब्रह्मकी जो उसने धारणा की, उससे तीनोंलोक कांपने लगे ॥ ७८ ॥ जब वह राजपुत्र एक पावसे खड़ा रहा. तब उसके अंगूठेसे दबीहुई पृथ्वी जैसे हाथीके बैठनेसे नाव पद पदमें बांई और दाहिनी झुकती है. वैसे कछुक एक ओर झुक गई ॥ ७९ ॥ प्राण और प्राणोंके द्वारोंको रोंककर, आत्माके साथ अभेद दृष्टि करके, विश्वात्मक विष्णुनाम भगवान्का वह ध्यान करने लगा. तब सब लोक और लोकपाल श्वास रुक जाने-

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकंपिरे ॥ ७८ ॥ यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदंगुष्ठनिपीडिता मही ॥ ननाम तत्रार्धमिभेंद्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥ ७९ ॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥ ८० ॥ देवा उचुः ॥ नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥ ८१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माभैष्ट बालं तपसो दुरत्यान्निवर्त्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥ ८२ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

के कारण अतिपीड़ित हो, हरि भगवान्के शरण गये ॥ ८० ॥ देवता पुकारे कि–हे भगवन् ! हम नहीं जानते कि–यह चराचर सबप्राणीके शरीरका श्वास क्यों रुकगया ? शरण देनेवाले आपके हम शरण आये हैं सो इस संकटसे हमें छुड़ाओ ॥ ८१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–तुम डरो मत, बालक तप कर रहा है. सो उसे मैं दुरत्यय तपसे निवृत्त करदूंगा. तुम अपने घर चले जाओ. उत्तानपादका पुत्र ध्रुव विश्वरूप मेरे स्वरूपमें एकताको प्राप्त हो रहा है, उससे तुम्हारा श्वास रुक गया है ॥ ८२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

पालोंसेभी न बने ऐसा अतिदुष्कर कर्म करके, वह प्रभु आपके यशको फैलाता तुरंत आ जायगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुन, राजलक्ष्मीका अनादर कर, केवल पुत्रकाही शोच करने लगा ॥ ७० ॥ ध्रुव वहां यमुनाजीमें स्नान कर, सावधान हो, जिस दिन पहुँचा, उसी रात्रिमें उपवास कर एकाग्रचित्त हो, नारदजीकी आज्ञासे भगवान्-का यजन करने लगा ॥ ७१ ॥ तीन तीन रात्रिके अंतमें कपित्थ ( कैथा ) और बेर खाकर, अपनी देहकी स्थितिके अनुसार भगवान्का अर्चन करतेहुए ध्रुवजीने पहिला महीना व्यतीत किया ॥ ७२ ॥ वैसेही दूसरे महीनेमें उस बालकने छठे छठे दिन

मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिंतयत् ॥ ७० ॥ तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ त्रिरात्रांते त्रिरात्रांते कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥ ७२ ॥ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥ ७५ ॥ पंचमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ ७६ ॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेंद्रियाशयम् ॥ ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥ ७७ ॥

स्वयं पड़ेहुए तृण और पर्ण आदिका आहार करके भगवान्का अर्चन किया ॥ ७३ ॥ नवमें नवमें दिन जलमात्र भक्षणकर, समाधि लगाकर, पुण्यकीर्ति भगवान्का अर्चन करते तीसरा महीना व्यतीत किया ॥ ७४ ॥ चौथा महीना बारहवें बारहवें दिन पवन भक्षण कर, श्वासको रोंककर, परमेश्वरका ध्यान करते व्यतीत किया ॥ ७५ ॥ पांचवें महीनेमें वह राजपुत्र श्वासको रोंककर, परब्रह्मका ध्यान करता एक पांवसे स्थाणुकी तरह अचलहो रहा ॥ ७६ ॥ शब्दादि विषय और इंद्रियां जिसमें शयन करती हैं ऐसे, मनको सबमेंसे खींचकर, भगवान्के स्वरूपका ऐसा ध्यान करने लगा कि- उस समय उसे दूसरा कुछभी नहीं

दृढ़ भयेहुए निरंतर भावसे भगवान्का साक्षात् भजन करै ॥ ६१ ॥ इसप्रकार नारदजीका वचन सुन, उन्हें प्रणाम कर, परिक्रमा दे, वह राजपुत्र हरि भगवान्के चरणोंसे मंडित पावन मधुवनको चला ॥ ६२ ॥ ध्रुवके तपोवनमें जानेके अनंतर नारदजी अंतःपुरमें प्रवेश हुए. राजाने अर्घ आदि पूजाके पदार्थ अर्पण करके आसन दिया. उसपर सुखपूर्वक विराजकर राजासे कहने लगे ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि–हे राजा ! आपका मुख सूख रहा है. आपके ऐसा दीर्घ शोच क्या है ? क्या आपके अर्थ-सहित काम और धर्म पुरुषार्थका नाश तो नहीं हो गया है ? ॥ ६४ ॥ राजाने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! स्त्रीके वशीभूत मुझ

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ राजन्किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ॥ किं वा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ॥ ॥ ६४ ॥ राजोवाच ॥ सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना ॥ निर्वासितः पंचवर्षः सहमात्रा महान्कविः ॥ ६५ ॥ अप्यनाथं वने ब्रह्मन्मास्मादंत्यर्भकं वृकाः ॥ श्रांतं शयानं क्षुधितं परिम्लान-मुखांबुजम् ॥ ६६ ॥ अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ॥ योऽकं प्रेम्णा रुरुक्षंतं नाभ्यनंदमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृंक्ते यद्यशो जगत् ॥ ६८ ॥ सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ एष्यत्यचिरतो राजन्यशो विपुलयंस्तव ॥ ६९ ॥

निर्दयचित्तने ज्ञानमान् और महात्मा पांच वर्षके बालकको माताके साथ निकाल दिया ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! कदाचित् कुम्हलाया है मुख जिसका ऐसे थककर, सोये और भूखे अनाथ उस बालकको बनमें वृक ( भेंड़िया ) तो नहीं खाजायंगे ? ॥ ६६ ॥ अहो ! मुझ स्त्रीजित दुष्टकी तरफ तो ध्यान करो कि–जिस मुझ नीचने प्रेमसे गोदीपर चढ़तेहुए बालकका सत्कार नहीं किया ॥ ६७ ॥ नारदजी बोले कि–हे राजा ! आप अपने पुत्रके प्रभावको नहीं जानते. इसलिये शोच करते हो. परंतु आप उसका शोच मत करो; क्योंकि उसकी परमेश्वर रक्षा करता है और उसका यश जगत्में व्याप्त होगा ॥ ६८ ॥ हे राजा ! लोक-

उसका सात रात्रि बराबर जप करै तो, देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आ जांय ॥ ५३ ॥ "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" बुद्धिमान्को चाहिये कि-इस मंत्रसे भगवान्की अनेक प्रकारके पूजाके पदार्थोंसे देश और कालके विभागको जानकर, द्रव्यमयी पूजा करै ॥ ५४ ॥ पवित्र जल, वनके फूल, फल, मूल आदि अच्छे कोमल अंकुर, वस्त्र और भगवान्की प्यारी तुलसीसे भगवान्की पूजा करै ॥ ॥ ५५ ॥ शिला आदिकी मूर्ति बनाकर पृथिवी जल आदि पूजाके अधिष्ठानोंमें भगवान्की पूजा करै. चित्तमें धीरज राखे मौन, राखे, शांति राखे मनन करे और परिमित वनके पदार्थ खावे ॥ ५६ ॥ और पवित्रकीर्ति भगवान् अपनी इच्छासे अपनी अ-

ओं नमोभगवते वासुदेवाय । मंत्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥ सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्तांकुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥ ५५ ॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यंब्वादिषु वाऽर्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शांतो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छाऽवतारचरितैरचिंत्यनिजमायया ॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥ ५७ ॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता मंत्रहृदयेनैव प्रयुंज्यान्मंत्रमूर्त्तये ॥ ५८ ॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥ ६० ॥ विरक्तश्चेंद्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरंतरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥

चिंत्य मायासे अवतार धारण करके जो चरित्र करेंगे. उसको हृदयगत करके, ध्यान करै ॥ ५७ ॥ पूर्व आचार्योंने जितने प्रकारसे भगवान्की सेवा की है, उन्हीं प्रकारोंसे द्वादशाक्षरमंत्रका उच्चारण करके, मंत्रमूर्ति भगवान्की पूजा करै ॥ ५८ ॥ इस प्रकार मन, वचन, कायसे मनमें ध्यान किये हुए भगवान्की भक्तिवाली परिचर्यासे सेवा करै ॥ ५९ ॥ तो निष्कपट भक्तलोगोंकी भक्तिको बढ़ानेवाले हरि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे जो फल वे चाहते हैं, उसी मनवांछित कल्याणकारी फलको उन्हें वेदे देते हैं ॥ ६० ॥ जो मनुष्य मुक्त होना चाहे, वह इंद्रियोंकी प्रीति यानी विषयोंमेंसे विरक्त होकर भक्तियोगद्वारा

नासिका, सुंदर भौंह और सुंदर कपोलसे देवतानमेंभी अतिसुंदर स्वरूप ॥ ४५ ॥ तरुण वय, सुंदर शरीर, अरुण होंठ, नेत्र आर अधरवाले, भक्तजनोंके शरणरूप, सुखकारी शरणरूप, करुणाके सागर, ॥ ४६ ॥ श्रीवत्स चिन्हवाले, मेघसे श्यामबरन, वनमाला पहिरे, अंतर्यामी, शंख, चक्र, गदा व पद्म करि देदीप्यमान चार भुजावाले ॥ ४७ ॥ किरीट, कुंडल, केयूर और वनमाला लसाये, कौस्तुभ रत्नरूप आभरण कंठमें धारण किये, पीले पीतांबर पहिरे ॥ ४८ ॥ कटिमेखला धारण किये, कंचनके नूपुर

तरुणं रमणीयांगमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरणं करुणार्णवम् ॥ ४६ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शंखचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ कांचीकलापपर्यस्तं लसत्कांचननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निर्वृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्त्तते ॥ ५२ ॥ जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान्पश्यति खेचरान् ॥ ५३ ॥

झमकाये अतिसुंदर, शांतस्वरूप, मन व नेत्रोंके आनंद बढ़ानेवाले ॥ ४९ ॥ नखरूप मणियोंकी पंक्तिसे शोभायमान चरणोंसे भक्त लोगोंके हृदयकमलकी कर्णिकारूप स्थानका आक्रमण करके भक्तलोगोंके मनमें विराजमान ॥ ५० ॥ मुसुकुराते, प्रेमसहित देखतेहुए वरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ हरि भगवान्‌के स्वरूपका पूर्वोक्त धारणासे स्थिर भयेहुए एकाग्रचित्तसे ध्यान करना ॥ ५१ ॥ महाराज ! इस प्रकार महामंगलीक भगवानके स्वरूपका जो ध्यान करै. उस भगवद्भक्तका मन तुर्त परमानंदको प्राप्त होकर, अन्य विषयोंसे निवृत्त होजाता है ॥ ५२ ॥ हे राजपुत्र ! अब परमगुह्य जप करनेका मंत्र जो मैं कहतां हूं. वो सुनो. जो मनुष्य

" ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्ता तत्त्वेन निश्चला । एतद्ध्यानमिह प्रोक्तमिति ॥ अर्थ–ध्यै यह धातु चिंतामें कहा है और चिंता क्या ? कि–तत्वज्ञानसे निश्चल रहना अर्थात् उसीमें चित्त रहे अन्यत्र न जावे ॥

हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-भगवान् नारदजीने यह बचन सुन, प्रसन्न हो, अनुग्रह ( कृपा ) करके, उस बालकसे यह सत् बचन कहा ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि-तेरी माताने जो अभिप्रेत अर्थका मार्ग बताया है. वह साक्षात् वासुदेव भगवान् संबंधी है, इसलिये मनको उनमें लगाकर, उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे. वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अर्थ हरि भगवान्के चरणकी सेवा करै; क्योंकि वही मुख्य कल्याणका कारण है ॥ ४१ ॥ इसलिये हे तात! यमुनाजीके प-

मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकंपया ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ जनन्याऽभिहितः पंथाः स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिंद्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेंद्रियमनोमलम् ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारु कपोलं सुरसुंदरम् ॥ ४५ ॥

वित्र तटपर जो पवित्र मधुवननाम क्षेत्र है कि-जहां सदा हरि भगवान् विराजते हैं वहां तू जा. तेरा भला होगा ॥ ४२ ॥ उस क्षेत्रमें जाकर, सदा यमुनाजीके पवित्र जलमें तीनों समय स्नान कर. अपने नित्यकृत्यसे निपट कर, अपना आसन जमाकर, वहां तू रह ॥ ४३ ॥ पूरक, रेचक ओर कुंभक ऐसे तीन प्रकारके प्राणायामसे प्राण, इंद्रियां और मनके मलको शनैः शनैः दूर करकर, धीर मनसे गुरुरूप हरि भगवान्का ध्यान कर ॥ ४४ ॥ कृपा करनेमें अभिमुख, निरंतर प्रसन्नमुख व नेत्रवाले, सुंदर

१ प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात् कुरुते तु यत् । प्राणायामः स विज्ञेयः प्राणायामप्रसाधकैरिति ॥ १ ॥ अर्थ-प्राणनाम वायु अभ्याससे जो वश करे सोही प्राणायामसाधकोंने प्राणायाम जानना ॥ १ ॥

मुनिलोग संगरहित तीव्रयोग और समाधिकरके उसकी पदवीको अनेक जन्मोंसे ढूंढ़ते हैं. तथापि जान नहीं सकते ॥३१॥ इस लिये तू यह हठ छोड़ दे; क्योंकि यह तेरा हठ निष्फल है जब कल्याण साधनका काल वृद्धत्व आ जाय. तब इसके लियेभी यत्न करोहीगे ॥ ३२ ॥ दैवने जिसे जितना दिया हो, उसे उतनेहीसे सुख दुखमें अपने आत्माको संतुष्ट रखना चाहिये; क्यों-कि उतनेहीमें जो संतोष रखता है, वह प्राणी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो आपसे गुणमें अधिक हो, उसे देखकर, प्रसन्न होना चाहिये, पर यह नहीं कि–उसकी असूया करे, जो गुणमें न्यून हो उसपर दया रक्खे, पर उसका तिरस्कार न करे. जो

मुनयः पदवीं यस्य निःसंगेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृगयंतोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥ अतो-निवर्ततामेष निर्बंधस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ यस्य यद्दै-वविहितं स तेन सुखदुःखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥ ३३ ॥ गुणाधिकान्मु-दं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥ ३४ ॥ ध्रुव उवाच ॥ सो-ऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥ अ-थापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥ ३६ ॥ पदं त्रि-भुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ ३७ ॥ नूनं भवान्भ-गवतो योऽगजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥

अपने समानका हो उससे मित्रता रक्खे. परंतु उससे स्पर्द्धा ( डाह ) न करे. जो इसतरह करता है. उसका किसी प्रकारके ता-पसे पराभव नहीं होता ॥ ३४ ॥ ध्रुवजीने कहा कि–आपने सुख दुखसे हतचित्त मनुष्योंपर कृपा करके, यह ऐसा शांतिका प्रकार दिखलाया है कि–जिसका हम जैसे पुरुषोंको मिलना अतिकठिन है ॥ ३५ ॥ तथापि घोर क्षत्रियस्वभावको प्राप्त हुए मुझ दुर्विनीतके हृदयमें ठहर नहीं सकता; क्योंकि मेरा हृदय सुरुचिके दुर्वचनरूप बाणोंसे विदीर्ण भयाहुआ है ॥ ३६ ॥ हे ब्र-ह्मन् ! जहां हमारे पिता और दूसरेभी न पहुंचे हों ऐसे, त्रिलोकीके पदको मैं जीतना चाहता हूं, सो जो उत्तम मार्ग हो वह मुझे बताओ ॥ ३७ ॥ आप भगवान् ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र हो और जगत्के हितके अर्थ बीणा बजाते सूर्यकी नांई फिरते

मैत्रेयजीने कहा कि–इस तरह प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला माताका वचन सुन, बुद्धिसे मनको नियमन करके, पिताके पुरसे निकला ॥ २४ ॥ नारदजी यह बात सुन, उसके करनेके इष्ट विषयको जान, विस्मित हो, पापनाश करनेवाले अपने हाथसे शिरको छूकर, यह बचन बोले ॥ २५ ॥ कि–अहो ! मानभंगको सहन न करतेहुए क्षत्रियोंका प्रभाव तो देखो कि–यह बालक है. तथापि माताकी सौतके दुर्बचनको हृदयसे कैसा धारण करता है ? ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा कि–हे पुत्रक ! अभी

मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ संनियम्याऽऽत्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥ २५ ॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभंगममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥२६॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाऽप्यवमानं ते संमानं वापि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥ २७ ॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥२८॥ परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥ अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥ ३० ॥

तू बालक है, सो खेल आदिमें आसक्त होनेके हेतु तेरे अपमान और सन्मानको हम नहीं देखते ॥ २७ ॥ जो तुझे मान और अपमानका विवेक है तौभी, तुझे असंतोष न रखना चाहिये; क्योंकि जो असंतोषके हेतु हैं. वे सब अज्ञानकल्पित हैं. किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं; क्योंकि जगत्में जो सुख दुःख हैं. वे सब अपने कर्मोंसे होते हैं ॥ २८ ॥ हे तात ! इसलिये ईश्वर अनुकूल हो तो उद्यम सफल होते हैं. ऐसा निश्चय कर, दैवसे जितना मिले उतनेहीमें मनुष्यको संतोष कर लेना चाहिये ॥ २९ ॥ अथवा माताके कहे हुए उपायसे जिसे तू प्रसन्न करना चाहता है. मैं मानता हूं कि, उसका प्रसन्न होना मनुष्योंपर कठिन है ॥ ३० ॥

१ सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ॥ कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं प्रधानम् ॥ १ अर्थ–देखो सांप वायुको पान करते हैं तथापि वो दुर्बल नहीं हैं और सूखे काष्ठसे वन्य हाथी बली होते हैं. कन्द फलादिकोंसे ऋषिलोग कालको बिताते हैं, इससे संतोषही पुरुषको मुख्य आश्रय है.

सुरुचिने जो कहा वह सत्य है; क्योंकि एक तो तू मुझ मंदभागिनीके गर्भमें आया, दूसरा तू मेरा दूध पीकर, बड़ा हुआ कि- जिस मुझको भार्या और दासीभी स्वीकार करनेको राजा शर्माता है ॥ १८ ॥ हे तात ! इस लिये सपत्नी ( सौत ) ने जो सत्य वचन कहा है, उसे तू मत्सर छोड़कर, धारण कर. और जो तेरे उत्तमके जैसे राजसिंहासनकी इच्छा हो तो, अधोक्षज भगवान्- के चरणकमलका आराधन कर ॥ १९ ॥ जगत्की रक्षाके निमित्त सत्वगुणका अधिष्ठान जिन्होंने स्वीकार किया है ऐसे, जिन प- रमात्माके चरणकमलकी सेवा करके, ब्रह्माजी ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं कि-जिसको मन और प्राणोंको वश करनेवाले मुनि वंदन करते

सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं स मात्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आरा- धयाधोऽक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥ १९ ॥ यस्यांघ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावना- यात्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवंद्यम् ॥ २० ॥ तथा मनु- र्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यम- थापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥ तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ॥ अनन्यभावे निज- धर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृग- यामि कंचन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरंग विमृग्यमाणया ॥ २३ ॥

हैं ॥ २० ॥ वैसेही तुम्हारा पितामह भगवान् मनु जिन परमात्माका सर्वांतर्यामी दृष्टिसे पुष्कलदक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा आराधन करके, अन्य उपायसे न मिले ऐसे पृथ्वीसंबंधी स्वर्गसंबंधी और मोक्षसंबंधी सुखको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥ हे वत्स ! जिनके चरणकमलोंकी पद्धतिको मुमुक्षु लोग ढूंढ़ रहे हैं ऐसे, भृत्यवत्सल भगवान्को अनन्य भाववाले निजधर्म करके शुद्ध किये मनमें स्थापित करके, उन्हींका भजन कर ॥ २२ ॥ कमलके पत्रसे नेत्रवाले भगवान्के सिवाय दूसरा कोई तेरा दुःख मिटावे ऐसा मुझे नहीं दीखता. हे विदुर ! जिन्हें ब्रह्मादिक देवता ढूंढ़ रहे हैं ऐसी, लक्ष्मीभी कमल हाथमें लिये जिन्हें ढूंढ़ा करती हैं; उन्हींका आराधन कर ॥ २३ ॥

थापि राजाके आसनपर चढ़नेके योग्य नहीं हो; क्योंकि आपको मैंने मेरे गर्भमेंभी धारण नहीं किया ॥ ११ ॥ अहो! तू बालक है, इसीसे तुझे बिलकुल इस बातकी खबर नहीं है कि-मैं दूसरी स्त्रीके गर्भसे धारण किया गया हूं. अतएव तू दुर्लभ बातका मनोरथ करता है ॥ १२ ॥ यदि तू राजगद्दी चाहता है तो, तपसे परमेश्वरका आराधन कर, उसीके अनुग्रहसे मेरे गर्भमें आनेके लिये साधन कर ॥ १३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-माताकी सौतके दुर्वचनोंसे बिंधा हुआ वह ध्रुव दंडसे ताड़ित किये सर्पकी तरह क्रोधसे श्वास लेताहुआ चुप लगाये देखते हुए अपने पिताको छोड़कर, रोता २ अपनी माताके निकट गया ॥ १४ ॥ अ-

बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥ नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं साधयाऽऽत्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दंडहतो यथाऽहिः ॥ हित्वा मिषंतं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निःश्वसंतं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्संग उदुह्य बालम् ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्नितांतं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥ १५ ॥ सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥ दीर्घं श्वसंती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ माऽमंगलं तात परेष्वमंस्था भुंक्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥

धर होंठ जिसका फरक रहा है ऐसे ध्रुवको श्वास लेता देखकर, रानी सुनीतिने उसे गोदीमें लिया और जो सौतने कहा था. वह वृत्तांत, अंतःपुरके लोगोंके मुखसे सुन, वह अत्यंत दुखी हुई ॥ १५ ॥ और दावानलके बीचमें स्थित लताकी तरह शोचरूप दावानलसे व्याप्त वह बाला धैर्यको त्यागकर, विलाप करने लगी. और सौतके वचनोंका स्मरण करती वह सुनीति कमलसे शोभायमान नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगी ॥ १६ ॥ लंबी २ श्वास लेती, दुःखका पार न देखती वह बाला अपने बालक ध्रुवसे कहने लगी कि-हे तात ! दूसरोंका अपराध मत मानो; क्योंकि जो जन परायेको दुख देता है, उसे वह भुगतनाही पड़ता है ॥१७॥

लोभ पुत्र और निकृति ( शठता ) नाम कन्या हुई. लोभके निकृतिनाम स्त्रीमें क्रोध पुत्र और हिंसानाम कन्या हुई. क्रोधके हिंसानाम स्त्रीमें कलि नाम पुत्र और दुरुक्तिनाम कन्या हुई ॥ ३ ॥ हे राजा ! कलिके दुरुक्तिनाम स्त्रीमें भय पुत्र और मृत्यु कन्या हुई. भयके मृत्युनाम स्त्रीमें निरयनाम पुत्र और यातनानाम कन्या हुई ॥ ४ ॥ हे निष्पाप राजा ! संग्रह करके, यह प्रतिसर्ग मैने तुमके कहा. जो मनुष्य इस पुण्यवंशको सुने उसकी आत्माका मल दूर हो जाता है ॥ ५ ॥ हे कुरुकुलनंदन ! अब पवित्रकीर्ति ब्रह्माजीके अंशसे प्रगटहुए, स्वायंभुव मनुकाभी वंश कहता हूं, सो सुनिये. ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति मनुके वासुदेव

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥ ४ ॥ संग्रहेण मया ख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिः श्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥ ५ ॥ अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥ ७ ॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥ ८ ॥ एकदा सुरुचेः पुत्रमंकमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षंतं ध्रुवं राजाऽभ्यनंदत ॥ ९ ॥ तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥ १० ॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥

भगवान्‌के अंशसे जगत्‌की रक्षामें स्थित प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए ॥ ७ ॥ उत्तानपादके सुनीति और सुरुचिनाम दो रानियां थीं. उनमेंसे सुरुचिपर राजाका बहुत प्यार था. ध्रुवकी माता सुनीति राजाको प्रिय नहीं थी ॥ ८ ॥ एकसमय वह राजा सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदीमें बिठलाकर, लाड़ कर रहा था. इतनेमें ध्रुवजी आकर, गोदीपर चढ़ने लगे तो, राजाने उनका सत्कार नहीं किया ॥ ९ ॥ अपनी सौतका पुत्र ध्रुव राजाकी गोदीपर चढ़ना चाहता था. उसे देखकर, बहुत गर्वित होकर, राजाके सुनते उस सुरुचिने ईर्षासे भरे बचन कहे ॥ १० ॥ सुरुचि बोली कि–हे वत्स ! आप राजाके पुत्र हो त-

हिमाचलकी स्त्री मेनाके उदरसे प्रगट हुई. ऐसा हमने सुना है ॥ ५८ ॥ यह हिमालयकी कन्या जगदंबा पार्वती प्रलयकालमें सोयीहुई शक्ति जैसे ईश्वरको प्राप्त होवे- ऐसे फिर दूसरी बेरभी महादेव कि-जो एक वृत्तिसे भजनेवालोंके मुख्य आश्रयरूप हैं. उन्हींको प्राप्त हुई ॥ ५९ ॥ दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेवाले परमेश्वर महादेवजीका यह चरित्र बृहस्पतिके शिष्य और भगवद्भक्त उद्धवजीके मुखसे मैंने सुना था ॥ ६० ॥ हे विदुर ! यश और आयुको बढ़ानेवाला व पापपुंजको धोनेवाला, यह महादेवका परमपवित्र चरित्र जो मनुष्य नित्य सुने और सुनकर, सुनावे, वह भगवान्की भक्तिके प्रभावसे सर्वपापसे मुक्त हो जाय ॥६१॥



तमेव दयितं भूय आवृंक्ते पतिमंबिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ५९ ॥ एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६० ॥ इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे दक्षयज्ञसंधानंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ ॥ १ ॥ मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दंभं मायां च शत्रुहन् ॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥ २ ॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ दक्षकी कन्याओंके वंशके प्रसंगसे दक्षके यज्ञकी कथा कही. अब मनुके पुत्रोंके प्रसंगसे पांच अध्यायोंमें ध्रुवचरित कहा जायगा. ॥ १ ॥ आठवें अध्यायमें सपत्नीके दुर्वचनोंसे क्रोधित होकर, नगरसे निकलकर, ध्रुवजीने तप किया. और उससे भगवान् प्रसन्न हुये. यह कथा होगी ॥ २ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- सनकादि ऋषि, नारदजी, ऋभु, हंस, अरुणि और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके कारण गृहस्थाश्रम नहीं किया ॥ १ ॥ हे शत्रुदमन ! ब्रह्माजीके पुत्र अधर्मके मृषानाम स्त्रीमें दंभ पुत्र और माया नाम कन्या हुइ, इस मिथुनको निर्ऋतिने ग्रहण किया; क्योंकि उसके पुत्र न था ॥ २ ॥ हे महामति ! दंभकी मायानाम स्त्रीमें

धिरहित, जो मैं हूं वही ब्रह्मा और महादेव हैं. ऐसे तू जान ॥ ५० ॥ हे विप्र ! मैंही त्रिगुणात्मक मायाको धारण करके, जगत्की सृष्टि, स्थिति व प्रलय करनेके वास्ते उन उन कार्योंके योग्य जुदे जुदे नाम धारण करता हूं ॥ ५१ ॥ केवल, अद्वितीय, परमात्मा, परब्रह्म जो मैं हूं. तिसमें अज्ञानी जन ब्रह्मा, रुद्र और प्राणियोंको भिन्न भिन्न रूपसे देखता है ॥ ५२ ॥ जैसे मनुष्य मस्तक और चरण आदि अपने अंगोंमें किसी अंगको पराया नहीं समझता. ऐसे मेरा भक्त किसीकोभी पराया नहीं समझता ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वप्राणीमात्रके आत्मा और एकरूप ऐसे हम तीनों देवोंमें जो पुरुष भेदबुद्धि नहीं रखता. वह शांतिको

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ॥ सृजन् रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ५२ ॥ यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शांतिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ ५६ ॥ तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥

प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– इसप्रकार भगवान्‌ने दक्षप्रजापतिको उपदेश दिया. तब दक्षने उनके भागसे उनका पूजन कर, दूसरे देवतानकाभी अंगकार्य और प्रधानकार्यसे पूजन किया ॥ ५५ ॥ चित्तको सावधान रखकर, यज्ञके अवशेष भागसे रुद्रका पूजन करके, समाप्ति देनेवाले कर्मसे दूसरे सोम पीनेवालोंकाभी पूजन किया, फिर कर्मको समाप्त करके, ऋत्विजोंके साथ उसने अवभृथ स्नान किया ॥ ५६ ॥ यद्यपि दक्षको अपने प्रभावसेही सब सिद्धियां मिल गयीं थीं. तथापि उसे धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर, देवता स्वर्गमें गये ॥ ५७ ॥ इसप्रकार दक्षकी पुत्री सती अपने प्रथम शरीरको त्याग कर, पीछी

स्तुति की कि-सर्व पुरुषार्थोंको देनेवाला यह शरीर पाकर, जो मनुष्य आपकी मायाके वश हो, उसमें मेरा और मैं ऐसा अभिमान करते, उलटे मार्ग चलनेवाले अपने पुत्र आदिके तिरस्कार करने परभी दुर्बुद्धिसे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा राखे है, वहभी जो आपकी कथारूप अमृतका सेवन करै तौ, उसका सकल मोह दूर हो जाय ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणोंने स्तुति की कि-यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, समिध, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोम, घृत, और पशु यह आपकाही स्वरूप है ॥ ४५ ॥ हे वेदमूर्ति ! यज्ञ और क्रतुरूप गर्जना करते हुए वराहमूर्ति आप प्रथम, लीलापूर्वक हाथी जैसे

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मंत्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेंद्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकांक्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यांति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्राभिमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥ भगवान्स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः ॥ ५० ॥

कमलिनीको ले आता है. ऐसे योगीजनोंको स्तुति करते दाढ़पर रखकर, पातालमेंसे पृथ्वीको बाहेर ले आये हो ॥ ४६ ॥ वे आप आपके दर्शनकी इच्छा करते और सत्कर्मसे भ्रष्ट भयेहुए हम लोकोंपर कृपा करो, हे यज्ञेश्वर ! जहां यज्ञके भीतर आपके नामका मनुष्योंने उच्चारण किया. उसीक्षण यज्ञके विघ्न नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ऐसे ईश्वर आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-हे विदुर ! इसप्रकार सब लोक यज्ञके पालक हरि भगवान्की स्तुति करते थे. वहां महादेवजीके विध्वंस किये हुए यज्ञका दक्षप्रजातिने पीछा प्रारंभ किया ॥ ४८ ॥ हे विदुर ! सर्वरूप होनेसे सर्वभागके भोक्ता भगवान् अपने भागसे मानों प्रसन्नहुए हों, ऐसे दक्षको बतलाकर, बोले कि- ॥ ४९ ॥ जगतका परमकारण, आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और उपा-

प्रदीप्त भयाहुआ मैं अच्छे उत्तम यज्ञमें घृतसे परिप्लावित हविको देवतानके लिये पहुंचाया करता हूं. उन यज्ञके पालक औरपांच प्रकारके यज्ञमूर्ति. और पांच मंत्रोंसे पूजे जाते भगवानूको प्रणाम करता हूं ॥ ४१ ॥ देवतानने स्तुति की कि–पूर्व प्रलयकालमें अपने रचेहुए जगत्को अपने उदरमें लेकर, प्रलयके जलमें शेषनागरूप शय्याके ऊपर जो पौढ़े थे. वेही आदिपुरुष

देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिल उरगेंद्राधिशयने॥ पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गंधर्वा ऊचुः ॥ अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेंद्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभांडं विश्वमिदं यस्य विभूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्मायाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥

आप कि–जिनके ज्ञानमार्गका सिद्ध लोग अपने मनमें विचार करते हैं, वे आज हमारे नेत्रगोचर हुए. सो बड़ा अनुग्रह हुआ. आप भक्तोंकी ऐसेही रक्षा करतेहो ॥ ४२ ॥ गंधर्वोंने स्तुति की कि–हे देव ! आप कि–जिनके ये मरीचि आदि ऋषि और ब्रह्मा व इंद्रादि देवता अंशके अंश हैं. और यह सारा जगत्जिनका खिलौना है. उन्हें हम निरंतर नमस्कार करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधरोंने

---

१ पंचविधत्वमैतरेयके उक्तम् । स एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोम इति ॥ १ ॥ अर्थ–वह पांचप्रकारका यज्ञ स्वरूप ऐतरेयक नामक वेदके भागमें कहाहै तद्यथा–सो यह यज्ञमूर्ति पांच प्रकारका है जैसे कि–अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास चातुर्मास्य, पशु और सोम ॥ १ ॥

२ तथाच श्रुतिः । आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं यजेति द्व्यक्षरं ये यजामह इति पंचाक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कारः । स्मृतिश्च । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥ हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदति ॥ अर्थ–तैसे श्रुतिभी है कि–'आः–श्रावय' यह मंत्र चार अक्षरका है,' श्रौषट्' यहभी चतुरक्षर मंत्र है, 'यज, यह दो अक्षरका मंत्र है, ' ये यजामहे' यह पंचाक्षरमंत्र है और दो अक्षरका' वषट्कार ' है यही पांच मंत्र हैं । और स्मृतिमेंभी लिखा है कि–चार अक्षरों यानी ' ओः श्रावय ' इस मंत्रकरके, फिर चार अक्षरोंयानी " श्रौषट् " इस मंत्रकरके और दो अक्षरों यानी " यज " इस मंत्रसे और पांच अक्षरों यानी " ये यजामहे " इस मंत्रसे और फिर दो अक्षरों यानी " वषट् " इस मंत्रसे जिसका हवन किया जाता है वह विष्णु मेरेपर प्रसन्न होवे इति ॥

३ " विरूपोन्मत्तनिः स्वानमकुत्सापूर्वकं हि यत् ॥ पूरणं दानमानाभ्यामनुग्रह उदाहृतः " इति ॥ अर्थ–विरूप तथा उन्मत्त जो दरिद्री तिनका अनिन्दापूर्वक जो दानमानसे पूरित करना यही अनुग्रह कहलाता है ॥

परमेश्वर ! आप अपनी प्यारी लक्ष्मीजीके साथ पधारे. यह बहुत अच्छा किया, हमपै कृपा करो, आपको हम नमस्कार करतीं हैं; हमारी रक्षा करो, शिर विना कबंध जैसे दूसरे अंगोंसे शोभा नहीं देता, ऐसे आप विना यह यज्ञभी दूसरे अंगोंसे शोभा नहीं देती ॥ ३६ ॥ लोकपालोंने स्तुति की कि– हे भूमन् ! आप कि–जो दृश्यमात्रको जाननेवाले प्रत्यगात्मरूप हो, तिन्हें असत्पदार्थको ग्रहण करनेवाली हमारी इंद्रियां बिलकुल नहीं जान सकतीं; क्योंकि पंचभूतसे बने हुए देहमें छठे जीवरूपसे जो आप प्रतीत होते हो वह आपकी मायाही है ॥ ३७ ॥ योगेश्वरोंने कहा कि– हे प्रभु ! आप कि–जो परब्रह्म हो, तिनसे

लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पंचभिर्भासि भूतैः ॥ ३७ ॥ योगेश्वरा ऊचः ॥ प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहंऽवेदापरेऽपि च ॥ ४० ॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ॥ तं यज्ञियं पंचविधं च पंचभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥ ४१ ॥

जो पुरुष अपनी भिन्नताको नहीं समझता, उस पुरुषसे बढ़कर, दूसरा कोईभी मनुष्य आपको प्रिय नहीं है, तथापि हे भक्तवत्सल ! एक वृत्तिवाली भक्तिसे भजन करनेवाले हम लोकोंपर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयमें जीवके अदृष्टके हेतु जिसके गुणोंका अनेक प्रकारसे भेद होता है, ऐसी मायाने जिनके स्वरूपमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव आदि भेद रचे हैं. परंतु स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदकी भ्रांति, गुण, कै उसका कारण कुछभी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ वेदब्रह्मने स्तुति की कि–सत्वगुणके स्वीकार करनहारे, धर्मादिकके उत्पादक, निर्गुण और जिनके तत्त्वको न तो मैं जानता हूं. और न कोई दूसरा जानता है. उन्हें प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ अग्निने स्तुति की कि–जिनके तेजसे

पदार्थ और इंद्रियोंके अधिष्ठानरूप आप मायाके पदार्थोंसे बिलकुल जुदे हो ॥ ३१ ॥ इंद्रने स्तुति की कि- हे अच्युत ! जगत्-पालक और मन व दृष्टिको आनंद देनेवाला तथा दैत्योंके नाश करनहारे ऊंचे उठायेहुए शस्त्रोंवाली आठ भुजावाला आपका यह स्वरूपभी अनुपपन्न ( बेफबता ) नहीं है किंतु उपपन्नही ( फबता हुआही ) है ॥ ३२ ॥ ऋत्विजोंकी स्त्रियोंने स्तुति की कि- हे यज्ञस्वरूप ! केवल आपके पूजनके वास्ते ब्रह्माजीने यज्ञ उत्पन्न किये हैं, पर आज वह यज्ञ दक्षपर क्रोध होनेके कारण महादेवजीने विध्वंस कर दिया. सो यह यज्ञ उत्सवरहित और मरघटसा महाअपवित्र हो गया है. तासों आपकी कमलसी पवित्र

इंद्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानंदकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदंडै-रुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशांतमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ॥ तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥ ३५ ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कांतया त्राहि नः ॥ त्वामृतेऽधीश नांगैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबंधो यथा पूरुषः ॥ ३६ ॥

दृष्टिसे पावन करो ॥ ३३ ॥ ऋषियोंने स्तुति की कि- हे भगवन् ! आपकी लीला बड़ी विचित्र है; क्योंकि आप स्वयं कर्म करते हो, तथापि उनसे आप लिप्त नहीं होते, आपके निर्लेप रहना संभवित है; क्योंकि- दूसरे लोक समृद्धिके वास्ते जिनका भजन किया करते हैं. वे लक्ष्मीजीभी स्वयं आपकाही अनुसरण करती हैं. तथापि आप उन्हें आदर नहीं देते ॥ ३४ ॥ सिद्धलोकोंने स्तुति की कि- क्लेशरूप दावानलसे जलाहुआ और तृष्णासे पीड़ायमान, यह हमारा मनरूप हाथी आपकी कथारूप शुद्ध अमृतकी नदीमें घुस जानेसे अब संसाररूप दावानलका स्मरणभी नहीं करता और उस नदीमेंसे बाहिरभी नहीं निकलता, किंतु मानों परब्रह्मके साथ एक हो गया हो ऐसे प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूतिने स्तुति की कि- हे लक्ष्मीके निवासरूप

मार्ग कि-जिसमें कोई विश्रामका स्थल नहीं है अनेक क्लेशरूप विषम स्थल हैं, कालरूप उग्र सर्प तक रहा है, सुखदुःखादिकरूप अनेक गढ़े हैं, खलपुरुषरूप घातक प्राणियोंका भय है और शोकरूप दावानल धधक रही है, उसमें जाताहुआ, तृष्णासे पीड़ित और विषयरूप मृगतृष्णाके जलवाले शरीर और घरके भारी बोझको उठायाहुआ यह अज्ञानी लोकोंका संघ (समूह) आपके चरणरूप स्थानको कब प्राप्त होवेगा ?॥ २८ ॥ महादेवजीने स्तुति की कि-हे वरद ! सर्वविषयोंमें वैराग्यवाले मुनिलोगोंकेभी अच्छी कामनासे आदरपूर्वक पूजने योग्य आपके चरणारविंदमें मैं मेरे मनको लगाये हूं, उस मुझको ये अज्ञानी

रुद्र उवाच ॥ तव वरद वरांघ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माविद्यलोकोपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥ भृगुरुवाच ॥ यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपंतः ॥ नात्मन् श्रितं तव विदंत्यधुनाऽपि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबंधुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥ ३१ ॥

लोक यदपि आचारभ्रष्ट कहते हैं तथापि आपकी अनुपम कृपासे उस बातको मैं कुछभी नहीं गिनता ॥ २९ ॥ भृगुऋषिने स्तुति की, कि- जिनकी गहन मायासे ज्ञानरहित भये हुए और अंधेरेमें पड़ेहुए ब्रह्मादिक देवताभी जिनके तत्त्वको अपनेमें रहने परभी अबतक जान नहीं सक्ते, ऐसे भक्तोंके आत्मा और बंधुरूप हरि हमपर कृपा करो ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि- पदार्थोंको भिन्न भिन्न रीतिसे जाननेवाली इंद्रियोंसे पुरुषके देखनेमें जो कुछ आता है. वह आपका स्वरूप नहीं है; क्योंकि ज्ञान,

१ तदेवोक्तं गीतासु । दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥ मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १ ॥ अर्थ सोही गीतामें भगवान्ने कहा है कि-गुणमयी और दैवी यह हमारी माया दुःखसे तरने लायक है तथापि जो पुरुष हमारीही शरणमें आ प्राप्त होते हैं वेही इस मायाको तर जाते हैं अर्थात् इस दुरत्यय मायाको हमारी शरण विना अन्यथा नहीं तर सक्ते ॥ १ ॥

करने लगे ॥ २३ ॥
होगयी है ऐसे वे लोग शिरपर हाथ जोड़कर, संभ्रमके कारण गद्गद्वाणीसे अधोक्षज भगवान्‌की स्तुति
यदपि इन ब्रह्मादिक लोकोंकी मन वाणीकी वृत्तियां भगवान्‌की महिमाको नहीं पहुँच सकतीं. तथापि उन्होंने अनुग्रह करनेके
वास्ते स्वरूप धारण कर, पधारेहुए भगवान्‌की अपनी बुद्धिके अनुसार स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञपति, जगत्‌के सरजनहारे, ब्रह्मा-
दिकोंके परम गुरु और सुनंद, नंद आदि पार्षदोंसे घिरेहुए भगवान्‌के निकट जाकर, दक्षने पूजाकी सामग्री अर्पण की. तब
भगवान्‌ने वह पूजाकी सामग्रीका पात्र अपने श्रीहस्तसे ग्रहण किया. तासों प्रसन्न हो, हाथ जोड़, दक्षप्रजापति बड़ी सावधा-

अप्यवर्ग्गवृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणंति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ द-
क्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ॥ सुनंदनंदाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे
प्रयतः कृतांजलिः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं
प्रतिषिध्य मायाम् ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवाऽऽत्मतंत्रः
॥ २६ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनंजन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ॥ ध-
र्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्प-
त्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ॥ द्वंद्वश्वभ्रे खलमृगभ-
ये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौ कस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥

नीसे स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ दक्ष बोला कि–जाग्रत् आदि अवस्थानसे रहित, अद्वितीय, भयरहित और केवल अपने
स्वरूपमें विराजमान, शुद्ध चैतन्यस्वरूप एक आपही हो. आप मायाका पराभव कर, स्वतंत्र होनेपरभी मायासे मनुष्य-
देहका नाटक धारण कर, उस मायामें रहनेसे मानों राग द्वेषादिक आपमें आगये हों, ऐसे प्रतीत होते हो ॥ २६ ॥
ऋत्विजोंने स्तुति की कि–हे निरंजन ! हे भगवन् ! नंदिकेश्वरके श्रापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह रखनेवाले हम धर्मके उत्पादक
और वेदके प्रतिपाद्य इस यज्ञरूप आपके स्वरूपकोही तो जानते हैं कि–जिसके वास्ते जुदे जुदे देवतानके नियम हुए हैं,
परंतु आपके परमतत्त्वको नहीं जानते ॥ २७ ॥ सभासदोंने स्तुति की, कि–हे शरणदेनहारे ! प्रभु ! यह संसाररूप

साथ यज्ञके कर्मका प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ वीर जो प्रमथ आदि उनके संसर्गका दोष निवृत्त हो जाय और यज्ञ सविस्तर पूर्ण हो जाय, इसलिये उन उत्तम ब्राह्मणोंने तीन कपालपर सिद्ध कियाहुआ विष्णुदेवताका पुरोडाश होमा ॥ १७ ॥ हे विदुर ! अध्वर्युने शाकल्य हाथमें लिया उस समय उसके साथ यजमानने शुद्धबुद्धिसे प्रभुका ध्यान किया तब हरि भगवान् वहां प्रगट हुए ॥ १८ ॥ जिसकी परोंमेंसे सामवेदके मंत्रोंका शब्द निकलता है, उस गरुड़पर विराजकर, भगवान् पधारे, उस समय भगवान्के तेजसे सब लोगोंके तेज मंद होगये थे और दिशायें तेजसे देदीप्यमान हो रही थीं ॥ १९ ॥ श्यामवर्ण, सुवर्णकी कटिमेखला पहिरे,

वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥ पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥ १७ ॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयंत्या दिशो दश ॥ मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमंडितकुंडलास्यः ॥ कंब्वब्जचक्रशरचापगदाऽसिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥ वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेंद्रत्र्यक्षनायकाः ॥ २२ ॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृतांजलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥

सूर्यकी कांतिवाला किरीट धारण किये, नीले केशपाशरूप भ्रमरकरि शोभायमान मुखवाले, कानोंमें कुंडल लसाये और कंचनके आभूषण धरे हुए, हाथोंमें शंख, कमल, चक्र, बाण, धनुष, गदा, खड्ग और ढाल धारण करनेसे कनैरके वृक्षके समान शोभायमान ॥ २० ॥ वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण किये, वनमाला पहिरे और उदारहास सहित अवलोकनकी कलासे सब जगत्को रमण कराते शोभा देते थे. और भगवान्के स्वरूपके दोनों तर्फ राजहंससे व्यजन ( पंखा ) और चँवर ढुर रहे थे और ऊपरकी तर्फ पूर्णचंद्रमासा श्वेत छत्र अतिशय शोभाको बढ़ा रहा था ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, इंद्र और महादेवजी जिनमें मुखिया हैं ऐसे, उन सब देवगण आदिनने भगवान्को आये देखकर, झट उठकर प्रणाम किया ॥ २२ ॥ भगवान्के तेजसे जिनकी कांतिकी छवि हीन

पुत्री सतीका स्मरण आ जानेसे उत्कंठाके कारण उसके नेत्रोंमें जल आ गया ॥ ११ ॥ फिर बड़े कष्टसे मनको रोककर, वह प्रेमसे विह्वल सुबुद्धि दक्षप्रजापति निष्कपट अंतःकरणसे महादेवजीकी स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ दक्ष बोला कि–अहो ! हे भगवन् ! मैंने तो यदपि आपका अपमान किया था, तथापि आपने मेरी उपेक्षा न करके, दंड दिया. यह बड़ा अनुग्रह किया. आप और विष्णु भगवान् जब तुच्छ ब्राह्मणोंकीभी उपेक्षा नहीं करते, तब नियमधारण करनेवाले उत्तम ब्राह्मणोंकी तो कैसे करो ? ॥ १३ ॥ वेद और ब्रह्मविद्याकी रक्षा करनेके वास्ते विद्या, तप और व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रथम आपने

॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥ १२ ॥ दक्ष उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दंडस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबंधुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥ १३ ॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ॥ तद्ब्राह्मणान्परमसर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदंडः ॥ १४ ॥ योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ॥ अर्वाक् पतंतमर्हत्तमनिंदयाऽपादृष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान्स्वकृतेन तुष्येत् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणाचानुमंत्रितः ॥ कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥ ॥ १६ ॥

अपने मुखसे उत्पन्न किया है. अतएव हे प्रभु ! जैसे हाथमें दंड लेकर, ग्वाल गौवनका पालन करता है ऐसे आप सर्वविपत्तियोंसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हो ॥ १४ ॥ तत्त्वज्ञानको नहीं जाननेवाले मैंने यदपि सभाके बीच दुर्वचनरूप बाणोंसे आपको दुःख दिया था. तथापि उस अपराधको न गिनकर, आपने मुझे महात्मा पुरुषोंकी निंदा करनेके प्रभावसे नरकमें पड़ते हुएको कृपादृष्टिसे बचाया. वे आप अपने अनुग्रहसे स्वयमेव प्रसन्न होओ; क्योंकि उसका बदला देनेमें मैं समर्थ नहीं हूं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–इसप्रकार उस प्रजापतिने महादेवजीसे प्रार्थना कर, ब्रह्माजीकी संमतिसे उपाध्याय, ऋत्विज और अग्निके

यज्ञके भागको मित्र देवताकी आखसे देखे ॥ ३ ॥ पूषा देवता यजमानके दांतोंसे पिष्ट खाया करे. और देवता कि- जिन्होंने मुझे यज्ञका अवशेष दिया है. उनके सब अंग पीछे हो जायँगे ॥ ४ ॥ परंतु जिनके अंग बिलकुल कट गये हैं. उनकी बाहुका काम अश्विनीकुमारोंकी बाहुसे और हाथोंका काम पूषा देवताके हाथोंसे चलेगा. अध्वर्यु व ऋत्विज सब ठीक हो जायंगे. और भृगुकी डाढ़ी बकरेकीसी होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-महादेवजीके ये वचन सुनकर, सब प्राणीमात्र प्रसन्नचित्त होकर, हे विदुर! साधु साधु ( वाह ! वाह ! ) ऐसा शब्द कहने लगे ॥ ६ ॥ फिर देवता और ऋषियोंने महादेवजीसे प्रार्थना की

पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वांगा ये म उच्छेषणं ददुः ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवंत्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढ्वांसमामंत्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥ ७ ॥ विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः ॥ संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥ ८ ॥ संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥ ९ ॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कंठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥ ११

कि-आप पधारकर, सर्वकार्य सिद्ध करो, तब उनकी प्रार्थनासे महादेवजी ब्रह्माजीको साथ लेकर, उनके साथ यज्ञबाटमें आये ॥ ७ ॥ जो भगवान् महादेवजीने कहा था. वह सब उसी प्रकारसे किया गया और प्रजापति दक्षकी धड़से यज्ञपशुका शिर सांधा गया ॥ ८ ॥ शिर सांधतेही महादेवजीने उसकी तर्फ देखा तो दृष्टि पड़तेही वह प्रजापति दक्ष मानों निद्रामेंसे उठ खड़ा होता है, वैसे तुर्त उठ खड़ा हुआ और आगे महादेवजीको उसने देखा ॥ ९ ॥ यदपि महादेवजीके साथ बैर रखनेसे उसका मन मलिन हो गया था. तथापि महादेवजीकी दृष्टि पड़तेही उसका मन शरदृऋतुके ह्रद ( तालाव ) की भांति निर्मल हो गया ॥ १० ॥ उसने महादेवजीकी स्तुति करनेका मनमें विचार किया. परंतु प्रेमके कारण कुछ नहीं कर सका और अपने मरीहुई

था, उसीसे आपने जिसका विध्वंस किया है ऐसे, इस अपूर्ण प्रजापति दक्षके यज्ञका उद्धार करो ॥ ५० ॥ यजमान तो जीता हो जाय और भगकी आंखे पीछी अच्छी हो जायँ, भृगुकी डाढ़ी पीछी आजाय और पूषाके दांत पहलेके जैसे हो जायँ ॥ ५१ ॥ हे मन्यो ! देवता और ऋत्विजोंके जो अंग शस्त्र व पत्थरोंसे टूट गये हैं वेभी आपकी कृपासे पीछेकी तरह ठीक हो जायँ ॥५२॥ हे रुद्र ! हे यज्ञके विध्वंसक ! जो कुछ यज्ञमें अवशेष पड़ा रहेगा. वह सब आपका भाग है, ऐसे ये स्वीकार करते हैं. सो इस भागके देनेसे आज यह यज्ञ पूर्ण होना चाहिये॥ ५३ ॥ इति श्री० भा०म० चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषा-

जीवताद्यजमानोयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहंतु पूष्णो दंताश्च पूर्ववत् ॥ ५१ ॥ देवानां भग्नागात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ॥ भवताऽनुगृहीतानामाशु मन्योस्त्वनातुरम् ॥ ५२ ॥ एष ते रुद्रभागोस्तु यदुच्छिष्टाऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥ इति श्रीभागवते म० च० रुद्रसांत्वनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिंतये ॥ देवमायाभिभूतानां दंडस्तत्र धृतो मया ॥ २ ॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥

टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें भगवान्कें प्रगट होनेपर दक्ष और महादेवजी आदि सबने स्तुति की, तदनंतर उन्होंने दक्षसे यज्ञका प्रारंभ कराया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हेमहाबाहु ! विदुर ! इस प्रकार ब्रह्माजीने प्रार्थना की. तब प्रसन्नहो हँसकर, महादेवजीने ब्रह्माजीसे कहा कि–सुनिये ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि–हे प्रजेश ! मैं इन मूर्खोंके अपराधको न तो वर्णन करता हूं. और न विचारता हूं; क्योंकि ये भगवान्की मायासे मोहित हो रहे हैं इसलिये इस समय इनको दंड मैंने अवश्य दिया है ॥ २ ॥ प्रजापति दक्षका शिर जलगया है. इस लिये दक्षका शिर बकरेके मुखका हो जावे. और भगदेवता अपने

हो. तब किस हेतुसे किसी पुरुषको इस नियमसे विपरीत फल मिलजाता है ? ॥ ४५ ॥ आपके चरणोंमें चित्त रखनेवाले, सर्व-प्राणीमात्रमें आपकोही देखनेवाले और सर्वजगत्‌को अपने स्वरूपसे अभिन्न देखनेवाले सत्पुरुषोंकाभी बहुधा अज्ञानियोंकी नांई क्रोधसे पराभव नहीं हो सकता. तब आपकी तो बातही कहां ? ॥ ४६ ॥ अतएव भेदबुद्धिवाले, केवल कर्ममें दृष्टि रखनेवाले और दुष्टवासनावाले तथा दूसरेकी संपदा देखकर, हृदयमें निरंतर जलनेवाले मर्मभेदी पुरुष, दूसरे लोकोंको दुर्वचनोंसे चाहे



न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४६ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान्दुरुक्तैर्वितुदंत्यरुंतुदास्तान्मावधीद्दैववधान्भवद्विधः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरंतया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वंति तत्र ह्यनुकंपया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरंतयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४९ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनोः प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ५० ॥

पीड़ित करें, तथापि दैवसे भ्रष्ट इन लोकोंको आप जैसे महापुरुषोंका धर्म है कि-न मारें ॥ ४७ ॥ भगवान्‌की अपारमायासे मोहित लोक भेदबुद्धि राखें, तौभी महात्मा पुरुष अपनी कोमलतासे , 'यह दैवनेही करवाया है ' ऐसे समझकर, उनके ऊपर दयाही रखते हैं. पर उन्हें मारते नहीं ॥ ४८ ॥ इसीलिये हे प्रभु ! मायासे हतबुद्धि और केवल कर्मोंमें लगे हुए लोकोंपर इस अपराधमें क्षमा करो; क्योंकि आपकी बुद्धि परमपुरुष भगवान्‌की अपारमायासे मोहित नहीं है. अतएव आप सब जानते हो ॥ ॥ ४९ ॥ हे प्रभु ! यह यज्ञ कि-जिसमें यजन करनेवाले मूर्खलोकोंने यज्ञका फल देनेवाले आपको यज्ञका भाग नहीं दिया



१ क्योंकि- नीतिका ऐसा वचन है ॥ श्लोक- सुजनो न याति वैरं परहितकार्ये विनाशकालेपि ॥ छेदेपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥ १ ॥ अर्थ-सुजन-जन अपने विनाशकालमेंभी दूसरेके हितकार्यमें वैर नहीं करते किन्तु हितही करते हैं. जैसे चन्दनका वृक्ष काटनेपरभी कुल्हाड़ीका मुख सुगन्धित कर देता है ॥

आश्रय ले, विराजमान ) उन मननशील ज्ञानी पुरुषोंमें मुख्य महादेवजीको लोकपाल और मुनिलोकोंने कर जोड़कर, प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ बड़े बड़े देवता और दैत्य जिनके चरणमें प्रणाम करते हैं ऐसे, वे महादेवजी ब्रह्माजीको आये देखकर, झट उठ खड़े हुए. और जैसे वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था, वैसे शिरसे प्रणाम किया ॥ ४० ॥ इसीतरह दूसरे सिद्धलोग और बड़े बड़े ऋषि कि– जो महादेवजीके पास बैठे थे, उन्होंनेभी ब्रह्माजीको प्रणाम किया. इस प्रकार जिनको सबने नमस्कार किया है ऐसे, ब्रह्माजीने हँसते हों ऐसे सर्वलोकोंसे नमस्कृत चंद्रशेखर महादेवजीसे कहा ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि– मैं आ-

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवंदितांघ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाभिवंदनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥ ४० ॥ तथापरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समंतादनुनीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशांकशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरंतरम् ॥ ४२ ॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४३ ॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥ ४४ ॥ त्वं कर्मणां मंगलमंगलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ॥ अमंगलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४५ ॥

पको जानता हूं कि– आप जगत्के स्वामी और जगत्की शक्ति और बीजरूप प्रकृति पुरुषकेभी कारण और भेदरहित तथा निर्विकार ब्रह्मरूप हो ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! विभागरहित इन प्रकृति-पुरुषमें क्रीड़ा करतेहुए आपही मकड़ीकी नाईं इस जगत्को रचते हो, पालते हो और लीन करते हो ॥ ४३ ॥ वेदकी रक्षा करनेके वास्ते आपनेही दक्षके द्वारा यज्ञ करवाया था और जगत्की सब मर्यादाभी आपकीही बांधी हुई हैं. कि–जिन मर्यादानको ब्राह्मणलोक नियमपूर्वक श्रद्धासे पाले जाते हैं ॥ ४४ ॥ हे मंगलरूप ! उत्तम कर्म करनेवालोंको स्वर्ग अथवा मोक्षके देनेवाले और निकृष्ट कर्म करनेवालोंको भयंकर नरक देनेवालेभी आपही

वटका वृक्ष देखा ॥ ३१ ॥ यह वटका वृक्ष सौ योजन ऊंचा और पौनसौ योजन विस्तारवाला है. इसके चौतर्फ अचल छाया सदा बनी रहती है, कोई पक्षीमात्रका उसमें घोसला नहीं है. और न कहीं धूप देखनेकोभी है ॥ ३२ ॥ उस महायोगमय वटके तले मुमुक्षु लोगोंके शरणरूप महादेवजी विराजे हैं कि- जो मानों क्रोधको त्यागकर, कालही बैठा है ऐसे प्रतीत होते हैं. उनको देवताननें देखा ॥ ३३ ॥ वहां शांतरूप सनंदन- आदि महासिद्ध शांतस्वरूप महादेवजीकी उपासना करते हैं. और राक्षस और यक्षोंका राजा महादेवजीका मित्र कुबेरभी सेवा करता है ॥ ३४ ॥ कैसे हैं वे महादेव कि- विद्या, तप और

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताऽचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवांतकम् ॥ ३३ ॥ सनंदनाद्यैर्महासिद्धैः शांतैः संशांतविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ३४ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरंतं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमंगलम् ॥ ३५ ॥ लिंगं च तापसाभीष्टं भस्मदंडजटाजिनम् ॥ अंगेन संध्याऽभ्ररुचा चंद्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३६ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्मसनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचंतं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥ ३७ ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३८ ॥ तं ब्रह्म निर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्रांजलयः प्रणेमुः ॥ ३९ ॥

योगमार्गके प्रवर्तक हैं, जगत्के मित्र, प्रेमसे जगत्का कल्याण करनहारे और सर्वेश्वर हैं ॥ ३५ ॥ भस्म, दंड, जटा और मृगचर्मरूप तपस्वियोंके अभीष्ट चिन्ह धारण किये, संध्यासमयके बादलकीसी कांतिवाले अपने शरीरसे चंद्रमाकी रेखा धरे हैं॥३६॥ तथा दर्भके आसनपर विराजमान हैं और नारदजी जो प्रश्न करते हैं; उनको सत्पुरुषोंके सुनते सनातन परब्रह्मका उपदेश कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ दाहिनी साथलपर बांयां चरण रख और बायें घुटनेपर अपनी भुजाधर, हाथमें करमाला धारण किये तर्कमुद्रासे उपलक्षित होकर, विराजे हैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्मानंदमें एकाग्र होकर तथा योग पदका ( बायां घुटना स्थिर रखनेके लिये आसा

१ एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थितम् ॥ इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् ॥ १ ॥ इसका अर्थ ऊपर टीकामें देखना ॥ इत्युक्तं योगशास्त्रे ॥

२ तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चांगुलीः ॥ प्रसार्य बन्धनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति मान्त्रिकाः ॥ अर्थ-तर्जनी ( अंगूठेके पासकी अंगुली ) और अंगूठा इनके अग्रभागमें अंगुली परस्पर जोड़के, बन्धनको फैलावे. इसको मंत्रवेत्तालोग तर्कमुद्रा कहते हैं ॥

नंदा और अलकनंदा नाम दो नदियां उस नगरीके बाहिरकी तरफ बहरही हैं ॥ २४ ॥ कि–जिन नदियोंमें हे विदुर ! रतिसे व्याकुल भयीहुई देवतानकी स्त्रियां अपने विमानोंमेंसे उतर उतर कर, क्रीड़ा करती हैं. और अपने पतियोंको जलसे सींचा करती हैं. यानी भिगोती हैं ॥ २५ ॥ देवांगना जो उन नदियोंमें स्नान करती हैं. तिससे उनके शरीरकी नवीन केसर जानेसे उन नदियोंका जल पीलासा सुगंधित रहा करता है. और उसी सुगंधिके हेतु हाथी प्यास विनाभी आप जल पीते हैं. और हथिनियोंको पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जैसे आकाशमें विजलीसहित बादल शोभा देवें, ऐसे रौप्य ( चांदीके ) सुवर्णके और अमूल्य

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडंति पुंसः सिंचंत्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥ २५ ॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिंजरम् ॥ वितृषोऽपि पिबंत्यंभः पाययंतो गजा गजीः ॥ २६ ॥ तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २७ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगंधिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २८ ॥ रक्तकंठखगानीकस्वरमंडितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदंडजलाशयम् ॥ २९ ॥ वनकुंजरसंघृष्टहरिचंदनवायुना ॥ अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥ ३० ॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥ प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वात आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३१ ॥

रत्नोंके सैकड़ों विमानोंमें बैठीं यक्षोंकी स्त्रियां जहां शोभा दे रही हैं ॥ २७ ॥ उस कुबेरकी अलकानाम पुरी और सौगंधिक नाम बाग कि–जिसमें आनंदकारी विचित्र पुष्प, फल व पत्रवाले कामदुघ ( मनोरथ पूर्ण करनेवाले ) वृक्ष शोभा दे रहे हैं ॥ २८ ॥ कलकंठ (कोकिल) का वृंद सुंदर कूज रहा है, उस कूजनको शोभा देता हुआ भ्रमरगण मधुर गुंज रहा है. कमलवनवाले जलाशय शोभा दे रहे हैं ॥ २९ ॥ वनगजके रगड़ खानेसे हरिचंदनकी सुगंधिमिश्रित वायुके प्रभावसे यक्षोंकी स्त्रियोंको मन अतीव कामातुर हो रहा है ॥ ३० ॥ वैदूर्य मणिकी सीढ़ीवाली कमलमालासे शोभायमान बावड़ियां बन रही हैं. ऐसे राजहंसोंके प्यारे उस बागको छोड़कर, किंपुरुष जहां आ रहे हैं, ऐसा वह प्रदेश देखनेके अनंतर उन्होंने बहुत समीपमें एक

नागकेशर, चंपा, गुलाब ( सेवती ), अशोक बकुल ( मोरसिरी ), कुंद, कुरबक ॥१५॥ सुनहरी रंगके सौपँखुरीवाले कमल, अच्छी अच्छी बांसोंकी जातियां, कुब्जक, मल्लिका, माधवी इनकरके भूषित ॥ १६ ॥ और पनस ( कटहर ), उदुंबर ( गूलर ), अश्वत्थ ( पीपर ), प्लक्ष ( पकरिया ) बट, हींग, भूर्ज, औषधियां, सुपारी, राजपूर, जामुन, ॥ १७ ॥ खजूर, आम्रातक ( आंवला ), आम्र, प्रियाल ( दाख ), मधुक ( मौल ) और इंगुद ( इंगुवा ) आदि अनेक वृक्षोंकी शोभा बन रही है. तथा औरभी अनेक जातिके वृक्षोंकी तथा बांस, कीचक ( पवनसे बाजते हुए बांस ) ॥ १८ ॥ व कुमुद, उत्पल कल्हार, व शतपत्रजाति कमलवनकी समृद्धि छा

स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मंडितम् ॥ १६ ॥ पनसोदुंबराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जंबुभिः ॥ १७ ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः ॥ द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ १८ ॥ कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृंदोपशोभितम् ॥ १९ ॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेंद्रैर्ऋक्षशल्यकैः ॥ गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥ २० ॥ कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः ॥ कदलीषंडसंरुद्धनलिनीपुलिनाश्रियम् ॥ २१ ॥ पर्यस्तं नंदया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥२२॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ॥ वनं सौगंधिकं चापि यत्र तन्नामपंकजम् ॥ २३ ॥ नंदा चालकनंदा च सरितौ बाह्यतः पुरः ॥ तीर्थपादपदांभोजरजसाऽतीव पावने ॥ २४ ॥

रही है. सरोवरियोंमें पक्षिझुंडके कल कूजनकी शोभा छा रही है ॥ १९ ॥ हरिण, बन्दर, शूकर, सिंह, रीछ, श्याही, गवय ( लीलगाह ), कस्तूरीमृग, बाघ और आरणे भैसे आदि फिर रहे हैं ॥ जिनके कानोंमें आंत है वे पशु, एक पैरवाले जानवर, घोड़ाके समान मुखवाले जीव अर्थात् किन्नर, कस्तूरीमृग, कदली ( केलाके ) वनसे घिरेहुए जलाशयोंके तट शोभ रहे हैं ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ और सतीके स्नान करनेसे अतिपवित्र जलवाला नंदानाम गंगाका प्रवाह जिसे घेर रहा है ऐसे महादेवजीके कैलास पर्वतको देखकर, देवतानको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २२ ॥ और वहां उन्होंने अतिरमणीय अलका नाम कुबेरकी पुरी देखी. और वहां सौगंधिक नाम कमलोंवाला सौगंधिक नाम वन देखा ॥ २३ ॥ हरि भगवानके चरणारविंदकी रजसे अति पवित्र

जानते हो और न दूसरे प्राणी और न मुनि जानते हैं. वहां कौन कछु उपाय कर सकता है ? ॥ ७ ॥ वे ब्रह्माजी इसप्रकार देवतानको आज्ञा दे, उन्हें और पित्रीश्वर व प्रजापतियोंको साथ ले, अपने ब्रह्मलोकसे महादेवजीके विराजनेका परम प्रिय स्थान जो पर्वतोंमें उत्तम कैलासनाम पर्वत है वहां पधारे ॥ ८ ॥ जहां जन्म, औषधि, तप, मंत्र और योगकी सिद्धियोंवाले देवता, किन्नर, गंधर्व और अप्सरा सदा निवास करते हैं ॥ ९ ॥ जहां अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र रंगवाले पर्वतोंके शिखरोंमें अनेक प्रकारकी मणियां शोभ रही हैं. और अनेक प्रकारके वृक्ष, लता और गुच्छे लटक रहे हैं और अनेक

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥ ८ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगंधर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥ नानामणिमयैः शृंगैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकंदरसानुभिः ॥ रमणं विहरंतीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥ मयूरकेकाभिरुतं मदांधालिविमूर्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकंठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयंतमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजंतमिव मातंगैर्गृणंतमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मंदारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥ चूतैः कदंबैर्नीपैश्च नागपुन्नागचंपकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुंदैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥

प्रकारके पशुओंके झुंड दौड़ रहे हैं ॥ १० ॥ अनेक निर्मल झरने बह रहे हैं, अनेक गुफायें और शिखर शोभायमान हैं. और जहां सिद्ध पुरुषोंकी स्त्रियां अपने पतियोंके साथ अतिसुंदर रीतिसे क्रीड़ा कर रही हैं ॥ ११ ॥ मयूर अपनी केका वाणी बोल रहे हैं. मदसे अंध भये हुए भौंरे गुंज रहे हैं, कोकिला 'कुहू' शब्द कह रहीं हैं, पक्षी कूज रहे हैं. ॥ १२ ॥ मनवांछित कामना पूर्ण करनहारे वृक्षोंकी शाखायें ऐसी दीख रही हैं कि-मानों ऊंचे हाथ करके पक्षियोंको यह पर्वत बुला रहा है, हाथियोंसे वह पर्वत चलताहो ऐसे प्रतीत होता है. झरने ऐसे प्रतीत होते हैं कि-मानों यह पर्वत बोल रहा है ॥ १३ ॥ वहां मंदार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताल, कोविदार, ( लालकचनार ) असन, अर्जुन, ॥ १४ ॥ आम, कदंब, नीप, ( नील अशोक ) नाग,

छठे अध्यायमें ब्रह्माजीने देवतानके साथ महादेवजीके समीप जाकर, दक्षादिकनके जीवित आदिके वास्ते आदरपूर्वक महादेवकी सांत्वना करनेके हेतु प्रार्थना की. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-फिर महादेवके सैन्यसे पराजित भयेहुए और त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ और मुद्गर, आदि शस्त्रोंसे ॥ १ ॥ छिन्न भिन्न भये हुए तथा क्षतव्याप्त अर्थात् घावोंसे भरे सब देवतानने भयसे व्याकुल होकर, ऋत्विज और सभासदोंके साथ ब्रह्माजीके निकट जाकर, नमस्कारपूर्वक सर्व वृत्तांत निवेदन किया ॥ २ ॥ ब्रह्माजी और जगत्‌के आत्मा नारायण इस भविष्य वृत्तांतको प्रथमसेही जान गये थे. इसलिये वे दक्षके यज्ञमें

मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ संछिन्नभिन्नसर्वांगाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥ तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीतांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतंत्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥

गयेही नहीं ॥ ३ ॥ देवतानकी पुकार सुनकर, ब्रह्माजीने कहा कि-यदि तेजस्वी पुरुषने अपराध किया होवे तौभी जो लोक उसका पीछा अपराध करना चाहैं उनकी इच्छाका फल प्रायः अच्छा नहीं होता ॥ ४ ॥ तथापि तुम कि- जिन्होंने यज्ञमें भाग लेनेवाले महादेवको यज्ञके भागसे टाल दिया है, वे तुम शुद्ध मनसे उनके चरणोंमें गिरकर, तुर्त प्रसन्न होनेवाले उन महादेवजीको प्रसन्न करो ॥ ५ ॥ यज्ञका पीछा अनुष्ठान करनेकी इच्छा होवे तो हृदयमें दुर्वचनोंसे विंधे हुए और स्त्रीरहित भयेहुए उन महादेवके समीप जाकर, क्षमा मांगो कि- जिन महादेवजीके क्रोधसे लोकपालसहित लोकोंका नाश हुआ करता है ॥ ६ ॥ उन स्वतंत्र महादेवजीके तत्त्व और बल पराक्रमके प्रमाणको न तौ मैं ( ब्रह्मा ) जानता हूं और न यज्ञ भगवान् जानते हैं, न तुम

भगदेवताको पृथ्वीपर पछाड़के, भगवान् वीरभद्रने नेत्र निकाल लिये; क्योंकि शाप देतेहुए दक्षको उसने सभामें आंखोंसे सूचना दी थी ॥ २० ॥ और पूषाके दांत तोड़ डारे बलभद्रजीने जैसे कलिंगदेशके राजाके दांत गिरा दिये थे, ऐसे पूषाके दांत तोड़े गये; क्योंकि यह महादेवजीको शाप देते समय दांत दिखायके हंसा था ॥ २१ ॥ दक्षकी छातीपर चढ़के वीरभद्र तीक्ष्ण शस्त्रसे उसका शिर काटने लगा तौभी उस समय नहीं काट सके ॥ २२ ॥ जब अस्त्रोंसहित शस्त्रोंसेभी उसकी चर्म मात्र

भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दंतान्कालिंगस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥ आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिंदन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यंबकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥

नहीं कटी. तब शस्त्र अस्त्रसे उसको अवध्य जानकर, हर पशुपति वीरभद्रने बड़ी बेर विचार किया ॥ २३ ॥ फिर यज्ञके हेतु संज्ञपन योग्य यानी कंठनिष्पीड़न आदि मारनेका उपाय जानके, वीरभद्रने यजमानरूप पशुका शिर कायासे उसी उपायसे यानी मरोड़के उतार लिया ॥ २४ ॥ वीरभद्रके उस कार्यकी प्रशंसा करनेवाले भूत, प्रेत, पिशाचोंके साधुवाद यानी बड़ा हर्ष हुआ और दक्षके पक्षमें शोक हुआ ॥ २५ ॥ वीरभद्रने कुपित होके, दक्षका शिर दक्षिणाग्निमें होम दिया, इस प्रकार वे देवयज्ञको दग्ध करके, कैलासको चले ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥

लगे ॥ १२ ॥ हे विदुर ! इतनेहीमें अनेक आयुधोंवाले, काले, पीले और मकरके सदृश उदर और मुखवाले, वामन आदि अनेक प्रकारके रुद्रगणोंने उस महायज्ञको आय घेरा ॥ १३ ॥ कितने एक पार्षदोंने प्राग्वंश, यानी यज्ञशालाके पूर्वपश्चिमके स्तंभोमें लगा और पूर्वपश्चिमकी तरफ विस्तार जिसका ऐसा जो काष्ठ, किन्हींने पत्नीशाला, जो यज्ञशालाके पश्चिमतरफ थी उसे और दूसरोंने सभामंडप, यानी जो यज्ञशालाके आगल था. किन्हींने आग्नीध्रशाला, जो सभाके आगे हवि रखनेकी जगा. तिससे उत्तर थी. किन्हींने क्रीड़ास्थान, अर्थात् यजमानगृह और किन्हींने पाकभोजनशाला तोड़ डारी ॥ १४ ॥ किन्हींने

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिंगैः पिशंगैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥ केचिद्बभंजुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुंडेष्वमूत्रयन्केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अवाधंत मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ॥ अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबंध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चंडीशः पूषणं देवं भगं नंदीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ॥ भृगोर्लुलुंचे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥

यज्ञके पात्र फोर डारे. और कोईने अग्निका नाश कर डाला. कई तौ यज्ञके कुंडोंमें पेशाब करने लगे. और कई वेदी तथा मेखलाको तोड़ने लगे ॥ १५ ॥ कई मुनिओंको मारने लगे. कई पत्नियोंको डराने लगे. कई खड़े और भागते देवताओंको पकड़ने लगे ॥ १६ ॥ भृगुको मणिमान्ने बांध लिया. वीरभद्रने दक्षको दबालिया. चंडीशने पूषादेवको और नंदीश्वरने भगदेवताको पकड़लिया ॥ १७ ॥ उन पार्षदोंने देख देखके ऐसे पत्थर मारे कि- जिससे पीड़ित होके ऋत्विज, देवतासहित सभापति सब चारोंतरफ भाग गये ॥ १८ ॥ हाथमें तौ स्रुवा है और यज्ञ कररहा है ऐसे, भृगुऋषिकी डाढ़ी भगवान् वीरभद्रने उखाड़ ली; क्योंकि ये डाढ़ी दिखायके सभामें हँसे थे ॥ १९ ॥

पीछे चले हैं, ऐसे वीरभद्रने भयंकर नाद किया और मृत्युको मारे ऐसे त्रिशूलको उठाय, पावोंके घूघरके शब्दसे दिशाओंको शब्दायमान करता दौड़ा ॥ ६ ॥ ऋत्विज, यजमान, सभापति, ब्राह्मण और ब्राह्मणोंकी स्त्रियां रजको उड़ती देखके, विचार करने लगीं कि-उत्तर दिशामें यह अंधेरा क्या है ? अरे ! यह रज कहांसे आयी ? ॥ ७ ॥ वायु तो नहीं और चोरभी नहीं हैं, क्योंकि भयंकर दंडका देनेवाला राजा प्राचीनबर्हीं जीता है. और गायें शीघ्र ले जानेकाभी संभव नहीं है. तो फिर यह रज कहांसे आयी ? लोकका क्या प्रलय तो नहीं हो जायगा ? ॥ ८ ॥ प्रसूति यानी दक्षपत्नी है मुख्य जिनमें ऐसी स्त्रियां उद्विग्न-

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वांति न हि संति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदंडः ॥ गावो न कल्यंत इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥ यत्पश्यंतीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥ यस्त्वंतकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेंद्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥

चित्त होकर, बोलीं कि-जो अपनी पुत्रियोंके देखते निरपराध अपनी सुता सतीका प्रजेश दक्षने अपमान किया उस पापका यह फल है ॥ ९ ॥ जो महादेवजी प्रलयकालमें जटाजूटको बिखेरकर, अपने त्रिशूलके अग्रमें दिग्गजोंको पोह लेते हैं और अस्त्र उठायेहुए भुजारूप ध्वजाओंको फैलाके जो ऊंचा अट्टाट्टहास करते हैं कि-जिस हासके कड़कड़ाट शब्दसे दिशायें फटजाती हैं ॥ १० ॥ बिखेर दिया है सब नक्षत्रमंडल जिन्होंने ऐसे, क्रोधव्याप्त भृकुटीसे और कराल दाढ़ोंसे दुःसह ऐसे असह्य तेजवाले महादेवजीको कोपायमान और अमर्षयुक्त करके, क्या ब्रह्माकाभी कल्याण हो सक्ता है ? ॥ ११ ॥ ऐसे उद्विग्नदृष्टि होके, लोक बहुतही बोल रहे थे, इतनेहीमें महात्मा दक्षके यज्ञमें भयको सूचन करनहारे बड़े बड़े उत्पात आकाश और पृथ्वीमें सर्वत्र होने

जवाली जटाको उखेड़के पृथ्वीपर पटकी ॥ २ ॥ उस जटामेंसे वीरभद्र उत्पन्न हुआ. उसका अतिउच्चशरीर आकाशको स्पर्श करता था. हजार उसके भुजा थीं. कृष्णवर्ण, तीन सूर्यके समान उसके नेत्र, भयंकर उसकी डाढ़ें. जलतेहुए अग्निके समान उसके केश. कपालमाला धरे और अनेक आयुध ऊंचे उठायेहुए, उसने प्रार्थना की कि– ॥ ३ ॥ मैं क्या करूं यानी मुझे क्या आज्ञा है ? ऐसे कहकर, हाथ बांधके खड़ा हुआ. तब वीरभद्रको भगवान् भूतनाथने आज्ञा दी कि– यज्ञसहित दक्षका नाश कर. हे रुद्र-

ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥ तं किं करोमीति गृणंतमाह बद्धांजलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥ ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदाऽऽत्मानमसंगरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदंतकांतकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणांघ्रिः ॥ ६ ॥

भट ! तू मेरे पार्षदोंमें मुख्य है. और मेरे अंशसे प्रकट हुआ है. इसवास्ते दक्षको मारसकेगा ॥ ४ ॥ हे विदुर ! कोपायमान महादेवजीसे ऐसे आज्ञा पाकर, समर्थ देवताओंके देव शिवजीकी प्रदक्षिणा करके, वीरभद्र चला. उससमय अप्रतिहत वेगसे वह अपने आत्माको दूसरे महाबली लोगोंकी शक्तिको नाश करनेको समर्थ समझता था ॥ ५ ॥ नाद करतेहुए रुद्रपार्षद जिसके

---

१ कवित्त–वीरभद्र रुद्रकी जटानसों भये महान उच्च है शरीर अति छूवै जो आकाशहीं ॥ हैं सहस्रबाहु कृष्ण वर्ण भीमडाढ़ अरु तीननन भानुके समान सुप्रकाशहीं ॥ धरे अहैं निजगरेमाहिँ सुकपालमाल अग्निके सदृश राजैं जासु केशपाशहीं ॥ कहै रघुवंश लिये अस्त्र शस्त्र बहुभांति कह्यो यह हाथन उठाय निजईशहीं ॥

२ ये महेश का निदेश अहै मोहिँ यह करि कर जोरि शंकरके सन्मुख खड़ो भयो ॥ यज्ञसह दक्षनाश करहु हे रुद्रभट वीरभद्र रुद्र लखि आयसु यही दयो ॥ दक्षमारवेके योग्य यासे वीर जासे तुम पार्षदप्रधान मम अंशसे अहौ जयो ॥ यों निजेशको निदेश लहि कहै रघुवंश शिवको परिक्रमकै बहु बेगसे गयो ॥

३ परशक्तिनाशी अविनाशी निजवेग मानि रुद्रगणसाथ भीमनादहू कियो बड़ो ॥ कालकाल शूल गहि पांवके विभूषणसों दिशन शब्दायमान करत बहू दड़ो ॥ क्षार अन्धकार बहुघोर चहुँ ओर भरो लखि सभ्यजन कहैं तम ये कहां पड़ो ॥ आई यहां कहां धूर है तो न समीर यह चोरहू न भूपति प्रचीनबर्हि है कड़ो ॥

तीके प्राणत्यागको देखके, उसके पार्षद आयुध उठायके, दक्षको मारनेके लिये उठे ॥ ३१ ॥ आतेहुए पार्षदोंके वेगको देखके, भगवान् भृगुऋषिने यज्ञके नाश करनेवालोंका नाश करनहारे यजुर्वेदके मंत्रसे दक्षिणाग्निमें होम किया ॥ ३२ ॥ अध्वर्यु (भृगु) के होम करतेही तपसे अमृतको प्राप्त होनेवाले हजारों ऋभुनाम देवता बड़े वेगके साथ उठे ॥ ३३ ॥ जलते लकड़ोंसे ब्रह्मतेजकरि देदीप्यमान ऋभुदेवताओंके मारेहुए यक्षोंसहित सब भूतप्रेत पार्वतीपतिके पार्षद दिशाओंमें भाग गये ॥ ३४ ॥

तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कंधे सतीदेहोत्सर्गोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गंभीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥

इति श्रीभागवते म० चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवे अध्यायमें सतीके देहत्यागकी वार्ता सुनकर, महादेवजीने क्रोध करके वीरभद्रनाम रुद्रको प्रगट किया. और उस वीरभद्रने दक्षका वध किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–दक्षसे अपमान पाकर, पार्वतीका देहत्याग और उसके यज्ञसंबंधी ऋभुदेवताओंसे अपने पार्षदोंकी सेनाका विद्रावण यानी भाग जाना यह बात सुनके, शिवजीको अपार क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ होंठोंको चाबते हुए क्रोध भरे शिवजीने भयानकरूपसे अट्टहासके साथ गंभीर नाद करके बिजुली और वन्हिकी ज्वालाके समान ते-

---

१ कवित्त–तहँ दक्षअनादर पाय सती निजदेहको त्याग कियो जबहीं ॥ अरु याज्ञिकऋभूनकी उत्कट भीतिसे पार्षदसेन भगी सबहीं ॥ यह नारदसे सुनिकै जगशंकर शंकर क्रोध कियो तबहीं ॥ छवि विज्जुछटासी जटा पटकी रघुवंश सु ओष्ठनको चबहीं ॥

इसतरह महत्पुरुषोंके पूज्य शिवजीसे वारंवार आदरसे गोदीमें लियेहुए अपने देहको दक्षके क्रोधसे त्याग करनेकी इच्छावाली उदार मन सतीने गात्रों में वायु तथा अग्नि धारण की॥ २६ ॥ फिर जगत्गुरु अपने भर्तार श्रीमहादेवजीके चरणारविंदके मकरंदका चिंतवन करतीहुई निष्पाप सतीनें दूसरा कुछभी नहीं देखा. उस समय समाधिके अग्निसे देह तुरत जलगया ॥ २७ ॥ उस आश्चर्यको देखनेवालोंका आकाशमें और पृथ्वीपर बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ कि–हाय! परमपूज्य पशुपतिकी प्रिया पार्वतीने द-

एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमंकमादरात्॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम्॥२६॥ ततः स्वभर्तुश्चरणांबुजासवं जगद्गुरोश्चिंतयती न चापरम्॥ ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिनाऽग्निना॥ २७॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत॥ हंत प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता॥ २८॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः॥ जहावसून्यद्विमताऽऽत्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति॥ २९॥ सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति॥ यदंगजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः॥ ३०॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम्॥ दक्षं तत्पार्षदा हंतुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः॥ ३१॥

क्षके अपमानसे प्रकुपित होके, प्राणोंका त्याग किया ॥ २८ ॥ अहो! जिस प्रजापति दक्षकी चराचर प्रजा है, उसकी बड़ी प्रबल दुष्टता तौ देखो! कि–जिसके अपमान करनेसे वारंवार मान देनेके योग्य, उदारमनवाली और पुत्री सतीने प्राणोंका त्याग किया ॥ २९ ॥ सो यह शिवद्वेषी, ब्रह्मद्रोही और कठोर चित्तवाला दक्ष लोकमें बड़े अपयशका पात्र होगा; क्योंकि अपने अपराधसे मरनेको उद्युक्त अपनी कन्याको नहीं हटाया ॥ ३० ॥ ऐसे लोक बोल रहे थे, इतनेहीमें इस आश्चर्यकारी स-

१ तदेवोक्तं गीतासु। यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्॥ तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ १॥ अर्थ–सोही गीतामें लिखा है कि–हे अर्जुन! प्राणी प्राणान्तमें जिसजिस भावको स्मरण करते शरीरको छोड़ता है सो सदा उसीके भावित होके, उस उसको पाता है. तैसेही पार्वतीने शरीर छोड़ते बखत महादेवजीका ध्यान किया तो महादेवहीको प्राप्त हुई और दूसरा उन्होंने कुछ न देखा॥ १॥

रागी अधिकारीको प्रवृत्तिकर्म करना चाहिये. और विरागी अधिकारीको निवृत्तिकर्म करना चाहिये. और इन दोनों कर्मोंको एकही जन एकसमयमें करै तौ, ये विरोधी हो जाते हैं और परब्रह्म शिवजीमें तौ दोनों कर्मोंका काम नहीं ॥ २० ॥ हे पिता ! हमारी पदवियां, कि- जिनमें इच्छामात्रसे सर्व सिद्धियां उत्पन्न होती हैं और जिनका ब्रह्मवेत्ता सेवन करते हैं, वे तुमको नहीं मिलतीं; क्योंकि तुम्हारी पदवियां तौ यज्ञशालाओंमें रहती हैं. और उनकी प्रशंसाभी यज्ञमें इकठे भयेहुए अन्नसे तृप्त टुकड़ेल लोकही करते हैं. और धूममार्गवाले लोकही उनका सेवन करते हैं ॥ २१ ॥ शिवापराधीसे उत्पन्न, नीचजन्मवाले इस देहसे मेरे कुछ

मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिंगा अवधूतसेविताः ॥ २१ ॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसंगतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२ ॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदंगजम् ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शांतवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥ २४ ॥ कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कंठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिंदिताऽनयत् ॥ २५ ॥

काम नहीं, क्योंकि तुझ दुर्जनके प्रसंगसे मुझे लज्जा होती है, महात्माओंके अपराधीसे जो जन्म हैं, उसको धिक्कार है ॥ २२ ॥ भगवान् वृषध्वज जब हे दक्षकन्या ! ऐसे कहके तेरे संबंधका नाम लेते हैं, तब मुझे हास्य और ठठ्ठा छोड़के बड़ा दुःख होता है. इस वास्ते निश्चय तुझसे उत्पन्न इस कुणपप्राय शरीरका मैं तुरंत त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-हे शत्रुहन्ता विदुर ! सती इसतरह दक्षप्रति कह, चुप हो, उत्तरदिशाकी तरफ पृथ्वीपर बैठ गई. पीले पीतांबर पहिरे आचमन ले, नेत्र मूंदके, योगमार्ग साधेन लगी ॥ २४ ॥ निर्दूषण उस सतीने आसन जीत, प्राण व अपान वायुको समान कर, उदान वायुको नाभिचक्रसे उठाय, बुद्धिके साथ हृदयमें लाय, वहांसे उरस्थित उदानको धीरे धीरे कंठमार्गसे भ्रुकुटिके बीच लिया ॥ २५ ॥

करता है. अहो ! तू बड़ा अमंगलरूप है ॥ १४ ॥ जिन सदाशिवजीके चरणकमलका, ब्रह्मरससंबंधी मकरंदको चाहनेवाले महात्माओंके मनरूपी भ्रमरपंक्ति सेवन करती हैं. और जिनका चरणकमल सकामपुरुषोंके मनोरथोंको पूर्ण करता है, ऐसे जगत्बंधु शिवजीसे तू द्रोह करता है ॥ १५ ॥ श्मशानमें अमंगलरूप होनेपरभी जिनका नाम सदाशिव है, वे प्रभु जटा बिखेरके श्मशानसंबंधी माला भस्म और मनुष्यको खप्पर धरनेवाले शिवजी पिशाचोंके साथ वास करते हैं. उनको तेरे शिवाय और कोई ब्रह्मादिक क्या नहीं जानते ? कि–वे तो उनके चरणसे गिरे निर्माल्यको मस्तकोंसे धारण करते हैं ॥ १६ ॥ धर्मके रक्षक

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबंधवे ॥ १५ ॥ किंवा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवतीर्य जटाः श्मशाने ॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्द्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥१६॥ कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिंद्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकंठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमंधसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥ न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्वएव लोके रमतो महामुनेः ॥ यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्वएव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥ १९ ॥ कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिंगमाश्रितम् ॥ विरोधि तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥ २० ॥

स्वामीकी निरंकुशलोक जहां निंदा करते हैं, वहांसे जो अपने मरने मारनेकी शक्ति न होय तो, कान बंद करके, निकलजाय और समर्थ होय तब तो अकल्याण बोलनेवाली नीच जिव्हाको बलात्कारसे काट ले. फिर प्राणोंकाभी त्याग करै. यह धर्म है ॥ १७ ॥ इस वास्ते नीलकंठके निंदक तेरे शरीरसे उत्पन्न इस शरीरको नहीं धारण करूंगी; क्योंकि, भूलसे खायेहुए निंदित अन्नकी शुद्धि वमनही है ॥ १८ ॥ स्वरूपमें मग्न महामुनिकी मति विधिनिषेधरूप वेदवादोंका अनुसरण नहीं करती. जैसे देव और मनुष्योंकी गति भिन्न भिन्न है. इस वास्ते प्रवृत्तिमार्ग वा निवृत्तिमार्गरूप स्वधर्ममें स्थित होके, परधर्म वा परपुरुषकी निंदा नहीं करनी चाहिये ॥ १९ ॥ प्रवृत्तिकर्म और निवृत्तिकर्म दोनों सत्य हैं; क्योंकि वेदमें विवेचन करके, दोनोंका आश्रय किया है.

आत्मा, सर्वरूप और निर्वैर श्रीशिवजी कि-जिनके न तो कोई अधिक है, न अप्रिय है, न प्रिय है, उनसे तेरे विना कौन वैर करै ? ॥ ११ ॥ हे द्विज ! तेरेसरीखे निंदक असाधु पुरुष परपुरुषोंके गुणोंमेंसे केवल दोषही लेते हैं और कितनेएक मध्यस्थलोग विवेकसे यथावस्थित गुणदोष ग्रहण करते हैं. केवल दोष नहीं लेते और वे महन्त कहेभी जाते हैं साधुपुरुष केवल गुणोंहीको ग्रहण करते हैं, वे महत्तर कहेजाते हैं और महत्तम पुरुष तो दोषोंको स्वीकार नहीं करते, इतनाही नहीं. किंतु थोड़ेसे गुणोंको बहुत करके मानते हैं ऐसे महात्माओंका तैंने अपराध किया है ॥ १२ ॥ देहको आत्मा माननेवाले नीच पुरुष सर्वदा ईर्षासे महात्माओंकी निंदा करैं इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं; क्योंकि महापुरुषोंके पादरजसे हीन और दुष्ट लोकोंके लिये

दोषान्परेषां हि गुणेषु साधवो गृह्णंति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिंदा कुणपात्मवादिषु ॥ सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यद्‍द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसंगादघमाशु हंति तत् ॥ पवित्रकीर्तिं तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥

महत्तनिंदाही उचित है ॥ १३ ॥ जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम एकवारभी किसी प्रसंगपर वाणीसे उच्चारण किया जाय तो, तत्काल सर्वपापोंका नाश करता है, ऐसे पवित्रकीर्ति और जिनकी आज्ञाका उल्लंघन कोई नहीं करसके ऐसे, शिवजीका द्वेष

---

१ शिवेति नाम विमलं येनोच्चारितमादरात् ॥ तेन भूयो न संसारसागरः समवाप्यते ॥ १ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वाऽपि पुष्कसः ॥ शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ॥ २ ॥ महादेवेति नामेदं यः शृणोति वदिष्यति ॥ न तस्य नरके वासः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३ ॥ अर्थ-ऐसा अन्यत्रभी लिखा है कि-'शिव' इस निर्मल नामका जिसने आदरसे उच्चारण किया वह फिर संसारसागरको नहीं पाता ॥ १ और शिवरहस्यमेंभी लिखा है कि-पहले एक चाण्डाल हजार ब्रह्महत्या करकेभी 'शिव' यह निर्मल नाम सुनके, मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ और अन्यभी प्रमाण है कि-'महादेव' यह नाम जो कोई सुने कहे उसका नरकमें वास नहीं होता यह सत्य है सत्य है. इसमें संशय नहीं ॥ ३ ॥

कवित्त-शिव यह नाम एकवार जो करै उचार ताके सब पापनको नाश सो करत हैं ॥ जाके रूप ध्यावत औ गुणगण गावतहिँ होंहिँ नर मुक्त भवकूप न परत हैं ॥ योगी मुक्तिलागि जाकी पदरज धारैं शीस जाके पदपोतसों भवाब्धिहिँ तरत हैं ॥ कहै रघुवंश नर नरक परत नहिँ होहिँ ते विरत शिवभक्ति जे निरत हैं ॥

आदिसे शोभायमान महादेवके अनुचर, गीतके आश्रय दुंदुभि, शंख, वेणु आदि बजाते चले ॥ ५ ॥ चौतरफ वेदघोषसे यज्ञसंबंधी पशुहिंसा जिसमें बढ़रही है, ब्राह्मण जिसको सेय रहे हैं, चारोंओर देवता जिसमें बैठे हैं, मिट्टी, लकड़ा, लोह, सुवर्ण, दर्भ और चर्म इनसे बनायेहुए पात्र जिसमें शोभरहे हैं, ऐसे यज्ञमें सतीने प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वहां सतीको आयी देखनेपरभी यज्ञकर्ता दक्षके भयसे बहनें और माताके सिवाय और किसी जनने आदर नहीं किया; क्योंकि दक्षने उसका आदर सत्कार नहीं किया था, परंतु माता और बहनें तो प्रेमके अश्रुसे निरुद्धकंठ होके, आदरके साथ मोदसे मिलीं ॥ ७ ॥ पितासे अनादृत

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयःकांचनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभांडं यजनं समाविशत् ॥ ६ ॥ तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकंठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥७॥ सौदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनंदिता सती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिश्रृण्वतः ॥ १० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवंतं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥

सतीने माता और मौसियोंकी आदर सहित दी हुई पूजा और उत्तम आसनको ग्रहण नहीं किया; और बहनपनके प्रश्नोंके योग्य जो बातें कहीं वेभी सुनीं ॥ ८ ॥ जिसमें महादेवजीका भाग नहीं और जिसमें पिताने समर्थ सदाशिवजीका अपराध किया ऐसे, उस यज्ञको देखके, अनादृत जगदीश्वरी सतीने क्रोधसे त्रिलोकीको भस्म करती होयं ऐसे, यज्ञसभामें कोप किया ॥ ९ ॥ देवी पार्वती, दक्षको मारनेके लिये उठे भूतगणोंको अपने तेजसे निवारण करके, शिवद्वेषी और कर्ममार्गके अभ्याससे अभिमानी दक्षको सब जगतके सुनते क्रोधके कारण स्फुट वाणीसे धिक्कारने लगी ॥ १० ॥ देवी पार्वतीने कहा कि-प्राणियोंके प्यारे

म्हारा भला न होगा, क्योंकि जो प्रतिष्ठित होवे, उसका संबंधियोंकी ओरसे अपमान होवे तो, उसमेंसे तुर्त मरणका परिणाम निकल पड़ता है ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥॥ चौथे अध्यायमें पतिको छोड़कर, सती पिताके घर गयीं. वहां उसने अपमान किया. तब सतीने क्रोधसे उसका तिरस्कार कर, यज्ञमें शरीरका त्याग किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-दोनों तरफ पत्नीके शरीरका नाश शोचतेहुए महादेवजी तो इतना कहके, चुप हो गये. और बांधवोंको देखनेकी इच्छावाली सती बाहिर जावे और महादेवजीके भयसे फिर भीतर आवे, ऐसे

मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यंगनाशं ह्युभयत्र चिंतयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशंकिता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥ ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरो वृषेंद्रास्तरसा गतव्यथाः ॥ ४ ॥ तां सारिकाकंदुकदर्पणांबुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुंदुभिशंखवेणुभिर्वृषेंद्रमारोप्य विटंकिता ययुः ॥ ५ ॥

दुबधामें पड़ी ॥ १ ॥ बंधुनको देखनकी इच्छाके प्रतिघात ( हटने ) से उदासमन, स्नेहके मारे रो रही; और जिसके नेत्रोंमें जलकी धारा बह रहीं ऐसी, क्रोधसे कंपित और अतिविह्वल सती जिनके समान अन्य पुरुष नहीं ऐसे महादेवजीको भस्म करती होय ऐसे देखने लगी ॥ २ ॥ फिर शोक और क्रोधसे दुःखित हृदयसे निश्वास डालकर स्त्रीस्वभावसे मूढ़मति सती सत्पुरुषोंके प्यारे जिन महादेवने प्रेमसे अपना आधा अंग दे दिया, उनको छोड़के, पितृसदनको चली ॥ ३ ॥ इकल्ली जलदी जलदी जाती सतीको देखके,पार्षद और यक्षोंके साथ मणिमान् और मद आदि हजारों शिवजीके अनुचर नंदीश्वरको आगे कर, निर्भय हो, जलदी देवीके पीछे चले ॥ ४ ॥ उस सतीको नंदीगणपर बिठाय मैना, गेंद, दर्पण, कमल, सुपेदछत्र, पंखा, माला

पितासे तुमको मान नहीं मिलगा, क्योंकि, मेरे संबंधसे दक्षको बड़ा परिताप होता है ॥ २० ॥ निरहंकार पुरुषोंकी पवित्र कीर्ति आदि बड़ाई देख कर, मनमें जलन उठनेसे आतुरचित्त जो पुरुष उनकी उत्तम पदवीको पहुंच नहीं सकते वे, जैसे दैत्य भगवान्‌से द्वेष करते हैं, वैसे केवल उनसे द्वेष किया करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुंदर मध्यभागवाली ! विद्वान् लोग, जो परस्पर उठकर खड़े होते हैं, विनय और नमस्कार करते हैं, यह रीति बहुत अच्छी है परंतु यह केवल अंतर्यामी परमात्माके वास्तेही अंतःकरणसे करनेमें आती है, परंतु देहाभिमानी पुरुषके वास्ते नहीं ॥ २२ ॥ 'वसुदेव' यह नाम शुद्ध अंतःकरणका है;



पापच्यमानेन हृदाऽऽतुरेंद्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमंजसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥ २१ ॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥ २२ ॥ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मे नमसा विधीयते ॥ २३ ॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो ममद्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

क्योंकि वैसे अंतःकरणमें भगवान्‌की स्पष्ट प्रतीति होती है, तासों ऐसे अंतःकरणमेंही भगवान् वासुदेव कि-जो इंद्रियोंसे अगोचर हैं, उनका मैं नमस्कारद्वारा सेवन करता हूं ॥ २३ ॥ यद्यपि दक्ष तुम्हारा जन्म देनेवाला पिता है, तथापि मेरा शत्रु है, तासों उसकी और उसके पक्षपातियोंकी ओर तुमको देखनाभी न चाहिये; हे वरोरु ! मेरा कुछभी अपराध नहीं था; तिसपर प्रजापतियोंके यज्ञमें उसने दुर्वचनद्वारा मेरा तिरस्कार किया ॥ २४ ॥ जो तुम मेरा वचन न मानकर, वहां जाओगी तो, कभी तु-

१ जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ अर्थ-जन्म देनेवाला, यज्ञोपवीत देनेवाला और विद्या देनेवाला तथा अन्नदाता, भयरक्षक ये पांच पिता कहे हैं. सो दक्षने पार्वतीका जन्म दिया इससे जन्मदेनेवाला पिता कहा ॥ १ ॥

दक्षप्रजापतिने जो मर्मछेद करनेवाले कुवचनरूप बाण लगाये. उनका स्मरण आ जानेसे सबके सुहृद और प्रिय महादेवजीने हँसकर, कहा ॥ १५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि–हे शोभने ! तैंने कहा कि-बंधुनके घर विना बुलायेभी जानेकी रीति है, सो यह सत्य है. परंतु वह कब है कि–जो इन संबंधी जनोंकी दृष्टि बलवान् देहाभिमानसे और क्रोधसे दूषित न होय तौ ॥ १६ ॥ विद्या, तप, धन, सुंदर शरीर, अवस्था और कुल, ये छः वस्तु कि–जो सत्पुरुषोंमें गुणरूप हैं और नीच पुरुषोंमें दोषरूप हैं, इनसे विवेकका नाश होनेके कारण वृद्धिंगत (बढे हुये) अभिमानसे जो अंध और अनम्र पुरुष, महात्मा पुरुषोंके तेजको

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियंति बंधुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ॥ स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यंति हि धाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥ येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथाऽरिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दितांगो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥ १९ ॥ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियाऽऽत्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥ २० ॥

नहीं देखते ॥ १७ ॥ ऐसे अस्थिरचित्त लोगोंको संबंधी समझकर, उनके घरकी ओर देखनाभी न चाहिये; क्योंकि–वे लोक घर आये लोकोंको कुटिलबुद्धिसे व क्रोधभरी भ्रुकुटी चढ़ाईहुए आंखसे देखा करते हैं ॥ १८ ॥ कुटिलबुद्धि संबंधियोंके दुर्वचनोंसे जैसी पीड़ा होती है, वैसी पीड़ा शत्रुओंने बाण मारकर, अंग बेध डारे हों, तौभी नहीं होती; क्योंकि जिसके बाण लगे हों, उसे तौ निद्रा आ सकती है; परंतु दुर्वचनसे जो मर्मस्थलमें विंधा हुआ है, वह तपायमान हृदयसे रात दिन तपाही करता है ॥ १९ ॥ हे सुभ्रु ! उत्कृष्ट स्थितिवाले दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंमें तुम प्यारी हो, यह बात सत्य है, तथापि उस

दर्शनकी इच्छासे जावेंगी, तासों मैभी वहा आपके साथ जाकर, मातापिताके दिये अलंकार और वस्त्र आदि पदार्थ स्वीकार करना चाहती हूं ॥ ९ ॥ हे शिव ! अपने पतियोंके सहित मेरी बहिनें, माताकी बहिनें ( मौसियां ), स्नेहसे आर्द्रचित्त मेरी माता और ऋषिलोकोंका प्रवृत्त कियाहुआ उत्तम यज्ञ इन सबको मैं वहां जाकर, देखना चाहती हूं; क्योंकि मेरे मनमें बड़ी उत्कंठा लग रही है ॥ १० ॥ हे अज ! यह आश्चर्यरूप त्रिगुणात्मक जगत् आपमें आपकी मायासे रचाहुआ भासे है, तासों आपके तौ इसबातका आश्चर्य नहीं, तथापि मैं कि-जो आपके तत्त्वको नहीं जाननेवाली स्त्रीजाति हूं, वह मैं कृपण

तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कंठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्य प्रयांतीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कांतसखावरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकंठ मंडितं नभो विमानैः कलहंसपांडुभिः ॥ १२ ॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेंगते ॥ अनाहुता अप्यभियंति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वांछितं कर्तुं भवान्कारुणिको बतार्हति ॥ त्वयाऽऽत्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥

होकर, हे भव ! मेरी जन्मभूमि देखना चाहती हूं ॥ ११ ॥ हे अभव ! आप देखिये तौ ये दूसरी स्त्रियांभी यूथके यूथ मिलकर, सिंगार धारण करके अपने पतियोंके साथ जातीं हैं. हे नीलकंठ ! जिनके जाते हुए हंससे सुफेद विमानोंसे आकाश छा रहा है ॥ १२ ॥ हे सुरवर्य ! पिताके घर उत्सव सुनकर, कन्याका शरीर चलायमान हुए विना कैसे रहे ? मित्र, पति, गुरु और पिता इनके घर तो विना बुलायेभी जानेकी रीतिही है ॥ १३ ॥ हे देव ! तासों मुझपै आप कृपा करो, दयालु आपको मेरा यह मनोरथ परिपूर्ण करना चाहिये. आप महाज्ञानी हो, तौभी मुझपर दया करके मुझे आपने अर्द्धांगी बनायी है, तासों मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि-मुझपर यह अनुग्रह करो ॥ १४ ॥ मैत्रयजीने कहा कि-इसतरह सतीने महादेवजीसे प्रार्थना करी, तब प्रजापतियोंके समक्षमें

अधिपति बनानेके निमित्त दक्षका पट्टाभिषेक किया, तब उसे गर्व हुआ ॥ २ ॥ उसने घमंडके मारे सब ब्रह्मवादियोंका तिरस्कार कर, वाजपेयनाम यज्ञ करके बृहस्पतिसव नाम उत्तम यज्ञका प्रारंभ किया ॥ ३ ॥ उस यज्ञमें ब्रह्मऋषि, देवऋषि पितृगण तथा देवता, ये सब शृंगार कीहुई अपनी स्त्रियोंको साथ ले आये ॥ ४ ॥ आपसमें बातें करते आकाशमार्ग जाते उन देवलोगोंके मुखसे पिताके यज्ञका महोत्सव सुन, गलेमें पदक पहने, सुथरे वस्त्र धारण किये, चंचल नेत्रवालीं, उज्वल कुंडलसे शोभायमान उपदेवों-

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ॥ बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ ५ ॥ व्रजंतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककंठीः सुवाससः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुंडलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य सांप्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजंति हि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः ॥ स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यंति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन्भवताऽभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥

की सुंदर स्त्रियोंको चारोंओरसे अपने घरके निकट होकर, विमानोंमें बैठीं, अपने पतियोंसहित जातीं देखकर, उत्सुक होकर, भूतोंके पति अपने पति महादेवसे दक्षसुता सतीने कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ सती बोलीं कि-आपके श्वशुर प्रजापति दक्षके घर अभी यज्ञका महोत्सव हो रहा है, सो हे वाम! यदि आपकी इच्छा हो तौ, आपनभी वहां चलें अबतक तौ यज्ञ समाप्त नहीं हुआ है; क्योंकि ये देवता लोग जा रहे हैं ॥ ८ ॥ उस यज्ञमें मेरी बहिने अपने पतियोंको संग ले, अवश्य अपने सुहृदलोगोंके

---

१ वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेतेति श्रुतेः । अर्थ-वाजपेय यज्ञ करके बृहस्पतिसव यज्ञ करै. ऐसी श्रुति है. इसलिये दक्षने पहले वाजपेय यज्ञ किया फिर बृहस्पतिसव यज्ञ किया. २ रतिमतिकी अतिचातुरी, रतिपतिमंत्रविचार ॥ ताहीसों सब कहत हैं कवि कोविद शृंगार ॥ १ ॥ ३ गन्धर्वआदि.

मनुष्योंकी मर्यादाको धारण करनहारे वेद और ब्राह्मणोंकी तुमलोग निंदा करते हो अतएव तुम पाखंडमें पड़े रहो ॥ ३० ॥ लोकोंका वही वेदलक्षण मार्ग सनातन और कल्याणकारी है; क्योंकि पूर्वऋषियोंने इसका आश्रय लिया है और इसमें साक्षात् भगवान् प्रमाण हैं ॥ ३१ ॥ सत्पुरुषोंके सनातन मार्गरूप इस परम शुद्ध वेदकी निंदा करके, तुम पाखंडमें पड़ो कि-जहां भूतोंका पति तुम्हारा दैवत है ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- भृगुऋषि इस तरह श्राप देने लगे, तब वे भगवान् महादेव कुछ उदाससे होकर, अपने अनुचरोंसहित वहांसे निकल गये ॥ ३३ ॥ हे बड़े धनुषधारी राजा ! उन प्रजापतियोंनेभी



ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिंदथ ॥ सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखंडमाश्रिताः ॥ ३० ॥ एष एव हि लोकानां शिवः पंथाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥ ३१ ॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाषंडं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥ तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गंगायमुनयान्विता ॥ विरजेनाऽऽत्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ २ ॥

जिसमें विष्णु भगवान्का यजन होता था ऐसे, इस यज्ञको हजार वर्षतक चलाकर, संपूर्ण किया ॥ ३४ ॥ फिर प्रयागमें अवभृथ स्नान कर, शुद्ध स्वरुप होकर, वे सब अपने अपने धामको सिधारे ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्याम-विरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें सती पिताके यज्ञका उत्सव देखनेकी इच्छासे जाने लगी, तब महादेवजीने नीतिगर्भ वचनोंसे वारण किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इसतरह सदा द्वेष करते रहते इन दोनों जमाई ससुरोंको बहुत काल व्यतीत हो गया ॥ १ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माजीने सब प्रजापतियोंका

लगाहुआ, केवल परिकरके तंत्रको फैलानेवाला, वेदके अर्थवाद यानी रोचक वचनोंसे बुद्धि जिसकी नाश होगयी है ऐसा और देहकोही आत्मा माननेवाली बुद्धिसे आत्मतत्त्वको न जाननेवाला, पशुके समान यह दक्ष, अत्यंतही स्त्रीकी कामनावाला हो जावे और तुर्तही इसका मुख बकरेका हो जावे ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्योंकि यह दक्ष, कर्ममय अविद्यामें यह तत्वविद्या है, ऐसी बुद्धि रखता है. इसलिये यह जड़ही है और यहां जो लोग महादेवका अपमान करनेवाले दक्षका अनुसरण करते हैं. वेभी जन्म-मरण पाया करें ॥ २४ ॥ जिसमें बहुतसे वाक्य फूलकी तुल्य केवल मनकोही राजी करनेवाले हैं, ऐसी वेदवाणीके मोह

बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरंत्विह ये चामुमनुशर्वावमानिनम् ॥ २४ ॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगंधेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यंतु हरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा द्विजावृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेंद्रियारामा याचका विचरंत्विह ॥ २६ ॥ तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदंडं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥ भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः ॥ पाखंडिनस्ते भवंतु सच्छास्त्रपरिपंथिनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशंतु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥

करनेवाले रोचकवाक्योंसे मूर्ख बनेहुए ये महादेवके द्वेषी लोग केवल कर्ममेंही आसक्त रहैं ॥ २५ ॥ भक्ष्य अभक्ष्यके विचारशून्य, केवल पेट भरनेके वास्ते विद्या, तप तथा व्रत धारण करनेवाले, धन, इंद्रियां और शरीरमेंही रमण करनेवाले, ये ब्राह्मण इस जगत्‌में भिक्षुक होकर, मांगते फिरें ॥ २६ ॥ नंदीश्वरने इसतरह ब्राह्मणकुलको श्राप दिया, उसे सुनकर, भृगुऋषिने पीछा दुरत्यय श्रापरूप ब्रह्मदंड चलाया ॥ २७ ॥ कि–' जो शिवजीका व्रत धारण करते हैं और जो उनका अनुसरण करते हैं, वे सत्‌शास्त्रोंसे उलटे चलनेवाले पाखंडी हो जावें ॥ २८ ॥ और आचारभ्रष्ट होकर, मूढ़बुद्धिवाले, वे लोग जटा, भस्म, अस्थि, धारण करके, शिवजीकी दीक्षामें प्रवेश करें, कि–जहां मदिरा और आसव यही देवताकी नाईं पूजनीय गिना जाता है ॥ २९ ॥

द्रनाथ, आचारभ्रष्ट दुष्टचित्तको ब्रह्माजीके कहनेसे मैंने मेरी सती कन्या दीनी ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-प्रतिकूल न हों वैसे विराजेहुए महादेवकी इस प्रकार निंदा करके, वह दक्ष जलका स्पर्श कर, क्रोधयुक्त हो, श्राप देने लगा ॥ १७ ॥ कि-देवगणमें नीच यह महादेव देवताओंके यज्ञमें इंद्र, उपेंद्र-आदि देवतानके साथ विभागको प्राप्त न होवे ॥ १८ ॥ हे राजा! सभापति आदि सब निषेध करतेही रहे, परंतु वह दक्ष तो महादेवजीको श्राप दे, क्रोधसे पूर्ण हो, उस स्थानसे निकल कर, अपने

मैत्रेय उवाच ॥ विनिंद्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥ अयं तु देवयजन इंद्रोपेंद्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नंदीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ २० ॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतंत्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥ २२ ॥

घर चला आया ॥ १९ ॥ महादेवके पार्षदोंमें प्रधान नंदीश्वरने महादेवजीको श्राप हुआ जान, रोषरूप कषायसे रक्तनेत्र हो, दक्षको अतिदारुण श्राप दिया और जिन ब्राह्मणोंने उसके अवाच्य वचनोंका अनुमोदन किया, उनकोभी श्राप दिया ॥ २० ॥ किसीसे द्रोह न करनेवाले भगवान् महादेवजीसे इस मनुष्य शरीरको श्रेष्ठ समझ कर, जो मूर्ख द्रोह करता है, वह भेददर्शी पुरुष तत्वसे विमुख हो जावे ॥ २१ ॥ जिनमें केवल कड़ाकूटही भरा है, ऐसे घरोंमें विषयसुखकी लालसासे

---

प्यारे हैं यह कहा है यानी भक्त होनेसे तमोगुणी भूतादिकोंकेभी दोषोंको दूर करके पालन करते हैं. ) नष्टानामपि शौचं शुद्धिर्यस्मात् ( नष्टोंकीभी है शुद्धि जिससे. ) दुर्हृद इति दुष्टेष्वपि एते मयानुकम्प्या इति हृन्मनो यस्य स दुर्हृत् तस्मै ( इन्होंपर मेरेको दया करनी चाहिये ऐसे दुष्टोंमेंभी दया दयायुक्त रहता है मन जिस्का ) ब्रह्म० ( ब्रह्माकी वाक्यसे लज्जा भय आदि छोड़के सूर्यके लिये दीप जैसे इस परमेश्वरके लिये मैंने भार्या कन्या दीनी

वानरकेसे नेत्रवाले इसने मृगछौनेसे नेत्रवाली मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके, उठकर, नमस्कार करनेके योग्य जो मैं, उसका वाणीसेभी सन्मान नहीं किया ॥ १२ ॥ * इस क्रियाहीन, अपवित्र, मर्यादा तोड़नेवाले अभिमानीको मैं मेरी कन्या देना नहीं चाहता था, परंतु जैसे शूद्रको वेदवाणीका प्रदान करे, वैसे मैंने यह कन्यादान किया ॥ १३ ॥ यह घोरं मरघटोंमें प्रेत और

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥ चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्त्रस्थिभूषणः ॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥ १६ ॥

भूतगणको संग ले, उन्मत्तकी नाई नंगा, खुले केश, हँसता और रोता फिरा करता है ॥ १४ ॥ चिताकी भस्मसे स्नान कर, प्रेतोंके पुष्पोंकी माला पहन, हड्डियोंके गहने धारण कर, विचरता है. नाम तो इसका शिव है और है अशिव स्वयं आपभी मत्त है और मत्त लोकही इसे प्रिय लगते हैं और केवल तमोगुण स्वभाववाले प्रमथ और भूतोंका पति है ॥ १५ ॥ इस उन्मा-

---

* वास्तवस्त्वयमर्थः ( सत्यार्थ तो यह है ) लुप्ताः क्रिया यस्मिन् परब्रह्मरूपत्वात् ( परब्रह्मरूप होनेसे लुप्त हैं क्रिया जिसमें. ) अतएव नास्ति शुचिर्यस्मात् ( इसीसे नहीं है शुचि यानी पवित्र जिससे उसे अशुचि कहते हैं. ) अमानिने अभिन्नसेतवे इति च छेदः ( ऐसे पदच्छेद करनेसे यह अर्थ होता है कि–जिसके मान न हो तथा जिन्होंने धर्ममर्यादारूप सेतुको न तोड़ा. ) अनिच्छन्निति ( तिस परमेश्वरको मेरी प्राकृत कन्या कैसे उचित हो ऐसे लज्जा आदिसे देनेकी न इच्छा कर्ता हुवाभी मैंने उन्होंके उत्तम सम्बन्धके लोभसे अपनी कन्या दी. ) शूद्रायेत्यनर्हत्वमात्रे दृष्टान्तो न हीनत्वे ( यह दृष्टान्त केवल अयोग्यत्वके लिये है हीनताके लिये नहीं, जैसे कि–कोई धनके लोभसे शूद्रको वेद पढ़ावे वैसेही यहां सन्बन्धलोभ समझने. ) प्रेतावासेष्वित्यादि सर्वं विडंबनमात्रमिति स्वयमेवाह । उन्मत्तवदिति अन्यथोन्मत्त इत्येवावक्ष्यत् ( स्मसानमें रहने आदि जो कहा वह सब एक विडम्बना मात्र है क्योंकि उसीने उन्मत्तसा कहा नहीं तो उन्मत्तही कहता जैसे कि–किसीने कहा ब्राह्मणसदृशको लावो तो प्रतीत होता है कि–ब्राह्मणको नहीं किंतु ब्राह्मणसदृश किसी अन्यवर्ण क्षत्रिय आदिको बुलाता है. ) नास्ति शिवो यस्मात् ( नहीं है शिव यानी कल्याणमय दूसरा ईश्वर जिससे. ) अमत्तोऽमत्तजनप्रिय इति च छेदः ( आपभी अमत्त हैं और अमत्त यानी जितेंद्रिय मुनिजनोंके प्यारे हैं. ) पतिः प्रमथभूतानामिति भक्तवात्सल्यमाह ( इसमें भक्त बहुत

त्याग कर दिया. यह मुझे आप कहो ॥ ३ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-पहले प्रजापतियोंके सत्र ( याग ) में बड़े बड़े ऋषि तथा अनुचरोंसहित सब देवगण, मुनि और अग्नि सब एकत्रित हुए थे ॥ ४ ॥ उस बड़ी सभाका अंधकार नाश करतेहुए और तेजसे सूर्यके तुल्य प्रकाशमान दक्षको सभामें आया देखकर ॥ ५ ॥ वे सब सभापति, अग्निनके साथ अपने अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए; क्योंकि उसके तेजसे उनके चित्त क्षोभयुक्त हो गये, केवल वहां एक तो ब्रह्माजी और दूसरे महादेवजी अपने आसनसे नहीं उठे ॥ ६ ॥ सभापतियोंने भगवान् दक्षका अच्छीतरह सत्कार किया, तब जगद्गुरु ब्रह्माजीको नमस्कार कर, उनकी आज्ञा-

मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वंतं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिंचं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥ प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्नच मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पंथा येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥

से वह दक्ष बैठ गया ॥ ७ ॥ महादेवजी वहां पहलेहीसे विराजेहुए थे, सो उन्हें देख, उनसे हुए अनादरको न सह कर, मानों भस्मही करेगा ऐसे, टेढ़े नेत्रोंसे देखकर, बोला कि- ॥ ८ ॥ 'हे देवता ! और अग्निसहित ब्रह्मऋषियो ! अज्ञान और मत्सरभावको छोड़कर, मैं जो सत्पुरुषोंका सदाचार कहता हूं, वह सुनो ॥ ९ ॥ इस निर्लज्जने तो लोकपालोंके यशमें कलंक लगा दिया; क्योंकि जिस घमंडीने सत्पुरुषोंके चलाये हुए मार्गको दूषित किया ॥ १० ॥ यह मेरे शिष्यभावको प्राप्त हुआ है; क्योंकि ब्राह्मण और अग्निके सामने सावित्रीके समान मेरी कन्याका साधुकी तरह इसने पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥

कितनेही साग्नि[1] हैं और कितनेही अनग्नि[2] हैं इन सबके बीचमें दक्षकी कन्या एक स्वधा नाम स्त्री है॥ ६२ ॥ इन पितरोंसे स्वधाके दो कन्या हुईं वयुना और धारिणी. ये दोनों ब्रह्मवेत्ता और ज्ञान व विज्ञानमें पारगामी हुईं॥ ६३ ॥ महादेवजीकी सेवा करनेवाली महादेवजीकी स्त्री सतीके आपने गुण शीलसे समान पुत्र नहीं हुआ ॥ ६४ ॥ क्योंकि महादेवजीका कुछभी अपराध न होनेपरभी पिता दक्ष प्रतिकूल चलने लगा तब क्रोध कर, उन्होंने योग धारण करके, छोटी अवस्थामेंही अपने शरीरका त्याग कर दिया॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें प्रथम

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६३ ॥ भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६४ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे विदुरमैत्रेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्याऽऽत्मजां सतीम् ॥ १ ॥ कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शांतविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्जामातुः श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥

अध्यायमें संक्षेपसे कहेउए महादेवजी और दक्षके बैर पड़नेमें हेतु, जो प्रजापतियोंके यज्ञमें उत्पन्न हुआ वह कहा जायगा ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा कि-शीलवानोंमें श्रेष्ठ महादेवजीसे कन्यापर प्यार रखनेवाले दक्षने अपनी कन्या सतीका अनादर करके, बैर क्यों किया ?॥ १ ॥ चराचरके गुरु, शांतमूर्ति, वैरभावरहित जगत्के दैवत, सबसे बड़े और आत्माराम महादेवजीसे[3] दक्षने वैर क्यों किया ?॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! दमाद और ससुरके बीच ऐसा वैर कैसे पड़ा ? कि-जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंका

---

१ जिनके अग्नीकरण होता है वे साग्नि. २ जिनके अग्नीकरण नहीं होता वे अनग्नि. ३ कवित्त–पूरें आश तूरें पाश सकलभूतैकवास कृपायुत अवलोकि लोकसुखकारी हैं ॥ जगमात तात लखि असुर सकात अहैं जाके शिर गंगकी तरंग जटा भारी हैं ॥ सोहै भूति सब अंग अखिल विभूतिसंग नाशक अनंग अविकारी त्रिपुरारी हैं ॥ व.मभ.ग वामा अहै नामजाप पाप दहै कहै रघुवंश शूलधारी शूलहारी हैं ॥ १ ॥

करते हैं ॥ ५५ ॥ शास्त्रसे जिनके स्वरूपका केवल विचारमात्र बन सकता है ऐसे ये भगवान्, जगत्की मर्यादा रखनेके लिये सत्त्वगुणसे रचेहुए आपन लोगोंके सामने बहुत करुणावाली और लक्ष्मीके निवासभूत निर्मल कमलसेभी अधिक शोभावाली दृष्टि करके देखो ॥ ५६ ॥ हे विदुर ! इस प्रकार देवतानने स्तुति की तद नरनारायण भगवान् देवतान्के सामने देख कर, पूजा स्वीकार कर, गंधमादन पर्वतपर पधारे ॥ ५७ ॥ वेही ये दोनों भूमिका भार उतारनेके लिये यहां प्रगट हुए हैं. तिनमें

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ॥ दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविंदम् ॥ ५६ ॥ एवं सुरगणैस्तात भगवंतावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गंधमादनम् ॥ ५७ ॥ ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णो यदुकुरूद्वहौ ॥ ५८ ॥ स्वाहाऽभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ५९ ॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पंच च ॥ त एवैकोनपंचाशत्साकं पितृपितामहैः ॥ ६० ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यंतेऽग्नयस्तु ते ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६२ ॥

नरके अंशसे कुरुकुलमें अर्जुन प्रगट हुए हैं और साक्षात् नारायण यदुकुलमें श्रीकृष्णरूपसे प्रगट हुए हैं ॥ ५८ ॥ अग्निके स्वाहानाम स्त्रीमें पावक, पवमान और शुचि ये तीन अग्नि पुत्र हुए ॥ ५९ ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस ४५ अग्नि प्रगट हुए. इस तरह दादा, पिता और पुत्र मिलकर, उनचास ४९ अग्नि हुए ॥ ६० ॥ वैदिककर्मरूप, यज्ञमें ब्रह्मवादीलोग जिनका नाम ले ले कर, अग्निदेवतासंबंधी इष्टियां किया करते हैं. वे अग्नि ये हैं. ॥ ६१ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण

१ निर्मथ्यः पवमानः स्याद्वैद्युतः पावकः स्मृतः । यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः ॥ १ ॥ इति कूर्मोक्तिः । अर्थ– अरणि आदिसे मथनेसे जो अग्नि उत्पन्न होता है वह पवमान. विजुलीसे जो अग्नि उत्पन्न होता है वह पावक. और ये सूर्य जो तपते हैं उनसे अग्नि जो उत्पन्न होता है वह शुचि नामका अग्नि कहा है ॥ १ ॥ यह कूर्मपुराणमें लिखा है.

कन्या उत्पन्न करीं दक्षने उनमेंसे तेरह कन्या तौ धर्मको दीं, एक अग्निको, एक संयत अथवा मिलित ऐसे पितृगणको और एक संसारको छेदनहारे महादेवजीको दी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति ये धर्मकी स्त्रियां हैं ॥ ४९ ॥ श्रद्धाके शुभ नाम पुत्र हुआ, मैत्रीके प्रसाद पुत्र हुआ, दयाके अभय पुत्र हुआ, शांतिके सुख, तुष्टिके मुद, पुष्टिके स्मय पुत्र हुआ ॥ ५० ॥ क्रियाके योग, उन्नतिके दर्प, बुद्धिके अर्थ, मेधाके स्मृति, तितिक्षाके क्षेम, ह्रीके प्रश्रय पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ सर्वगुणोंकी उत्पत्तिरूप मूर्तिमें नर १, नारायणनाम २ दो ऋषि पुत्र हुए, जिनके जन्मसमयमें यह सब जगत् परम

तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ ४८ ॥ श्रद्धा मैत्री दया शांतिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ ४९ ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥ शांतिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ ५० ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥ ५१ ॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनंदत्सुनिर्वृतम् ॥ ५२ ॥ मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ दिव्यवाद्यंत तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ५३ ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ नृत्यंति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममंगलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५५ ॥

आनंदयुक्त हुआ ॥ ५२ ॥ और मन, दिशायें, पवन, नदियां और पर्वत प्रसन्न हुए, स्वर्गमें बाजे बजने लगे, फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५३ ॥ मुनिलोग प्रसन्न हो स्तुति करने लगे, गंधर्व और किन्नर गाने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, ब्रह्मादिक सब देवता स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे. इस तरह सब ठौर परम मंगल छा गया ॥ ५४ ॥ देवता स्तुति करने लगे कि-जिन भगवानने अपनी मायासे जिस अपने स्वरूपमें भिन्न भिन्न रूप प्रतीत जैसे हों वैसे इस जगत्‌को रचा है उस अपने आत्माको प्रकाशित करनेके लिये जिन्होंने आज धर्मके घरमें इस ऋषिमूर्तिसे अवतार लिया है उन परम पुरुष भगवान्‌को हम नमस्कार

षिपुत्र पैदा हुए ॥ ३९ ॥ हे परंतप ! वसिष्ठजीके ऊर्जामान स्त्रीमें चित्रकेतु आदि निर्मल सप्तर्षि पुत्र हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु १, सुरोचि २, विरजा ३, मित्र ४, उल्बण ५, वसुभृद्यान ६ और द्युमान् ७ ये सप्तर्षि हुए. और दूसरी स्त्रीमें शक्ति- आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ अथर्वाके चित्तिनाम स्त्रीमें व्रत धारण करनेवाले अश्वशिरा दध्यङ् नाम पुत्र हुए. अब मुझसे भृगुऋषिका वंश सुनो ॥ ४२ ॥ महाभाग भृगुके ख्यातिनाम स्त्रीमें धाता १ और विधाता २ नाम दो पुत्र और भगवत्परायण लक्ष्मी ये संतान

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्तब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ॥ उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥ ४२॥ भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥ आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकंडः प्राण एव च ॥ ४४ ॥ मार्कंडेयो मृकंडस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥ ४५ ॥ त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ॥ ४६ ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ ४७ ॥

हुए ॥ ४३ ॥ मेरुने धाता और विधाताको अपनी आयति और नियतिनाम कन्या दीनी, धाताके आयतिमें मृकंड नाम पुत्र हुआ और विधाताके नियतिमें प्राणनाम पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥ मृकंडके मार्कंडेय और प्राणके वेदशिरानाम पुत्र हुआ, भृगुके कविनाम पुत्र हुआ और कविके भगवान् उशनानाम पुत्र हुआ ॥ ४५ ॥ हे विदुर ! मुनिलोगोंने सृष्टिद्वारा इस तरह लोकोंकी वृद्धि करी, यह कर्दमजीकी बेटियोंका संतान मैंने आपसे कहा, जो मनुष्य श्रद्धा रखकर, इसका श्रवण करे, उसके पापोंका तुर्त साक्षात् नाश हो जाय ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र दक्षने प्रसूतिके साथ विवाह किया, दक्षने उसमें निर्मल नेत्रवाली सोलह

के पुत्र होवेंगे और आपके यशका विस्तार करेंगे, आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ वे देवदेव इसतरह मनबांछित वरदान दे, ऋषिसे सत्कार पाकर, उन दोनों स्त्री भर्तारके देखते देखते वहांसे चले गये ॥ ३२ ॥ फिर ब्रह्माजीके अंशसे चंद्रमा पुत्र हुआ, विष्णुके अंशसे योगवेत्ता दत्तात्रेयका अवतार हुआ, शंकरके अंशसे दुर्वासा पुत्र हुए. अब अंगिरा ऋषिका संतान सुनो॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धानाम स्त्रीमें सिनीवाली १, कुहू २, राका ३ और अनुमति ४ ये चार कन्या प्रगट हुई ॥ ३४ ॥ अंगिराके दूसरे

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दंपत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधांगिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥ श्रद्धा त्वंगिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ॥ सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमति-स्तथा ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेंऽतरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृह-स्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपः ॥ ३६ ॥ तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुंभकर्णश्च तथाऽन्य-स्यां बिभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहि-ष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वल-तो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥

छः पुत्र हुए. जो स्वारोचिष मन्वंतरमें प्रसिद्ध हुए. एक तो उतथ्य १ और दूसरे साक्षात् ब्रह्मिष्ठ भगवान् बृहस्पति २ ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यके हविर्भूनाम स्त्रीमें अगस्त्यजी पुत्र हुए. जो दूसरे जन्ममें जठराग्नि हुए. पुलस्त्यके दूसरा महातपस्वी विश्रवा नाम पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ विश्रवाके इड़विड़ानाम स्त्रीमें यक्षोंका पति, लोकपाल, कुबेर पुत्र हुआ और दूसरी स्त्रीमें रावण १, कुंभकर्ण २ और बिभीषण ३ ये पुत्र हुए ॥ ३७ ॥ हे महामुनि ! पुलहकी सती गतिनाम स्त्रीमें कर्मश्रेष्ठ १, वरीयांस २ और सहिष्णु ३ ये तीन पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ क्रतुकेभी क्रियानाम स्त्रीमें ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान साठ हजार बालखिल्य नाम ऋ-

१ चंद्रमा दीखता रहे वह अमावास्या सिनीवाली. २ चंद्रमा न दीखे वह कूहू. ३ पूर्ण चंद्रवाली पूर्णिमा राका. ४ और किंचित् न्यून चंद्रवाली पूर्णिमा अनुमति.

बैल, हंस और गरुड़पर विराजेहुए अपने अपने त्रिशूल, कमंडलु और चक्र आदि चिन्ह धारण करनेवाले तीनों देवोंकी पूजा करी ॥ २४ ॥ कृपाभरी दृष्टि और हँसतेहुए मुखसे अपने पर उन्हें प्रसन्न जानकर, उनके तेजसे चकाचौंध अपने नेत्रोंको फिर पीछे मूंदकर ॥ २५ ॥ अपने चित्तको उन्हींमें लगा कर, हाथ जोड़, मधुर और गंभीर वाणीसे सब लोकोंमें बड़े इन तीनों देवोंकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ अत्रि बोले कि–जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, संहारके निमित्त विभाग कियेहुए मायाके गुणोंसे जो युगयुगमें शरीर धारण करते हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, महेश आपको मैं प्रणाम करता हूं और मैंने तो यहां आपमेंसे किसी

कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलंभितान् ॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युंजन्नस्तावीत्संहतांजलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥ २७ ॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोंऽग भद्रं ते विस्रप्स्यंति च ते यशः ॥ ३१ ॥

एक देवताको बुलाया था ॥ २७ ॥ मैंने तो यहां अनेक उपचारोंसे पुत्र होनेके लिये एक देवताका चित्तसे ध्यान किया था, फिर मनुष्योंके मनकेभी अगोचर आप तीनों देव यहां कैसे पधारे ? यह बात मुझपर कृपा करके, कहो. क्योंकि इसमें मुझे बड़ा विस्मय होता है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–इस प्रकार वे तीनों श्रेष्ठ देव उसमुनिके वचन सुनकर, हे विदुर ! हँसकर, मधुर वाणीसे पीछा कहने लगे ॥ २९ ॥ देव बोले कि–हे ब्रह्मन् ! सत्यसंकल्प आपने जैसा संकल्प किया वैसाही होना चाहिये, उसमें फर्क न पड़ना चाहिये, आप जिसका ध्यान करते हो, वे हमही हैं ॥ ३० ॥ हे मुनि ! हमारे अंशसे जगतविख्यात आप

ये तीनों श्रेष्ठ देव कौन कार्य करनेकी इच्छासे प्रगट हुए ? सो यह कथा मुझे कहो ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अत्रिऋषिको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके निमित्त प्रेरणा की, तब वे मुनि अपनी स्त्री अनसूयाको साथ ले, तप करना ठान, ऋक्ष नाम कुलाचल पर्वतपर पधारे ॥ १७ ॥ फूलोंके गुच्छे जिनमें लटक रहे हैं ऐसे, पलाश और अशोकके वनकी शोभा जहां छा रही है और निर्विंध्या नदीके चारों ओर पानीके झरनोंका नाद हो रहा है ऐसे ॥ १८ ॥ उस पर्वतमें सुख दुखको त्याग कर, मात्र पवनका भक्षण कर, प्राणायामसे मनको रोककर, वह मुनि एक पाँवसे खड़ा हो, तप करने लगा ॥ १९ ॥ उस समय

मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदांवरः ॥ सहपत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्रसूनस्तवकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विंध्यायाः समंततः ॥ ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वंद्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिंतयन् ॥ २० ॥ तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥ अप्सरोमुनिगंधर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणांजलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिन्हितान् ॥ २४ ॥

वह इस तरह ध्यान करता था, कि– जो जगत्का ईश्वर है उसीके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं. सो वह आपके जैसा मुझे संतान देवे ॥ २० ॥ मुनिके मस्तकमेंसे जो प्राणायामसे बढ़ीहुई अग्नि निकली, उससे सब त्रिलोकीको तपायमान देखकर, तीनों देवता ( ब्रह्मा १, विष्णु २, महेश ३ ) ॥ २१ ॥ उस मुनिके आश्रममें गये, उस समय अप्सरायें मुनि, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर और उरग ये सब इन देवोंका यश गा रहे थे ॥ २२ ॥ इन देवोंके प्रगट होनेके संबंधसे मुनिका मन चकाचौंध हो गया, तथापि एक पांवसे खड़ा रहकर, मुनिने इन श्रेष्ठ देवोंका दर्शन किया ॥ २३ ॥ और पृथ्वीपर दंडवत् प्रणाम कर, हाथ जोड़,

संतोष ३, भद्र ४, शांति ५, इडस्पति ६, इध्म ७, कवि ८, विभु ९, स्वन्ह १०, सुदेव ११ और रोचन १२ ॥७॥ ये स्वायंभुव मन्वंतरमें तुषित नाम देवता हुए. मरीचि आदि सप्तर्षि हुए. और यज्ञ भगवान् इंद्र हुए ॥ ८॥ मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो महापराक्रमी पुत्र हुए. उनके पुत्र, पौत्र और दौहित्रोंके वंशवालोंने उस मन्वंतरका पालन किया ॥ ९ ॥ महाराज ! मनुने देवहूतिनाम कन्या कर्दमजीको दी. उसका चरित्र तो मेरे मुखसे आपने बहुत कुछ सुनाही है ॥ १० ॥ भगवान् मनुने ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको प्रसूतिनाम कन्या दी, जिस प्रसूतिका वंश त्रिलोकीमें बहुत फैला हुआ है ॥ ११॥ नौ ब्रह्मर्षियोंकी स्त्रियां जो

तुषितानाम ते देवा आसन्स्वायंभुवांतरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणामनुवृत्तं तदंतरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायाऽऽत्मजां मनुः ॥ तत्संबंधि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥ १० ॥ दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥ पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूयात्रीन्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥

कर्दमजीकी कन्या कही गयीं, उनकी संतानपरंपरा जो मैं आपसे कहता हूं सो आप सुनो ॥ १२ ॥ मरीचिकी स्त्री कर्दमजीकी कन्या कलाके कश्यप १ और पूर्णिमन् २ दो पुत्र हुए. जिनसे यह सब जगत् परिपूर्ण हुआ है ॥ १३ ॥ हे परंतप ! पूर्णिमन्के विरज १ और विश्वग २ ये दो पुत्र हुए और देवकुल्यानाम कन्या हुई. जो हरि भगवान्के चरण धोनेके प्रभावसे जन्मांतरमें आकाशगंगा हुई ॥ १४ ॥ अत्रिऋषिकी स्त्री अनसूयाके ब्रह्मा, महेशके अंशसे चंद्रमा १ , दत्तात्रेय २ और दुर्वासा ३ ये तीन महातपस्वी विष्णु, पुत्र हुए ॥ १५ ॥ विदुरजीने कहा कि-हे गुरु ! अत्रिऋषिके घरमें उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेवाले

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ प्रथम अध्यायमें मनुकी कन्याओंके जुदे जुदे वंश कहे जायंगे और उनमें यज्ञादि मूर्तियोंद्वारा हरि भगवान्के अवतारका वर्णन होगा ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–मनुके शतरूपां नाम रानीमें आकूति १, देवहूति २ और प्रसूति ३ ये तीन प्रख्यात कन्या हुई ॥ १ ॥ यदपि आकूतिके भाई था, यानी मनुके पुत्र था तथापि मनुने शतरूपाके कहनेसे अपनी आकूतिनाम कन्या रुचिऋषिको पुत्रिकाधर्मकी रीतिसे दी ॥ २ ॥ ब्रह्मतेजवाले भगवान् प्रजापति रुचि ऋषिने उसमें परमेश्वरके परमध्यानसे

श्रीगणेशाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ॥ स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥ तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शांतिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७ ॥

एक मिथुन ( जोड़ा ) उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जो उसमें पुरुष हुआ वह तौ साक्षात् यज्ञमूर्ति विष्णु भगवान् थे जो स्त्री हुई वह विष्णु भगवान्के सदा साथ रहनेवाली दक्षिणा नाम लक्ष्मीकी अंशरूप थी॥ ४ ॥ उस अतितेजस्वी अपनी कन्याके पुत्रको स्वायंभुव मनु अपने घर ले आये और रुचि ऋषिने आनंदपूर्वक दक्षिणानाम कन्या ली ॥ ५ ॥ इच्छा करतीहुई उस दक्षिणा नाम कन्याका यज्ञपति भगवान्ने पाणिग्रहण किया, आनंदयुक्त उस दक्षिणामें प्रसन्न होकर, आपने बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष १, प्रतोष २,

१ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥ १ ॥ अर्थ– जिस कन्याके भाई न होवे उसे गहने कपड़े पहना कर, देते समय कौल करते हैं कि–विना भाईकी और आभूषण कपड़े आदिकोंसे भूषित ऐसी कन्या हम तुमको देते हैं इसमें जो आपके पुत्र होगा वह हमारा है इस कौलको पुत्रिकाधर्म कहते हैं ॥ १ ॥

इति श्रीभागवते भाषाटीकासहितः
तृतीयस्कंधः समाप्तः

रण, गंधर्व, मुनि और अप्सराओंने स्तुति की; तथा समुद्रने भेंट देकर, रहनेको स्थान दिया ॥ ३४ ॥ अबतक वे कपिलदेवजी तीनों लोकोंकी शांतिके अर्थ एकचित्त होकर, योग धारण करके, वहीं विराजे हैं. सांख्यशास्त्रके आचार्य उनकी सदा स्तुति करते रहते हैं ॥ ३५ ॥ हे निष्पाप ! पुत्र विदुर ! जो तूने महापवित्र कपिल और देवहूतीका संवाद पूंछा था, वह यह मैने तुमसे

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ॥ त्रयाणामपि लोकानामुपशांत्यै समाहितः ॥ ३५ ॥ एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ॥ कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥ ३६ ॥ य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविंदम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ समाप्तोऽयं तृतीयस्कंधः ॥ ३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥

कहा ॥ ३६ ॥ आत्मप्राप्तिके साधनोंमें परमगुह्य ऐसा यह कपिलदेवजीका मत जो सुने, वा कहे, उसकी गरुड़ध्वज भगवान्में बुद्धि हो जाती है. और उसीसे वह भगवान्के चरणारविंदको प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ॥

१ चक्रके धरनहारे गरुड़के असवारे नंदके कुमारे मेरो संकट निवारो जू ॥ यमलार्जुन तारे गजग्राहसे उबारे कालीके नथनहारे मेरे प्राणके अधारे जू ॥ नखपर गिरिधारे गोपी ग्वालको उबारे इंद्रहूके गर्व हारे विरद विचारे जू ॥ द्रुपदसुताकी बेर नेकहू न लागी देर अब कहा अबेर सूर सेवक तिहारो जू ॥ १ ॥

मनकी वृत्ति निरंतर ब्रह्माकार रहनेसे सर्वदेहादिकसंबंधी भ्रांति निवृत्त होनेपर, जागेहुए मनुष्यको जैसे स्वप्नमें देखेहुए पदार्थका स्मरण नहीं रहता, वैसे देहका स्मरण जाता रहा ॥ २७ ॥ यद्यपि उसके शरीरका पोषण पराये हाथ होता था, तथापि किसी मनोग्लानिके न रहनेसे कृश नहीं हुआ; किंतु मलसे ढकाहुआ उसका शरीर धूमसहित अग्निके समान शोभा देने लगा ॥ २८ ॥ वासुदेव भगवान्‌में बुद्धि लग जानेसे दैव जिसकी रक्षा करता है ऐसे, उसके तप व योगमय

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ॥ न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥ २७ ॥ तद्देहः परतः पोषोऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात् ॥ बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ स्वांगं तपो योगमयं मुक्तकेशं गतांबरम् ॥ दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ २९ ॥ एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ॥ आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवंतमवाप ह ॥ ३० ॥ तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥ ३१ ॥ तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ ३२ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥ ३३ ॥ सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥ ३४ ॥

शरीरका केश व वस्त्र छूट जानेपरभी उसे भान न रहा ॥ २९ ॥ इस प्रकार वह कपिलदेवजीके कहेहुए मार्गसे तुर्त नित्यमुक्त परमात्मा भगवान् ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ जहां वह देवहूती सिद्ध यानी जीवन्मुक्त हुई, वह परमपवित्र क्षेत्र सिद्धपद इस नामसे त्रिलोकीमें विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! योगके बलसे जिसके देहसंबंधी मल जल गये हैं, ऐसा वह देवहूतीका मर्त्यशरीर नदीरूप हो गया, जो नदी सब नदियोंमें उत्तम, सिद्ध पुरुषोंसे सेवित व सिद्धिकी देनेवाली है ॥ ३२ ॥ महायोगी भगवान् कपिलदेवजीभी मातासे आज्ञा लेकर, पिताके आश्रमसे ईशानकोनकी तर्फ सिधारे ॥ ३३ ॥ वहां सिद्ध चा-

या करते ॥ १९ ॥ देवहूतीका गृहस्थ सुख ऐसा था, कि-इंद्रकी स्त्रियांभी उसके सुखकी इच्छा किया करतीं थीं, सुखका त्याग करनेके अनंतर जब उसके पुत्रका वियोग हुआ, तब तो आतुरतासे उसका मुख शोकके कारण कुछ मलीनसा होगया ॥ २० ॥ पति कर्दमजी संन्यास लेकर, वनमें चले गये थे, उससेभी पुत्रके विरहसे आतुरताके कारण तत्त्व जाननेपरभी बछरेके विछुरनेसे जैसी दयालु गौकी दशा हो जाती है वैसी दशा हो गयी ॥ २१ ॥ हे विदुर ! उसी अपने पुत्र कपिलदेव हरिका स्मरण करती वह देव-

हित्वा तदीप्सिततममप्याखंडलयोषिताम् ॥ किंचिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥ तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥ २२ ॥ ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिंतया ॥ २३ ॥ भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ॥ युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥ विशुद्धेन तदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ॥ स्वानुभूत्यातिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥ २६ ॥

हूती वैसे वैभवयुक्त घरमें तुरंत स्पृहारहित हो गयी ॥ २२ ॥ पुत्र कपिलदेवजीने जो भगवद्रूप बताया, उसी ध्यानके विषयभूत प्रसन्न मुखवाले भगवत्स्वरूपका समग्र और एक एक अंगकी चिंतापूर्वक भक्तिके प्रवाहरूप योगसे, दृढ़ वैराग्यसे और युक्त अनुष्ठान करनेसे प्राप्त हुआ जो ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त करनेवाला ज्ञान उससे, विशेष करके शुद्ध हुआ जो अंतःकरण उससे, सर्वव्यापक आत्मा कि-जो अपने स्वरूपके प्रकाशसे मायाके गुणोंके कियेहुए परिच्छेदसे रहित है, उसका ध्यान करती सर्वजीवोंके आश्रयभूतपरब्रह्ममें स्थिरबुद्धि होगयी. और तब जीवभाव निवृत्त होनेसे सब क्लेश मिट गये और जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

---

१ छंद इंदव ॥ मूएते मोक्ष कहे सब पंडित मूएते मोक्ष कहे पुनि जैना ॥ मूएते मोक्ष कहे ऋषि तापस मूएते मोक्ष कहै शिव सैना ॥ मूयेते मोक्षसु म्लेच्छ कहे तनु धोखेहि धोखे बखानत बैना ॥ सुंदर आतमको अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ॥ १ ॥

सदा जन्म-मरण पाया करते हैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इस प्रकार उस सती देवहूतीको आत्मगतिका उपदेश करके, ब्रह्मज्ञानकी जाननेवाली अपनी माता देवहूतीसे आज्ञा पाकर, भगवान् कपिलदेवजी वहांसे चले गये ॥ १२ ॥ वहभी पुत्रके कहेहुए योगके उपदेशसे योगको धारण कर, एकाग्रचित्त हो, सरस्वती नदीके पुष्परचित मुकुटके समान उस बिंदुसरोवरमें निरंतर स्नान करनेसे कपिश वर्ण और जटिल कुटिल ( टेढ़े ) केश व उग्र तपस्याके निमित्त चीर धारी और दुर्बल शरीरको धारण करती रहने लगी ॥ १३ ॥ १४ ॥ प्रजापति कर्दमजीके तप व योगके प्रभावसे सर्वोपरि विराजमान और विमानमें रहनेवाले देवता जिसकी प्रार्थना करते हैं

मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिम् ॥ स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥ सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥ अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥ १४ ॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृंभितम् ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभांति ललनारत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहंगमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगंधिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९ ॥

ऐसा, अपना अनुपम गृहस्थाश्रम कि-जिसमें दूधके फेनसी सुफेद और कोमल हाथीदांतकी बनीहुई शय्या है, सुवर्णकी सामग्री है, सुकोमल बिछौनेवाले सुवर्णमय आसन धरे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ निर्मल स्फटिक मणि और अमूल्य मरकत मणिकी दीवारोंमें रत्नमय दीपक लगे हुए हैं और घरोंके अंदर स्त्रीरत्न शोभा दे रही हैं ॥ १७ ॥ घरका उद्यान कि-जिसमे पुष्पवाले बहुतसे कल्पवृक्ष शोभायमान हैं, पक्षियोंके जोड़े कूज रहे हैं और मदमत्त भौंरे गुंज रहे हैं ॥ १८ ॥ उस बगीचेके भीतर वह देवहूती जाती, तब देवतानके अनुचर गंधर्व उसके निकट गान किया करते और कमलोंकी सुगंधिवाली बावलीके अंदर कर्दमजी उसको रमण करा-

यदि चांडालभी आपके नामका श्रवण, कीर्तन, करे और आपके स्मरणपूर्वक आपको प्रणाम करे, तो वहभी केवल श्रवणादिकों-सेही तुर्त यज्ञ करनेके योग्य हो जाता है, तब हे प्रभु ! जो आपका दर्शन करता है वह कृतार्थ होवे, इसमें तो कहनाही क्या ? ॥ ६ ॥ अहो ! जो चांडाल होकर, अपनी जीभके अग्रसे आपका नाम लेता है, वह इसीकारण अन्य जीवोंकी अपेक्षा बहुत बड़ा है. मैं जानतीहूं कि- जो महात्मा आपका नामकीर्तन करते हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य तप, होम तीर्थस्नान और वेदपाठ किया होगा; क्योंकि विना पुण्य हरिकीर्तन होना दुर्लभ है ॥ ७ ॥ वे आप कपिलदेव कि- जो परब्रह्म, परमपुरुष, अंतर्वृत्ति करके मन-

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाऽग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणंति ये ते ॥ ७ ॥ तं त्वामहं ब्रह्मपरं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वंदे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ वाचाऽविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥ कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ १० ॥ श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः ॥ येन मामभवं याया मृत्युमृच्छंत्यतद्विदः ॥ ११ ॥

में ध्यान करनेके योग्य, अपने स्वरूपके प्रभावसे संसारबंधनको काटनेवाले और वेदगर्भ, विष्णु हो, उन्हे मैं प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ मैत्रयजीने कहा कि- परपुरुष भगवान् कपिलदेवजीकी इस प्रकार देवहूतीने स्तुति की, तब मातापर परमदयालु कपिलमुनिने गंभीर वाणीसे अपनी माताको इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि- हे माता ! भलीभांति सेवन करने योग्य मेरे कहे-हुए इस मार्गके अनुसार जो तू चलेगी, तो तुर्त पराकाष्ठा यानी जीवन्मुक्तिको प्राप्त होवेगी ॥ १० ॥ जिसका ब्रह्मवादी मुनिलोगोंने सेवन किया है ऐसे, इस मेरे मतपर श्रद्धा रख, जिससे भवभंजन मुझको तू प्राप्त होवेगी. जो लोग इस सिद्धांतको नहीं जानते. वे

तैंतीसवें अध्यायमें, कपिलदेवजीके उपदेशसे देवहूतीको ज्ञान प्राप्त होकर, उसका मोक्ष हुआ, यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-इस प्रकार कपिलदेवजीका बचन सुननेसे जिसका मोहपटल ( मोहान्धकार ) दूर हो गया है ऐसी कर्दमजीकी प्यारी, कपिलदेवजीकी माता देवहूती सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक कपिलदेवजीको प्रणाम करके, स्तुति करने लगी ॥ १ ॥ देवहूती बोली कि-आपका शरीर कि-जो पंचमहाभूत, इंद्रियां, विषय तथा अहंकारमय, गुणोंके प्रवाहवाला व सर्वका बीजरूप और जलमें शयनकिये था उसका ब्रह्माजीनेभी केवल ध्यानमात्र किया परंतु उनको उस स्वरूपका साक्षात् दर्शन नहीं

मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयांकितसिद्धिभूमिम् ॥ १ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्य जोंऽतःसलिले शयानं भूतेंद्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥ स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहो वितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ३ ॥ स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगांते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरंघ्रिपानः ॥ ४ ॥ त्वं देहतंत्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ॥ यथावतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥

हुआ, वे ब्रह्माजी खुद जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुये हैं, वे सत्यसंकल्प और हजारों अद्भुत शक्तिवाले आप गुणके प्रवाहरूपसे विभाग कीहुई शक्तियोंद्वारा जीवोंको भोग भोगानेके वास्ते जगत्की सृष्टि आदि करते हो, परंतु साक्षात् नहीं करते; क्योंकि क्रियारहित हो ॥ २ ॥ ३ ॥ प्रलयसमयमें यह जगत् जिनके उदरमें था और जो आप मायासे बालक बनकर, इकले चरणका अंगूठा चूसते हुए वटपत्रमें पौढ़े थे; वे आप हे नाथ ! मेरे उदरसे किस प्रकार धारण कियेगये हो ? ॥ ४ ॥ परंतु हे विभु ! पापी जनोंका नाश करनेके वास्ते और आपकी आज्ञानुसार चलनेवाले जनोंका कल्याण करनेके वास्ते जैसे आपने वराह आदि अवतार धारण किये हैं इसीतरह यह अवतारभी आत्मज्ञानको प्रगट करनेके वास्ते लिया है ॥ ५ ॥

हे माता! भक्तियोगका सगुण निर्गुणभेदसे चार प्रकारका स्वरूप और उत्पत्ति, संहार आदि करनेवाले अव्यक्तगति कालका स्वरूपभी मैंने तुमसे कहा ॥ ३७ ॥ तथा हे माता! अविद्याजनित कर्मोंसे होनेवाली जीवोंकी अनेक योनियांभी कहीं, जिनमें जानेसे यह आत्मा अपने स्वरूपको भूल जाता है ॥ ३८ ॥ यह उपदेश, खल यानी दूसरोंको दुखदेनेवाला, विनयरहित, अभिमानी, दुराचारी, धर्मध्वज यानी पाखंडी, लालची, घरमें आरूढ़मनवाला, मेरा अभक्त और मेरे भक्तोंका द्वेषी है उस

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥ कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽतर्धावति जंतुषु ॥ ३७ ॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वंग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥ ४० ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाऽभिरताय च ॥ ४१ ॥ बहिर्जातविरागाय शांतचित्ताय दीयताम् ॥ निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥ य इदं शृणुयादंब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अनधिकारीको कदापि नहीं देना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और इस उपदेशका अधिकारी जो मेरी श्रद्धा रखनेवाला, मेरा भक्त, विनयवान्, गुणमें दोषारोप न करनेवाला, सब प्राणीमात्रसे मित्रता रखनेवाला, मेरी सेवामें प्रीतिवाला, बाहिरकी ओर वैराग्यवाला, शांत मनवाला, मत्सरतारहित, पवित्र और मुझको सबसे प्रिय माननेवाला है, उसे इस ज्ञानका उपदेश देना चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे माता! जो मनुष्य मेरेमें मन लगाकर, इसे एकवारभी श्रद्धापूर्वक सुने वा कहे, वह मेरी पदवीको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

और जगत् पैदा हुआ है ॥ २९ ॥ जिसका मन श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य और निरंतर योगाभ्यास करनेसे एकाग्र भयाहुआ है, वह निःसंग पुरुष इस बातको ठीक ठीक जान सक्ता है॥ ३० ॥ हे माता! जिससे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है और प्रकृति– पुरुषका यथार्थ स्वरूप जाना जाता है, ऐसा यह ज्ञान मैंने तुमसे कहा ॥ ३१ ॥ निर्गुण ज्ञानयोग और मेरी निष्ठावाला भक्तियोग इन दोनोंका प्रयोजन एकही है, कि– जो भगवान्‌ने अपने आप गीता आदिमें कहा है॥ ३२ ॥ जैसे रूप रस आदि अनेक गुणवाला

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥ समाहितात्मा निःसंगो विरक्त्या परिपश्यति ॥ ३० ॥ इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ येनानुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥ ३२ ॥ यथेंद्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मेंद्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥ ३४ ॥ योगेन विविधांगेन भक्तियोगेन चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥ ३६ ॥

एकही पदार्थ भिन्न भिन्न मार्गवाली इंद्रियोंसे अनेक प्रकारका प्रतीत होता है, जैसे कि– हरड़ आंखसे हरी, जीभसे कषाय और त्वचासे अनुष्ण और अशीत प्रतीत होती है वैसे एकही भगवान् शास्त्रोंके मार्गोंसे भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रतीत होते हैं ॥ ३३ ॥ जैसे क्रिया यानी पूर्त ( कुएं बावली आदि करवाना ) यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, मीमांसा, मन व इंद्रियोंका जय, कर्मोंका त्याग यानी संन्यास ॥ ३४ ॥ अष्टांगयोग, अनेक अंगोंवाला भक्तियोग, प्रवृत्तिवाला सकाम धर्म और निवृत्तिवाला निष्कामधर्म ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वबोध व दृढ वैराग्य, इन सब साधनोंसे सगुण और निर्गुणस्वरूप स्वयंद्रष्टा एक भगवान्‌ही ज्ञात होते हैं. ॥ ३६ ॥



१ सोही लिखते हैं– एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥ १ ॥ अर्थ– अच्छीप्रकार एकहीमें टिका रहेवे तो दोनोंके फलको पाजाता है. जैसे कि– सांख्य यानी प्रकृतिपुरुषके ज्ञानसे जो स्थान प्राप्त होता है वही ( स्थान ) भक्ति आदि मार्गोंसेभी प्राप्त होता है ॥ १ ॥

वासुदेव भगवान्‌के भक्तियोगका साधन कियाजाय तो साक्षात् ब्रह्मस्वरूपको दिखानेवाला ज्ञान और वैराग्य स्वयं प्राप्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ विषय कि- जो सब ब्रह्मरूप होनेसे समानही हैं उनमें इंद्रियोंकी वृत्तियोंसे 'यह प्रिय और यह अप्रिय' ऐसी विषमता जब भक्तके चित्तमें नहीं आती ॥ २४ ॥ तब उसे आपही स्वयंप्रकाश आत्माका 'मैं परमानंदस्वरूप हूं' ऐसा निश्चय होजाता है, कि- जो स्वरूप सबमें समान, ज्ञानमय, संगरहित, त्यागने और ग्रहण करनेके प्रकारोंसे रहित है ॥ २५ ॥ परब्रह्म कि- जो ज्ञान-

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विंद्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥ स तदैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं निःसंगं समदर्शनम् ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ २६ ॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसंगस्तु कृत्स्नशः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेकं पराचीनैरिंद्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ अवभात्यर्थरूपेण भ्रांत्या शब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥ यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पंचविधः स्वराट् ॥ एकादशविधस्तस्य वपुरंडं जगद्यतः ॥ २९ ॥

मात्र, परमात्मा ईश्वर हैं, वे इकल्ले भगवान्, जीव, शरीर, विषय और इंद्रिय रूपसे भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ इस समस्त योग-साधनसे योगीको मुख्य प्रयोजन यही है, कि- सब ओरसे संग छूट जाय ॥ २७ ॥ निर्गुण और ज्ञानस्वरूप एक ब्रह्महही भ्रांतिके कारण बहिर्मुख इंद्रियोंसे भिन्न भिन्न शब्दादिक धर्मवाले पदार्थरूपसे प्रतीत होता है ॥ २८ ॥ जैसे कि- परमात्मा प्रथम एकरूप थे, वेही महत्तत्त्व त्रिविध अहंकार, पंच महाभूत, ग्यारह इंद्रिय और जीव इनके रूपसे अनेक रूप हुए. जिन महत्तत्त्वादिकोंसे जीवका शरीर रूप यह ब्रह्मांड

१ शब्दादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यतेवृत्तिः। इति सांख्योक्ते श्रोत्रादीनां शब्दादिषु प्रकाशनार्थे व्यापारे। अर्थ-शब्दादिकोंमें अर्थात् शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इनमें पंचेन्द्रियोंका प्रकाशमात्र वृत्ति कहलाती है. तहां पंचेन्द्रिय लिखते हैं "श्रोत्रत्वङ्नेत्ररसनघ्राणं पंचेन्द्रियं मतः" इति। कान, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासा यही पंचेन्द्रियां हैं.

प्रथम हैं वैसेही होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ जो लोग यहां कर्मोंमें आसक्तचित्त हो, कर्मोंकी श्रद्धासे बंधकर, संपूर्ण काम्य और नित्य कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ तथा रजोगुणसे कुंठित मन होकर, जो अजितेंद्रिय कामी पुरुष घरोंकी बासनासे बंधकर प्रतिदिन पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ वे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थोंकी ओर लगे हुये प्राणी, कीर्तन करने योग्य जिनका पराक्रम है ऐसे, मधुदैत्यके बैरी व संसाररहनेवाली बुद्धिवाले, हरिसे विमुख हो जाते हैं ॥ १८ ॥ और जो लोग हरि भगवान्‌की कथारूप अमृतको छोड़कर, विड्वराह जैसे विष्ठाकाही भक्षण करते हैं वैसे नीच लोकोंकी वार्ताही सुनते रहते हैं,

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः ॥ कुर्वंत्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥
रजसा कुंठमनसः कामात्मानोऽजितेंद्रियाः ॥ पितॄन्यजंत्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥
त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥ नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥ हित्वा शृण्वंत्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥ १९ ॥ दक्षिणेन पथार्यम्णः पितृलोकं व्रजंति ते ॥ प्रजामनु प्रजायंते श्मशानांतक्रिया कृतः ॥ २० ॥ ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ॥ पतंति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदांबुजम् ॥ २२ ॥

उन पुरुषोंके लिये समझना चाहिये कि- इनको दैवने सत्यानाश मिला दिया है ॥ १९ ॥ गर्भाधानसे मरणपर्यंत समस्त क्रिया करनेवाले ये लोक सूर्यसे बायें मार्ग होकर, पितृलोकमें जाते हैं. और वहांसे पीछे अपने वंशमेंही प्रजारूपसे प्रगट होते हैं ॥ २० ॥ हे माता ! पितृलोकमें रहते रहते जब पुण्य क्षीण होजाता है, तब उनके सुख साधनोंको देवता लोग तुर्त नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं, इसीसे वे लोग परवश होकर, पीछे इस मनुष्य लोकमें आते हैं ॥ २१ ॥ इसी लिये परमेश्वर कि- जिनके चरणारविंद भजनेके योग्य हैं उनका सर्व भावसे और उनके गुणोंका आश्रय करनेवाली भक्तिसे तुम भजन करो ॥ २२ ॥

१ ऐसी चतुरतापर छार ॥ वृथा वादविवाद जिततित हित न नन्दकुमार ॥ मातपितु सुत भ्रात मरि गये अरु सकल परिवार ॥ जानत हैं हमहू मरेंगे तऊन तजत विकार ॥ काम क्रोध औ लोभ व्यापो मोह मद हंकार ॥ सूर प्रभुकी शरण गह सतसंग वारम्वार ॥ १ ॥

प्राणी आदिसे संयुक्त इस ब्रह्मांडका प्रलय करनेकी इच्छासे ईश्वरमें प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥ तब यहांसे ऊपर ऊपर दूर जाकर, भगवान् हिरण्यगर्भ- ( ब्रह्माजी ) में प्रवेश कियेहुये पवन व मनको जीतनेवाले बैरागी योगी उस ब्रह्माके साथही परमात्मा कि- जो परमानंदरूप, अनादि और मुख्य है उसे प्राप्त होते हैं, परंतु ब्रह्मासे पहले नहीं पा सकते, क्योंकि वहांतक उनका देहाभिमान निवृत्त नहीं होता ॥ १० ॥ और भगवत् उपासना करनेवाले तो तुर्तही उसे प्राप्त हो जाते हैं; इसलिये हे माता ! सर्व प्राणीमात्रके हृदयकमलमें विराजनेवाले हरि कि- जिनका प्रमाण मैंने तुझे सुनाया है, उनका तू भावभक्तिसे शरण ले ॥ ११ ॥

एवं परेत्य भगवंतमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्मप्रधानमुपयांत्यगताभिमानाः ॥ १० ॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥ आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ १२ ॥ भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसंगेनापि कर्मणा ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ जाते गुणव्यतिकरे यथा पूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायांति गुणव्यतिकरे सति ॥ १५ ॥

तात्पर्य यह है कि-जो भगवद्भक्त हैं, वे तो निरंतर भगवान्को प्राप्त होते हैं और जो भगवान्से अभेद दृष्टि रखकर, हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे क्रमसे भगवत्पदको प्राप्त होते हैं और जो भेदभाव रखकर, उपासना करें तो पुरुषोंमें उत्तम व स्थावर-जंगमको उत्पन्न करनेवाले साक्षात् ब्रह्माजीभी, मरीचि आदि ऋषि व योगको प्रवृत्त करनेवाले सनत्कुमार आदि सिद्ध योगीश्वरोंके साथ अपने धर्मसे रचेहुए ब्रह्मलोक संबंधी ऐश्वर्यका भोग करनेके अनंतर प्रलय होनेपर सगुण ईश्वरमें लीन होकर, देहाभिमान और कर्तृत्व रह जानेके कारण ईश्वररूप कालकी गतिसे पीछी सृष्टि होनेके समय जन्म लेते हैं; परंतु निष्कामकर्म करनेसे जैसे

---

१ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १ ॥ अर्थ-ऐसी यह श्रीमुखवाक्य है कि-हे अर्जुन ! मेरे भक्त मेरेको प्राप्त होनेसे परम सिद्धीको प्राप्त हुये वे फेर दुःखोंका घर, अनित्य ऐसे इस जन्मको नहीं प्राप्त होते ॥ १ ॥ २ आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिन इति गीतायाम् ॥ अर्थ-ब्रह्मलोकसे ले जितने लोक हैं वे सब आवागमन सहित हैं ॥

वह पुरुष पितृ व देवतानका व्रत करके चंद्रलोकमें जाता है, वहां अमृतपान करके पीछा यहीं पृथ्वीमें जन्म लेता है ॥ ३ ॥ सकामकर्म करनेसे जो लोक मिलते हैं, वे स्थिर नहीं रहते; क्योंकि जिस समय हरि भगवान् शेषजीको आसन बनाकर, शेषशय्यापर पौढ़ते हैं, तब ये सकाम कर्म करनेवाले गृहस्थियोंके लोक लयको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ और जो काम व अर्थके वास्ते धर्मका दोहन नहीं करते, अर्थात् सकाम कर्म नहीं करते, वे आसक्तिरहित ईश्वरार्पण कर्म करनेवाले, शांतस्वरूप, शुद्धचित्त वाले, ॥ ५ ॥ निवृत्तिधर्ममें प्रीति रखनेवाले, धीर पुरुष अहंता व ममता रहित होनेसे स्वधर्मरूप सत्वगुणसे अंतःकरण

यदा चाहींद्रशय्यायां शेतेऽनंतासनो हरिः ॥ तदा लोका लयं यांति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ ये स्वधर्मान्न दुह्यंति धीराः कामार्थहेतवे ॥ निःसंगा न्यस्तकर्माणः प्रशांताः शुद्धचेतसः ॥ ५ ॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः ॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥ ६ ॥ सूर्यद्वारेण ते यांति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यंतभावनम् ॥ ७ ॥ द्विपरार्द्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ तावदध्यासते लोकं परस्य परचिंतकाः ॥ ८ ॥ क्ष्मांऽभोनलानिलवियन्मनइंद्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ९ ॥

शुद्ध होनेके कारण ॥ ६ ॥ सूर्यलोकद्वारा पर अवर रूप सबके स्वामी जगत्के उपादानकारण व इसकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेवाले, परिपूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान्को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ जो लोग ब्रह्माजीको परमेश्वर जानकर, ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं, वे ब्रह्माजीके सौ १०० वर्षके अंतमें प्रलय होता है तबतक तो ब्रह्मलोकमें रहा करते हैं ॥ ८ ॥ और जब गुणत्रयमय शरीरवाले ब्रह्माजी अपने सौ १०० वर्षपर्यंत समयको भोगकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इंद्रियां, विषय और

१ सर्वतः पाणिपादं तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १ ॥ अर्थ– सबतरफ अनन्तहाथ-पैर, तैसेही सबतरफ असंख्य आंखशिर मुख, वैसेही सबतरफ अगणित कान जिसके, जो कि–लोकमें सर्वव्यापी होके रहा है ॥ १ ॥

समस्त स्थूल शरीर जब अपना काम करनेके अयोग्य होता है, तब लिंगशरीरभी अपना काम करनेके अयोग्य होता है, और ये दोनों अयोग्य हुए, तब जीव कि जो जाननेवाला है, उसके ज्ञातृत्वकी अयोग्यता होती है यह अयोग्यता हुई यही जीवका मरण कहलाता है और पीछी अभिमानसे दोनों शरीरकी योग्यता होनेपर जीवमेंभी ज्ञातृत्वकी योग्यता आती है, यही जीवका जन्म हुआ कहलाता है; वास्तविक रीतिसे जीवके जन्म-मरण हैंही नहीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इसीवास्ते न तो मरनेसे डरना, न जीवनके वास्ते दीनता करना और न जीवनके प्रयत्नोंमें आदर रखना, किंतु जीवके सत्यस्वरूपको जान, संगमात्रका त्याग कर, धीर हो, इस जगत्में विचरना ॥ ४७ ॥ योग और वैराग्यवाली तथा यथार्थ विचार करनेवाली, बुद्धिसे इस मायासे

यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ॥ तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ ४६ ॥ तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः ॥ बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसंगश्चरेदिह ॥ ४७ ॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥ मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने जीवगतिर्नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन्गृहे ॥ काममर्थं च धर्मान्स्वान्दोग्धि भूयः पिपर्त्ति तान् ॥ १ ॥ स चापि भगवद्धर्मात्काममूढः पराङ्मुखः ॥ यजते क्रतुभिर्देवान्पितॄंश्च श्रद्धयाऽन्वितः ॥ २ ॥ तच्छ्रद्धयाक्रांतमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥ गत्वा चांद्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥ ३ ॥

बनेहुए लोकमें देहकी आसक्ति छोड़कर, विचरना चाहिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ बत्तीसवें अध्यायमें, सात्विक धर्मोंसे ऊपरके लोकोंमें जाना और तत्त्वज्ञान विना फिर पीछा वहांसे आना, यह वर्णन होगा ॥ १ ॥ कपिलदेवजीने कहा कि—जो गृहस्थी घरमेंही रहकर गृहस्थके धर्मोंका आचरण करे और उनसे अर्थ व कामरूप फल लेता रहे, अर्थात् सकाम धर्मोंका आचरण करे और फिरभी उन्हीं सकाम धर्मोंका अनुष्ठान करता रहे ॥ १ ॥ वह विषयमूढ़ पुरुषभी भगवदाराधनरूप धर्मसे विमुख होकर, यज्ञद्वारा श्रद्धापूर्वक देवता व पितरोंका यजन करता है ॥ २ ॥ पितृ और देवतानकी श्रद्धासे जिसकी बुद्धि व्याप्त हो रही है,

पमाया जो धीरे धीरे अपने समीप आवे, तो उसे घाससे ढकेहुए कुएके मानिंद अपनी मौत समझना चाहिये ॥ ४० ॥ मुमुक्षु स्त्रीकोभी, पतिरूप मेरी माया कि- जिसे मोहसे आप धन, संतान और घर देनेवाला मानती है, उसे व्याधका गाना जैसे हिरणकी मौत है, वैसे दैवसे प्राप्त अपनी मौत समझना चाहिये कि- जो मौत पति, संतान और धनरूप है; क्योंकि यह जीव पूर्व जन्ममें पुरुष था सो स्त्रीकी संगति करनेसे अंतकालमें स्त्रीरूप हुआ है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने उपाधिरूप लिंगशरीरसे एक अव-

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ॥ स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ ४१ ॥ तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥ दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ ४२ ॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥ भुंजान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ४३ ॥ जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेंद्रियमनोमयः ॥ तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४४ ॥ द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा ॥ तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४५ ॥

तारमेंसे दूसरे अवतारमें जाताहुआ जीव एक कर्मका भोग करताही निरंतर दूसरे कर्म किया करता है ॥ ४३ ॥ लिंग शरीर और उसका अनुसरण करनेवाला भूत, इंद्रिय व मनका विकाररूप स्थूल शरीर, जब कार्य करनेके अयोग्य होवे, तब उस जीवका मरण हुआ कहलाता है और ये दोनों शरीर जब प्रगट यानी कार्य करनेके योग्य होवें, तब जन्म हुआ कहलाता है ॥ ४४ ॥ जब नेत्रके गोलक पदार्थोंके अवयव देखनेको अयोग्य होते हैं, तब उसके भीतरकी चक्षु इंद्रियभी अपना काम करनेको अयोग्य होती है और ये दोनों अयोग्य हुई, तब पुरुष कि- जो प्रथम देखनेवाला है उसमें द्रष्टापनकी अयोग्यता होती है. इसी प्रकार

१ छंद कुंडलिया ॥ भाय रसिक प्रियके सुनत उपजे बहुत विकार ॥ जो यामेंही चित्त धरे वही होत नर ख्वार ॥ वही होत नर ख्वार बार तौ कबहुँ न लागे ॥ सुनत विषयकी बात लहर विषहीकी जागे ॥ ज्यों कोउ ऊंघत नींदमें ले पुनि सेज बिछाय ॥ सुंदर ऐसी जानकै सुनत रसिक प्रिय भाय ॥ १ ॥
२ कामला आदि दोषसे

संगति नहीं करनी ॥ ३४ ॥ क्योंकि जैसा बंधन स्त्रियोंके संगसे और उसका संग करनेवाले पुरुषोंके संगसे होता है, वैसा बंधन व मोह और किसी संगसे इस जीवके नहीं होता ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर, उसके रूपसे मोहित हो गये, तब सरस्वतीने अपने बचावके लिये हिरनीका स्वरूप धारण किया, तो ब्रह्माजीभी हिरनका रूप धर, निर्लज्जकी भांति उसके पीछे दौड़े ॥ ३६ ॥ जब ब्रह्माजीकीभी यह दशा है, तब उनके रचेहुए मरीचि आदि और उनके रचेहुए कश्यप

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३५॥ प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥ रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥ ३६ ॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वखंडितधीः पुमान् ॥ ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ ३७ ॥ बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ॥ या करोति पदाक्रांतान् भ्रूविजृंभेण केवलम् ॥ ३८ ॥ संगं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदंति या निरयद्वारमस्य ॥ ३९ ॥ योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥ तामीक्षेताऽऽत्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ४० ॥

आदि व उनके रचेहुए जो देवता मनुष्य आदि हैं, उनमें ऐसा कौन है ? कि–जिसका मन स्त्रीरूपी मायासे खंडित न होवे, हां एक नारायणकी तो हम नहीं कह सकते, जो ऋषिरूप धारण करके विराजे हैं ॥ ३७ ॥ मेरी स्त्रीरूप मायाका प्रभाव तो देख, कि जो दिशाओंको जीतनेवाले शूरवीर लोगोंकोभी केवल भौंह चढ़ानेसे अपने पादाक्रांत कर लेती है ॥ ३८ ॥ इस लिये जो मनुष्य योगका वारापार पाना चाहे, उसे कदापि स्त्रियोंकी संगति न करनी चाहिये; क्योंकि जिसको मेरी सेवाके प्रभावसे आत्मलाभ हो गया है. उस मुमुक्षुके वास्ते तो ये नरकका दरवाजा कहलाती हैं ॥ ३९ ॥ भगवान्की बनायीहुई यह स्त्रीरू-

---

१ ॥ दोहा ॥ अमी हलाहल मद भरे, श्वेतश्याम रतनार ॥ जियत मरत झुक झुक परत जेहिं चितवत कइबार ॥ १ ॥ २ ॥ दोहा ॥ नारी पैनी है छुरी, कोउ जनि लावो अंग ॥ दशौं शीश रावणकेरे कटे नारिके संग ॥ १ ॥ नारी जो परसन भई, दै न सकै कछु और ॥ मूत्रपात्र आगे धरे, करे नरकको ठौर ॥ २ ॥

घसे घिरा रहता है ॥ २८ ॥ तथा देहके साथ बढ़तेहुए क्रोध व घमंडके कारण वह कामीजीव दूसरे वैसेही विषयी जीवोंके साथ अपने नाशके वास्ते क्लेश करता रहता है ॥ २९ ॥ पंचमहाभूतोंसे बनेहुए इस शरीरमें दुराग्रह करनेवाला यह कुबुद्धि अज्ञानी जीव बारंबार 'मैं और मेरा' ऐसी बुद्धि किया करता है ॥ ३० ॥ अविद्या व कर्मसे बंधाहुआ तथा क्लेश देताहुआ जो यह देह बारंबार आया करता है, इसीके वास्ते यह जीव कर्म किया करता है कि-जिस कर्मसे बंधनमें आकर, जन्म-मरणकी फेरीमें भटकता रहता है

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वंताय चाऽऽत्मनः ॥ २९ ॥ भूतैः पंचभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥ अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ ३० ॥ तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥ योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबंधनः ॥ ३१ ॥ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥ आस्थितो रमते जंतुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥ शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥ ३३ ॥ तेष्वशांतेषु मूढेषु पंडितात्मस्वसाधुषु ॥ संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ ३४ ॥

॥ ३१ ॥ यदि यहां फिर पीछी शिश्न और पेटके वास्ते उद्यम करनेवाले पुरुषोंकी संगत लगजाय तो यह प्राणी उन्हींके मार्गमें चलता है और उसके प्रभावसे वह पूर्वोक्त प्रकारसे नरकमें पड़ता है ॥ ३२ ॥ क्योंकि नीच पुरुषोंकी संगति करनेसे सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लाज, कीर्ति, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य ये सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस लिये इन शांतिरहित, विवेकहीन, देहात्मबुद्धिवाले, स्त्रियोंके क्रीड़ामृग (खिलौने) व शोच करनेके योग्य नीच पुरुषोंकी कदापि

---

१ कवित्त ॥ कुमतिते यश जाय, गर्वते लक्षण जाय, कुतियते कुल जाय, योग जाय संगते ॥ भूंखते मर्याद जाय, लड़ायेते पूत जाय, शोचते शरीर जाय शीलता कुसंगते ॥ कपटते धर्म जाय, लोभते बड़ाई जाय, मांगनेते मान जाय, पाप जाय गंगते ॥ क्रोधते तपस्या जाय, नीति विन राज्य जाय, रजपूताई जाय मुरे संग्रामते ॥ १ ॥ २ ॥ दोहा ॥ देहमपंच अनित्य है, अतम नित्य बखानि ॥ सारासारहि जानिबो यह विवेक सामानि ॥ १ ॥

जीवको बाहिर निकालनेके वास्ते प्रसवका वायु तुर्त उलटा पटककर, धक्का देता है ॥ २२ ॥ पवनके धक्केसे आतुर भया हुआ वह जीव शिर उलटा करके, श्वासभी न आ सके ऐसे, महाकष्टमें तुर्त बाहिर निकलता है और उस समय उसकी स्मृतिका नाश हो जाता है ॥ २३ ॥ पृथ्वीपर पड़कर, लोहू और मूत्रमें विष्ठाके कीड़ेकी तरह वह तड़फड़ाता है और ज्ञान चला जानेसे वह विपरीत दशाको पाकर, बहुत रुदन करता हैं ॥ २४ ॥ पराये अभिप्रायको न जाननेवाले मनुष्योंसे पोषण होते जो बिना चाहाहुआ पदार्थ मिले. यानी पेटकी पीड़ासे रुदन करता होवे, उस समय उसे भूंखा समझ कर, दूध पिलाते हैं और भूंखके मारे

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक्शिर आतुरः॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २३ ॥ पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४ ॥ परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ २५ ॥ शायितोऽशुचिपर्यके जंतुस्वेदजदूषिते ॥ नेशः कण्डूयनेंऽगानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २६ ॥ तुदंत्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदंतं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ २७ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च ॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचाऽर्पितः ॥ २८ ॥

रोता है, उस वख्त उसके पेटकी पीड़ा समझकर, उसे औषध पिलाते हैं, तोभी ना नहीं कह सकता ॥ २५ ॥ मक्खियां और खटमल वगैरःसे खराब भयीहुई अपवित्र चारपाईपर सुलायाहुआ वह जीव न तो अपने अंगोंको खुजा सक्ता है, न बैठ सक्ता है न उठ सक्ता है और न कोई दूसरी चेष्टा कर सक्ता है ॥ २६ ॥ कीड़े जैसे दूसरे कीड़ेको काटें वैसे दंश, मच्छड़ और खटमल आदि जंतु इस कोमल त्वचावाले अज्ञानी बालकको काटते हैं; जिससे वह केवल रोया करता हैं ॥ २७ ॥ इस तरह यह अनेक प्रकारके दुःख भुगत कर, बाल्यअवस्थाके[1] दुःख भोगता है, फिर पढ़ने आदि जो पौगंड[2] अवस्थाके दुःख हैं उन्हे भुगतकर, तरुण अवस्थाको पहुंचता है, वहांभी मनचाही वस्तु न पाकर, अज्ञानसे महाक्रोध करता है और उसीके कारण शो-

१ पांच वर्षतककी जो अवस्था वह बाल्य अवस्था. २ पांच वर्षसे ऊपर सो तरुण अवस्थापर्यंत वह पौगंड अवस्था.

हे प्रभु ! जिन आपजैसे महादयालुने इस दश महीनोंके प्राणीको ऐसा ज्ञान दिया है वे, आप कि-जो दीननाथ हो, वे अपने कियेहुए उपकारसेही प्रसन्न होओ; क्योंकि-अपने उपकारका बदला हाथ जोड़नेके सिवाय कौन दे सक्ता है ?॥ १८॥ दूसरे पशु-आदिको तो अपने शरीरसंबंधी सुख दुःखकीही केवल सुध रहती है, परंतु मैं तो जिनके दियेहुए ज्ञानसे जिससे शम दम-आदि साधन बन सकें ऐसी स्थितिमें हूं. उन भोक्ताकी नाईं अपरोक्ष प्रतीत होतेहुए आदिपुरुषको बाहिर और हृदयके

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः कोनाम तत्प्रतिविनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥ पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरंधकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥ २० ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥

भीतर परिपूर्णरूप देखता हूं ॥ १९ ॥ हे विभु ! वह मैं अत्यंत दुःखकी स्थितिमें हूं; तथापि गर्भसे बाहिर निकलना नहीं चाहता, क्योंकि-बाहिरके अंधकूपमें पड़तेही आपकी माया तुर्त व्याप जाती है, कि-जिसके पीछे देहाभिमान और स्त्री पुत्र-आदिका संबंध प्राप्त होता है ॥ २० ॥ इस लिये मैं यहीं रहकर, धीरज धारण करके, आपके चरणारविंदको हृदयमें स्थापित करूंगा और उसीके प्रभावसे अपनी सुहृद्रूप बुद्धिकी सहायता पाकर, संसारमेंसे अपना उद्धार करूंगा कि-जिस प्रकारसे अनेक गर्भोंमें निवास करनेरूप दुःख मुझे भुगतना न पड़े ॥ २१ ॥ कपिलदेवजीने कहा कि-ऐसा निश्चय करके स्तुति करतेहुए दश महीनेके



१ छंद ॥ पायो जो दारुण दुसह दुख सुख लेश सुपनेहु नहिं मिल्यो ॥ भवशूल शोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठिहठि चल्यो ॥ बहुयोनि जन्म जरा विपति मतिमंद हरि जान्यो नहीं ॥ श्रीरामबिन विश्राम मूढ़ विचारि लख पायो कहीं ॥ १ ॥

चमहाभूत, इंद्रिय और अंतःकरणरूप माया ( देहाकारता ) को पाकर जो मैं मानों कर्मोंसे बँधाहुआ होऊं ऐसे रहा हूं, वह अब विशुद्ध निर्विकार अखंडज्ञानस्वरूप और इस तपायमान हृदयमें प्रतीत होतेहुए परमेश्वरको प्रणाम करता हूं ॥ १३ ॥ वस्तुतः शरीररहित होनेपरभी मिथ्याही इंद्रिय, गुण, पंचमहाभूत और चिदाभासरूप मैं कि-जो पंचभूतोंसे उत्पन्न भयेहुए शरीरमें मिथ्याही ढकाहुआ प्रतीत होता हूं वह, शरीरसे अकुंठित महिमावाले, प्रकृति पुरुषके नियंता, सर्वज्ञ और परमेश्वर प्रभुको प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥ जिसकी मायासे स्वरूपज्ञानका विस्मरण होनेके कारण, अनेक गुण और कर्मोंसे बंधेहुए इस संसारसंबंधी

यः पंचभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नोऽयथेंद्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाविकुंठमहिमानमृषिं तमेनं वंदे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबंधनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमंतरेण ॥ १५ ॥ ज्ञानं यदेतदधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्त्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १६ ॥ देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदा नु ॥ १७ ॥

मार्गमें महाक्लेशसे भ्रमण करता हुआ यह जीव उस ईश्वरके अनुग्रह विना, दूसरी किसी युक्तिसे अपने निज स्वरूपको प्राप्त हो सक्ता है ? अर्थात् हरिकृपाविना ज्ञान नहीं और ज्ञानविना मुक्ति नहीं, तासों हरिकी सेवा ही मुख्य कर्तव्य है ॥ १५ ॥ जो यह मुझे तीनों कालका ज्ञान हुआ है, उसका देनेवाला कौन है ? यह तो स्थावर-जंगममें अंतर्यामी रूपसे रहाहुआ साक्षात् परमेश्वरही है, इसी लिये जीवरूप कर्म पदवीको पायेहुए हम तीनों पापोंकी निवृत्तिके वास्ते उसी परमेश्वरका आराधन करते हैं ॥ १६ ॥ माताके शरीररूप गुफामें जठरकी अग्निसे अत्यंत तपायमान शरीरवाले व रक्त, विष्ठा व मूत्रके गढ़ेमें पड़े हुए, अतिदुखी और यहासे निकलनेके वास्ते अपने महीनोंको गिनते हुए इस दीन जीवको हे भगवन् ! बाहिर कब निकालोगे ? ॥ १७ ॥

सब अंग यानी रोम रोममें बेदना उठ खड़ी होती है ॥ ७ ॥ गर्भाशयके अंदर तो जरायुसे लपेटाहुआ और बाहिर माताके आंतरोंसे लपेटा हुआ, वह जंतु पीठ व गर्दनको कमानसी टेढ़ी करके, कोखके अंदर शिर लगाके, पड़ा रहता है ॥ ८ ॥ जैसे पींजरेमें बंधाहुआ पंछी कुछभी बांछित व्यापार नहीं कर सक्ता, वैसे यहभी अपने अंगकी कुछभी चेष्टा नहीं कर सक्ता, वहां इसे पूर्वकर्मोंके बलसे सौ १०० जन्मोंके कर्मोंकी स्मृति हो जाती है, उन कर्मोंका स्मरण होनेसे यह लंबे लंबे निसासा डालता है और वहां सुखका तौ कामही क्या ? ॥ ९ ॥ सातवें महीनेमें इसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तथापि प्रसूतिहेतुवायुसे यह सदा

उल्वेन संवृतस्तस्मिन्नंत्रैश्च बहिरावृतः ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ ॥ अकल्पः स्वागचेष्टायां शकुंत इव पंजरे ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्मजन्मशतोद्भवम् ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किंनाम विंदते ॥ ९ ॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ १० ॥ नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः ॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ ११ ॥ जंतुरुवाच ॥ तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविंदम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्य सतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥ यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेंद्रियाशयमयीमवलंब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखंडबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १३ ॥

कंपायमान रहता है और विष्ठाके कीड़ेकी तरह उसके साथ रहनेवाला यह जंतु एक ठौर नहीं ठहेर सक्ता ॥ १० ॥ दुखी होता और फिर वारंवार गर्भवाससे त्रास पाताहुआ वह सात धातुओंसे लिपटाहुआ ऋषि[1] जीव, जिसने आपको उदरमें ला पटका है, उसकी हाथ जोड़कर, विव्हल वाणीसे स्तुति करने लगा ॥ ११ ॥ जीव बोला कि–शरणागत, जगत्की रक्षा करनेके अर्थ अपनी इच्छासे अनेक अवतार धारण करनेवाले, श्रीकृष्ण भगवान्के पृथ्वीपर क्रमण करते, अकुतोभय चरणारविंदके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं, कि–जिन भगवान्ने मैं कि–जो पापी हूं उसको पाप घटे ऐसा यह गर्भवास दिया है ॥ १२ ॥ इस माताके शरीरमें पं-

१ ऋषि यानी आत्मदर्शी ऐसा चक्रवर्तीटीकामें लिखा है. और श्रीधरस्वामीने देहात्मदर्शी लिखा है. और बालप्रबोधिनीटीकामें आत्मपरमात्मगुणस्वरूपज्ञ लिखा है.

जाता है, फिर उसके बाद मनुष्यका गर्भ तो मांसके पिंडके आकार और दूसरी योनिका गर्भ अंडेके आकार बनता है ॥ २ ॥ एक महीनेमें शिर, दो महीनोंमें हाथ, पांव आदि अंगोंका विभाग, तीन महीनोंमें नख, रोम, हड्डी, मर्मस्थान, लिंग व छेद ये सब पैदा होते हैं ॥ ३ ॥ चार महीनोंमें सातों धातु उत्पन्न होतीं हैं, पांचवें महीनेमें भूंख, प्यास पैदा होती है, छठे महीने जरायु यानी खोलीसे लिपटकर, दाहिनी कोखमें फिरा करता है ॥ ४ ॥ माता जो खाती पीती है उसका रसांश आप्यायनी नाम

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वंघ्र्याद्यंगविग्रहः ॥ नखलोमास्थिमर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुतृडुद्भवः ॥ षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ४ ॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जंतुर्जंतुसंभवे ॥ ५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥ मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥ मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वांगोत्थितवेदनः ॥ ७ ॥

नाड़ी कि-जो गर्भके नाभिमें लगी रहती है उसकेद्वारा उस गर्भको पहुंचता रहता है, जिससे उसकी धातु बढ़ती रहती हैं, और वह जंतु, जंतुओंकी खान ऐसे विष्ठा और मूत्रके गढेमें पड़ा रहता है ॥ ५ ॥ भूंखसे व्याकुल ऐसे गर्भके कीड़े जो उसे खाते हैं, उससे सुकुमारताके कारण क्षण क्षणमें उसे मूर्छा आजाती है और बारंबार बहुत दुख पाता है ॥ ६ ॥ कीड़ोंके काटनेके घावपर जो माताके खाये हुए, कड़ु, तीक्ष्ण, गरम, लवण, रुखे व खट्टे आदि अनेक प्रकारके तीक्ष्ण पदार्थ लगते हैं उससे उस गर्भके

---

१ तत्प्रकारस्तूक्तो मार्कण्डेयपुराणे-नाडी चाप्यायिनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते । स्त्रीणां तथांऽत्र सुषिरे सा निबद्धोपजायते ॥ १ ॥ क्रमंते भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे तथा । तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ॥ २ ॥ अर्थ-जिसका प्रकार तो मार्कण्डेयपुराणमें कहा है. तद्यथा-स्त्रियोंके एक आप्यायनी नाम नाड़ी (रग) होती है. जो कि-गर्भनाड़ी नामसे वैद्यकमें स्त्रियोंके अधिक कही है और स्त्रियोंके गर्भाधानके समयमेंही वह होती है तथा नाभिछिद्रमें बँधी रहती है वही बालककीभी नाभिमें लगी रहती है जिसे नाला कहते हैं इसीके द्वारा माताके खाये, पिये पदार्थ गर्भोदरमें इसे प्राप्त होते हैं, इनसेही पुष्टदेह यह प्राणी दिनबदिन शरीरकी वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ २ ॥

नरकके दुःख हैं वे यहांभी देखनेमें आते हैं ॥ २९ ॥ जो मनुष्य इस तरह केवल कुटुंबका भरण पोषण करता है, या अपना पेट भरता है, उसके वे दोनों यहीं रह जाते हैं और मरकर, परलोकमें जानेपर पापका फल उस इकलेको भुगतना पड़ता है ॥ ३० ॥ सबसे निकट संबंधवाला तो यह शरीर है, सो यहभी यहीं रह जाता है, तब फिर उसको परलोकके मार्गमें इकलाही जाना पड़ता है, वह पाप अवश्य साथ रहता है कि-जो जीवोंसे द्रोह करके संचय किया गया है ॥ ३१ ॥ ईश्वरके प्राप्त कियेहुए उस कुटुंबपोषण करनेके पापको नरकमें भोगता है और जिसका द्रव्य जाता रहा हो ऐसे मनुष्यकी तरह आतुर होता है ॥३२॥



एवं कुटुंबं बिभ्राण उदरंभर एव वा॥ विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥ एकः प्रपद्यते ध्वांतं हित्वेदं स्वकलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ३१ ॥ दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ॥ भुंक्ते कुटुंबपोषस्य हृतवित्त इवातुरः॥ ३२॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटुंबभरणोत्सुकः ॥ याति जीवोऽधतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ ३३ ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रावव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने कर्मविपाकोनाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जंतुर्देहोपपत्तये ॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥ कललं त्वेकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम् ॥ दशाहेन तु कर्कंधूः पेश्यंडं वा ततः परम् ॥ २ ॥

केवल अधर्मसे कुटुंब पालनेका जो उत्साह रखता होवे, वह जीव छेले दर्जेके अंधतामिस्र नाम नरकमें पड़ता है ॥ ३३ ॥ मनुष्यलोकके नीचे जितने नरक हैं उन सबको क्रमसे भुगतकर, पवित्र हो, पीछा इस लोकमें आता है ॥ ३४ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ इकतीसवें अध्यायमें पुण्यपापमिश्रित होनेसे यहां राजसी गतिवाली मनुष्ययोनि प्राप्त होती है. यह वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीकपिलदेवजीने कहा कि-ईश्वरप्रेरित पूर्वकर्मके प्रतापसे यह जीव देह धारण करनेके लिये पुरुषके वीर्यके बिंदुद्वारा स्त्रीके पेटमें पड़ता है ॥ १ ॥ एकरात्रिमें तो शुक्र और रक्त मिश्रित होते हैं. पांच रात्रिसे गोल आकार बनता है, दश दिनोंमें बेरके तरह कठिन हो

न तो कोई ठहरनेका आश्रम है और न कहीं जल है, जब थकित होकर, ठहरना चाहता है तब वे दूत पीठपर बड़ी निर्दयतासे चाबुक मारते हैं, तब अशक्त होनेपरभी फिर चलता है ॥ २२ ॥ जहां तहां थककर, पड़ जाता है, मूर्छा आ जाती है, फिर उठकर चलना पड़ता है, इस तरह पापके हेतु महादुखदायी मार्गसे उस प्राणीको वे दूत यमराजके लोकमें ले जाते हैं ॥ २३ ॥ निन्यानबे हजार ९९००० योजन मार्ग काटकर, जो जियादा पापी हुआ तो दो मुहूर्तमें और उससे कम हुआ तो तीन मुहूर्तमें यमराजके लोक ले जानेपर वहांके दुःख भोगा करता है ॥ २४ ॥ वहां कहीं तो उस पापी प्राणीके शरीरके गूड़ गूदड़ आदि

तत्र तत्र पतन् श्रांतो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ॥ यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥ २३ ॥ योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्त्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥ आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥ आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चांत्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृंतनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ॥ पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चांबुगर्तयोः ॥ २७ ॥ यास्तामिस्रांधतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ॥ भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः ॥ २८ ॥ अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ॥ या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥

लपेटकर, उसका शरीर जलाते हैं, कहीं उसीके हाथसे वा दूसरेके हाथसे उसके अंगादि कटवा कटवाकर, उसको अपना मांस खिलाते हैं ॥ २५ ॥ कहीं यमलोकमें कुत्ते और गिद्ध जीतेहुए उस पापीके आंतरे बाहिर निकालते हैं, कहीं सांप, बीछू और दंश आदिके काटनेसे दुखी होकर, वह प्राणी अपने पापोंका फल भोगता है ॥ २६ ॥ कहीं उसके अंगोंका टुकड़ा टुकड़ा करते काटते हैं, कहीं हाथी आदिसे चिरवा देते हैं, कहीं पर्वतके शिखरोंसे गिरा देते हैं, कहीं जल व गढ़ेके अंदर रोक देते हैं ॥ २७ ॥ जो तामिस्र, अंधतामिस्र और रौरव आदि नरक हैं उनका दुःख क्या स्त्री और क्या पुरुष परस्पर संग करनेसे जो दुष्ट कर्म किये हैं, उनका फल भुगताना पड़ता है ॥ २८ ॥ हे माता ! यह बात असंभव नहीं है; क्योंकि–नरक व स्वर्ग यहीं दीख पड़ता है. जो

नेके कारण उसका आहार कम हो जाता है और उसीसे उसकी उठने बैठनेकी शक्ति कम हो जाती है ॥ १५ ॥ मृत्यु आकर, घेर लेती है, तब और जब वायुसे आंखोंकी पुतलियां ऊंची चढ़ जातीं हैं, कफसे नाड़िया रुक जाती हैं, कास और श्वासकी तकलीफ बहुत बढ जाती है, आखिर कंठमें घुर घुर बोलना शुरू हो जाता है ॥ १६ ॥ उस बख्त शोच करतेहुए उसके भाई बंधु उसे चारों ओरसे घेर लेते हैं और सोतेहुए उस प्राणीसे पूंछते हैं, कि-कुछ ( माल ) हो तो बतलाओ, परंतु वह तो कालकी पाशके वश होनेके कारण कुछभी नहीं बोल सकता ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इंद्रियोंको न जीतकर, केवल कुटुंबके भरण पोषणमें लगा रहता है, वह अपने बांधवोंके रुदन करते अतिविकट वेदनासे बेचेत होकर, मर जाता है ॥ १८ ॥ उस समय क्रो-

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबंधुभिः ॥ वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशंगतः ॥ १७ ॥ एवं कुटुंबभरणे व्यापृतात्माऽजितेंद्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुंचति ॥ १९ ॥ यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घ मध्वानं दंड्यं राजभटा यथा ॥२०॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥

धभरे नेत्रवाले, महाभयंकर यमराजके दो दूत आते हैं, उन्हें देखतेही उसका हृदय त्रासके मारे घबरा जाता है और मलमूत्र निकल आते हैं ॥ १९ ॥ वे तुर्त उस प्राणीको मनुष्य शरीरमेंसे निकाल, यातनादेह कि-जो यमराजके लोककी पीड़ा भुगतानेके लिये एक नियत शरीर है उसमें दाखिल कर, गलेमें फांसोंसे बांधकर, जैसे राजदूत दंड देदे योग्य पुरुषको जबर्दस्ती खींचकर ले जाते हैं, वैसे बड़े दूर रास्ते खेंचकर ले जाते हैं ॥ २० ॥ उन दूतोंकी ताड़नासे उसका हृदय फट जाता है, शरीर कांपने लगता है और रास्तेमें कुत्ते फाड़ने लगते हैं, उससमय वह दुखी होकर, अपने पापका स्मरण करता है ॥ २१ ॥ रास्तेमें भूंख व प्यास सताती है तथा सूर्य, दवानल और वायुसे संतप्त होनेपर फिर तपीहुई बालूके रेतीके मार्गमें चलना पड़ता है कि-जहां

प्रधान घरोंमें निरलस होकर, दुःख मिटानेके वास्ते उपाय करता हुआ सुखकी तरह मान बैठता है॥ ९ ॥ और लोगोंको बहुतसा दुःख देकर, इधर उधरसे इकठे कियेहुए द्रव्यसे कुटुंबका पोषण कर, अवशेष जो कुछ बचे, उससे गुजर, करके, फिर अपने अधमेंसे आप इकला नरकमें पड़ता है ॥ १० ॥ जब जीविका नष्ट हो जाती है तब फिर उसके वास्ते उद्यम करता है ऐसे बारंबार जीविकाके वास्ते उद्यम करता २ हैरान हो जाता है तब लोभसे तिरस्कृत व अशक्त होकर, पराये द्रव्यकी चाह करता है ॥ ११ ॥ जब वह अभागी मूर्ख उद्यम निष्फल होनेसे कुटुंबका भरण पोषण नहीं कर सकता, तब निर्धन होनेसे कृपण

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥ १० ॥
वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ॥ लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११ ॥
कुटुंबभरणाकल्पो मंदभाग्योवृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति मूढधीः ॥ १२ ॥
एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ॥ नाद्रियंते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्य-
जातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयं भृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवम-
त्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥

बनकर, शोच करता हुआ निसासा डालता है ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब वह अपना भरण पोषण करनेमें अशक्त हो जाता है, तब उसके स्त्री पुत्र-आदि जैसे कृपण किसानलोग बूढ़े बैलका आदर नहीं करते वैसे पहलेकी तरह आदर नहीं करते ॥ १३ ॥ जिनका पहले आपने भरण पोषण किया था वे लोग आपको पालते हैं, तथापि उसको वैराग्य नहीं आता. किंतु बुढ़ापेसे उसका रूप बिगड़ जाता है और वह मनुष्य मरणके अभिमुख होकर, घरमें पड़ा रहता है ॥ १४ ॥ वे लोग अवज्ञा करके जो कुछ देते हैं, कुत्तेकी तरह उस टुकड़ेको खाकर, घरमें बैठा रहता है और रोगग्रस्त व मंदाग्नि हो-

१ कवित्त-मुड़मुड़ाय रखाय जटा शिर खाख लगाय भये ब्रह्मचारी, ॥ बैठरहे पट दे मठभीतर साधके मौन लगायके तारी ॥ धर्म अधर्मके घूंट पिये ममता मद लोभ मया न बिसारी ॥ ऐसेभये तौ कहा तुलसी जो पै आसन मार के आश न मारी ॥ १ ॥

वास्ते दुःख उठाकर, जिस जिस वस्तुको संपादन करता है. उसी वस्तुको भगवान् काल नाश कर देता है, कि-जिसके वास्ते यह मनुष्य शोचमें पड़ जाता है ॥ २ ॥ शोचमें पड़नेका कारण यह है, कि-यह दुर्बुद्धि कुटुंबसहित नाशवान् शरीरके संबंधी घर, खेत और धनको अज्ञानसे स्थिर करके, मानता है ॥ ३ ॥ यह जीव इस संसारमें जिस २ योनिमें जाता है, उसीमें वह मग्न हो जाता है परंतु कभी विरक्त नहीं होता ॥ ४ ॥ नारकी जीवभी अपने देहको त्यागना नहीं चाहता; प्रत्युत भगवान्की मायासे मोहित होकर, उसी नारकी योनिमें आनंद मानकर, बैठता है ॥ ५ ॥ और देह, स्त्री, पुत्र, घर, पशु ( सवारी ), धन व बंधु-

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबंधस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जंतुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥ नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ निरूढमूलहृदय आत्मानं बहुमन्यते ॥ ६ ॥ संदह्यमानसर्वांग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥ आक्षिप्तात्मेंद्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहो रचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतंत्रेष्वतंद्रितः ॥ कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥

जनोंके बीच मनमें अनेक प्रकारके मंसूबे ठानकर, अपने आत्माको कृतार्थसा मानता है ॥ ६ ॥ तथा कुटुंबवालोंका पोषण करनेकी चिंतासे उसके सर्वअंग सदा जलते रहते हैं, तथापि वह मूर्ख बुरी वासनासे बँधकर, निरंतर दुराचरण करता रहता है ॥ ७ ॥ पुंश्चली स्त्रियोंकी मायासे एकांतमें कीहुई जो संभोग आदिकी चिंता उससे-तथा मधुरभाषी बच्चोंकी मधुर वाणीसे उसका मन व इंद्रियां सदा विक्षिप्तसी रहा करतीं है ॥ ८ ॥ यह गृहस्थी, वित्तशाठ्य-आदि अनेक जिनमें अधर्म हैं ऐसे, दुःख-

१ चिंता ज्वाल शरीर वन दावानल लगि जाय ॥ प्रकट धुआँ नहिं देखिये उरअन्तर धुँधुवाय ॥ उर अन्तर धुँधुवाय जरै ज्यों कांचकी भट्टी ॥ जरिगयो लोहू मास रही यक हाड़की टट्टी ॥ कहि गिरिधर कविराय सुनो हो मोरे मिंता ॥ वे नर कैसे जियत जिन्हैं तन व्यापत चिंता ॥

२ दोहा-अहि विष तौ काटे चढ़े, यह चितवत चढ़िजाय ॥ ज्ञान ध्यान अरु धर्मको जरामूलसों खाय ॥ १ ॥

देव ( इंद्र ) वर्षा करता है, तारामंडल चमकता रहता है ॥ ४० ॥ वृक्ष, लता और औषधियां ये सब जिसके भयसे अपने अपने समयमें फूल और फल प्रगट करते हैं ॥ ४१ ॥ नदियां डरती बहतीं हैं, समुद्र अपनी मर्यादको छोड़कर, आगे नहीं बढ़ता, अग्नि जलता है और पर्वतोंसहित पृथ्वी नहीं डूबती ॥ ४२ ॥ कालकी आज्ञासेही आकाश सर्व पदार्थोंको रहनेके वास्ते अवकाश देता है और महत्तत्त्व अपने देहको सात आवरणवाला लोकरूप बनाकर, विस्तारता है ॥ ४३ ॥ और इसी कालके भयसे गुणोंके अभिमानी देवता ब्रह्मा, विष्णु महेश कि-जिनकी सत्तामें सर्व स्थावर-जंगम रहे हैं, वे वारंवार जगत्की उत्पत्ति,

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णंति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४१ ॥ स्रवंति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिंधे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४२ ॥ नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥ ४३ ॥ गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्ततेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥ सोऽनंतोऽतकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनांऽतकम् ॥४५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥ ॥ कपिल उवाच ॥ तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥ काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥ यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ॥ तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ॥ २ ॥

स्थिति, संहार किया करते हैं ॥ ४४ ॥ यह काल पिता-आदि एक पदार्थसे पुत्र-आदि अन्य पदार्थको उत्पन्न करता हुआ स्वयं आदिरहित होनेपरभी जगत्का आदि बनाता है और मृत्युसे अंतककोभी मारताहुआ स्वयं अंतरहित होनेपरभी सबका अंत करता है अतएव यह सदा अखंडस्वरूप है ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ तीसवें अध्यायमें शरीर, स्त्री, आदिकी प्रीतिसे व्याकुल चित्तवाले कामी जनोंकी पापके कारण तामसी नारकी गतिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ कपिलदेवजीने कहा कि-काल सर्वको चलायमान करता है, तथापि बादल जैसे वायुके पराक्रमको नहीं जानते, वैसे कोईभी कालके प्रबल प्रतापको नहीं जानता ॥ १ ॥ आदमी सुखके

सिद्ध भयाहुआ योगी अपने देहकोभी नहीं देखता, तब सुख दुःखको तो कहांसे देखे ? मदिरा पीनेसे बेसुध भयेहुए मनुष्यको जैसे पहनेहुए वस्त्रका भान नहीं रहता वैसे योगीकोभी अपने देहका भान नहीं रहता. मदमत्त पुरुषका वस्त्र चाहे दैववशसे पड़ जाय या चाहे रह जाय परंतु उसे उसकी खबर नहीं रहती, वैसे योगीकोभी शरीर चाहे आसनपर बैठा रहे, चाहे वहांसे उठ जाय वा चाहे वहांसे चला जाय वा चाहे दैववशसे वहां आजाय, परंतु योगीको उसका भान नहीं रहता ॥ ३७ ॥ प्रारब्धके स्वाधीन भयाहुआ उसका शरीर जहांतक उसका उत्पादक प्रारब्ध होवे, वहांतक इंद्रियसहित जीता रहता है, परंतु समाधिपर्यंत योगको पहुंचाहुआ और आत्मस्वरूपको जाननेवाला वह योगी पीछा स्वप्न अवस्थाके समान उस प्रपंचसहित-

देहोपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिंगाद्धूमाद्वापि स्वसंभवात् ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेंद्रियांतःकरणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान्ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४१ ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२ ॥ स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥ योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥

देहको, मैं और मेरा करके नहीं मानता ॥ ३८ ॥ जैसे स्नेहके हेतु निजरूप मानेहुए पुत्रसे और धनसे पुरुष भिन्न है, वैसे निजरूप मानेहुए देहादिकसेभी पुरुष जुदा है ॥ ३९ ॥ जैसे अविवेकी लोक काठ, अग्निजनित धूम और जलतेहुए काठको अग्निरूप मानते हैं, परंतु वस्तुतः दाहक और प्रकाशक अग्नि उनसे जुदा है ॥ ४० ॥ वैसे भूत तथा इंद्रियसहित अंतःकरणसे, प्रधानसे और जीवसेभी भगवान् जुदे हैं. जिन्हें परब्रह्म कहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जैसे सर्व स्थावर जंगम पदार्थोंमें पंचमहाभूत हैं और पंचमहाभूतोंमें सर्वपदार्थ हैं वैसे सर्वपदार्थोंमें मैं हूं और मेरेमें सर्वपदार्थ हैं. ऐसे सर्वत्र अद्वैतभाव रखकर, देखना चाहिये ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि एक प्रकारका होनेपरभी काठकी लंबाई चौड़ाईके फरकसे भिन्न भिन्न प्रकारका प्रतीत होता है, वैसे आत्मा एक होनेपरभी प्रत्येक

अन्य किसी पदार्थको देखनेकी इच्छा न करनी, यानी चित्तको उससे डिगाना न चाहिये ॥ ३३ ॥ ऐसे सबीज यानी भगवान्‌के स्वरुपका आलंबन सहित योग साधते साधते भगवान्‌में प्रेम प्राप्त होनेपर भक्तिके कारण हृदय पिघल जाय, आनंदसे रोम खड़े हो जांय और उत्कंठासे आतेहुए अश्रु बिंदुओंसे वह बारंबार पीड़ित हो जाय, यानी आनंदके पूरमें मग्न हो जाय, तब चित्त कि-जो भगवान्‌को पकड़नेके निमित्त बड़िश यानी मछली बेधनेके कांटेके समान है, उसे धीरे धीरे पीछा भगवान्‌के अंगसे वियुक्त कर देना चाहिये अर्थात् उसका ध्यान करनेमें प्रयत्न कम कर देना चाहिये, ॥ ३४ ॥ इस तरह जब चित्तमेंसे ध्यान

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्याऽऽद्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कंठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुंक्ते ॥ ३४ ॥ मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥ ॥ ३५ ॥ सोप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्त्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥ ३७ ॥

करनेका भगवत्स्वरूप जाता रहता है और वैराग्यके कारण दूसरे शब्द-स्पर्शादिक विषयभी उसमें नहीं आते. तब ध्यान धरनेवाले योगीका वह चित्त, जैसे दीपक शांत होकर, तेजरूप हो जाता है; वैसे लय पाकर, ब्रह्माकार हो जाता है. अतएव उस समय देहादि उपाधिरहित वह योगी अपने स्वरूपको ध्यातृ ध्येय विभागशून्य, अखंड और अनुगत देखता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार चरम यानी अखीरी मनकी निवृत्तिसे सुख दुःखरहित ब्रह्म स्वरूपमें निष्ठा पायाहुआ योगी सुखदुःखका भोक्तापन जो प्रथम अपने स्वरूपमें प्रतीत होता था, उसे अविद्याजनित अहंकारमें रख देता है, अर्थात् सुख दुःखका भोक्तापन केवल असत् अहंकारमेंही है, मेरेमें नहीं है, ऐसे देखता है; क्योंकि उसको आत्मतत्त्व अपरोक्ष हो चुका है ॥ ३६ ॥ ऊपर कहेहुए लक्षणवाला

मेरे अर्पण कर दिया होवे, वह श्रेष्ठ है. अतएव उसमें और मुझमें कुछभी फर्क नहीं है; किंतु वह मद्रूपही है. जिसने अपना देह मेरे अर्पण कर दिया है और सर्व कर्म मेरे अर्पण कर दिये हैं, ऐसे कर्तृत्वाभिमानरहित समदृष्टि पुरुषसे बढ़कर, मैं किसीको अधिक नहीं देखता ॥ ३३ ॥ परमेश्वर भगवान् जीवरूपसे सबके भीतर विराजते हैं, इसलिये इन सब प्राणीमात्रको बड़े आदरके साथ अपने मनही मनमें नमस्कार करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मनुकी पुत्री ! मैंने भक्तियोग और योग दोनों कह दिये हैं जिनमेंसे एकका साधन करनेसेभी यह पुरुष भगवत्-पदको प्राप्त हो सकता है ॥ ३५ ॥ सर्वकार्यनियंता, प्रकृतिपुरुषरूप और उनसे भिन्नभी जो

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहुमानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥ ३४ ॥ भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३७ ॥ योंऽतःप्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः ॥ स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३८ ॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न च द्वेष्यो न बांधवः ॥ आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमंतकृत् ॥ ३९ ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥ ४० ॥

भगवान्‌का स्वरूप है, वही दैव कहलाता है, कि-जिससे ये प्राणी विचित्रप्रकारकी अनेक योनियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ यही भगवान्‌का दिव्यरूप कि-जिससे पदार्थोंके स्वरूपमें हेरफेर होती है वह काल कहाता है, कि-जिससे महत्तत्त्व-आदि पदार्थोंके और देहाभिमानी जीवोंके भेदभावके कारण भय हुआ करता है ॥ ३७ ॥ सबके आश्रयरूप और यज्ञोंके फलके देनेवाले जो भगवान् प्राणियोंके भीतर पैठ करके, प्राणियोंहीसे प्राणियोंका संहार करते हैं, वे वश करनेवालोंमें अग्रणी विष्णु भगवान् काल कहलाते हैं ॥ ३८ ॥ इस कालके न तो कोई प्रिय है, न द्वेष करने योग्य है, न कोई बंधु है, सबका संहार करनेवाला यह काल सावधान होकर, असावधान लोकोंके अंदर प्रवेश करता है ॥ ३९ ॥ इस कालके भयसे वायु चला करती है, सूर्य तपा करता है,

अपने और परायेके बीचमें जो किंचित्‌मात्रभी भेदभाव करता है, उस भेददर्शी पुरुषको मृत्युरूप मैं महाघोर भय करता हूं ॥ २६ ॥ इसलिये सर्वप्राणीमात्रमें विराजनेवाले सब जीवोंके अंतर्यामी परमेश्वरकी दान व मानसे मित्रभाव रखकर, अभेददृष्टिसे पूजन करना चाहिये ॥ २७ ॥ हे माता ! अचेतनकी अपेक्षा सचेतन श्रेष्ठ हैं, सचेतनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे इंद्रियोंकी वृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ उनमेंभी स्पर्श जाननेवाले श्रेष्ठ हैं, स्पर्श जाननेवालोंसे रस जा-

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यंतरोदरम् ॥ तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥ २६ ॥ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ॥ अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥ २७ ॥ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेंद्रियवृत्तयः ॥ २८ ॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ॥ तेभ्यो गंधविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतो दतः ॥ तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥ ३० ॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥ ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसंगस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरंतरः ॥ मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ ३३ ॥

ननेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे गंध जाननेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे शब्द जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ उनसे रूप जाननेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे दोनों तर्फ दांतोंवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे जियादा पैरोंवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये और चौपायोंसे दो पांववाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ उनमें चारवर्ण और चारोंवर्णोंमें ब्राह्मणवर्ण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंमेंभी वेद जाननेवाला उत्तम है और उससे अर्थ जाननेवाला अधिक है ॥ ३१ ॥ अर्थ जाननेवालेसे संदेह काटनेवाला ( मीमांसक ) श्रेष्ठ है, उससे अपना कर्म करनेवाला श्रेष्ठ है, उससे मुक्तसंग पुरुष अधिक है उससे निष्काम धर्म करनेवाला श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ और उससेभी जिसने सर्वकर्म व उनके फल और अपना देह

१ महाभारतमें मोक्षधर्ममें लिखा है कि-वृक्ष इंद्रियवृत्तिवाले हैं, क्योंकि- ये देखना आदि सब व्यापार करते हैं, सुगंधिसे वृक्ष बढ़ता है और दुर्गंधसे जल जाता है इससे प्रतीत होता है कि-वृक्षके घ्राण इंद्रिय है, वैसे मीठे जलसे हरा बना रहता है और खारेसे सूख जाता है इससे रसन इंद्रिय प्रतीत होती है ऐसे औरभी जानलेना

श्रवण करना, मेरे नामका कीर्तन करना, सरलता रखना, आर्य यानी उत्तम पुरुषोंसे संगति करना, वैसे अहंकार न करना ॥ १८ ॥ जो मनुष्य इन साधनोंसे भगवद्धर्मका अनुष्ठान करता है, उसका अंतःकरण तुर्त निर्मल हो जाता है और उसीसे मेरे गुणोंका श्रवण करतेही उस भक्तके चित्तमें मेरा स्वरूप विना श्रम प्राप्त हो जाता है ॥ १९ ॥ जैसे वायुके साथ जानेवाला गंध दूसरे स्थानसे स्वयं घ्राण इंद्रियके पास आ पहुंचता है, वैसे भक्तियोगमें लगा हुआ अविकारवाला चित्त आत्माको स्वयं आ प्राप्त होता है ॥ २० ॥ सर्वका अंतर्यामी मैं सर्वप्राणियोंमें सदा रहा करता हूं, उसकी अवज्ञा करके जो मनुष्य केवल मूर्तिकी पूजा

मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ॥ पुरुषस्यांजसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥ १९ ॥ यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गंध आशयात् ॥ एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥ २० ॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबयन् ॥ २१ ॥ यो मां सर्वेषु भूतेषु संतमात्मानमीश्वरम् ॥ हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥ २२ ॥ द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शांतिमृच्छति ॥ २३ ॥ अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥ नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥ अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥

करता है, वह तो केवल विटंबना मात्र है ॥ २१ ॥ सर्वप्राणीमात्रमें विद्यमान सबका आत्मा ईश्वर जो मैं हूं उसे छोड़कर, जो मनुष्य केवल मूर्तिपूजन करता है, वह अपनी मूर्खतासे केवल भस्ममें होम करता है ॥ २२ ॥ जो परपुरुषोंके शरीरमें विराजमान मैं हूं उससे द्वेष करे, अभिमान करे, भेदभाव राखे, सब प्राणीमात्रसे वैरभाव राखे, उस पुरुषका मन कभी शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ २३ ॥ हे माता! जो सर्वप्राणीमात्रका अपमान करता है, वह चाहे, छोटे मोटे अनेक पदार्थोंसे, चाहे तंत्रकी रीतिसे पूजा करे, परंतु मैं उसपर प्रसन्न नहीं होता ॥ २४ ॥ सर्वप्राणीमात्रमें विराजमान जो ईश्वर मैं हूं, उसका जबतक अपने मनमें अनुभव न हो जावे, तबतक अपने स्वधर्मका आचरण करके ईश्वर जो मैं हूं उसका मूर्तिआदिमें पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥

और उसके रहनेमें किसी प्रकारके फलकी इच्छा न रहे और भेददृष्टि न होवे, यह निर्गुण भक्तियोगका लक्षण कहलाता है. जो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमकी भक्ति करते हैं, उनको मैं यदपि सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व देता हूं, परंतु वे मेरे भक्तजन मेरी सेवाके सिवाय और कुछ नहीं चाहते ॥ १२ ॥ १३ ॥ यही आत्यंतिक या निर्गुण भक्तियोग कहलाता है, कि-जिससे तीनों गुणोंको उल्लंघकर, मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जावे ॥ १४ ॥ ( इस प्रकार भक्तिके लक्षण कहकर,

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णंति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १३ ॥ स एव भक्तियोगाख्य आत्यंतिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ॥ क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥ १५ ॥ मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवंदनैः ॥ भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासंगमेन च ॥ १६ ॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकंपया ॥ मैत्र्या नैवाऽऽत्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेनार्यसंगेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥

अब उसके साधन कहते हैं. ) निष्काम नित्य नैमित्तिक स्वधर्मका आचरण करना, श्रद्धादियुक्त होकर, पंचरात्रादिमें कहीहुई निष्काम और हिंसारहित पूजाकी रीतिसे नित्य पूजा करना ॥ १५ ॥ मेरी मूर्ति-आदिका दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति और वंदन करना, सर्वप्राणीमात्रमें मेरी भावना करना, धीरज रखना, वैराग्य रखना ॥ १६ ॥ महत्पुरुषोंका बहुत आदर करना, दीन जनोंपर दया रखना, अपने समान कक्षावालोंसे मित्रता रखना, यम व नियम धारण करना ॥ १७ ॥ ईश्वरसंबधी ज्ञानशास्त्रोंका

---

१ भगवान्के साथ एकलोकमें रहना. २ भगवान्के तुल्य विभव पाना. ३ भगवान्के पास रहना. ४ भगवान्के माफक चतुर्भुज रूप पाना. ५ समुद्रमें गंगाजलके समान भगवान्के साथ एकताका होना.

नेको साक्षात् सूर्यरूप आप यहां प्रगट हुए हो ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– हे कौरवोंमें श्रेष्ठ ! विदुरजी ! माताके इसप्रकार मधुर वचन सुन, उनकी पीछी प्रशंसा करके, महामुनि कपिलदेवजीने प्रेमके साथ करुणासे पीड़ित होकर, यह वचन कहा ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् कपिलदेवजी बोले कि–हे माता ! अनेक मार्ग होनेसे भक्तियोगभी कई प्रकारका है; क्योंकि– मनुष्योंकी प्रकृति सत्त्व, रज व तमोगुणवाली होनेसे उनके फलसंबंधी संकल्पमें फर्क रहता है और उसीसे भक्तिमें भेद हो जाता है ॥ ७ ॥ जो हिंसा, दंभ और मत्सरताका अनुसंधान करके क्रोध व भेददृष्टि रखकर, मेरी भक्ति करे, उसे तामसभक्त समझना चाहिये ॥ ८ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनंद्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥ अभिसंधाय यो हिंसां दंभं मात्सर्यमेव वा ॥ संरंभी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥ विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ ९ ॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ १० ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगांऽभसोंऽबुधौ ॥ ११ ॥

विषयभोग, यश व ऐश्वर्यका अनुसंधान करके भेददृष्टि रखकर, जो मूर्ति– आदिमें मेरी पूजा करे, उसे रजोगुणी भक्त समझना चाहिये ॥ ९ ॥ पापक्षयके उद्देशसे, अथवा ईश्वरार्पण करनेके उद्देशसे, या विधिसिद्धिके उद्देशसे भेदभाव रखकर, जो मूर्ति– आदिमें पूजा करे वह सात्विकभक्त कहलाता है; अभिप्राय यह है कि– श्रवण कीर्तनादि जो नवधा भक्ति है, वही फलाभिसंधानके कारण तीन प्रकारकी तामस, तीन प्रकारकी राजस और तीन प्रकारकी सात्विक भक्ति होनेसे इक्यासी प्रकारकी हो जाती है ॥ १० ॥ मेरे गुणोंका श्रवण करतेही मैं कि–जो सबका अंतर्यामी हूं, उसमें समुद्रमें गंगाजलके समान अविच्छिन्न मनकी गति रहा करे ॥ ११ ॥

१ चौ० ॥ प्रथमभक्ति संतनकर संगा ॥ दूसरि रति ममकथाप्रसंगा ॥ दोहा ॥ गुरुपदपंकज सेवनो, तीसरि भक्ति प्रमान ॥ चौथि भक्ति ममगुणकथन, करै कपट तजि गान ॥ चौ० ॥ मंत्रजाप प्रभुदृढविश्वासा ॥ पंचम भक्ति सो वेद प्रकासा ॥ षट दम शील विरत बहुकर्मा ॥ निरत निरंतर सज्जनधर्मा ॥ सतईं सब मममय जग देखै ॥ मोते सन्त अधिक करि लेखै ॥ अठईं यथालाभसन्तोषा ॥ सपनेहुँ नहिं देखै परदोषा ॥ नवम सरल सबसों छलहीना ॥ ममभरोस हिय हर्ष न दीना ॥ १ ॥

देहके गुणोंकी विषमता यानी दीर्घ न्हस्वादि भेदके कारण नाना प्रकारका प्रतीत होता है ॥ ४३ ॥ इसी लिये कार्य कारण रूप अथवा सत्‌असत्‌रूप इस भगवत्‌की निज शक्तिरूप मायाको भगवत्कृपाहीसे जीतकर, अपने निजरूपसे रहता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ उनतीसवें अध्यायमें अनेक प्रकारका भक्तियोग कालका बल और वैराग्यके वास्ते घोर दुखदायी जन्ममरणरूप संसारका वर्णन होगा ॥ १ ॥ देवहूतीने कहा कि-हे प्रभु ! प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्व-आदिका पारमार्थिक स्वरूप जिसतरह जाना जाता है, ऐसे

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेये साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ ॥ २८ ॥ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥ भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवान्सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतीः ॥ ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वंति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥ लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरंप्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रांतस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥

उनके लक्षण आपने जैसे सांख्यशास्त्रमें लिखे हैं वैसे कहे परंतु उसके कहनेका भक्तियोग प्रयोजन है इसलिये भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक वर्णन करके सुनाओ ॥ १ ॥ २ ॥ और हे भगवन् ! जिससे इस संसारी पुरुषको सर्व पदार्थोंकी ओरसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय, ऐसी जीवलोकसंबंधी अनेक प्रकारकी आवागवनकी कथा कहो ॥ ३ ॥ और परसेभी पर ईश्वररूप जो काल है उसका स्वरूप कहो. जिसके भयसे ये लोग पुण्यका आचरण करते हैं ॥ ४ ॥ मिथ्याभूत देहादि पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले और कर्मासक्त बुद्धिके कारण थकेहुए व अपार संसारमें बहुत कालसे सोतेहुए अज्ञ लोगोंको जगानेके वास्ते योगशास्त्रका प्रकाश कर-

किया है ऐसे भगवान्का मुखारविंद कि-जिसमें चमकतेहुए चपल मकराकृत कुंडलोंसे निर्मल कपोलोंकी छबि छा रही है और उन्नत जिसमें नासिका है, ॥ २९ ॥ वह कुटिल केशपाशसे सुसेवित, कमलसे नेत्रवाला, सुंदर भौंहवाला मुखारविंद अपनी शोभासे भौंरोंका झुंड जिसका सेवन कर रहा है तथा मछलीका युगल जिसके निकट है ऐसे लक्ष्मीके निवासस्थान कमलकाभी सदा तिरस्कार करता है, उसका मनमें आविर्भाव कर, आलस छोड़ कर ध्यान करना ॥ ३० ॥ तदनंतर कृपासे अधिक और भयंकर तीनों तापोंको शांत करनेके वास्ते दृष्टिकेद्वारा प्रेरित, कटाक्ष कि-जो स्निग्ध मंदहास्ययुक्त और बहुत प्रसादसे भराहुआ है, उसका हृदयके

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुंतलवृंदजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतंद्रित उल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्यावलोकमधिकं कृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥ ३१ ॥ हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमाययाऽस्य भ्रूमंडलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुंदपंक्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याऽऽर्द्रयाऽर्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥ ३३ ॥

अंदर बड़ी भावनाके साथ बहुत देरतक ध्यान करना ॥ ३१ ॥ फिर भगवान्का अतिसुंदर मंदहास, कि- जिससे प्रणाम करनेवाले लोकोंके अत्यंत शोकसे प्रगट भयेहुए आंसुओंका समुद्रभी सूख जाता है, उसका ध्यान करना. फिर भगवान्की भ्रुकुटीमंडल कि-जो मुनिलोगोंको मोहित करनेवाले कामदेवकोभी अपनी मायासे मोहित करनेके वास्ते रचा गया है, उसका ध्यान करना ॥ ३२ ॥ फिर अपने हृदयाकाशमें ज्ञात भयेहुए भगवान्का स्फुट हास कि- जो अतिसुंदर होनेके कारण विनाही प्रयत्न ध्यानका विषयभूत है तथा जिसके होनेसे अधर ओष्ठकी जियादा झांई पड़नेसे झीने और मोगरेकी कलीसे दांतोंकी पंक्तिभी अरुणसी प्रतीत होती है उसका ध्यान करना. इसका ध्यान करते समय प्रेमरसवाली भक्तिसे उसीमें चित्त रख कर, उससे भिन्न

१ विकसहिं नैन कपोल कछु, दसन दसनके वास ॥ मंदहास तासों कहैं कोविद केशवदास ॥

फिर सर्वभुवनमंडलके आश्रयरूप उदरमें रहे हुए भगवान्‌का नाभिरूप ह्रद कि-जिसमें ब्रह्माजीका स्थानरूप सर्व लोकात्मक कमल उत्पन्न हुआ था, उसका ध्यान करना फिर उत्तम नील मणिके समान भगवान्‌का स्तनयुगल, कि- जो स्वच्छ हारकी किरणोंसे गौर वर्ण प्रतीत होता है उसका ध्यान करना ॥ २५ ॥ फिर भगवान्‌का वक्षःस्थल कि-जो महालक्ष्मीका अधिष्ठान है और भक्तजनोंके मन व नेत्रोंको सदा आनंदित किया करता है, उसका ध्यान करना. सबलोक जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे प्रभुका कंठ कि-जो कौस्तुभमणिका आभूषणरूप है उसका मनमें ध्यान करना ॥ २६ ॥ फिर भगवान्‌की भुजा कि-जिनके कंकण समुद्रम-

नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्राऽऽत्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूहं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षो ऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कंठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥ बाहूंश्च मंदरगिरेः परिवर्त्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ॥ संचिंतयेद्दशशतारमसह्यतेजः शंखं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७ ॥ कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलंमणिमस्य कंठे ॥ २८ ॥ भृत्यानुकंपितधियेह गृहीतमूर्त्तेः संचिंतयेद्भगवतो वदनारविंदम् ॥ यद्विस्फुरन्मकरकुंडलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥

थन करते समय मंदराचल फेरनेके कारण घिसनेसे उज्वल हुए हैं तथा जिनमें लोकपाल देवता रहे हैं, उनका ध्यान करना. तदनंतर एक सहस्र जिसके आरा हैं ऐसे असहतेजवाले चक्रका ध्यान करना. फिर भगवान्‌के हस्तकमलमें राजहंसके समान शोभायमान शंखका स्मरण करना ॥ २७ ॥ फिर भगवान्‌की प्यारी कौमोदकी नाम गदा कि-जो शत्रुभटोंके रुधिररूप कीचड़से लिपी हुई है उसका ध्यान करना. फिर भगवान्‌की माला कि-जिसपर भ्रमरसमूह गुंज रहा है उसका स्मरण करना. फिर भगवान्‌के कंठमें विराजमान कौस्तुभमणि कि-जो जीवात्माका परमंतत्वरूप है उसका स्मरण करना ॥ २८ ॥ फिर भक्तोंपर दयाबुद्धि करके जिन्होंने अवतार धारण

१ तदुक्तं वैष्णवे । आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् ॥ बिभर्ति कौस्तुभमणिं स्वरूपं भगवान् हरिः ॥ अर्थ-इस जगत्‌की आत्मा, निर्लेप, निर्गुण, निर्मल और अपना रूप ऐसी कौस्तुभ मणिका हरि भगवान् धारण करते हैं ॥ १ ॥

प्रभुकी चाहे विराजमान मूर्तिका, चाहे चलते हुए स्वरूपका, चाहे खड़े स्वरूपका, चाहे पौढ़ी हुई प्रतिमाका, शुद्ध भाववाले मनसे ध्यान करना चाहिये. जब भगवान्के सर्वअंगोंमें चित्त अच्छीतरह स्थिर हो जावे, तब सब अवयवोंमें थिर भयेहुए चित्तको उस स्वरुपसे विलग करके मुनिको चाहिये कि–भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगावे ॥ १९ ॥ २० ॥ तहां प्रथम वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमलके लांछनवाले भगवान्के चरणारविंदका ध्यान करना चाहिये. कैसा है वह चरण? कि– जिसने ऊंचे और अरुण देदीप्यमान नखमंडलकी कांतिसे महत्पुरुषोंके हृदयगत अंधकारको नाश कर दिया है ॥ २१ ॥ और जिसके धोनेके जलसे प्रगट भयीहुई गंगाके पवित्र जलको शिरपर धरकर, साक्षात् शिवजी शिवरूप हुए हैं. और जिसके चरणचिन्ह-

तस्मिन्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥ विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादंगे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥ संचिंतयेद्भगवतश्चरणारविंदं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम् ॥ उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयांधकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविंदम् ॥ २२ ॥ जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवंदितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥ ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ॥ व्यालंबिपीतवरवाससि वर्तमानकांचीकलापपरिरंभि नितंबबिंबम् ॥ २४ ॥

रूप वज्रसे ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वत विदीर्ण हो जाते हैं, उन भगवान्के चरणारविंदका बहुत देरतक ध्यान करना चाहिये ॥ २२ ॥ सर्वदेवता जिसे वंदन करते हैं और कमलसे जिसके नेत्र हैं ऐसी और सर्व जगत्के विधाता ब्रह्माजीकी जननी, साक्षात् लक्ष्मी अपनी साथलोंपर रखकर करपल्लवकी कांतिसे बड़ी चतुराईके साथ जिसकी सेवा करती है, उस भवभंजन भगवान्के दोनों घुटनोंपर्यंत जंघा युगलका हृदयमें ध्यान करना ॥ २३ ॥ फिर अलसीके पुष्पके समान कांति करके देदीप्यमान और ओज ( पराक्रम ) की, पुंज, ऐसी गरुड़के कंधेपर धरीहुई, अतिशोभायमान भगवान्की साथलोंका ध्यान करना. तदनंतर गुल्फपर्यंत लंबायमान पीतांबरपर विराजमान कटिमेखलाके घेरसे शोभायमान ऐसे भगवान्के नितंबका ध्यान करना ॥ २४ ॥

आसक्ति मिटाना. स्थिर कियेहुए मनकी एक प्रकारकी वृत्ति रखकर, रागद्वेषादि दोषोंको दूर करना ॥ ११ ॥ जब योगके प्रभावसे अपना मन भलीभांति एकाग्र और निर्मल हो जाय, तब अपनी नाककी अनीके सामने दृष्टि देखर, भगवान्‌की मूर्तिका ध्यान करना ॥ १२ ॥ प्रसन्न जिनका मुखारविंद है, कमलके गर्भसे अरुण जिनके नेत्र हैं, नील कमलके दलसा श्याम जिनका वर्ण है, शंख, चक्र और गदा जो धारण कर रहे हैं ॥ १३ ॥ देदीप्यमान कमलके केसरसे पीले पीतांबर जो पहिने हैं, श्रीवत्सका चिन्ह जिनके वक्षःस्थलमें विराजमान है कौस्तुभ रत्न जिनके गलेके बीच देदीप्यमान है ॥ १४ ॥ मदमत्त भौंरे जि-

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम्॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवदनांभोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकंधरम् ॥ १४ ॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्ध्यहारवलयकिरीटांगदनूपुरम् ॥ १५ ॥ कांचीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयांभोजविष्टरम् ॥ दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ संतं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥ १७ ॥ कीर्त्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्रांगं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजंतमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥

सपर गुंज रहे ऐसी सुंदर वनमाला जो धारण कर रहे हैं और अमूल्य हार, वलय ( कंकण ) किरीट, भुजबंध और नूपुर जिनके शोभायमान हैं ॥ १५ ॥ कटिमेखलाकी डोरी कमरमें जिनके प्रकाशमान है हृदय कमलमें जिनका आसन है, देखनेलायक अतिसुंदर, शांत और मन व नेत्रोंके आनंद देनेवाला जिनका स्वरूप है ॥ १६ ॥ अतिरमणीय जिनका दर्शन है, सदा सब लोग जिनको नमस्कार करते हैं, किशोर जिनकी अवस्था है भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेमें जो सदा तत्पर हैं ॥ १७ ॥ कीर्तन करने योग्य पवित्र जिनका यश है, पवित्र कीर्तिवाले जो बलि आदि उनके जो यशकारी हैं, उन प्रभुका सर्वअंगसहित तबलों ध्यान करना चाहिये, कि-जबलों मन उस स्वरूपसे च्युत न होवे ॥ १८ ॥ दर्शनीय जिनकी लीला है ऐसे अंतर्यामी

१ इधर उधर दृष्टिकें जानेमें विक्षेप होता है और दृष्टिके मूंदनेमें लय होता है. इससे नाककी अनी देखनी कही है.

प्रभुकी सेवा करनी ॥ ४ ॥ मौन रखना, सदा आसनको जीतनेका अभ्यास करना, स्थिरता रखनी, धीरे २ प्राणोंको जीतना, मनद्वारा इंद्रियोंको विषयोंसे पीछा खैंचकर, हृदयमें रखना ॥ ५ ॥ मूलाधार आदि प्राणके स्थानोंमेंसे एक स्थानमें मनसहित प्राणका धारण करना, वैकुंठ भगवान्‌की लीलाका चिंतवन करना, मनको ब्रह्माकार रखना ॥ ६ ॥ ये और इनके सिवाय दूसरेभी जो योगके साधन हैं, उनसे खोटे रास्ते जाते हुए दुष्ट मनको सावधान हो, प्राणोंको जीत कर, शनैः २ बुद्धिद्वारा वश करना चाहिये ॥ ७ ॥ आसन जीतनेमें आजाय, तब पवित्र देशमें कुश, मृगचर्म और चैल ( वस्त्र ) उत्तरोत्तर ऊपर बिछाय, उसपर स्वस्तिक

मौनं सदासनजयस्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥ प्रत्याहारश्चेंद्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥ ५ ॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥ वैकुंठलीलाभिध्यानं समाधानं तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥ एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्ध्या युंजीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतंद्रितः ॥ ७ ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन्स्वस्तिसमासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥ ८ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचंचलम् ॥ ९ ॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥ १० ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥

यानी पालगती मार, शरीरको सीधा रखकर, प्राणको वश करनेका अभ्यास करे ॥ ८ ॥ पूरक ( बाहिरके पवनको भीतर भरना ) कुंभक ( वायुको भीतर रोंक रखना ) और रेचक ( पीछा बाहिर निकालना ) या रेचक, कुंभक और पूरकसे प्राणके मार्गको शुद्ध करना, जिस तरहसे यह मन स्थिर होनेपर पीछा चंचल न हो जावे ॥ ९ ॥ जैसे वायु और अग्निसे तपाने पर सुवर्ण मलको त्याग कर, कंचन होजाता है, वैसे श्वासके जीतनेसे योगीका मन तुर्त रजोगुणरहित यानी निर्मल हो जाता है ॥ १० ॥ प्राणायामोंसे वात, पित्त आदि दोषोंको शांत करना. धारणाओंसे पापोंको दूर करना इंद्रियोंको विषयोंसे पीछी हटाकर विषयोंकी

१ प्राणायामसे प्राणवायुको वश करना. २ ऊरु जंघांतराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे ॥ योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः ॥ १ ॥ ३ वायुके साथ मनको स्थिर करना वह धारणा.

हे माता? यद्यपि उस समयमें अणिमा आदि सिद्धियां कि–जो योगसे बढ़ती हैं. और योगविना जिनका दूसरा कुछभी कारण नहीं है, वे उसके विघ्न करनेको आती हैं. तथापि जो इस भक्तका चित्त उनमें आसक्त न होवे, तो उसे मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होती है. जिस प्राप्तिके अनंतर मृत्युका कुछभी वश नहीं चलता ॥ ३० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ अठ्ठाईसवें अध्यायमें ध्यानसे शोभायमान अष्टांग योगसे सर्व उपाधिरहित स्वरूपज्ञानका वर्णन होगा ॥ १ ॥ कपिलदेवजीने कहा कि– हे राजपुत्रि! अब सबीज यानी आलंबनसहित योगका ल-

यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽब ॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यंतिकी यत्र न मृत्युहासः ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ ॥ २७ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥ दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ॥ मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥

क्षण कहूंगा, कि–जिस प्रकारसे मन प्रसन्न होकर उत्तम मार्गमें चलता है ॥ १ ॥ तहां यम और नियम कहते हैं. अपनी शक्तिके अनुसार स्वधर्मका आचरण करनां, जो दैव इच्छासे मिले उसमें संतोष रखना, आत्मज्ञानी लोगोंके चरणोंकी सेवा करना ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ व कामसंबंधी धर्मसे निवृत्त रहना. तथा मोक्षधर्ममें प्रीति रखना, परिमित और पवित्र भोजन करना, निरंतर एकांत और जहां किसी प्रकारकी तकलीफ न होवे ऐसे स्थानमें रहना ॥३॥ हिंसा न करनी, सत्यबोलना, चोरी न करनी, जितने पदार्थकी आवश्यकता हो उतने पदार्थसे अधिक संग्रह न करना, ब्रह्मचर्य पालना, तप करना, शौच रखना, पाठ करनेका नियम रखना

---

१श्रवणकीर्तनादिकोंमें. २ द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत् ॥ मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १ ॥ अर्थ–पेटके दो भाग अन्नते भरना और एक भाग जलसे बाकी एक भाग रहा वह पवन आने जानेके वास्ते खाली रखना चाहिये ॥ १ ॥ यह स्मृतिमें लिखा है. ३ यथार्थभाषण. ४ वेदपाठादि.

मेरी तीव्र भक्ति, स्वरूपका यथार्थ ज्ञान, दृढ़वैराग्य, तपसहित योग और अयंत दृढ़ चित्तकी एकाग्रता ॥ २१ ॥ २२ ॥ इन साधनोंसे रातदिन पराभव पातीहुई पुरुषकी प्रकृति नित्य जलतीहुई अग्निकी अरणिके समान धीरे धीरे अदृश्य हो जाती है ॥ २३ ॥ भोग भोगकर, फिर निरंतर दोषदृष्टि करके जिसका त्याग कर दिया है ऐसी यह प्रकृति, स्वतंत्र और अपने स्वरूपानंदमग्न ऐसे पुरुषका कुछभी अशुभ नहीं कर सक्ती ॥ २४ ॥ जैसे विना जागेहुए मनुष्यके लिये स्वप्न अनेक अनर्थका मूल होता है परंतु वही स्वप्न जागेहुए मनुष्यके लिये संस्कार रहनेसे उसकी स्फूर्ति रहनेपरभी कुछभी अनर्थकारी नहीं हो सक्ता, वैसे तत्त्वके



ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगापरित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥ नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥ २४॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ २५ ॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युंजतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥ यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥ २८ ॥ प्राप्नोतीहांजसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः ॥ यद्गत्वा न निवर्त्तेत योगी लिंगाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥

जाननेवाले और मेरे विषे मन लगानेवाले आत्माराम पुरुषको प्रकृति कथमपि ( कोई तरहभी ) मोहित नहीं कर सक्ती ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार बहुत समयसे और अनेक जन्मोंसे ज्ञानके साधनोंकी ओर लगाहुआ और ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वपदार्थोंसे विरक्त मेरा धीर भक्त मुनि, मेरी अतुल कृपासे जब यथार्थरीतिसे मेरे स्वरूपको जान जाता है, तब आत्मज्ञानसे सब संशयोंको काटकर, लिंगशरीरसे मुक्त हो जाता है. और उसीसे देहादिकसे भिन्न और मेरे स्वरूपमें रहेहुए मोक्ष नाम परमानंदको जीते जी सहजमें प्राप्त हो जाता है, कि-जिस आनंदको प्राप्त होकर, योगी फिर इस संसारके भ्रमजालमें नहीं आता ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

रण पंचमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप तथा मन और बुद्धि वगैरः जब अज्ञानमें लीन हो जाते हैं; तब जो स्वरूप निद्रारहित, अहंकाररहित और सर्व पदार्थोंका अधिष्ठान तथा प्रकाशक है, उसको ऊपर कहेहुये विचारसे यह मनुष्य यथार्थ रीतिसे प्राप्त हो सकता है. सुषुप्तिमेंभी साक्षी आत्मा निद्रारहित होकर, रहता है और सुषुप्तिके सुख तथा अज्ञानको जानता है, तथापि अहंकारका लय होनेके कारण, जैसे किसी मनुष्यका धन जाता रहे, तब वह जैसे आतुर होकर, नष्टसा हो जाता है वैसे, यह आत्मा उस समयमें मानों आत्मा बिलकुल हैही ऐसे प्रतीत होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवहूतिने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! हे प्रभु ! प्रकृति और पुरुष ये दोनों परस्पर एक दूसरेके आश्रित हैं तथा नित्य हैं; इसलिये इनका बिलग होना संभव नहीं अत-

मन्यमानस्तदाऽऽत्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥ १५ ॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुंचति कर्हिचित् ॥ अन्योऽन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गंधस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबंधोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥ क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥ २१ ॥

एव प्रकृतिपुरुषका स्वरूप भिन्न जाननेपरभी प्रकृति कदापि ( कभीभी ) पुरुषको नहीं छोड़ेगी ॥ १७ ॥ जैसे गंध और पृथ्वीका तथा जल और रसका बिलग होना असंभव है, वैसे प्रकृति और पुरुषका बिलग होना अशक्य है ॥ १८ ॥ तासों प्रकृतिके गुण देहादिक कि–जिनके वास्ते पुरुषके अकर्ता होनेपरभी कर्मबंधन हुआ है, उन गुणोंके विद्यमान रहनेपर यह पुरुष उनसे बिलकुल निर्लेप कैसे हो सकता है ? ॥ १९ ॥ किसीसमय तत्त्वविचार करनेसे यह संसाररूप महाभय निवृत्त होजानेके समान प्रतीत होवे तथापि प्रकृति कि–जो उसका कारण है, उसके निवृत्त न होनेसे पीछा देखनेमें आये विना नहीं रह सक्ता ॥ २० ॥ यह माताका प्रश्न सुनकर, कपिलदेवजीने कहा कि–निष्काम धर्म, निर्मल अंतःकरण, चिरकालपर्यंत शास्त्रश्रवण करनेसे दृढ़ भयीहुई

एकांतमें रहे, शांतवृत्ति होकर, सबसे मित्रता रक्खे, सबपर दयाभाव रक्खे, मनको वश रक्खे ॥ ८ ॥ कुटुंबसहित इस शरीरमे झूंठा आग्रह न करे, प्रकृतिपुरुषका तत्त्व यानी यथार्थस्वरूप जिससे ज्ञात होता है उस ज्ञानका विचार करता रहे ॥ ९ ॥ क्यों-कि, जब प्रकृति पुरुषके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब जाग्रत आदि बुद्धिकी तीनों अवस्थानका अभिमान तथा द्वैत-पदार्थका दर्शन दूर हो जाता है और उसीसे जैसे चक्षुके सूर्यसे आकाशके सूर्यको पहिँचान कर, देखा करता है, वैसे अपने अहं-कारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकर, आत्मस्वरूप देखनेवाला पुरुष देखा करता है ॥ १० ॥ इसतरह करते करते पर-मात्मा कि–जो उपाधिरहित, मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे प्रकाशमान, मायाका अधिष्ठान, कार्यमात्रका प्रकाशक, सब कार्य–

सानुबंधे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥
निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्याऽऽत्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥ १० ॥
मुक्तलिंगं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ सतो बंधुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥ यथा जलस्थ
आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥ एवं त्रि-
वृदहंकारो भूतेंद्रियमनोमयैः ॥ स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥ भूतसूक्ष्मेंद्रिय-
मनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥ १४ ॥

कारणोंमें अनुस्यूत और परिपूर्ण है उसका साक्षात्कार होता है ॥ ११ ॥ जैसे आकाशके सूर्यका प्रतिबिंब जलमें पड़ा हो और उस जलगत प्रतिबिंबका प्रतिबिंब भीतपर पड़ा हो, वहां प्रथम तो मनुष्यकी दृष्टि भीतपरके प्रतिबिंब पर पड़ती है फिर उसके अनुसंधानसे जलमेंके प्रतिबिंबपर पड़ती है और उस जलगत प्रतिबिंबके सहारेसे आकाशगत बिंबपर पड़ती है, वैसे प्रथम देह, इंद्रिय और मन वगैरः कि–जो अपने आत्मासे प्रकाशित हैं. उनपर दृष्टि पड़ती है. फिर उनके सहारेसे उनके प्रकाशक अपने आत्मापर दृष्टि पड़ती है. कि–जिसमें परब्रह्मका आभास ( प्रकाश ) विद्यामान है और फिर उसके सहारेसे उस अहंकारात्मक त्रिगुण आत्माका प्रकाशक सत्य और चैतन्यरूप जो परमात्मा है उसपर दृष्टि पड़ती है ॥ १२ ॥ १३ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें निद्राके का-

लिपायमान नहीं होता ॥ १ ॥ वही पुरुष जब प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त हो जाता है, तब ' देह मैं हूं ' ऐसे अहंकारसे मूढ़ बनकर ' मैं कर्ता हूं ' ऐसा अभिमान करता है ॥ २ ॥ और इस अभिमानसे परवश और दुखी होकर, उसी प्रसंगसे लगेहुए कर्मरूप अपराधोंके कारण शुभ, अशुभ और मिश्रित योनियोंमें जन्म मरण पाया करता है ॥ ३ ॥ वास्तविक रीतिसे देखते हैं, तो संसार बिलकुल हैही नहीं; तथापि विषयका चिंतन करनेवाले पुरुषका वह संसार मिट नहीं सकता. जैसे स्वप्न बिलकुल

स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्ताऽस्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्य निर्वृतः ॥ प्रासंगिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ४ ॥ अतएव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥ भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥ यमादिभिर्योगपथैरभ्यसन् श्रद्धयान्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥ सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसंगतः ॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ् मुनिः ॥ विविक्तशरणः शांतो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥

मिथ्या है; तथापि उस अवस्थावाले पुरुषके वे अनर्थ उस समय मिट नहीं सकते, किंतु भोगनेही पड़ते हैं ॥ ४ ॥ अतएव दुष्ट इंद्रियोंके विषयरूप मार्गमें लगेहुए चित्तको शनैः शनैः ( धीरे २ ) तीव्र भक्तियोगसे तथा वैराग्यसे अपने वशमें रखना चाहिये ॥ ५ ॥ यम आदि योगके मार्गोंसे श्रद्धायुक्त होकर, बारंबार चित्तको एकाग्र करता रहे, मेरे साथ निष्कपट प्रीति राखे, मेरी कथा श्रवण करे ॥ ६ ॥ सब प्राणिमात्रमें समभाव राखे, किसीसे वैरभाव न रक्खे, संगका त्याग करे, ब्रह्मचर्य और मौन रखकर, ईश्वरार्पण स्वधर्मका आचरण करे ॥ ७ ॥ जो दैवइच्छासे मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहै, परिमित भोजन करे, मनन करता रहे,

१ यह जग स्वपना रैनका, भाइ बंधु परिवार ॥ रंगी खुलते नैनके झूंठा सकल विचार ॥ २ अष्टलक्षण ब्रह्मचर्य. ३ वृथालापवर्जन

मन इंद्रियके साथ चंद्रमा हृदयमें प्रवेश हुआ पर विराट् बैठा न हुआ. बुद्धिके साथ ब्रह्माजीने हृदयमें प्रवेश किया पर विराट् बैठा न हुआ. अहंकारके साथ रुद्र हृदयमें घुसे पर विराट् बैठा न हुआ ॥ ६७ ॥ जिसकाल चित्त इंद्रियके साथ चैत्य क्षेत्रज्ञने हृदयमें प्रवेश किया उसीक्षण विराट्पुरुष जलमेंसे उठ खड़ा हुआ ॥ ६८ ॥ जैसे सोतेहुए पुरुषको जिस चेतन विना प्राण, इंद्रियां, मन और बुद्धि कोईभी पराक्रम करके उठा नहीं सकते, वैसे इस विराट् पुरुषको चेतन क्षेत्रज्ञ विना कोईभी न उठा सका. और जब जीव आया. तब तुर्त उठ खड़ा हुआ ॥ ६९ ॥ इस विराट शरीरके अंदर जो क्षेत्रज्ञ परमेश्वर है, प्रथम उसकी भक्ति करनीही अत्यावश्यक है; क्योंकि भक्ति करनेसे ईश्वरातिरिक्त पदार्थोंमें वैराग्य उत्पन्न होता है, तदनंतर योगमें बु-

हृदयं मनसा चंद्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ बुद्ध्या ब्रह्माऽपि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६७ ॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥ ६८ ॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेंद्रियमनोधियः ॥ प्रभवंति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ६९ ॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्याऽऽत्मनि चिंतयेत् ॥ ७० ॥ इति श्रीभागवगते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेये तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ ॥

द्धिकी प्रवृत्ति होती है, तासों एकाग्रचित्त होवे और एकाग्रचित्तसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, मनुष्यको चाहिये कि-कार्य कारणके संघातरूप इस शरीरमें आत्माका निश्चय करके उसका सदा ध्यान और चिंतवन किया करे ॥ ७० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ सत्ताईसवें अध्यायमें अच्छे प्रकार अनेक साधनोंवाले योगसे प्रकृतिपुरुषके विवेकद्वारा मोक्षकी रीति कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-यदपि पुरुष प्रकृति यानी देहमें स्थित है, तथापि प्रकृतिके गुणोंके कियेहुए सुखदुःखादि गुणोंसे लिपायमान नहीं होता; क्योंकि पुरुष निर्विकार, निर्गुण और अकर्ता है, जैसे जलगत सूर्यका प्रतिबिंब जलसे लिपायमान नहीं होता, वैसे पुरुषभी देहके गुणोंसे

फिर विराट्के हृदय पैदा हुआ, उसमें मनइंद्रिय पैदा हुई और मनसे चंद्रमा उत्पन्न हुआ. फिर हृदयमें बुद्धि पैदा हुई और बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ. फिर हृदयमें अहंकार पैदा हुआ और उससे रुद्रकी उत्पत्ति हुई. फिर विराट्के हृदयमें चित्त इंद्रिय पैदा हुई और चित्तसे क्षेत्रज्ञ पैदा हुआ ॥ ६० ॥ अन्वय और व्यतिरेकसे क्षेत्रज्ञका स्वरूप कहनेके वास्ते फिर पीछा सबका प्रवेश कहते हैं. ये सब देवता प्रगट हुए, परंतु जब उस विराट्देहको उठा न सके यानी चेतन न करसके, तब उसको उठानेके लिये क्रमसे फिर पीछे उसमें घुसे. वाणीके साथ अग्निनें मुखमें प्रवेश किया परंतु विराट् खड़ा न हुआ ॥ ६१ ॥ घ्राण इंद्रियके साथ

अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥ मनसश्चंद्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ॥ अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्त तोऽभवत् ॥६०॥ एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥ वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६१॥ घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६२ ॥ श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६३ ॥ रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६४ ॥ हस्ताविंद्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६५ ॥ नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिंधुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६६ ॥

वायुने नासिकामें प्रवेश किया पर विराट् खड़ा न हुआ, चक्षु इंद्रियके साथ सूर्यने नेत्रमें प्रवेश किया पर विराट् खड़ा न हुआ ॥ ६२ ॥ श्रोत्रइंद्रियके साथ दिशा कानोंमें घुसीं परंतु विराट् खड़ा नहीं हुआ. रोम इंद्रियके साथ औषधियां त्वचामें दाखिल हुई पर विराट् बैठा न हुआ ॥ ६३ ॥ शुक्र इंद्रियके साथ जलनें लिंगमें प्रवेश किया पर विराट् बैठा नहीं हुआ. अपान इंद्रियके साथ मृत्युने गुदामें प्रवेश किया पर विराट् बैठा न हुआ ॥ ६४ ॥ बल इंद्रियके साथ इंद्रने हाथोंमें प्रवेश किया पर विराट् बैठा न हुआ. गति इंद्रियके साथ विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया परंतु विराट् बैठा न हुआ ॥ ६५ ॥ लोहू इंद्रियके साथ नदियोंने नाड़ियोंमें प्रवेश किया पर विराट बैठा न हुआ. भूंख, प्यास इंद्रियके साथ समुद्रने उदरमें प्रवेश किया पर विराट् बैठा न हुआ ॥ ६६ ॥

चतुर्दशभुवनात्मक यह हरि भगवान्का स्वरूपभूत पृथ्वीमय ब्रह्मांड आखिर बाहिरकी तर्फ प्रधानसे घिरेहुए जल आदि सात आवरण कि- जो क्रमसे एक एकसे दस दस गुने बड़े हैं उनसे घिरा हुआ है ॥५२॥ भगवान्ने उदासीनताका त्याग करके उस जलमें पड़े- हुए हिरण्मय अंडपर अपनी शक्तिको चलाकर, उसके अंदर कितने एक छेद किये ॥ ५३ ॥ प्रथम इस अंडमें मुख प्रगट हुआ, उसमें वाणी उत्पन्न हुई और उसके साथ अग्निभी उत्पन्न हुआ; फिर विराट्के नाक उत्पन्न हुई, उसमें प्राणके साथ घ्राण इंद्रिय और घ्राणसे वायु उत्पन्न हुई ॥ ५४ ॥ तदनंतर विराट्के नेत्र उत्पन्न हुए. उनमें चक्षु इंद्रिय और चक्षुसे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान उत्पन्न हुए, उनमें श्रोत्र इंद्रि-

एतदंडं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥ तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥ ५२ ॥ हिरण्मयादंडकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ॥ तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥ ५३ ॥ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोतो घ्राण एतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥ तस्मात्सूर्योन्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥ तत ओषधयश्चासन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥ ५६ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ५७ ॥ हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्या ततो हरिः ॥ ५८ ॥ नाड्यो ऽस्य निरभिद्यंत ताभ्यो लोहितमाभृतम् ॥ नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥ ५९ ॥

य और उनसे दिशा प्रगट हुई ॥ ५५ ॥ फिर विराट्के त्वचा पैदाहुई, उसमें रोम, श्मश्रु और केश प्रगटे और उनसे औषधियां उत्पन्न हुईं, फिर लिंग उत्पन्न हुआ ॥ ५६ ॥ उसमें वीर्य इंद्रिय और जल देवता प्रगट हुए. फिर विराट्के गुदा उत्पन्न हुई, गुदामें अपान इंद्रिय और अपानसे लोकोंके भय करनेवाला मृत्यु देवता उत्पन्न हुआ ॥ ५७ ॥ फिर विराट्के हाथ प्रगट हुए, उनमें बल इंद्रिय और इंद्र देवता प्रगट हुआ. फिर विराट्के पांव प्रगट हुए, उनमें गति इंद्रिय और विष्णु देवता प्रगटे ॥ ५८ ॥ फिर विराट्के नाड़ियां उत्पन्न हुईं, उनमें लोहू इंद्रिय और नदियां प्रगटीं, फिर उदर (पेट) प्रगट हुआ, उसमें भूंख, प्यास, इंद्रिय और समुद्र देवता पैदा हुआ ॥ ५९ ॥

प्रतिमा आदिरूपसे परब्रह्मका लौकिक आकारसे भावना करना, जलादि पदार्थोंसे विलक्षण रीतिसे रहना, जलादि पदार्थोंका आधार होना, आकाशादि सत्पदार्थोंका घटाकाश महदाकाश आदि रूपसे अवच्छेदक होना और सर्व प्राणीमात्रको व उनके पुरुषत्व आदि परिणाम विशेषोंसे उनके गुणोंको प्रगट करना, यह पृथ्वीका लक्षण है ॥ ४६ ॥ आकाशका असाधारण गुण शब्द जिसका विषय है वह श्रोत्र इंद्रिय कहलाती है. वायुका असाधारण गुण स्पर्श जिसका विषय है वह त्वचा इंद्रिय कहलाती है ॥ ४७ ॥ तेजका असाधारण गुण रूप जिसका विषय है वह चक्षु इंद्रिय है, जलका असाधारण गुण रस जिसका विषय है वह

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥ सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥ ४६ ॥ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥ वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥ ४७ ॥ तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥ अंभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ॥ भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥ ४८ ॥ परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् ॥ अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥ ४९ ॥ एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥ कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥ ५० ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योंऽडमचेतनम् ॥ उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥ ५१ ॥

जिव्हा इंद्रिय कहलाती है पृथ्वीका असाधारण गुण गंध जिसका विषय है वह घ्राण इंद्रिय है ॥ ४८ ॥ पूर्व पूर्व पदार्थका पिछले पदार्थोंमें अन्वय यानी संबंध होनेसे अपने कारण आकाशादि पदार्थोंका धर्म शब्दादि कार्यरूप वायु आदि पदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्श आदिके साथ दीख पड़ता है. अतएव पृथ्वीमें चारों कारणोंके धर्म शब्द, स्पर्श, रूप व रस और अपना धर्म गंध ये पांचों देखनेमें आते हैं ॥ ४९ ॥ जब ये महत्तत्त्व आदि सातों तत्त्व शामिल नहीं होसके, तब इन सातोंमें तथा दूसरेभी सब तत्त्वोंमें काल, कर्म व गुणके साथ परमेश्वरने प्रवेश किया ॥ ५० ॥ फिर परमेश्वरके प्रवेश होनेसे जब ये तत्त्व क्षोभित होकर इकठे हुए, तब इनसे अचेतन अंड पैदा हुआ, जिससे यह विराट्पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥

तन्मात्रा उत्पन्न हुई, उससे तेज पैदा हुआ, जो रूप चक्षु इंद्रियसे जाना जाता है ॥ ३८ ॥ हे देवहूति ! रूप पदार्थोंको आकार देता है तथा द्रव्यमें गौण रीतिसे प्रतीत होना व पदार्थोंकी रचनाके परिणामका प्रतीत होना व तेजका असाधारण गुण होना, यह रूपका लक्षण है ॥ ३९ ॥ प्रकाश होना, पकाना, भूंख प्याससे खाना व पीना, सर्दी मिट जाना, सुखाना ये तेजके लक्षण हैं ॥ ४० ॥ दैवप्रेरित रूपतन्मात्रावाला तेज क्षोभको प्राप्त हुआ, तब उससे रस तन्मात्रा उत्पन्न हुई. उससे जल पैदा हुआ, जो रस जीभसे जाना जाता है ॥ ४१ ॥ यदपि रस एकही प्रकारका है, तथापि पृथ्वीके विकारसे कषाय, मधुर, तिक्त,

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्ति संस्थात्वमेव च ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वी रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥ ३९ ॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥ ४० ॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादंभो जिह्वारसग्रहः ॥ ४१ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥ भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनं पिंडनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोंदनम् ॥ तापापनोदो भूयस्त्वमंभसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥ रसमात्राद्विकुर्वाणादंभसो दैवचोदितात् ॥ गंधमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गंधगः ॥ ४४ ॥ करंभपूतिसौरभ्यशांतोग्राम्लादिभिः पृथक् ॥ द्रव्यावयववैषम्याद्गंध एको विभिद्यते ॥ ४५ ॥

क्षार, कटु और खट्टा ऐसे छः प्रकारका होता है ॥ ४२ ॥ भिगोदेना, मिट्टी आदिका पिंड बांध देना, तृप्त करना, जिलाना, प्यासकी कायरता मिटाना, नरम करना, ताप मिटाना, कुएं आदिमेंसे निकालनेपरभी बारंबार अधिक होना ये जलके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥ दैवप्रेरित रस तन्मात्रावाला जल जब विकारको प्राप्त हुआ, तब उससे गंधतन्मात्रावाली पृथ्वी उत्पन्न हुई, जो गंध घ्राणसे जानी जाती है ॥ ४४ ॥ यदपि गंध एकही है तथापि संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे करंभ[1], पूति[2],सौरभ्य[3], शांत[4] और उग्र[5] आदि अनेक भेदवाली हो जाती है ॥ ४५ ॥

१ कपूर आदिकी गंध वह करंभ. २ सड़े हुए पदार्थकी गंध वह पूति. ( बदबू ) ३ कस्तूरी-आदिकी गंध वह सौरभ्य. ४ कमल-आदिकी गंध वह शांत ५ लहसन-आदिकी गंध वह उग्र.

हैं, तासों ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियभी इसीसे प्रगट हुई हैं ॥ ३१ ॥ भगवान्‌की शक्तिसे प्रेरित जो विकार पाता हुआ तामसाहंकार, उससे शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई. और शब्दसे आकाश पैदा हुआ, शब्दको ग्रहण करनेवाली श्रोत्र इंद्रिय राजसाहंकारसे प्रगट हुई, यह प्रथम कह चुके हैं ॥ ३२ ॥ शब्दसे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं और जो आदमी देखनेमें नहीं आता तथापि वह किसी पदार्थको देखकर, बोलता हो; तौ उस शब्दसे वह अदृश्य मनुष्य और अदृश्य पदार्थ दोनो समझमें आजाते हैं तथा शब्द वह आकाशका सूक्ष्मरूप है. यह शब्दका लक्षण है ॥ ३३ ॥ आकाश, सर्वपदार्थोंको अवकाश देता है तथा बाहिर और भीतरका व्यवहार इसीके आश्रित है व प्राण, इंद्रियां और मन इनका यह नाड़ी आदिके छिद्ररूपसे आश्रय है, इसप्र-

तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥ ३२ ॥ अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिंगत्वमेव च ॥ तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥ ३३ ॥ भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरंतरमेव च ॥ प्राणेंद्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥ ३४ ॥ नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥ ३५ ॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥ सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् ॥ समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलंभनम् ॥ ३८ ॥

कार इसके कार्यसेही वह आकाश जाना जाता है; क्योंकि–यह अरूपी है जो अरूपी होता है उसका लक्षण केवल कार्यसेही कहनेमें आसक्ता है ॥ ३४ ॥ शब्दतन्मात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षोभित होने लगा तब, उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रगट हुई. उससे वायु उत्पन्न हुई. जिस स्पर्शका त्वचा इंद्रियसे ग्रहण हुआ करता है ॥ ३५ ॥ मृदुता, कठिनता, सर्दी, गर्मी और वायुकी तन्मात्राका होना, यह स्पर्शका लक्षण है ॥ ३६ ॥ वृक्षकी डाली आदिको हिलाना तृण आदिको मिलादेना, गंधवाले पदार्थको घ्राण इंद्रियके पास ले जाना, वैसे शीतादि गुणवाले पदार्थको त्वचाके निकट लेजाना तथा शब्दको श्रोत्रके समीप ले जाना सब इंद्रियोंको बल देना, यह कर्मद्वारा वायुका लक्षण है ॥ ३७ ॥ दैवप्रेरित स्पर्श तन्मात्रावाली वायुसे रूप

भगवान्‌की शक्तिसे प्रगट हुआ और विकारको प्राप्त होता हुआ जो महत्तत्त्व उससे क्रियाशक्तिवाला तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ सात्विक, राजस और तामस, जिससे मन, इंद्रियां और पंच महाभूत प्रगट हुए ॥ २४ ॥ अहंकारमें उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं, जो पांच महाभूत, इंद्रियां व मनोमय साक्षात् अनंत हजार मस्तकवाले संकर्षण नामसे प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ इंद्रियोंके देवता, इंद्रियां और गोलक यानी कर्ता, करण और कार्यरूपता अथवा शांत, घोर और विमूढ़पन यह अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥ सात्विकाहंकार क्षोभको प्राप्त हुआ, तब उससे मन पैदा हुआ, संकल्पविकल्पसे जो कामना उत्पन्न हुआ करती

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥ क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेंद्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनंतं प्रचक्षते ॥ संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेंद्रियमनोमयम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शांतघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ॥ यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥ २७ ॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेंदीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥ २८ ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिंद्रियाणामनुग्रहः ॥ २९ ॥ संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥ स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥ ३० ॥ तैजसानींद्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥ ३१ ॥

है, वह मनका लक्षण है ॥ २७ ॥ मनमें उपास्य देवता अनिरुद्ध हैं, जो इंद्रियोंके अधिष्ठाता हैं. तथा जिन शरदऋतुसंबंधी श्याम कमलके समान श्यामवर्ण अनिरुद्धका योगीजन आराधन करते हैं ॥ २८ ॥ हे देवहूति ! राजसाहंकार विकारको प्राप्त हुआ. तब उससे बुद्धितत्त्व पैदा हुआ. पदार्थोंकी स्फूर्ति होनी तथा इंद्रियोंको सहायता मिलनी, यह बुद्धिका लक्षण है ॥ २९ ॥ संशय, मिथ्याज्ञान, प्रमाणज्ञान, स्मृति और निद्रा, ये जुदी जुदी वृत्तियांभी बुद्धिका लक्षण हैं ॥ ३० ॥ ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रिया येभी दशों राजसाहंकारसे उत्पन्न हुई मानी जाती हैं; क्योंकि-क्रियाशक्ति प्राण और ज्ञानशक्ति बुद्धि ये दोनों राजसाहंकारसे प्रगट हुए

कितनेएक कहते हैं, कि–काल यह ईश्वरका प्रभाव है. जिससे देह मैं हूं इस प्रकार अज्ञानसे देहाभिमान करनेवाले जीवके भय बना रहता है, इससे कालका संहारकर्ता स्वरूप कहा गया, अब सृष्टिहेतुतासे स्वरूप कहते हैं ॥ १६ ॥ हे देवहूति! गुणत्रयका समानभावही जिसका स्वरूप है ऐसी, भेदरहित मायाकी जिससे चेष्टा होती है, वह भगवान् काल कहलाता है ॥ १७ ॥ जो यह भगवान् काल अपनी मायासे सब जीवोंके अंदर तो नियंताभावसे अनुस्यूत होकर रहा है और बाहिर कालरूपसे रहा है ॥ १८ ॥ जीवोंके अदृष्टसे जिसके गुणोंमें क्षोभ ( विकार ) होने लगा है ऐसी, अपनी अभिव्यक्तिकी स्थानरूप प्रकृतिमें परमेश्वरने अपना चिदाभास स्थापित किया, तब उससे प्रकाशबहुल महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ अपने भीतर सूक्ष्मरूपसे

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ॥ अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥ १६ ॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥ १७ ॥ अंतः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥ १८ ॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥ १९ ॥ विश्वमात्मगतं व्यंजन्कूटस्थो जगदंकुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥ २० ॥ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शांतं भगवतः पदम् ॥ यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शांतत्वमिति चेतसः ॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥ २२ ॥

रहेहुए जगतको प्रगट करतेहुए, लय विक्षेपरूप, जगत्के अंकुररूप, महत्तत्त्वने अपने तेजसे प्रलयसमयमें महतत्वको प्रकृतिमें लीन करनेवाले प्रलयकाल संबंधी अंधकारका पान किया ॥ २० ॥ सत्वगुणवाला, स्वच्छ, रागद्वेषरहित, भगवान्का उपलब्धिस्थान होनेसे जो वासुदेव नामसे प्रसिद्ध चित्त है, वह महत्तत्वका स्वरूप है. अभिप्राय यह है कि–अधिभूतरूपसे महत्तत्व, अध्यात्मरूपसे चित्त और अधिदैवत यानी उपास्य रूपसे वासुदेव कहलाता है ॥ २१ ॥ पृथ्वीका संसर्ग होनेके प्रथम जलकी स्थिति जैसे मधुर स्वच्छ और शांत होती है, वैसे अन्य विकार होनेके प्रथम स्वच्छता यानी भगवान्के बिंबका ग्रहण करना, लय विक्षेपशून्य होना तथा शांत होना, इन वृत्तियोंद्वारा महत्तत्वका लक्षण कहा जाता है ॥ २२ ॥

पुरुष है ॥ ८ ॥ देवहूतीने कहा कि–हे पुरुषोत्तम ! संसारी पुरुष और उसकी कारणभूत प्रकृतिका स्वरूप तो मैंने जाना, अब जगतके कारण ईश्वर और उनकी प्रकृतिका स्वरूप मुझे कहो, स्थूल, सूक्ष्म रूप यह कार्य जिनका स्वरूप है ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि–स्वतः विशेष यानी भेदरहित होनेपरभी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधान तत्व है उसे प्रकृति कहते हैं. क्या ब्रह्मको प्रकृति कहते हो ? नहीं; वह त्रिगुण है, और ब्रह्म गुणरहित है. क्या तब महत्तत्वादि हैं ? नहीं वह कार्य नहीं है, महत्तत्वादि कार्य हैं. क्या काल आदि है ? नहीं, वह कार्य–कारणरूप है, काल कार्य–कारणरूप नहीं है. तब क्या जीव

देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषंविशेषवत् ॥ १० ॥ पंचभिः पंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानि पंचैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावंति गंधादीनि मतानि मे ॥ १२ ॥ इंद्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥ वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥ १३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यंतरात्मकम् ॥ चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥ १४ ॥ एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्यह ॥ सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पंचविंशकः ॥ १५ ॥

प्रकृति है ? नहीं, वह नित्य है पांच, पांच, चार और दस यह चौबीस तत्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक ब्रह्म कहलाता है ॥ १० ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांच महाभूत कहलाते हैं. और गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पांच तन्मात्रा मानी जाती हैं ॥ १२ ॥ तथा श्रोत्र, त्वचा, दृष्टि, रसना ( जिव्हा ) और नासिका ये पांच ज्ञानेंद्रिय व वाणी, हाथ पैर, लिंग और गुदा, ये पांच कर्मेंद्रिय मिलकर, दश इंद्रियां हैं. ॥ १३ ॥ अंतःकरणभी चार प्रकारके जुदे जुदे लक्षणोंवाली वृत्तियोंसे मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूपसे चार प्रकारका है ॥ १४ ॥ सगुणब्रह्म यानी मायाकी स्थिति इतनीही है जो मैं आपको कह चुका हूं जो काल है वहभी मायाकाही एक अवस्था विशेष पचीसवां तत्व है ॥ १५ ॥

मोक्षके निमित्त कहलाता है उसका मैं तुझसे वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ जो आत्मा है वही पुरुष है, यह पुरुष प्रतिलोम स्फूर्तिवाला, अनादि, प्रकृतिसे पर, निर्गुण, स्वयंप्रकाश और जगत्में व्याप्त है ॥ ३ ॥ प्रकृति दो प्रकारकी है, एक तो आवरणशक्ति और दूसरी विक्षेपशक्ति; जो आवरणशक्ति है वही जीवोंकी उपाधिरूप अविद्या है और जो विक्षेपशक्ति है वह परमेश्वरकी माया है. पुरुषभी दो प्रकारका है, जीव और ईश्वर, जो प्रकृतिकृत अविवेकसे संसारमें चक्कर खाता है वह तो जीव और जो प्रकृतिको वशमें रखकर, जगत्की सृष्टि आदि करता है वह ईश्वर है. तहां प्रकृतिके अविवेकसे जीवकी संसृतिका प्रकार कहते हैं. वह पुरुष अपने निकट विनाकारण आयीहुई भगवान्की माया कि-जो सूक्ष्म और गुणत्रयमय है, उसको यदृच्छासेही प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥ गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्य स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥ एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥ तदस्य संसृतिर्बंधः पारतंत्र्यं च तत्कृतम् ॥ भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥

ज्ञानको आच्छादित करनेवाली और गुणोंसे अनेक प्रकारकी और उन उन गुणोंके समान रूप, प्रजानको उत्पन्न करती हुई मायाको देखकर, यह पुरुष अपने स्वरूपको तुर्त विस्मृत हो गया, यानी मैं देह हूं ऐसे मानने लगा ॥ ५ ॥ इस प्रकार देहका अध्यास होनेके कारण प्रकृतिके गुणोंसे कर्म किये जानेपरभी यानी देहके इंद्रियादिक पदार्थ विषयोंका ग्रहण करते हैं, तथापि यह पुरुष मैं करता हूं ऐसे अपने स्वरूपमें कर्तृत्वको मानता है ॥ ६ ॥ यदपि यह पुरुष साक्षीमात्र होनेसे अकर्ता है, तथापि इसके उसी कर्तृत्वाभिमानसे कर्मबंधन होता है और कर्मबंधनसे स्वतंत्र पुरुषभी भोग भोगनेमें परतंत्र रहता है और सुखस्वरूप परमात्माके जन्ममरणका प्रवाहरूप संसार यह सब प्रकृतिके अविवेकका कियाहुआ है ॥ ७॥ काय ( शरीर ) कारण ( इंद्रिय ) कर्ता ( देवता ) इनमें जो अध्यासका कारण है, वह प्रकृति है ओर जो सुख दुःखका भोक्ता है, वह प्रकृतिसे पर साक्षात्

धन, पशु और घर आदि हैं ॥ ३९ ॥ उन सबको तथा दूसरेभी कितनेएक पदार्थोंको छोंड़कर, सर्वव्यापक मुझको एकाग्रभक्तिभावसे जो भजते हैं, उनको मैं संसारसे पार लंघा देता हूं ॥ ४० ॥ प्रकृति पुरुषके अधिष्ठाता और सर्वपदार्थोंका आत्मा भगवान् जो मैं हूं, उसका शरण लिये विना संसारका तीव्र भय कथमपि ( कोईतरहभी ) निवृत्त नहीं हो सक्ता ॥ ४१ ॥ यह वायु मेरे ( कालके ) भयसे चलती है, सूर्य मेरे भयसे प्रकाश करता है, इंद्र मेरे भयसे बरसता है, अग्नि जलाता है और मृत्यु मेरे भयसे दौड़ता रहता है ॥ ४२ ॥ योगीजन ज्ञान और वैराग्यसहित भक्तियोगसे अपने कल्याणके लिये भयरहित मेरे चरणमूलका शरण लेते हैं ॥ ४३ ॥

विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥ भजंत्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥ ४० ॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१ ॥ मद्भया-द्वातिवातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतींद्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययु-क्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशंत्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मि-न्पुंसां निःश्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते म-हापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥ ज्ञानं निःश्रे-यसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम् ॥ २ ॥

इस लोकमें यही मुख्य कल्याणके उदयके लिये कहागया है कि-तीव्र भक्तियोगसे मेरे अर्पण करनेसे मनका स्थिर हो जाना ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ छब्बीसवें अध्यायमें, पुरुष और प्रकृतिके विवेकके अर्थ सांख्यशास्त्रकी रीतिसे भिन्न भिन्न लक्षणसहित सर्वपदार्थोंकी उत्पत्तिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-अब मैं तुझे भिन्न भिन्न तत्वोंके लक्षण कहता हूं सो सुन, जिसको जानकर, यह पु-रुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ हृदयग्रंथिको काटनेवाला आत्मदर्शनरूप जो ज्ञान मनुष्यके कल्याण यानी

है, वैसे लिंगशरीरका नाश करदेती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अतएव मेरे चरणोंकी सेवामें प्रीतिपूर्वक लगेहुए और केवल मेरे वास्ते सर्वकर्म करनेवाले, कितनेएक लोक मेरे स्वरूपके साथ युक्त होजानेरूप सायुज्यमुक्तिको नहीं चाहते, किंतु ये भक्तलोक एक दूसरेसे मिलकर परस्पर मेरे चरित्रोंकीही प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे माता ! ये सत्पुरुषलोक सुंदर, प्रसन्नमुख, अरुणनेत्र, दिव्य व वरदान देनेवाले मेरे स्वरूपोंका दर्शन करते हैं और उनके साथ मनोहर वार्तालाप करते हैं ॥ ३५ ॥ जिनके अवयव, विलास हास अवलोकन और भाषण, अत्यंत रमणीय हैं ऐसे, इन स्वरूपोंने जिनके चित्त और इंद्रियोंको खैंच लिया है, उन वैष्णवलो-

नैकात्मतां मे स्पृहयंति केचिन्मत्पादसेवाऽभिरता मदीहाः ॥ येऽन्योऽन्यतो भागवताः प्रसज्य- सभाजयंते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥ पश्यंति ते मे रुचिराण्यंब संतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपा- णि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदंति ॥ ३५ ॥ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षि- तवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुंक्ते ॥ ३६ ॥ अथो विभूतिं म- म मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वाऽस्पृहयंति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७ ॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शांतरूप नंक्ष्यंति नो मे निमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं प्रिय- आत्मासुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आ- त्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥ ३९ ॥

गोंके मुक्त होनेकी इच्छा नहीं रहती, तथापि मेरी भक्ति उन्हें बलात्कारसे मुक्ति देती है ॥ ३६ ॥ अविद्या निवृत्तिके अनंतर सातों लोकोंकी भोगसम्पत्ति तथा आणिमादिक अष्ट सिद्धियां और भक्तिके पीछे स्वतएव प्राप्त होनेवाली वैकुंठलोककी उत्तम सं- पत्ति, कि-जिसको वे भक्तलोग बिलकुल नहीं चाहते, तथापि यह सब मेरे वैकुंठ लोकमें उनको स्वयं प्राप्त होतीं हैं ॥ ३७ ॥ जिन लोकोंके मैं आत्माके समान प्रिय, पुत्रके समान स्नेहपात्र, सखाके समान विश्वासपात्र, गुरुके समान उपदेशक, बंधुके समान हितकारी और इष्टदेवके समान पूज्य हूं, वे भक्तलोक कदापि शुद्ध सत्वगुणमय वैकुंठलोकमें वैभवरहित नहीं होते और मेरा शस्त्र- रूप कालभी इन लोकोंका नाश नहीं करता ॥ ३८ ॥ यहलोक, परलोक और दोनों लोकोंमें जानेवाला देह और देहके पीछे

जो प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करे और वैराग्यसे बढ़ेहुए ज्ञानका विचार करे, योगका साधन करे, सर्वकर्म मेरे अर्पण करनेरूप मेरी दृढ भक्ति करै, वह जीवात्मा इसी देहमें प्रत्यक् आत्मरूप मुझको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ देवहूतीने कहा कि– आपकी भक्ति कौन करनी उचित है ? तत्रापि मैं स्त्री हूं, सो मेरे योग्य भक्ति कैसी है ? कि–जिसके प्रभावसे विना परिश्रम मोक्षरूप आपके स्वरूपको सर्वात्मभावसे तुर्त प्राप्त हो जाऊं ॥ २८ ॥ हे हरि ! आप मुझे इसका ऐसी रीतिसे उपदेश करो. कि– जिसतरह मैं मंदबुद्धि स्त्रीभी आ-

असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृंभितेन ॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुंधे ॥ २७ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमंजसाऽन्वाश्नवा अहम् ॥ २८ ॥ यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चांगानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे विजानीहि यथाऽहं मंदधीर्हरे ॥ सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वाऽर्थं कपिलो मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदंति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ देवानां गुणलिंगानामनुश्रविककर्मणाम् ॥ सत्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥ ३२ ॥ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥

पकी कृपासे इस दुर्बोधविषयको सुखसे समझ जाऊं ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–जिसके उदरसे आपने शरीर धारण करके, जन्म लिया है; उस माताके प्रयोजनको जानकर, स्नेह करके, भक्तियोग, योग और तत्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रका उपदेश किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कपिलदेवजीने कहा कि– विषयोंका ग्रहण होनेपरसेही जिनके अस्तित्वका अनुमान होता है, ऐसी वेदविहित कर्म करनेवाली चक्षुरादि इंद्रियोंकी वृत्तिका केवल शुद्धसत्व भगवान्में होना यही विकाररहित चित्तवाले पुरुषकी निष्काम और स्वाभाविक भगवद्भक्ति कहलाती है, जो भक्ति मुक्तिसेभी अधिक है; क्योंकि–वह भक्ति जैसे अग्नि खायेहुए अन्नको पाचाया करती

आसक्ति सत्पुरुषोंमे की जाय तो, मोक्षका खुला दरवाजा है ॥ २० ॥ सत्पुरुष उन्हें कहते हैं कि–जो सहनशील होवें, करुणावाले होवें, सब जीवमात्रके साथ सुहृद्‌भाव राखें, किसीसे शत्रुता न राखें, शांत स्वभाव होवें, और सुशीलताहीको आभूषण समझें ॥ २१ ॥ जो अनन्यभावसे मेरी दृढ़ भक्ति करते हैं और जिन्होंने मेरे वास्ते सब काम, स्वजन और बंधुजनोंको तज दिया है ॥ २२ ॥ और जो मेरे संबंधी मधुर कथाको श्रवण करते हैं तथा कहते हैं और जिन्होंने अपना मन मुझमें लगा दिया है, उन्हें ये ताप किसी प्रकारसे बाधा नहीं देते ॥ २३ ॥ हे साध्वी ! जो तापसे तप्त नहीं होते और जिनके सर्वसंग निवृत्त हो गये

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ॥ अजातशत्रवः शांताः साधवः साधुभूषणाः ॥ २१ ॥ मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वंति ये दृढाम् ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबांधवाः ॥ २२ ॥ मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वंति कथयंति च ॥ तपंति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥ त एते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्जिताः ॥ संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते ॥ २४ ॥ सतां प्रसंगान्ममवीर्यसंविदो भवंति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥ भक्त्या पुमान्जातविराग ऐंद्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिंतया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥

हैं उन सत्पुरुषोंकी संगति करनी चाहिये; क्योंकि–आसक्तिरूप दोषके मिटानेवाले वेही हैं ॥ २४ ॥ सत्पुरुषोंकी संगति करनेसे हृदय और कानोंको सुख देनेवाली, मेरे पराक्रमका ज्ञान करनेवाली कथाओंका श्रवण बन सकता है और उस कथाश्रवणसे मोक्षके मार्गरूप हरि भगवान्‌में क्रमशः श्रद्धा, प्रीति और भक्ति प्रगट होती है ॥ २५ ॥ मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिंतवन करनेसे प्रथम भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति करनेसे देखेहुए और सुनेहुए इंद्रियसंबंधी विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न होता है, इसलिये सावधान होकर, योग धारण करके, सरल योगके मार्गोंसे चित्तको वश करनेका यत्न करना चाहिये ॥ २६ ॥

---

१ कुंडलिया–मण्डन है ऐश्वर्यको सज्जनता सन्मान ॥ वाणी सज्जन शूरता मंडन धनको दान ॥ मंडन धनको दान ज्ञानमण्डन इन्द्रियदम ॥ तपमण्डन अक्रोध नियममण्डन सोहत सम ॥ प्रभुतामंडन माफ़ धर्ममंडन छलछंडन ॥ सबहिनमैं सरदार शीलता सबको मण्डन ॥ १ ॥

हे अनघे ! सर्व प्रकारसे अतिनिपुण योगको श्रवण करनेकी इच्छावाले योगीजनोंको जो योग मैंने पहले कहा है, वह मैं तुझको कहता हूं सो तू श्रवण कर ॥ १४ ॥ जीवका मनहीसे तो बंधन है और मनहीसे मोक्ष है, जो मन विषयोंमें आसक्त हुआ तो बंधनहेतु है और जो ईश्वरमें अनुरक्त हुवा तो मोक्षका कारण है ॥ १५ ॥ मैं और मेरा इस अभिमानसे प्रगट भयेहुए काम, लोभ आदि मल दूर हो जानेसे जब चित्त सुखदुःखरहित होकर, समतामें आनेसे शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ तब ज्ञान, वैराग्य और भक्तिवाले उस चित्तसे अपना निजस्व-

तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे ॥ ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वांगनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य बंधाय मुक्तये चाऽऽत्मनो मतम् ॥ गुणेषु सक्तं बंधाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ १५ ॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥ १६ ॥ तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरंतरं स्वयं ज्योतिरणिमानमखंडितम् ॥ १७ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥ परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥ १८ ॥ न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ सदृशोऽस्ति शिवः पंथा योगिना ब्रह्मसिद्धये ॥ १९ ॥ प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः[1] ॥ स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २० ॥

रूप कि-जो प्रकृतिसे पर, स्वयंप्रकाश, भेदरहित, सूक्ष्म, उदासीन, एक और अखंडरूप है, वह देखनेमें आता है. और प्रकृति पराक्रमहीन दृष्टिमें आती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ सर्वके आत्मा हरि भगवान्की भक्ति करनेके सिवाय योगीजनोंके ब्रह्मप्राप्तिके लिये ऐसा दूसरा कोईभी कल्याणकारी मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ कविलोग कहते हैं कि-इस जगत्में आसक्ति दृढ पाश है, परंतु वही

१ राग मलार ॥ रघुपतिभक्ति करत कठिनाई ॥ करतु सुगम करनी अपार जाने सोई जहि बनिआई ॥ जो जेहि कलाकुशल ताकहँ सोइ सुलभ सुखकारी ॥ सफरी सनमुख जलप्रवाह सुरसरी बहै गजभारी ॥ ज्यों शर्करा मिलै सिकता मुद्ध बलते न कोउ विलगावै । अतिरसज्ञ सूक्षम पिपीलिका बिनु प्रयासही पावै ॥ सकल दृश्य निज उदर मेलिके सोवै निद्रा तजिकै योगी ॥ सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैतवियोगी ॥ शोक मोह भय हर्ष दिवस निशि देशकाल तहं नाहीं ॥ तुलसिदास एहि दशाहीन संशय निर्मूल न जाहीं ॥

कपिलदेवजीको बैठे देख, ब्रह्माजीके वचनका स्मरण करके, देवहूतीने कहा ॥ ६ ॥ देवहूती बोलीकि–हे भूमन् ! दुष्ट इंद्रियसंबंधी विषयलालसासे मैं बहुत थक गयी हूं. हे प्रभु ! जिनको पूरण करतीहुई मैं अंधतम यानी अज्ञानमें पड़ी हूं ॥ ७ ॥ उस अपार गाढ ( बड़े ) अंधकारसे पार करनेवाला आपरूप उत्तम नेत्र आपकी कृपासे अनेक जन्मोंके अंतमें आज मुझे मिला है ॥ ८ ॥ पुरुषोंमें आदिपुरुष ईश्वर भगवान् आप, अंधकारसे अंधे भयेहुये लोकोंके सूर्यके समान नेत्ररूप प्रगट हुए हो ॥९ ॥ हे देव ! इन देह आदि पदार्थोंमें जो आपने अहंता, ममतारूप आग्रह लगा दिया है, उस अज्ञानको दूर करो ॥ १० ॥ अपने भक्तलोगोंके

देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिंद्रियतर्षणात् ॥ येन संभाव्यमानेन प्रपन्नांऽधंतमः प्रभो ॥ ७ ॥ तस्य त्वं तमसोंऽधस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामंते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ य आद्यो भगवान्पुंसामीश्वरो वै भवान्किल ॥ लोकस्य तमसांऽधस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥ अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया ॥ १० ॥ तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनंद्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योग आध्यात्मिकः पुंसामतो निःश्रेयसाय मे ॥ अत्यंतोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ १३ ॥

संसाररूप वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाड़ीरूप और सत्यधर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ शरण देनेवाले आपके मैं प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको जाननेकी इच्छासे शरण आयी हूं और आपको प्रणाम करती हूं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– इस प्रकार अपनी माताकी मनुष्योंके मोक्षमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली निर्दोष इच्छाको सुनकर, मनसे प्रशंसा करके, आत्मज्ञानी सत्पुरुषोंके गतिरूप भगवान्ने किंचित् मंदहास्यशोभित मुख होकर, अपनी मातासे कहा ॥१२ ॥ कपिलदेवजी बोले कि– मनुष्योंके कल्याणके वास्ते ब्रह्मविद्यामें निष्ठा रखनी यही मुख्य उपाय है, यह मेरा मत है. जिस ब्रह्मविद्यासे सुख और दुःखका अत्यंत नाश होता है॥१३॥

देखने लगे ॥ ४६ ॥ इच्छा और द्वेषरहित, तथा भगवद्भक्तिसहित, सर्वत्र समचित्त रखनेसे मुनि भगवद्गति यानी मोक्षको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ पचीसवें अध्यायमें देवहूतीने बंधनसे मुक्त होनेके वास्ते प्रश्न किया. तब कपिलमुनिने प्रथम भक्तिलक्षण परमउत्कृष्ट साधन बतलाया ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि-सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् कपिलदेवजी अपनी मायासे आत्मतत्वका उपदेश करनेके लिये साक्षात् स्वयं अजन्मा हरि प्रगट हुए ॥ १ ॥ सब मनुष्योंमें उत्तम और सर्व योगीजनोंमे श्रेष्ठ ऐसे हरि भगवान्की कीर्ति सु-

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्रसमचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेये चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥ जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥ न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यंति मेऽसवः ॥ २ ॥ यद्यद्विधत्ते भगवान्स्वच्छंदात्मात्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्त्तन्यान्यनुकीर्त्तय ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ॥ प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥ ६ ॥

ननेसे बारंबार प्रभुचरित्र श्रवण करने परभी मेरे प्राण तृप्त नहीं होते ॥ २ ॥ अपने भक्तोंकी इच्छासे देह धारण करनेवाले हरि भगवान्ने अपनी मायासे जो जो चरित्र किये हैं, वे कीर्तन करनेयोग्य चरित श्रद्धालु जो मैं हूं, उसके तई वर्णन करो ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा कि-वेदव्यासजीके मित्र भगवान् मैत्रेयजीसे विदुरजीने इसी प्रकार प्रश्न किया, तब आत्मविद्यामें प्रेरित मैत्रेयजीने प्रसन्न होकर, विदुरजीसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोलेकि-जब पिता कर्दमजी जंगलमें चले गये तब माताको प्रसन्न रखनेके लिये भगवान् कपिलदेवजी उसी बिंदुसरोवरमें बिराजे ॥ ५ ॥ तत्वमार्गके पारदर्शी और कर्मबंधनरहित अपने पुत्र

रमात्मा हूं, उसे आप अपने मनसे अपने स्वरूपमेंही देखो, जिससे आप शोकरहित होकर, मोक्षको प्राप्त होओगे ॥ ३९ ॥ माता देवहूतीको सर्व कर्मोंकी उन्मूलन करनेवाली आत्मविद्याका उपदेश मैं करूंगा, जिससे इस संसारके भयसे मुक्त होकर, परमानंदको प्राप्त होवेगी ॥ ४० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि—कपिलमुनिने इसप्रकार प्रजापति कर्दमजीसे कहा, तब उन्हें प्रदक्षिणा कर, प्रसन्न हो, कर्दमजी वनकोही चले ॥ ४१ ॥ मुनिलोगोंका जो अहिंसालक्षण व्रत है, उसे धारण कर, केवल आत्मामें निष्ठा रखकर, संगमात्रका त्याग कर, अग्निहोत्र और घरको त्याग कर, पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ४२ ॥ कार्य-कारणसे पर, सर्व गुणोंका

मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥४०॥
मैत्रेय उवाच ॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥
॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निःसंगो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥
॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युंजानो यत्तत्सदसतः परम् ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्याऽनुभाविते ॥
॥ ४३ ॥ निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वंद्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक् प्रशांतधीर्धीरः प्रशांतोर्मिरिवोदधिः ॥
॥ ४४ ॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबंधनः ॥ ४५ ॥
आत्मानं सर्वभूतेषु भगवंतमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चाऽऽत्मनि ॥ ४६ ॥

प्रकाशक अलौकिकगुणविशिष्ट और अव्यभिचारिणी भक्तिसे अपरोक्ष किये हुए परब्रह्ममें मन लगाय, ॥ ४३ ॥ अहंता, ममता और सुख दुखरूप द्वंद्वका त्याग कर, कर्दमजी समदर्शी और स्वयं द्रष्टा हो गये. और अपरोक्षानुभव हो जानेसे, मानों लहरें शांत हो गयीं हों ऐसे समुद्रके समान उनकी बुद्धि विक्षेपरहित होनेसे शांत होगयी ॥ ४४ ॥ और उसीसे महाधीर कर्दमजीका चित्त सर्व जीवोंके आत्मा और सर्वज्ञ वासुदेव भगवान्में परमभक्तिभावसे दृढ लग गया और उससे मुनिके सर्व बंधन छूट गये ॥ ४५ ॥ सर्व प्राणीमात्रमें भगवान् परब्रह्म विद्यमान हैं; और परब्रह्ममें सर्व प्राणीमात्र हैं; और वह परब्रह्मरूप मैं हूं, ऐसे

ज्ञान, पराक्रम और लक्ष्मीसे परिपूर्ण आपके मैं शरण आया हूं ॥ ३२ ॥ प्रकृति, प्रकृतिका अधिष्ठाता पुरुष, महत्तत्त्व, काल, अहंकार, लोक और लोकपाल इत्यादि सर्वरूप, सर्वज्ञ, स्वाधीनशक्ति और जिनके स्वरूपमें सर्व प्रपंच लीन होकर, रहता है ऐसे, परमेश्वर कपिलदेव आपके मैं शरण आया हूं ॥ ३३ ॥ प्रजापतियोंके पति आपसे मैं संन्यासके लिये आज्ञा मांगता हूं; क्योंकि-आपके अवतार लेनेसे मैं पितृऋणसे अनृण हो चुका; तथा मेरे मनोरथ सफल हुए, तासों अब मै संन्यास ले, हृदयमें आपका ध्यान धर, शोक रहित होकर, विचरूंगा॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- हे मुनि! वेदसंबंधी, लोकसंबंधी तथा सकल कार्योंमें

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपंचं स्वच्छंदशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥ आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णार्ण उताप्तकामः ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युंजन्विशोकः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥ एतन्मे जन्मलोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥ एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥ ३७ ॥ गच्छ कामं मया पृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥ मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ॥ आत्मन्येवाऽऽत्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥ ३९ ॥

मेरा कहना सबको प्रमाण है, इसलिये मैंने जो आपको वचन दिया, उसे सत्य करनेको मैंने यह अवतार धारण किया है ॥३५॥ संसारकी दुष्ट वासनाओंसे मुक्त होनेकी इच्छावाले मुनिलोगोंके, आत्मविचारमें जिसका अवश्य उपयोग है ऐसे तत्त्वोंकी संख्या करनेके वास्ते इस लोकमें मैंने यह अवतार लिया है ॥ ३६ ॥ यह आत्मज्ञानका सूक्ष्म अनादि मार्ग बहुत कालसे नाश हो गया था, उसे पीछा प्रवृत्त करनेके लिये मैंने यह देह धारण किया है, यह तुम जानो ॥ ३७ ॥ मैं आपको आज्ञा देता हूं, सो आप भले चले जाओ और मैं आपसे यहां रहनेके वास्ते आज्ञा मांगता हूं; सो मुझे देओ और जो कुछ कर्म करो, वह मेरे अर्पण कर, सुदुर्जय मृत्युको जीतकर, मोक्षके वास्ते मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ जो मैं सर्व प्राणीमात्रका अंतर्यामी स्वयंप्रकाश प-

है. इसतरह उन उत्तम ब्राह्मणोंका विवाह करके, स्त्रियोंसहित उनको प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ हे विदुर ! फिर वे ब्राह्मण विवाह होनेपर कर्दमजीसे आज्ञा ले, प्रसन्न होकर, अपने अपने आश्रममंडलको चले ॥ २५ ॥ तीन युगमें अवतार लेनेवाले देवोत्तम हरिने अवतार लिया है, यह बात जानकर, एकांतमें आ, नमस्कार करके, कर्दमजीने भगवान्‌से कहा कि-- ॥ २६ ॥ अहो ! ये जीव संसारके भीतर अपने अमंगलिक कर्मोंसे अतिशय जल रहे हैं, तिनपर देवतालोग बहुत समय बीत जानेपर बेशक प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ संन्यासी लोग एकांत स्थानोंमें बैठकर, अनेक जन्मोंसे सिद्ध भयी हुई समीचीन भक्तियोगसंबंधी चित्तकी

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमंत्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन्नंदिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममंडलम् ॥ २५ ॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥ २६ ॥ अहो पाच्यमानानां निरये स्वैरमंगलैः ॥ कालेन भूयसा नूनं प्रसीदंतीह देवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतंते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥ स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः ॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्त्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्द्धनः ॥ ३० ॥ तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानि यानि च रोचंते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्त्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥

एकाग्रतासे जिनके चरणारविंदके दर्शनके लिये यत्न करते हैं ॥ २८ ॥ वेही भक्तोंके पक्षको पुष्ट करनेवाले प्रभु हमारे अपराधोंकी ओर न देखकर, हम पामर जीवोंके घरोंमें प्रगट हुए हो ॥ २९ ॥ भक्तोंका मान बढ़ानेवाले आप अपना वचन सत्य करने और ज्ञानका उपदेश करनेके लिये मेरे घरमें अवतरे हो ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आप प्राकृत रूपरहित हो, तासों चतुर्भुज आदि जो अलौकिक स्वरुप हैं, वेही आपके योग्य हैं; तथापि भक्त लोग जिनस्वरूपोंको पसंद करते हैं; वे आपको पसंद होते हैं ॥ ३१ ॥ साक्षात् तत्वज्ञानकी इच्छासे विद्वान् लोग जिन आपके चरणपीठको सदा प्रणाम करते हैं, उन ऐश्वर्य, वैराग्य, यश,

इन्हें दो और पृथ्वीपर अपने यशका विस्तार करो ॥ १५ ॥ हे मुनि ! मैं इस बातको जानता हूं, कि-जीवोंकी सर्व मनोकामना पूर्ण करनहारे आदिपुरुष अपनी मायासे कपिलरूप धारण करके अवतरे हैं ॥ १६ ॥ हे देवहूती ! ये हिरण्यकेश और कमलनयन तथा जिनके चरणारविंदमें कमलका चिन्ह है ऐसे, कैटभ दैत्यके मारनेवाले हरि शास्त्रजन्य ज्ञान और अपरोक्ष विज्ञानके उपायसे कर्मोंकी वासना काटनेके लिये तेरे गर्भमें आये हैं, सो स्वरूपाज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप तेरी हृदयग्रंथिको छेदन करके पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ सांख्यशास्त्रके आचार्योंके परममान्य ऐसे ये सिद्धगणके अधीश हरि तेरी कीर्तिको बढ़ाते जगत्में

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदांबुजः ॥ १७ ॥ एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ॥ अविद्यासंशयग्रंथिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८ ॥ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गंता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥ २० ॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ॥ यथोदितं स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामंगिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुंधतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छातिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥

कपिलदेव इस नामसे प्रसिद्ध होवेंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- जगत्के रचनेवाले भगवान् ब्रह्माजी उन दोनों स्त्रीभर्तारको सांत्वना देकर, सनत्कुमार और नारदजीके साथ हंसपर विराजकर, सत्यलोकको सिधारे ॥ २० ॥ हे विदुर ! ब्रह्माजीके जानेके अनंतर उनके कहनेसे कर्दमजीने ब्रह्माजीके कहनेके मुताबिक अपनी कन्या मरीचि आदि ऋषियोंको दीं ॥ २१ ॥ मरीचिको कलानाम कन्या दी, अत्रिको अनसूया, अंगिराको श्रद्धा, पुलस्त्यको हविर्भू ॥ २२ ॥ पुलहको गति और क्रतुको सती क्रियानाम कन्या दी, भृगुको ख्याति, वसिष्ठजीको अरुंधती ॥ २३ ॥ अथर्वाको शांति नाम कन्या दी कि-जिस शांतिसे यज्ञ समृद्ध होता

प्रगट होता है वैसे, प्रगट हुए ॥ ६ ॥ तब आकाशमें सघनघन बाजे बाजने लगे, गंधर्व गाने लगे और अप्सरा आनंदसे नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ देवतानके बरसाये हुए दिव्य फूल बरसने लगे और दशों दिशा, जल व मन प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ कर्दमजीके सरस्वतीसे घिरेहुए उस आश्रममें मरीचि आदि ऋषियोंको साथ लेकर, ब्रह्माजी पधारे ॥ ९ ॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले विदुरजी ! सांख्यशास्त्रको प्रगट करनेके लिये सत्वगुणसे भगवान् परब्रह्म प्रगट हुए हैं, यह बात जानकर, स्वतःसिद्ध ज्ञान-

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ॥ गायंति तं स्म गंधर्वा नृत्यंत्यप्सरसो मुदा ॥ ७ ॥ पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ॥ प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अंभांसि च मनांसि च ॥ ८ ॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ॥ स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९ ॥ भगवंतं परंब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ॥ तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥ १० ॥ सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ॥ यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥ १२ ॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ॥ बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३ ॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यंत्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ॥ आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥

वाले ब्रह्माजीने ॥ १० ॥ शुद्ध मनसे भगवान्के कर्तव्य कर्मका आदर करके, अतिप्रसन्न चित्तसे कर्दमजीको ये वक्ष्यमाण वचन कहे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि-हे मान देनेवाले प्यारे ! तुमने मेरी निष्कपटभावसे सेवा की, कि-जो मान रखनेको मेरा कहना तुमने स्वीकार किया ॥ १२ ॥ पुत्रोंकी यही मुख्य गुरुसेवा है, कि-जो गौरवताके साथ पिताके वचनको ' जो आज्ञा ' ऐसा कहकर, स्वीकार करना ॥ १३ ॥ हे सभ्य ! ये सुंदर मध्यभागवाली तुम्हारी कन्यायें अपनी वंशपरंपरासे इस सृष्टिको अनेक प्रकारसे बढ़ावेंगी ॥ १४ ॥ इसलिये इन कन्याओंकी रुचि और शीलके अनुसार मरीचि आदि ऋषियोंको आज

परभी मुर्दाही है॥५६॥ वह मैं आपकी मायासे बेशक ठगाय गयी, जो मुक्तिके दाता आपको प्राप्त होकर, मैंने बंधनसे छूटनेकी इच्छा न की॥५७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥॥ चौबीसवें अध्यायमें, कपिलदेवजीका जन्म और तीनों ऋण मुक्त होनेसे भगवान्‌की आज्ञासे कर्दमजीका संन्यास, यह कथा होगी॥१॥ मैत्रेयजीने कहा कि-मनुकी कन्या देवहूती इस प्रकार वैराग्यके वचन कहनेलगी, तब शुक्ल भगवान्‌का वचन याद करके, दयालु कर्दमजीने सराहने योग्य देवहूतीसे कहा॥१॥ कर्दमजी बाले कि-हे अनिंदित राजपुत्रि! तू अपने आत्माको इस प्रकारसे

साऽहं भगवतो नूनं वंचिता मायया दृढम्॥ यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बंधनात्॥५७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥॥ मैत्रेय उवाच॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन्॥१॥ ऋषिरुवाच॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिंदिते॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते॥२॥ धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च॥ तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज॥३॥ स त्वयाऽऽराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः॥ छेत्ता ते हृदयग्रंथिमौदर्यो ब्रह्मभावनः॥४॥ मैत्रेय उवाच॥ देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः॥ सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम्॥५॥ तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि॥६॥

खिन्न मत करे; क्योंकि- अक्षर भगवान् तुर्त तेरे गर्भमें आवेंगे॥२॥ तूने व्रत धारण किया है; सो यम, नियम, तप, द्रव्य, दान और श्रद्धासे परमेश्वरकी सेवा कर, तेरा कल्याण होगा॥३॥ तू शुक्ल भगवान्‌का आराधन करेगी, तो परब्रह्मके उपदेश करनेवाले हरि तेरे उदरसे प्रगट होकर, मेरी कीर्तिको विस्तारते तेरे हृदयके अहंता ममतारूप बंधनको काट देंगे॥४॥ मैत्रेयजीने कहा कि-देवहूतीभी कर्दमजीके गौरवसे उनके कहनेपर पूर्ण विश्वास रखकर, निर्विकार और गुरुरूप भगवान्‌का आराधन करने लगी॥५॥ बहुत समय व्यतीत होनेपर मधुदैत्यके मारनेवाले हरि भगवान् कर्दमजीके वीर्यद्वारा देवहूतिमें, जैसे काठमें अग्नि

जो आपने प्रतिज्ञा की, वह सब आपने मेरे वास्ते संपादन किया. तथापि मैं आपके शरण आयी हूं, सो मुझे अभय देना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपको उचित है, कि-एक तो कन्याओंके समान पतिनको आप तलाश करैं दूसरा आप वनमें पधारैं, तब मुझको ज्ञानका उपदेश करनेवाला कोईएक ब्रह्मज्ञानी पुत्र होना चाहिये ॥ ५२ ॥ हे प्रभु ! परमात्माको तजकर, इंद्रियसंबंधी विषयोंके प्रसंगसे जो मैंने इतना काल व्यतीत किया, वही बहुत है ॥ ५३ ॥ यद्यपि मैंने आपके उत्कृष्ट प्रभावको न जानकर, इंद्रियसंबंधो

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयिं प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रांतेन मे प्रभो ॥ इंद्रियार्थप्रसंगेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इंद्रियार्थेषु सज्जंत्या प्रसंगस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानंत्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे॥५४॥ संगो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ॥ स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते ॥ ५५ ॥ नेह यत्कर्मधर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥

विषयोंमें आसक्त रहकर, आपका प्रसंग किया; तथापि मुझे अभय मिलना चाहिये ॥ ५४ ॥ अज्ञानमें फँसकर, जो असाधुपुरुषोंका प्रसंग किया जाय तो वह संसारमें बंधनका हेतु होता है; परंतु जो वही सत्पुरुषोंका किया जाय, तो वैराग्यका कारण होता है ॥ ५५ ॥ इस संसारमें जिसने न तो धर्मके वास्ते कुछ काम किया है, न वैराग्यके वास्ते और न भगवान्के चरणोंकी सेवाके वास्ते, तो वह प्राण धारण करने

१ सो इस पदमें कहा है- राग सारंग-तजहु मन हरिविमुखनको संग ॥ जिनके संग कुबुद्धी उपजै परत भजनमें भंग ॥ काम क्रोध मद लोभ मोहमें निशिदिन रहत उमंग ॥ कहा भयो पयपान कराये विष नहिं तजत भुजंग ॥ कागहि कहा कपूर खवाये श्वान न्हवाये गंग ॥ खरको कहा अरगजालेपन मर्कट भूषण अंग ॥ पाहन-पतित बाण नहिं भेदत रीतो करत निषंग ॥ सूरदास खलकारी कामर चढ़त न दूजो रंग ॥ १ ॥

२ कवित्त- गायो न गोपाल मन लायके निवारलाज पायो न प्रसाद साधुमंडलीमें जायके ॥ धायो ना सुधामको औ वृंदावन कुजनमें रह्यो ना शरण जाय विठ्ठलेश रायके ॥ नाथजू न देख छक्यो छिहूनछबीली छवि सिंहपौर पर्‍यो नाहिं शीसहू नवायके ॥ कहैं हरिदास तोहिं लाजहू न आवे नेक जनम गमायो न कमायो कछु आयके ॥ २ ॥

अपने आश्रमको लौट आये ॥ ४३ ॥ सुरत ( मैथुन ) में उत्सुक ऐसी अपनी स्त्री देवहूतीको रमण कराते भगवान् कर्दमजी नव ९ कन्या उत्पन्न करके अनेक वर्षोंतक मुहूर्त व्यतीत हो वैसे रमण करते रहे ॥ ४४ ॥ अपने सुंदर पतिके साथ उस विमानमें रतिकारी उत्तमोत्तम शय्यामें विराजीहुई देवहूतीको उस कालकी बिलकुल खबर न रही ॥ ४५ ॥ इस प्रकार योगके प्रभावसे रमण करतेहुए भोगविलासकी लालसावाले स्त्री भर्त्तार कर्दमजी और देवहूतीके सौ १०० वर्ष मानों थोड़ासा समय व्यतीत हुआ हो, वैसे व्यतीत हो गये ॥ ४६ ॥ देवहूतिको अतिप्रीतिके कारण अपने अर्द्धांगरूपसे भावना करतेहुए विभु व आत्मज्ञानी

विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ॥ रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्त्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ॥ न चाबुद्धयत तं कालं पत्याऽपीच्येन संगता ॥ ४५ ॥ एवं योगानुभावेन दंपत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥ ४६ ॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसंकल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥ अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वांग्यो लोहितोत्पलगंधयः ॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजिष्यंतं तदालक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥ लिखंत्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ॥ उवाच ललितां वाचं निरुद्धयाश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ देवहूतिरुवाच ॥ सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥

कर्दमजीने उसके बहुत संतान होनेके संकल्पको जानकर, अपने स्वरूपके नव विभाग करके उसमें वीर्य स्थापन किया ॥ ४७ ॥ अतएव एकही साथ उस देवहूतीके सब कन्या प्रजा हुई, जिन सबके सर्वअंग परमसुंदर थे और रक्त कमलसी सुगंधि आती थी ॥ ४८ ॥ फिर कर्दमजी संन्यास लेकर, जानेकी तयारी करने लगे, उन्हें देखकर, ऊपरसे हँसती और व्याकुल हृदयसे भीतर संताप करती, मणिके समान शोभायमान चरण संबंधी नखसे नीचा मुख किये जमीनको खोदती परमरम्य सती ( पतिव्रता ) देवहूतीने अपनी आंसुओंकी धाराको शनैः शनैः ( धीरे २ ) रोंककर, मधुर वाणीसे कहा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देवहूती बोली कि-

स्तनोंको आच्छादित किये, ॥ ३६ ॥ हजार विद्याधरियोंसे सेव्यमान, सुथरे वस्त्र पहने, उस देवहूतीको देखकर, हे विदुर ! कर्दमजीने उस विमानपर प्रीतिपूर्वक देवहूतीको चढ़ाया ॥ ३७ ॥ जिनकी स्वतंत्रताका नाश नहीं हुआ है ऐसे और स्नेहसे परिपूर्ण हो प्रियाके साथ विमानमें विराजमान तथा विद्याधरियोंसे सेव्यमान, अतिसुंदर कर्दममुनि, तारोंसे घिरे हुवे और विकसित कुमुदगणवाले आकाशगत चंद्रमाके समान प्रकाशने लगे ॥ ३८ ॥ उस विमानमें बैठकर, गंगा पड़नेकी मंगलीक शब्दवाली और कामदेवके मित्र शीतल सुगंध, मंद पवनकी शोभावाली और आठों लोकपालोंकी विहारभूमि ऐसी कुलाचलेंद्र ( सुमेरु ) की

विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृतइवोडुपतिर्नभःस्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेंद्रद्रोणीष्वनंगसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपाताशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥ ३९ ॥ वैश्रंभके सुरसने नंदने पुष्पभद्रके ॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥ ४० ॥ भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरन् लोकान्यथाऽनिलः ॥ ४१ ॥ किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्त्ययः ॥ ४२ ॥ प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया ॥ बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ ४३ ॥

दरियों ( कंदरावों ) में सिद्ध लोगोंके स्तुति करते स्त्रीसमूहको संग लिये कुबेरके समान क्रीड़ा करने लगे ॥ ३९ ॥ वे मुनि प्रसन्न होकर, वैश्रंभक, सुरसन, नंदन, पुष्पभद्रक, मानस और चैत्ररथ आदि देवताओंके उद्यानोंमें अपनी स्त्रीके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥ ४० ॥ देदीप्यमान और बहुत बड़े कामग विमानमें बैठकर, पवनकी भांति विचरते हुए कर्दमजी विमानमें बैठनेवालोंके सर्वोपरि हुए ॥ ४१ ॥ जिन्होंने भगवान्‌के दुःखहर चरणके शरण लिये हैं उन धीरपुरुषोंके लिये कुछभी असाध्य नहीं है ॥ ४२ ॥ अनेक आश्चर्य जिसमें भरे पड़े हैं ऐसा द्वीप वर्ष आदि रचनावाला भूगोल अपनी स्त्रीको दिखाकर, महायोगी कर्दमजी पीछे

१ इसका भाव यह है कि-चन्द्रतुल्य कर्दमजी, आकाशतुल्य विमान, तारावोंकी तुल्य स्त्रियां और उन स्त्रियोंके नेत्र कुमुदगण, इसतरह ये उपमा इधर घटाना.

नवीन वस्त्र ॥ २८ ॥ तथा अमूल्य और देदीप्यमान उसके मनभावते गहने देकर, सर्वगुणसंपन्न अन्नसे भोजन कराय अमृतके समान मधुर और मादक पीनेका पदार्थ दिया ॥ २९ ॥ देवहूतीने अपना शरीर आदर्श ( काच ) के अंदर देखा, तो वहां उबटन लगाकर, स्नान करनेसे स्वच्छ, शिरःस्नान यानी अभ्यंग किये, पुष्पोंकी माला पहिरे, विरजवस्त्र धारण किये, सौभाग्यके मांगलिक पदार्थ धारण किये, कन्याओंसे बहुत मान पायाहुआ, सब आभूषणोंसे अलंकृत, गलेमें पदक और हाथमें कंकण धारण किये, चरणोंमें कंचनके नूपुर झमकाये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कटिपश्चात्भागके तलभागमें विद्यमान अनेक रत्नोंवाली सुवर्णमय कटिमेखला और अमूल्य हार व रुचक ( ग्रीवाभूषण ) से शोभायमान ॥ ३२ ॥ सुंदर दांत, सुंदर भौंह, मनोहर

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमंति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चेवामृतासवम् ॥ २९ ॥ अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजांबरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ ३० ॥ स्नातं कृतशिरःस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्कांचननूपुरम् ॥ ३१ ॥ श्रोण्योरध्यस्तया कांच्याकांचन्या बहुरत्नया ॥ हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥ ३२ ॥ सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णास्निग्धापांगेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधानीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३ ॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ॥ तत्र चास्ते सहस्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ स तां कृतमलस्नानां विभ्राजंतीमपूर्ववत् ॥ आत्मनो बिभ्रती रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥

व स्नेहभरे कटाक्षवाला, नेत्र और कमलकोशकी बराबरी करनेवाली श्याम अलकावलीसे शोभायमान मुख देखनेमें आया ॥ ३३ ॥ उसे देखकर, जब ऋषियोंमें श्रेष्ठ अपने प्यारे पति कर्दमजीका स्मरण किया, तब जहां वे कर्दममुनि विराजे थे, वहीं वह आपभी उन कन्याओंके साथ विराजमान जाननेमें आयी ॥ ३४ ॥ एक हजार स्त्रियां जिसे घेर रहीं हैं ऐसे, अपने आत्माको पतिके आगे प्राप्त देख, अपने स्वामीके योगके प्रभावको जानकर, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि–यह क्या ? ॥ ३५ ॥ मलस्नान करनेसे पहलेकी अपेक्षा अद्भुत रीतिसे देदीप्यमान और विवाहसे प्रथम जो रूप था उसी रूपको फिर पीछा धारण किये, अंचलसे सुंदर

मान ॥ २० ॥ क्रीड़ास्थान, शयनगृह, उपभोगस्थान, अंगण प्राकारका बाहरका भाग ये सब उसमें ऐसे सुखदायी बनाये गये, कि-खुद मायावी कर्दमजीभी उसे देखकर, चकित होगये ॥ २१ ॥ ऐसे उस घरको देखकर, देह मलिन होनेसे और परिचारिका (दासियों) के अभावसे देवहूती अत्यंत प्रसन्न नहीं हुई, तब सब प्राणिमात्रके अभिप्रायको जाननेवाले कर्दमजीने अपनी स्त्रीसे स्वयं कहा कि- ॥ २२ ॥ हे भीरु! इस ह्रद (तालाव) में स्नान करके, इस विमानमें बैठ, क्योंकि- शुक भगवान्का किया हुआ यह तीर्थ मनुष्योंकी आशिषका पूर्ण करनेवाला है ॥ २३ ॥ कुवलय (कमल) से नेत्रवाली वह देवहूती रजस-

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्रांगणाजिरैः ॥ यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवाऽऽत्मनः ॥ २१ ॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यंतीं नातिप्रीतेन चेतसा ॥ सर्वभूताशयाऽभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥ २२ ॥ निमज्ज्या-स्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥ २३ ॥ सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥ २४ ॥ अंगं च मलपं-केन संछन्नं शबलस्तनम् ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥ २५ ॥ सांऽतःसरसि वेश्म-स्थाः शतानि दश कन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगंधयः ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्रांजलयः स्त्रियः ॥ वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥ २७ ॥ स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥ दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥ २८ ॥

हित वस्त्र और जटिल केशोंको धारण किये मैल और पंक (कीचड़) से ढकेहुए और विवर्ण स्तनवाले शरीरसे पतिकी आज्ञा पाकर, पवित्र जलवाले सरस्वतीके सरोवरमें प्रवेश हुई ॥ २४ ॥ २५ ॥ वहां सरोवरके अंदर एक सहस्र कन्या एक घरमें बैठीं उसके देखनेमें आयीं, ये समस्त कन्या किशोर अवस्थावाली और कमलसी सुगंधिवाली थीं ॥ २६ ॥ देवहूतीको देखकर, वे सब स्त्रियां तुर्त उठ खड़ीं हुईं और हाथ जोड़कर, बोलीं कि-हम आपकी दासियां हैं हमें आज्ञा फरमावें; हम क्या काम करें ? ॥ २७ ॥ हे विदुर ! फिर उन कन्याओंने स्नान करनेके अमूल्य पदार्थोंसे देवहूतीको न्हिलाकर, उसे निर्मल और

हिये, वैसा भवन तैयार करिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे विदुरजी ! प्रियाका प्रिय करना चाहतेहुए कर्दमजीने योग धारण करके, उसीक्षण इच्छानुसार चलनेवाला विमान प्रगट किया ॥ १२ ॥ जो विमान सर्वकामनापरिपूर्ण करनेवाला, अलौकिक, सकलरत्नसंपन्न, सर्वसंपदाओंकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे उपचित, मणियोंके खंभोंसे शोभायमान, ॥ १३ ॥ दिव्य परिकरवाला, सर्व-कालमें सुख देनेवाला, अनेक प्रकारकी अद्भुत झंडियां और पताकाओंसे अलंकृत ॥ १४ ॥ सुंदर भौंरे जिनपर गुंज रहे हैं ऐसी, विचित्र पुष्पोंवाली माला, दुकूल, क्षौम और कौशेय आदि अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे विराजमान ॥ १५ ॥ उपरोपरि बनायेहुए मह-

मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाऽऽविरचीकरत् ॥ १२ ॥ सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तंभैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥ दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥ स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिंजत्षडंघ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ १५ ॥ उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ॥ क्षिप्तैः कशिपुभिः कांतं पर्यंकव्यजनासनैः ॥ १६ ॥ तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ १७ ॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटमत् ॥ शिखरेष्विंद्रनीलेषु हेमकुंभैरधिश्रितम् ॥ १८ ॥ चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥ १९ ॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥

लोंमें जुदी जुदी शय्या, पलंग, पंखे और आसनोंसे मनोहर ॥ १६ ॥ उन उन स्थलोंमें अनेक प्रकारकी कारीगरी होनेसे शोभायमान, अमूल्य मरकत मणिकी भूमिसे और मूंगाकी वेदियोंसे देदीप्यमान ॥ १७ ॥ द्वारपर मूंगोकी देहलियोंसे प्रकाशमान, हीरोंसे खचित फाटकवाला, इंद्रनील मणियोंके शिखरोंपर सुवर्णके कलशोंसे विराजमान ॥ १८ ॥ हीरोंकी भीतोंके अंदर जड़ेहुए जो उत्तम माणिक उनसे चक्षुवालेके समान प्रकाशमान चित्र विचित्र चंदवे और अमूल्य सुवर्णके तोरणोंसे देदीप्यमान ॥ १९ ॥ जहां तहां बनावटी पक्षियोंको अपनी जातिके मान, उनपर चढ़ चढ़ कर हंस और पारावतोंके झुंडोंसे कूजाय-

कर न देखा ॥ ६ ॥ मैं तुझे दिव्य दृष्टि देता हूं. उससे तू मेरे वैभवोंको देख, जो निर्भय और शोकरहित दिव्य वैभव स्वधर्म, तप, समाधी, उपासना और चित्तकी एकाग्रतासे मेरे वश हुए हैं. और मेरी सेवा करनेसे तेरेभी हुए हैं ॥ ७ ॥ भगवान्‌की भ्रुकुटि बढ़ानेसे जिनकी रचनाका नाश हो जाता है ऐसे दूसरे वैभव तो कौन वस्तु हैं ? तू सिद्ध हो गयी है तासों अपने धर्मसे प्राप्त भयेहुए उन वैभवोंका अनुभव कर, जिनका मनुष्योंको राजापनका अभिमान रखनेपरभी मिलना कठिन है ॥ ८ ॥ इस प्रकार सकल सिद्धियां और उनके संबंधी उपासनाओंमें विचक्षण पतिको बोलते देखकर, देवहूतीकी सब चिंता मिट गयी.

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥ अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृंभविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धाऽसि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ ८ ॥ एवं ब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडाऽवलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ॥ ९ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्त्तः ॥ यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदंगसंगो भूयाद्गरीयसि गुणप्रसवः सतीनाम् ॥ १० ॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयाऽऽत्मा ॥ सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥ ११ ॥

फिर कुछ लज्जासहित देखती और हँसतीहुई देवहूतीने विनय और प्रेमके कारण गद्गद वचनसे कहा ॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि-हे द्विजवर! हे प्रभु! हे स्वामी! आप अमोघ सिद्धियोंके अधिपति हो; तासों आपके पास यह सब तैयारही है, वह मैं जानती हूं. परंतु आपने जो कौल किया है, तदनुसार एकबेर अंगसंग होना चाहिये, क्योंकि महात्मा पतिसे सती स्त्रियोंको संतान प्राप्त होना, यह बड़ा लाभ है ॥ १० ॥ पर उस अंगसंगके वास्ते कामशास्त्रमें जैसा कहा है, वैसे साधन प्रथम तैयार करो, जिन साधनोंके मिलनेसे यह मेरा शरीर कि-जो अत्यंत रमन करनेकी इच्छासे दुर्बल और दीन हो रहा है, वह रति करनेको समर्थ हो जावे, आपके उद्दीप्त कियेहुए कामदेवसे मैं पराभव पा रही हूं; तासों उसे शांत करनेके वास्ते जैसा चा-

तेईसवें अध्यायमें, तपके प्रभावसे रचेहुए व सर्व संपत्तिवाले और इच्छाके अनुकूल चलनेवाले विमानमें बैठकर कर्दमजी और देवहूतीने भोग भोगे, यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–माता, पिता, रवाना होनेपर, अपने स्वामीके हृदयगत अभिप्रायकी जाननेवाली पतिव्रता देवहूती, जैसे पार्वती प्रभु महादेवजीकी सेवा करती हैं ऐसे, नित्य अपने पतिकी प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी ॥ १ ॥ हे विदुर! देवहूतीने काम, कपट, लोभ, मद, द्वेष और निषिद्धाचरणका त्याग कर, सावधान हो, बड़े उद्योगके साथ, विश्वास, आत्मशौच, गौरव, दम, सेवा, सुहृद्भाव और मधुरवाणीसे उन महातेजस्वी कर्दमजीको प्रसन्न किया

मैत्रेय उवाच ॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिंगितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्रंभेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ॥ शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ॥ २ ॥ विसृज्य कामं दंभं च द्वेषं लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥३॥ स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥ ४ ॥ कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ ३ ॥ उन देवर्षिवर कर्दमजीनेभी उस मनुकी कन्या देवहूतीको, दैवकोभी अन्यथाकर्तुं समर्थ ऐसे अपने कांतसे बड़ी बड़ी, आशिष चाहती हुई और व्रताचरण करनेसे कृश तथापि अति ( बहुत ) समय हो जानेसे दुर्बल तथा अपनी सेवामें तत्पर देखकर, कृपाके कारण परवश हो, प्रेमसे गद्गदकंठ होकर, मधुर वाणीसे कहा ॥ ४ ॥ ५ ॥ कर्दमजी बोले कि–हे मनुकन्ये! आज मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं. क्योंकि–तूने मेरा बहुत सत्कार किया और अतिउत्तम रीतिसे सेवा की तथा परमभक्ति की. और देहधारियोंके अतिप्रिय और सुख भोगने योग्य इस श्लाघ्य ( प्रशंसनीय ) शरीरकोभी मेरी सेवा करनेके वास्ते दुबला करनेमें पीछा फिर-

१ छंद ॥ पतिहीसों प्रेम होइ पतिहीसों नेम होइ पतिहीसों क्षेम होइ पतिहीसों रत है ॥ पतिही है यज्ञ योग पतिही है रसभोग, पतिहीसों मिटे सोग, पतिहीको जत है ॥ पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुण्यदान, पतिही है तीर्थस्नान पतिहीको मत है ॥ पतिबिनु पति नाहिं पतिबिनु गति नाहिं सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ १ ॥

नोंके साथ धर्म, अर्थ और मोक्षमें विरोध न आवे ऐसी रीतिसे संसारसुखका भोग करने लगा ॥ ३२ ॥ प्रभातसमयमें देवलोकके गानेवाले अपनी स्त्रियोंके साथ उसकी सुंदर कीर्तिका गान करते थे, तथापि वह मनु एकाग्रचित्त होकर, भगवान्‌की कथाही श्रवण करता था ॥ ३३ ॥ समग्र सिद्धियां उस मुनि स्वायंभुव मनुके आधीन थीं, तथापि भगवान्‌की कथाके प्रभावसे कोईभी विषय सुख उस भगवत्परायण मनुको पराधीन नहीं करसका ॥ ३४ ॥ वह सदा भगवान्‌की कथा सुनता, भगवान्‌का ध्यान करता और भगवान्‌की कथा कहता, उससे उसके अपने मन्वंतरको बितानेवाले प्रहर निःसार नहीं थे ॥ ३५ ॥ इस तरह भ-

सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥ ३३ ॥ निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगानशेकुर्भगवत्परम् ॥ ३४ ॥ अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वांतरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥ ३५ ॥ स एवं स्वांतरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसंगेन परिभूतगतित्रयः ॥ ३६ ॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥ भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधंते हरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥ यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३८ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते म० तृ० द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥

गवानके प्रसंगसे, जाग्रत आदि तीनों अवस्था और तीनों गुणोंका जिसने पराभव किया है ऐसे, स्वायंभुव मनुने अपने समयके इकहत्तर युगोंका व्यतीत किया ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! जो भगवद्भक्त हैं उनसे शरीरसंबंधी, मनसंबंधी, अंतरिक्षसंबंधी मनुष्यसंबंधी, सर्दी और गर्मी आदि भूत संबंधीक्लेश कभी बाधा नहीं करते ॥ ३७ ॥ इस सर्व जीवोंके सदा हित करनेवाले स्वायंभुव मनुने मुनिजनोंके प्रश्न करनेसे मनुष्योंके साधारण और वर्णाश्रमसंबंधी अनेक प्रकारके विशेष पवित्र धर्म कहे ॥ ३८ ॥ वर्णन करनेके योग्य ऐसे आदिराज मनुका तो यह आश्चर्यकारी चरित मैंने तुमसे कहा, अब इसके संतानका प्रभाव कहता हूं सो सुनिये ॥ ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृ० रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥

कन्याके साथ मिले, जिससे उत्कंठाके मारे अंतःकरण क्षोभयुक्त हो गया ॥२४॥ और उसका विरह सहा न गया, जिससे हेमाता ! हे वत्स ! ऐसे कहते नेत्रोंमेंसे वारंवार आंसू बहाते मनुने अपने नेत्रके जलसे देवहूतीके केशपाशको तर कर दिया ॥ २५ ॥ फिर उन मुनिवर कर्दमजीसे आज्ञा ले, सीख मांग, रथपर विराज, अपने नौकरोंको साथ लेकर, अपनी रानीके साथ अपने पुरको रवाना हुये ॥ २६ ॥ ऋषिकुलको आनंद देनेवाली सरस्वतीके दोनों सुंदर तटोंपर उपशांत मुनिलोगोंके आश्रमोंकी संपदा देखते ॥ २७ ॥ आतेहुए प्रजापति मनुकी जब उनकी प्रजाको खबर मिली, तो वह बहुत आनंदयुक्त होकर गीत, स्तुति और बाजोंके

अशक्नुवंस्तद्विरहं मुंचन्बाष्पकलां मुहुः ॥ आसिंचदंब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥ २५ ॥ आमंत्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ॥ ऋषीणामुपशांतानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायांतमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्त्तात्प्रजापतिम् ॥ गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता ॥ न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्यांगं विधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ॥ ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥ कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः॥ अयजद्यज्ञपुरुषं लब्ध्वा स्थानं यतो भुवम्॥३१॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ ३२ ॥

साथ ब्रह्मावर्तसे अगोनी करने चले ॥ २८ ॥ जिस ब्रह्मावर्त देशमें बर्हिष्मतीनाम पुरी कि- जिसमें सब प्रकारकी संपदा छा रही हैं. और जहां वराह भगवान्के अंग कँपाते शरीरके रोम पड़े हैं ॥ २९ ॥ कि-जो वे रोमही सदा हरित कांतिवाले कुश और कासरूपसे प्रगट हुए कि-जिन दाभ और कुशोंसे ऋषि लोग यज्ञमें विघ्न करनेवालोंका तिरस्कार करके यज्ञ किया करते हैं ॥ ३० ॥ पृथ्वीरूप स्थान पाकर, जहां भगवान् मनुने कुश और कासमय दर्भ बिछाकर. यज्ञ पुरुष भगवान्का यजन किया ॥ ३१ ॥ फिर बर्हिष्मती नाम अपनी राजधानीमें प्रवेश करके तीनों पापोंके नाश करनेवाले अपने घरमें रहकर, रानी और अपने संता-

जिन्होंने लक्ष्मीजीके चरणोंकी सेवा नहीं की है; ऐसे पुरुषोंको जिसका दर्शन अतिदुर्लभ है, ऐसी स्त्रियोंमें शिरोमणि मनुकी कन्या और उत्तानपादकी बहन कि–जो खुद प्रार्थना करती है, उसको कौन समझदार आदमी स्वीकार न करै ? ॥ १८ ॥ इस लिये संतान उत्पन्न होवे वहांतकके कौलसे इस साध्वीके साथ मैं गृहस्थाश्रम करूंगा. और फिर पीछे साक्षात् भगवान्‌के कहेहुए ज्ञानयोगमें प्रधान ऐसे हिंसारहित शम आदि भगवद्धर्मोंका मैं अनुष्ठान करना चाहता हूं सो करूंगा ॥ १९ ॥ यह विचित्र जगत् जिससे पैदा हुआ है. और जिसमें यह लीन होगा तथा जिसमें यह जगत् रहता है, वे प्रजापतियोंके पति अनंत भगवान् मेरे

तां प्रार्थयंतीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥ १८ ॥ अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ॥ अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहुमन्येऽविहिंस्रान् ॥ १९ ॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाऽवतिष्ठते ॥ प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननंतः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविंदनाभम् ॥ धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥ सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दंपत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥ २३ ॥ प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कंठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥

मुख्य प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे विदुर ! वे कर्दमजी इतना कहकर, कमलनाभ भगवान्‌का मनसे ध्यान करते चुप होकर, बैठ गये; तब उनके मंदहास्यसे शोभायमान मुखसे देवहूतीका चित्त लालचमें आगया ॥ २१ ॥ फिर प्रसन्न होकर, मनुने अपनी रानीका और कन्याका स्पष्ट अभिप्राय जानकर उन गुणगणसंपन्न कर्दमजीको समानगुणवाली अपनी कन्या दी ॥ ॥ २२ ॥ महारानी शतरूपानें इन स्त्रीभर्तारको प्रीतिपूर्वक आभूषण, वस्त्र और सामग्रीरूप अमूल्य दहेज दिया ॥ २३ ॥ अपनी कन्याके समानशील कर्दमजीको अपनी कन्या देकर, राजा निश्चिंत हुआ और रवाना होते समय दोनों भुजावोंसे अपनी

हे द्विजवर ! इस लिये मैं आपको श्रद्धापूर्वक इस कन्याको देता हूं, सो आप इसे ग्रहण करो; क्योंकि-यह गृहस्थके सब कामोंमें सब प्रकारसे आपके सदृश होवेगी ॥११॥ जो मुक्तसंग होवे उसेभी चाहिये कि-स्वयं प्राप्त भयेहुए कामके लिये इन्कार न करे, तौ फिर जो कामासक्त हो, उसकी तौ बात ही कौन ? ॥ १२ ॥ जो घर बैठे आयेहुए कामके लिये तो नाहीं करे और फिर कृपणके पास जाकर, याचना करे; तो उस पुरुषका बढ़ाहुआ यश क्षीण हो जाता है और परापमानसे हत होकर, उसका मानभी क्षीण हो जाता है ॥ १३ ॥ हे विद्वान् ! मैंने आपके विषयमें सुना था कि-कर्दमजी विवाहका उद्योग करते हैं, इसलिये मुझपर उपकार

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपाहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥ ११ ॥ उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसंगस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ १२ ॥ य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥ १३ ॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ १५ ॥ कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कांत्या क्षिपतीमिवश्रियम् ॥ १६ ॥ यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदंघ्रिशोभां विक्रीडतीं कंदुकविह्वलाक्षीम् ॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥

करके मैं आपको इसे देता हूं, सो आप मुझसे इसे ग्रहण करो ॥ १४ ॥ कर्दमजीने कहा कि-हां मेरी विवाह करनेकी इच्छा है और आपकी कन्याभी बड़ी सावधान है; इस लिये हमारी जो यह प्रथम विवाहकी रीति है वह सब प्रकारसे योग्य है ॥ १५ ॥ हे राजा ! वेदमें जिस प्रकारसे कहा है उसीके अनुसार आपकी कन्याकी इच्छा परिपूर्ण होगी, आपकी कन्या कि-जो अपने शरीरकी कांतिसेही गहने आदि पदार्थोंकी शोभाको दूर करती है, उसका आदर कौन न करे ? ॥ १६ ॥ जो देवहूती महलकी अटापर चढ़कर, चरणोंमें झांझरकी झन्झनाहटसे शोभाको प्रगट करती कंदुक ( गेंद ) के खेलके सबब विह्वल नेत्र हो रही थी उसे देखतेही सम्मोहसे व्याकुलचित्त होकर, विश्वावसुनाम गंधर्व अपने विमानसे नीचे गिर गया था ॥ १७ ॥

विद्या और योगसंपन्न आपलोगों (ब्राह्मणों) को अपने मुखसे उत्पन्न किया है ॥ २ ॥ और आप लोकोंकी रक्षा करनेके वास्ते हजार चरणवाले ब्रह्माजीने अपने हजारों हाथोंसे हम (क्षत्रियों) को उत्पन्न किया, क्योंकि—ब्राह्मणवर्ण उनका हृदय है और क्षत्रियजाति उनका अंग कहलाता है ॥ ३ ॥ इसीवास्ते ये दोनों ब्राह्मण व क्षत्रिय अपने आत्माकी परस्पर रक्षा करते हैं, वस्तुतस्तु इन दोनों वर्णोंकी अविनाशी और सदसदात्मक हरि रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ आपके दर्शन होतेही मेरे सब संदेह निवृत्त हुए; क्योंकि आप खुदनेही प्रीतिपूर्वक राजधर्मका वर्णन किया ॥ ५ ॥ जिनका दर्शन विषयी पुरुषोंको अति-

तत्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् ॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमंगं प्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतो ह्यन्योऽन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्वयाऽनुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ॥ अपावृतैः कर्णरंध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ ७ ॥ स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ॥ अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥ ९ ॥ यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥

दुर्लभ है उन प्रभुका मुझे दर्शन हुआ, यह बहुत अच्छा हुआ. और यह सबसे ठीक हुआ कि—जो आपके चरणारविंदोंकी पवित्र रजका मेरे शिरमें स्पर्श हुआ ॥ ६ ॥ आपने मुझे शिक्षा दी, यह आपने बहुत बड़ा अनुग्रह किया और खुले हुए कानोंके छेदोंसे आपकी मनोहर वाणी सुननेमें आयी, यह अत्यंतही उत्तम हुआ ॥ ७ ॥ अब हे मुनि! कन्याके स्नेहसे अतिक्लिष्टचित्त और दीन जो मैं हूं, उसकी प्रार्थना आपको कृपा करके सुननी चाहिये ॥ ८ ॥ यह प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहन और मेरी बेटी देवहूती अवस्था, शील और गुण आदिसे अपने योग्य पतिको चाहती है ॥ ९ ॥ सो जबसे इसने नारदजीके मुखसे आपके शील, शास्त्र, रूप, अवस्था और गुणोंको सुन लिया है, तबसे इसने आपका निश्चय कर लिया है ॥ १० ॥

वाले रथपर विराजकर प्रचंड धनुषका टंकार करतेहुए रथसे दुष्टोंको त्रास देते ॥ ५२ ॥ और अपनी सेनाके चरणोंसे क्षुण्ण भयेहुए भूमंडलको कंपायमान करते और बड़ीभारी सेनाको खैंचते सूर्यकी तरह नहीं घूमो तो ॥ ५३ ॥ हे राजन्! भगवान्की बांधीहुई सब वर्ण और आश्रमसंबंधी मर्यादा उसी क्षण दुष्टोंके द्वारा छिन्न भिन्न हो जाय ॥ ५४ ॥ और लालची व निरंकुश मनुष्योंके द्वारा अधर्मकी वृद्धि हो जावे तथा जो आप निश्चिंत हो जाओ, तो लुटेरे और डांकुओंके गिलनेसे इस लोकका नाश हो जावे ॥ ५५ ॥ हे वीर! तथापि हम आपसे पूंछते हैं, कि-आपका पधारना यहां कैसे हुआ ? जिस सबबसे

स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मंडलं भुवः ॥ विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥ ५३ ॥ तदैवसेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबंधनाः ॥ भगवद्रचिता राजन्भिद्येरन्बत दस्युभिः ॥ ५४ ॥ अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यंकुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोयं दस्युग्रस्तो विनंक्ष्यति ॥ ५५ ॥ अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ॥ छंदोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलंपटान् ॥ २ ॥

आपका यहां पधारना हुआ है, उसका हम निष्कपट हृदयसे स्वीकार करेंगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ बाईसवें अध्यायमें, मनुने भगवान्की आज्ञाके अनुसार कर्दमजीको अपनी देवहूतीनाम कन्या दी, यह कथा वर्णन की जायगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-कर्दमजीने इस तरह मनुके समग्र गुण और कर्मोंके उत्कर्षकी, प्रसंसा की तब वह चक्रवर्ती राजा मनु उनके चुप होनेके बाद मानों शर्माते हों वैसे बोले ॥ १ ॥ मनुजीने कहा कि- वेदमूर्ति ब्रह्माजीने अपने आत्मरूप वेदके पालनके अर्थ जितेन्द्रिय व तप,

सूकर, शल्लक (स्याही), गवय (लीलगाह), हाथी, बंदर, लंगूर, सिंह, नकुल (निउरा), और कस्तूरीमृग विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ उस तीर्थोत्तम बिंदुसरोवरमें प्रवेश करके, अपनी कन्याके साथ आदिराज मनुने अग्निहोत्र करके विराजेहुए मुनि कर्दमजीको देखा ॥ ४५ ॥ जो चिरकालतक उग्र तप करनेके हेतु शरीरसे देदीप्यमान हो रहे थे और तप करनेसे कृश होनेपरभी जो भगवान्के स्नेहसहित कटाक्षवाले अवलोकन और भगवान्के भाषणरूप अमृतमय चंद्रमाकी कलासंबंधी अमृतका सेवन करनेसे अतिकृश नहीं थे ॥ ४६ ॥ उन लंबे, जटाधारी और चीरवस्त्र पहिनेहुए कमलदलसे नेत्रवाले, विना संस्कार कियेहुए मणिकी

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥ ४५ ॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात् ॥ तद्व्याहृतामृतकला पीयूषश्रवणेन च ॥ ४६ ॥ प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथाऽर्हणमसंस्कृतम् ॥ ४७ ॥ अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनंद्यानुरूपया ॥ ४८ ॥ गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४९ ॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥ ५० ॥ योऽर्केंद्वग्नींद्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥ ५१ ॥ न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ॥ विस्फूर्जच्चंडकोदंडो रथेन त्रासयन्नघान् ॥ ५२ ॥

भांति मलिन प्रतीत होते कर्दमजीके निकट जाकर ॥ ४७ ॥ मनुने प्रणाम किया फिर उटज (पर्णशाला यानी कुटी) के समीप आतेहुए प्रणत मनुको आगे देखकर, आशीर्वादसे अभिनंदन करके, उनके अनुरूप पूजासे मनुका सत्कार किया ॥ ४८ ॥ पूजा अंगीकार करके, नियमसहित बैठेहुए मनुको प्रसन्न करतेहुए कर्दमजीने भगवदाज्ञाका स्मरण करके, मधुर वाणीसे ऐसा कहा कि– ॥ ४९ ॥ हे राजा ! आप लोगोंका घूमना केवल सत्पुरुषोंकी रक्षाके वास्ते और दुष्टोंके संहारके अर्थ है; क्योंकि- आप पालन करनेवाली भगवान्की शक्ति हो ॥ ५० ॥ जो आप उस उस अवसरमें सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, इंद्र, वायु, यम, धर्म और वरुणके रूप धारण करते हो, उन शुक्लमूर्ति आपको मेरा प्रणाम है ॥ ५१ ॥ जो आप मणिगणोंसे जड़ेहुए जय करने

रवाना हुए, तब भगवान् कर्दमऋषि उस समयकी प्रतीक्षा करते बिंदुसरोवरपर विराजे रहे ॥ ३५ ॥ स्वायंभुव मनु सुवर्णकी सामग्रीवाले रथमें बैठ, अपनी रानीको साथ ले, अपनी कन्याको रथमें बिठलाकर, पृथ्वीपर फिरता फिरता ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! जिस दिनके वास्ते भगवान्ने आज्ञा कीथी उसीदिन शांतव्रतवाले मुनि कर्दमजीके उस आश्रममें आया ॥ ३७ ॥ जिस सरोवरमें शरणागत कर्दमजीपर कीहुई कृपासे व्याप्त होनेके कारण भगवान्के नेत्रोंसे आंसुओंके बिंदु गिरे थे ॥ ३८ ॥ जिससे चौतर्फ सरस्वती नदी बह रही है, आरोग्यकर अमृतसा मीठा जल जिसमें भरा है, बड़े बड़े ऋषिगण जिसे सेव रहे हैं,

मनुः स्यंदनमास्थाय शातकौंभपरिच्छदम् ॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शांतव्रतस्य तत् ॥ ३७ ॥ यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिंदवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥ ३८ ॥ तद्वै बिंदुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ॥ पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियाऽन्वितम् ॥ ४० ॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥ ४१ ॥ कदंबचंपकाशोककरंजबकुलासनैः ॥ कुंदमंदारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥ ४२ ॥ कारंडवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥ ४३ ॥ तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुंजरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥ ४४ ॥

जो सदा पुण्यकारी है ॥ ३९ ॥ जिनपर पवित्र पक्षी कूज रहे हैं और पवित्र मृग जिनके अंदर बोल रहे हैं ऐसे, पुण्यवृक्ष और लतासमूह जिसके तटपर शोभायमान हैं, जो सब ऋतुओंमें फल और पुष्पोंसे संपन्न है, जिसमें वनकी पंक्तिकी शोभा छा रही है ॥ ४० ॥ मदोन्मत्त पक्षीगण जिसका सेवन कर रहे हैं मदमत्त भौंरोंकी गुंजाहटका विनोद जहां बना हुआ है, जहां मयूर मत्त होकर नृत्य करते कला कर रहे हैं, जहां मदमत्त कोकिल टहूका देकर, बुला रहा है ॥ ४१ ॥ जहां कदंब, चंपक, अशोक, करंज, बकुल, असन, कुंद, मंदार, कुटज और छोटे छोटे आमके वृक्षोंकी शोभा छा रही है ॥ ४२ ॥ जहां कारंडव, प्लव, हंस, कुरर, जलमुर्गाबियां, सारस, चकवा और चकोर बहुत अच्छे बोल रहे हैं ॥ ४३ ॥ वैसेही जहां हरिण,

शील और गुणसंपन्न वरको हेरती हुई अपनी कन्या देगा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इतने वर्षपर्यंत जिसमें आपका चित्त लग रहा था वह राजकन्या अब आपकी तुर्त मनभावती सेवा करेगी ॥ २८ ॥ उसमें आपके वीर्यसे नव ९ कन्या प्रगट होवेंगी और उन कन्याओंमें ऋषिलोग विना परिश्रम अपने पुत्र उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ आपभी मेरी आज्ञाका भली भांति पालन कर, शुद्धसत्व होकर, सब कर्मफल मेरे अर्पण करके, मुझे प्राप्त होओगे ॥ ३० ॥ सब जीवोंपर दया कर, अभयदान दे, एकाग्र-

समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् ॥ सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥ २८ ॥ या त आत्मभूतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यंत्यंजसाऽऽत्मनः ॥ २९ ॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥ ३० ॥ कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सहजगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥ ३१ ॥ सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ॥ तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥ जगाम बिंदुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥ ३३ ॥ निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्ररथेंद्रपक्षैरुच्चारितं स्तोमसुदीर्णसाम ॥ ३४ ॥ अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ॥ आस्ते स्म बिंदुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥ ३५ ॥

चित्त होकर, सब जगत्के और अपने आत्माको मुझमें देखोगे और अपने आत्माको मुझे देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुनि! आपके वीर्यके साथ मैंभी अंशकलासे आपकी स्त्री देवहूतीमें अवतार लेकर, सांख्यशास्त्रको प्रगट करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-प्रत्यग्भूत इंद्रियोंके गोचर हरि, कर्दमजीको इसप्रकार कहकर, सरस्वतीनदीसे घिरेहुए बिंदुसरसे रवाना हुए ॥ ३३ ॥ समस्त सिद्धेश्वर जिनके वैकुंठमार्गकी स्तुति करते हैं ऐसे, प्रभु गरुड़की परोंसे उच्चारणहुए सामवेदके आधारभूत ऋचाओंके समूहको और प्रगटहुए सामवेदका श्रवण करते कर्दमजीके देखते वहांसे रवाना हुए ॥ ३४ ॥ शुक्ल भगवान्

भुक्ति और मुक्ति दोनोंका देनेवाला है ॥ २० ॥ आप कि-जो अपनी मायासे जगत्की रचनाका आवर्तन करते हो, सकाम पुरुषोंको पूर्णरीतिसे विषयसुख देते हो और जिनके चरणकमल नमन करनेके योग्य हैं तथा ज्ञानके प्रभावसे जिनमेंसे कर्मफलका भोग उपरत हो गया है उन्हें, मैं बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- इसप्रकार निष्कपट रीतिसे गरुड़की परोंपर विराजमान कमलनाभ भगवान्की कर्दमजीने स्तुति की, तब प्रेम और हास्यसहित अवलोकनसे भ्रुकुटीको घुमाकर, अमृतसे बचनसे कर्दमजीको कहा कि- ॥ २२ ॥ जिसके वास्ते तुमने अपना नियम धारण करके मेरी पूजा की, उस तुम्हारे अ-

तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतंत्रम् ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ॥ सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत् ॥ यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्षमदर्हणम् ॥ भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमंगलः ॥ ब्रह्मावर्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥ २५ ॥ स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥ २६ ॥ आत्मजामसितापांगीं वयःशीलगुणान्विताम् ॥ मृगयंतीं पतिं दास्यन्यनुरूपाय ते प्रभो ॥ २७ ॥

भिप्रायको जानकर, मैंने पहलेहीसे प्रबंध करदिया है ॥ २३ ॥ हे प्रजापति ! जो मुझमें एकाग्रचित्त रखकर, मेरी पूजा करते हैं, उनकी वह पूजा कदापि निष्फल नहीं होती, तत्रापि आपसे महात्मानकी पूजा सफल होवे उसमें तौ कहना ही क्या ? ॥ २४ ॥ विख्यात है सदाचारादि लक्षण अभ्युदय जिसका ऐसा वह ब्रह्माजीका पुत्र चक्रवर्ती राजा मनु, कि-जो ब्रह्मावर्तमें रहकर, सातों समुद्रोंवाली पृथ्वी पालन करता है ॥ २५ ॥ हे कर्दमजी ! धर्म जाननेवालोंमें चतुर वह राजऋषि अपनी रानी शतरूपाके साथ परसों आपके दर्शनको आवेगा ॥ २६ ॥ हे प्रभु ! आपको अपनी कन्याके सदृश देखकर, श्यामकटाक्षवाली व अवस्था,

रूप डोरीसे जैसे यह विषयहत लोक पशुकी तरह बंधा हुआ है, वैसे मैंभी कालके भयसे इस लोककी तरह आपकी कर्म करने-
रूप आज्ञाका पालन करके ऋणत्रयसे छूटनेको स्त्री चाहता हूं और उसीके लिये शुक्ल और कालमूर्ति आपको प्रणाम करता हूं
॥ १६ ॥ कामी लोकोंका तथा जाननेपरभी उनका अनुशरण करनेवाले मेरे जैसे पशुओंका अनादर करके जो लोग आपके चरण-
रूप छत्रके आश्रित हैं और आपसमें आपके कथारूप अमृतके पीनेसेही जिनके भूंख प्यास आदि देहके धर्म निवृत्त हो गये हैं
॥ १७ ॥ ऐसे सत्पुरुषोंकी आयुको यह आपका कालचक्र कि-जो सकल जगत्को खैंचकर, दौड़ा चला जाता है. और परब्रह्म-
रूप धुरीमें फिरा करता है, वहभी खैंच नहीं सक्ता. कैसा है वह कालचक्र ? कि-तेरह मासरूप जिसमें आरा हैं, तीनसो ३६० साठ

लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वाश्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापि-
तदेहधर्माः ॥ १७ ॥ न तेजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ॥ षण्नेम्यनंतच्छदि यत्त्रि-
णाभि करालश्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥ एकः स्वयं सन्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधि-
योगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन्स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥ नैतद्वता-
धीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ॥ अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुल-
स्या तनुवा विलक्षितः ॥ २० ॥

दिनरूप जिसमें पर्व यानी संधिया हैं, छः ६ ऋतुरूप जिसमें नेमि हैं, क्षण और लव आदिरूप अनंत जिसमें पत्राकार धारा हैं,
तीन मौसिम यानी शीतकाल, उष्णकाल और चातुर्मास्यरूप जिसमें नाभि यानी आधारभूत चक्कर है और भयंकर जिसका वेग
है, वहभी कुछ नहीं करसकता ॥ १८ ॥ आप स्वयं एक होनेपरभी जगत्को रचनेकी इच्छासे अपने स्वरूपमें ग्रहण की हुई दू-
सरी मायासंबंधी गुणत्रय आदि शक्तियोंसे मकड़ीकी तरह इस जगत्को रचते हो. पालते हो और पीछा निगलभी जाते हो
॥ १९ ॥ हमारे जैसे भक्तलोकोंको आप माया करके विषयसुख देते हो, यद्यपि वह आपको प्रिय नहीं लगता, तथापि हे ईश्व-
र ! अनुग्रहके वास्ते वह आपको देनाही चाहिये; क्योंकि- तुलसीकी मालासे शोभायमान यह आपका स्वरूप दर्शन करनेसे

धारण किये, शंख, चक्र और गदा धरे, सुफेद कमलरूप खिलौना हाथमें लिये, मंदहास्य और अवलोकनसे मनुको आनंदित करनेवाला ॥ १० ॥ गरुडके कंधेपर हस्तकमल स्थापित किये, वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण किये और गलेमें कौस्तुभमणि लसाये हैं, उस स्वरूपको आकाशमें उपस्थित हुआ देखकर ॥ ११ ॥ अपना मनोरथ प्राप्त होनेसे कर्दमजी बहुत प्रसन्न हुए. उन्होंने पृथ्वीपर पड़कर, भगवान्‌को शिरसे वंदन किया. और स्वभावसिद्ध प्रीतिवाले कर्दमजीने हाथ जोड़कर, अनेक प्रकारकी वाणियोंसे स्तुति की ॥ १२ ॥ कर्दमजी बोले कि–हे भगवन्! अनेक जन्मोंसे योग साधनेवाले उत्तम योगिजन जिनके दर्शनकी इच्छा

विन्यस्तचरणांभोजमंसदेशे गरुत्मतः ॥ दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकंधरम् ॥ ११ ॥ जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ॥ गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृतांजलिः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥ ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविंदं भवसिंधुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ १४ ॥ तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ॥ उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघांघ्रिपस्य ॥ १५ ॥ प्रजापतेस्ते वचसाऽधीश तंत्या लोकः किलायं कामहतोनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥

करते हैं, ऐसे सर्व जीवोंके निवासरूप आपके दर्शनसे आज हमारे नेत्र सफल हुए ॥ १३ ॥ हे ईश्वर! संसाररूप समुद्रमेंसे नौकाकी तरह तिरानेवाले आपके चरणारविंदका जो लोग विषयोंसंबंधी अल्पसुखके अर्थ भजन करते हैं, उनको यद्यपि आप विषयसुख कि–जो नरकमेंभी मिल सके हैं, उन्हें देतेहो, तथापि इन लोगोंकी बुद्धिको मायासे नष्ट समझनी चाहिये ॥ १४ ॥ मैंभी वैसाही हूं; क्योंकि–मेरे जैसे स्वभाववाली और गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ और काम(पुरुषार्थ)देनेवाली, स्त्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छासे विषयबासनाके लिये, कल्पवृक्षकी भांति सर्वपुरुषार्थ देनेवाले आपके चरणारविंदके शरण आया हूं ॥ १५ ॥ ( मुक्तिके वास्ते क्यों नहीं भजता ? ) तब कहते हैं कि–हे अधीश! अभी मैं अधिकारी नहीं हूं; क्योंकि–प्रजापति जो आप उनकी वाणी-

भगवन् ! स्वायंभुव मनुका जो परममान्य वंश है, वह हमें कहो, कि–जिसमें मैथुनधर्मसे प्रजाकी वृद्धि हुई ॥ १ ॥ स्वायंभुव मनुके पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों धर्मके अनुसार सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीका पालन करने लगे॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे अनघ ! उन मनुके देवहूतीनाम बड़ी सुख्यातिवाली कन्या थी. जिसे आप प्रजापति कर्दमजीकी स्त्री कहचुके हो ॥ ३ ॥ महायोगी कर्दमजीने योगके लक्षणोंवाली उस देवहूतीमें कितने पुत्र उत्पन्न किये ? सो मुझे कहो. मैं श्रवण करना चाहता हूं ॥ ४ ॥ और ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् रुचि और प्रजापति दक्षने मनुकी कन्या आकूति और प्रसूतिको पाकर, किस प्रकारसे सृष्टि रची ? वह हमें कहो

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै ॥ यथाधर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २ ॥ तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता ॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन्दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥ ६ ॥ ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ ७ ॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे ॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् ॥ स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोंबरम् ॥ ९ ॥ किरीटिनं कुंडलिनं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–ब्रह्माजीने भगवान् कर्दमजीसे कहा कि–तुम प्रजा रचो, तब सरस्वती नदीपर जाकर, दश हजार वर्षतक तप किया ॥ ६ ॥ उस तपमें समाधियुक्त पूजाके प्रकारसे शरणागतलोगोंको वरदान देनेवाले हरि भगवान्का कर्दमजीने भावभक्तिसे आराधन किया ॥ ७ ॥ हे विदुर ! तब सत्ययुगमें प्रसन्न होकर, कमलनयन भगवान्ने शब्दब्रह्मका रूप धरकर कर्दमजीको दर्शन दिया ॥ ८ ॥ कैसा है वह स्वरूप ? कि–जो रजोगुणरहित, सूर्यसा प्रकाशमान, सुफेद उत्पल और कमलोंकी माला धारण किये, सचिक्कण और नील केशपाशसे शोभायमान मुखारविंदवाला, विरज वस्त्र पहिने ॥ ९ ॥ किरीट और कुंडल

शरीरको त्याग दिया ॥ ४७ ॥ हेविदुर ! इस देहसे जो केश च्युत हुए, उनसे अतिक्रूर अहि ( हाथ पाँव आदिको संकुचित करके चलनेवाले सर्प ) और फणके हेतु बहुत मोटी जिनकी गर्दन है ऐसे अतिवेगवाले नाग उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपने आत्माको जब कृतार्थसा माना, तब अंतमें अपने मनसे लोकोंके बढ़ानेवाले मनुओंको उत्पन्न किया ॥ ४९ ॥ उनके लिये ब्रह्माजीने अपना पुरुषाकार शरीर दिया. मनुकी सृष्टिको देखकर, जो पहले पैदा हुए थे, उन सबोंने ब्रह्माजीकी प्रशंसा की ॥ ५० ॥ कि–हे जगत्स्रष्टा ! ब्रह्माजी ! यह आपने बहुत अच्छा किया; क्योंकि इस सृष्टिमें अग्निहोत्रादि सब क्रिया विद्यमान



येऽहीयंतामुतः केशा अहयस्तेंऽग जज्ञिरे ॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकंधराः ॥ ४८ ॥ स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून्ससर्जांते मनसा लोकभावनान् ॥ ४९ ॥ तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ॥ तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५० ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् ॥ प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥ ५१ ॥ तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ॥ ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥ ५२ ॥ तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ विदुर उवाच ॥ स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥

हैं, अतएव हम सबको इसके साथ हविर्भागादि खानेको मिलेंगे ॥ ५१ ॥ फिर तब, उपासना, योग और समाधिसे युक्त होकर, ब्रह्माजीने अपनी इंद्रियोंको वशमें रखकर, माननेके योग्य ऋषिरूप प्रजा उत्पन्न की ॥ ५२ ॥ और उन ऋषियोंको जुदा जुदा ब्रह्माजीने समाधि योग, ऐश्वर्य, तप विद्या और वैराग्यवाला, अपने शरीरका अंश दिया ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ इक्कीसवें अध्यायमें, कर्दमजीके तप और विद्यासे प्रसन्न होकर, विष्णु भगवान्‌ने मनुकी कन्याके साथ कर्दमजीके ब्याहकी तजबीज की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा कि–हे

केश देखकर, अपनी आंखें बंद कर लीं ॥ ४० ॥ ब्रह्मादिके त्यागेहुए उस जृंभण नाम तनको उन भूतादिकोंने ग्रहण किया, जिससे भूतोंके अंदर इंद्रियोंका स्राव मालूम होता है, उसे निद्रा कहते हैं; जिस इंद्रियस्रावके हेतु उच्छिष्ट होकर, जो भ्रांत करते हैं, उन भूतादिकोंके गणको उन्माद कहते हैं. अभिप्राय यह है कि-तंद्रा, जृंभिका, निद्रा और उन्मादके हेतु भूतादि सृष्टि चार प्रकारकी है ॥ ४१ ॥ फिर प्रभु ब्रह्माजीने अपने आत्माको बलवान् मानकर, अदृश्य रूपसे साध्य और पितृगणको उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ पितृगण ब्रह्माजीने रचेहुए उसी शरीरको प्राप्त हुए जिस शरीरको निमित्त करके कर्मकोविद लोग साध्य और पितरोंको

जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृंभणाख्यां तनुं प्रभोः ॥ निद्रामिंद्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयंति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ ऊर्जस्वंतं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ॥ साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥ ४३ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमंतर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ सकिन्नरान्किंपुरुषान्प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥ मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥ ४५ ॥ ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गायंतस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥ ४६ ॥ देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिंतया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥ ४७ ॥

श्राद्धादिद्वारा हव्य और कव्य देते हैं ॥ ४३ ॥ फिर दृश्य होनेपरभी अंतर्धान शक्तिसे सिद्ध और विद्याधरोंको उत्पन्न किया, उनको वही अंतर्धान नाम अद्भुत शरीर दिया ॥ ४४ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपने मनसे अपने आत्माको मान देकर, अपने प्रतिबिंबको देखकरके, अपने प्रतिबिंबसे किन्नर और किंपुरुषोंको पैदा किया ॥ ४५ ॥ जिस शरीरका ब्रह्माजीने त्याग किया था, उसी शरीरको उन्होंने ग्रहण कर लिया, जो सदा मिथुन यानी जोड़ा होकर, प्रभातके समय ब्रह्माजीके पराक्रमोंका वर्णन करके उन्हींका गान करते हैं ॥ ४६ ॥ जब सृष्टि नहीं बढ़ी, तब बहुत चिंतासे व्याकुल हो, हाथ पांव पसारकर, सो गये और क्रोधसे उस

हे कदलीसे ऊरुवाली ! हे कोपने ! तू कौन है ? और ? किसकी है ? और यहा तेरा क्या मतलब है ? तू अपनी सुंदरतारूप अमूल्य वस्तुके मूल्यसे हम मंदभागियोंको तकलीफ देती है ॥ ३४ ॥ हे अबला ! हमारे तेरे कुल आदि पूंछनेसे क्या प्रयोजन है ? तू दिल चाहे वह क्यों न हो यह बहुत अच्छा हुआ, जो हमें तेरा दर्शन हुआ; क्योंकि हम तरी कंदुकगेंदकी क्रीड़ाको देखते हैं, उससे हमारा मन व्याकुल हाता जाता है ॥ ३५ ॥ हे श्लाघा करने योग्य प्रिये ! उछंलती हुई कंदुकगेंदको जो तू बारंबार अपने हाथसे ताड़ती है, उससे तेरा चरणकमल एक जगह स्थिर नहीं रहता और बड़े स्तनोंके भारसे

कासि कस्यासि रंभोरु कोवाऽर्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥ ३४ ॥ या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संदर्शनं तव ॥ उत्सुनोषीक्षमाणानां कंदुकक्रीडया मनः ॥ ३५ ॥ नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नंत्या मुहुः करतलेन पतत्पतंगम् ॥ मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शांतेव दृष्टिरमलासु शिखा समूहः ॥ ३६ ॥ इति सायंतनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥ प्रलोभयंतीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥ ३७ ॥ प्रहस्य भावगंभीरं जिघ्रंत्यात्मानमात्मना ॥ कांत्या ससर्ज भगवान्गंधर्वाप्सरसां गणान् ॥ ३८ ॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कांतिमतीं प्रियाम् ॥ त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतंद्रिणा ॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥ ४० ॥

भयभीत तेरा मध्यभाग श्रम पा रहा है, तेरी निर्मलदृष्टि शांतसी धीरे धीरे बढ़ती है और सुंदर तेरा केशकलाप है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार स्त्रीकासा आचरण करती और लोभ व ललाचमें पटकती हुई, सायंकालसबंधी संध्याको स्त्री मानकर, दुर्बुद्धि दैत्योंने उसको अंगीकार किया ॥ ३७ ॥ फिर ब्रह्माजीने गंभीर अभिप्रायसे हँसकर, अपने आत्मासे आत्माको सूंघती हुई कांतिसे गंधर्व और अप्सराओंके गण पैदा किये ॥ ३८ ॥ कांतिवाले उस प्यारे चंद्रिकारूप तनका त्याग किया, तब उन विश्वावसु आदि गंधर्वोंने प्रीतिपूर्वक उसको ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ फिर अपने आलस्यसे भूत व पिशाचोंकी सृष्टि पैदा की, उन्हें नग्न और खुले

१ यहां अस्त होतेहुए सूर्य तौ कंदुक ( गेंद ) है. मेघका विच्छेद मध्यभागका श्रमित होना है, तारामंडल दृष्टि है और अंधकार केशकलाप है.

तो आपके भेजनेसे प्रजाकी रचना की है और ये पापी मैथुनकरके मेरा धर्षण करना चाहते हैं, सो हे प्रभु! आप मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥ जो मनुष्य क्लेशसे हैरान होकर, आपके शरण आ जाते हैं, उनके क्लेशके मिटानेवाले एक आपही हो. और जो आपके चरणोंका शरण नहीं लेते उनके क्लेशके देनेवालेभी एक आपही हो ॥ २७ ॥ घटघटकी जाननेवाले वे प्रभु ब्रह्माजीकी कृपणताकी ओर देखकर, बोले कि-इस अपने कामकश्मल शरीरका जल्दी त्याग करो, ऐसे कहतेही ब्रह्माजीने वह शरीर त्याग दिया ॥ २८ ॥ जिसके चरणकमलमें नूपुर शब्दायमान होरहे हैं, मदसे विह्वल जिसके नेत्र हैं, जो कटिमेखलाकरके शो-

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ॥ त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७ ॥
सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुंचात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥
तां कणच्चरणांभोजां मदविह्वललोचनाम् ॥ कांचीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥ २९ ॥ अन्योन्यश्लेषयोत्तुंगनिरंतरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥ ३० ॥ गूहंतीं व्रीडयाऽऽत्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥ ३१ ॥ अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥ ३२ ॥ वितर्कयंतो बहुधा तां संध्यां प्रमदाकृतिम् ॥ अभिसंभाव्य विश्रंभात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥ ३३ ॥

भायमान पाटंबरको कटितटपर धारण किये हैं ॥ २९ ॥ परस्पर उपमर्द होनके हेतु ऊंचा अंतररहित जिसका कुचयुगल है. सुन्दर जिसकी नासिका है, सुंदर जिसके दांत हैं, स्नेहभरा हास्य और लीलासहित जिसका अवलोकन है ॥ ३० ॥ नीलवर्ण जिसकी अलकावली है ऐसी, लज्जाके कारण वस्त्रांचलसे अपने आत्माको छिपातीहुई उस स्त्रीको देखकर, हे विदुर ! सब दैत्य मोहित हो गये ॥ ३१ ॥ और बोले कि-अहो ! इसका क्या रूप है ? अहो ! कैसा इसका धीरज है ? अहो ! कैसी इसकी नवीन अवस्था है ? यद्यपि हम इसकी कामना कर रहे हैं, तथापि यह कामनारहित हो वैसे चलती है ॥ ३२ ॥ उत्तम स्त्रीसा स्वरुप धारण किये उस संध्याके विषयमें अनेक प्रकारसे तर्कणा करतेहुए उन कुबुद्धियोंने सत्कार करके प्रणयपूर्वक पूंछा कि-॥ ३३ ॥

इस तमोमयसृष्टिका अभिनंदन न करके ब्रह्माजीने अपना शरीर त्याग दिया, तौ उससे रात्रि उत्पन्न हुई, जिसमें भूंख और प्यासकी उत्पत्ति है, उस रात्रिको तमोगुणी यक्ष और राक्षसोंने ग्रहण किया ॥ १९ ॥ भूंखे और प्यासे वे यक्ष, राक्षस ब्रह्माजीको खानेके वास्ते दौड़े और भूंख व प्याससे दुखी होकर, उनमेंसे कितनेएकने कहा कि-इसकी रक्षा मत करो और कितने एक बोले कि-इसे खा जाओ ॥ २० ॥ तब उद्विग्न होकर, ब्रह्माजीने उनसे कहा कि-अहो! तुम दोनों राक्षस और यक्ष नामक मेरी प्रजा हुए हो, जिन्होंने रक्षा मत करो ऐसा कहा है वे तो राक्षस और जिन्होंने खाजाओ ऐसा कहा है वे यक्ष हुए ॥ २१ ॥

विससर्जात्मनः कायं नाभिनंदंस्तमोमयम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ॥ मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥ २० ॥ देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥ २१ ॥ देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयंतो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥ २२ ॥ देवोऽदेवान् जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥ ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥ २४ ॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्त्तिहरं हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥ पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ॥ ता इमा यभितुं पापा उपाक्रामंति मां प्रभो ॥ २६ ॥

प्रभा करके देदीप्यमान ऐसे जिन जिन देवतानको ब्रह्माजीने प्रमुखतासे पैदा किया, उन देवतानने ब्रह्माजीके त्याग किये हुए प्रभा और दिवसरूप देहका क्रीड़ा कराते कराते ग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने अति स्त्रीलंपट असुरोंको जघनसे उत्पन्न किया. वे स्त्रीलंपट होनेसे उन्हींसे मैथुन करनेको दौड़े ॥ २३ ॥ तब ब्रह्माजी हँसे और निर्लज्ज असुरोंको पीछे लगे देखकर, जल्दी क्रोधयुक्त हो, डरते आग निकले ॥ २४ ॥ सो शरणगतोंके दुःख मिटानेवाले और भक्त लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये भक्तोंकी इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले हरिके शरण जाकर, ब्रह्माजीने कहा कि- ॥ २५ ॥ हे परमात्मन्! मैंने

१ तथाच श्रुतिः "स जघनादसुरानसृजतेति" अर्थ-ब्रह्माजीने जघनसे असुरोंका उत्पन्न किया. ऐसी श्रुति है.

क्या उन्होंने स्त्रियोंको शामिल रखकर, प्रजा रची ? वा स्त्रियोंको अलग रख कर रची ? अथवा प्रजाकी सृष्टि आदिके निमित्त सबोंने शामिल होकर, इस जगत्को पैदा किया ? ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-तर्कणा करनेको अशक्य जो जीवोंका अदृष्ट व प्रकृतिका अधिष्ठातापुरुष और काल इनके प्रभावसे निर्विकार प्रभुसे जब गुणत्रय यानी प्रकृतिमें क्षोभ हुआ, तो उससे महत्तत्व पैदा हुआ ॥ १२ ॥ रजोगुण जिसमें प्रधान है ऐसे दैवप्रेरित महत्तत्त्वसे त्रिगुण अहंकार उत्पन्न हुआ. और अहंकारसे आकाश आदि पंचमहाभूत, शब्दादि पांच तन्मात्रा, चक्षु आदि पांच ज्ञानेंद्रिय और हाथ वगैरः पांच कर्मेंद्रियां प्रगट हुईं ॥ १३ ॥

सद्वितीयाः किमसृजन्स्वतंत्रा उत कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात्
॥ १२ ॥ रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिंगो दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पंचशः
॥ १३ ॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ॥ संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥ १४ ॥
सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आंडकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥ १५ ॥
तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥ सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥ लोकसंस्थां यथा पूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥ ससर्ज च्छाययाऽविद्यां पंचपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमंधतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥ १८ ॥

जबलों ये जुदे जुदे पड़े रहे, तबतक ये ब्रह्मांड पैदा करनेको समर्थ न हो सके, फिर दैवयोगसे शामिल होकर, इन तत्वोंने हिरण्मय अंडकोशका निर्माण किया ॥ १४ ॥ वह चेष्टारहित अंडकोश हजार वर्षोंसे कुछ अधिक समयतक जलमें पड़ा रहा, फिर प्रभुने उसमें निवास किया ॥ १५ ॥ उस नारायणकी नाभिमेंसे हजार सूर्यसेभी अधिक तेजवाला कमल पैदा हुआ. जो सब जीवसमूहका आश्रय था और जिसमें ब्रह्माजी आपहीसे उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥ जो जलके अंदर पौढ़ेहुएथे, उन विराट्पुरुषकी अधिष्ठान सत्तासे नामरूपादि क्रमके द्वारा ब्रह्माजीने पूर्वकल्पके समान लोकोंकी रचना करी ॥ १७ ॥ सबसे पहले छाया यानी अबुद्धिसे पंचपर्वा अविद्या उत्पन्न करी. जैसे तामिस्र, अंधतामिस्र, तम, मोह और महातम ॥ १८ ॥

बड़ी सेवा करते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे तीर्थयात्रा करनेके प्रभावसे निष्पाप विदुरजीने] गंगाजीके कुशावर्त घाटपर विराजे हुए तत्त्ववेत्ता-नमें श्रेष्ठ मैत्रेयजीके पास जाकर, क्या प्रश्न किया? ॥ ४ ॥ हे सूत! उनके संवादमें जो भगवान्के चरणारविंदसंबंधी भगवानकी गंगाजलके समान पाप नाश करनेवाली निर्मल कथायें प्रवृत्त हुई हैं ॥ ५ ॥ कीर्तन करने योग्य उदार जिनके चरित हैं ऐसे, प्रभुकी वे कथा हमें कहो. आपका कल्याण होगा; क्योंकि जो हरि भगवान्के कथामृतके स्वादको जानता है, वह कौन आदमी उसे पीता पीता तृप्त होसक्ता है? ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा कि—नैमिषारण्यवनमें रहनेवाले ऋषियोंने सूतजीसे इस-

किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥ ४ ॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ॥ आपो गांगा इवाघघ्नी हरेः पादांबुजाश्रयाः ॥ ५ ॥ ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः कोनु तृप्येत हरिलीलाऽमृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ८ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मन्प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥ ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः ॥ ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥

प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान्में मन लगाकर, सूतजीने उनसे कहा—कि सुनिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि—अपनी मायासे वराहमूर्ति धारण करनेवाले हरिके पृथ्वीका उद्धार करने और अवज्ञापूर्वक हिरण्याक्षका वध करनेरूप, चरितको सुन, आनंदित होकर, विदुरजीने मैत्रेयजीसे कहा ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि—हे ब्रह्मन्! प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने प्रजा रचनेके निमित्त प्रजापतियोंको पैदा करके फिर क्या किया? वह हमें कहो; क्योंकि आपसे कोईभी गुह्य वार्ता गुप्त नहीं है ॥ ९ ॥ जो मरीचि आदि ऋषि और स्वायंभुव मनु पैदा हुए थे, उन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे इस जगत्को किसतरह बढ़ाया? ॥ १० ॥

हे विप्रो! जो मनुष्य हिरण्याक्षके वध संबंधी कारणसे वराहमूर्तिं हरिका अति आश्चर्यकारी चरित्रको सुने गावे, अथवा! अनुमोदन करे, वह ब्रह्महत्यासेभी विना परिश्रम किये, मुक्त हो जावे ॥ ३७ ॥ हे विदुर! जो स्वर्गादि फल देनेवाले, अतिशय पवित्र, धन देनेवाले, कीर्तिकारी, आयुके बढ़ानेवाले मनकामना पूर्ण करनहारे, प्राण व इंद्रियोंके रक्षक और युद्धमें शूरवीरता बढ़ानेवाले इस चरित्रको सुनते हैं, वो अंतमें नारायणको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ वीसवें अध्यायमें, वराहअवतारकी कथा बीचमें आजानेसे सर्ग कहनेमें कुछ

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽजसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥ ३७ ॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥ प्राणेंद्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽते गतिरंग शृण्वताम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः ॥ कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥ क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकांतिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥

अंतर पड़ गया, इसलिये प्रसंगप्राप्त मनुके वंशका पीछा स्मरण कराया जायगा ॥ १ ॥ शौनकजीने कहा कि–हे सूतजी! स्वायंभुव मनुने पृथ्वीरूप स्थान पाकर, ईश्वरमें लीन भयेहुऐ जीवोंकी सृष्टिके लिये कौन कौन उपाय किये? ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि–जो भगवान्‌के परमभक्त और श्रीकृष्णचंद्रके एकांतिक मित्र हैं और जिन्होंने अपने बड़े भाईको श्रीकृष्ण भगवान्‌का अपराध करनेवाला समझकर, उसके पुत्र दुर्योधनादिकोंके साथ त्याग दिया ॥ २ ॥ और जो वेदव्यासजीके देहसे पैदा होनेके कारण महिमामें वेदव्यासजीसे कुछभी न्यून नहीं हैं तथा जो सब प्रकारसे श्रीकृष्णके आश्रित होनेपरभी भगवान्‌के भक्तोंकी

२ रागिनी काफी ताल जति ॥ प्रथम भयो हिरण्याक्ष महाबल जिन जीते लोकपाल ॥ नारदसीख गयो सूकरपै लखो रूप विकराल ॥ सहसबर्षलों जलमें जूझ्यो कियो दनुजसंहार ॥ पाछे आय भूमिको थापा कियो यज्ञविस्तार ॥ १ ॥

प्रभावसे हम परम आनंदित हुए ॥ ३० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-इस प्रकार वे आदिवराह हरि असह पराक्रमवाले उस दैत्यको मारकर, ब्रह्मादिकोंके स्तुति करते सदा अखंड उत्सववाले अपने वैकुंठलोक पधारे ॥ ३१ ॥ हे विदुर! मैंने वराह अवतार धारण करनेवाले हरिभगवान्का चरित्र जैसा गुरुके मुखसे सुना था, उसी प्रमाण आपसे कहा, जिस तरह वह उदारपराक्रम-वाला हिरण्याक्ष महायुद्धमें खिलौनेकी भांति मारा गया था ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि-इस प्रकार मैत्रेयजीकी कही हुई भगवत्कथा सुनकर, हे शौनक! भगवान्के परमभक्त विदुरजी परमआनंदको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ जब उदारकीर्ति और पुण्य यशवाले दूसरे

मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ॥ जगाम लोकं स्वमखंडितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तमवादिते हरेः कृतावतारस्य सुमित्रचेष्टितम् ॥ यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ॥ क्षत्ताऽऽनंदं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ॥ उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्सांकस्य किं पुनः ॥ ३४ ॥ योगजेंद्रं झषग्रस्तं ध्यायंतं चरणांबुजम् ॥ क्रोशंतीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥

सत्पुरुषोंकीभी कथा सुनकर, आनंद प्राप्त होता है, तो फिर श्रीवत्सके चिन्हवाले हरिभगवान्के चरित्र सुननेसे आनंद प्राप्त होवे, इसमें क्या कहना ! ॥ ३४ ॥ जब ग्राहने गजेंद्रका पांव पकड़ लिया, तब उसने भगवान्के चरणारविंदका ध्यान किया; और हथिनियां पुकारने लगीं, तब जिसने जल्दी उसे कष्टसे छुड़ा दिया ॥ ३५ ॥ उस अनन्यशरण सरलपुरुषोंके आराधन करनेको सुलभ और असाधु लोगोंको आराधन करनेको अशक्य, प्रभुका कौन कृतज्ञ पुरुष सेवन न करै ? ॥ ३६ ॥



१ राग भूपाली जंगला-गजकी वाणी सुनिकै सिंहासन तजि उठि धाये महाराज ॥ श्री श्री श्री चकित भई सुनिकै खगपति यार न पायो महाराज ॥ कटि पीतांबर कहूं गिरो है तनकी सुधि विसराये महाराज ॥ ग्राह मारि गजराज उबार्यो सुरन सुमन बरसाये महाराज ॥ रत्नहरी प्रभु शरण तुम्हारी नाम तुम्हारो नित गाये महाराज ॥

चमें ले, दबाने लगा, परंतु प्रभुने ऐसी माया फैलायी कि-वे बाहिर खड़े हुए उसको दीखने लगे ॥ २४ ॥ वज्रसी कठोर मुट्ठियोंसे वह मार रहा था, उसे देखकर, जैसे इंद्रने वृत्रासुरको मारा, वैसे जगत्को जीतनेवाले भगवान्ने अवज्ञा करके, उस दैत्यके कर्णमूलमें हाथसे ऐसा लप्पड़ लगाया कि- ॥ २५ ॥ लप्पड़ लगतेही उसका शरीर तो चक्कर खाने लगा. आंखें बाहिर निकल आयीं. हाथ, पैर व केश बिखर गये और वह दैत्य ऐसे गिरा कि-मानों वायुने किसी वृक्षराजको उखेड़दिया है ॥ २६ ॥ अकुंठ जिसका तेज है और भयंकर जिसकी दाढ़ें हैं तथा होंठ जिसने चाबे हैं, ऐसे उस दैत्यको पृथ्वीपर सोताहुआ देखकर, ब्रह्मादिक

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नंतं वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥ २५ ॥ स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्रउदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वंघ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेंद्रो लुलितो नभस्वता ॥ २६ ॥ क्षितौ शयानं तमकुंठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिम् ॥ २७ ॥ यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायंति लिंगादसतो मुमुक्षया ॥ तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥ एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ॥ पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येतेह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतंतवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ॥ दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥

देवता जो देखनेको आये थे, वे प्रशंसा करने लगे कि-अहो ! ! यह मृत्यु किसको मिल सक्ती है ? ॥ २७ ॥ योगी लोग एकांतमें योगद्वारा चित्तको एकाग्र करके आरोपित लिंग शरीरसे मुक्त होनेकी इच्छासे जिसका ध्यान करते हैं, उसी प्रभुके मुखका दर्शन करते करते इस अधम दैत्यने भगवान्के पांवके प्रहारसे शरीरका त्याग किया ॥ २८ ॥ अजी ! ये इसी प्रभुके पार्षद हैं, केवल शापसे नीच गति पाये हैं, सो ये यहां कितने एक जन्म पाकर, फिर पीछे भगवद्धामको प्राप्त होवेंगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि-सकलयज्ञोंके कारण और पालनके अर्थ शुद्ध सत्वमूर्ति धारण करनहारे, आपको हम बारंबार नमस्कार करते हैं, जगत्का मर्मच्छेद करनहारा यह दुष्ट आपसे मारा गया, यह बहुत अच्छा हुआ. हे ईश्वर ! आपके चरणकमलकी भक्तिके

डिगे ॥ १६ ॥ योगमायाके ईश्वर हरि भगवान्पर उसने अनेक प्रकारकी माया प्रगट की, जिसे देख कर, प्रजा त्रास खागयी. और जानने लगी कि–क्या जगतका प्रलय होगा ? ॥ १७॥ प्रचंड पवनकी प्रेरणासे धूलि ऐसे उड़ी कि– चौतर्फ घोर अंधकार फैल गया. और मानों गोफनसे चलायेगये हों वैसे दिशाओंसे पत्थर पड़ने लगे ॥ १८ ॥ बिजली जिनमें चमक रही है ऐसे, कड़कड़ाहट शब्दसहित बादलकी घनघोर घटाओंसे आकाशमेंका तारामंडल[१] छिप गया. और बादलोंमेंसे बारंबार पूय, केश, रुधिर, विष्ठा और मूत्र बरसने लगे ॥ १९ ॥ हे विदुर ! अनेक शस्त्र जिनसे आ रहे हैं ऐसे, पर्वत दिखायी देने लगे. खुले बाल और

अथोरुधा सृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥ १७॥ प्रववुर्वायवश्चंडास्तमः पांसवमैरयन् ॥ दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणे प्रहिता इव ॥ १८ ॥ द्यौर्नष्टभगणाऽभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यंत नानायुधमुचोऽनघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २० ॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुंजरैः आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥ २१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान्प्रायुंक्त दयितं त्रिपात् ॥ २२ ॥ तदा दितेः सममवत्सहसा हृदि वेपथुः ॥ स्मरंत्या भर्त्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥ २३ ॥ विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥ २४ ॥

त्रिशूल धारण की हुई नग्न राक्षसियां नजर आने लगीं ॥ २० ॥ प्यादल, घोड़े रथ और हाथी ऐसी चतुरंगिणी सेनावाले बहुतसे यक्ष और राक्षस शस्त्र हाथोंमें लिये ' छिंधिभिंधि ' ऐसे हिंसावाली और महाउग्र वाणीका उच्चारण करते थे ॥ २१ ॥ हिरण्याक्षने जो आसुरी माया प्रगट की, उनका नाश करनेवाला अपना प्यारा शस्त्र सुदर्शन यज्ञमूर्तिं प्रभुने चलाया ॥ २२ ॥ उस काल दितिका हृदय एकाएकी कांपने लगा और पति कश्यपजीकी आज्ञाका स्मरण करतेही उसके स्तनमें रुधिर बहने लगा ॥ २३ ॥ जब अपनी माया सब नष्ट हो गयी, तब फिर पीछा भगवान्के निकट आ, क्रोधसे भगवान्को भुजाओंके बी-

१ इससे यह सूचित होता है कि–ब्रह्मोक्त संध्याका उल्लंघन किया. क्योंकि–दिनमें नक्षत्रोदयका असंभव है.

खते पवनसे वेगवाली उस गदाको बचाय ली ॥ ९ ॥ और कहा कि-जो तू जीतना चाहता है तौ, शस्त्र ले यत्न कर, ऐसे कहा गया, तब उसने फिर प्रहार किया और बहुत जोरसे गरजना की ॥ १० ॥ भलीभांति खड़ेहुए हरि भगवान्ने उसे आती देखकर, जैसे गरुड़ सर्पिणीको लीलापूर्वक पकड़ लेता है, वैसे पकड़ ली ॥ ११ ॥ अपना पुरुषार्थ प्रतिहत होनेपर, मा-नहीन और तेजहीन उस महादैत्यने भगवान्के हाथसे देने परभी वह गदा न ली ॥ १२ ॥ और जैसे ब्राह्मणका उद्देशकरके अभिचार किया जाय, वैसे यज्ञमूर्ति वराह भगवान्के लिये जलतेहुए अग्निके समान, संहार करनेमें लोलुप ऐसा त्रिशूल हाथमें

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ॥इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तां स आपतन्तीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः ॥ जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥ १२ ॥ जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥ १३ ॥ तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदंतःख ऊदीर्णदीधिति ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्य-पतत्रमुज्झितम् ॥ १४ ॥ वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ॥ प्रवृद्ध-रोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यांतरधीयतासुरः ॥ १५ ॥ तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ॥ नाकंपत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः १६ ॥

लिया ॥ १३ ॥ और दैत्योंके बीच महाभट हिरण्याक्षने पराक्रम करके, उसे चलाया तौ वह उत्कट तेजवाला त्रिशूल आकाशके अंदर चमकने लगा, परंतु हरिभगवान्ने अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे, जैसे इंद्रने गरुड़की त्यागी हुई पक्षको अपने वज्रसे काट गि-रायी थी वैसे काट गिराया ॥ १४ ॥ जब हरि भगवान्ने त्रिशूलके टुकड़े २ करदिये, तब वह दैत्य भगवान्के सन्मुख आ, बड़ा क्रोध कर, लक्ष्मीवाले विशाल वक्षःस्थलमें कठोर मुष्टिका प्रहार करके, गर्जना करता करता अंतर्धान हो गया ॥ १५ ॥ हे विदुर ! उसने आदिवराह भगवान्पर इस तरह प्रहार किया, परंतु मालासे ताड़ित हाथीके समान वे किंचित् मात्रभी नहीं

देखकर, वराह भगवान्‌ने कूद कर, दैत्यकी ठोडीपर गदाका प्रहार किया ॥ २ ॥ तब उसने पीछी ऐसी गदा मारी कि,–भगवान्‌की गदा घूमकर, भगवान्‌के हाथमेंसे गिर गयी; और देदीप्यमान दीखने लगी, यह चरित्र बड़ा अद्भुतसा हुआ ॥ ३ ॥ उस समय उसे औसर मिल गया था, तथापि आयुधरहित भगवान्‌पै धर्मयुद्ध मान कर, भगवान्‌को कोपायमान करानेके लियेउसने शस्त्रही नहीं चलाया ॥ ४ ॥ हरिके हाथमेंसे गदा गिरनेपर जगत्‌में बड़ा हाहाकार शब्द हो चुका, तब प्रभुने युद्धके धर्मको प्रमाण करके सुदर्शन चक्रका स्मरण किया ॥ ५ ॥ अपने पार्षदोंमें प्रधान ऐसे नीच दितिके पुत्रसे भिड़ेहुए संभ्रमसहित चक्र

सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ॥ विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३ ॥ स-तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ॥ मानयन्स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ॥ मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥ ५ ॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ॥ चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥ ६ ॥ स तं निशाम्यात्तरथांगमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ॥ विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेंद्रियो रुषा स्वदंतच्छदमादशच्छ्वसन् ॥ ७ ॥ करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव ॥ अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥ ८ ॥ पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः ॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥ ९ ॥

धारणकिये प्रभुको देखकर, भगवान्‌के प्रभावको न जाननेवाले देवता वहां अनेक प्रकारके वचन कहने लगे, कि–आपका कल्याण होओ, आप इसे मारो ॥ ६ ॥ कमलदललोचन हरिको चक्रधारण किये अपने आगे खड़े देखकर, उस दैत्यकी इंद्रियां क्रोधसे व्याप्त हो गयीं, उसी क्रोधके मारे अपने होंठको चाबते और श्वास लेते ॥ ७ ॥ तथा विकराल दाढ़ोंवाले हरिभगवान्‌को मानों भस्म करता हो, वैसे नेत्रोंसे देखते हुए उस दैत्यने उछल करके, 'मार लिया गया है, ऐसे कहकर, हरि भगवान्‌पै गदासे प्रहार किया ॥ ८ ॥ हे विदुर! यज्ञमूर्ति वराह भगवान्‌ने अपने बाएं पांवसे शत्रुके दे-

करनेवालेको ढूंढ़ता लोकोंमें घूमता फिरता है ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ हे देव! जैसे क्षुभित सर्पको पुच्छ खैंचने आदिसे बालक खिलाता है, वैसे इस मायावी, गर्विष्ठ, निरंकुश नीच दैत्यको आप मत खिलाओ ॥ २४ ॥ यह दारुण जबतक अपने समय ( संध्या ) को पाकर, न बढ़ जाय, उससे पहले पहले हे अच्युत! अपनी योगमायाको धारण करके, इस पापीको मारो ॥ २५ ॥ हे प्रभु! बड़ा घोर और लोकोंका नाश करनेवाला यह संध्याका समय चला आता है, इस लिये हे सर्वके आत्मा! हरि देवतानका जय करो ॥ २६ ॥ अभी यह मुहूर्त्तोंमेंसे अभिजित् नाम योग आ गया है, सो हम सुहृदोंके कल्याणके लिये

मैनं मायाविनं दृप्तं निरंकुशमसत्तमम् ॥ आक्रीड बालवद्देव यथाशीविषमुत्थितम् ॥ २४ ॥ न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ॥ स्वां देवमायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा संध्या लोकच्छंबट्करी प्रभो ॥ उपसर्पति सर्वात्मन्सुराणां जयमावह ॥ २६ ॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥ २७ ॥ दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अवधार्य विरिंचस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपांगेन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरंतमकुतोभयम् ॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥

इस दुस्तर शत्रुको जल्दी मारो ॥ २७ ॥ यह ठीक हुआ कि- यह दुष्ट इसके मृत्युरूप आपसे स्वयं आ भिड़ा, अब पराक्रम करके, युद्धके बीच मारकर, लोकोंको सुखी करो ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें, ब्रह्मा आदिकी प्रार्थनासे महायुद्धमें हरि भगवान्‌ने हिरण्याक्षका प्रशंसा करने योग्य वध किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-हरिने निष्कपट और अमृतसा ब्रह्माजीका वचन सुन कर, हँस करके, प्रेमभरे कटाक्षसे उनका कहना स्वीकार किया ॥ १ ॥ फिर निर्भय हो अपने सामने फिरते हुए शत्रुको

किया, परंतु हे विदुर ! उस युद्धकुशल दैत्यने अपनी गदासे बचा लिया ॥ १७ ॥ ऐसे हिरण्याक्ष और हरि ये दोनों बड़ी भारी गदाओंसे जयकी इच्छासे बहुत क्रोधके वश हो, परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥ १८ ॥ वे दोनों जय पानेकी इच्छासे स्पर्द्धाके वश हो, तीक्ष्ण गदाओंका प्रहार करतेथे, उससे उनके घावोंमेंसे जो रक्त बहता था, उसकी गंधसे अधिकतर क्रोध बढ़ता जाता था और उसीसे वे नये नये गदायुद्धसंबंधी पेंच काट कर २ जो पृथ्वीके वास्ते युद्ध करते थे, वह ऐसा प्रतीत होता था कि-मानों गौके वास्ते दो वृष ( बैल ) लड़ रहे हैं ॥ १९ ॥ मायासे वराहमूर्ति धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति महात्मा वराह भगवान्को

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥ जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहतांगयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ॥ विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौंडीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देवदेवानामंघ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥ विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥ आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कंटकः ॥ २३ ॥

और हिरण्याक्षको पृथ्वीके वास्ते जो युद्ध होता था, उसे देखनेकी इच्छासे, हे विदुर ! भगवान् ब्रह्माजी ऋषियोंको साथ लेकर, वहां आये ॥ २० ॥ मदमत्त, निर्भय, बराबर प्रतीकार करनेवाला और जिसका पराक्रम घटे नहीं ऐसे, दैत्यको देखकर, सबके नियन्ता अथवा ऋषियोंके नियन्ता ब्रह्माजीने आदिवराह नारायणसे कहा ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि-हे देव ! आपके चरणारविंदके शरणागत जो देवता, ब्राह्मण और गौ हैं, इनपर और निरपराधी जीवोंपर अपराधका आरोप करनेवाला, डरानेवाला और इनके धन व प्राण आदिका लेनेवाला, यह कंटकरूप दैत्य मुझसे वरदान पा, प्रतिपक्षशून्य होकर, युद्ध

१ राग केदारा ॥ आपनो हित रावरेसों जो पै सूझै ॥ तो जन तनपर अछत शीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥ निज अवगुण गुण राम रावरे लखि सुनि मति मन मूझै । रहनि कहनि समुझनि तुलसीकी को कृपाल बिन बूझै ॥ १ ॥

हुए हैं ऐसे तुझ तुच्छके बकवादपर वीरलोग ध्यान नहीं देते ॥ १० ॥ ये हम पातालमें रहनेवालोंकी धरोहरके रहनेवाले हैं और तेरी गदासे डरते निर्लज्ज होकर, भागते फिरते हैं. यदपि तेरे सामने ठहरनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है तथापि बलवानसे वैर बांधकर, भागकर, कहां जायं ? अब तो किसी कदर संग्राममें ठहरनाही पड़ेगा. खैर हम तो खड़े हैं ॥ ११ ॥ पर अब तुझसे जो कुछ हमारा बुरा हो सकता हो वह तू तुर्त कर ले, विचार मत करे, भला तू पदचरोंके यूथपतियोंमें प्रधान है, क्या देखता है ? हमें मारकर, अपने बांधवोंके आसू क्यों नहीं पोंछता ? कहा है कि–जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता वह

एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ॥ तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेंद्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥ भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवंचयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवांतकम् ॥ १५ ॥ पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयंतमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरंभाद्दष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥ ततश्च गदयाऽराति दक्षिणस्या भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥

असभ्य ( सभामें अयोग्य ) गिना जाता है ॥ १२ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–इस प्रकार हरि भगवान्ने उसका तिरस्कार किया और क्रोधमें आकार बहुत ठट्ठा किया, तब उस दैत्यने खिलाये जाते महान् सांपके समान बड़ा भारी क्रोध किया ॥ १३ ॥ क्रोधके मारे इंद्रियां जिसकी चलायमान होरहीं हैं ऐसा, वह दैत्य अमर्ष क्रोधवशसे निसासा डालता, जल्दी भगवान्के निकट पहुँचकर, भगवान्पर गदासे प्रहार करने लगा ॥ १४ ॥ वक्षस्थलका लक्ष्य करके, चलायीहुई शत्रुकी गदाके वेगको भगवान्ने तिरछा होकर, जैसे योगीपुरुष कालको बचा लेते हैं वैसे, बचा लिया ॥ १५ ॥ तब फिर अपनी गदा ले, बारंबार गदाको घुमाते और क्रोधके मारे होंठ चाबतेहुए दैत्यपर भगवान् क्रोधकरके चले ॥ १६ ॥ और प्रभुने शत्रुकी दाहिनी भौंहपर गदाका प्रहार

वता कि जो तुझे बलि देते हैं, वे सब निर्मूल होकर, स्वयं ( आप ) नाश हो जायंगे ॥ ५ ॥ वैरीके दुर्वचनरूप भालोंसे ताड़ित कियेजाते वे वराह भगवान् दाढ़के अग्रपर धरीहुई पृथ्वीको भयभीत देखकर, दुर्वचनकी व्यथाको सहन करते, ग्राहसे ताड़ित किये हुए हथिनीसहित हाथीके समान जलसे बाहिर निकले ॥ ६ ॥ जैसे मगर हाथीके पीछे दौड़ता है, वैसे जलसे बाहिर निकलते हुए वराह भगवान्के पीछे वह विकराल दाढ़ोवाला हिरण्याक्ष नाम दैत्य दौड़ा; और वज्रसे कठोर शब्दवाला वह दैत्य बोला कि–निर्लज्ज नीच मनुष्योंके लिये कौनसी बात निंदनीक है ? ॥ ७ ॥ हिरण्याक्ष तौ ऐसे दुर्वचन कह रहा था



स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादंबुमध्याद्ग्राहाहतः स करेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥ तं निःसरंतं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ॥ करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥ परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं कांचनचित्रदंशम् ॥ मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदंतं दुरुक्तैः प्रचंडमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ॥ न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णंत्यभद्र ॥ १० ॥

और ब्रह्माजी स्तुति करते थे तथा देवता पुष्पोंकी वर्षा करते थे, इतनेमें उस शत्रुके देखते देखते हरि भगवान् उस पृथ्वीको जलके ऊपर व्यवहारगोचरप्रदेशमें रखकर, उसमें अपनी आधारशक्ति धरी, क्योंकि वह फिर पीछी जलमें बूड़ न जाय ॥ ८ ॥ सुवर्णके आभरण सजाये, बड़ी गदा धारण किये, कंचनका विचित्र कवच पहरे और दुर्वचनोंसे बारंबार मर्मवेध करते, पीछे लगेहुए दैत्यके सामने देख, प्रचंड क्रोध करके, वराह भगवान्ने यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ ९ ॥ भगवान् बोले कि–अरे दैत्य ! सच है; हम जलचारी वराहही हैं, तथापि तुझसे कुत्तोंको ढूंढते फिरते हैं. हे अभद्र ! मृत्युके पाश जिसके गलेमें पड़े

अठारहवें अध्यायमें हिरण्याक्ष और पृथ्वीका उद्धार करनेवाले वराह भगवान्के महायुद्धका समानरीतिसे वर्णन किया जायगा कि जिस युद्धसे देवता घबरागये थे ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे विदुर ! उदारचित्त और मदमत्त दैत्य हिरण्याक्ष इस प्रकारसे वरुणके वचन सुनकर, उनको न गिनता नारदजीके मुखसे विष्णु पातालमें गये हैं ये समाचार सुन कर, बड़ी त्वराके साथ पातालमें पहुँचा ॥ १ ॥ वहां दाढ़के अग्रभागपर पृथ्वीको धारण किये और अरुणकांतिवाले नेत्रसे अपने ( हिरण्याक्षके ) तेजका तिरस्कार करते हरि भगवान्को देखकर, वह दैत्य हँसकर, बोला कि– अहो ! जलमें रहनेवाला वराह ॥ २ ॥ हिरण्याक्षने वराह भगवा-

मैत्रेय उवाच ॥ तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥ हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णंतमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥ २ ॥ आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुंच नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ॥ न स्वस्तियास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हंत्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥ त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ बलिं हरंत्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यंत्यमूलाः ॥ ५ ॥

न्से कहा कि–हे मूर्ख ! आ, हमारी यह पृथ्वी छोड़ दे; क्योंकि ब्रह्माजीने यह पृथ्वी हम पातालवासियोंको सौंपी है. हे सूकरमूर्तिधारण करनहारे ! हे देवोत्तम ! इस पृथ्वीको लेकर, मेरे देखते कभी कुशलपूर्वक नहीं जा सकेगा ॥ ३ ॥ जो मायाद्वारा कपट करके अपरोक्षमें जय पाकर, असुरोंको मारता है, क्या वही तू हमारा नाश करनेके लिये हमारे शत्रु देवतानसे पुष्ट किया गया है ? हे मूर्ख ! योगमायारूप अचिंत्य जिसका बल है ऐसे अल्प पुरुषार्थवाले तुझको मारकर, मैं मेरे बंधुलोगोंके अश्रु मार्जन करूंगा ॥ ४ ॥ हमारे हाथसे छूटीहुई गदाके प्रहारसे जब तेरा शिर विखर जायगा और तू मर जायगा, तब ऋषि और दे-

और दैत्यलोक ( पाताल ) के पालक वरुणके निकट जाकर, हँसते हँसते ठठ्ठा करनेके लिये नीचकी भांति प्रणाम करके, हिरण्याक्षने कहा कि-हे अधिराज ! मुझे युद्ध देवो ॥ २७ ॥ हे प्रभु ! आप लोकपाल हो, आप सबके अधिपति हो, आपका जगत्में बड़ा यश है, आप दुर्मद वीरमानी पुरुषोंके पराक्रमका नाश करनेवाले हो; क्योंकि-आपने सब दैत्य और दानवोंको जीत कर, पहले इस लोकमें राजसूय नाम यज्ञ किया है ॥ २८ ॥ महामदमत्त वैरी हिरण्याक्षने इस प्रकार भगवान् वरुणका बहुत कुछ ठठ्ठा किया जिससे वरुणको बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ. परंतु उसे अपनी बुद्धिसे शांत करके, वरुण बोले कि-हे अंग ! अब

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ॥ विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुरा यजत्प्रभो ॥ २८ ॥ स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदंगोपशमं गता वयम् ॥ २९ ॥ पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ॥ आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥ ३० ॥ तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ॥ यस्त्वद्विधानामसतां प्रशांतये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षदिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

हमने युद्ध आदि करना छोड़ दिया है. ॥ २९ ॥ हे दैत्यराज ! संग्रामके मार्गमें चतुर ऐसे तुमको पुरातन पुरुष भगवान्के विना दूसरा कोई पुरुष प्रसन्न करे ऐसा मुझे नहीं दीखता. जिनकी तुम जैसे मनस्वीपुरुष स्तुति करते हैं, वे भगवान् तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे ॥ ३० ॥ जो तुम जैसे दुष्ट पुरुषोंका नाश करनेके निमित्त तथा सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे वराह आदि अवतार धारण करते हैं, उन भगवान्के सन्मुख हो, गर्वको त्याग कर, तू श्वानमंडलीसे घिरकर, रणशय्यामें शयन करेगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

को अपने आधीन किया ॥ १९ ॥ इसका छोटा भाई प्यारा हिरण्याक्ष इसे सदा प्रसन्न रखता, एक समय हिरण्याक्ष गदा हाथमें ले, युद्ध करनेकी इच्छासे रणको तलाश करता स्वर्गमें गया ॥ २० ॥ पांवोंमें सुवर्णके नूपुर जिसके शोभा देरहे हैं ऐसे, वैजयंती माला पहने, कंधेपै गदा धरे, दुःसह वेगवाले तथा मन, पराक्रम और वरदानसे गर्वित, निरंकुश और निडर हिरण्याक्षको देखकर, देवता डरे. सो जैसे गरुड़से डरते सर्प छिप जाते हैं, वैसे सब देवता छिप गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ अपने तेजसे देव-

हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन् रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्कांचननूपुरम् ॥ वैजयंत्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥ भीता निलिल्यिरे देवास्ताक्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥ स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेंद्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३ ॥ ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन्गंभीरं भीमनिःस्वनम् ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ सवर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ॥ स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७ ॥

तानको छिपे हुए जान, मत्त इंद्रादिक देवताओंमेंसे किसीको न देखकर, उस दैत्यराजने बड़ा बीरनाद किया ॥ २३ ॥ फिर वहांसे लौट कर, क्रीड़ा करनेकी इच्छासे वह महापराक्रमी दैत्य भयंकर गरजवाले गंभीर समुद्रके अंदर मत्त हाथीके समान घुसा ॥ २४ ॥ समुद्रमें घुसतेही वरुणकी सेना जलजंतु होश भूल गये और ऐसे डरे कि–विना मारे उसके तेजसे पराभव पाकर, बहुत दूर भाग गये ॥ २५ ॥ वह महाबली दैत्य कई वर्षोंतक पवनकी प्रेरी हुई समुद्रकी लहरोंको अपनी गदासे बारंबार काटताहुआ समुद्रमें क्रीड़ा करता रहा, फिर घूमता घूमता हे विदुर ! वह वरुणकी विभावरी नाम पुरीमें पहुंचा ॥ २६ ॥ जलजंतुओंके गणोंमें श्रेष्ठ

रुदन करने लगीं, विना पवन वृक्ष गिरने लगे ॥ १३ ॥ मंगल आदि पाप ग्रह गुरु बुध आदि शुभ ग्रहोंको और नक्षत्रोंको उल्लंघ कर जाने लगे और दीपित होकर, वक्रगतिसे पीछे लौट लौट कर, परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ औरभी बड़े बड़े उत्पात देखकर, असल तत्वको न जाननेवाली प्रजा ब्रह्माजीके पुत्रोंको छोड़ कर, बहुत डरी और प्रजाने जाना कि-शायद जगत्का प्रलय न हो जाय ॥ १५ ॥ यकायक प्रगट हुआ है पूर्वसिद्ध पुरुषार्थ जिनका ऐसे वे दोनों आदिदैत्य पत्थरसे सार-

ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पाता न तत्तत्त्वविदः प्रजाः ॥ ब्रह्मपुत्रान्ऋते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥ १५ ॥ तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ॥ ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥ १६ ॥ दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदंगदा भुजौ ॥ गां कंपयंतौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकांच्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥ प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥

भूत शरीरसे जैसे दो पर्वतराज बढ़ते हों वैसे बढ़ने लगे ॥ १६ ॥ सुवर्णमय किरीटकी कोटियोंसे आकाशको स्पर्श करते, देदीप्यमान भुजबंधवाली भुजाओंसे दिशाओंको रोंकेहुए और चरणोंसे पद पदमें पृथ्वीको कंपायमान करते, वे दोनों भाई सुंदर कटिमेखलावाली कमरसे सूर्यकोभी उल्लंघ कर रहने लगे ॥ १७ ॥ उस युगलमेंसे जो कश्यपजीके शरीरसे प्रथम पैदा हुआ था, उसका नाम तो कश्यपजीने हिरण्यकशिपु रक्खा; और जिसे दितिने प्रथम जन्म दिया, उसे प्रजा हिरण्याक्ष कहती थी॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने अपने भुजबल और ब्रह्माजीके वरदानसे उद्धत हो, किसीसे मृत्युका भय न रख कर, लोकपालोंसहित त्रिलोकी-

१ यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत् ॥ द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेश विपर्ययात् ॥ १ ॥ इति पिंडसिद्धौ. अर्थ-जब योनिपुष्पमें पड़ता हुवा बीज द्विधाभूत यानी दो भागसे पहलेपीछे हो, पड़ता है तब दो गर्भ होते हैं और निकलनेके समय गर्भाधानसे उलट यानी पहलेका पीछे, पीछेका पहले निकलता है. ऐसा पिंडसिद्धिमें कहा है ॥ १ ॥ भावार्थ यह है कि- गर्भ रहनेके समय जो प्रथम वह माताके पेटसे बाहर होनेके समय पीछे निकलता है और जो पीछे सो पहले तिसपर यह दृष्टान्त है कि--कोई पात्रमें कोई बीज रक्खी तो जो पहले रक्खी वह पीछेही निकलेगी.

ध्वजावाली और प्रबल पवनसमूहरूप सेनावाली महाकठोर पवन वृक्षोंको समूल उखेड़ती और बारंबार खैं खैं करती बहने लगी ॥ ५ ॥ मानों बहुत हँसती हों वैसी बिजलियां जिनमें दमक रही हैं ऐसी बादलकी घटावोंसे तारामंडल कहींभी दिखायी नहीं देता था और आकाशमें ऐसा अंधकार फैल गया था कि-कुछभी उस समय नजर नहीं आता था ॥ ६ ॥ जिसके भीतरके मकर आदि जंतु क्षोभयुक्त हो रहे हैं एसा समुद्र उदास हो वैसे तरंगरूप हाथ उठाकर, पुकार रहा था, बावड़ी, कुएं आदि जलाशयोंके साथ सब नदियोंके कमल सूख गये और क्षोभ बढ़ गया ॥ ७ ॥ राहुसहित सूर्य-चंद्रमाके बारंबार परिधि ( मंडल ) होने

उद्गसत्तंडिदंभोदघटया नष्टभागणे ॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥ ६ ॥ चुक्रोश विमना वार्द्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ॥ सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपंकजाः ॥ ७ ॥ मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययोः ॥ निर्घातारथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥ अंतर्ग्रामेषु मुखतो वमंत्यो वह्निमुल्बणम् ॥ सृगालोलूकटंकारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥ ९ ॥ संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ॥ व्यमुंचन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नंतो धरातलम् ॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥ ११ ॥ रुदंतो रासभत्रस्ताः नीडादुदपतन्खगाः ॥ घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥ गावोऽत्र सन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ॥ व्यरुदन्देवलिंगानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥ १३ ॥

लगे. बिना बादल गाज हो रही थी और पर्वतोंकी गुफाओंमेंसे रथके शब्दके समान ध्वनियां होने लगीं ॥ ८ ॥ मुखमेंसे उल्वण अग्निको उगलतीं हुई सियारनियां, सियार और उलूक ( उल्लू ) के टंकार शब्दोंके साथ गांवके बीच अमंगल शब्द बोल रहीं थीं ॥ ९ ॥ इधर उधर फिरते हुए कुत्ते गाते हों अथवा रोते हों वैसे गर्दन उठाकर, अनेक प्रकारसे भोंक रहे थे ॥ १० ॥ हे विदुर ! कठोर खुरोंसे धरातलको विदारण करते गधे भौं भौं करते यूथके यूथ मत्त होकर, दौड़ने लगे ॥ ११ ॥ गधोंसे त्रास खाकर, पक्षी रुदन करतेहुए घोंसलोंसे गिरने लगे और घोष व जंगलमें पशु विष्ठा और मूत्र कर रहे थे ॥ १२ ॥ गायोंके स्तनोंमेंसे दूधकी एवज रुधिर निकलने लगा और वे बहुत खाने लगीं, बादलमेंसे पूय ( पीव ) बरसने लगी, देवतानकी प्रतिमा

प्रवेश होकर, दितिके गर्भमें आये हैं ॥ ३४ ॥ उन दोनों दैत्योंके तेजसे आज तुम्हारा तेज मंद हो गया है, सो प्रभु आपही इसका प्रबंध करेंगे ॥ ३५ ॥ जो जगत्को रचते हैं, पालते हैं, संहार करते हैं और जिन आदिपुरुषकी योगमायाको योगेश्वरभी पार नहीं उतर सक्ते; वे त्रिलोकीनाथ भगवान् अपना आपही पालन करेंगे, इसमें यदि हम विचारभी करें तो हमारे विचारसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥ फिर सत्रहवें अध्यायमें उनके, लोकभयंकर जन्मका वर्णन होगा और दिग्विजयमें अद्भुत

तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥ ३५ ॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्याऽऽत्मभुवा गीतं कारणं शंकयोज्झिताः ॥ ततः सर्वे न्यवर्तंत त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥ दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशंकिनी ॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ॥ उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥

हिरण्याक्षका प्रभाव वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–ब्रह्माजीका कहाहुआ भयका कारण सुनकर, देवतानकी शंका निवृत्त हुई, तब देवतालोग स्वर्गको पीछे लौट आये ॥ १ ॥ पतिकी आज्ञासे पुत्रके जन्मसे डरती दितिने सौवर्षतक गर्भ धारण किया, जब सौवर्ष पूरे हो गये, तब पतिव्रता दितिके दो पुत्र हुए ॥ २ ॥ जिस समय वे जनमे, उस समय आकाश, पृथ्वी और अंतरिक्षमें लोकोंको अत्यंत दुःख देनेवाले बहुतसे उत्पात हुए ॥ ३ ॥ पर्वतोंके साथ पृथ्वीके प्रदेशोंमें भूचाल होने लगा, सब दिशायें जलने लगीं, उल्कासहित वज्रपात पड़ने लगे, दुःखके कारणभूत धूमकेतुओंका उदय होने लगा ॥ ४ ॥ रजरूप

दृढ़ किया है, ऐसे ये जय विजय दैत्ययोनिको प्राप्त होकर, शीघ्र पीछे हमारे पास आजायंगे, हे ब्राह्मणो! आपने जो शाप दिया है, वह मेराही दिया हुआ समझो ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि—नेत्रोंके आनंदके पात्र हरि भगवान् और स्वयंप्रकाशवाला भगवान्का निवासस्थान वैकुंठलोक इन दोनोंको देख कर, फिर वे मुनिलोक ॥ २७ ॥ भगवान्की परिक्रमा दे, नमस्कार कर, आज्ञा मांग कर, वैकुंठलोककी शोभाकी प्रशंसा करते प्रसन्न होकर, वहांसे पीछे लौट आये ॥ २८ ॥ भगवान्ने अपने किंकरोंसे कहा कि—तुम जाओ, डरो मत, तुम्हारा भला होगा, हम ब्रह्मदंडको निवारण करसक्ते हैं, पर अभी हमारी यही इच्छा है, यह

ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानंदभाजनम् ॥ वैकुंठं तदधिष्ठानं विकुंठं च स्वयंप्रभम् ॥ २७ ॥ भगवंतं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसंतो वैष्णवीं श्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं माभैष्टमस्तु शम् ॥ ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हंतुं नेच्छे मतं तु मे ॥ २९ ॥ मयि संरंभयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥ ३० ॥ द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३१ ॥ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३२ ॥ तदा विकुंठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥ ३४ ॥

सब हमारी इच्छासे हुआ है ॥ २९ ॥ वैरभावसे हमारे विषे भयीहुई चित्तवृत्तिकी एकाग्रतासे ब्राह्मणोंका शाप भुगत कर, थोडेही समयमें तुम पीछे हमारे पास आ जाओगे ॥ ३० ॥ भगवान् इस प्रकार द्वारपालोंको आज्ञा कर, विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान और सबसे अधिक शोभावाले अपने घरमें दाखिल हुए. ॥ ३१ ॥ वे दोनों देवश्रेष्ठ जब ब्राह्मणोंके शापसे दुस्तर हरि भगवान्के लोकसे नीचे गिरे, उस समय उनकी शोभा क्षीण हो गयी और गर्व जाता रहा ॥ ३२ ॥ जिस समय वे वैकुंठसे गिरने लगे, तब हे पुत्रो! विमानोंके अंदर बड़ा हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ वेही हरि भगवान्के पार्षद अभी कश्यपजीके उग्रवीर्यमें

हमारे रजोगुण और तमोगुणका वर देनेवाली शुद्धसत्व मूर्तिसे नाश करो ॥ २२ ॥ हे देव ! धर्ममूर्ति आपही रक्षण करने योग्य ब्राह्मणकुलकी भली भांति पूजाद्वारा तथा मधुर और सत्यवाणीद्वारा रक्षा न करो, तो आपके प्रवृत्त कियेहुए कल्याणकारी वेदमार्गकाभी अवश्य नाश हो जाय, क्योंकि आप सबमें श्रेष्ठ हो और लोककी यह रीति है कि-उत्तम पुरुषके आचरणको वह प्रमाण करके मानता है ॥ २३ ॥ वेदमार्गका नाश होना, यह बात, मनुष्योंके कल्याणकी इच्छा रखनेवाले और अपनी सामर्थ्यसे राजा

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन स सूनृतेन ॥ तर्ह्येव नंक्ष्यति शिवस्तव देव पंथा लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥ २३ ॥ तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ॥ नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥ २४ ॥ यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनु मन्महि निर्व्यलीकम् ॥ अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दंडो येऽनागसौ वयमयुंक्ष्महि किल्बिषेण ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरंभसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ॥ भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥

आदि धर्म विरोधियोंका समूल नाश करने वाले, सत्वमूर्ति आपको ठीक नहीं लगती और धमकी रक्षाके अर्थ ब्राह्मणोंकी आरे नम्रता दिखलानी इसमें किसी प्रकारसेभी सबके अधिपति और जगत्‌के पालक आपके तेजकी हानि नहीं है. यह तो केवल आपका विनोद मात्र है ॥ २४ ॥ हे प्रभु ! इन जयविजयोंको दूसरा दंड देना चाहते हो, अथवा इनकी कुछभी अधिक जीविका कर देना चाहते हो, तो हम उस बातको निष्कपट मनसे स्वीकार करते हैं. और इन निरपराधी जयविजयोंको हमने शाप दिया, तासों हमेंभी जो योग्य होवे वह दंड देओ ॥ २५ ॥ यह सुनकर, श्रीभगवान् बोले कि-क्रोधके वेगसे वृद्धिंगत ( वृद्धिको प्राप्त ) चित्तकी एकाग्रतासे जिन्होंने योगको



१ तदुक्तं गीतासु । यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ १ ॥ ॥ अर्थ-वही गीतामें कहा है कि- जो जो आचार श्रेष्ठ पुरुष करता है वही वही आचरण इतर पुरुषभी करता है. और वह ( श्रेष्ठपुरुष ) जो प्रमाण करता है. लोक उसके पीछे २ वर्तता है ॥ १ ॥

आप आत्मा और परमदैवत हो ॥ १७ ॥ आपही अनेक अवतार धारण करके सनातन धर्मकी रक्षा करते हो, अतएव आप धर्मके, विकाररहित और परमगुह्य फलरूप हो ॥ १८ ॥ योगीलोग जिनके अनुग्रहसे विरक्त होकर, विना श्रम मृत्युसे मुक्त हो जाते हैं. उनपर हम जैसे दूसरे लोक अनुग्रह करें, क्या यह संभव सक्ता है ? ॥ १९ ॥ सुकृतीलोगोंकी अर्पण कीहुई चरणसंबंधी तुलसीकी नवीन मालाही जिसका निवासस्थान है ऐसे भ्रमरराजके स्थानभूत चरणारविंदकी कामनावाली साक्षात् लक्ष्मी कि- जिनकी चरणरजको धनकी कामनावाले दूसरे लोग क्षणक्षणमें अपने शिरसे धारण करते हैं, वहभी जिन आपकी सेवा करती

त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥ १८ ॥ तरंति ह्यंजसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् ॥ योगिनः स भवान्किस्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥ १९ ॥ यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ॥ धन्यार्पितांघ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥ २० ॥ यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसंगः ॥ स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजःपुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥ २१ ॥ धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्ऽथम् ॥ नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥

हैं ॥ २० ॥ और जिनकी अतिउत्तम भगवद्भक्तोंमें पूर्ण आसक्ति है ऐसे जिन आपने शुद्ध आचरणोंसे सेवा करतीहुई उन महालक्ष्मीकाभी अतिआदर नहीं किया, वे गुणोंके आश्रयरूप आप क्या ब्राह्मणोंकी मार्गसंबंधी पवित्र चरणरजसे अथवा श्रीवत्सचिन्हसे पवित्र होते हो ? नहीं. इन दोनों पदार्थोंका धारण करना आपके केवल शोभार्थक है, आप जो हमारा इतना मान करते हो, इसका कारण यह प्रतीत होता है कि-आपके देखादेखी दूसरेभी सब लोग हमारा सत्कार करें ॥ २१ ॥ हे तीनयुगोंमें अवतार धारण करनहारे भगवन् ! आप धर्ममूर्ति हो, सो आपके तप, शौच और दया इन तीन चरणोंसे आप ब्राह्मण तथा देवतानके प्रयोजनके अर्थ इस स्थावर जंगमात्मक जगत्की रक्षा करते हो, तासों तप, शौच आदि धर्मके चरणोंके नाश करनेवाले

पराधके फलको भोगकर, शीघ्र पीछे मुझको प्राप्त हो जावें और इनपर हम इतना अनुग्रह करते हैं कि- इन दोनों हमारे अनुचरोंका हमारे वियोगका थोड़े समयमें अंत आ जावे ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि-इसके अनंतर मंत्रके प्रवाहके समान, अथवा ऋषिकुलके योग्य, प्रिय, प्रकाशमान, देवी और सुंदर भगवान्‌की वाणीका स्वाद लेके, क्रोधसे डसेहुयेभी उन सनत्कुमारोंका आत्मा तृप्त न हुआ. तात्पर्य यह है कि- क्रोधविषव्याप्त पुरुषोंका मन रसानुभवके अभावसे प्रिय भाषणकोभी सहन नहीं करता तथापि भगवान्‌की वाणी सुनते क्रोधसे भरे हुयेभी सनत्कुमार तृप्त न हुये. श्रेष्ठ तथा मित अक्षरवाली व अभिप्रायसे अतिगहन व अर्थगौरववाली भगवान्‌की मधुरवाणीको कान देकर, वे मुनि सुनते हैं, तथा वे विचार करते हैं कि- ' क्या भगवान् इस वच-

ब्रह्मोवाच ॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मन्युदष्टाना तेषामात्माऽप्यतृप्यत ॥ १३ ॥ सतीं व्यादाय शृण्वंतो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ॥ विगाह्यागाधगंभीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ ते योगमाययाऽरब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ॥ प्रोचुः प्रांजलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७ ॥

नसे हमारी प्रशंसा करते हैं अथवा हमारी निंदा करते हैं ? अथवा हमारे कियेहुए दंडमेंसे कुछ कम करना चाहते हैं या कुछ औरही करना चाहते हैं ? यह उनके बिलकुल समझमें नहीं आया ॥ १३ ॥ १४ ॥ योगमायाके प्रभावसे जिन्होंने परमऐश्वर्यके महोत्सवका आविष्कार किया है ऐसे प्रभुके पास हाथ जोड़, रोमांचित हो, भगवान् अपनी स्तुति करते हैं ऐसा बहुत देरसे जानकरके, प्रसन्न होकर, उन्होंने यह बचन कहा ॥ १५ ॥ सनत्कुमार बोले कि- हे भगवन् ! आप सर्वके ईश्वर होकर, ' मुझपर अनुग्रह किया ' ऐसे नम्रताके वचन कहते हो, तासों हे भगवन् ! आप क्या करना चाहते हो ? वह हमारी समझमें नहीं आता ॥ १६ ॥ हे प्रभु ! ब्राह्मण जिनके परमप्रिय हैं ऐसे आपके ब्राह्मण परमदैवत हैं और देवतानके परमपूज्य ऐसे ब्राह्मणोंके भगवान्

वहभी हमारा त्याग नहीं करतीं, उनसे प्रतिकूल बर्तनेवाली हमारी भुजाभी हो, तौ किस कामकी ? ॥ ७ ॥ हमारे अर्पण किये-हुए कर्मके फलद्वारा संतोषप्राप्त अर्थात् निष्काम तथा घृत जिसमेंसे टपक रहा है ऐसे अन्नसे प्रतिग्रास रसास्वादपूर्वक भोजन करते, ब्राह्मणके मुखद्वारा जैसा हम बलि खाते हैं, वैसा यज्ञमें यजमानका चरुपुरोडाशादि बलि अग्निके मुखद्वारा नहीं खाते ॥ ८ ॥ जिनके चरणारविंदका जल शिवसहित सर्वलोकोंको शीघ्र पवित्र करता है, वह अखंड और अप्रतिहत योगमायाकी विभूतिवाले हम जिन ब्राह्मणोंकी निर्मल चरण रजको मुकुटोंसे धारण करते हैं वे ब्राह्मण कदाचित् अपराध करें तथापि उनके

नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्वितानेश्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ॥ यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनु-घासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ ८ ॥ येषां बिभर्म्यहमखंडविकुंठयोगमायाविभूतिरमलांघ्रि-रजःकिरीटैः ॥ विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणांभः सद्यः पुनाति सहचंद्रललामलोकान् ॥ ९ ॥ ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ॥ द्रक्ष्यंत्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यव-स्तान्गृध्रा रुषा मम कुषंत्यधिदंडनेतुः ॥ १० ॥ ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयंतस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥ वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद्गृणंतः संबोधयंत्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥ ११ ॥ तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो ममांतिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥ १२ ॥

अपराधका सहन कौन न करै ? ॥ ९ ॥ जो लोग गौ, ब्राह्मण और अनाथ जीवोंको जो हमारे स्वरूप हैं, उन्हें भेददृष्टि करके मुझसे जुदा देखते हैं, पापके प्रभावसे उनकी ज्ञानदृष्टि नाश हो जाती है और उसीसे सर्पकेसे क्रोधवाले यमराजके गिद्धसे दूत क्रोध करके उसे तीखी चोंचोंसे छिन्न भिन्न कर देते हैं ॥ १० ॥ कठोर वचन कहते हुए ब्राह्मणोंकोभी जो लोग हमारे तुल्य जा-नकर, उनको प्रसन्न मनसे तथा मंदहास्यरूप अमृतसे सींचेहुए मुखकमल अर्थात् मंदहास्ययुक्त विकसित मुखकमलसे पूजा करते हैं तथा जो पिताकी सत्पुत्र जैसे स्तुति करे वैसे प्रेमभरी मधुर वाणीसे उनकी स्तुति करते हैं तथा मानपूर्वक उनसे बात चीत करते हैं, उनके हम वशीभूत हो जाते हैं ॥ ११ ॥ अतएव अपने स्वामीके अभिप्रायको न जाननेवाले ये जय विजय अपने अ-

प्रशंसा करके वैकुंठवासी विष्णु भगवान्ने उनसे यह वचन कहा ॥ १ ॥ भगवान् बोले कि– ये दोनों जयविजय हमारे पार्षद हैं, इन्होंने हमारी आज्ञाका उल्लंघन करके, जो बहुत कुछ अपराध किया ॥ २ ॥ उस अपराधके वास्ते हमारे भक्त आप लोगोंने इनको जो दंड दिया हैं, हे मुनिलोगो ! आप देवतालोगोंका अपराध करनेसे उसीको हमने अंगीकार किया ॥ ३ ॥ ब्राह्मण हमारे परमदैवत हैं, इस लिये आपको प्रसन्न करके हम आपके क्रोधको शांत करते हैं. और हमारे मनुष्योंने आपका अपमान किया. इसलिये हमनेही अपमान किया ऐसे हम मानते हैं ॥ ४ ॥ चाहे किसीके चाकरनेही अपराध किया हो, परंतु लोग तौ

श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रांतामतिक्रमम् ॥ २ ॥ यस्त्वेतयोर्धृतो दंडो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥ ॥ ३ ॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्मदैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥ सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हंति त्वचमिवामयः ॥ ५ ॥ यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुंठः ॥ सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिद्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥ ६ ॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ॥ न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहंति ॥ ७ ॥

उसके मालिकका नाम लेकर, मालिककोही बदनाम करते हैं, जिससे जैसे श्वित्र यानी फूलके होनेसे त्वचा यानी रूपका नाश हो जाता है, वैसे उत्तम कीर्तिका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ जिसके ( हमारे ) अमृतके समान निर्मल यशमें श्रवण करनेरूप नहानेसे चांडालपर्यंत सकल जगत् तुर्त पवित्र हो जाता है, वह हम केवल आपके प्रतापसेही अतिपवित्रकीर्तिको प्राप्त हुए हैं, सो जो हमारी भुजाभी आपसे प्रतिकूल चले, तो उसेभी काट गिरावें, फिर दूसरेकी तौ बातही कौन ? ॥ ६ ॥ जिनकी सेवाके प्रभावसे हमारे चरणकमलोंकी रज पवित्र मानी जाती है और हम सकलजगत्के मलको तुर्त दूर कर सक्ते हैं तथा शीलसंपन्न हैं और वैराग्य रखने परभी साक्षात् लक्ष्मी कि–जिनके केवल अवलोकनमात्रके अर्थ ब्रह्मादिक देवता नियम धारण करते हैं,

परमआत्मतत्वरूप आपके स्वरूपको हम जानते हैं ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! कीर्तन करने योग्य पावन जिनका यश है ऐसे, आ-
पकी कथारसके ज्ञाता आपके चरणारविंदके शरणागत भक्तलोग आपके मोक्षरूप प्रसादकोभी नहीं गिनते, तब आपकी भ्रुकुटीके
चढ़ानेसे जिसमें भय है ऐसे, दूसरे स्वर्गादिसुखको तौ कैसे गिनें ? ॥ ४८ ॥ यदि हमारा चित्त भ्रमरके समान आपके चरणारविं-
दमें रमा करे और हमारी वाणी जो तुलसीकी तरह आपके चरणकमलके संबंधसे शोभायमान रहे तथा हमारे कानोंके विवर
( छेद ) आपके गुणगणोंसे जो पूर्ण होवें, तौ भले हमारे पापसे हम नरकमें जायं और नीच योनिमें जन्म लेवें ॥ ४९ ॥ हे

नात्यंतिकं विगणयंत्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येंऽग त्वदंघ्रिशरणा भव-
तः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥ ४८ ॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चे-
तोऽलिवद्यदि नु ते पदयोरमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेंऽघ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि क-
र्णरंध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूतरूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते
नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कं-
धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ॥ प्रतिनंद्य
जगादेदं विकुंठनिलयो विभुः ॥ १ ॥

महत्कीर्ति ! हे ईश्वर ! आपने जो यह अपने स्वरूपका दर्शन दिया, इससे हमारे नेत्र परमआनंदको प्राप्त हुए. जिनके स्वरूपका
दर्शन अजितेंद्रिय पुरुषोंको होना अतिदुर्लभ है, तथापि इस प्रकारसे प्रगट होकर, जिन्होंने दर्शन दिया, ऐसे नेत्रगोचर आपको
हम प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचदशो-
ऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें, हरि भगवान्के सांत्वना देनेसे पश्चात्ताप करते हुए मुनि लोगोंने उनपर दैत्यदेहमेंभी
अनुग्रह किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–इसप्रकार वे योगी मुनि भगवान्की स्तुति कर रहे थे, वहां उनकी

---

१ परिपूरण पापके कारणते भगवन्तकथा न रुचे जिनको ॥ तिन गनिका नारि बुलाय लई नचवावत हैं दिनको रनको ॥ मिरदंग कहै धिक है इनको मंजीर कहै
किनको किनको ॥ तब हाथ उठायके नारि कहै इनको इनको इनको इनको ॥

युनें उन मुनिलोगोंके नासाछिद्रद्वारा अंदर जाकर, ब्रह्मानंदके अनुभवी होनेपरभी उनके चित्तमें तो अतिहर्षरूप और शरीरमें रोमांचरूप, भली भांति क्षोभ उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ अतिशय सुंदर अधर और कुंदसे उज्वल हास्ययुक्त नील कमलके आभ्यंतर भागके सदृश भगवान्‌के मुखारविंदके सन्मुख ऊंचा देखकर, अपना मनोरथ पूर्ण होनेपरभी नखरूप रक्तमणि ( माणिक्य ) जिनमें प्रकाश रहे हैं ऐसे, भगवान्‌के चरणारविंदका फिर दर्शन करके उसका ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ योगमार्गद्वारा भगवान्‌के स्वरूपको ढूंढनेवाले पुरुषोंके ध्यानके विषयभूत, तत्ववेत्ता पुरुषोंके अतिआदर करनेयोग्य, नेत्रोंको आनंद देनेवाले, स्वाभाविक

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुंदरतराधरकुंदहासम् ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमंघ्रिद्वंद्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥ ४४ ॥ पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥ ४५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ योऽंतर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनंतराद्धः ॥ यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तं त्वा विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयंतमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रंथयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥

अणिमादिक अष्ट सिद्धियोंसे संपन्न और अपने पुरुषस्वरूपसे दर्शन देते ऐसे हरि भगवान्‌की मुनिलोग स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि-हे अनंत ! जो आप सब जीवोंके अर्थात् दुरात्मानकेभी हृदयमें विराजो हो, तथापि वे लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते, वे आप, जिस समय आपसे उत्पन्न भयेहुए हमारे पिता ब्रह्माजीने हमारे सामने आपका वर्णन किया, उसीसमय कानके छिद्रद्वारा तो हमारी बुद्धिमें पधार चुके, परंतु नेत्रोंसे साक्षात्कार तो आजही हुए हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! आपकी कृपासे जानेहुए श्रवण आदि नव प्रकारकी भक्तिरूप उपायद्वारा, शुद्धसत्वगुणवाले और अहंकाररहित वैरागी मुनिलोग जिस आत्मस्वरूपका हृदयके विषे अनुभव करते हैं और जो शुद्धसत्त्वमयमूर्ति करके क्षणक्षणमें भक्तोंपर प्रीति करता है, उस

नीकी बूंदें पड़ रही हैं और अपने द्वारपाल व सनकादिक मुनि इन सब लोगोंपर कृपा करनेमें प्रसन्न जिनका मुख है तथा जो स्पृहणीय गुणोंके धाम हैं और जो प्रेमभरी दृष्टिसे सदा भक्तलोकोंको सुख देते हैं तथा जो श्याम व विशाल वक्षःस्थलके बीच शोभायमान लक्ष्मीजीके हेतु भूर्लोकसे तपलोकपर्यंत सातों लोकोंके ऊपर मुकुटमणिके समान विराजमान अपने धामरूप वैकुंठलोकको शोभित कर रहे हैं और जो पीतांबरसे शोभायमान मोटे नितंबपर पड़ीहुई जो कटिमेखला उससे और भौंरे जिसपर गुंज रहे हैं ऐसी वनमालासे शोभायमान हैं, सुंदर पहुंचेमें वलय ( कंकण ) जिनके शोभ रहे हैं और गरुड़के कंधेपर एक हाथ रखकर, दूसरे, हाथसे जो कमलको फिरा रहे हैं. अपनी कांतिसे बिजलीकाभी तिरस्कार करनेवाले जो कुंडल उनकेभी मंडनभूत

पीतांशुके पृथुनितंबिनि विस्फुरंत्या कांच्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥ विद्युत्क्षिपन्मकरकुंडलमंडनार्हगंडस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दंडषंडविवरे हरता परार्ध्यहारेण कंधरगतेन च कौस्तुभेन ॥ ४१ ॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिंदिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ॥ मह्यं भवस्य भवतां च भजंतमंगं नेमुर्निरीक्ष्य न वितृप्तदृशो मुदा कैः ॥ ४२ ॥ तस्यारविंदनयनस्य पदारविंदकिंजल्कमिश्रतुलसीमकरंदवायुः ॥ अंतर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपिचित्ततन्वोः ॥ ४३ ॥

गंडस्थलसे शोभायमान व ऊंची नासिकासहित जिनका मुख है, मणिजटित मुकुट जिनके धरा हुआ है, भुजदंडके समूहके बीच विराजमान अमूल्य हार और कंठगत कौस्तुभ मणिसे जो शोभायमान हैं. भगवान्‌के स्वरूपके सामने लक्ष्मीका गर्वगंजन हो गया इसतरह भक्तलोग जिनके विषयमें अपने मनमें तर्कणा किया करते हैं, अपार जिनका सौंदर्य है और जो मेरे वास्ते शिवजीके वास्ते और तुम्हारे वास्ते अपने स्वरूपका आविर्भाव ( प्राकट्य ) करते हैं तथा अपने सेवक लोगोंने गमनोपयोगी छत्र, चमर, पादुका आदि पदार्थ जिनके तईं अर्पण किये हैं, ऐसे समाधिमें ध्यान करनेयोग्य प्रभुके प्रत्यक्ष पधारनेपर मुनियोंने साक्षात् नेत्रोंसे दर्शन किया. और दर्शन करनेसे जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं ऐसे, मुनिलोगोंने प्रीतिपूर्वक शिरसे प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन कमलनयन भगवान्‌के चरणारविंदसंबंधी केसरोंसे मिश्रित तुलसीके मकरंदयुक्त वा-

शुभ करना चाहिये ? उसका हम विचार करते हैं. ऐसे कहकर, बोले — कि तुमने परमात्माके विषे भेदभावकी दृष्टि की; इसलिये अब तुम यहांसे उस लोकमें जाओ, कि—जहां भेदबुद्धि करनेवालोंके महाशत्रु काम, क्रोध व लोभ आदि विद्यमान हैं ॥ ३४ ॥ उनका यह घोर वचन सुन और ब्राह्मणोंका शाप शस्त्रसमूहोंसेभी अनिवार्य है ऐसे जानकर, उन ऋषियोंके अपराधसे अति भयभीत हो, वे भगवान्के दोनों भृत्य ( सेवक ) अतिकायरतासे मुनियोंके चरण पकड़ कर, तुर्त दंडके समान चरणोंमें गिर गये और बोले कि— ॥ ३५ ॥ ईश्वरकी आज्ञा उल्लंघन करने रूप पाप हरण करनेवाला जो हम अपराधियोंपर आपने दंड किया वह यो-

तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदंडमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥ सद्यो हरेरनुचरावुरुबिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥ भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दंडो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥ ३६ ॥ एवं तदैव भगवानरविंदनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सह श्रीः ॥ ३७ ॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयः स्वसमाधिभाग्यम् ॥ हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरसीकरांबुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशंतम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयंतमिवाऽऽत्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥

ग्य है. सो यह दंड हमपर भले हो जावे, परंतु आपकी कृपाके प्रभावसे भयेहुए लेश मात्र पछतानेके हेतु, हम अज्ञानवाली नीची योनिमें जायं, वहां भगवान्के स्मरणका नाश करनेवाला मोह हमको न होना चाहिये ॥ ३६ ॥ अपने अनुचरोंने महात्मानका अपराध किया ऐसे जानकर, जिनकी नाभिमेंसे कमळ उत्पन्न हुआ है ऐसे, आर्य लोकोंके प्यारे प्रभु कि—जिनके चरणोंको महामुनि परमहंस ढूंढा करते हैं, वे अपने चरणोंसे चलते लक्ष्मीजीको साथ लिये वहां पधारे ॥ ३७ ॥ हंसके समान श्वेतपंखोंकी सुखकारी पवनके प्रभावसे डोलतीहुई श्वेतछत्ररूप चंद्रमा संबंधी मोतियोंकी सरोंरूप किरणोंमेंसे जिनपर पा-

नेके अयोग्य और आत्मतत्वके ज्ञाता, ऐसे चार सनत्कुमारोंको नग्न देखकर, ' अहो यहांभी धृष्टता ' ऐसे उनके प्रभावकी ओर हँसकर, अवज्ञा अनादरपूर्वक बेतसे रोंक दिये ॥ ३० ॥ उन दोनों द्वारपालोंने देवताओंके देखते उन्हें रोंक दिया, तब अतिपूज्य होनेसे यद्यपि उनके क्रोधका होना अनुचित है, तथापि प्यारे प्रभुके दर्शन करनेकी इच्छामें विघ्न होनेसे कछुक क्रोधसे नेत्रोंमें तुर्त लाल रंग लाकर सनत्कुमार बोले ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारोंने कहा कि-भगवान्‌की सर्वोत्तम सेवाके प्रभावसे इस वैकुंठलोकमें आकर, निवास करनेवाले समदृष्टि लोगोंमेंसे कितनेएक लोगोंको घुसने देना और कितनेएकको नहीं घुसने देना, ऐसी यह विषम दृष्टि तुम्हारी यहां आनेपरभी फिर कैसे रह गयी ? कदाचित् कहोगे कि ' स्वामीकी रक्षाके निमित्त ऐसा करना यह सेव-

ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिद्ध्यमानाः स्वर्हत्तमाह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभंग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥ ३१ ॥ मुनयः ऊचुः ॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ॥ तस्मिन्प्रशांतपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोःपरिशंकनीयः ॥ ३२ ॥ नह्यंतरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मानि नभो नभसीव धीराः ॥ पश्यंति यत्र युवयोः सुरलिंगिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥ ३३ ॥ तद्वाममुष्य परमस्य विकुंठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मंदधीभ्याम् ॥ लोकानितो व्रजतमंतरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥

कका धर्म है, तो सुनिये; यहां भगवान्‌के भक्त विना दूसरा कोईभी नहीं आसकता. दूसरा, शांतस्वरूप प्रभुके किसीके साथ विरोध नहीं है, कि जिससे किसीका धोखा रहे. अतएव हम जानते हैं, कि-तुम धूर्त हो; क्योंकि जो कपटी होता है, उसे सब जगत् आपसाही दीखा करता है ॥ ३२ ॥ जब धीर पुरुष, सब जगत् जिनके उदरमें है ऐसे भगवान्‌के विषे अपनी आत्मासे भेदभाव नहीं देखते, किंतु जैसे महाकाशसे घटाकाश भिन्न नहीं, वैसे अपने आत्माको परमात्माके विषेही देखते हैं, तब देववेषधारी तुमने भगवान्‌के उदरसे हमें बाहिर मानकर, उन भगवान्‌के विषेही द्वैतबुद्धिसे होनेवाले भयका आरोप किया, यह तुमने कुछ ठीक नहीं किया ॥ ३३ ॥ इसलिये वैकुंठनाथ भगवान्‌के भृत्य, ( चाकर ) व मंद बुद्धि ऐसे तुम दोनोंका इस समय क्या

त्रोंमें प्रेमाश्रु आ जाते हैं तथा शरीरमें रोम खड़े हो जाते हैं, ये हमसेभी उत्तम भक्तलोक वैकुंठलोकमें जाते हैं ॥ २५ ॥ जगतके गुरु हरि जिसमें विराजे हैं और लोकोंके एक वंदन करनेके योग्य व प्रधान देवतानके विचित्र विमानोंसे प्रकाशमान और जिसको पहले कभी नहीं देखा था, उस अलौकिक वैकुंठलोकको अष्टांग योगके प्रभावसे सनकादि मुनि प्राप्त होकर, परमआनंदको प्राप्तहुए ॥ २६ ॥ वे मुनि उस वैकुंठमें छह डेवढ़ीतक तो बे रोंक ठोंक निधड़क चले गये, फिर सातवीं डेवढ़ी आयी, वहां पौरपर समान अवस्थावाले व गदा हाथमें लिये और अमूल्य भुजबंध, कुंडल और किरीटसे सुंदर जिनका वेष है ऐसे, दो देव-

तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवंद्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुंठम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुंडलकिरीटविटंकवेषौ ॥ २७ ॥ मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितचतुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥ २८ ॥ द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ॥ सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये संचरंत्यविहता विगताभिशंकाः ॥ २९ ॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥

ता पौंरिया नजर आये ॥ २७ ॥ मदमत्त भौंरे जिसपर गुंज रहे हैं ऐसी, कंठमें लटकनेवाली वनमाल श्याम चार भुजाओंके बीच जिनके शोभ रही है ऐसे और कुटिल भ्रुकुटि व चढेहुए नासापुट, अरुण नेत्र इनसे किंचित् क्षोभयुक्त मुखपर कुछ क्रोध जिनके प्रतीत हो रहा है ऐसे दो देवतानको देखा ॥ २८ ॥ जैसे ये मुनि सुवर्णसे शोभायमान हीरोंके फाटकवाले पहले छह ६ दरवाजोंमें बिना पूंछे बे रोंक ठोंक घुसे थे, वैसे इस सातवें दरवाजेमेंभी द्वारपालोंके देखते इनको न पूंछकर, इनका अनादर करके, घुसे; क्योंकि ये मुनि सर्वत्र समदृष्टि होनेसे निधड़क बे रोंक ठोक सब जगत्में ऐसेही विचरते रहते हैं ॥ २९ ॥ भगवान्से प्रतिकूल जिनका स्वभाव है ऐसे इन दोनों द्वारपालोंने, वृद्ध होनेपरभी पांच वर्षकी अवस्थाके हों वैसे प्रतीत होते तथा रोंक-

होती हैं, कि जिनकी प्राप्तिके निमित्त दूसरे ब्रह्मादिक यत्न करते हैं ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! जहा अपनी सहेलियोंके साथ साक्षात् लक्ष्मी अपने वनमें तुलसीसे श्रीविष्णुभगवान्‌का पूजन करती हुई मूंगोंके जिनके तट हैं ऐसी अमृतसे मधुर जलवाली बावड़ियोंमें सुंदर केशपाश और ऊंची नासिकावाले अपने मुखका प्रतिबिंब देखकर, मानतीं हैं कि–अहो ! इस मेरे मुखका भगवान्‌ने चुंबन किया है. अर्थात् लक्ष्मीजीका सौभाग्यसुखभी भगवदनुग्रहके आधीन है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य पापहरण करनहारे हरिभगवान्‌की सृष्टि आदि लीलाकी कथाको तजकर, साररहित और बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाली तथा सुननेवालोंको अशरण

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमतांग यच्छ्रीः ॥ २२ यन्न व्रजंत्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वंति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुताहतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान् क्षिपंत्यशरणेषु तमःसु हंत ॥ २३ ॥ येऽभ्यर्थितामपि च नो नृपतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरंत्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥ यच्च व्रजंत्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरे यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृतांगाः ॥ २५ ॥

नरकमें पटकनेवाली अर्थ व काम आदि पुरुषार्थसंबंधी बातें सुनते हैं, वे अभागे कदापि उस वैकुंठमें नहीं जा सकते ॥ २३ ॥ हम ब्रह्मादिक देवताभी जिस मनुष्यगतिकी इच्छा रखते हैं ऐसी, मनुष्ययोनि कि–जिसमें धर्म और तत्वज्ञानका संपादन होना सहज है, उसे पाकरभी, जो लोग भगवान्‌का आराधन नहीं करते, वे भगवान्‌की विस्तारवाली मायासे मोहित होनेके कारण वैकुंठमें नहीं जा सक्ते ॥ २४ ॥ देवतानमें श्रेष्ठ हरि भगवान्‌की सेवा करनेसे यमराज जिनसे दूर हैं. और जिनका आचरण स्पृहा करनेके योग्य है तथा सकलके स्वामी ऐसे हरि भगवान्‌के सुयशकी परस्पर कथा करते करते प्रेमके आधीन होकर, जिनके ने-

१ मानवतनु दुर्लभ है भाई ॥ सुरवर कृष्णपदाम्बुजसेवन अहै निरन्तर बहुसुखदाई ॥ ऐसो तनु लहि जो पामर नर करत नहीं प्रभुपदसेवकाई ॥ अरु जो कृष्णकथा तजि लौकिक बात सुनैं चितलाई ॥ तिनकहँ नरकनिवास अहै नित जन्म जन्मलौं मुक्ति न पाई ॥ श्रीरघुवंश कहत निशिवासर रामचरणरति करहु सदाई ॥ १ ॥

त्रोंको गाया करते हैं ॥ १७ ॥ जहां ऊंचे स्वरसे भ्रमरराज गान करता है, उस समय पारावत, कोकिल, सारस, चकवा, चातक, हंस, सुआ, तीतर और मयूरोंका कोलाहल क्षणमात्र बंद हो जाता है; क्योंकि वे पक्षी ऐसा जानते हैं कि—मानों यह भ्रमरराज हरिकथाही गारहा है ॥ १८ ॥ तथा जहां भगवान् अभूषणरूपसे तुलसीका अंगीकार करके उसकी सुगंधकी प्रशंसा करते हैं. तब मंदार, पारिजात, तिलकवृक्ष, रात्रिविकासिकमल, दिनविकासिकमल, चंपा, मोगरा, अर्ण, नागकेसर, मोरसिरी व नाग आदि पुष्पवाले वृक्ष स्वयं ( आप ) सुगंधिवाले होनेपरभी इर्षा न करते उस तुलसीके तपको बहुत मान देते

पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ॥ कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृंगाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥ १८ ॥ मंदारकुंदकुरबोत्पलचंपकार्णपुन्नागनागबकुलांबुजपारिजाताः ॥ गंधेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयंति ॥ १९ ॥ यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णाऽऽत्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः २० ॥ श्री रूपिणी कणयती चरणारविंदं लीलांबुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ॥ संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥

हैं ॥ १९ ॥ जहां हरि भगवान्के चरणारविंदोंमें केवल नमस्कार मात्र करनेसे देखनेमें आये ऐसे वैदूर्य मरकत और सुवर्णमय विमानोंकी भीड़ बन रही है. तथा जहां मंदहास करके शोभायमान जिनका मुख है ऐसी बड़े कटिपश्चात्भागवाली अंगना जिन कृष्णासक्तचित्तवाले पुरुषोंके हृदयमें परिहास आदिसे कामदेवको उत्पन्न नहीं करसकतीं ॥ २० ॥ चरणारविंदसंबंधी झांझरका झणत्कार करती साक्षात् मूर्तिमती लक्ष्मीजीभी अपने चांचल्य दोषको तज कर, हाथमें लीला कमल धारण किये बीच बीचमें शोभाके निमित्त सुवर्णसंयुक्त स्फटिकमणिकी भीतोंवाले हरि भगवान्के महलमें मानों झाड़ू देती हों, वैसे प्रतीत

१ कवित्त ॥ जिनके घर मुहतलों कामहू पर्‍यो नाहिं तिनके घर जाय जाय रात दिवस रहनो पर्‍यो ॥ जिनकी देखि सूरतहू कबहूं मिले नाहिं तिनको देख दूरहीसे ताजीम देनो पर्‍यो ॥ जिनके जीकारे विन बातहू सुनी है नाहिं तिनके रेफारे धुधकारे सहनो पर्‍यो ॥ अहो हे लक्ष्मीजी आपको प्रताप मान बड़े बड़े चूतियनको चतुरा कहनो पर्‍यो ॥ १ ॥

री ओर देखो ॥ ९ ॥ हे देव ! कश्यपजीने अपना वीर्य जो दितिके गर्भमें धारण किया है, वह सब दिशाओंमें अंधकार फैलाता काष्ठगत अग्निके समान बढ़ रहा है ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–हे विदुर ! देवताननें जिनसे विनती की है ऐसे, भगवान्, स्वयंभू, ब्रह्माजीने हँसकर, सुंदर वाणीसे देवतानको प्रसन्न करते यह बचन कहा ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि–मेरे मानसपुत्र और तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक लोकोंमें निस्पृह होकर, आकाशरस्ते लोकोंमें विचरते थे ॥ १२ ॥ वे एकसमय शुद्ध सत्वस्वरूप वैकुंठभगवान्के वैकुंठ लोकको कि–जिसे सर्वलोक नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने निष्काम धर्मसे हरिका आराधन किया है,

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान्प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥ ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥ १२ ॥ त एकदा भगवतो वैकुंठस्यामलात्मनः ॥ ययुर्वैकुंठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसंति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुंठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥१४॥ यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः ॥ सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥ १५ ॥ यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायंति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ॥ अंतर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गंधेन खंडितधियोऽप्यनिलं क्षिपंतः ॥ १७ ॥

वे सब लोग जहां विष्णु भगवान्‌कीसी चतुर्भुज मूर्ति धारण करके विराजते हैं ॥ १४ ॥ केवल वेदांतहीसे जिनका स्वरूप जाना जाता है ऐसे, धर्ममूर्ति आदिपुरुष भगवान् अपने भक्तोंको सुखी करते जहां शुद्ध सत्वगुणको धारण करके विराजते हैं ॥ १५ ॥ जहां मूर्तिमान् मोक्षके समान सब ऋतुओंकी संपदावोंसे प्रकाशमान नैश्रेयसमान उद्यान कल्पवृक्षोंसे शोभायमान है ॥ १६ ॥ जहां जलके अंदर विकसित होतीहुई वसंतऋतुसंबंधी मकरंदयुक्त माधवी लताओंकी सुगंधिसे आकृष्टचित्त होनेपरभी निरतिशय भगवद्भजनानंदकी आसक्तिसे उसका तिरस्कार करतेहुए विमानचारी, नरनारी, लोकोंके पापोंके नाश करनहारे भगवान्‌के चरि-

पजीका गर्भरूप तेज दितिने देवतानके पीड़ा होनेके डरसे सौ १०० वर्षतक धारण किया ॥ १ ॥ लोकके भीतर उससे सब प्रकाश नष्ट होगया, लोकपालोंके तेज जाते रहे और दिशाओंका अंधकारके सबब कुछ ठिकाना न रहा, तब उन लोगोंने ब्रह्माजीसे विनती की ॥ २ ॥ देवता बोले कि-हे विभु ! जिस अंधकारसे हम भयभीत हो रहे हैं, उसको आप जानते हो, तौ फिर क्या विचार करते हो ? जिनके ज्ञानका कालसे कदापि नाश नहीं होता, वे भगवान् आप हो, इसलिये आपसे कुछभी छिपा नहीं है ॥ ३ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्पालक ! हे लोकपालोंके मुकुटमणि ! आप परावर सब जीवोंके अभिप्रायको जानते हो ॥ ४ ॥

लोके तेन हता लोके लोकपाला हतौजसः ॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वांतव्यतिकरं दिशाम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥ ४ ॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥ ५ ॥ ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयंत्यात्मभावनम् ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥ ६ ॥ तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेंद्रियात्मनाम् ॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥ ७ ॥ यस्य वाचा प्रजाः सर्गा गावस्तंत्येव यंत्रिताः ॥ हरंति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥ ८ ॥ स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥

विज्ञानही जिनका पराक्रम है और मायासे जिन्होंने यह ब्रह्मदेह धारण किया है व रजोगुणको जिन्होंने स्वीकार किया है ऐसे प्रपंचके कारण आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ जीवोंके पालक और कार्यकारणरूप तथा वस्तुतः इनसे पर व चेतन और अचेतनके कारण ऐसे आपका जो निष्कामभक्तिसे ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥ उन प्राण, इंद्रियां और मनको वशमें रखनेवाले व भलीभांति पक्वयोग अतएव आपके कृपापात्र पुरुषोंका कहींभी तिरस्कार नहीं होता ॥ ७ ॥ जिनकी वाणीसे बँधीहुई, रज्जु ( रस्सी ) से बंधीहुई गौवनके समान, ये सब प्रजा आधीन रहकर, भेंट अर्पण करती है. उन नियंता आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! अंधकारसे हमारे सब कर्म लुप्त हो गये हैं, सो हमें सुखी करो और दयावाली दृष्टिसे शरणागत ऐसे हमा-

जगत् जिनकी कृपासे प्रसन्न होता है, वह आत्मसाक्षी, हरि भगवान् जिसपर अनन्य दृष्टि देखकर, प्रसन्न होवेंगे ॥४६॥ वह भगवानका परम भक्त, महात्मा, महानुभाव व महत्पुरुषोंमेंभी अतिमहान् तेरा पौत्र वृद्धिंगत ( बढ़े हुये ) भक्तिके प्रभावसे शुद्ध भये हुए हृदयमें विष्णु भगवान्को रखकर, देहादि संबंधी अभिमानका त्याग करेगा ॥ ४७ ॥ बड़ा सुंदर स्वभाववाला, गुणोंकी खान दूसरोंकी बढ़ती देखकर आनंद माननेवाला, दुखियोंको देखकर दुखी होनेवाला, अजातशत्रु और अलंपटी तेरा पौत्र जैसे चंद्रमा गर्मीके संतापको मिटाता है, वैसे जगत्के शोकका हरण करेगा ॥ ४८ ॥ और अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार जो स्वरूप

स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुंठमिमं विहास्यति ॥ ४७ ॥ अलंपटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥ ४८ ॥ अंतर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छाऽनुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुंडलमंडिताननम् ॥ ४९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे दितिकश्यपसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥ दधार वर्षाणि शतं शंकमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥

धारण करते हैं ऐसे, लक्ष्मीरूप सुंदरीके आभूषणरूप व देदीप्यमान कुंडलकी कांतिसे मंडित मुख और कमलनयन शुद्ध ब्रह्मको सदा बाहिर और भीतर देखा करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–पौत्र भगवान्का भक्त होगा; यह सुनकर, दिति बहुत प्रसन्न हुई. और पुत्रोंका भगवान् कृष्णचंद्रके हाथसे बध होगा. यह जानकर, बहुत चोपमें आयी ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें तेजहीन देवतानने ब्रह्माजीसे जाकर, पूंछा; तब तेज नष्ट होनेका कारण जो वैकुंठमें विष्णु भगवान्के भृत्योंको सनकादिकोंके शापका होना और उनका दितिके गर्भमें आना था; वह उन्होंने कहा ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–अन्य तेजका नाश करनेवाला वह कश्य-

पुत्र होवेंगे. और हे चंडी ! लोकपालोंसहित सब त्रिलोकीको वारंवार रुदन करावेंगे ॥ ३८ ॥ जब वे बिचारे दीन निरपराधी जीवोंको सतावेंगे और स्त्रियोंको पकड़ पकड़ कर, ले जावेंगे व महात्मालोगोंको कोपित करेंगे ॥ ३९ ॥ तब लोकोंके पालक व जगदीश्वर ये हरि भगवान् क्रोधकर अवतार लेकर, जैसे इंद्रने पर्वतोंका नाश किया, वैसे उन दोनोंको मारेंगे ॥ ४० ॥ यह सुन कर, दिति बोली कि-हे विभु ! सुदर्शनचक्रसे शोभायमान जिनकी भुजा है ऐसे साक्षात् हरि भगवान्के हाथ मेरे पुत्रोंका वध भले होवे, मैं यही चाहती हूं, परंतु ब्राह्मणके क्रोधसे मेरे पुत्रोंका मरण न होना चाहिये ॥ ४१ ॥ क्योंकि-जो ब्रह्मदंडसे भस्म होता है और जो जीवोंको त्रास देता है, वह नरकमेंभी जिस जिस योनिमें जाता है, वहां नारकी जीवभी उसपर कृपा

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ॥ स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥ ४० ॥ दितिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ न ब्रह्मदंडदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नारकाश्चानुगृह्णंति यां यां योनिमसौ गतः ॥ ४२ ॥ कश्यप उवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥ पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यंति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यंति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ॥ स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४६ ॥

नहीं करते ॥ ४२ ॥ कश्यपजीने कहा कि-जो तूने अपराध किया उसके शोकसे बहुत पश्चात्ताप किया, दूसरा तुर्तही तूने युक्तायुक्तका विचार किया, तीसरा विष्णु भगवान्, महादेवजी और पति मैं इन तीनोंका बहुत सन्मान और सत्कार किया ॥ ४३ ॥ इससे तेरे पुत्रको जो पुत्र होवेंगे, उनमेंसे एक पुत्र सत्पुरुषोंमें माननीय होगा, जिसके निर्मल यशको भगवान्के यशके साथ गाया करेंगे ॥ ४४ ॥ जिसके स्वभावके अनुसार वर्तनेके लिये साधु लोग निर्वैर आदि उपायोंसे अपने आत्माको, हीनवर्ण सुवर्णको जैसे जलाने आदि उपायोंसे शुद्ध किया करते हैं, वैसे शुद्ध करेंगे ॥ ४५ ॥ जिन परमेश्वरका स्वरूपभूत यह

करते जप करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजा परीक्षित ! उस निंद्यकर्मसे शर्मातीहुई दिति कश्यपजीके समीप आय, नीचा मुख करके बोली ॥ ३२ ॥ दितिने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! यद्यपि मैंने भगवान् रुद्रका अपराध किया है, तथापि भूतोंमें श्रेष्ठ और भूतपति भगवान् रुद्रके हाथ तो मेरे गर्भका बध न होना चाहिये ॥ ३३ ॥ रुद्र, महादेव, उग्र, सकामपुरुषोंकी कामना पूर्ण करनहारे, दंडरहित और दंड धारण करनहारे, संहार समयमें मन्यु यानी क्रोधमूर्ति शिवजीको मेरा प्रणाम है ॥ ३४ ॥ वे परम कृपाल

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ॥ उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥ ३२ ॥ दितिरुवाच ॥ मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन्भूतानामृषभो वधीत् ॥ रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥ ३३॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदंडाय धृतदंडाय मन्यवे ॥ ३४॥ स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकंप्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३५॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ॥ निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७॥ भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चंडि मुहुराक्रंदयिष्यतः ॥ ३८ ॥

सतीके पति भगवान् महादेवजी कि जो हमारे बहनेऊ हैं, वे व्याधोंकेभी अनुकंपा करनेयोग्य हम स्त्रियोंपर प्रसन्न रहो ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–दोनों लोकोंके योग्य शुभ आशिषकी अपने गर्भके अर्थ आशा करके खड़ी व कांपतीहुई दितिसे संध्याके नित्य कर्मसे पहुँचकर, कश्यपजी बोले ॥ ३६ ॥ कश्यपजीने कहा कि–प्रथम तौ तेरा चित्त शुद्ध नहीं था, दूसरा समय बहुत बुरा था, तीसरा मेरा कहना तैंने नहीं माना, चौथा देवतानका तैंने अपराध किया ॥ ३७ ॥ इसलिये हे अभद्रे ! तेरे दो अधम

१ कवित्त ॥ भंजत कराल कलिकाल कलमप जाल इन्दु बाल भाल मुण्डमाल खर्पराशी है ॥ कालहूके काल काल व्यालघर दश लाल मेटे ततकाल सब साल सुखराशी है ॥ शिर जटाभार क्षार सुरसरिवारिधार मारमदहार अविकार अविनाशी है ॥ कहै रघुवंश भवपाश त्रास नाश आशु पूरै सब आश वास जासु नित काशी है ॥ १॥

धारण करके निर्माल्यकी तरह चरणसे दूर फेंकीहुई जिनकी भुक्तभोग विभूतिको महाप्रसाद ऐसा समझकर, उम्मेद रखते हैं ॥ २५ ॥ और जो अविद्यापटल भेदना चाहते हैं वे, विद्वान्लोग जिनके निर्दोष चरित्रकी स्तुति करते रहते हैं व जिन सत्पुरुषोंके गतिरूप महादेवने अपने समान वा अधिक किसीके न होनेपरभी पिशाचलीला धारण की है ॥ २६ ॥ श्वानका भक्ष्य जो यह शरीर है इसको, आत्मा मानकर, वस्त्र पुष्प आभूषण व चंदनसे जो इसका प्यार करते हैं वे, अभागे अज्ञानी लोग जिन स्वात्मरत महादेवके लोकशिक्षारूप चरित्रको हँसते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादि देवता जिनकी बाधीहुई मर्यादाका पालन करते हैं, जो इस

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणंत्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २६ ॥ हसंति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम् ॥ यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ॥ आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडंबनम् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्माथितेंद्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ २९ ॥ स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बंधं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥ ३० ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३१ ॥

जगत्के कारण हैं और जिन्होंने इस जगत्को पैदा किया है तथा माया जिनकी आज्ञाकारी है, उनका जो पिशाचोंके साथ फिरना है, वह बड़ा आश्चर्यरूप है. परमेश्वरकी लीला सदा अतर्क्यही होती है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि–पति कश्यपजीने उस दितिको बहुत समझाया, परंतु कामदेवसे व्याकुल इंद्रियांवाली दितिने वेश्याकी नाईं लाज तजकर, ऋषिका वस्त्र पकड़ लिया ॥ २९ ॥ निषिद्ध कर्ममें अपनी स्त्रीका हठ लगाहुआ समझकर, देवरूप ईश्वरको प्रणाम करके उसके साथ एकांतमें विराजे ॥ ३० ॥ फिर स्नान कर प्राणायाम कर, मौन धारण करके सनातन और ज्योतिःस्वरूप भर्गशब्दवाच्य परब्रह्मका ध्यान

लिया करता है वैसे जीत रहे हैं ॥ १९ ॥ हे गृहेश्वरि ! ऐसी जो तू है उसके न तो हम और न जो दूसरे गुणग्राही हैं, वे संपूर्ण अपनी आयुष्यसे तथा जन्मांतरोंसेभी प्रत्युपकार करके बराबर हो सकते हैं ॥ २० ॥ यद्यपि तुझसे उरिण होना अशक्य है, तथापि पुत्रोत्पत्तिके वास्ते तेरी यह कामना मैं पूर्ण करूंगा. परंतु तू एक मुहूर्त्त यानी दो घड़ी ठहर जा. जिससे लोकमें मेरी निंदा न होवे ॥ २१ ॥ यह समय अतिघोर व घोरफलका दिखानेवाला घोर जीवोंका है, इस समयमें महादेवजीके अनुचर

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कात्स्न्र्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥ २० ॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ॥ यथा मां नातिवोचंति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ २१ ॥ एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरंति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥ २२ ॥ एतस्यां साध्वि संध्यायां भगवान्भूतभावनः ॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥ २३ ॥ श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ॥ भस्मावगुंठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥ २४ ॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥ २५ ॥

भूतगण विचरा करते हैं ॥ २२ ॥ हे साध्वी ! इस संध्याकालमें जीवोंके पालक और भूतपति भगवान् महादेव अपने पार्षद भूतगणोंको संग ले , बैलपर सवार होकर, घूमते रहते हैं ॥ २३ ॥ मरघटके बौंड़रकी धूलिसे धूम्रवर्ण और बिखराहुआ देदीप्यमान जिनका जटाजूट है ऐसे, सुवर्णसे निर्मल शरीरमें भस्म रमाये, तेरे देवर भगवान् महादेव अपने तीन चन्द्र, सूर्य, अग्निरूप नेत्रोंसे अभी देखते हैं ॥ २४ ॥ इनके लोकके अंदर न तो स्वजन है, न पराया है, न अतिआदरवाला है, न निंदनीय है. हम लोग व्रत

---

१ कवित्त ॥ ओढ़े बाघ छाला दूर करत कसाला काट डारत भ्रमजाला धरे आधे अंग बाला है ॥ सोहै कंठ काला और साजै शशि भाला जाके मस्तक मसाला एक भस्मही रसाला है ॥ मूरति विशाला नैन तीसरेमें ज्वाला गजचर्मको दुशाला और पिये प्रेम प्याला है ॥ देवनमें आला यह ज्योति है निराला अब मेरे मनवाला देनवाला बैलवाला है ॥ १ ॥

करता है ॥ ११ ॥ कन्याओंपर दया रखनेवाले हमारे पिता भगवान् दक्षने हमको जुदा जुदा लेकर, प्रथम पूंछा रहा कि-हे बेटियो ! तुम कौनसा कौनसा वर चाहती हो ? ॥ १२ ॥ तब संतानको बढ़ानेवाले प्रजापति दक्षने हम तेरह कन्याओंका अभिप्राय आपकी ओर जानकर, आपको दी, जो आपके शीलके अनुसार बर्तती हैं ॥ १३ ॥ हे कल्याण ! हे कमलनयन ! अब आप मेरी कामना परिपूर्ण करो. हे भूमन् ! जो आर्तपुरुष महत्पुरुषोंके शरण जाता है, उसका शरण लेना वृथा नहीं होता ॥ १४ हे वीर ! इसप्रकार बहुत दीनकी तरह पुकारती हुई व बढ़ेहुए कामदेवके कश्मलसे व्याकुल अपनी

पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥ १२ ॥ स विदित्वात्मजानां नो भावं संतानभावनः ॥ त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥ अथ मे कुरु कल्याण कामं कंजविलोचन ॥ आर्त्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥ १४ ॥ इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानंगकश्मलाम् ॥ १५ ॥ एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥ १६ ॥ सर्वा श्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथाऽर्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येंद्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥

स्त्री दितिको वाणीसे सांत्वना देते कश्यपजी बोले ॥ १५ ॥ कि-हे भीरु ! जो तू चाहेगी यही तेरा प्रिय मनोरथ यह मैं पूर्ण करूंगा, क्योंकि जिससे धर्म, अर्थ व काम ये तीनों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं उसकी कामना कौन पूर्ण न करे ? ॥ १६ ॥ अन्नादि-पदार्थ देनेसे सब आश्रमोंको आश्रय देताहुआ गृहस्थी अपने गृहस्थाश्रमसे, जैसे नाववाला नौकासे सागरको पार हो जाता है, वैसे व्यसनरूप समुद्रसे पार हो जाता है ॥ १७ ॥ हे मानवती ! कल्याणकी कामनावाले पुरुष जिस स्त्रीको अपना आधा अंग कहते हैं; और यह पुरुष अपने घरका काम काज जिसके सिपुर्द करके निश्चिंत फिरता रहता है ॥ १८ ॥ हम लोग जिसका आश्रय लेकर, दूसरे आश्रमोंसे जिनका जीतना अतिकठिन है ऐसे इंद्रियरूप शत्रुओंको किलेका स्वामी लुटेरोंको लीलाहीसे जीत

परंतु अपनी डाढ़के अग्रपर धरकर लीलासे पृथ्वीका उद्धार करते हरिको और उस दैत्यको हे ब्रह्मन्! युद्ध क्यों हुआ ?॥ ३ ॥ मैत्रेयजीने
कहा कि- हे वीर ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया; क्योंकि आप मनुष्योंके मृत्युपाशकी काटनेवाली हरि भगवान्की अवता-
रकथा पूंछते हो ॥ ४ ॥ नारदजीकी कहीहुई जिस हरिकथासे उत्तानपादके पुत्र ध्रुव मृत्युके शिरपर पांव रखकर, हरिपद यानी
वैकुंठको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ इस विषयमें मैंने पहले एक इतिहास सुना है, जो देवतावोंके पूंछनेपर देवदेव ब्रह्माजीने कहा था
॥ ६ ॥ हे विदुर ! दक्षकी कन्या दितिने कामातुर होकर, पुत्रकी कामनासे संध्याके समय अपने पति कश्यपजी कि-जो यज्ञपति

तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उ-
वाच ॥ साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ॥
ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यंघ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ५ ॥ अ-
थात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥ दितिर्दा-
क्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे संध्यायां हृच्छयार्दिता ॥ ७ ॥ इष्ट्वाऽग्निजिह्वं
पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यागारे समाहितम् ॥ ८ ॥ दितिरुवाच ॥ ए-
ष मां त्वत्कृते विद्वन्काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां विक्रम्य रंभामिव मतंगजः ॥ ९ ॥ तद्भवा-
न्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ॥ प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुंक्तामनुग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरु-
मानानां लोकानाविशते यशः ॥ पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥ ११ ॥

व अग्नि जिनकी जिव्हा हैं ऐसे विष्णु भगवान्का दूधसे यजन करके, सूर्यास्त होते अग्निहोत्रशालामें एकाग्रचित्त होकर विराजे
थे. उनके निकट जाकर, अपनी कामना प्रगट की ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-हे विदुर ! दितिने कहा कि-जैसे हाथी कद-
लीको दुख दिया करता है, वैसे यह कामदेव धनुष धारण करके, दीन ऐसी मुझको बरबस आपके वास्ते सताता है ॥ ९ ॥
इसलिये संतानवाली सपत्नियोंकी समृद्धिसे जलती हुई जो मैं दासी हूं, उसपर आप कृपा करो, आपका कल्याण होगा ॥ १० ॥
जिन स्त्रियोंसे आप जैसे पति पुत्ररूपसे उत्पन्न होवें, उन पतिकी ओरसे बहुत मान पायीहुईं स्त्रियोंका जगत्में यश हुआ

कर, जलके समीप रखकर, चले गये ॥ ४७ ॥ वर्णन करने योग्य जिनकी माया है ऐसे, हरि भगवान्‌की अतिकल्याणकारी इस पवित्र कथाको जो हरिभक्त सुनते हैं वा श्रवण कराते हैं जनार्दन भगवान् अपने मनमें उनपर तुर्त प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ जब सब कामना पूर्ण करनहारे हरि प्रसन्न हो जायं, तब फिर उन तुच्छ कामनाओंसे क्या प्रयोजन है ? और कौन बात दुर्लभ रहती है ? जो अनन्यदृष्टिसे भगवान्‌का भजन करते हैं, उनकी परमगति अंतर्यामी परमेश्वर स्वयं ( आप ) करदेते हैं ॥ ४९ ॥ लोकमें जो पुरुष पुरुषार्थके सारको जानता है, वह ऐसा कौन है ? कि- प्राचीनकथासंबंधी भगवान्‌के कथारूप अमृतको, जो

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥ ४८ ॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ४९ ॥ कोनाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ॥ आपीय कर्णांजलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे वराहप्रादुर्भावानुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ तमुद्यतांजलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥ २ ॥

संसारका मिटानेवाला है उसे, कानरूप अंजलियोंसे पीकर, फिर उससे विरक्त हो जावे. जो मनुष्य होगा वह कभी नहीं छोंड़ेगा और जो पशु हैं उनकी बात मैं नहीं कहता ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ चौदहवें अध्यायमें हिरण्याक्षके वधका मूल कारण कहनेकेवास्ते संध्यासमयमें कश्यप ऋषिसे कामव्याप्त दितिके गर्भकी उत्पत्ति कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-कारणसे सूकरमूर्ति हरिकी मैत्रेयजीकी कहीहुई कथा सुनकर, व्रत धारण करनेवाले विदुरजीने अत्यंत तृप्त न होनेसे हाथ जोड़कर, फिर उनसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि-हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्हीं यज्ञमूर्ति हरि भगवान्‌ने आदिदैत्य हिरण्याक्षको मारा, यह हमने सुनते हैं ॥ २ ॥

दांतपर भूमंडलके धारण करनेसे जैसी कुलाचलेंद्रके शिखरपर बैठेहुए सघन बादलसे छटा बनती है, वैसे शोभा देता है॥ ४१ ॥ आप स्थावर जंगम सब जगत्के पिता हो. इसलिये आपकी स्त्रीरूप और जगत्की मातारूप इस पृथ्वीको लोगोंके रहनेके निमित्त यहां जलपर धरो. जिस पृथ्वीमें जैसे अरणिमें अग्निको स्थापित करते हैं, वैसे आपने अपना तेज धारण किया है, उन ईश्वर आपके साथ इस पृथ्वीको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥ हे प्रभु ! आपके सिवाय दूसरा कौन है ? कि–जो पातालमें गयीहुई पृथ्वीको पीछी बाहर लानेकी मनमें इच्छाभी करे. और आपमें इस बातका कुछ आश्चर्यभी नहीं है; क्योंकि आपमें

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥ कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसांगताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽति विस्मयम् ॥ ४३ ॥ विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ॥ सटाशिखोद्धूताशिवांबुबिंदुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४४ ॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यःकर्मणां पारमपारकर्मणः ॥ यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥ ४५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ सलिले स्वखुराक्रांत उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥ सइत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥ ४७ ॥

सब आश्चर्य रहे हैं, जिन्होंने अपनी मायासे अतिआश्चर्यरूप यह जगत् पैदा किया ॥ ४३ ॥ अपने वेदमय शरीरको आपने कँपाया उससे आपकी सटा ( कंधोंके केश ) के अग्रसे जो पवित्र जलके बिंदु उडे, उनके सींचनेसे हे ईश्वर ! जन, तप व सत्यलोकमें रहनेवाले हम अत्यंत पवित्र हुए ॥ ४४ ॥ उसे भ्रष्टबुद्धि कहना चाहिये; कि–जो अपार चरित्रवाले आपके कर्मोंका पार लेना चाहता है. हे भगवन् ! आपकी योगमायाके गुणोंसे मोहित इस सकल जगत्का आप कल्यान करो ॥ ४५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–इसप्रकार उन ब्रह्मवादी मुनिलोगोंने भगवान्की स्तुति की, तब रक्षा करनेवाले प्रभुने अपने खुरोंसे दबायेहुए जलके समीप पृथ्वीको रख दी ॥ ४६ ॥ इस तरह प्रजापति भगवान् विष्वक्सेन वराह हरि पृथ्वीको लीलापूर्वक पातालसे बाहर ला-

और चरणोंमें चारों होतानके कर्म रहे हैं ॥ ३५ ॥ तथा तुंडमें स्रुक्, नासिकामें स्रुव, उदरमें भक्ष्यपात्र, कर्णरंध्रमें चमस यानी सोमपात्र, मुखमें ब्रह्मभागपात्र, मुखांतर्गत छिद्रमें ग्रह ( सोमपात्र ) तथा हे देव ! हे भगवन् ! आपके चर्वणमें अग्निहोत्र रहा है ॥ ३६ ॥ बारंबार प्राकट्यमें दीक्षणीया इष्टि, ग्रीवामें उपसद यानी तीनों इष्टियां, डाढ़ोंमें प्रायणीया दीक्षा यानी अनंतरेष्टि व उदयनीया समाप्तिकी इष्टि ये दोनों रही हैं. जीभमें प्रवर्ग्य यानी महावीर, आपके शिरमें सभ्य यानी होमरहित अग्नि और आवसथ्य यानी औपासन अग्नि ये दोनों रहे हैं और आपके प्राणोंमें इष्टकाचयन रहे हैं ॥ ३७ ॥ सोम आपका वीर्य है. प्रातः-

स्रुक् तुंड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरंध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ॥ जिह्वा प्रप्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ३७ ॥ सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबंधनः ॥ ३८ ॥ नमो नमस्तेऽखिलमंत्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ३९ ॥ दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतंगजेंद्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४० ॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमंडलेनाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृंगोढघनेन भूयसा कुलाचलेंद्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४१ ॥

सवनादिक बाल्य आदि अवस्था हैं. हे देव ! अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ये संस्थाभेद आपकी सात धातु हैं. सब सत्र ( यज्ञ ) आपके शरीरकी संधियां हैं. ससोम यज्ञ और असोम क्रतु ये दोनों आपकेही स्वरूप हैं. यजन आपका बंधन है ॥ ३८ ॥ सकल मंत्र, देवता और द्रव्यमूर्ति व सर्वक्रतुमूर्ति और क्रियारूप, आपको बारंबार हमारा प्रणाम है. वैराग्य व भक्तिके द्वारा आत्माके जयसे जिनके ज्ञानका साक्षात्कार होता है, उन विद्यागुरु आपको बारंबार प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! डाढ़की अग्रकोटीपर आपसे धारण की हुई यह पर्वतोंसहित पृथ्वी, हे भूधर ! जैसे जलसे बाहिर निकलते हुए गजराजके दांतपर धरीहुई पत्रसहित कमलिनी शोभे वैसे शोभा देती है ॥ ४० ॥ वेदत्रयीमय यह आपका सूकरका रूप

सके ऐसे जलकाभी पार आजाय, वैसे रीतिसे छूराके सदृश तीक्ष्ण धारवाले खुरोंकी आधारभूत पृथ्वी देखी, जिस पृथ्वीको आ-
पने प्रलय समयसंबंधी जलमें शयन करनेकी इच्छासे अपने उदरमें प्रथम धारण की थी ॥ ३० ॥ उस बूडीहुई पृथ्वीको अपनी
डाढ़से उठाकर, पातालसे बाहिर निकलतेहुए हरि भलीभांति शोभा देते थे. वहीं गदा हाथमें लेकर, आतेहुए और रोंकतेहुए अ-
सह्य पराक्रमवाले हिरण्याक्षनाम दैत्यका जैसे मृगराज गजराजका संहार करे, वैसे सुदर्शन चक्रके समान देदीप्यमान तीव्र क्रोध-
वाले हरि भगवान्‌ने लीलाहीसे जलके अंदर वध किया ॥ ३१ ॥ उस समय भगवान्‌के गंडस्थल और तुंड उस दैत्यके रक्तके की-

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदया पतंतं सुनाभसंदीपि-
ततीव्रमन्युः ॥ ३१ ॥ जघान रुंधानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवांभसि ॥ तद्रक्तपंकांकितगंड-
तुंडो यथा गजेंद्रो जगतीं विभिंदन् ॥ ३२ ॥ तमालनीलं सितदंतकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपंतं गजलीलयां-
ग ॥ प्रज्ञाय बद्धांजलयोऽनुवाकैर्विरिंचिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ जितं जितं
तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः का-
रणसूकराय ते ॥ ३४ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ॥ छंदांसि यस्य
त्वचि बर्हि रोमस्वाज्यं दृशि त्वंघ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ ३५ ॥

चड़से लिप रहे थे, उससे जैसे गजराज पृथ्वीका भेदन करता शोभित होता हो, वैसे शोभ रहे थे ॥ ३२ ॥ हे विदुर ! श्वेत
( सपेद ) डाढ़के अग्रसे पृथ्वीको ऊंची उठाकर, हाथीकी तरह लातेहुए तमालसे श्याम वर्ण प्रभुको देखकर, ब्रह्मादिक सब देव-
ता और ऋषि हाथ जोड़कर, वैदिक सूक्तोंके सदृश अपनी वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि- हे अजित ! हे
यज्ञपालक ! आपकी जय हो; जय हो, वेदत्रयीमय अपने शरीरको कंपानेवाले आपको हम नमस्कार करते हैं. जिनके रोमकू-
पोंमें सब यज्ञ गुप्तरूप होकर रहे हैं, उन कारणसे सूकरमूर्ति आपको हमारा प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे देव ! यज्ञमूर्ति आपके इस
स्वरूपका पापी जीवोंको दर्शन होना अतिदुर्लभ है, जिनकी त्वचामें गायत्री आदि छंद, रोमावलीमें दर्भ ( कुश ), नेत्रमें घृत ( घी )

ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ मायासे सूकररूप हरि भगवान्‌का अपने खेदको मिटानेवाला घर्घर शब्द सुनकर, जन, तप और सत्यलोकमें रहनेवाले वे प्रसिद्ध मुनि पवित्र तीनों वेदों यानी ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद इनके मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ वेद् जिनकी मूर्तिकी स्तुति करते हैं ऐसे, वराह भगवान्, अपने गुणानुवादवाली उन महात्मानकी वेदवाणीको सुनकर, देवतानूके उदयके अर्थ फिर गर्जना करके गजेंद्रके समान लीला करते जलमें प्रवेश हुए ॥ २६ ॥ कठोर रोमसंयुक्त जिनकी त्वचा है ऐसे, श्वेत, ( सपेद ) डाढ़ोंवाले और नेत्ररूप प्रकाशवाले व पृथ्वीका उद्धार करनेवाले, कठिन स्वरूप हरि भग-

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥ २५ ॥ तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्माऽवधार्याऽत्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेंद्रलीलो जलमाविवेश ॥ २६ ॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ॥ खुराहताभ्रः सितदंष्ट्रईक्षा ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥ २७ ॥ घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वरांगः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥ २८ ॥ सवज्रकूटांगनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥ २९ ॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३० ॥

वान् आकाशमें विचरते, पूंछ उठाकर, सटा ( कंधोंके केशों ) को कंपाते व खुरोंसे बादल विखेरते. शोभा देने लगे ॥ २७ ॥ स्वयं यज्ञमूर्ति होनेपरभी वराह स्वरूप धारण करनेवाले हरि पशुके समान घ्राणसे पृथ्वीकी पदवीको सूंघते, पानी तलाश करते विकराल डाढ़ोंवाले होनेपरभी सौम्यदृष्टिसे स्तुति करतेहुए ब्राह्मणोंकी तर्फ देखकर, जलमें घुसे ॥ २८ ॥ वज्रमय पर्वतके समान भगवान्‌के कठिन अंगके गिरनेके वेगसे अंदर मार्ग हो जानेके हेतु, मानों उदर विदीर्ण हो जानेसे पीड़ित होकर, चिल्लाता हो, वैसे गर्जना करताहुआ समुद्र, अपनी ऊर्मि ( लहर ) रूप भूजाओंको लंबी करके, गर्जनाके मिषसे ' हे यज्ञपति ! मेरी रक्षा करो ' ऐसे मानों पुकारता हो, वैसे दिखायी दिया ॥ २९ ॥ प्रातः सवन आदि तीन सवनरूप संधिवाले, भगवान्‌ने पार न आ-

उद्धार किसप्रकार करें ? ॥ १६ ॥ इधर मैं सृष्टि रचने लगा तो, उधर जलसे बूड़ती बूड़ती यह पृथ्वी पातालमें चली गयी. अब सृष्टिके निमित्त लगाये हुए हम लोगोंको, यहां क्या करना चाहिये ? ॥ १७ ॥ हे विदुर ! ब्रह्माजी इसतरह विचार करते थे कि-मैं जिसके हृदयसे पैदा हुआ हूं, वही परमेश्वर मेरे इस कार्यको सिद्ध करे. इतनेमें उनकी नाकके विवर ( छिद्र ) से तुर्त अंगूठेके अग्र जितना छोटा वराह निकला ॥ १८ ॥ हे विदुर ! ब्रह्माजीके देखते देखते वह वराह आकाशमें खड़ा खड़ा हाथी जितना बड़ा होगया, वह एक बड़ी आश्चर्यकी बात हुई ॥ १९ ॥ मरीचि आदि मुनि, मनु और सनत्कुमारोंके साथ ब्रह्माजी उस

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता॥ अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ १७ ॥ यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादंगुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥ तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥ १९ ॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥ २० ॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥ २१ ॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गंडशिलासमः ॥ अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ २२ ॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ॥ भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेंद्रसन्निभः ॥ २३ ॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २४ ॥

सूकरके रूपको देख कर, अनेक प्रकारसे तर्कना करने लगे कि- ॥ २० ॥ सूकरके मिषसे यह दिव्य जानवर कौन यहां आकर, खड़ा हुआ है ? अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, कि-मेरी नाकमेंसे निकला ! ! ॥ २१ ॥ पहले देखा, तब तौ अंगूठेके अग्र जितना था, अब क्षणभरमें बड़ा पत्थरका टोलसा बन गया. शायद मेरे मनको खेद दिलाते यज्ञ भगवान् तौ ये नहीं प्रगटे हैं ? ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी अपने पुत्रोंके साथ इसप्रकार मीमांसा ( विचार ) कर रहे थे. इतनेमें गिरींद्रके तुल्य स्वरूपवाले यज्ञपुरुष भगवान्‌ने गर्जना की ॥ २३ ॥ दिशाओंको प्रतिध्वनित करतेहुए अपने गर्जनसे प्रभु हरि भगवान्‌ने ब्रह्माजीको और उन उत्तम

ब्रह्माजीने कहा कि- हे तात ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं, हे पृथ्वीनाथ ! तुम दोनोंका भला होओ; क्योंकि तुमने निष्कपटचित्त होकर, अपने आप प्रार्थना की 'मुझे आज्ञा करो' ॥ ९ ॥ हे वीर ! पुत्रोंको अपने मातापिताकी ऐसेही पूजा करनी चाहिये, कि- मत्सर ( परसंताप ) को त्यागकर, सावधान होकर, अपनी शक्तिके सदृश आदरसहित कहना मान लेवें ॥ १० ॥ अब तू गुणोंसे अपने समान संतान इस शतरूपामें उत्पन्न कर. धर्मसे पृथ्वीका पालन कर और यज्ञोंसे भगवान्‌का यजन कर ॥ ११ ॥ हे राजा ! प्रजाकी रक्षा करनेसे मेरी बड़ी सेवा होगी. और प्रजाका पालन करनेसे हृषीकेश भगवान् तुझ-

ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्तिस्ताद्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥ स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनोगुणैः ॥ उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजा भर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥ १२ ॥ येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिंगो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥ यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महांऽभसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथासन्नामवेक्ष्य गाम् ॥ कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥

पर प्रसन्न होवेंगे ॥ १२ ॥ यज्ञमूर्ति जनार्दन भगवान् जिनपर प्रसन्न नहीं हुए, उनका जितना श्रम है, वह सब वृथा है; क्योंकि उन्होंने साक्षात् अपने आत्माकाही आदर नहीं किया ॥ १३ ॥ मनुने कहा कि-हे पापनाशन ! प्रभु ! मैं आपकी आज्ञामें रहूंगा, परंतु मेरे वास्ते और प्रजाके वास्ते आप हमें यहां स्थान बतलाओ ॥ १४ ॥ सबजीवोंके रहनेकी जगह जो पृथ्वी थी, वह तो महासागरके जलमें बूड़ गयी. इसलिये हे देव ! इस पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये आप उपाय करो ॥ १५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-जलके मध्य इस प्रकार बूड़ीहुई पृथ्वीको देखकर, ब्रह्माजीने बहुत देरतक बुद्धि लगाकर, विचार किया कि-अब इसका

ब्रह्माजीके प्यारे पुत्र चक्रवर्ती स्वायंभुव मनुने प्रिय पत्नीको पाकर फिर क्या किया ? ॥ २ ॥ हे महात्मा ! उन आदिराज राजर्षिका चरित श्रद्धालु जो मैं हूं उसके तईं वर्णन करो; क्योंकि वे राजा भगवान्के भक्त थे ॥ ३ ॥ बहुत परिश्रम करके पढ़ेहुए शास्त्रका मनुष्योंके लिये मुख्य करके विद्वानोंने यही प्रयोजन बतलाया है. कि-जिनके मनमें मुकुंद भगवान्के चरणारविंद हैं, उनके गुणानुवादका श्रवण करना ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-श्रीकृष्ण भगवान् जिनकी गोदीमें अपने चरण फैलाया क-

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वंजसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ॥ यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुंदपादारविंदं हृदयेषु येषाम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः ॥ प्रांजलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता ॥ अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ॥ यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥

रते हैं ऐसे, विनीत विदुरजीके ये वचन सुनकर, भगवत्कथामें प्रवृत्त कराये हुए मैत्रेयजीने पुलकितगात होकर, यह वचन कहा ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-जब स्वायंभुव मनु अपनी स्त्रीके साथ पैदा हुए, तब कर जोड़, प्रणत हो, ब्रह्माजीसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ६ ॥ किं-एक आपही सब जीवोंके जन्मके दाता और वृत्तिके करनेवाले पिता हो. तथापि हम जो आपकी प्रजा हैं, उनकी सेवा किस बातसे मानी जाय वह हमें कहो ॥ ७ ॥ हे ईश ! मैं आपको प्रणाम करता हूं, आप कृपा करके हमारे शक्तिके अनुसार कर्म करनेके लिये आज्ञा करो, जिसके करनेसे हमको इस लोकमें यश और परलोकमें गति मिले ॥ ८ ॥

इसमें दैव प्रतिबंधक है इस प्रकार उचित कर्म करनेवाले ब्रह्माजी दैवकी राह देखते थे, ॥ ५० ॥ इतनेमें 'क' यानी ब्रह्माजीके शरीरके दो विभाग हुए, इसीलिये शरीरको काय कहा करते हैं उन दोनों स्वरूपोंसे मिथुन ( जोड़ा ) उत्पन्न हुआ. ॥ ५१ ॥ उसमें जो पुरुष था वह तौ स्वराट् स्वायंभुवनाम मनु थे और जो स्त्री थी वह उन महात्माकी शतरूपा नाम रानी थी. ॥ ५२ ॥ जबसे यह मिथुन पैदा हुआ तबसे प्रजा मैथुनधर्मसे बढ़ने लगी हे विदुर! स्वायंभुव मनुकेभी शतरूपामें पांच संतान हुए. ॥५३॥ जिनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम दो पुत्र ओर आकूति, देवहूति व प्रसूति नाम तीन कन्या हुईं ॥ ५४ ॥ हे विदुर!



कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ताभ्यांरूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ ५१ ॥ यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट्॥ स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ ५२ ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥ स चापि शतरूपायां पंचापत्यान्यजीजनत् ॥ ५३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ ५४ ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ ॥ श्रीशुक उवाच॥ निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ॥ भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच॥ स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥ २ ॥

उनमेंसे आकूति रुचिऋषिको दी, देवहूति कर्दमजीको और प्रसूति दक्षको, जिन कन्याओंकी संतानपरंपरासे यह जगत् भर गया ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ तेरहवें अध्यायमें, मनु सृष्टि करना चाहते थे, इतनेमें पृथ्वी अचानक जलमें बूड़ गयी उस पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये भगवान्ने वराह अवतार लेकर, हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजा! कथावर्णन करते मैत्रेयजीके अति पवित्रवचन सुनकर, भगवानकी कथामें आदरवाले विदुरजीने फिर पूंछा ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा कि-हे मुनि!

तत्व ऐसे चार प्रकारके संन्यासी. ये सब पूर्वादि मुखसे क्रमसे प्रगट हुए ॥ ४३ ॥ आन्वीक्षिकी ( मोक्षविद्या ), त्रयी ( धर्मविद्या ), वार्ता ( कामसंबंधी विद्या ), दंडनीति ( अर्थसंबंधी विद्या ) ये चारों, तथा भूः, भुवः, स्वः और महः ये चार व्याहृतियां ये सब पूर्वादि मुखोंसे अनुक्रमसे प्रगट हुए, ओंकार उसके हृदयाकाशसे प्रगट हुआ ॥ ४४ ॥ उष्णिक्छंद उनकी रोमावलीसे प्रगट हुआ. गायत्रीछंद उन प्रभुकी त्वचासे, त्रिष्टुप् मांससे, अनुष्टुप् स्नायुसे और प्रजापतिकी हड्डियोंसे जगतीछंद उत्पन्न हुआ ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्तिछंद उत्पन्न हुआ. बृहती प्राणोंसे पैदा हुआ. स्पर्श यानी ' कसे म ' पर्यंत पचीस २५ वर्ण उसका जीव हैं. और

अन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दंडनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥ ४४ ॥ तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पंक्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥ ४६ ॥ ऊष्माणमिंद्रियाण्याहुरंतस्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवंति स्म प्रजापतेः ॥ ४७ ॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ४८ ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ४९ ॥ न ह्येधंते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ ५० ॥

स्वर वर्ण देह कहा गया है ॥ ४६ ॥ ऊष्म यानी ' श ष स ह ' वर्ण इंद्रिय कहलाते हैं, अंतस्थ यानी ' य र ल व ' ये वर्ण ब्रह्माके बल रूप हैं. और जो षड्ज आदि सात स्वर हैं वे प्रजापतिके विहार यानी क्रीड़ासे प्रगट हुए ॥ ४७ ॥ हे विदुर ! जिस शब्दब्रह्मरूप ब्रह्माके व्यक्त यानी वैखरीवाणी नामक स्वरूपसे अनेक शक्तियोंसे उपबृंहित ( बढ़ी हुई ) यानी इंद्रादि रूप और अव्यक्त यानी ओंकार स्वरूपसे परिपूर्ण ब्रह्मरूप प्रकाशता है, उसने दूसरा देह धारण करके सृष्टि रचनेको ध्यान दिया ॥ ४८ ॥ हे विदुर ! महापराक्रमी ऋषियोंकीभी सृष्टिका विस्तार नहीं हुआ, यह जानकर, अपने मनमें ब्रह्माजी फिर चिंता करने लगे कि– ॥ ४९ ॥ अहो ! यह बड़ी आश्चर्यकी बात है, कि– मैं लगातार उद्यममें लग रहा हूं, तथापि प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, बेशक

स्थापत्यवेद यानी कारीगरीका काम इनको अनुक्रमसे प्रगट किया ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञ और ईश्वर ब्रह्माजीने अपने सब यानी चारों मुखोंसे इतिहास व पुराण जो पांचवां वेद कहलाता है उसे उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥ षोड़शी और उक्थ पूर्वमुखसे, पुरीषी और अग्निष्टोम दक्षिण मुखसे, आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा पश्चिममुखसे वाजपेय और गोसव उत्तरमुखसे प्रगट हुए ॥ ४० ॥ विद्या, दान, तप और सत्य ये धर्मके चारों चरण क्रमसे पूर्वादि मुखोंसे प्रगट हुए तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम और इन चारोंकी वृत्तियां ये सब क्रमसे पूर्वादि मुखोंसे प्रगट हुए ॥ ४१ ॥ तहां सावित्र अर्थात् यज्ञोपवीत भये पीछे तीन दिन गायत्री मंत्र सीखे वहांतक ब्रह्मचर्यका पालन करना, प्रजापत्य अर्थात् व्रतोंका आचरण करते वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्यका धारण

इतिहासपुराणानि पंचमं वेदमीश्वरः ॥ सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥ षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ॥ आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥ ४० ॥ विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्ता संचयशालीनशिलोंछ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥ वैखानसा वालखिल्यौदुंबराः-फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥

करना, ब्राह्म यानी पढ़े वहांतक ब्रह्मचर्यका रखना, बृहत् अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालना, इस प्रकारसे चार प्रकारका ब्रह्मचर्य. वार्ता अर्थात् अनिषिद्ध कृषि आदि वृत्ति, संचय अर्थात् याजनादि वृत्ति, शालीन अर्थात् अयाचितवृत्ति, शिलोंच्छन अर्थात् पड़ेहुए नाजके दानोंका बीनना, यह चारप्रकारकी गृहस्थकी वृत्ति ॥ ४२ ॥ वैखानस अर्थात् विना कृषि पकेहुए नाजसे गुजर करनेवाले, वालखिल्य अर्थात् नया अन्न मिलनेपर पूर्वसंचित अन्नका त्याग करनेवाले, औदुंबर अर्थात् प्रभातमें उठकर, जिस दिशाको प्रथम देखें उसी दिशामेंसे लायेहुए फल आदिसे निर्वाह करनेवाले, फेनप अर्थात् अपने आप पड़ेहुए फल आदिसे जीविका करनेवाले ऐसे चार प्रकारके वानप्रस्थ, संन्यासियोंमें कुटीचक अर्थात् अपने आश्रमके कर्मको प्रधान रखनेवाला, बह्वोद अर्थात् कर्मको गौण मानकर, ज्ञानको मुख्य माननेवाला, हंस अर्थात् ज्ञानाभ्यासकी निष्ठावाला, निष्क्रिय अर्थात् प्राप्त-

जिन्होंने अपने विषे अप्रगटरूपसे स्थित इस जगत्‌को अपने तेजसे प्रगट किया, उसीको उचित है कि अपने धर्ममर्यादाकी रक्षा करे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार मुखके सामने कहते हुए प्रजापति पुत्रोंको देखकर, प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने लज्जित होकर, तब वह शरीर त्याग दिया ब्रह्माजीके उस घोर शरीरको दिशाओंने ग्रहण किया, जिससे कुहरा और अंधेरा प्रगट हुआ करते हैं ॥ ३३ ॥ फिर कभी जगत्‌के रचनेवाले ब्रह्माजी बैठे विचार कर रहे थे, कि जैसे ये लोक पहले शामिल हो कर रहते थे, वैसे अब इनको मैं कैसे रचूंगा ? उस समय उनके चारों मुखोंमेंसे चार वेद उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ चारों होताओंका कर्म व यज्ञका

स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥ प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्त्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३३ ॥ तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथा पुरा ॥ ३४ ॥ चातुर्होत्रं कर्मतंत्रमुपवेदनयैः सह ॥ धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ॥ यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३७ ॥ आयुर्वेदं धनुर्वेदं गांधर्वं वेदमात्मनः ॥ स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥

विस्तार उपवेद, न्याय, धर्मके चारों चरण तथा आश्रम व उनकी वृत्तियां यह सब ब्रह्माजीके मुखसे उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ विदुरजीने कहा कि- हे तपोधन ! मैत्रेयजी ! सृष्टि कर्ताओंके प्रभु ब्रह्माजीने वेद आदि मुखसे उत्पन्न किये सो मैं पूछता हूं कि- उन्होंने किस किस मुखसे क्या क्या पैदा किया ? सो आप हमें कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- पूर्वमुखसे ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिममुखसे सामवेद और उत्तरमुखसे अथर्ववेद उत्पन्न किया. और शस्त्र यानी होताका कर्म पूर्वमुखसे, इज्या यानी अध्वर्युका कर्म, दक्षिण मुखसे, स्तुतिस्तोम यानी उद्गाताका कर्म पश्चिममुखसे, प्रायश्चित्त यानी ब्रह्माका कर्म उत्तरमुखसे प्रगट हुआ ॥ ३७ ॥ फिर अपने पूर्व आदिमुखोंसे आयुर्वेद ( वैद्यक ), धनुर्वेद ( शस्त्रविद्या ), गांधर्ववेद ( गानविद्या ) और

अवतार लिया, अधर्म पीठसे पैदा हुआ, जिस अधर्मसे लोकोंके भय करनेवाली मृत्यु पैदा हुई ॥ २५ ॥ हृदयसे कामदेव, भौंहसे क्रोध, नीचले हौंठसे लोभ, मुखसे वाणी, इंद्रियसे समुद्र और पापका आश्रय निर्ऋति पायुसे प्रगट हुआ ॥ २६ ॥ छायासे देवहूतिके पति प्रभु कर्दमजी प्रगट हुए, इस प्रकार जगत्कर्ता ब्रह्माके मन और देहसे यह जगत् पैदा हुआ ॥ २७ ॥ हे विदुर ! हमने ऐसा सुना है कि—तरुण अवस्थाके प्रभावसे मनको हरण करती अपनी कन्या वाणी ( सरस्वती ) को देखकर, कामी ब्र-

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक् सिंधवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७ ॥ वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ॥ मरीचिमुख्या मुनयो विश्रंभात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यंति चापरे ॥ यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्यांगजं प्रभुः ॥ ३० ॥ तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यंजयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥ ३२ ॥

ह्माजीने उसकी इच्छा विना मनमें इच्छा की ॥ २८ ॥ अपने पिता ब्रह्माजीकी बुद्धि अधर्मकी ओर लगीहुई देखकर, उनके पुत्र मरीचि आदि मुनियोंने भरोसा रखकर, समझाया कि—॥ २९ ॥ यह काम न तौ जो आपसे पहले ब्रह्मा हुए हैं उन्होंने किया है और न जो पीछे होवेंगे वे करेंगे, आप समर्थ होकर, कामदेवको नहीं रोंकते. और उसके न रोंकनेसेही आप कन्यासे संगम करना चाहते हो ॥ ३० ॥ हे जगत्गुरु ! तेजवान् पुरुषोंके वास्तेभी यह बात सराहनेके योग्य नहीं है, क्योंकि आपलोगोंके आचरणके पीछे चल कर, लोक कल्याणको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ हम सब उन हरि भगवान्को नमस्कार करते हैं,

१ यह कथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारमें वर्णन कीगई है. अतएव वर्णनीय जो विद्या है उसको न कहकर उसकी जगह उपमानको लिखा है इसका लक्षण और उदाहरण कुवलयानंदमें देखो,—रूपकातिशयोक्तिः स्यात् निगीर्याध्यवसायतः । पश्य नीलोत्पलद्वंद्वान्निःसरन्ति शिताः शराः

हेसुरोत्तम ! ऐसी प्रजाकी सृष्टि तो आप बंद रक्खो, क्योंकि यह तो उल्बण नेत्रोंसे मेरे साथ सब दिशाओंको भस्म कर रही है ॥ १७ ॥ तुम्हारा कल्याण होओ, जिससे सब लोगोंको सुख होवे ऐसा तुम तप करो, क्योंकि तपके प्रभावसेही तुम पहलेके जैसे इस जगत्‌को रच सकोगे ॥ १८ ॥ तपके प्रभावसेही पर, ज्योतिःस्वरूप, सब जीवोंके अंतर्यामी, अधोक्षज भगवान्‌को यह पुरुष विना परिश्रम प्राप्त हो सकता है ॥ १९ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि– इस प्रकार आज्ञा की, तब ब्रह्माजीको परिक्रमा

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहंतीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १७ ॥ तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथा पूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १८ ॥ तपसैव परं ज्योतिर्भगवंतमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतगुहावासमंजसा विंदते पुमान् ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवाऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ॥ बाढमित्यमुमामंत्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥ अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसंतानहेतवः ॥ २१ ॥ मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥ उत्संगान्नारदो जज्ञे दक्षोंऽगुष्ठात्स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २३ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥ अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ २५ ॥

कर, 'जो आज्ञा' ऐसा कह, आज्ञा ले, तप करनेके लिये वनमें गये ॥ २० ॥ फिर भगवान्‌की शक्ति करके संपन्न ब्रह्माजी सृष्टिका विचार करने लगे, तो उनके दश पुत्र हुए. जो लोकसंतानके कारण हैं ॥ २१ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और उनमें दसवें नारद ॥ २२ ॥ उत्संग ( गोद ) से नारदजी प्रगट हुए, दक्ष ब्रह्माजीके अंगूठेसे पैदा हुआ. प्राणसे वसिष्ठजी उत्पन्न हुए. त्वचासे भृगु और हाथसे क्रतु पैदा हुए ॥ २३ ॥ नाभिसे पुलह पैदा हुए. पुलस्त्य ऋषि कानोंसे, अंगिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे पैदा हुए, ॥ २४ ॥ धर्म दाहिने स्तनसे पैदा हुए जिनके घर स्वयं नारायणने

रुदन करके ब्रह्माजीसे कहा कि–हे विधाता ! हे जगतगुरु ! मेरे नाम और स्थान करो ॥ ८ ॥ उस बालकके ये बचन सुन, स्वीकार करके भगवान् ब्रह्माजीने कल्याणमय वाणीसे कहा कि–तू रुदन मत कर, मैं तेरा सब प्रबंध करता हूं ॥ ९ ॥ हे सुरोत्तम ! तुम उद्वेगसहित बालकके सामान रोये इसलिये प्रजामें तुम्हारा नाम 'रुद्र' ऐसा कहा जायगा ॥ १० ॥ और तुम्हारे वास्ते, हृदय १, इंद्रियां २, प्राण ३, आकाश ४, पवन ५, अग्नि ६, जल ७, पृथ्वी ८, सूर्य ९, चंद्रमा १० और तप ११ ये ग्यारह स्थान पहलेहीसे नियत कर रक्खे हैं ॥ ११ ॥ और मन्यु १, मनु २, महिनस ३, महान् ४, शिव ५, ऋतध्वज ६, उ-

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् ॥ अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥ यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ॥ ततस्त्वामभिधास्यंति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिंद्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ॥ सूर्यश्चंद्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ मन्युर्मनुर्महिनसो महान् शिव ऋतुध्वजः ॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥ धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलांऽविका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥ १३ ॥ गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च स योषणः ॥ एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥ १४ ॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ॥ सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जाऽऽत्मसमाः प्रजाः ॥ १५ ॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समंताद्ग्रसतां जगत् ॥ निशाम्य संख्यशो यूथान्प्रजापतिरशंकत ॥ १६ ॥

ग्ररेत ७, भव ८, काल ९, वामदेव १० और धृतव्रत ११, ये ग्यारह तुम्हारे नाम हैं ॥ १२ ॥ हे रुद्र ! धी १, वृत्ति २, उशना ३, उमा ४, नियुत ५, सर्पि ६, इला ७, अंबिका ८, इरावती ९, सुधा १० और दीक्षा ये रुद्राणी संज्ञक तुम्हारी स्त्रियां हैं ॥ १३ ॥ स्त्रियोंके साथ ये नाम और धाम ले तुम प्रजाओंके पति हौ इस लिये इनसे तुम अनेक प्रजाकी सृष्टि उत्पन्न करो ॥ १४ ॥ भगवान् नीललोहित महादेवको इस प्रकार ब्रह्माजीने आज्ञा की, तब बल, आकार और सुभावसे अपनी जैसी प्रजा उत्पन्न की ॥ १५ ॥ चारोंओरसे जगतका संहार करते रुद्रके रचेहुए रुद्रोंके असंख्यात झुंडोंको देखकर, ब्रह्माजीने डर, कर कहा कि– ॥१६॥

बारहवें अध्यायमें सनत्कुमार आदि मनसंबंधी सृष्टिके न बढ़नेसे फिर शरीरके दो विभाग कर, मनु और शतरूपाको उत्पन्न करके योनिसे उत्पन्न होनेवाली मानवी सृष्टिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कि हे विदुर ! इस प्रकार परमेश्वरकी कालसंज्ञक महिमाका मैंने आपसे वर्णन किया. अब ब्रह्माजीने जिसप्रकार सृष्टि रची वह कहता हूं,—सो मुझसे सुनो ॥ १ ॥ आदिकर्ता ब्रह्माजीने पहले अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह और तमरूप पंचपर्वा अविद्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ अत्यंत पापरूप सृष्टिको देखकर, ब्रह्माजीने अपने आत्माका अभिनंदन न करके, भगवान्‌के ध्यानसे पवित्र ऐसे मनसे फिर दूसरी सृष्टि उत्पन्न की ॥ ३ ॥ यानी स्वयंभू

मैत्रेय उवाच ॥ इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥ ससर्जाग्रेंऽधतामिस्रमथतामिस्रमादिकृत् ॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ॥ भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ॥ ३ ॥ सनकं च सनंदं च सनातनमथाऽऽत्मभूः ॥ सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥ ४ ॥ तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः ॥ तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥ सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ॥ क्रोधं दुर्विषहं जातं नियंतुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ॥ सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः ॥ नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीने सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार इन निष्क्रिय और नैष्ठिक ब्रह्मचारी चार मुनियोंको पैदा किया ॥ ४ ॥ और उन पुत्रोंसे ब्रह्माजीने कहा कि—हे पुत्रो ! तुम प्रजा रचो; परंतु मोक्षधर्मका आचरण करनेवाले, भगवत्परायण उन सनत्कुमारोंने वह करना न चाहा ॥ ५ ॥ जब पुत्रोंने आज्ञा न मानी और इस तरह उनका अपमान किया, तब ब्रह्माजीको अति असह क्रोध उत्पन्न हुआ. यद्यपि ब्रह्माजीने क्रोधको रोंकनेका उपाय किया ॥ ६ ॥ परंतु बुद्धिसे रोकने परभी वह क्रोध न रुककर, भ्रुकुटीके मध्यमेंसे नीललोहित वर्णवाला बालकरूप होकर, तुर्त प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उन देवतानके पूर्वज भगवान् महादेवने

बड़ा कल्प हुआ था, जिसमें जिसे शब्दब्रह्म कहते हैं, वह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था ॥ ३४ ॥ उस ब्राह्मकल्पके अंतमें पाद्मकल्प हुआ. जिस कल्पमें भगवान्की नाभिसरोवरमेंसे लोकरूप कमल उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ हे विदुर ! यह दूसरे परार्धका पहला श्वेतवाराह कल्प है, जिसमें भगवान्ने वराह ( सूकर ) रूप धारण किया ॥ ३६ ॥ यह द्विपरार्ध संज्ञक काल, कार्योपाधिशून्य, अनंत, अनादि और जगत्कारणरूप भगवान्के निमेष यानी आंख फरकानेके समयके बराबर गिना जाता है ॥ ३७ ॥ परमाणुसे ले द्विपरार्धपर्यंत यह काल कि जो समर्थ है, तथापि परिपूर्ण इश्वरके ऊपर इसका बल नहीं चल सकता; क्योंकि यह देह और

तस्यैव चांते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ॥ यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३५ ॥ अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥ ३६ ॥ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्यानंतस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३७ ॥ कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धांत ईश्वरः ॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाम मानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ॥ आंडकोशो बहिरयं पंचाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ३९ ॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥ लक्ष्यतेंऽतर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यंडराशयः ॥ ४० ॥ तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥

घरके अभिमानी लोगोंपर बल चला सकता है ॥ ३८ ॥ विशेष यानी प्रकृति आदि जो आठ प्रकृति, यानी प्रकृति महत्तत्व, अहंकार पांच तन्मात्रा यानी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनके साथ सोलह विकार यानी दश इंद्रियां, ग्यारहवां मन और पांच महाभूत इनसे बना हुआ व अंदरके भागमें पचासकरोड़, विस्तारवाला और बाहिर पृथिवी आदि एक एकसे दस दसगुने आवरणोंसे बींधाहुआ, यह ब्रह्मांड जिनके विषे एक परमाणुसा प्रतीत होता है व ऐसे ऐसे औरभी करोड़ों, ब्रह्मांड पड़े हैं ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ उस सब कारणोंकेभी कारणको अक्षर ब्रह्म कहते हैं, जो महात्मा व पुरुषरूप विष्णु भगवान्का साक्षात् सर्वोत्तम स्वरूप है ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥

मन्वंतरोंमें भगवान् सत्वगुणको धारण कर, अपने अवताररूप मनु और उनके पुत्रपौत्रादिद्वारा अपना पराक्रम प्रगट करके इस जगतका पालन करते हैं ॥ २६ ॥ जब रात्रि आती है, तब तमोगुणका लेश ग्रहण करके, अपने उद्योगको सिमटा- कर, काल करके जिनमें सर्वका लय होता है ऐसे भगवान् चुप यानी निष्क्रिय होकर, रहते हैं ॥ २७ ॥ फिर रात्रि आनेपर सूर्य चंद्रमाके न होनेसे भूरादि तीनों लोक तिरोहित हो जाते हैं ॥ २८ ॥ फिर अपनी शक्तिरूप शेषजीके मुखानलसे त्रिलोकी जलने लगती है, तब उस अग्निकी गर्मीसे पीड़ित भृगु आदि मुनि महर्लोकको छोड़कर, जनलोक चले जाते हैं ॥ २९ ॥ इतनेमें क-

मन्वंतरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ ॥ तमो मात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २७ ॥ तमे- वान्वपिधीयंते लोका भूरादयस्त्रयः ॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २८ ॥ त्रिलोक्या दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना ॥ यांत्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ २९ ॥ ताव- त्त्रिभुवनं सद्यः कल्पांतैधितसिंधवः ॥ प्लावयंत्युत्कटाटोपचंडवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अंतः स तस्मिन्स- लिल आस्तेऽनंतासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरा- त्रैः कालगत्योपलक्षितैः ॥ अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयः शतम् ॥ ३२ ॥ यदर्धमायुषस्तस्य परा- र्धमभिधीयते ॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रांतो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥ ३३ ॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३४ ॥

ल्पांतसमयमें बढ़ेहुए और प्रचंड पवनके प्रभावसे जिनमें बड़ी बड़ी लहरें उठ रहीं हैं ऐसे, भारी क्षोभवाले समुद्र त्रिलोकीको डुबा देते हैं ॥ ३० ॥ फिर भगवान् उस जलमें योगनिद्रासे आंख मूंदकर, शेषशय्यामें शयन करते हैं. उस समय जनलोकमें रहनेवाले भृगु आदि मुनि उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कालकी गतिसे उपलक्षित ऐसे ऐसे रात दिन यानी अहो- रात्रों द्वारा सबसे बड़ी सौ वर्षकी ब्रह्माजीकी आयुष्यभी आजदिन पूरी होनेको आयी है ॥ ३२ ॥ ब्रह्माकी आयुष्यके आधे भा- गको परार्ध कहते हैं. तहां पहला परार्ध तो हो चुका, अब दूसरा परार्ध चलता है ॥ ३३ ॥ पहले परार्धके आरंभमें ब्राह्म नाम

३६०० तीन हजार छः सौ बरसका, द्वापरयुग २४०० दो हजार चारसौ वर्षका, और कलियुग १२०० एकहजार दोसौ वर्षका है ॥ १९ ॥ युगके आरंभमें सैकड़े संख्यावाली युगकी संख्या तथा युगके अंतमें वही संध्याका अंश होता है. और इन दोनोंके बीचमें हजार संख्यावाला युग होता है, जिसमें प्रत्येक युगके धर्म प्रवृत्त होते हैं, ऐसे विद्वान्‌लोग कहते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें मनुष्योंका धर्म चारों चरणोंसे प्रवृत्त होता है. वही धर्म अधर्मके बलसे अन्य युगमें एक एक चरण न्यून हो जाया करता है ॥ २१ ॥ हे विदुर ! त्रिलोकीके बाहर महर्लोक वगैरः ब्रह्मलोकपर्यंत लोकोंमें चार हजार युगोंका ब्रह्माका

संध्यांऽशयोरंतरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥ तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते ॥ स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥ त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशाऽवसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून्भुंजंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वं स्वं कालं मनुर्भुंक्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वंतरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥ भवंति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ २४ ॥ एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥ २५ ॥

एक दिन और उतनीही रात्रि होती है, जिसमें ब्रह्माजी निद्रा लिया करते हैं ॥ २२ ॥ रात्रिके अंतमें फिर लोककी कल्पना प्रारंभ होती है, वह लोकरचना ब्रह्माजीके दिन दिनमें रहती है, जिसमें चौदह मनु हुआ करते हैं ॥ २३ ॥ प्रत्येक मनु इखत्तर ७१ चौकड़ीसे कुछ अधिक कालपर्यंत भोग करता है और उसके वंशज राजा क्रमसे हुआ करते हैं तथा सप्तर्षि[1], देवता, इंद्र व उसका अनुसरण करनेवाले गंधर्व आदि मन्वंतरके आरंभमेंही एकसाथ हुआ करते हैं ॥ २४ ॥ यह त्रिलोकीको प्रवृत्त करनेवाली ब्रह्माजीकी दैनंदिनसृष्टि कहलाती है. जिसमें अपने अपने कर्मोंसे पशु, पक्षी, मनुष्य, पितर और देवता प्रगट हुआ करते हैं ॥ २५ ॥



१ वसिष्ठ, अत्रि २ कश्यप ३ विश्वामित्र ४ भरद्वाज ५ जमदग्नि ६ गौतम ७ यही सात ऋषि हैं.

ता है. सौ वर्षकी मनुष्योंकी परमायु कहलाती है ॥ १२ ॥ ग्रह, नक्षत्र और तारामंडल मध्यवर्ती कालरूप प्रभु सूर्य, परमाणु आदि कालके अवयवोंसे बारह महीनोंमें बारह राशिरूप भुवनकोशमें परिभ्रमण करता है ॥ १३ ॥ हे विदुर! यह वर्ष संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर इस प्रकारसे पांच प्रकारका कहलाता है ॥ १४ ॥ जो अंकुर आदि कार्य उत्पन्न करानेवाली बीज आदि गत शक्तिको अपनी कालरूप शक्तिसे अनेक प्रकारसे कार्याभिमुख करते और मनुष्योंकी आयु आदिके क्षीण करनेसे विषयासक्तिको निवृत्त करते तथा सकाम पुरुषोंके गुणमय स्वर्ग आदि फलको यज्ञोंद्वारा विस्तारते, आकाशमें शीघ्र गति-

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥ १४ ॥ यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै बलिं हरत वत्सरपंचकाय ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥ भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥ १९ ॥

से चलते हैं, उन महाभूत विशेष व पांच संवत्सररूप तथा तेजोमंडलरूप भगवान् सूर्यका आप लोग पूजन करो ॥ १५ ॥ विदुरजीने कहा कि-पितर, देवता और मनुष्योंकी परमायु तौ यह आपने कही, अब कल्पसे बाहिर रहनेवाले जो ज्ञानी हैं, उनकी गति हमें कहो ॥ १६ ॥ आप भगवान् कालकी गतिको ठीक जानते हो; क्योंकि-धीर लोग योगसे सिद्ध भयीहुई दृष्टि करके सब विश्वको देखा करते हैं ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि- देवतानके दिव्य बारह हजार वर्षोंसे संध्या और अंशसहित कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग ऐसे चार युग कल्पना किये गये हैं ॥ १८ ॥ इन चारों युगोंका प्रमाण क्रमसे चार तीन, दो और एक हजार और हजारोंसे दूने सैकड़ोंसे गिना जाता है, अर्थात् सत्ययुग ४८०० चार हजार आठसौ वर्षका. त्रेतायुग

अवस्थाको भोगे उसे परमाणू प्रमाण काल कहते हैं और जो उसीकी संपूर्ण अवस्थाको भोगे उस कालको परम महान् कहते हैं ॥ ४ ॥ दो परमाणुका एक अणु, तीन अणुका एक त्रसरेणु, जो त्रसरेणु जाली झरोंखोंके भीतर सूरजकी किरणोंमें दीखताहुआ आकाशकी ओर जाया करता है ॥ ५ ॥ तीन त्रसरेणुका एक त्रुटि, सौ त्रुटिका एक वेध, तीन वेधका एक लव ॥ ६ ॥ तीन लवका एक निमेष, तीन निमेषका एक क्षण, पांच क्षणकी एक काष्ठा, पन्द्रह काष्ठाकी एक लघुता ॥ ७ ॥ पन्द्रह लघुताकी एक घड़ी, दो घड़ीका एक मुहूर्त छः या सात घड़ीका मनुष्योंका एक प्रहर ॥ ८ ॥ घड़ीका यंत्र बनानेकी रीति कहते हैं; छः

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥ त्रसरेणुत्रिकं भुंक्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ॥ क्षणान्पंच विदुः काष्ठां लघुता दशपंच च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दशपंच च नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥ ८ ॥ द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पंचदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥ तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ॥ द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११ ॥ अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादशस्मृतः ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥

पल तांबेकी कटोरी इतनी बड़ी बनावे कि- उसमें एक प्रस्थ यानी सोलह पल जल समाजावे. उस कटोरीमें इतना बारीख छेद करे कि-जिसमें चार मासे सोनेकी चार आंगुल लंबी सलाई बराबर आ जावे ॥ ९ ॥ हे विदुर ! मनुष्योंके चार पहरका दिन और चार पहरकी रात होती है. रातदिन मिलकर, अहोरात्र. पन्द्रह अहोरात्रका एकपक्ष होता है, जो शुक्ल और कृष्णभेदसे दो प्रकारका है ॥ १० ॥ दो पक्षका एक महीना, जो पितरोंका अहोरात्र कहलाता है. दो महीनोंकी एक ऋतु, छः महीनोंका एक अयन होता है जो दक्षिणायन और उत्तरायणके भेदसे दो प्रकारका है ॥ ११ ॥ दो अयन यानी बारह महीनोंका १ वर्ष कहला-

प्रकारका है, जैसे विबुध १, पितर, २, असुर, ३, गंधर्व तथा अप्सरा ४, यक्ष तथा राक्षस ५, सिद्ध, चारण ॥ २७ ॥ तथा विद्याधर ६, भूत, प्रेत तथा पिशाच ७ और किन्नर किंपुरुष आदि ८ हे विदुर ! जगत्कर्ताके कियेहुए ये दश सर्ग मैंने आपसे कहे ॥ २८ ॥ अब मन्वंतर और मनुके वंशकी कथा कहता हूं इसप्रकार रजोगुणसे व्याप्त जगत्स्रष्टा स्वयंभू हरि कल्प आदिकनमें आपही अपनेही स्वरूपसे आत्माकोही उत्पन्न करते हैं ॥ २९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें परमाणु आदि कालके चिन्होंसे युग व मन्वंतर आदि कालके प्रमाणसे कल्पका प्रमाण आदि कहा जायगा ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-कार्यके विभागोंमेंसे जो चरम विभाग है,

भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वंतराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना॥२९॥इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ मैत्रेय उवाच॥चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः॥१॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरंतरः ॥ २ ॥ एवं कालोप्यनुमितः सौक्ष्मे स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ॥ ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥

अर्थात् जिसका फिर विभाग नहीं होसकता ऐसा, कार्यावस्था और समुदायावस्थासे रहित सदा रहनेवाला जो पदार्थ है, उसे परमाणु समझना चाहिये, जिनके समुदायसे व्यवहारकर्तालोगोंको ऐक्यका भ्रम अर्थात् अवयवि बुद्धि होती है ॥ १ ॥ जिसका चरम अंश परमाणु है, उसी परिणामांतरको अप्राप्त स्वरूपावस्थित कार्यमात्रका जो ऐक्य है उस प्रमाणको परममहान् कहते हैं अर्थात् जिसमें न तो विशेषकी विवक्षा है और न निरंतर भेदकी विवक्षा है ऐसा, सकलप्रपंच परममहान् है ॥ २ ॥ हे विदुर ! जैसे पदार्थका स्थूल सूक्ष्म विषयमें अंदाज किया गया है, वैसे कालकाभी अनुमान किया गया है अर्थात् अव्यक्त स्वरूप विभु कालभी अपनी परमाणु आदि अवस्थाओंकी व्याप्तिसे व्यक्त पदार्थका परिच्छेद करता है ॥ ३ ॥ जो काल प्रपंचकी परमाणु

हैं ॥ १९ ॥ आठवां सर्ग पशु-पक्षियोंका अठ्ठाईस प्रकारका है. येभी विचारशून्य, केवल आहार आदि ज्ञानवाले, केवल घ्राण-सेही इष्ट वस्तुको जाननेवाले, और दीर्घ अनुसंधान रहित हैं ॥ २० ॥ हे विदुर ! अठ्ठाईस भेद सुनो गौ १, अज ( बकरा ) २, महिष ( भैंसा ) ३ कृष्ण मृग ४, सूकर ५, रोज ( लीलगाह ) ६, रुरु ७, भेंड़ ८, ऊंट ९ ये नव तौ फटेहुए खुरोंवाले पशु हैं. ॥ २१ ॥ शसभ ( गधा ) १, घोड़ा २, खच्चर ३, गौरमृग ४, शरभ ५, तथा चमरी ( सुरागाय )६, हे विदुर ! ये ६ एक खुरवाले यानी सुमदार हैं. अब पांच नखोंवाले सुनो ॥ २२ ॥ श्वान ( कुत्ते ) १, सियार २, वृक ( भेंड़ियां ) ३ , बघेरा ४,

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः ॥ अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥ गौ-रजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पंचनखान्पशून् ॥ २२ ॥ श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ॥ हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरकविधो नृणाम् ॥ रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ॥ गंधर्वाऽप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ २७ ॥

बिडाल ५, शश ( खरगोश ) ६, सेही ७, सिंह ८, बंदर ९, हाथी १०, कछुआ ११, गोधा ( गोह ) १२, और मगर १३, आदि ॥ २३ ॥ तथा अठ्ठाईसवां सर्ग कंक, वट, श्येन ( सिकरा ), भास, भल्लूक, मयूर, हंस, सारस, चकवा, काक और उलूक ( उल्लू ) यह पक्षियोंका है ॥ २४ ॥ हे विदुर ! जिनका खायाहुआ आहार नीचे जाता है वह मनुष्योंका सर्ग नवमा कहलाता है. वह एकही प्रकारका है. इन मनुष्योंमें रजोगुण अधिक है, अतएव ये कर्मपरायण और दुखमें सुख माननेवाले हैं ॥ २५ ॥ हे विदुर ! जैसे ये तीन सर्ग वैकृत हैं, वैसे देवसर्गभी वैकृत है. और जो वैकारिक देवताओंका सर्ग है, वह प्राकृतसर्गमें कहा गया है, और सनत्कुमारोंका जो सर्ग है, वह प्राकृत तथा वैकृत होनेसे उभयरूप है ॥ २६ ॥ वैकृत देवसर्ग जो है वह आठ

इस जगत्का सर्ग नौ प्रकारका है. और जो वैकृत यानी उभयात्मक सर्ग है वह दसवां है ॥ १३ ॥ जैसे सर्ग दस प्रकारका है. वैसे प्रलयभी तीन प्रकारका है तहां केवल कालसे जो प्रलय होता है वह नित्य प्रलय और संकर्षण अग्नि आदिसे होता है वह नैमित्तिक प्रलय तथा गुण अपने अपने कारणमें लीन हो जाते हैं वह प्राकृतिकप्रलय. ( अब सर्ग कहते हैं ) परमेश्वरसे गुणोंकी विषमतारूप महत्तत्वका जो सर्ग है वह पहला सर्ग १ ॥ १४ ॥ तथा पंचमहाभूत, ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय आदिके कारणरूप अहंकारका जो सर्ग वह दूसरा सर्ग २; पंचमहाभूतोंका उत्पन्न करनेवाला जो तन्मात्राका सर्ग वह तीसरा सर्ग ३ ॥ १५ ॥ ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियोंका जो सर्ग वह चौथा सर्ग ४; सात्विकाहंकाररूप देवताओंकी सृष्टि तथा सात्विकाहंकाररूप मन यह पांचवां

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥ १५ ॥ चतुर्थ ऐंद्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ॥ वैकारीको देवसर्गः पंचमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७ ॥ रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अंतःस्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ ॥

सर्ग ५ ॥१६॥ हे विदुर! जीवोंके आवरण विक्षेप करनेवाली जो पंचपर्वा अविद्याकी सृष्टि वह छटा सर्ग है ६. ये छह तो प्राकृतसर्ग हैं. अब मैं वैकृतसर्ग कहता हूं सो सुनो ॥१७॥ जिन परमेश्वरके विषे धारणावाली बुद्धि आवागवनको टाल देती है, उन रजोगुणमूर्ति भगवानकी यह सब लीला है, सर्गोंमें मुख्य जो छः प्रकारका स्थावरोंका सर्ग है. वह सातवां सर्ग है॥ १८॥ जैसे-वनस्पति-पुष्प विना जो फलते हैं वे वट आदि; औषधि-फलके पाक पर्यंत रहनेवाली गेहूं आदि, लता-जो किसीके सहारे चढ़तीं हैं वे गिलोय आदि, त्वक्सार-बांस आदि, वीरुध-जो चढ़नेकी अपेक्षा न करें वे, वृक्ष-जो पुष्प आकर, फलते हैं वे आम आदि, इन सबके आहारकी गति ऊंची है और इनका चैतन्य अप्रगट है. तथा इनको केवल अंतर्गत स्पर्श मात्रका ज्ञान है. और इनके अव्यवस्थित परिणाम अनेक भेद

फिर जिस कमलपर बैठे थे, उसे आकाशतक व्याप्त भयाहुआ देखकर, ब्रह्माजीने विचार किया, कि प्रथम प्रलयमें लीन भयेहुए तीनों लोकोंकी इसीसे कल्पना करूंगा ॥ ७ ॥ भगवान्के जो स्वयं कर्तव्य कर्म था, उसमे प्रेरणा कियेहुए ब्रह्माजीने उस कमलकोशमें प्रवेश करके चौदह प्रकारसे और उससेभी अधिक अनेक प्रकारसे भावना करनेके योग्य उस कमलका तीन प्रकारसे विभाग किया ॥ ८ ॥ यह त्रिलोकीरूप जीवमात्रके कर्मफलकी भोगभूमिकी रचना कही गयी कि-जिसकी प्रतिदिन सृष्टि हुआ करती है. जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये निष्कामकर्मके कल्परूप हैं, तासों ब्रह्माजीके प्रतिदिनमें उनकी उत्पत्ति और नाश नहीं होता.

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिंतयत् ॥ ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः ॥ एकं व्यभांक्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥ एतावान्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन्यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥११॥ विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना॥१२॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्॥सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥

और उन लोकोंमें रहनेवालोंकी तदनंतर प्रायः मुक्तिही होजाती है ॥ ९ ॥ विदुरजीने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! अद्भुतचरित्र और अनेकरूपवाले हरि भगवान्का कालनामक जो स्वरूप आपने कहा, हे प्रभु ! वह स्वरूप कैसा है ? और उसका स्थूल व सूक्ष्मरूप क्या है ? वह हमें यथार्थरीतिसे वर्णन करके सुनाओ ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-काल यह सत्व, रज, तम इन गुणोंको क्षोभित करने रूप आकारवाला महत्तत्वादि परिणामरूप है, वस्तुतः यह विशेष आकाररहित और आदिअंतशून्य है. तथा पुरुष भगवान्ने निमित्तभूत कालके द्वारा अपनी लीलासे अपने आत्माकोही विश्वरूपसे पैदा किया है. ॥ ११ ॥ भगवान्की मायासे संहारको प्राप्त भयाहुआ यह विश्व, ब्रह्मसे पृथक् नहीं है, तथापि अव्यक्तमूर्ति कालके द्वारा परमेश्वरने ब्रह्मसे जुदा हो वैसे, जगत्को प्रकाशित किया है ॥ १२ ॥ यह जगत् जैसे अभी है वैसाही पहले था और पीछेभी ऐसाही रहेगा. उस

रहती हैं, उनका पूर्वकल्पके बराबर निर्माण करो ॥ ४३ ॥ मैत्रयजीने कहा कि-जगत्के रचनेवाले ब्रह्माजीके लिये इसप्रकार इस सृज्य जगत्को प्रकाशित करके, प्रकृति और पुरुषके ईश्वर पद्मनाभ भगवान् अपने स्वरूपसे अंतर्धान होगये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ दशवें अध्यायमें कालसंबंधी प्रश्नका उत्तर देनेके लिये प्राकृत आदि विभागसे दश प्रकारका सर्ग कि-जो ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुआ है, वह कहा जायगा ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा कि-भगवान्के अंतर्धान हुए पीछे वीभु व लोकपितामह ब्रह्माजीने देहसंबंधी और मनसंबंधी कितने प्रकारकी प्रजा

मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन रूपेण कंजनाभस्तिरोदधे ॥४४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ विदुर उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥ १ ॥ ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान्वदस्वानुपूर्वेण छिंधि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संचोदितस्तेन क्षत्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिंचोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥ तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममंभश्च तत्कालकृतवीर्येण कंपितम् ॥ ५ ॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चाऽऽत्मसंस्थया ॥ विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहांभसा ॥ ६ ॥

रची ॥ १ ॥ हे भगवान् ! हे अतिशय ज्ञानीमैत्रेयजी महाराज !औरभी जो विषय मैंने आपसे पूंछे हैं, वे सब आप मुझे क्रमसे कहकर हमारे सब संदेह निवारण करो ॥ २ ॥ सूतजीने कहा कि- हे शौनक ! उन विदुरजीने इस प्रकार महामुनि मैत्रेयजीसे प्रेरणा की, तब प्रसन्न होकर, अपने हृदयगत सब प्रश्नोंका उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि-ब्रह्माजीनेभी श्रीनारायणमें मन लगा कर, जैसे भगवान्ने आज्ञा की वैसेही दिव्य सौवर्षपर्यंत तप किया ॥ ४ ॥ कमलसंभव ब्रह्माजी जिस कमलपर बैठे हुए थे, उसे तथा उसके आधार जलको प्रलयकालके बलसे अति पराक्रमी वायुके वेगसे कंपायमान देख कर ॥ ५ ॥ विज्ञान और बल करके बढ़ेहुए ब्रह्माजी बढ़तेहुए तपके प्रभावसे तथा आत्मगत विद्याके बलसे जलसहित वायुको पी गये ॥ ६ ॥

है, तथापि आपने तो आज मेरा स्वरूप जान लिया; क्योंकि आप मुझे पंचमहाभूत इंद्रिया, सत्व आदि गुण और अहंकारसे अलिप्त मानते हो ॥ ३६ ॥ जब आपने जलके भीतर कमलके मूल कारणको नालकी राह तलाश करना चाहा और तलाश करते संदेह हुआ कि-इसके नीचे कुछनकुछ पदार्थ अवश्य होगा, परंतु दीखता नहीं है, ऐसे भ्रमजालमें पड़नेपर हृदयके अंदर मैंने आपको अपने स्वरूपका दर्शन दिया ॥ ३७॥ और हे ब्रह्माजी ! मेरी कथारूप अभ्युदयकी चिन्हवाली जो आपने मेरी स्तुति की और जो आपकी तप करनेमें निष्ठा हुई, यह सब मेराही अनुग्रह समझो ॥ ३८ ॥ लोकोंके विजयकी इच्छासे जो मैं सगुण रूपसे प्रतीत होताहूं उसकी निर्गु-



तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थांग मत्स्तोत्रं मत्कथाऽभ्युदयांकितम् ॥ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥ यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं मानुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥ पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥ ४१ ॥ अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ ४२ ॥ सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ॥ प्रजाः सृज यथा पूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥

णरूपसे वर्णन करके स्तुति की. इस बातसे मैं आपपर बहुत प्रसन्न हुआ हूं, आपका कल्याण होओ ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य इस आपके कियेहुए स्तोत्रसे स्तुति करके, नित्य मेरा भजन करेगा, उसपर सर्व कामना और वरदान देनेवाला मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाऊंगा ॥ ४० ॥ पूर्त ( कुआं बावड़ी बनाना ) तप, यज्ञ, दान, योग व समाधि इन सब साधनोंके संपादन करनेका फल केवल मेरी प्रीतिहि है, यह ज्ञानीजनोंका मत है ॥ ४१ ॥ हे विधाता ! मैं सब जीवोंका आत्मा हूं, अतएव शरीर आदि अन्य सब प्रिय पदार्थोंसे मैं अति प्रिय हूं, इसीवास्ते मुझपर प्रीति रखनी; क्योंकि देह आदि जो प्रीतिके पात्र हैं, वह केवल मेरे वास्तेही हैं ॥ ४२ ॥ जिसका कारण मैं हूं, ऐसे और सर्ववेदमय ऐसे, आप तीनों लोक तथा जो प्रजा सूक्ष्मरूपसे मुझमें

हों वैसे गंभीर वाणीसे कहा ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि– हे वेदगर्भ ! ब्रह्माजी ! विषादसे आलस्य मत करो, सृष्टिके निमित्त उद्यम करो. और जो आप मुझसे मांगते हो उसका मैंने पहलेहीसे बंदोबस्त कर दिया है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्माजी ! आप फिरभी तप करो और मेरे आश्रित विद्याको धारण करो. इन दोनोंके प्रभावसे हृदयके भीतर आपको ये सब लोक स्पष्ट दीखने लग जायंगे ॥ ३० ॥ हे ब्रह्माजी ! फिर भक्तियुक्त और समाधिनिष्ठ आप आत्मामें और लोकमें व्याप्त होकर, स्थित मुझे देखोगे. और मुझमें स्थित सब लोक और जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जब यह लोक काठमें जैसे अग्नि रहती है वैसे, सब जीवोंमें स्थित मुझे देखता

श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तंद्रीं सर्ग उद्यममावह ॥ तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥ २९ ॥ भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ॥ ताभ्यामंतर्हृदि ब्रह्मन् लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥ ३० ॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन्मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥ ३१ ॥ यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ ३२ ॥ यदा रहितमात्मानं भूतेंद्रियगुणाशयैः ॥ स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥ ३३ ॥ नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ॥ नाऽऽत्माऽवसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥ ३४ ॥ ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥ यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥ ३५ ॥ ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेंद्रियगुणात्मभिः ॥ ३६ ॥

है, उसीक्षण उसका कश्मल ( दुःख ) दूर होजाता है ॥ ३२ ॥ जब आत्मा यानी शुद्ध त्वंपदार्थको पंचमहाभूत, इंद्रियां, तीन गुण और चतुर्विध अंतःकरणोंसे रहित और आत्माके आत्मभूत मुझ तत्पदार्थके साथ एकरूप देखे तब यह जीवात्मा मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके कर्मोंको फैलाकर, जो आप अनेकप्रकारकी प्रजा रचोगे, उसमें आपका मन खिन्न न होगा यह आप मेरा बड़ा भारी अनुग्रह समझो ॥ ३४ ॥ आपने प्रजा सरजते समयमेंभी मुझमें मनको लगादिया है, इसलिये यह महापापी रजोगुण सबसे आदि ऋषि आपको बंधन नहीं करेगा ॥ ३५ ॥ देहधारियोंको मेरे लिये स्वरूपका जानना अतिदुर्लभ

तीय और अंतर्यामी प्रभु जिस ज्ञान व ऐश्वर्यसे जगत्को सुखी करते हैं, उसी ज्ञान व ऐश्वर्यके द्वारा मुझेभी ज्ञानका प्रदान करो, जिसके बलसे मैं पूर्वके समान सृष्टिरचना करूंगा ॥ २२ ॥ शरणागत लोकोंको वर देनेवाले ये भगवान् लक्ष्मीरूप अपनी शक्तिके साथ मायाके गुणोंसे अवतार लेकर. जो चरित करेंगे उनमें, अपना ( विष्णुका ) पराक्रम जिसमें सूचित होता है ऐसे, इस जगत्को रचतेहुए मेरे मनको प्रवृत्त करो; कि-जिससे मेरे कर्मासक्ति न होवे और उससे कियेहुए वैषम्य नैर्घृण्य आदि पापों-का जैसे मेरे परित्याग हो जावे ॥ २३ ॥ अनंतशक्ति तथा जलमें विराजमान जिन भगवान्की नाभिरूप तालाबमेंसे मैं महत्तत्व-

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥ तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृ-जतोऽपि चेतो युंजीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥ २३ ॥ नाभिह्रदादिह सतोऽभसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनंतशक्तेः ॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां वि-सर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनांबुरुहं विजृंभन् ॥ उत्थायविश्व-विजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनो वचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥ २६ ॥ अथाभि प्रेतमन्वीक्ष्य ब्राह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकरांभसा ॥ २७ ॥ लोकसंस्थान-विज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ॥ तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥ २८ ॥

का अभिमानी पैदा हुआ हूं, उन भगवान्के स्वरूपका विस्तार करनेवाला जो मैं हूं, तिसकी देवकी अंगभूत वाणीके उच्चारणका नाश न होवे ॥ २४ ॥ वे ये अनल्प करुणावाले पुराणपुरुष भगवान् वृद्धिंगत प्रेम व मंदहास्यसे नेत्रकमलको उघाड़कर, जग-त्के उद्भवके वास्ते और हमपर अनुग्रह करनेके लिये उठकर, मधुर वाणीसे हमारे विषादको दूर करो ॥ २५ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-तप उपासना और समाधिके प्रभावसे अपने उत्पन्न करनेवाले प्रभुका दर्शन कर, जहांतक अपना मन, वचन पहुंचा वहांतक स्तुति करके, वे ब्रह्माजी थकेहुए पुरुषकी तरह चुप हो बैठे ॥ २६ ॥ फिर ब्रह्माजीका अभिप्राय जानकर, तथा प्रलयके जलसे खिन्नचित्त देखकर, मधुसूदन भगवान्ने लोकरचनाके विज्ञानके निमित्त खेद पातेहुए ब्रह्माजीसे मानों उनका खेद शांत करते

कल्याणकारी कर्ममें असावधान रहता है, त्योंही जो बलवान् काल इस पुरुषकी जीनेकी आशाको शीघ्र काट देता है, उस अकुंठगति कालमूर्ति आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ सब लोकोंके पूजनीय व दो परार्धपर्यंत अविचल रहनेवाले स्थानपर स्थित मैंभी जिनसे डरा करता हूं और जिनकी प्राप्तिकी इच्छासे मैंने अनेक वर्षोंपर्यंत तप किया है, उन यज्ञपति भगवान् आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ जो अपने स्वरूपानंदके अनुभवहीसे सदा विषयसुखसे विरक्त हैं, तथापि अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेकी इच्छासे पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि अनेक प्रकारकी योनियोंमें अपनी इच्छासे देह धारण

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अंतर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जलस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥ सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाऽहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥

कर, क्रीड़ा करते हैं, उन पुरुषोत्तम भगवान् आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ भयंकर तरंगोंकी माला जिसमें उठ रहीं हैं ऐसे समुद्रके जलके भीतर मनुष्यको मानों निद्राके सुखका अनुभव करवाते हों वैसे, अपने उदरमें लोकोंको धारण करके, जो भगवान् पांच वृत्तिवाली तथा निद्राकी कारणभूत अविद्याके संबंधसे रहित होनेपरभी शेषजीरूप शय्याका स्पर्श जिसके अनुकूल है ऐसी, निद्राको धारण करते हैं ॥ २० ॥ और जिनके अनुग्रहसे उन भगवान्के नाभिकमलरूप स्थानसे त्रिलोकीका सृष्टि आदिसे उपकार करनेवाला मैं उत्पन्न हुआ हूं और सब लोक जिनके उदरमें निवास करते हैं और योगनिद्राके अंतसमयमें जो अपने कमलसे नेत्रोंको खोला करते हैं, उन आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥ समस्त जगत्के सुहृद व प्रणतप्रिय अद्वि-

रूप, आप, अभक्त पुरुषोंको जिसका मिलना असंभव ऐसी, सबजीवोंपर दया करनेसे जैसे प्रसन्न होते हो, वैसे मनमें
अनेक कामनासे भरेहुए देवताओंकी चंदन पुष्प आदि अनेक प्रकारके उपचारोंसे कीहुई सेवासे प्रसन्न नहीं होते ॥ १२ ॥
अतएव यज्ञ आदि अनेक कर्मोंसे तथा दान, उग्र तप व व्रताचरणसे आपका आराधन करना यही कर्मका उत्तम फल
है; क्योंकि आपके अर्पण कियाहुआ धर्म कदापि नाश नहीं होता ॥ १३ ॥ सदा अपने चैतन्य प्रकाशसेही जिन्होंने भेदजन्य
मोहको दूर कर दिया है तथा जो ज्ञानस्वरूप हैं. और जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, भंगके निमित्तभूत मायाके विलाससे जो क्रीड़ा

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ॥ आराधनं भगवतस्तव सत्क्रिया-
र्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्‌ध्रियते न यत्र ॥ १३ ॥ शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय
नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥ १४ ॥ यस्या-
वतारगुणकर्मविडंबनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणंति ॥ तेनैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा सं-
यांत्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥ यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेत-
व आत्ममूलम् ॥ भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको
विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविता-
शां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तुतस्मै ॥ १७ ॥

करते हैं, ऐसे परमेश्वर आपको हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य उन प्रभुके अवतारके सूचक तथा गुण व क-
र्मोंके सूचक हे गोवर्धनधारी ! हे भक्तवत्सल ! इत्यादि नामोंका अंतसमयमें परवश होनेपरभी उच्चारण करते हैं, वे अनेक ज-
न्मोंके पापोंसे छूटकर तुर्त आवरणरहित सत्यस्वरूप ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, उन अज भगवान्‌के मैं शरण आया हूं ॥ १५ ॥
जो सृष्टिके आदिमें एकरूप होनेपरभी जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयके कारण, मैं ( ब्रह्मा ) आप ( विष्णु ) व रुद्ररूपसे मा-
याके तीनों गुणोंके भेदके अनुसार त्रिविधरूप हुए, और फिर मनु, मरीचि आदि प्रजापतियोंके रूपसे अनेक प्रकारसे बढ़े, उन
जगत्‌वृक्षरूप भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥ विरुद्धकर्मनिष्ठ यह लोक ज्योंही आपके कहेहुए आपके अर्चनरूप अपने

होकर, भोगविलाससंबंधी सुखके लेश मात्रके वास्ते निरंतर अकल्याणकारी अनेक अर्थ करते रहते हैं ॥ ७ ॥ हे उरुक्रम ! मैं इन लोगोंको भूख प्यास, वात, पित्त, कफ, सर्दी, गर्मी, हवा, वर्षा, दुःसह कामदेवरूप अग्नि और अविच्छिन्न क्रोध तथा आपसके रगड़ोंसे बारंबार दुःखी देखता हूं, तब मेरा मन बहुत दुःख पाता है ॥ ८ ॥ हे ईश ! जबतक यह मनुष्य, भगवान् आपकी इंद्रिय व विषयरूप मायासे वृद्धिंगत इस देहादिगत भेदभावको देखता है तबतक इसका दुःखजालका देनेवाला और व्यर्थ होनेपरभी कर्मका फल देनेवाला यह जन्ममरणरूप संसार निवृत्त नहीं होता ॥ ९ ॥ हे देव ! दिनमें तो इंद्रियोंको क्लेश देते

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ॥ कामाग्निनाच्युतरुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इंद्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थाऽपि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥ ९ ॥ अह्न्या प्रतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ॥ दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसंगविमुखा इह संसरंति ॥ १० ॥ त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयंति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ॥ यत्सर्वभूतदयया सदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदंतरात्मा ॥ १२ ॥

हैं और रात्रिमें सोते सोतेही अनेक मनोरथोंकी ओर ध्यान लगनेसे सुपनके अंदर क्षण क्षणमें भग्ननिद्र हो जाते हैं, अर्थात् रात्रिमें जिनको विषयसुखका लेशभी नहीं मिलता और दैवने जिनके धनके उद्यमको सब प्रकारसे नाश कर दिया है ऐसे, आपके श्रवणकीर्तनादिकोंसे विमुख ऋषिभी इस संसारमें भ्रमण करते फिरते हैं, अर्थात् आपकी भक्ति विना आवागवन नहीं टलता ॥ १० ॥ हे नाथ ! भक्त जनोंके भक्तियोगरूप उपायसे निर्मल भये हुए हृदयकमलमें श्रवण करनेसे जिनका मार्ग ज्ञात होता है ऐसे, आप सदा विराजा करते हो. और वे भक्तलोक जिस जिस रूपका ध्यान करते हैं उस उस स्वरूपको हे प्रभु ! सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप धारण करते हो ॥ ११ ॥ सर्व प्राणियोंमें अंतर्यामिरूपसे विराजमान तथा सबके सुहृद-

स्वरूपके नाभिकमलरूप भवनमेंसे प्रथम मैं पैदा हुआ हूं ॥ २ ॥ हे परम ! इससे पर जो केवल आनंदमय, निर्विकल्प, आवरणरहित प्रकाशवाला आपका स्वरूप है, उसे मैं इस स्वरूपसे भिन्न नहीं देखता. अतएव उपासना करने योग्य स्वरूपोंमें मुख्य जगत्को सरजनहारे, जगत्से अलग तथा पंचमहाभूत व इंद्रियोंके कारणरूप, आपके इस स्वरूपके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ ३ ॥ हे जगत्के कल्यान करनहारे ! आपके उपासक हमलोगोंका कल्यान करनेके वास्ते आपने जो हमको ध्यानके अंदर इसी स्वरूपसे दर्शन दिया वह ठीक नहीं, नरकमें जानेवाले निरीश्वरवादी कुतर्कनिष्ठ जिनका अनादर करते हैं ऐसे भगवान् आपको हम बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ जो भक्तलोग वेदरूप वायुके प्रभावसे समीपमें प्राप्त आपके चरणकमलकोशकी सुगंधिका का-

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानंदमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्भूतेंद्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमंगल मंगलाय ध्याने स्मनो दर्शितं त उपासकानां ॥ तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसंगैः ॥ ४ ॥ ये तु त्वदीयचरणांबुजकोशगंधं जिघ्रंति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयांबुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥ तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ॥ तावन्ममेत्यसदवग्रहआर्तिमूलं यावन्न तेंऽघ्रिमभयं प्रवृणीतलोकः ॥ ६ ॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेंद्रिया ये ॥ कुर्वंति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ ७ ॥

नोंके छिद्रोंसे अनुभव करते हैं, अर्थात् अति आदरसे आपकी कथा श्रवण करते हैं; हे नाथ ! उन अपने भक्तजनोंके हृदयकमलको छोड़कर आप दूर नहीं जा सकते, क्योंकि परम ( उत्कृष्ट ) भक्तिसे वे आपके चरणारविंदको दृढ़ पकड़ लिया करते हैं ॥ ५ ॥ जबतक ये लोक भय मिटानेवाले आपके चरणका शरण नहीं लेते, तबतक इनके धन, घर व मित्रके हेतु भय, शोच, स्पृहा ( चाह ) तिरस्कार, अत्यंत लोभ ( लालच ) और मेरा इस प्रकार दुःखका मूल दुराग्रह ये सब बने रहते हैं. आपका शरण लिये पीछे कुछभी दुःख नहीं रहता ॥ ६ ॥ सर्व अनर्थ निवारण करनेवाले आपके श्रवणकीर्तनादिरूप प्रसंगसे जिनकी इंद्रियां विमुख हैं उन्हें समझना चाहिये कि- दैवने इनकी बुद्धिका नाश कर दिया है; क्योंकि वे लोग लालचसे भ्रष्टचित्त होनेसे दीन

चौतरफ दौड़ते हुए संग्रामहेतु जो सुदर्शन आदि शस्त्र उनके प्रभावसे दुष्प्राप्य ऐसे हरि भगवान्‌के दर्शन हुए ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के दर्शन होतेही भगवान्‌के नाभिसरोवर संबंधी कमल, प्रलयका पवन, आकाश और अपनी आत्मा इतना तौ ब्रह्माजीको दीखने लगगया परंतु लोकरचनामें है दृष्टि जिनकी ऐसे जगत्‌के विधाता ब्रह्माजीको इसके सिवाय और कुछभी न दीखा ॥ ३२ ॥ प्रजा रचनेकी इच्छा है ऐसे रजोगुणयुक्त ब्रह्माजी इतनासा लोकोंकी सृष्टिका कारण देख कर, लोकरचनाकी ओर ध्यान दे, भगवान्‌में मन लगाकर, उनकी स्तुति करने योग्य भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमे अध्यायमें तपके प्रभावसे प्रसन्नहुए

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमंभः श्वसनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ सकर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ आस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥ रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ॥ आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥

नारायणके दर्शन करके एकार्णवमें दुख पातेहुए ब्रह्माजीने लोकरचनेकी इच्छासे स्तुति की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–हे भगवन् ! बहुत कालतक आपकी उपासना करनेसे अब आज मैंने आपको पहिँचाना है. अहो ! देहधारियोंका यह बड़ा दोष है कि–जो भगवत्‌रूप आपके तत्वको ये लोक नहीं जानते. हे भगवन् ! आपके सिवाय कुछभी पदार्थ नहीं है. और जो प्रतीत होता है वह शुद्ध यानी सत्य नहीं है; क्योंकि मायाके गुणोंका क्षोभ करके आपही अनेकरूप होकर, प्रकाशते हो. तासों मैं कहता हूं कि–आपके सिवाय कुछभी पदार्थ नहीं है ॥ १ ॥ चित्‌शक्तिके आविर्भावसे जिसमें तमोगुणका लेशभी नहीं है ऐसा यह आपका हजारों अवतारोंका बीजरूप स्वरूप सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके वास्ते आपसे धारण किया गया है, जिस

उपमा रहित, त्रिलोकीके निवासभूत तथा विचित्र व दिव्य आभूषण और वस्त्रोंकी सजावटसे शोभायमान शरीर करके देहके अलंकारको स्वीकार किये हुए ॥ २५ ॥ अपने अभीष्ट फलकी प्राप्तिके अर्थ वेदोक्त शुद्ध मार्गोंसे पूजन करनेवाले मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनहारे तथा अपने नखरूप चंद्रमाकी किरणोंसे विभिन्न भयी हुई अंगुलीरूप सुंदर पत्रवाले चरणारविंदका कृपा करके दर्शन देते हुए ॥ २६ ॥ लोकोंकी आर्ति मिटानेवाला जिसमें मंदहास्य है ऐसे व देदीप्यमान कुंडल करके शोभायमान तथा बिंबफलके समान अधरकी कांतिसे लालसा प्रतीयमान, सुंदर नासिका व सुंदर भौंहवाले मुखकरके सेवक लोगोंका पीछा सत्कार करते हुए ॥ २७॥ कदंबके केसरके समान जो पीतांबर उससे तथा कटिके अधोभागमें धारण की हुई कटिमेखलासे और श्रीवत्सके लांछनवाले व-

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघांघ्रिपद्मम् ॥ प्रदर्शयंतं कृपया नखेंदुमयूखभिन्नांगुलिचारुपत्रम् ॥२६॥ मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुंडलमंडितेन ॥ शोणायितेनाधरबिंबभासा प्रत्यर्हयंतं सुनसेन सुभ्र्वा॥२७॥ कदंबकिंजल्कपिशंगवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितंबे ॥ हारेण चानंतधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षस्थलवल्लभेन ॥२८॥ परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दंडसहस्रशाखम् ॥ अव्यक्तमूलं भुवनांघ्रिपेंद्र महींद्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥ चराचरौको भगवन्महीध्रमहींद्रबंधुं सलिलोपगूढम् ॥ किरीटसाहस्रहिरण्यशृंगमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥ निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम्॥ सूर्येंदुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥ ३१ ॥

क्षःस्थलपर विराजमान प्यारे अमूल्य हारसे सिंगार किये हुए ॥ २८ ॥ भुजदंडरूप अनंत शाखाओंमें उत्तम भुजबंध व उत्तम मणिगण धारण कियेहुए व शेषजीके फणोंसे कंधेरूप बड़ी बड़ी शाखायें जिनकी वेष्टित हैं ऐसे तथा अव्यक्त अर्थात् ब्रह्म जिसका मूल कारण है ऐसे, जगतके आश्रयभूत अपने शरीररूप चंदनवृक्षको धारण करते हुए ॥ २९ ॥ चराचरके निवासरूप ! अहींद्र जो शेषजी उनके बंधु, जलसे आवृत, हजारों किरीटरूप सुवर्णके शिखरवाले तथा कौस्तुभरत्न जिनके स्वरूपमें स्पष्ट प्रतीत हो रहा है ऐसे, पर्वतकीसी शोभा धारण करनहारे ॥ ३० ॥ वेदरूप भ्रमरों करके शोभायमान जो अपनी कीर्तिरूप वनमाला, उसे कंठके बीच धारण किये व सूर्य, चंद्रमा, अग्नि ये तीनों जहां पहुँच नहीं सकते ऐसे, तथा त्रिलोकीमें है स्फूर्ति जिनकी ऐसे रक्षाके अर्थ

सौ वर्ष संख्यावाला काल व्यतीत होगया परंतु ब्रह्मांजीको कमलनालका पता नहीं मिला ॥ २० ॥ इस प्रकार ढूंढ़नेसे जब अपना मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ. तब वे पीछे लौटकर अपने आसनपर बैठके धीरे श्वास रोकनेके द्वारा वृत्तिका निरोध करके समाधियोगको धारण करके बैठे ॥ २१ ॥ सौ वर्षपर्यंत समाधि लगानेसे योगसिद्ध हो गया. और उसीके प्रभावसे ज्ञान प्राप्त होनेसे ब्रह्माको अपने आप हृदयके अंदर वह स्वरूप प्रकाशमान दीखने लगा कि जिसका पहले सौ वर्षपर्यंत परिश्रम करनेसेभी दर्शन

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥ २१ ॥ कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदंतर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥ २२ ॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यंक एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वांतयुगांततोये ॥ २३ ॥ प्रेक्षां क्षिपंतं हरितोपलाद्रेः संध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नो दधारौषधिसौमनस्य वनस्रजो वेणुभुजांघ्रिपांघ्रेः ॥ २४ ॥ आयामतो विस्तरतः स्वमान देहेन लोकत्रयसंग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम् ॥ २५ ॥

नहीं हुआ था ॥ २२ ॥ फणरूप छत्रोंकरके संयुक्त जो मस्तक, उनके किरीटसंबंधी रत्नोंकी कांतिसे अंधकार रहित प्रलयके जलमें कमलतंतुके समान गौर और विस्तीर्ण शेषजीके शरीररूप पलंगपर इकल्ले पुरुषरूपसे पौढ़े हुए ॥ २३ ॥ संध्यासमयके बादलरूप वस्त्र धारण किये व अनेक सुवर्णमय शिखरसंयुक्त तथा रत्न, जलधारा, औषधि, पुष्प व वनमाला करके शोभायमान तथा बांसरूप भुजा व वृक्षरूप चरणवाले हरितमणिके पर्वतकी शोभाको अपनी कांतिसे तिरस्कार करते हुए ॥ २४ ॥ लंबाई व चौड़ाईमें

---

१ रागिनी काफी ताल जति ॥ खेलत यहि विधि हरि होरी हो होरी हो वेद विदित यह बात ॥ नाभिकमल नारायणकी सो वेद गर्भ अवतार ॥ नाभिकमलमें बहुतहि भटक्यो तऊ न पायो पार ॥ तब आज्ञा भई यह हरिकी नभ करो परम तप आर ॥ तब ब्रह्मा तप कियो वर्ष शत दूरि भये सब पाप ॥ तब दर्शन दीन्हो करुणाकर परम धाम निज लोक ॥ ताको दर्शन पाय भयो अज सब बातन निःशोक ॥ जहां आदि निज लोक महानिधि रमा सहस संयूत ॥ आंदोलन झूलत करुणानिधि, रमा सुखद अतिपूत ॥ अस्तुति करें विविध नाना करि परम पुरुष आनंद ॥ जै जै जै श्रुतिगीत गायकें पढ़त हैं नाना छंद ॥ आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार ॥ होरी खेलनकी विधि नीकी रचना रचे अपार ॥ चौदह लोक करो नाना विधि रचि वैकुंठ पताल ॥ नाना रचना रची विधाता होरी खेल रसाल ॥

सहसा कमलकोशरूप होकर उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ सर्व पदार्थका प्रकाशक वह लोकरूप कमल जिसकी नाभिसे प्रगट हुआ, उस प्रभुने फिर अंतर्यामी भावसे अपनी शक्ति सहित उस कमलकोशमें प्रवेश किया. तब फिर उसमें, जिसका पिता किसीके देखनेमें न आया अतएव जिसे 'स्वयंभू' कहते हैं वे वेदमय विधाता यानी ब्रह्मा स्वयं हुये ॥ १५ ॥ उस कमलकी कर्णिकापर बैठे हुए ब्रह्माजीके लोक देखनेमें न आया. तब वहीं बैठे बैठे ब्रह्माजीने चारों दिशावोंमें गर्दन फेरकर लोकको देखनेकेवास्ते नजर दी. उससे उनके देखनेके लिये चार मुख उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ प्रलयके पवनसे जिसमें बड़ी बड़ी तरंगें उठ रही हैं ऐसे

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ॥ तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदंति सोऽभूत् ॥ १५ ॥ तस्यां स चांभोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगांतश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ॥ उपाश्रितः कंजमुलोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥ क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सतानुभाव्यम् ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरंतर्जलमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविंदताजः ॥ १९ ॥ तमस्य पारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥ यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥

जलसे प्रगट हुए कमलपर बैठेहुए ब्रह्माजीने न तौ लोकरूप कमलको और न अपने स्वरूपको साक्षात् रीतिसे जाना ॥ १७ ॥ इस कमलपर जो मैं बैठा हूं वह कौन हूं ? और यह इकल्ला कमल यहां जलमें कहांसे आया ? यहां नीचे कुछ न कुछ आधार जरूर होगा; क्योंकि विना आधार यह कमल ठहर नहीं सकता. इसलिये इसका आधार कुछ न कुछ सत् वस्तु अवश्य होनी चाहिये ॥ १८ ॥ इस प्रकार विचार करके उस कमलनालकी नाड़ीकी राह वे ब्रह्माजी जलके भीतर चले गये. यदपि वे कमलनालके आधारका पता लगानेके वास्ते बहुत नीचे चले गये. परंतु कुछभी पता नहीं लगा ॥ १९ ॥ हे विदुरजी ! इसप्रकार अपार अंधकारमें ढूंढते २ भगवान्‌का सुदर्शनचक्ररूप तथा जो मनुष्योंको भय उत्पन्न करता, उनकी आयुष्यका नाश करता है ऐसा

और सदा मेरा अनुसरण करनेवाले तुमको यह पुराण मैं कहत हूं सो सुनिये ॥ ९ ॥ जब यह जगत् प्रलयसागरके जलमें बूड़ गया था. तब चैतन्यशक्तिको तिरोहित न करके श्रीनारायण निद्राके बहानेसे नेत्र बंद करके शेषशय्यापर पौढ़े. उस समय एक नारायणके सिवाय दूसरा कुछभी नहीं था और नारायणभी अपने स्वरूपानंदमेंही उत्सव मानकर निष्क्रिय रूपसे विराजते थे ॥ १० ॥ अपने माया शरीरके अंदर भूतसूक्ष्म यानी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पंचमहाभूतोंकी तन्मात्राको धारण करनेवाले और कालरूप शक्तिके प्रेरक ऐसे, वे शेषशायी भगवान्, जैसे अग्नि काठमें गुप्त रीतिसे रहता है वैसे, अपने स्थानरूप

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत् ॥ अहींद्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥ १० ॥ सोंऽतः शरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिका शक्तिमुदीरयाणः ॥ उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ॥ कालाख्ययासादितकर्मतंत्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥ १२ ॥ तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरंतर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥ स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन॥ स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥

महासमुद्रके जलमें निवास करके रहे ॥ ११ ॥ सत्ययुग त्रेतायुग द्वापारयुग और कलियुग इन चार युगोंकी हजार चौकड़ीतक वह शेषशायी भगवान् अपनी चैतन्यशक्तिके साथ अपनी योगनिद्रासे जलकेभीतर सोते रहे. फिर पहलेहीसे जगानेके लिये प्रेरणा कीहुई अपनी कालशक्तिसे क्रियाकलापको अपने पास लेकर, अपने शरीरमें लीन भयेहुए सब लोकोंको देखा ॥ १२ ॥ लोकसृष्टिके अर्थ सूक्ष्म पदार्थमें जिसके ज्ञानका प्रवेश हुआ है ऐसे, शेषशायी भगवान्के भीतर जो अत्यंत सूक्ष्म वस्तु थी, वह कालके अनुकूल रजोगुणसे क्षोभयुक्त होकर, स्थूलसृष्टि करनेके लिये उसकी नाभिसे उत्पन्न हुई ॥ १३ ॥ सूर्यके समान अपने तेजसे विशाल जलको प्रकाशमान करताहुआ, वह भगवत् जनित सूक्ष्म पदार्थ जीवोंके अदृष्टको जागृत करते हुए कालके बलसे

वान्के तत्वको जाननेकी इच्छासे सनत्कुमारोंने शेषजीसे प्रश्न किया ॥ ३ ॥ कैसे हैं शेषजी, कि- जो अपने आश्रयभूत वासुदेव नामक परमानंदस्वरूपको ध्यानमें अनुभव करके सर्वोत्कृष्ट प्रकारसे पूज रहे हैं. तथा जो भीतरकी तरफ झुकी हुई नेत्रकमलकी कलीको सनत्कुमारोंके अभ्युदयके अर्थ किंचित् मात्र खोल रहे हैं ॥ ४ ॥ उन शेषजीके चरण रखनेका कमल कि जिसे नागराजाओंकी कन्या पतिप्राप्तिकी कामनासे प्रेम सहित अनेक प्रकारकी भेंटें अर्पण करके पूजती हैं. उसे गंगाजलसे आर्द्र भयी हुई अपनी जटाजूटसे छूते ॥ ५ ॥ और अनुरागके वशसे पद जिसमें टूट रहे हैं, ऐसी लड़खड़ाती वाणीसे बारंबार शेषजीके चरित्रोंकी स्तुति

स्वमेव धिष्ण्यं बहुमानयंतं यं वासुदेवाभिधमामनंति ॥ प्रत्यग्धृताक्षांबुजकोशमीषदुन्मीलयंतं विबुधोदयाय ॥ ४ ॥ स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशंतश्चरणोपधानम् ॥ पद्मं यदर्चंत्यहिराजकन्याः सप्रेमनानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥ मुहुर्गृणंतो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ॥ किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥ प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायांग धृतव्रताय ॥ ७ ॥ सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ ॥ प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ॥ सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥

करते; महाज्ञानी सनत्कुमारोंने, हजार किरीटोंकी उत्तम मणियोंसे देदीप्यमान हैं उत्कृष्ट हजार फण जिनके ऐसे, शेषजीसे पूंछा ॥ ६ ॥ तब अति ऐश्वर्यसंपन्न शेषजीने यह श्रीमद्भागवत निवृत्ति धर्मके अनुरागी सनत्कुमारोंसे कहा. और सनत्कुमारसे जब सांख्यायनजीने पूंछा तब हे विदुर! व्रतधारण करनेवाले सांख्यायनजीको सनत्कुमारने कहा ॥ ७ ॥ परमहंसोंमें प्रधान सांख्यायनजीके जब भगवान्की विभूति वर्णन करनेकी इच्छा हुई. तब उन्होंने अपना अनुसरण करनेवाले हमारे गुरु पराशरजी और बृहस्पतिजीको कहा ॥ ८ ॥ उन दयालु मुनि पराशरजीने पुलस्त्य ऋषिके कहनेसे यह आदिपुराण मुझे कहा. अब हे वत्स ! परम श्रद्धावान्

कब मिल सकता है ? इसवास्ते हरि भगवान्के लिये मायाके चरित्र जाननेके प्रभावसे नष्टदृष्टि अतएव अज्ञ ऐसे मैंने जो ये प्रश्न किये हैं, ये सब मित्रभावसे आप हमें कहो ॥ ३९ ॥ हे अनघ ! वेद, यज्ञ, तप और दान ये सब जीवोंके अभयदानकी एक कलाकोभी नहीं पहुँच सकते ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- इस प्रकार कुरुवंशियोंमें प्रधान विदुरजीने मुनिमुख्य मैत्रेयजीसे पुराणका विषय अपना जिज्ञासित विषय पूंछा और उसी सबबसे भगवान्की कथाके निमित्त प्रेरणा की, तब आनंदके पूरमें मग्न होकर हँसते हों वैसे मैत्रेयजीने कहा ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकाना-

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥ १ ॥ सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ॥ प्रवर्त्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥ आसीनमुर्व्यां भगवंतमाद्यं संकर्षणं देवमकुंठसत्त्वम् ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥

मभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें जलशायी नारायणकी नाभिसे ब्रह्माजी प्रगट हुए. परंतु भगवान्को न पहिचानकर डरते हुए ब्रह्माजीने जलमें तप करके भगवान्को प्रसन्न किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि-अहो ! पुरुराजाका वंश सत्पुरुषोंकेभी सेवन करने योग्य है; क्योंकि भगवान्ही जिनके प्रधान मुखिया हैं ऐसे लोकपाल तुम इनके वंशमें प्रगट हुए हो. जो तुम हरि भगवान्की कीर्तिरूप मालाको क्षण क्षणमें ताजी करते हो ॥ १ ॥ तुच्छ सुखके वास्ते भारी दुःखका अनुभव करते हुए मनुष्योंका दुःख मिटानेके लिये अब मैं उस भागवत शास्त्रका प्रारंभ करूंगा. जो शेषजीने सनत्कुमारोंको कहा था ॥ २ ॥ पातालतलमें विराजे हुए अप्रतिहत ज्ञानवाले, आदिपुरुष भगवान् शेषजीके निकट जाकर, वासुदेव भग-

श्योचित धर्म, दंड, नीति यानी राजधर्म व शास्त्रश्रवणकी विधि ये सब हमें जुदे जुदे कहो ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्राद्धकी विधि, पितृगणकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र व ताराओंकी कालचक्रके भीतर स्थिति ॥ ३३ ॥ दान, तप, इष्ट ( यज्ञ ) व पूर्त ( बावली कुए आदि बनाने ) का फल, प्रवासमें रहनेवालेका धर्म व आपद्धर्म हमें कहो ॥ ३४ ॥ धर्मके मूल जनार्दन भगवान् जिनपर जिस धर्मसे प्रसन्न होवें; हे मैत्रेयजी ! वह हमें कहो ॥ ३५ ॥ हे विप्रवर ! जो गुरु दीनवत्सल होते हैं. वे सेवापरायण शिष्य व पुत्रों-

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन्पितृणां सर्गमेव च ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥ ३३ ॥ दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥ ३४ ॥ येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥ ३५ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ३६ ॥ तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन्क उस्विदनुशेरते ॥ ३७ ॥ पुरुषस्यच संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ॥ ३८ ॥ स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया ॥ ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥ ३९ ॥

को विना पूंछाहुआ विषयभी जो कहने योग्य होता है, सो कहा करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! उन तत्वोंका प्रलय कितने प्रकारका है ? और प्रलयमें कौन तत्व तौ खिदमतगारकी तरह सेवा करते हैं ? और कौन भगवान्के साथ शयन करते हैं ॥ ३७ ॥ हे मैत्रेयजी ! जीवका तत्व, परमेश्वरका स्वरूप, उपनिषदोंमें कहाहुआ उन दोनोंका अभेद ज्ञान, गुरुशिष्यका प्रयोजन और विद्वान् लोगोंके कहेहुए उस ज्ञानके साधन यह सब हमें आप कहो ॥ ३८ ॥ गुरु विना मनुष्योंको भक्ति ज्ञान व वैराग्य आपही

१ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ अर्थ–अग्निहोत्र, तप, सत्यसंभाषण, वेदोंका पालन, अतिथिसत्कार वैश्वदेव करना इनका नाम इष्ट है. २ वापीकूपतडागादिदेवतामन्दिराणि च । अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ अर्थ–बावली, कुआं, तालाव, देवमन्दिर बनाना, अन्नदान, बगीचा लगाना इनका नाम पूर्त है. यह अत्रिस्मृतिमें लिखा है.

प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने कौनसे प्रजापति बनाये ? और कौनसे सर्ग तथा अनुसर्ग रचे ? और कौनसे मनु और मन्वंतरके अधिपति बनाये ? ॥ २५ ॥ इनके वंश और वंशवालोंके चरित कहो, और हे मैत्रेयजी ! पृथ्वीके ऊपर और नीचे कौनसे लोक हैं ? वह हमें कहो ॥ २६ ॥ उन लोकोंकी तथा पृथ्वीलोककी रचना और प्रमाण हमें कहो. तिर्यक् ( पशुपक्षी ), मनुष्य, देवता, सरीसृप ( सांप बीछू ), पक्षी तथा स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज और जरायुज इन चार प्रकारके जीवोंकी सृष्टिका विभाग हमें

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वंतराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च ॥ उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजाऽऽसते ॥ २६ ॥ तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ॥ तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥ २७ ॥ गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ॥ सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥ २८ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ॥ ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥ २९ ॥ यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥ नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तंत्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥ ३० ॥ पाखंडपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥ ३१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ॥ वार्ताया दंडनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥ ३२ ॥

कहो ॥ २७ ॥ मायाके गुणोंसे अवतार धारण करके जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय तथा उनके आश्रयको सृजते हुए लक्ष्मीके निवास हरिके उदार चरित हमें कहो ॥ २८ ॥ रूप, शील और स्वभावसे वर्ण और आश्रमका विभाग कहो. ऋषियोंके जन्म तथा कर्मवगैरे कहो और वेदके विभाग कहो ॥ २९ ॥ हे प्रभु ! यज्ञके विस्तार, योगका मार्ग तथा ज्ञान और सांख्यका मार्ग और भगवान्के कहेहुए तंत्र ये सब हमें कहो ॥ ३० ॥ प्रतिकूल स्थितिवाली पाखंडपथकी प्रवृत्तिको विषमता और जीवके गुण व कर्मसे होनेवाली जितनी और जो जो गतियां हैं वे ॥ ३१ ॥ धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके विरोधरहित उपाय, वार्ता यानी वै-

यानी प्रकृतिसे पर परमेश्वरको प्राप्त हुआ है, वे तो दोनों सुखी हैं और जो बीचमें है, अर्थात् जो सुखदुःखके अनुभवसे संसारको तजना चाहता है, परंतु स्वरूपानंदके अभावसे त्याग नहीं सकता. वह क्लेश पाता है ॥ १७ ॥ अब तो मैं कृतार्थ हूं, क्योंकि आपने मेरा संदेह दूर किया. केवल बाधितानुवृत्तिही शेष रही है, सो वहभी आपकी कृपासे निवृत्त हो जायगी. जो संसार प्रतीत होता है, वह केवल प्रतीतिमात्र है, कुछ पदार्थ नहीं है, ऐसा निश्चय करके उस प्रतीतिकोभी आपके चरणोंकी सेवासे मैं निवृत्त कर दूंगा ॥ १८ ॥ आप जैसे महात्मानकी सेवासे मधु दैत्यके बैरी निर्विकार भगवान्‌के चरणोंमें संसारको निवृत्त करनेवाला स्वाभाविक प्रेमोत्सव प्रगट होता है ॥ १९ ॥ भगवान्‌के मार्गभूत महत्पुरुषोंकी सेवा, हीनपुण्य पुरुषको मिलनी अतिदु-

अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥ १८ ॥ यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुंठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ॥ तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्रांघ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥ २२ ॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेंद्रियार्थेंद्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥ यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥

र्लभ है. जिन महत्पुरुषोंमें नित्य देवदेव जनार्दन भगवान्‌के गुण गाये जाते हैं ॥ २० ॥ प्रथम विकार यानी इंद्रिय आदि सहित महत्तत्वादिकोंको क्रमसे रचकर उनमें, विराट् पुरुषको उत्पन्न करके फिर प्रभुने उसमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ जिन्हे हजार चरण, साथल और भुजावाले आदि पुरुष कहा करते हैं. और जिसमें ये सब लोक संकोच विना रहते हैं ॥ २२ ॥ जिसमें इंद्रियां. इंद्रियोंके विषय और उनके देवता ऐसे अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतरूपसे तीन प्रकारके आपके कहेहुए दश प्राण रहते हैं. और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र ये चारों वर्ण जिससे उत्पन्न हुए हैं. उस विराट्‌पुरुषकी विभूतियां हमें कहो ॥ २३ ॥ जिन विभूतियोंमें पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और गोत्रजोंसे विचित्र आकारवाली प्रजा प्रगट हुई. जिनसे यह सब जगत् व्याप्त हो रहा है ॥ २४ ॥

भ्रम प्रतीत होता है ॥ १० ॥ तथा जैसे जलमें पड़े हुए चंद्रमाके प्रतिबिंबमें जलका कंप आदि गुण मिथ्या प्रतीत होता है वैसे आत्माके विषे देह आदिके धर्म न होनेपरभी भ्रांतिसे प्रतीत होय हैं ॥ ११ ॥ वह आत्मामें अनात्मबुद्धि, निवृत्तिधर्मसे, भगवान्भी कृपासे और भगवान्के भक्तियोगसे शनैः शनैः नाशको प्राप्त होजाती है ॥ १२ ॥ जब द्रष्टाके अंतर्यामी रूप पर प्रभुमें सर्व इंद्रियां निश्चल होती हैं, तब जैसे सुषुप्ति अवस्थामें स्थित पुरुषके सब क्लेश मिट जाते हैं, वैसे उसके सर्व क्लेश नाश हो जाते हैं.फिर उत्पन्न नहीं होते ॥ १३ ॥ जब मुरारि भगवान्के गुणानुवादका श्रवणभी संपूर्ण क्लेशोंको शांत कर देता है, तब फिर

यथा जले चंद्रमसः कंपादिस्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनो नात्मनो गुणः ॥ ११ ॥ स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकंपया ॥ भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥ यदेंद्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ ॥ विलीयंते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविंदपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥ विदुर उवाच ॥ संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्रापि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५ ॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ॥ आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यंतरितो जनः ॥ १७ ॥

हरि भगवान्के चरणारविंदके रजसे सेवासंबंधी प्रीति तौ मनमें प्राप्त होनेपर कैसे क्लेशोंका नाश न करे ? ॥ १४ ॥ विदुरजी बोले कि– हे विभु ! जो मेरे संदेह था. वह आपके उत्तम वचनरूप खड्गसे कट गया. हे भगवन् ! अब तौ मेरा मन बंध और मोक्ष दोनोंमेंभी अच्छी तरह जाता है ॥ १५ ॥ हे विद्वन् ! मैत्रेयजी ! जो यह आपने कहा कि–जीवके दुर्भगत्वादिक है, वह हरिकी जीवविषयक मायाके आश्रय है. सो यह बहुत ठीक कहा; क्योंकि जैसे स्वप्नमें अपना शिर कटा, यह मिथ्या तथा निर्मूल प्रतीत होता है, वैसे जीवके स्वरूपका आवरण करनेवाली मायासे जीवके विषे दुर्भगत्वादिक मिथ्या प्रतीत होते हैं. कारण यह कि–इस जगत्का मूल स्वरूपज्ञानविना बाहिर नहीं है ॥ १६ ॥ जो अयंत मूर्ख यानी देहादिकोंमें आसक्त है और जो बुद्धि

---

१ दोहा ॥ खर घूघू मूरख पशू, सदा सुखी सब मास ॥ चाकर चकवा चतुर नर, आठों प्रहर उदास ॥ १ ॥

है. इसीवास्ते उसका क्रीड़ामें उद्यम संभवता है. परंतु स्वतस्तृप्त और असंग व अद्वितीय परमात्माके कामना तथा दूसरेके साथ खेलनेकी इच्छा कैसे संभवे ? ॥ ३ ॥ परमेश्वरने जीवको मोहित करनेवाली अपनी त्रिगुण मायासे जगत्‌की रचना की है. उसीसे वह इस जगत्‌की रक्षा करता है. और उसीसे फिर संहार करेगा ॥ ४ ॥ जो जीवात्मा देशसे, कालसे व अवस्थासे तथा अपने स्वरूपसे व अन्यसे कदापि लुप्तबोध नहीं है. उसके माया ( अविद्या ) का संयोग किस प्रकारसे संभवे ? ॥ ५ ॥ दूसरा सब क्षेत्रों ( देहों ) में रहनेवाला भोक्ताभी वस्तुतः एक भगवान्‌ही हैं, परमात्मासे जुदा नहीं है. फिर इनके कर्मोंसे आनंदादिकोंका नाश

अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यभिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥ भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥ अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्मे मनो विद्वन्खिद्यतेऽज्ञानसंकटे ॥ तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बंधनम् ॥ ९ ॥ यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ॥ प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥

और क्लेशका होना किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! इस ज्ञानसंकटमें मेरा मन बहुत खेद पाता है, सो हे विभु ! मेरे मनके इस मोटे मोहको आप दूर करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–तत्त्वजिज्ञासु विदुरजीने इस प्रकार उन महामुनि मैत्रेयजीसे प्रेरणा करी, तब भगवच्चित्त मैत्रेयजीने स्मयरहित होकर, मानो हँसते हों वैसे विदुरजीसे कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि–अचिंत्यशक्ति परमेश्वरकी यह माया है कि जो तर्कसे विरोधका होना, जैसे नित्यमुक्त आत्माके जो कृपणता और बंधन है वह तर्कसे विरुद्ध है ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नमें उसके देखनेवालेको शिर विना कटेभी ' यह मेरा शिर कट गया ' ऐसा अपनेविषे

हे वत्स ! हरि भगवान्‌की महिमा, आदिकवि ब्रह्माजीनेभी हजार वर्षोंके अंतमेंभी योगसे अच्छी तरह पकीहुई बुद्धिसेभी क्या जान ली ? नहीं जानी ॥ ३७ ॥ इसीवास्ते मैं कहता हूं कि–भगवान्‌की मायासे बड़े बड़े मायावीलोगभी मोहित हो जाते हैं. जब हरि आपही अपनी मायाकी गतिको नहीं जानते कि–यह इतनी है. तब भला दूसरे किस प्रकार जान सकते हैं ? ॥ ३८ ॥ जिसे न तौ वाणी पहुंचती है. और न मन पहुंचता है. किंतु उसे विना पहुंचे पीछेही लौट आते हैं. न केवल मन और वाणी किंतु अहंकारके अधिष्ठाता श्रीरुद्र व इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता और दूसरे भी नहीं पहुंच सकते, उस प्रभुको मैं प्रणाम करता

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ॥ संवत्सरसहस्रांते धिया योगविपक्कया ॥ ३७ ॥ अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ॥ यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥ ३८ ॥ यतोऽप्राप्य न्यवर्तंत वाचश्च मनसा सह ॥ अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः ॥ स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥ ३ ॥

हूं ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें संशयच्छेदन करनहारा मुनिका बचन सुन, उनकी प्रशंसा करके विदुरजीने फिर अनेक प्रश्न किये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–मैत्रेयजीके इस प्रकार कहते वेदव्यासजीके पुत्र महाज्ञानी विदुरजीने मानों वाणीसे प्रसन्न करते हों, वैसे पीछा कहा ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि–हे ब्रह्मन् ! चैतन्यमूर्ति निर्विकार भगवान्‌के क्रिया और निर्गुण प्रभुके गुण- लीलासेभी किस प्रकार संभव कर सकते हैं ? ॥ २ ॥ बालकके दृष्टांतसेभी ईश्वरके क्रीड़ा करना संभवे नहीं; क्योंकि बालकके क्रीड़ा करनेकी कामना है. उसीसे उसके दूसरे बालकके साथ या दूसरी चीज यानी खिलौनोंके साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छा होती

मुखसे प्रगट हुई ॥ २९ ॥ भुजासे पालनरूप क्षत्रियकी वृत्ति और क्षत्रिय ये दोनों प्रगट हुए. जोविराट्पुरुषका अंशभूत क्षत्रिय प्रगट होकर, चोर आदिके क्षत यानी उपद्रवसे तीनों वर्णोंकी रक्षा करता है ॥ ३० ॥ उस प्रभु विराट्की साथलोंसे लोककी जीविकाके कारण वैश्य और उनकी कृषि आदि वृत्ति प्रगट हुई जिन ऊरुज वैश्योंने अपनी कृषि आदि वृत्तिसे लोकोंकी जीविकाका सिलसिला चलाया ॥ ३१ ॥ भगवान्के चरणोंसे सेवाधर्मकी सिद्धिके अर्थ व सेवाके निमित्त पहले शूद्रवर्ण उत्पन्न हुआ. जिसकी वृत्तिसे स्वयं हरि भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ ये वर्ण अपनी २ वृत्तियोंके साथ जिन प्रभुसे पैदा हुए हैं, उन्ही अपने गुरु हरिका इनको स्वधर्मसे श्रद्धापूर्वक अपने आत्माकी शुद्धिके अर्थ आराधन करना चाहिये; क्योंकि इनका यही परमधर्म है ॥ ३३ ॥

बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान्पौरुषः कंटकक्षतात् ॥ ३० ॥ विशोऽवर्त्तत तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥ वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३१॥ पद्भ्या भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये ॥ तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥ ३२ ॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजंति स्वगुरुं हरिम् ॥श्रद्धयाऽत्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृत्तिभिः॥ ३३॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥ ३४ ॥ अथापि कीर्तयाम्यंग यथामति यथाश्रुतम् ॥कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ॥ ३५ ॥ एकांतलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३६ ॥

हे विदुरजी ! काल, कर्म व स्वभावशक्तिवाले प्रभुकी योगमायाके बलसे विजृंभित इस विराट्रूपको सब प्रकारसे कौन वर्णन कर सकता है ? वर्णन करना तो दूर रहा परंतु उसकी इच्छा करनीभी अशक्य है ॥ ३४ ॥ तथापि हे अंग ! हरि भगवान्के गुणोंसे व्यतिरिक्त विषयके वर्णन करनेसे मलिन ऐसी मेरी वाणीको पवित्र करनेके वास्ते जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार हरि भगवान्का यश मैं आपसे वर्णन करूंगा ॥ ३५ ॥ मनुष्योंके वाणी पानेका एकांत लाभ यही कहते हैं कि-जो पवित्रकीर्ति लोकोंके मुकुटमणि ऐसे भगवान्के गुणोंका वर्णन करना. और कानोंका एकांत लाभ यह है कि-विद्वान् पुरुषोंके वर्णन कियेहुए कथामृतमें कान लगाकर, उसे पीना ॥ ३६ ॥

फिर विराट्के चरणं उत्पन्न हुए. उनमें अपनी गति इंद्रियके साथ लोकपति विष्णुने प्रवेश किया. जिस गतिसे जीवात्मा प्राप्य वस्तुको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ फिर विराट्के हृदय प्रगट हुआ. उस स्थानमें मन इंद्रियके साथ चंद्रमाने प्रवेश किया. जिस मनसे यह जीवात्मा संकल्प विकल्प आदि विकारको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ फिर विराट्के अहंकार पैदा हुआ. उस स्थानमें अहंवृत्ति इंद्रियके साथ अभिमानने प्रवेश किया.जिस अहंवृत्तिसे यह जीवात्मा कर्तव्य कर्म करता है ॥ २४ ॥ फिर विराट्के सत्व ( बुद्धि और चित्त ) उत्पन्न हुआ. उस स्थानमें चेतना इंद्रियके साथ ब्रह्माने प्रवेश किया, जिस चेतनासे जीवात्मा ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥ २२ ॥
हृदयं चास्य निर्भिन्नं चंद्रमा धिष्ण्यमाविशत् ॥ मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ॥ कर्मणांऽशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥ २४ ॥
सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥
शीर्ष्णोंऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥ गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयंते सुरादयः ॥ २६ ॥ आत्यंतिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजः स्वभावेन पणयो ये च तानन्तु ॥ २७ ॥ तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरंतरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥ २८ ॥ मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥ २९ ॥

विराट्के शिरसे स्वर्ग, चरणोंसे पृथ्वी और नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ. जिन तीनों लोकोंमें गुणोंके परिणामभूत देवता आदि सब प्राणी प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ सत्वगुणके आधिक्यसे देवता स्वर्गको प्राप्त हुए. तथा रजोगुणस्वभावसे मनुष्य और मनुष्यों-के पीछे रहनेवाले गौ आदि पशु पृथ्वीको प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ जो रुद्रके पार्षदोंके गण हैं, वे तमोगुणस्वभावसे भगवान्‌का ना-भिस्थानापन्न जो स्वर्ग व पृथ्वीका मध्य अंतरिक्ष है, उसमें रहा करते हैं ॥ २८ ॥ हे कौरव ! विराट्पुरुषके मुखसे ब्रह्म यानी वेद प्रगट हुआ. और वर्णोंमें मुख्य व सबका गुरु ब्राह्मणवर्णभी मुखसे उत्पन्न हुआ. और अध्यापन आदि उसकी वृत्तिभी

जिव्हा इंद्रियके साथ लोकपाल वरुणने प्रवेश किया. जिस जीभसे यह जीवात्मा रसका स्वाद लेता है ॥ १३ ॥ फिर विराट्के नासिका उत्पन्न हुई. उस स्थानमें घ्राण इंद्रियके साथ अश्विनीकुमार प्रवेश हुए. जिस घ्राण इंद्रियसे गंधका ज्ञान होता है ॥ १४ ॥ फिर विराट्के दो नेत्र प्रगट हुए. उनमें चक्षु इंद्रियके साथ लोकपाल सूर्यने प्रवेश किया. जिस चक्षु इंद्रियसे रूपका बोध होता है ॥ १५ ॥ फिर विराट्के चर्म उत्पन्न हुई. उनमें प्राण इंद्रियके साथ लोकपाल वायुने प्रवेश किया. जिस चर्मसे यह जीवात्मा स्पर्शका अनुभव करता है ॥ १६ ॥ फिर विराट्के कान प्रगट हुए. उस अपने स्थानमें दिशा देवता श्रोत्र इंद्रियके साथ प्रवेश

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् ॥ घ्राणेनांशेन गंधस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १४ ॥
निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ॥ चक्षुषांऽशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १५ ॥
निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ॥ प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥
कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥ १७ ॥
त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कंडूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥
मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांऽशेन येनासावानंदं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥ गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ॥ पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥ हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविंद्रः स्वर्पतिराविशत् ॥ वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥ २१ ॥

हुई. जिस श्रोत्रसे शब्दका ज्ञान हुआ करता है ॥ १७ ॥ फिर विराट्के त्वचा उत्पन्न हुई. उस स्थानमें रोम इंद्रियके साथ ओषधि देवता प्रवेश हुई. जिन रोमोंसे यह जीवात्मा खुजलीका अनुभव करता है ॥ १८ ॥ फिर उसके लिंग इंद्रिय प्रगट हुई. अपने उस स्थानमें रेत इंद्रियके साथ प्रजापतिने प्रवेश किया जिस वीर्य इंद्रियसे जीवात्मा आनंदको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ फिर विराट्के गुदा प्रगट हुई. उसमें पायु इंद्रियके साथ लोकपाल मित्रने प्रवेश किया. जिस पायुसे यह जीवात्मा मलत्याग करता है ॥ ॥ २० ॥ फिर विराट्के हाथ उत्पन्न हुए. उनमें स्वर्गके पति इंद्रने क्रयविक्रय आदि शक्तिरूप इंद्रियसे प्रवेश किया . जिस इंद्रियसे जीवात्मा जीविकाको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

रप्राप्त पुरुषको विराट्देह कहते हैं. जिसमें चराचर सब लोक रहे हैं ॥ ५ ॥ वह हिरण्मय पुरुष हजारों वर्षोंतक प्रलयसमय-में लीन भये हुए सब जीवोंके साथ जलके भीतर ब्रह्मांडरूप अंडेके मध्यमें रहा ॥ ६ ॥ जगत्‌के रचनेवाले महत्तत्त्वादिकोंका कार्यरूप वह विराट् ज्ञानशक्ति करके चैतन्यरूपसे एकप्रकारका, क्रियाशक्ति करके प्राणरूपसे दस प्रकारका और आत्मशक्ति अर्थात् भोक्तृशक्ति करके अध्यात्म, अधिदैवत और अधिभूतरूपसे तीन प्रकारका अपने आत्मा करके विभक्त हुआ ॥ ७ ॥ यह विराट् स्वरूप परमेश्वरका अंश और सब जीवोंका आत्मा है. यह प्रभुका प्रथम अवतार है. जिसमें सब प्राणी गत प्रतीत होते हैं ॥ ८ ॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आंडकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥ स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ॥ विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥ ७ ॥ एष ह्यशेष सत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥ १० ॥ अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ॥ निरभिद्यंत देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ ॥ तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ॥ वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १३ ॥

यह विराट् अध्यात्म, अधिदैव व अधिभूत रूपसे तीनप्रकारका, प्राणरूपसे दश प्रकारका और हृदयरूपसे एक प्रकारका है ॥ ९ ॥ सब तत्वोंके प्रभु अधोक्षज भगवान्‌ने तत्वोंकी विनतीका स्मरण करके इनकी अनेक प्रकारकी वृत्तियोंके लाभके अर्थ अपनी चैतन्यशक्तिसे विराट्‌के विषे विचार किया ॥ १० ॥ जब प्रभुने विचार किया, तब देवतानके कितने स्थान प्रगट हुए. वह मैं कहताहूं. सो आप मुझसे सुनो ॥ ११ ॥ उसके प्रथम मुख उत्पन्न हुआ. उस स्थानमें अपनी शक्तिरूप वाणी इंद्रियके साथ लोकपाल अग्निने प्रवेश किया. जिस वाणीसे यह जीवात्मा शब्दका उच्चारण करता है ॥ १२ ॥ फिर प्रभुके तालु उत्पन्न हुआ. उसमें

कारणरूप अनादि मायाशक्तिमें सर्ववस्तुका आवरण भंग करनेवाला महत्तत्वरूप वीर्य स्थापित किया है ॥ ४९ ॥ इसलिये हे देव ! महत्तत्व आदि हम सब जिस कार्यके वास्ते उत्पन्न हुए हैं, उस कार्यके लिये हमें आप आज्ञा करो. हमारा कर्तव्य कर्म कौन है? वही हम करें. कदाचित् कहो कि- तुम्हारा कर्तव्य कर्म सृष्टि है, तौ शक्तिसहित अपना ज्ञान देओ. कि जिससे हम आपके अनुग्रहके पात्र होकर, आपके कार्य करनेरूप प्रयोजनमें समर्थ हो जावें ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठें अध्यायमें प्रभुने महत्तत्व आदिमें प्रवेश करके विराट्शरीर उत्पन्न किया. तथा अध्यात्म, अधिदैवत व अधिभूत आदि भेदका निरूपण किया यह कथा

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन्करवाम किं ते ॥ त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ॥ प्रसुप्तलोकतंत्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥ कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥ २ ॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्मप्रबोधयन् ॥ ३ ॥ प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ॥ प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥ ४ ॥ परेण विशता स्वास्मिन्मात्रया विश्वसृड्गणः ॥ चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥ ५ ॥

होगी ॥ १ ॥ मैत्रेयजीने कहा कि- जिनमें जीवोंके भोगके साधन, सूक्ष्मरूपसे रहे हैं; ऐसी जुदी जुदी अपनी महत्तत्व आदि शक्तियोंकी स्थिति देखकर ॥ १ ॥ अपार पराक्रमवाले हरि भगवान्ने मायाका आश्रयण करके महत्तत्व आदि तेईस तत्वोंके समुदायमें एककालावच्छिन्न अंतर्यामी रूपसे प्रवेश किया ॥ २ ॥ क्रियाशक्तिसे उस तत्वोंके समुदायमें भगवान्के प्रवेश करतेही वह जुदा जुदा तत्वसमुदाय इकट्ठा हो गया. और मायामें लीन भयेहुए जीवोंके कर्म पीछे जागृत हो गये ॥ ३ ॥ ईश्वरकी प्रेरणासे जिसकी क्रियाशक्ति जागृत हुई है ऐसे, तेईस तत्वोंके गुणने अपने अंशोंसे विराट्देह प्रगट किया ॥ ४ ॥ परमेश्वरने जब उस तत्वोंके गणमें प्रवेश किया, तब वह गण परस्पर मिलकर, अंश करके क्षोभको प्राप्त हुआ. उसी विका-

पुरुषोंका मन अपनी बहिर्मुख इंद्रियोंके मार्गसे बाहर अर्थात् विषयादिकमें फिरा करता है, वे पुरुष आपकी लीलाकी कथा आदिको धारण करनेवाले भक्तजनोंको बिलकुल नहीं देखते ॥ ४४ ॥ हे देव ! जो पुरुष आपके कथारूप अमृतके पानसे वृद्धिंगत भक्ति करके निर्मल अंतःकरणवाले हैं. वे पुरुष वैराग्यके फलरूप बोधको प्राप्त होकर, विना श्रम वैकुंठलोकको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ वैसेही कितनेएक दूसरे पुरुष आत्माके विषे मनको स्थिर करनेरूप उपायके बलसे अर्थात् ज्ञानयोगसे बलिष्ठ मायाको जीतकर, पुरुषरूप आपहीको प्राप्त होते हैं. परंतु उन्हें श्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और आपकी सेवासे अर्थात् कथाश्रवण आ-

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथांऽजसाऽन्वीयुरकुंठधिष्ण्यम् ॥ ४५ ॥ तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ॥ त्वामेव धीराः पुरुषं विशंति तेषां श्रमः स्यान्नतु सेवया ते ॥ ४६ ॥ तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ॥ सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतंत्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ ४७ ॥ यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ॥ यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरंतोऽन्नमदंत्यनूहाः ॥ ४८ ॥ त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ॥ त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ ४९ ॥

दिसे तो विना श्रम मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ हे आद्य ! इस लोकको सरजनेकी इच्छासे आपने हमें सत्वगुण आदि अपने तीन गुणोंसे रचे हैं. अतएव हमारा स्वभाव परस्पर विरुद्ध रहनेसे हम एक दूसरेसे जुदे रहते हैं. तासोंही आपकी क्रीड़ाके साधनरूप इस ब्रह्मांडको सृजकर आपके अर्पण करनेके वास्ते हम समर्थ नहीं हैं ॥ ४७ ॥ हे अज ! हम उस उस अवसरमें संपूर्ण भोग आपके अर्पण करें तथा सर्वप्रकारसे आपको भोग भोगावते हमभी अन्नमात्र खावें और ये लोक जहां रहकर, हमको और आपको भोग भोगावते आपभी निर्विघ्न रीतिसे भोग भोगें. वह स्थान बताओ ॥ ४८ ॥ आप निर्विकार, अधिष्ठाता तथा पुराणपुरुष हो. तासोंही कारणसहित हम सब देवतानके आदिकारण हो. हे देव ! अजन्मा आपने सत्वादि गुण तथा कर्मकी

लेकर, यतिलोग विना परिश्रम भारी संसारके दुःखको दूर तज देते हैं ॥ ३८ ॥ हे पिता ! परमेश्वर ! इस संसारमें तीन प्रकारके तापोंसे तपेहुए ये जीव आपके चरणकमलकी छायाका आश्रय लिये विना सुखको नहीं प्राप्त हो सकते. अतएव हे भगवान् ! हे आत्मस्वरूप ! विद्याको प्राप्त करनेवाले आपके चरणके हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ ऋषिलोग, संसारके विषयोंसे विरक्त ऐसे अपने अंतःकरणमें आपका मुखही जिनका घोसला है ऐसे आपके मुखमेंसे निकलेहुए वेदरूप पक्षियोंसे अर्थात् उनके आश्रयसे आपको ढूंढते हैं. तथा आपके चरणतीर्थरूप हैं. अतएव पापको नाश करनेवाला जिसका जल है ऐसी गंगाकी उत्पत्ति-

धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभंते भगवंस्तवांघ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥ ३९ ॥ मार्गंति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छंदः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ॥ यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥ यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधार्य ॥ ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेंऽघ्रिसरोजपीठम् ॥ ४१ ॥ विश्वस्य जन्मास्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदांबुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ४२ ॥ यत्सानुबंधेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ॥ ४३ ॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतांतर्मनसः परेश ॥ अथो न पश्यंत्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४४ ॥

के स्थानरूप आपके चरणकमलके हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ४० ॥ श्रद्धा व श्रवणपूर्वक भक्तिसे भलीभांति शुद्ध कियेजाते हृदयमें वैराग्यही जिसका बल है ऐसे ज्ञानसे जिस चरणका ध्यान करके लोक धीर बन जाते हैं. उस आपके चरणकमलपीठके हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ४१ ॥ हे ईश ! जिस चरणके स्मरणसे अपने भक्तोंको अभय प्राप्त हो जाता है, कि जिन्होंने जगत्की सृष्टि, स्थिति, संहारके अर्थ अवतार धारण किया है, उस आपके चरणारविंदके हम सब शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ४२ ॥ हे भगवान् ! उपकरणसहित इस अतितुच्छ देह व वरमें जिनके अहंता ममतारूप दुराग्रह बढ़ रहा है, उन पुरुषोंसे तो हृदयमें रहनेपरभी जो चरण अतिदूर है. उस आपके चरणारविंदका हम भजन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे प्रभु ! हे ईश ! हे उरुगाय ! जिन जिन

आकाशसे स्पर्श उत्पन्न हुआ और स्पर्शने विकारयुक्त होकर, पवनको पैदा किया ॥ ३२ ॥ महाबलयुक्त वायुभी आकाश सहित विकारको प्राप्त हुआ, तब उससे रूपतन्मात्रा प्रगट हुई. और उससे जगत्का प्रकाशक तेज प्रगट हुआ ॥ ३३ ॥ पवनसंयुक्त तेज परमेश्वरकी दृष्टिगोचर होकर काल, माया व चिदाभासके योगसे विकारको प्राप्त हुआ, तब उससे रसतन्मात्रावाला जल पैदा हुआ ॥ ३४ ॥ फिर तेजसे मिलाहुआ जल परब्रह्मकी दृष्टिगोचर होकर काल, माया व चिदाभासके योगसे विकारको प्राप्त हुआ, तब उससे गंधगुणवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ हे विदुर ! आकाश आदि पंचमहाभूत ज्यों ज्यों एकके पीछे एक उत्पन्न होते गये. त्यों त्यों अपनेमें प्रथम उत्पन्न हुये महाभूतोंकी कारणताका अन्वय होनेसे उत्तरोत्तर एक एक भूतमें एक एक गुण बढ़ता गया, ऐसे

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३ ॥ अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ॥ आधत्तांभो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषांभोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ॥ महीं गंधगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥ ३५ ॥ भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् ॥ तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिंगिनः ॥ नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्रांजलयो विभुम् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविंदं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ॥ यन्मूलकेता यतयोऽजसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपंति ॥ ३८ ॥

ज्ञानीलोक कहते हैं. जैसे आकाशमें और किसीका अन्वय न होनेसे आकाशमें केवल शब्दगुण है, परंतु वायुमें आकाशका अन्वय होनेसे वायुमें वायुका गुण स्पर्श और आकाशका गुण शब्दभी है, ऐसे तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं. और जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण हैं. वैसे पृथ्वीमें सबका अन्वय होनेसे पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांचो गुण हैं ॥ ३६ ॥ विष्णुके अंशभूत व विकार विक्षेप और चेतनाधर्मवाले ये महत्तत्वादिकोंके अभिमानी देवता एकता न होनेके कारण जब अपने व्यापारमें अर्थात् ब्रह्मांडरचनामें समर्थ नहीं हुए, तब हाथ जोड़कर, प्रभुकी स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ देवता बोलेकि—हे देव ! शरणागत लोकोंके तापकी शांतिके अर्थ छत्ररूप आपके चरणारविंदको हम प्रणाम करते हैं. जिस चरणमूलका आश्रय

माना ॥ २४ ॥ उस द्रष्टाकी जो कार्यकारणात्मक शक्ति है, उसे हे विदुर ! माया नाम कहते हैं. कि जिससे प्रभुने इस जगत्को पैदा किया ॥ २५ ॥ कालशक्ति करके क्षुभित गुणवाली मायामें चैतन्यशक्तिवाले अधोक्षज भगवान्ने अपने अंशभूत पुरुषरूपसे चिदाभासरूप वीर्य स्थापित किया ॥ २६ ॥ तब कालप्रेरित अव्यक्त यानी मायासे विज्ञानस्वरूप तथा अपने शरीरस्थित जगत्को अंकुरित करताहुआ अज्ञाननाशक महत्तत्व उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ चिदाभास, गुण और कालके आधीन महत्तत्वनेभी साक्षी परमात्माके दृष्टिगोचर होकर, इस जगत्को रचनेकी इच्छासे अपने आत्माको विकारयुक्त किया ॥ २८ ॥ विकार पातेहुए



सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ मायानाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥ २५ ॥
कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥
ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यंजंस्तमोनुदः ॥ २७ ॥
सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥ २८ ॥
महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेंद्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥ वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यंजनं यतः ॥ ३० ॥ तैजसानींद्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिंगमात्मनः ॥ ३१ ॥ कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥

महत्तत्वसे अहंकाररूप तत्व पैदा हुआ. जो अहंकार कार्य ( अधिभूत ) कारण ( अध्यात्म ) व कर्ता ( अधिदैवत ) का आश्रय तथा पंचमहाभूत, इंद्रियां तथा मनोमय ऐसा अहंतत्त्व वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका हुआ, वैकारिक अहंकारके विकार पाते मन पैदा हुआ ॥ २९ ॥ ३० ॥ और शब्द आदि विषय जिनसे जाने जाते हैं वे इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवताभी वैकारिक अहंकारसे पैदा हुए. ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां ये राजसाहंकारसे उत्पन्न हुईं. तामसाहंकार शब्दका कारण है, जिस शब्दमें उसीका प्रकाशक आकाश उत्पन्न हुआ, ॥३१॥ काल, माया व चिदाभासके योगसे जब भगवान्ने आकाशकी ओर दृष्टि दी, तब

कहा ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोलेकि– हे साधो ! विदुरजी ! लोकोंपर भली भांति अनुग्रह करते और अधोक्षज भगवान्‌मेंही जिनका
मन है ऐसे, अपने आत्माकी जगत्‌में कीर्ति फैलाते आपने यह बहुत ठीक प्रश्न किया ॥ १८ ॥ हे विदुरजी ! आपने जो जगदीश्वर
हरिका अनन्यभावसे शरण लिया. यह आपमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आप व्यासजीके अंश हो ॥ १९ ॥ आप तो
प्रजाको दंड देनेवाले साक्षात् यमराज हो मांडव्य ऋषिके शापसे आप विचित्रवीर्यकी क्षेत्रस्थानीय दासीमें व्यासजीसे प्रगट हुए
हो ॥ २० ॥ आप अनुचरों सहित भगवान्‌के सदा परममान्य हो. आपको ज्ञानोपदेश करनेके लिये भगवान्‌ने धाम पधारते

मैत्रेय उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनो-
ऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥ नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ॥ गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्व-
रः ॥ १९ ॥ मांडव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः ॥ भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसु-
तात् ॥ २० ॥ भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय मादिशद्भगवान्व्रज-
न् ॥ २१ ॥ अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः ॥ विश्वस्थित्युद्भवांतार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः
॥ २२ ॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ॥ आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः
॥ २३ ॥ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ॥ मेनेऽसंतमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥

पधारते मुझे आज्ञा की है ॥ २१ ॥ इसलिये जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, संहाररूप विषयका जिनमें वर्णन है, ऐसी योगमायासे
उपबृंहित ( बढ़ी ) भगवत्संबंधी लीलाओंका मैं आपसे वर्णन क्रमसे करूंगा ॥ २२ ॥ इस सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहले मायाका लय
होनेपर यह जगत् केवल एक ईश्वररूपही था, कि जो ईश्वर जीवोंका आत्मा यानी स्वरूप है. उससे भिन्न कुछभी नहीं था. न
तो आत्मा भिन्न था. और न नाना बुद्धि करके उपलक्षित द्रष्टृदृश्यादि भेदभाव था ॥ २३ ॥ उन प्रकाशमान द्रष्टा और एक पर-
मेश्वरने जब कुछभी दृश्यपदार्थ नहीं देखा, तब अपने आत्माको असद्रूपसा माना कैसे हैं वे प्रभु कि जिनकी माया आदि श-
क्तियां लीन हो गयीं थीं, तथापि चैतन्यशक्ति प्रकाशमान थी. अतएव प्रभुने आत्माको असत्‌ही नहीं माना किंतु असत्‌स

आपके सखा व श्रीकृष्णरूप वेदव्यास मुनिने भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेकी इच्छासे महाभारत रचा है, कि जिस महाभारतमें मनुष्योंकी बुद्धि ग्राम्यसुखके वर्णनद्वारा हरि भगवान्‌की कथामें आसक्त हो जाती है ॥ १२ ॥ श्रद्धालु पुरुषकी भगवान्‌की कथामें आसक्त भयीहुई बुद्धि बढ़ती दूसरे विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न करती है, तदनंतर भगवान्‌के चरणके अविच्छिन्न स्मरणसे आनंदमग्न पुरुषको सकल दुःखोंसे तत्काल मुक्त करती है ॥ १३ ॥ अपने पापके प्रभावसे भगवान्‌की कथासे विमुख व शोच करने योग्य पुरुषोंकेभी शोचनीय अज्ञानी पुरुषोंका मैं शोच करता हूं; क्योंकि मन, वचन व कायकी क्रिया जिनकी

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखाऽपि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीतानु-हरेः कथायाम् ॥ १२ ॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनि-र्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥ तान् शोच्यशोच्यानविदोनुशोचे हरेः कथायां विमुखान-घेन ॥ क्षिणोति देवो निमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगतिस्मृतीनाम् ॥ १४ ॥ तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबंधो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ १५ ॥ स विश्वजन्म-स्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहुमानयन् ॥ १७ ॥

वृथा है ऐसे पुरुषोंकी आयुष्यको, जिसकी क्षणमात्रभी गति नहीं रुकती ऐसा काल वृथा नाश करता है ॥ १४ ॥ इसलिये हे मैत्रेयजी ! जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे उसके साररूप रसको खींच लेता है, वैसे सर्व कथाओंमें साररूप ऐसी कल्याण करनहारे और पवित्रकीर्ति भगवान्‌की कथाको दूसरी कथाओंमेंसे खींचकर, हे दीनबंधु ! हमारे कल्याणके अर्थ हमारे पास वर्णन करो ॥ १५ ॥ जिन्होंने जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, भंगके अर्थ पहले शक्तियां धारण करीं थीं. उन्हीं प्रभुने मनुष्य अवतार लेकर, मनुष्योंकी शक्तिको उल्लंघन कर, जो चरित किये हैं. वे मुझसे आप वर्णन करो ॥ १६ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-इसप्रकार महामुनि भगवान् मैत्रेयजीसे विदुरजीने प्रश्न किया, तब जीवोंके कल्याणकारी प्रश्नको सुनकर, मैत्रेयजीने विदुरजीका बहुत सत्कार किया और

रहित वे हरि अपने हृदयाकाशमें इस जगत्का समावेश करके योगमायामें किस प्रकारसे शयन करते हैं ? और योगेश्वरोंके ईश्वर प्रभु एक होते सते इस जगत्में पीछेसे प्रवेश करके अनेक प्रकारके कैसे हुए ?॥ ६ ॥ और गौ, ब्राह्मण व देवतानके कल्याणके अर्थ क्रीड़ा करते हरि भगवान्‌ने मत्स्य आदि जुदे जुदे अवतार धारण करके जो चरित्र किये हैं वे कहो; पुण्यकीर्ति व पुरुषोंमें शिरोमणि हरिके चरित्रामृतको हम श्रवण करते हैं तथापि हमारा मन उनसे तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ और लोकपालोंके अधिपति हरिने जिन जिन जुदे २ तत्वोंसे लोक व लोकालोक पर्वतके बाहिरके प्रदेश तथा लोकपालोंका निर्माण किया है वह कहो. जि-

क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ॥ मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्वरितामृतानि ॥ ७ ॥ यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान्सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥ ८ ॥ येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥ ९ ॥ परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥ १० ॥ कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ॥ यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥ ११ ॥

नमें सकलजीवसमूहोंके भेद अपने अपने कर्मके अधिकारी रहते हैं ॥ ८ ॥ हे विप्रवर ! जगत्के सरजनहारे स्वयंसिद्ध नारायणने जिस प्रकारसे जीवोंके स्वभाव, कर्म, रूप व नामका भेद किया है यह हमसे आप वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! मैंने महाभारतमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रोंके धर्म तौ व्यासजीके मुखसे बारंबार श्रवण किये हैं और उनके सुननेसे मैं तृप्तभी हो गया हूं; क्योंकि वे तुच्छ सुखके देनेवाले हैं. परंतु भारतमें जो श्रीकृष्णचंद्रकी कथाका प्रवाह वर्णन किया गया है. उससे तृप्त नहीं होता ॥ १० ॥ क्योंकि ऐसा कौन पुरुष है ? कि जो भगवान्‌के कथारूप अमृतसे तृप्त होवे, कि जिसे नारदादि मुनि समाजोंके अंदर गाया करते हैं. जो कथामृत मनुष्यके कानकी नाड़ीमें जातेही संसारके दाता घरसंबंधी प्रेमको काट देता है ॥ ११ ॥

विदुरजी बोले कि—ये सब लोग सुखके वास्ते कर्म करते हैं. परंतु इनको न तौ सुख मिलता है. और न दुःखकी हानि है किंतु फिर उससे अधिक तर दुःख मिलता है. अब इस जगह क्या करना युक्त है ? अर्थात् कर्म करना ठीक है वा न करना ठीक है सो आप हमें फरमावें ? ॥ १२ ॥ आप जैसे भगवान्के भक्त उत्तमपुरुषोंका जो विचरना है. वह केवल प्राचीन कर्मके हेतु श्रीकृष्णचंद्रसे विमुख और उसीसेअधर्मशील और उसीसे अतिदुःखी ऐसे जीवोंके अनुग्रहके वास्ते है ॥ ३ ॥ इसलिये हे साधुपुरुषोंमें श्रेष्ठ ! हमैं आप वह

विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ॥ विंदेत भूयस्ततं एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥ २ ॥ जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ॥ अनुग्रहायेह चरंति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान्येन पुंसाम् ॥ हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥ ४ ॥ करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतंत्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥ ६ ॥

सुखरूप मार्ग बतलावो, कि—जिस मार्गके अनुसार आराधन करनेसे हरि, पुरुषोंके भक्ति करके पवित्र हृदयमें स्थित होकर, अनादि व वेदप्रमाणिक आत्मपारोक्ष्य सहित ज्ञानका प्रदान करैं ॥ ४ ॥ त्रिलोकीनाथ वा त्रिगुण मायाके नियंता स्वतंत्र हरि अवतार लेकर, जो चरित करते हैं वे हमें कहो. और निष्क्रिय हरि भगवान्ने सृष्टिके आदिमें इसप्रपंचका किस प्रकारसे निर्माण किया ? और जगत्की अच्छीतरह सुस्थिति करके किस प्रकारसे जीविकाका प्रबंध करते हैं ? ॥ ५ ॥ फिर वृत्तियों करके

१ संत सदा सबको हित बंछत, जानत है नर बूड़त काढ़े ॥ दे उपदेश मिटाइ सबै भ्रम, देकरि ज्ञान जहां जेहिं चाढ़े ॥ जे विषया सुख नाहिंन छांड़त, ज्यों कपि मूठ गहे शठ गाढ़े ॥ सुंदर वे दुखको सुख मानत, हाटहि हाट विकावत हांढ़े ॥ २ छप्पय ॥ जा दिनते सतसंग मिल्यो तब, ता दिनते भ्रम भाजिगयो है ॥ और उपाय थके सबही तब, संतन अद्वय ज्ञान दयो है ॥ पोत प्रवालहि क्यों करि डूबत, एक अमोलक लाल लयो है ॥ कौन प्रकार रहे रजनीतम, सुंदर सूर प्रकाश भयो है.

यह विषयोंसे बिलकुल क्षोभयुक्त न हुए, इस लिये यह समर्थ उद्धव लोकको मद्विषयक ज्ञानका उपदेश करते यहीं रहे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वेदके कर्त्ता व त्रीलोकीनाथ प्रभुने उद्धवजीको आज्ञा की तब वे बदरिकाश्रम पहुंचकर समाधिसे हरिकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ विदुरजीनेभी उद्धवजीसे, क्रीड़ाके हेतु जिन्होंने शरीर धारण किया है ऐसे, परमात्मा श्रीकृष्णके प्रशस्त चरित सुने ॥ ३३ ॥ और धीर पुरुषोंके धीरजका बढ़ानेवाला तथा पशुतुल्य व अधीरचित्त दूसरे लोगोंके लिये अतिदुष्कर ऐसा भगवान्के देहत्यागका समाचार सुन ॥ ३४ ॥ महाराज! दूसरा भगवान्ने मनमें अपनी सुध लीनी. ये समाचार

एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥ आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ॥ ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥ ३५ ॥ कालिंद्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥ प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ॥ क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥

सुने. जिससे उद्धवजीके जानेके अनंतर ध्यान कर, प्रेमसे विव्हल हो, विदुरजी रुदन करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर सिद्धदशासम्पन्न विदुरजी कितनेएक दिनोंमें यमुनासे गंगाके तट पहुंचे जहां महामुनि मैत्रेयजी विराजते थे ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवें अध्यायमें भगवान्की लीलासंबंधी प्रश्न किया तब महामुनि मैत्रेयजीने महत्तत्वादिकोंकी सृष्टि कही और उन तत्वोंने जो हरिकी स्तुति की. उसका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हरिद्वारमें अगाध बोधवाले महामुनि मैत्रेयजी विराजे थे. उनके निकट जाकर, आर्जव और करुणा आदि अनेक गुणोंसे संतुष्ट व अच्युत भगवान्की भक्तिसे परमशुद्ध ऐसे विदुरजीने प्रश्न किया ॥ १ ॥

जनोंके ईश्वर परमेश्वरने अपने आत्मतत्वका प्रकाशक जो उत्तम ज्ञान आपको कहा है. वह आप हमको कहनेके वास्ते योग्य हैं; क्योंकि प्रभुके जो दास हैं. वे अपने भृत्योंके प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थही विचरा करते हैं ॥ २५ ॥ यह सुन कर, उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि—आप तत्वज्ञानके वास्ते महामुनि मैत्रेयजीके पास जाओ; क्योंकि मनुष्यलोकको तजनेकी इच्छा करते भगवान् अंतसमयमें आपका स्मरण करके आपके वास्ते साक्षात् मैत्रेयजीको आज्ञा कर गये हैं ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—इस प्रकार विदुरजीके साथ विश्वमूर्ति भगवान्‌की अमृतमय गुणकथासे उद्धवजीका भारी संताप शांत हो गया.

उद्धव उवाच ॥ ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोंऽतिमे ॥ साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥ स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्त्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवांछितः ॥ संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिंतयत् ॥२९॥ अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ॥ अर्हत्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥ अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥

और उस रात वे वहीं यमुनाकी तीरपर रहे. सो उनकी वह रात्रि मानों एक क्षण बीते, वैसे बीत गयी. फिर उद्धवजी वहांसे बदरिकाश्रमको चले गये ॥ २७ ॥ परीक्षितने कहा कि—जब वृष्णि व भोजवंशी सब मर गये और त्रिलोकीनाथ हरिनेभी अपने बिंबको त्याग दिया. तब महारथी व यूथपोंके यूथपतियोंमें प्रधान वे उद्धवजी किस प्रकार शेष रह गये? ॥ २८ ॥ यह सुनकर, शुकदेवजीने कहा कि— अमोघसंकल्प हरिने ब्राह्मणोंके शापके मिषरूप कालसे अपने कुलका संहार कर, अपना शरीर त्यागनेकी इच्छा करके विचार किया कि— ॥ २९ ॥ मेरे इसलोकसे धाम पधारनेके अनंतर मेरे संबंधी ज्ञानके अधिकारी अभी तो उद्धवही हैं; क्योंकि यह आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ दूसरे उद्धव मुझसे अणुमात्रभी न्यून नहीं हैं; क्योंकि

मोहितसा करता है ॥ १७ ॥ हे प्रभु ! अपने आत्मतत्वके प्रकाशक परिपूर्ण जिस परमज्ञानका भगवान् आपने ब्रह्माजीको उपदेश किया. यदि हम उस ज्ञानको ग्रहण करनेके योग्य होवें तौ हमें आप उपदेश करें. जिससे हम विना श्रम भवसागरके दुःखको पार उतर जांय ॥ १८ ॥ इस प्रकार मैंने अपना अभिप्राय प्रगट किया. तब कमलनयन व परात्पर भगवान्ने अपनी सर्वोत्तम स्वरूपस्थितिका मुझे उपदेश किया ॥ १९ ॥ वह मैं इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान्रूप गुरुसे तत्व व आत्मज्ञानके मार्गको प्राप्त होकर, चरणोंको नमस्कार कर, भगवान्की परिक्रमा करके विरहसे आतुरचित्त होकर, यहां आया हूं ॥ २० ॥ हे

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदांऽजसा यद्वृजिनं तरेम ॥ १८ ॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः ॥ आदिदेशारविंदाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥ १९ ॥ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभोः ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममंडलम् ॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् ॥ ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ ॥ स तं महाभागवतं व्रजंतं कौरवर्षभः ॥ विश्रंभादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥ २४ ॥ विदुर उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरंति ॥ २५ ॥

प्रभु ! अब वह मैं भगवान्के दर्शनसे तौ आनंदयुक्त और वियोगसे दुखी हूं सो प्रभुके प्यारे बदरिकाश्रम मंडलको जाऊंगा ॥ २१ ॥ जहां प्रशस्त गुणवाले भगवान् नरनारायण ऋषि जगत्के ऊपर कृपा करनेके लिये चिरकालसे कोमल व तीव्र तप आचरण करते हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इस प्रकार उद्धवजीके मुखसे बांधवोंका दुःसह बध सुनकर, विदुरजीके भारी शोक उत्पन्न हुआ. परंतु विवेकी विदुरजीने ज्ञानसे उसे शांत किया ॥ २३ ॥ भगवान्के परमभक्त व श्रीकृष्णचंद्रके परिग्रहमें प्रधान उद्धवजी जाने लगे. तब कौरवोंमें श्रेष्ठ विदुरजीने विश्वास रखकर, यह बचन कहा ॥ २४ ॥ विदुरजी बोले कि–योगी-

यह फल है कि—मनुष्यलोकका त्याग करते समय एकांतमें मेरा दर्शन हुआ. यह बहुतही अच्छा हुआ ॥ १२ ॥ पहले पाद्मकल्पमें सृष्टिके आरंभ समय मेरे नाभिकमलमें बैठे हुए ब्रह्माजीको मैंने जिस ज्ञानका उपदेश किया था. और जिसमें मेरी महिमाका प्रकाश है. तथा जिसे पंडितलोग भागवत कहा करते हैं. उस परमज्ञानको मैं देता हूं सो तुम ग्रहण करो ॥ १३ ॥ इस प्रकार प्रभुने आदर करके कहा तब परमपुरुष प्रभुके कृपावलोकन व अनुग्रहका पात्र मैं हाथ जोड़कर, आंसू बहाते बहाते बोला उस समय मेरी यह दशा हुई कि स्नेहसे रोम खड़े होगये. और अक्षर मुखमेंसे टूटते निकलने लगे ॥ १४ ॥ मैंने प्रभुसे प्रार्थना

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदंति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्षरस्तं मुंचन् शुचः प्रांजलिराबभाषे ॥ १४ ॥ कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदांभोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्म न्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥ मंत्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुंठिताखंडसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥ १७ ॥

की कि—हे ईश ! आपके चरणकमलोंकी जो सेवा करते हैं. उनके इस संसारमें चारों पुरुषार्थोंमेंसे कोई पुरुषार्थ दुर्लभ नहीं है. तथापि हे भूमन् ! ( स्वप्रकाश ) मैं तौ उनमेंसे कुछभी नहीं मांगता; क्योंकि आपके चरणारविंदकी सेवासंबंधी उत्सुकतासेही कृतार्थ हूं ॥ १५ ॥ चेष्टारहित आपके कर्मोंका करना, अजन्मा आपके जन्मका होना, फिर शत्रुके भयसे किलेका आश्रय लेना और कालमूर्ति आपका भागजाना तथा स्वात्मरत आपका हजारों स्त्रियोंके साथ गृहस्थाश्रम करना इस विषयमें पंडितोंकी बुद्धिभी खेदयुक्त हो जाती है ॥ १६ ॥ हे देव ! काल आदिसे अकुंठित और अखंड तथा संशयादिरहित जिनकी विद्याशक्ति है, ऐसे प्रभु आपका सलाहके निमित्त मुझे बुलाकर, अनजानकी तरह सावधान हो कर. पूंछना, हे प्रभु ! यह मेरे मनको

तथापि मैं प्रभुके पीछे पीछे चला. कारण यह कि एक तो मुझसे प्रभुके चरणोंका वियोग सहा नहीं जाता. दूसरा मैंने भगवानका अभिप्राय जानलिया था कि आप वैकुंठ पधारनेवाले हैं ॥ ५ ॥ अपने प्यारे प्रभुको ढूंढ़ते ढूंढ़ते जाकर, मैंने देखा तो वे लक्ष्मीके निवासभूत हरि सरस्वतीके तीरपर वासभूमि बनाय, सब आश्रय छोड़ कर, इकले विराजें हैं ॥ ६ ॥ श्याम व उज्वल शुद्ध सत्वमय जिनका स्वरूप है, प्रशांत व रक्त जिनके नेत्र हैं, ऐसे चार भुजा व पीले पीतांबरसे लक्षित हरि ॥ ७ ॥ बांई साथलपर दाहिने चरणकमलको रख, पीठसे कोमल पीपलका आश्रय ले, विषयसुखको त्याग कर, आनंदपूर्ण होकर, विराजे थे

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशांतारुणलोचनम् ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशांबरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणांघ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवते द्वैपायनसुहृत्सखा ॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुंदः प्रमोदभावानतकंधरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहमंतर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥ स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां नृलोकान् रह उत्सृजंतं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥

॥ ८ ॥ उस अवसरमें सिद्धदशाको प्राप्त भगवान्के परमभक्त, वेदव्यासजीके सुहृत् और सखा मैत्रेयजी यदृच्छासे लोकोंमें विचरते विचरते वहां आ निकले ॥ ९ ॥ प्रमोद ( आनंद ) व भावसे नीची गर्दन कियेहुए बड़े अनुरागी उन महामुनि मैत्रेयजीके सुनते मुकुंद भगवान् अनुराग व हास्यसहित दृष्टिसे मुझे श्रमशून्य करते यह वचन बोले ॥ १० ॥ भगवान्ने कहा कि-- हे वसु ! उद्धव ! मैं तेरे मनके अंतर्गत अभीष्टको जानता हूं. प्रजापति व वसुओंके यज्ञमें पहले मेरी प्राप्तिकी कामनासे तुमने मेरी बहुत सेवा की है. इसलिये जो दूसरोंको मिलना दुर्लभ है. वह मैं तुझे दूंगा ॥ ११ ॥ और मेरा जो तुमपर अनुग्रह हुआ है. इससे तुम जानो कि अनेक जन्म पाते पाते यह तुम्हारा चरम ( शेवटका ) जन्म प्राप्त हुआ है. और तुमने जो मेरी निष्कपट सेवा करी. उसका

ब्राह्मणोंको शील आदि अनेक गुणवाली गैयां दीं ॥ २६ ॥ और सोना, रूपा, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, सवारियां, रथ, हाथी, कन्या व जीविका निबाहनेवाली पृथ्वीभी दी ॥ २७ ॥ और बहुत स्वादु अन्न भगवदर्पण जैसे हो वैसे उन ब्राह्मणोंको देकर, गौ व ब्राह्मणके अर्थ जिनके प्राण हैं ऐसे उन शूरवीरोंने मस्तकोंसे पृथ्वीपर प्रणाम किया ॥ २८ ॥ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें बंधुबध सुन कर, आत्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ उद्धवजीके उपदेशसे विदुरजी मैत्रेयजीके पास गये यह कथा होगी ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि-फिर

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकंबलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥ तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिंदम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥

उन यादवोंने ब्राह्मणोंसे आज्ञा पा, भोजन कर, वारुणीका पान किया. उसके प्रभावसे ज्ञानभ्रष्ट होजानेके कारण वे दुर्वचनोंसे मर्मवेध करने लगे ॥ १ ॥ वारुणी मदिराके दोषसे उनके चित्त बिलकुल विषम होगये. उसीसे जैसे बांसोंका परस्पर नाश होता है. वैसे सूर्य अस्त होते समय कदन ( नाश ) होने लगा ॥ २ ॥ वे हरिभगवान् अपनी योगमायाकी उस लीलाको देखकर, सरस्वतीके तीर आ, आचमन कर, वृक्षके तले विराजे ॥ ३ ॥ शरणागतोंकी आर्तिहरनहारे भगवान्ने अपने कुलका संहार करनेकी इच्छासे मुझे कहा कि-' हे उद्धव ! तू बदरिकाश्रम जा ' ॥ ४ ॥ हे शत्रुदमन करनेवाले विदुरजी ! प्रभुने जानेकी आज्ञा दी

१ दोहा-नाश होय मदिरा पिये, यह समझो निरसंश ॥ सांझसमय सब नशि गयो, बड़ो वंश यदुवंश ॥ १ ॥

भाइयोंके साथ पृथ्वीकी रक्षा करते श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार रमण करने लगे ॥ १८ ॥ लोक व वेदपथके अनुसार चलने-
वाले विश्वात्मा हरि भगवान्‌भी प्रकृति पुरुषके विवेकरूप सांख्यशास्त्रके विचारसे आसक्ति छोड़कर, द्वारकापुरीमें भोगोंका सेवन
करने लगे ॥ १९ ॥ जिनको रात्रिने उत्सव दिया है ऐसी स्त्रियोंमें क्षणिक प्रीतिवाले भगवान्, स्नेहभरे मंदहास्यसहित अवलोक-
नसे तथा अमृतसी मधुर वाणीसे व निर्दूषण पवित्र चरित्रसे और लक्ष्मीके निवासभूत शरीरसे इस लोकको तथा परलोकको त-
त्रापि ( तहांभी ) यादवोंको निरंतर रमण करते आप रमण करने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ इस प्रकार अनेक बरसों रमण करते

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥
स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥ २० ॥ इमं
लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदयादत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥ तस्यैवं रममाण-
स्य संवत्सरगणान्बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधी-
नः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रंभेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥ पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोज-
कुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजांधका-
दयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदंभसा ॥
तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥

हरिके गृहस्थ संबंधी कामभोगके उपायोंमें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ जब स्वाधीन भोगोंमेंभी स्वयं भगवान्‌को वैराग्य हुआ-
तब भक्तियोगसे भगवान्‌का अनुगामी स्वयं दैवाधीन कौन पुरुष दैवाधीन भोगोंका विश्वास करे ? ॥ २३ ॥ एकसमय द्वारकापु-
रीमें खेलतेहुए यदु व भोजवंशियोंके कुमारोंने जाकर, मुनिलोगोंको सताया. तब क्रोध करके भगवान्‌के अभिप्रायको जाननेवाले
मुनियोंने शाप दिया ॥ २४ ॥ फिर कितनेएक महीनोंके बाद दैवसे मोहित भयेहुए वृष्णि, भोज व अंधकवंशी वगैरः सब लोक
प्रसन्न हो, रथोंमें बैठ बैठ कर, प्रभासक्षेत्रको चले ॥ २५ ॥ वहां स्नान कर, पितृ, देवता व ऋषियोंको उस जलसे तृप्त करके,

आदि थे उनमेंसे कितनेएकको अपने हाथसे मारा. और कितनेएकोंको दूसरोंके हाथ मरवाया ॥ ११ ॥ कुरुक्षेत्र आतेहुए जिन राजाओंकी सेनाओंसे पृथ्वी डोल रही थी. उन तुम्हारे भ्रातृपुत्रोंके पक्षपाती राजाओंको मरवाया ॥ १२ ॥ कर्ण, दुःशासन और शकुनिके कुविचारके परिणामसे भग्नोरु ( टूटीजाघोंवाला ) व हतायु और हतलक्ष्मी राजा दुर्योधनको अनुचरसहित रणभूमिमें सोताहुआ देखकरकेभी भगवान् प्रसन्न नहींहुए ॥ १३ ॥ इस विचारसे कि–द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमको निमित्त करके जो मैंने यह अठारह अक्षौहिणी रूप भूमिका भारी भार उतारा है, यह कितना ? क्योंकि–अबतक मेरे अंशभूत प्रद्युम्न आदिके सबब अतिदुःसह यादवोंका सैन्य पृथ्वीपर विद्यमान है॥ १४ ॥ और इनके मारनेका उपाय यही है कि जब ये वारुणीके



अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥ १२ ॥ सकर्णदुःशासनसौबलानां कुमंत्रपाकेन हतश्रियायुषम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननंद पश्यन् ॥ १३ ॥ कियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनां ॥ १४ ॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽतर्दधते स्वयं स्म ॥ १५॥ एवं संचिंत्य भगवान्स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम्॥ नंदयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६॥ उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजैरक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥ १८ ॥

नशेसे रक्तनेत्र हो जायंगे और इनके आपसमें विवाद हो जायगा तब आपसमें कट मरेंगे. यही तो उपाय है दूसरा कुछभी नहीं. सो जब मैं उपाय करूंगा, तब विवाद करके स्वयं कट मरेंगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार विचार कर, धर्मराज युधिष्ठिरको अपने राज्यपर स्थापित कर, सत्पुरुषोंके मार्गको दिखलाते हरिने अपने सुहृदोंको आनंदित किया ॥ १६ ॥ अभिमन्युने उत्तराके गर्भमें जिस पुरुवंशको भली भांति स्थापित किया था. यद्यपि वह अश्वत्थामाके अस्त्रसे उच्छिन्न हो गया था तथापि भगवान्ने पीछा उसे बचाया ॥ १७ ॥ प्रभुने युधिष्ठिरको तीन अश्वमेध यज्ञ करवायके यजन करवाया, वेभी अपने छोटे

थे उन मूर्ख शस्त्रधारी राजाओंके शस्त्रोंसे अक्षत रहकर, भगवान्‌ने अपने शस्त्रोंसे उनका वध किया ॥ ४ ॥ जैसे स्त्रीलंपट पुरुष अपनी प्रियाको प्रसन्न करनेके लिये करता हो वैसे प्रभु हरि सत्यभामाको प्रसन्न करनेके लिये स्वर्गसे कल्पवृक्ष ले आये. जिसके लिये स्त्रियोंके क्रीड़ामृग इंद्र क्रोधसे अंध होकर, भगवान्‌के पीछे अपनी सेनासहित दौड़ कर, आये ॥ ५ ॥ युद्धके बीच अपने बड़े शरीरसे आकाशका ग्रास करतेहुए अपने पुत्र भौमासुरको सुदर्शन चक्रसे मराहुआ देखकर, पृथ्वीने प्रार्थना की, तब उसकी प्रार्थनासे उसके पुत्र भगदत्तको हृतशेष राज्य देकर, भौमासुरके अंतःपुरमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वहां भौमासुर जिन राजक-

प्रियं प्रभुर्गाम्य इव प्रियाया विधित्सुराच्र्छद्युतरुं यदर्थे॥वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषांऽधः क्रीडामृगो नूनमयं-वधूनाम् ॥५॥ सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसंतं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमंत्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदंतःपुरमाविवेश ॥६॥ तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबंधुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥ ७ ॥ आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकै रुंधतः पुरम् ॥ अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥ १० ॥ शंबरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दंतवक्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥ ११ ॥

न्याओंको हरण करके ले आया था. वे आर्तबंधु हरि भगवान्‌को देखकर, एक साथ तुर्त उठ खड़ी हुई और उन्होंने अति-हर्ष, लज्जा और अनुराग करि प्रेरित दृष्टियोंसे भगवान्‌का स्वीकार किया ॥ ७ ॥ भगवान्‌नेभी एकही मुहूर्तमें जुदे जुदे घरोंमें अपनी मायासे उनके अनुरुप स्वरुप धारण कर, विधिपूर्वक उन स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ और अपनी मायाका विस्तार फैलानेकी इच्छासे सब प्रकारसे अपने समान दश दश पुत्र उनमें उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ कालयवन, जरासंध व शाल्व आदि राजा जो सेनाओंसे अपनी पुरीको घेर रहे थे. उन्हें मुचुकुंद व भीमसेन आदिको निमित्तमात्र बनाकर मरवादिये व उसी हेतुसे अपने भक्तोंको दिव्य तेज वा कीर्तिका प्रदान किया ॥ १० ॥ शंबर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल व औरभी जो दंतवक्र

व्रजांगनाओंके मंडलके मंडनरूप हरिने मधुर पदसे गान करते रमण किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें व्रजसे मथुरामें आकर, भगवान्‌ने कंस-वध आदि जो चरित्र किये और द्वारकामें जो चरित्र किये उनका वर्णन होगा ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि-फिर अपने माता पिताके सुख करनेकी इच्छासे बलदेवजीके साथ व्रजसे मथुरामें पधार, शत्रुओंके यूथपति कंसको ऊंचे राजमंचसे नीचे पटककर, प्राणरहित मरेहुए कंसको जोरसे जमीन पर घसीटा ॥ १ ॥ एकबेर कहनेसे अंगादिसहित संपूर्ण वेद सांदीपनि नाम

उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुंगाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥ १ ॥ सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पंचजनोदरात् ॥ २ ॥ समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गांधर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतो विद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञान्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥

गुरुसे पढ़कर, मरेहुए गुरुपुत्रको पंचजन नाम दैत्यका पेट चीर, उसमेंसे निकालकर, गुरुको पुत्ररूप गुरुदक्षिणा दी ॥ २ ॥ भीष्मक राजाकी कन्या रुक्मिणीने अपने लक्ष्मीके समान स्वरूप रूपके हेतु जिन राजाओंको बुलाया. उन राजाओंके देखते उनके सिरपर पांव रखकर, गांधर्वविवाहकी रीति प्रचलित करनेकी इच्छासे अपने भागरूप लक्ष्मीका अंशभूत रुक्मिणीको जैसे गरुड़ अपना भाग अमृत ले आये वैसे हरण करके ले आये ॥ ३ ॥ जिनके नाक बिंधेहुए नहीं थे ऐसे बैलोंका दमन करके स्वयंवरमें भगवान्‌ने नाग्नजितीका पाणिग्रहण किया. और बैलोंके दमन करनेसे मानभंग भयेहुए जो राजा उनकी इच्छा करते

१ कवित्त ॥ ब्रह्ममें ढूंढ्यो पुराणन वेदन भेद सुनो चितचौ गुनचायन ॥ देख्यो सुन्यो न कहूं कित हूं वह कैसो स्वरूप है कैसो सुभायन ॥ हेरत हेरत हार फिरो रसखान बतायो न लोग लुगायन ॥ देख्यो कहां वह कुंजकुटीतट बैठ्यो पलोटत राधिका पायन ॥ १ ॥

व्रजवासियोंको देखनेके योग्य अपनी कुमारलीला दिखलाते हरि मानों रुदन करते हों या हंसते हों वैसे भोले बालसिंहकी तरह देखते थे ॥ २८ ॥ सुफेद हैं बैल जिसमें ऐसे संपदाके धाम गोधनको चराते, बंशी बजाते, अनुचर गोपोंको आप रमण कराते थे ॥ २९ ॥ जैसे बालक खिलौनोंको तोड़ डालता है वैसे कंसके भेजेहुए इच्छानुसार रूप धरनेवाले मायावी उन उन दैत्योंका लीलापूर्वक नाश किया ॥ ३० ॥ विष पान करनेसे मरेहुए ग्वालवालोंको सजीवित कर, कालिय नागका दमन कर, यमु-

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥ २८ ॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान्गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥ प्रयुक्ता-न्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥ विपन्ना-न्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अया-जयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्ष-तींद्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशि-करैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मंडलमंडनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नाजीका विषरहित निर्मल जल गौवनको पिलाया ॥ ३१ ॥ अति समृद्ध धनका सब व्यय करना चाहते विभु भगवान्ने ब्राह्मणोंद्वारा नंदरायजीसे इंद्रकी पूजाका भंग करवाकर, गोयज्ञ करवाया ॥ ३२ ॥ अपना मानभंग होनेसे इंद्रने कोप करके, ऐसी बर्षा की कि–उससे सब व्रज अत्यंत विव्हल हो गया, उस समय हे विदुरजी ! अनुग्रहसे पर्वतरूप लीलाछत्र धारणकर, प्रभुने व्रजवासियोंकी रक्षा करी ॥ ३३ ॥ शरदऋतुसंबंधी चंद्रमाकी किरणोंकरके उज्वल रात्रिके आरंभको मान देनेवाले,

---

१ कवित्त ॥ शेष महेश दिनेश सुरेश गणेशहु जाहि निरंतर गावैं ॥ जाहि अनादि अनंत अखंड अछच्छ्य अभेद्य सुवेद बतावैं ॥ नारदसे शुक व्यास रटैं पचिहारे तेऊ पुनि पार न पावैं ॥ ताहि अहीरकी छोहरियां छछियां भरि छांछको नाच नचावैं ॥ १ ॥

भेंटें समर्पण करते पुरातन लोकपाल जिनके पादपीठकी किरीटके अग्रभागसे स्तुति ( प्रणामरूप ) करते हैं. ऐसे त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण भगवान् ॥ २१ ॥ राज्यसिंहासन पर बैठेहुए उग्रसेनजीके समीप खड़े होकर, जो आप विनती करते हैं कि– ' हे देव! निर्द्धार करो ' यह भगवान्‌का किंकर ( दास ) पन हे विदुरजी ! दास हम लोगोंको अतीव खेदयुक्त करता है ॥ २२ ॥ अहो बड़ी आश्चर्यकी बात है कि–दुष्ट पूतनाने भगवान्‌को केवल मारनेकी इच्छासेही स्तनोंमें लगाकर, जहर पिलाया, उस पूतनाको यशोदाजीको जो गति मिलनी चाहिये वह मिली, अब भगवान्‌से बढ़कर, दूसरा ऐसा कौन दयालु है ? कि–भगवान्‌को छोड़कर,

तत्तस्य कैंकर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यंग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्दे-व निधारयेति ॥ २२ ॥ अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धा-त्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥ मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरंभमार्गा-भिनिविष्टचित्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतंतम् ॥ २४ ॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेंद्रबंधने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥ २५ ॥ ततो नंदव्रजमितः पि-त्रा कंसाद्विबिभ्यता ॥ एकादशसमास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥ २६ ॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारय-न् व्यहरद्विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलितांघ्रिपे ॥ २७ ॥

उसके शरण जावें ॥ २३ ॥ हम तौ दैत्योंकोभी भगवद्भक्तही मानते हैं; क्योंकि वे लोग त्रिलोकीनाथ भगवान्‌में क्रोधके आवे-शके मार्गसे मन लगाया करते हैं और संग्रामके भीतर वे लोग गरुड़के कंधेपर विराजमान सुदर्शनचक्र लिये भगवान्‌को आते देखते हैं ॥ २४ ॥ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीने भगवान्‌से प्रार्थना की, तब आप वसुदेवजीकी देवकी नाम स्त्रीमें कंसके कारागृह ( बंन्दिसखाने ) में प्रगट हुए ॥ २५ ॥ फिर वसुदेवजीने कंससे डरकर, भगवान्‌को नंदरायजीके व्रजमें पहुंचाया, वहां ग्यारह वर्षपर्यंत अपना तेज गुप्त रखकर, बलदेवजीके साथ रहे ॥ २६ ॥ वत्स पालनेवाले ग्वालोंको संग ले, बछरोंको चराते प्रभुने, यमुनाजीके उपवनमें कि जहां वृक्षोंपर पक्षिकुल ( चिड़ियोंके समूह ) कूज रहे हैं. वहां क्रीड़ा करी ॥ २७ ॥

प्रगट होते हैं वैसे प्रगट हुए ॥ १५ ॥ भगवान्‌ने अजन्मा होने परभी वसुदेवजीके घर (कारागार) में जन्म लेनेका बिड़ंबन किया तथा अनंतवीर्य होनेपरभी कंससे डरते हों वैसे व्रजमें निवास किया. और कालयवन आदि शत्रुओंसे भय खाते हों वैसे मथुरासे भाग, निकले. यह भगवान्‌का दुर्घट चरित्र देखकर, मुझे खेद होता है ॥ १६ ॥ भगवान्‌ने अपने माता पिताके चरणोंमें प्रणाम करके, कहा कि– 'हे तात! हे मात! हम कंससे बहुत डरते रहे. इसलिये हमसे आपकी सेवा नहीं बनी. सो हमारा अपराध क्षमा करियेगा' उनके उस चरित्रका जब हम स्मरण करते हैं. तब हमारा मन खेदको प्राप्त हो जाता है

मां खेदयत्येतदजस्य जन्म विडंबनं यद्वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनंतवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवंद्य पित्रोः ॥ तातांब कंसादुरुशंकितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥ को वा अमुष्यांघ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतांतेन तिरश्चकार ॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयंति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविंदम् ॥ नेत्रैः पिबंतो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ जिन्होंने चंचल भ्रूलतारूप कृतांत (काल) करके भूमिका भार उतारा उन भगवान्‌के चरणकमलकी रजकी जिसने सेवा की है. वह कौन पुरुष उन्हें भूल सकता है? ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णचंद्रसे वैर करतेहुएभी शिशुपालकी राजसूय यज्ञके बीच जो सिद्धि हुई वह आपने देखी? कि–योगीजनभी भले प्रकार योग साधकर, जिस सिद्धिकी अभिलाषा रखते हैं, उन भगवान्‌के विरहको कौन सह सके? ॥ १९ ॥ वैसेही दूसरेभी वीर राजा लोक कि–जिन्होंने युद्धके बीच श्रीकृष्णचंद्रके नेत्रोंको आनंद देनेवाले मुखारविंदका नेत्रोंसे आदरसहित दर्शन किया था वे अर्जुनके शस्त्रोंसे पवित्र होकर, भगवान्‌के पदको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ जिनके समान अथवा अधिक कोईभी नहीं है, परमानंदकी स्वरूप संपत्ति करकेही जिनकी समग्र कामना पूर्ण हो गयीं हैं और

मनुष्य समझा ॥ ९ ॥ जो भगवान्की मायासे व्याप्त हैं वे तौ भगवान्को अपना करके मानते हैं और जो शिशुपाल आदि बैरी हैं वे सदा निंदा करते रहते हैं. परंतु जिनका चित्त हरि भगवान्में लग गया है उन हमारे जैसे बुद्धिमानोंकी बुद्धि तौ उनके वाक्योंसे कभी चलायमान नहीं होती ॥ १० ॥ जिन्होंने पूर्ण तप नहीं किया है. अतएव जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं. ऐसे लोगोंको आजतक अपने स्वरूपका दर्शन दे. उनके नेत्रोंको अपनी ओर खींच कर, आज उस स्वरूपको अंतर्धान कर दिया ॥ ११ ॥ कैसा है वह स्वरूप कि-जो अपनी योगमायाका प्रभाव दिखानेके लिये मनुष्यलीलाके योग्य है और जो सौभाग्यसंपदाकी परा

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥ आदायांतरधाद्यस्तु स्वबिंबं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥ यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणांगम् ॥ १२ ॥ यद्धर्मसूनोर्वत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलाऽवलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशांतरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकंपितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥ १५ ॥

काष्ठा होनेसे आपकोभी विस्मित करनेवाला है तथा गहनोंकेभी गहनेरूप जिसके अंग हैं ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर राजाके राजसूययज्ञमें नेत्रोंको आनंद देनेवाले जिस स्वरूपका दर्शन कर, त्रिलोकीके लोकोंने यह समझा था कि-नयी सृष्टिमें विधाताकी जो कुछ चातुरी है वह सब इसीमें आचुकी. इससे बढ़कर, विधातामें चतुराई नहीं है ॥ १३ ॥ जिन भगवान्के अनुराग करके व्याप्त हास, रास और लीलासहित अवलोकन करके जिनको बहुत मान मिला है ऐसी व्रजांगनाओंकी दृष्टिसहित चित्तवृत्तियां भगवान्के पीछे चलीजानेसे वे घरके धंधे छोड़कर, खाली बैठ जातीं थीं ॥ १४ ॥ वे पर अवरके ईश भगवान् अजन्मा होने परभी अपने शांतरूपोंको घोररूपों ( दैत्यों ) से पीड़ित देख, उनपर करुणा ( दया ) लाकर, जैसे महाभूतरूपसे नित्य सिद्ध अग्नि काठमें

वान्का स्मरण आ जानेसे उद्धवजी पीछे कुछभी न बोलसके ॥ १ ॥ जब ये पांच वर्षके थे तबभी यह दशा थी कि–माता इन्हें प्रातसमयके भोजनके लिये कहती तो बाललीलासे भगवान्की सेवाकी रचना करते उस भोजनकी बिलकुल इच्छा नहीं करते ॥ २ ॥ उन भगवान्की सेवा करते करते समय पाकर, जो वृद्ध होगये वे अपने स्वामीके चरणोंका स्मरण करते वार्ता पूंछनेपर पीछा उत्तर कैसे दे सकें ? ॥ ३ ॥ वे उद्धवजी श्रीकृष्णभगवान्का चरणरूप अमृत पाकर, बहुत आनंदयुक्त हुए और तीव्र भक्तियोगसे चरणरूप अमृतमें मग्न होकर, दोघड़ीतक चुप रहे ॥ ४ ॥ सब शरीरमें पुलकावली हो आई, मूंदेहुए नेत्रोंमेंसे अश्रु गि-

यः पंचहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसंगतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णांघ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वांगो मुंचन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥ ७ ॥ दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसंतो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ ८ ॥ इंगितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः ॥ सात्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥

रने लगे, तब स्नेहके पूरमें मग्न होनेसे विदुरजीने जान लिया कि–उद्धवजी भगवद्धामको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ शनैः शनैः ( धीरे धीरे ) भगवान्के लोकसे पीछे मनुष्य लोकमें आकर, नेत्र पोंछकर, हँसते हँसते उद्धवजी विदुरजीसे पीछा कहने लगे ॥ ६ ॥ उद्धवजी बोले कि–श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त होगये और हमारे श्रीहीन घरोंको कालरूप अजगर सर्प गिल गया, अब मैं बंधुनका क्या कुशल कहूं ? ॥ ७ ॥ हाय ! यह लोक तो मंदभागीही है परंतु यादव तो बिलकुलही मंदभाग्य हैं; क्योंकि शामिल रहनेपरभी जैसे मछलियोंने चंद्रमाको नहीं पहँचाना वैसे यादवोंने श्रीकृष्णचंद्रको नहीं पँहचाना ॥ ८ ॥ मंदभाग्यका प्रभाव तो देखो कि–हृदयगत अभिप्रायको जाननेवाले अत्यंतनिपुण सब यादवोंने एक स्थानमें रहनेपरभी परमेश्वरको यादवोंमें एक अच्छा

कुपुत पुत्रोंके वश होकर, सुहृद जो हम हैं उन्हेभी अपने पुरसे बाहिर निकलवा दिया ॥ ४१ ॥ उन्हे हमभी मनुष्यनाट्यसे मनुष्योंकी बुद्धिको भ्रमण कराते हरि भगवान्की कृपासे उन परमात्माकी महिमाको देखते विस्मयरहित होकर, कोई पहँचान न सके वैसी रीतिसे यहां विचरते हैं ॥ ४२ ॥ विद्या, धन और कुलके मदसे उलटे रस्ते चलनेवाले और सेनाके भारसे पृथ्वीको वारंवार कंपायमान करनेवाले राजाओंका नाश करनेके हेतु श्रीकृष्णभगवान्ने शरणागत लोगोंका दुःख दूर करनेकी इच्छासे अपराध करतेसमय दंड देनेको समर्थ होनेपरभी अवश्य आजतक कौरवोंके अपराधका सहन किया ॥ ४३ ॥ अजन्मा भगवान्का जन्म उलटे रस्ते चलनेवालोंके नाशके अर्थ है, अकर्ता प्रभुके कर्म मनुष्योंको सुमार्गमें चलानेके लिये हैं,

सोऽहं हरेर्मर्त्यविडंबनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥ ४२ ॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥ ४३ ॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतंत्रम् ॥ ४४ ॥ तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कंठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥

अन्यथा परमेश्वरके जन्मादिकका होना संभवे नहीं; क्योंकि जो दूसराभी गुणातीत है उसके देहसंबंध और कर्मोंका विस्तार योग्य नहीं. तब ईश्वरके तो कैसे घटे ॥ ४४ ॥ सर्वलोकपालोंके शरणागत भक्तोंके और अपने आज्ञाकारी लोगोंके प्रयोजनके हेतु, यादवोंमें प्रगट हुए, अजन्मा, पवित्रकीर्ति, भगवान्की वार्ता जो हो सो हे सखा! हमें कहो ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें भगवान्के विरहसे व्याकुल उद्धवजीने शोच करके निसासा डालते विदुरजीको श्रीकृष्णचंद्रके बालचरित्र कहे. यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि-भगवद्भक्त उद्धवजीको इस प्रकार विदुरजीने अपने प्यारे श्रीकृष्णसंबंधी वार्ता पूछी परंतु उत्कंठाके हेतु भग-

कि जिनकी सभामें चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी और जयपरंपराको देखकर, दुर्योधन तप गया था ॥ ३६ ॥ अपराधी दुर्योधना-दिकोंमें सर्पके समान अतीव अमर्ष ( क्रोध ) वाले भीमसेनने अपना बहुत समयसे संचय कियाहुआ रोष ( क्रोध ) छोड़ा के नहीं ? जिस समय वह ( भीमसेन ) गदा हाथमें ले, विचित्र मार्गसे घूमते हैं. उस समय उन( भीमसेन ) के चरणपात ( पैंतड़े ) को रणभूमिभी नहीं सह सकती है ॥ ३७ ॥ रथयूथपतियोंके बीच कीर्तिधारी, गांडीव धनुष धरनेवाले अर्जुन अ-पने शत्रुओंका संहार करके, आनंदमें तौ हैं ? जिनके बाणजालसे आच्छन्न होकर यानी ढककर, मायासे किरातरूप गुप्तवेष धरे-

किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुंचत् ॥ यस्यांघ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदा-याश्चरतो विचित्रम् ॥ ३७ ॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गांडीवधन्वोपरतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छ-रकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुत स्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षि-णीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्रात् ॥ ३९ ॥ अहो पृथाऽपि ध्रियतेऽर्भ-कार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधः पतंतं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अ-हं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥

हुए महादेवभी प्रसन्न होगये थे ॥ ३८ ॥ पलकोंकरके वेष्टित नेत्रके समान कुंतीके पुत्र युधिष्ठिरआदिसे घिरेहुए कुंतीके पुत्र नकुल और सहदेव, जैसे गरुड़ इंद्रके मुखमेंसे अमृत ले आवे वैसे अपने शत्रु दुर्योधनसे युद्धके विषे छीनकर, आनंदपूर्वक क्रीड़ा तौ करते हैं ? ॥ ३९ ॥ कुंतीका कुशल तौ क्या पूंछूं ? क्योंकि-जिन इकले अतिरथ वीरने केवल दूसरा धनुष साथ रखकर, चारों दिशाओंका विजय किया. अहो ! उन उत्तम राजर्षि पांडु विना कुंतीभी केवल बालकोंके वास्ते जीती रही ॥ ४० ॥ हे सौम्य ! हम तौ केवल धृतराष्ट्रका शोच कर, रहे हैं. जो मरेहुए भाईसे बैर करके नरकमें पड़ रहे हैं. और जिनने

१ कुंतीने पाले इसलिये कुंतीके पुत्र. २ अमितान् योधयेद्यस्तु स प्रोक्तोऽतिरथस्तु सत् ॥ १ ॥ अर्थ-जो अकेला असंख्य योधावोंसे लड़े उसे उत्तम अतिरथ कहते हैं ॥ १ ॥

प्रसन्न तौ हैं ॥ ३० ॥ जिनने अर्जुनसे धनुर्विद्याका रहस्य सीखा और जो भगवान्की सेवाहीसे यति लोकोंको दुर्लभ ऐसी भगवान्की मति ( मोक्ष ) को सहजमें प्राप्त हुए. वह सात्यकि यादव प्रसन्न तौ हैं ? ॥ ३१ ॥ भगवान्के शरणागत अक्रूरजी कि जो भगवान्के चरणचिन्हवाले मार्गकी रजमें प्रेमसे धैर्यरहित होकर, लोटने लगे थे. वे श्वफल्कके पुत्र क्षेम और कुशल तौ हैं ? ॥ ३२ ॥ जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्ताररूप अर्थको धारण करती है वैसे जिनने अपने गर्भमें प्रभुको धारण किया.

क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥ ३१ ॥ कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादांकितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥ कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥ ३३ ॥ अपि स्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनंति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरंति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥ दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥ ३६ ॥

वह देवककी कन्या देवकी, विष्णु भगवान् जिनके पुत्र हुए हैं ऐसी दितिकी नाईं प्रसन्न तौ हैं ॥ ३३ ॥ जो उपासकलोगोंके मनोरथको पूर्ण करते हैं. जो वेदके कारण रूप हैं, जो चतुर्विध अंतःकरणके चौथे तत्व हैं यानी मनके अधिदैवत हैं और जो मनके प्रवर्त्तक हैं. वे अनिरुद्ध भगवान् प्रसन्न तौ हैं ? ॥ ३४ ॥ हे सौम्य ! जो अपने दैवतरूप श्रीकृष्णभगवान्का अनन्य भक्ति करके अनुसरण करते हैं. वे हृदीक, सत्यभामाके पुत्र, चारुदेष्ण और गद आदि जो दूसरे यादव हैं सो सब प्रसन्न तौ हैं ? ॥ ३५ ॥ अपने भुजारूप श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ महाराज धर्मराजा धर्मसे धर्मसंबंधी मर्यादाकी रक्षा तौ करते हैं ?

नाजीपै आये. वहां भगवान्‌के परमभक्त उद्धवजी मिले ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णभगवान्‌के अनुचर, शांतमूर्ति, नीतिशास्त्रमें बृहस्पतिजीके पूर्वशिष्य, सुख्यातिवाले उद्धवजीसे दृढ़ आलिंगन कर, भगवान्‌के पोष्यवर्ग अपने बंधुजनोंका प्रेमपूर्वक कुशल पूंछा ॥ २५ ॥ विदुरजी बोले कि—ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे यहां जिन्होंने अवतार धारण किया है ऐसे पुराणपुरुष भगवान् पृथ्वीका भार उतार, विश्राम ले, शूरसेनजीके घरमें आनंदपूर्वक तौ विराजते हैं? ॥ २६ ॥ हे उद्धवजी! हमारे (कौरवोंके) परम-

स वासुदेवानुचरं प्रशांतं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ॥ आलिंग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥ कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥ २६ ॥ कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमंग शौरिः ॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमंग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥ २८ ॥ कच्चित्सुखं सात्त्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिंचच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु सांबः ॥ असूत यं जांबवती व्रताढ्या देवं गुहं योंऽबिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥

सुहृद पूज्य वसुदेवजी प्रसन्न तौ हैं? जो अतीव उदारचित्त वसुदेवजी अपनी बहनोंको उनके पतियोंकी पहरावनीके साथ पिताकी नांई बहुत द्रव्य देते हैं ॥ २७ ॥ रुक्मिणी ब्राह्मणोंका आराधन करके, जिनको भगवान्‌से प्राप्त हुई. और जो पूर्वजन्ममें कामदेवके अवतार थे, वह यादवोंके सेनापति, वीर, प्रद्युम्न, हे उद्धवजी! प्रसन्न तौ हैं? ॥ २८ ॥ राज्यासनकी आशा छोड़कर, दूर बैठेहुए जिन उग्रसेनजीका कमलनयन श्रीकृष्णचंद्रने राज्याभिषेक किया, वे सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्हवंशी क्षत्रियोंके अधिपति प्रसन्न तौ हैं? ॥ २९ ॥ हे सौम्य! जिन्हे पूर्वजन्ममें पार्वतीने गर्भमें धारण किया था, ऐसे स्वामिकार्तिकके अवतार जिन सांबको व्रत धारण करके जांबवतीने जन्म दिया, वह भगवान्‌के सदृश पुत्र, रथियोंमें अग्रणी सांब

आप विदुरजी विचरने लगे ॥ १८ ॥ पवित्र व असंकीर्ण जीविकासे निर्वाह करते, पृथ्वीमें विचरते, सदा तीर्थस्नान कर, पृथ्वीपर शयन करते विदुरजी हरिभगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले व्रतोंका आचरण करने लगे. कभी शरीरका संस्कार नहीं करते. तथा अवधूतसा वेष धारण करते. इस लिये उन्हें अपने बंधुभी नहीं पहँचान सकते थे ॥ १९ ॥ इसतरह भारतवर्षमेंही विचरते विचरते आप जितने समयसे प्रभासक्षेत्रमें पहुंचे इतने समयमें तो श्रीकृष्णकी सहायतासे राजा युधिष्ठिरका पृथ्वीपर एकछत्र चक्रवर्ती राज होगया ॥ २० ॥ वहां आपने सुना कि जैसे बासोंका वन आपसमें रगड़ खाकर, अग्नि उत्पन्न होनेसे जल

गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥ इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ २० ॥ तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ २१ ॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरंति ॥ २३ ॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजांगलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥

जाता है, वैसे अपने बंधु कौरव ईर्षा करके आपसमें कट मरे; इस बातका शोच करते विदुरजी चुपचाप पश्चिमवाहिनी सरस्वतीको चले ॥ २१ ॥ उन सरस्वतीके तीरपर त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह, श्राद्धदेव इनके तीर्थोंका सेवन किया ॥ २२ ॥ औरभी यहांपै ऋषि और देवताओंके बनाये विष्णु भगवान्‌के अनेक मंदिर और क्षेत्र कि जिनके शिखरके सुवर्णकलशोंमें सुदर्शनचक्रका चिन्ह शोभायमान और जिनके दर्शनसे श्रीकृष्ण भगवान्‌का स्मरण होय है उनका सेवन करने लगे ॥ २३ ॥ फिर समृद्ध सुराष्ट्रदेश, सौवीरदेश, मत्स्यदेश, कुरुदेश और जांगलदेशको उल्लंघ कर, समय पाकर, यमु-

तौ इस दुष्टको घरसे निकाल दो ॥ १३ ॥ यह वचन सुन, वृद्धिंगत ( बढ़ेहुये ) कोपसे जिसके होंठ फड़क रहे हैं, ऐसे दुष्ट दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी सलाहसे, सत्पुरुषोंके स्पृहणीय जिनका शील है ऐसे विदुरजीका अनादर करके यह वचन कहा कि-॥ १४ ॥ इस कुटिल दासीपुत्रको यहां किसने बुलाया ? जिसका अन्न खाकर, पुष्ट हुआ है उसीसे प्रतिकूल होकर, शत्रुओंके कार्यमें मदद देता है. इस लिये इसे विना मारे सब छीन, प्राणमात्र शेष रख कर, पुरसे शीघ्र बाहिर निकाल दो

इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता स कर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥ क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरुमानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजेष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनंतलिंगैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥

॥ १५ ॥ भाईके सामने इस प्रकार उस दुष्ट दुर्योधनने कानोंको बाणसे लगें ऐसे उल्बण ( कठोर ) वचनोंसे मर्मस्थलमें ताड़न किया, तब भगवानकी मायाके प्रबल प्रभावको मान, व्यथारहित हो, अपना धनुष दरवाजे पै डारकर, आपही आप पुरसे निकल गये ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यसे जो मिले थे वे विदुरजी हस्तिनापुरसे निकलकर, पुण्य करनेकी इच्छासे हरि भगवान्‌के क्षेत्रोंमें विचरने लगे. कि जहां भूमिपर ब्रह्मरुद्रादि अनेक मूर्ति धारण करके, हरि भगवान् विराजे हैं ॥ १७ ॥ अनंत भगवान्‌की मूर्तियोंसे अलंकृत ( भूषित ) ऐसे पुर, पवित्र उपवन, पर्वत, कुंज, निर्मल जलवाले सरोवर, नदियां, तीर्थ और क्षेत्रोंमें एकाकी

---

१ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥ ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १ ॥ अर्थ- जो धृतराष्ट्रजी कहेवें कि- पुत्र कैसे त्यागें. इसका जवाब मूलहीमें है कि- " कुलकौशलाय " यानी कुलकी कुशलताके लिये यही नीतिमेंभी कहा है कि- सब कुलका नाश होता हो तो एकेक त्याग देवे गांवके प्रयोजनमें कुलको छोड़े, देशके प्रयोजनमें गांव छोड़े, और जहां अपना प्रयोजन हो वहां सारी पृथ्वी त्याग देना ॥ १ ॥

निंदनीय कर्मको जब राजाने मना नहीं किया ॥ ७ ॥ और द्यूत ( जुवां ) में अधर्म करके जीतेहुए सत्यवादी. साधु राजा युधिष्ठिरने वनसे पीछा आकर, कौलके अनुसार जब अपना राज्य मांगा तौ अबिबेकी पुत्रके कहनेसे उनका राज पीछा नहीं दिया ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरके भेजेहुए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने सभामें जाकर, अमृतकेसे बचन कहे. परंतु राजाने उन वचनोंका स्वीकार नहीं किया; क्योंकि उसके पुण्यका लेशभी शेष नहीं रहा था ॥ ९ ॥ जब बड़े भाई धृतराष्ट्रने सलाह पूंछनेके लिये सलाह जाननेवालोंमें श्रेष्ठ विदुरजी कि जिनकी सलाहको नीतिवेत्ता लोग ' यह विदुरनीति है ' इस प्रकार कहकर, प्रशंसा किया करते

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलंबस्य वनागतस्य ॥ न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरुमेने क्षतपुण्यलेशः ॥ ९ ॥ यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मंत्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मंत्रदृशां वरीयान्यन्मंत्रिणो वैदुरिकं वदंति ॥ १० ॥ अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन् रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुंदो गृहीतवान्स क्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टो यमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥ १३ ॥

हैं उन्हें बुलाया. तब धृतराष्ट्रके घर आकर, ॥ १० ॥ विदुरजीने धृतराष्ट्रसे कहा कि--युधिष्ठिरका भाग आप दे दीजिये. इन्होंने आपके बहुतसे अतिअसह्य अपराध सहे हैं, जिनके पास भीमसेनरूप सांप छोटे भाइयोंके साथ क्रोधसे श्वास लेते अभी विद्यमान हैं. जिनसे तुम बहुत डरते हो ॥ ११ ॥ राजाधिराज ! मुकुंददेव भगवान्ने पांडवोंका पक्ष ले लिया है. जो यदुदेवदेव भगवान् अभी सब राजाओंको जीतकर, अपनी पुरी (द्वारका) में विराजे हैं ॥ १२ ॥ विदुरजीके वचन सुन, धृतराष्ट्रने कहा कि--दुर्योधन नहीं मानता मैं क्या करूं ? तब विदुरजीने कहा कि--यह तौ श्रीकृष्णका वैरी मूर्तिमान् दोष तुम्हारे घरमें घुसा है. जिसे तुम पुत्रबुद्धिसे पालते हो, यह तौ भगवान्से विमुख होनेके कारण लक्ष्मीहीन हो गया है. सो जो आप कुलका कुशल चाहो

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ प्रथम अध्यायमें गतायु बंधुनको त्याग कर, घरसे निकलेहुए विदुरजीका प्रथम उद्धवजीसे संवाद हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-अपने समृद्धिसंपन्न घरको छोड़कर, वनमें पधारे ऐसे विदुरजीने भगवान् मैत्रेयजीसे पहले इसी प्रकार यही प्रश्न किया था ॥ १ ॥ कैसे हैं वे विदुरजी कि तुमको सलाह देनेवाले, सकलके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र दुर्योधनके घरको त्याग कर, अपना घर समझकर, जिनके घर पधारे थे ॥ २ ॥ परीक्षितने कहा कि-हे प्रभु ! विदुरजीका भगवान् मैत्रेयजीके साथ जो संवाद हुआ. वह कहां हुआ ? और कब हुआ ? यह हमारे पास वर्णन करो ॥ ३ ॥ शुद्ध

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मंत्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेंद्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणास संगमः ॥ कदा वा सहसंवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥ न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून्पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबंधून्प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरंत्याः कुचकुंकुमानि ॥ ७ ॥

अंतःकरणवाले उन विदुरजीने महात्मा मैत्रेयजीसे साधुवाद करके संवर्धित जो प्रश्न किया है. वह अवश्य अल्पअर्थका प्रकाशक नहीं होगा ॥ ४ ॥ सूतजीने कहा कि-राजा परीक्षितने इसप्रकार मुनिवर शुकदेवजीसे प्रश्न किया. तब प्रसन्नचित्त होकर, बहुत विषयके जाननेवाले शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे पीछा कहा कि-सुनिये ॥ ५ ॥ शुकदेवजी बोले कि-अधर्म करके नष्ट हो गयी है विवेकरूप दृष्टि जिसकी ऐसे महाराज धृतराष्ट्रने जब दुष्ट पुत्रोंका पोषण करनेके लिये पिताहीन अपने कनिष्ठभ्राता ( छोटेभाई पांडु ) के पुत्र युधिष्ठिरआदि पांडवोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश कराकर, भस्म किया ॥ ६ ॥ और सभाके बीच महारानी द्रौपदी कि जो रोती हुई अपनी अश्रुधारासे कुचपर लगीहुई केसरको बहा रही थी. उस अपने बेटेकी बहूके केश पकड़नेरूप पुत्रोंके

ब्रह्म मानते हैं, मीमांसक धर्मरूप मानते हैं, सांख्यवाले कार्य-कारणसे भिन्न पुरुषरूप मानते हैं, पंचरात्रवाले लोग नवशक्ति-युक्त परमेश्वर मानते हैं और योगशास्त्रवाले स्वतंत्र और अविनाशी महापुरुष मानते हैं ॥ ९ ॥ मैं ( महादेव ) ब्रह्मा और मरीचि-आदि ऋषि, कि-जो सत्वगुणसे पैदाहुए हैं, वे सब आपके बनायेहुए जगत्कोभी जब यथार्थ रीतिसे नहीं जानते, तब निज आपको तो कैसे जानें ? और जब ये ब्रह्मादिकभी जगत्को यथार्थ रीतिसे नहीं जानते तो हे ईश ! आपकी मायासे मोहितचित्त और रजोगुण तमोगुणसे उत्पन्न हुए ये दैत्य और मनुष्य-प्रभृति तो इस जगत्को कदापि न जानें इसमें तो कहनाही क्या ?

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानंति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ॥ यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबंधमोक्षौ ॥ वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुत्से ॥ ११ ॥ अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ॥ सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥ येन संमोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ॥ तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना ॥ प्रहस्य भावगंभीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ॥ पश्यतासुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ आपके रचेहुए जगत्के जन्म, स्थिति, भंग और प्राणियोंकी चेष्टा व जगत्का बंधन और मोक्ष यह सब, जगत्के आत्मा और ज्ञानस्वरुप आप जानते हो, जैसे वायु स्थावर-जंगम और आकाशमें व्याप्त है, वैसे आप सर्वात्मतासे सर्वमें व्याप्त हो, अतएव आप सब जानते हो ॥ ११ ॥ गुणोंसे रमण करते आपके मैंने कई अवतार देखे हैं, सो मैं अब वह स्वरूप देखना चाहता हूं, कि-आपने जो स्त्रीस्वरूप धारण किया था ॥ १२ ॥ जिस स्वरूपसे आपने दैत्योंको मोहित करके, देवतोंको अमृत पिलाया, वह स्वरुप देखनेकी इच्छासे हम आये हैं. क्योंकि-हमें इसबातका बड़ा कौतूहल मालूम होता है ॥ १३ ॥ शुकदेवजी बोले कि-इसतरह महादेवने प्रार्थना की, तब विष्णु भगवान्ने गंभीरभावसे हँसकर, महादेवजीसे कहा ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्ने

कहा कि- दैत्योंके कौतूहलके वास्ते मैंने स्त्रीरूप धारण किया था. कारण यह था कि-जब अमृतका कलश जाता रहा तौ देवतोंकी कार्यसिद्धि इसीतरह होती नजर आयी ॥ १५ ॥ सो हे सुरोत्तम ! कामी पुरुषोंके अतिमाननीय और कामदेवको प्रकट करनेवाला वह स्वरूप जो आपके देखनेकी इच्छा है तौ, मैं आपको अवश्य दिखलाऊंगा ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- भगवान् ऐसे कहते २ ही वहीं अंतरधान हो गये और महादेव पार्वतीके साथ चारोंओर दृष्टि देते वहीं बैठे रहे ॥ १७ ॥ फिर एक बाग कि-जिसके वृक्षोंमें विचित्र पुष्प और पल्लव शोभा दे रहे थे, उसके अंदर गेंद खेलती एक उत्तम स्त्री महादेवजीके

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ॥ कामिनां बहुमंतव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥ सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥ विक्रीडतीं कंदुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितंबमेखलाम् ॥ १८ ॥ आवर्त्तनोद्वर्तनकंपितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ॥ प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥ दिक्षु भ्रमत्कंदुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ॥ स्वकर्णविभ्राजितकुंडलोल्लसत्कपोलनीलालकमंडिताननाम् ॥ २० ॥ श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ॥ विनिघ्नतीमन्यकरेण कंदुकं विमोहयंतीं जगदात्ममायया ॥ २१ ॥ तां वीक्ष्य देव इति कंदुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ॥ स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमंतिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥ २२ ॥

नजर आयी. जिसके शोभायमान वस्त्रसे वेष्टित नितंबपर कटिमेखला देदीप्यमान हो रही थी ॥ १८ ॥ गेंदके खेलमें शरीर ऊंचा नीचा करनेसे कंपायमान जो स्तन और उत्तम हार उनके भारसे मानों पग २ में कमर टूट जायगी, इसतरह यह स्त्री चारोंओर अपने सुकोमल चरणपल्लव धरती थी ॥ १९ ॥ चौतर्फ दिशाओंमें उछल रहा जो गेंद उसकी चंचलताके पीछे, उद्विग्न पुतलियांवाले व आयतनेत्र चपल हो रहे थे, अपने कानोंमे देदीप्यमान जो कुंडल उससे प्रकाशमान जो कपोल और नील अलकें उनसे मुख शोभायमान हो रहा था ॥ २० ॥ शिथिल होता रेशमी वस्त्र और छूटतेहुए केशपाशको सुंदर बाएं हाथसे बांध रही थी और अपनी मायासे जगत्को, मोहित करती दाहिने हाथसे गेंदको ताड़ितकर, रही थी ॥ २१ ॥ उसे देखकर,

महादेव ऐसे मोहित हुए कि-ढिगमें बैठेहुए अपने गण और पार्वतीकाभी भान नहीं रहा; क्योंकि-इस प्रकारके गेंदके खेलसे प्रगट भई जो किंचित् लज्जा इसके प्रभावसे भया जो मंदहास्य तत्सहित कटाक्षसे आप वंचित हो गये थे और उस स्त्रीकी आंखसे जो आपकी आंख मिली, उससे अपना चित्त विव्हल हो गया था ॥ २२ ॥ जब वह गेंद उसके हाथसे दूर चला गया, तौ उसके पीछे २ वह स्त्रीभी दूर निकल गयी; इतनेमें महादेवजी देखतेही रहे और पवनने कटिमेखलासहित उसका झीना वस्त्र हरलिया ॥ २३ ॥ सुंदर हैं कटाक्ष जिसके ऐसी, दर्शनीय और मनोहर व कुंचित कटाक्षोंसे अपनी ओर देखती हुई, उस स्त्री-

तस्याः कराग्रात्सतु कंदुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ॥ वासः ससूत्रं लघुमारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३ ॥ एवं तां रुचिरापांगीं दर्शनीयां मनोरमाम् ॥दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जंत्यां भवः किल ॥ २४ ॥तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ॥ भवान्या अपि पश्यंत्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५ ॥ सा तमायांतमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ निलीयमाना वृक्षेषु हसंती नान्वतिष्ठत ॥ २६ ॥ तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेंद्रियः ॥ कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७ ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ॥ केशबंध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ॥ इतस्ततः प्रसर्पंती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥

को देखकर, महादेवजीकाभी मन उसमें लग गया ॥ २४ ॥ उस स्त्रीके संबंधसे अपना ज्ञान जाता रहा और उसके प्रगट हुआ जो कामदेव उससे ऐसे विव्हल हुए कि-पार्वती देखतीही रहीं और आप तौ निर्लज्ज हो, उसके पीछे लगे॥२५॥ उसके बिलकुल पहिरनेको वस्त्र नहीं था, सो वह महादेवजीको आते देखकर, बहुत शर्मायी और हँसती २ वृक्षोंकी ओटमें छिपने लगी, पर कहीं ठहरी नहीं ॥ २६ ॥ चुराई गई हैं इंद्रियां जिनकी ऐसे महादेवजी कामके वश हो, जैसे यूथपति हथिनीके पीछे लगे, वैसे उस स्त्रीके पीछे लगे ॥ २७ ॥ महादेवजी अतिफुर्तीसे उस स्त्रीके निकट पहुंचे और उसकी मरजी विनाभी उसके केशपाशमें उसे पकड़, समीपमें ले, दोनों हाथोंसे मिले ॥ २८ ॥ जैसे हाथी हथिनीसे मिलता है, वैसे आप उसे बगलमें लेकर मिले,

परंतु वह जानेके लिये इधर उधरसे निकलनेकी कोशिश कर रही थी जिससे उसके बाल छूट गये ॥ २८ ॥ महाराज ! निदान महादेवजीकी बगलसे अपने आत्माको छुड़ाकर, वह पृथुश्रोणी भगवान्की रचीहुई माया, वहांसे भाग निकली ॥ ३० ॥ महादेव, उन अद्भुतचरित हरि भगवान्के पीछे दौड़े, उस वख्त मानों पूर्ववैरी कामदेवने महादेवजीको जीतलिया ऐसा मालूम हुआ ॥ ३१ ॥ जैसे गौके पीछे मदमत्त बड़ा सांड़ दौड़ता हो, वैसे मोहिनीके पीछे दौड़ते जाते इन अमोघवीर्य महादेवजीका वीर्य स्खलित हो गया ॥ ३२ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! जहां जहां उन महात्मा महादेवजीका वीर्य पृथ्वीपै पड़ा, वहां २ रूपे और

आत्मानं मोचयित्वांग सुरर्षभभुजांतरात् ॥ प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥ तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कंदामोघरेतसः ॥ शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ॥ तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरस्सु शैलेपु वनेषूपवनेषु च ॥ यत्र कचासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ॥ जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ॥ अपरिज्ञेय वीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ॥ उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥

सोनेके क्षेत्र ( खानें ) हुए ॥ ३३ ॥ नदियां, तालाव, पर्वत, वन, उपवन और जहां जहां ऋषिलोग थे, वहांभी महादेवजी इसीप्रकार उस स्त्रीके पीछे २ दौड़ते सबके समीप चले गये ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! वीर्य स्खलित हुए पीछे अपने मनको भगवान्की मायासे जड़ीभूत हुआ जानकर, महादेवजी पीछे ठिकाने आगये, यानी वह कश्मल निवृत्त हो गया ॥ ३५ ॥ जगत्के आत्मा और जिनका सामर्थ्य जाननेमें नहीं आता, ऐसे भगवान्की मायासे अपनी गफलत हुई जानकर, महादेवजीने इसे अति आश्चर्यरूप नहीं माना ॥ ३६ ॥ महाराज ! महादेवजीको स्वस्थचित्त और लज्जारहित देख, अतिप्रसन्न हो, अपना पुरुषस्वरूप

धारण करके, भगवान्‌ने कहा ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे देववर ! यद्यपि आप मेरी स्त्रीरूप मायासे एक वेरतौ मोहित हो गये, तौभी पीछे आपहीसे अपनी स्थितिमें आ गये, यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ३८ ॥ अनेक प्रकारके भाव प्रगट करती और अजितेंद्रिय पुरुष जिसे तिर नहीं सक्ते ऐसी, मेरी मायाको आपके सिवाय दूसरा कौन आसक्त पुरुष तिर सक्ता है ॥ ३९ ॥ सृष्टिप्रभृतिके कारणरूप व कालरूप मेरे प्रभावसे घटते बढ़ते रजोगुणआदि अंशसे मेरे आधीन रहनेवाली यह मेरी गुणमयी माया, हे तात ! कभी आपका पराभव नहीं करेगी ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! इसतरह श्रीवत्सके चिन्हवाले

श्रीभगवानुवाच ॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ॥ यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया ॥ ३८ ॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ॥ तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ॥ मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजञ्छ्रीवत्सांकेन सत्कृतः ॥ आमंत्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥ आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ॥ शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ॥ अहं कलानामृषयो विमुह्ये यया वशोऽन्ये किमुतास्वतंत्राः ॥ ४३ ॥ यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रांत उपारतं वै ॥ स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥

भगवान्‌से महादेवजी सत्कार पाय, उनसे आज्ञा ले, परिक्रमा दे, अपने गणोंको साथ ले, पीछे अपने धाम पधारे ॥ ४१ ॥ हे राजा ! सब ऋषि लोगोंके सुनते, अपनी अर्धांगी मायारूप पार्वतीसे प्रसन्न होकर, महादेवजीने कहा कि- ॥ ४२ ॥ क्यों अजन्मा, परपुरुष और परमदैवतरूप भगवान्‌की माया तुमने देखी ? जिस मायासे भगवान्‌की विभूतियोंमें श्रेष्ठ मैंभी मोहित होगया हूं, सो दूसरे परतंत्र लोकोंकी तौ बातही कौन ? ॥ ४३ ॥ हे पार्वती ! एक सहस्र वर्षपर्यंत समाधि धारण करके, जब मैं योगसे उपरत हुआ, उस समय तुमने आकर, जिसके विषयमें मुझसे प्रश्न किया था वे साक्षात् पुराणपुरुष भगवान् ये हैं कि-

जहां न तौ कालकी गति है और न वेदकी गति है ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे तात ! इस प्रकार शार्ङ्गधनुष धारण करनहारे हरि भगवान्‌का चरित्र मैंने तुमसे कहा कि-जिन्होंने समुद्रमथनके समयमें अपनी पीठपर बड़ा मंदराचल पर्वत धारण किया था ॥४५॥ जो इसे बारंबार सुने, या इसका कीर्तन करे. उसका उद्यम कभी निष्फल नहीं होता, क्योंकि-भगवान्‌के गुणोंका वर्णन सब संसारके परिश्रमका मिटानेवाला है ॥ ४६ ॥ जिन भगवान्‌ने कपटसे स्त्रीवेष धारण कर, दैत्योंको मोहित कर, दुष्ट पुरुषोंसे अगम्य और भक्तिगम्य आपके चरणारविंदके शरणागत श्रेष्ठ देवोंको समुद्रमथनसे प्रगटकर, अमृत पिलाया, उन शरणागत भक्तोंके मनोरथ

श्रीशुक उवाच ॥ इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ॥ सिंधोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाऽचलः ॥ ४५ ॥ एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ॥ यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ असदविषयमंघ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिंधुमथ्यम् ॥ कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे शंकरमोहनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥ सप्तमो वर्तमानोयस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेवच ॥ नरिष्यंतोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परंतप ॥ ३ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ अश्विनावृभवो राजन्निंद्रस्तेषां पुरंदरः ॥ ४ ॥

पूरनेवाले भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा० महा० अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ तेरहवें अध्यायमें सातवें मनुसे ले, छःछः प्रकारके सब मन्वंतरोंका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-विवस्वान्‌के पुत्र श्राद्धदेव नाम जो सातवें मनु अभी वर्तमान हैं, उनके अपत्योंका मैं वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ १ ॥ हे परंतप ! वैवस्वतमनुके इक्ष्वाकु, नभग धृष्ट, शर्याति नरिष्यंत, नाभाग सातवे दिष्ट, करूष, पृषध्र और दशवें वसुमान् ये दश पुत्र हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ हे राजा ! वसु आदित्य, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभु ये देवता, हैं, पुरंदरनाम इनका इंद्र है ॥ ४ ॥

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि भरद्वाज, ये सप्तर्षि हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वंतरमेंभी कश्यपजीसे अदितिमें विष्णु भगवान्नें वामन अवतार धारण किया है जो सब आदित्योंमें छोटे हैं ॥ ६ ॥ संक्षेपसे सात मन्वंतर तौ मैंने तुमसे कहे. अब भगवान्की शक्तियुक्त भविष्यत् मन्वंतर कहता हूं सो सुनो ॥ ७ ॥ हे राजेंद्र ! विवस्वान्के विश्वकर्माकी कन्या संज्ञा और छाया ये दो स्त्रियां थीं जिनका मैं पहले वर्णन कर चुका हूं ॥ ८ ॥ कितनेएक कहते हैं कि–, सूर्यके तीसरी स्त्री वड़वा थी, उनमेंसे

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ॥ आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वंतराणि ते ॥ भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्याऽन्वितानि च ॥ ७ ॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ॥ संज्ञा छाया च राजेंद्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥ तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ॥ यमो यमी श्राद्धदेवच्छायायाश्च सुतान् शृणु ॥ ९ ॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ॥ शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥ १० ॥ अष्टमेंऽतर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ॥ निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥ तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिंद्रो भविष्यति ॥ १२ ॥ दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ॥ राद्धमिंद्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ॥ निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥

संज्ञाके तीन संतान हुए यम, यमुना और श्राद्धदेव. अब छायाके पुत्र सुनो ॥ ९ ॥ सावर्णि, संवरणकी स्त्री तपती नाम कन्या और तीसरा शनैश्चर ये तीन संतान हुए, वड़वाके अश्विनीकुमार नाम दो पुत्र हुए ॥ १० ॥ आगामी आठवें मन्वंतरमें सावर्णि मनु होंगे, महाराज ! निर्मोक, विरजस्कआदि उनके पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ वहां सुतपा, विरजा, अमृतप्रभा ये देवता होंगे, विरोचनका पुत्र बलि इनका इंद्र होगा ॥ १२ ॥ जिसने याचना करते विष्णु भगवान्को तीन पैग पृथ्वी दी, वह आठवें मन्वंतरमें समृद्ध इंद्रपदको छोड़कर ' मोक्षको प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ जिसे प्रथम तौ भगवान्ने बांधा, फिर प्रसन्न होकर, स्वर्गसेभी अधिक

सुतललोकमें स्थापित किया. जो अभी वहां इंद्रकी तरह रहता है ॥ १४ ॥ गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृंग और मेरे पिता भगवान् वेदव्यासजी ये अपने योगके प्रभावसे वहां सप्तर्षि होंगे. हे राजा ! अभी तो, ये सब अपने २ आश्रमोंमें रहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवगुह्यकी स्त्री सरस्वतीमें सार्वभौम नाम भगवान्का अवतार होगा, जो पुरंदरसे स्वर्ग छीन कर, बलिको देंगे ॥ १७ ॥ महाराज ! वरुणका पुत्र दक्षसावर्णि नाम नवमा मनु होगा, उसके भूतकेतु, दीप्तिकेतु इत्यादि-

गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ॥ ऋष्यशृंगः पिताऽस्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५ ॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यंति स्वयोगतः ॥ इदानीमासते राजन्स्वे स्वे आश्रममंडले ॥ १६ ॥ देवगुह्यां सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ॥ स्थानं पुरंदराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७ ॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः ॥ भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १८ ॥ पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इंद्रोऽद्भुतः स्मृतः ॥ द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यंत्यृषयस्ततः ॥ १९ ॥ आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ॥ भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ॥ तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ॥ सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं करिष्यति ॥ जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥

क पुत्र होंगे ॥ १८ ॥ पारा, मरीचिगर्भ आदि देवता होंगे, अद्भुत नाम इंद्र होंगे वहां द्युतिमत्आदि सप्तर्षि होंगे ॥ १९ ॥ आयुष्मान्की अंबुधारा नाम स्त्रीमें ऋषभ नाम भगवान्का अवतार होगा, उसिके प्रभावसे अद्भुत नाम इंद्र समृद्ध त्रिलोकीका राज करेंगे ॥ २० ॥ उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि नाम दशवें बड़े मनु होंगे भूरिषेणआदि उनके पुत्र होंगे, हविष्मत्, सुकृत, सत्य जय और मूर्ति इत्यादि सप्तर्षि होंगे. सुवासन, विरुद्धआदि देवता होंगे, शंभुनाम इंद्र होंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रजापतिके घरमें विषूचिसे विष्वक्सेन नाम अवतार होगा, जो अपने अंशसे प्रगट होकर, शंभु नाम इंद्रके साथ मित्रता करेंगे ॥ २३ ॥

आत्मज्ञानी धर्मसावर्णि नाम ग्यारहवें मनु होंगे उनके सत्यधर्मआदि दश पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ विहंगम, कामगम, निर्वाण, रुचि ये देवता होंगे, वैधृति नाम इंद्र होंगे. अरुणआदि सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ आर्यकके वैधृता नाम स्त्रीमें धर्मसेतु नाम हरिका अंशावतार होगा. जो त्रिलोकीको धारण करेगा ॥ २६ ॥ महाराज ! रुद्रसावर्णि नाम बारहवें मनु होंगे उनके देववान्, उपदेव, और देवश्रेष्ठआदि पुत्र होंगे ॥ २७ ॥ ऋतधामा नाम इंद्र होंगे, हरितआदि देवता होंगे, तपोमूर्ति, तपस्वी, आग्नीध्रकआदि

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ॥ अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहंगमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ॥ इंद्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरितिस्मृतः ॥ वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६ ॥ भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥ २७ ॥ ऋतधामा च तत्रेंद्रो देवाश्च हरितादयः ॥ ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २८ ॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ॥ अंतरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इंद्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यंत्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ॥ योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इंद्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगंभीरबुद्ध्याद्या इंद्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥

सप्तर्षि होंगे ॥ २८ ॥ सत्यसहाके सूनृता नाम स्त्रीमें स्वधाम नाम भगवान्का अंशावतार होगा. जो इस मन्वंतरका पालन करेगा ॥ २९ ॥ आत्मज्ञानी देवसावर्णि नाम तेरहवें मनु होंगे चित्रसेन विचित्रआदि उसके पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ सुकर्म, सुत्राम नाम देवता होंगे, दिवस्पति नाम इंद्र होंगे निर्मोक, तत्वदर्शआदि सप्तर्षि होंगे ॥ ३१ ॥ देवहोत्रके बृहती नाम स्त्रीमें योगेश्वरनाम भगवान्का अंशावतार होगा, जो दिवस्पतिकी सहायता करेगा ॥ ३२ ॥ इंद्रसावर्णि नाम चौदहवें मनु होंगे उरु-गंभीरबुद्धि-

आदि उनके पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ पवित्र चाक्षुपनाम देवता होंगे. शुचि नाम इंद्र होगा, अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध, मागध-आदि सप्तर्षि होंगे ॥ ३४ ॥ महाराज ! सत्रायणकी विनता नाम स्त्रीमें बृहद्भानु नाम भगवान्का अवतार होगा, जो क्रियाकांडको विस्तारेंगे ॥ ३५ ॥ हे राजा ! भूत भविष्यत् वर्तमान कालके ये चौदह मन्वंतर मैंने कहे, युगकी हजार चौकड़ीमें चौदह मन्वंतर होते हैं, और चौदह मन्वंतरमें जो काल व्यतीत होता है उसे कल्प कहते हैं ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ चौदहवें अध्यायमें भगवान्के स्वाधीन रहे

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिंद्रो भविष्यति ॥ अग्निर्बाहुः शुचि शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥ ३४ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ॥ वितानायां महाराज क्रियातंतून्वितायिता ॥ ३५ ॥ राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ॥ प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे मन्वंतरानुवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ मन्वंतरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ॥ यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ॥ इंद्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ॥ मन्वादयो जगद्यात्रां नयंत्याभिः प्रचोदिताः ॥ ३ ॥ चतुर्युगांते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ॥ तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ॥ युक्ताः संचारयंत्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृपाः ॥ ५ ॥

मनुआदिके यथायोग्य जुदे २ कार्यको वर्णन होगा ॥ १ ॥ परीक्षितने पूंछा कि–हे भगवन् ! मन्वंतरोंमें ये मनुआदि जिस कामर्में जिससे जिस तरह नियुक्त किये जाते हैं, वह मुझे कहो ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–हे पृथ्वीनाथ ! मनु, मनुके पुत्र, मुनि, इंद्र और देवता ये सब भगवान्के अंशावतारकी आज्ञामें रहते हैं ॥ २ ॥ हे राजा ! यज्ञआदि जो भगवद्‌वतार कहे, उनकी प्रेरणासे मनुआदि जगत्का पालन करते हैं ॥ ३ ॥ सप्तर्षि चार युगके अंतमें कालके प्रभावसे नाश हुए वेदके समूहको अपने तपके प्रभावसे पीछा प्रगट करते हैं, कि–जिनसे सनातन धर्म जाना जाता है ॥ ४ ॥ फिर भगवान्की आज्ञासे मनु सा-

वधान होकर, अपने २ समयमें पृथ्वीपर चतुष्पाद धर्मको प्रवृत्त करते हैं ॥ ५ ॥ प्रजाका पालन करनेवाले मनुके पुत्र और उनके पुत्र-पौत्र मन्वंतरके अंततक पृथ्वीका पालन करते हैं, देवता और उनके साथ रहनेवाले दूसरेभी यज्ञसंबंधी भाग ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ इंद्र भगवान्‌की दीहुई अतिऊर्जित त्रिलोकीकी संपदाका भोग करता त्रिलोकीका पालन करता है. और अपनी इच्छानुसार जगत्‌में वर्षा करता है ॥७॥ भगवान् सनकादिकआदि सिद्धका स्वरूप धर कर, युगयुगमें ज्ञानका उपदेश करते हैं, याज्ञवल्क्यआदि ऋषियोंके स्वरूपसे कर्मका उपदेश करते हैं और दत्तात्रेयआदि योगेश्वरोंके स्वरूपसे योगका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ मरीचिआदि प्रजापतिके रूपसे सृष्टिरचना करते हैं. राजाओंका स्वरूप धारण कर, चोरोंका नाश करते हैं और शीत-

पालयंति प्रजापाला यावदंतं विभागशः ॥ यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥ इंद्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ॥ भुंजानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ॥ ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ॥ कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ॥ विमोहितात्मभिर्नाना दर्शनैर्न च दृश्यते ॥१०॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ यत्र मन्वंतराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥११॥ इति श्रीभा० महा० अष्ट० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥ भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबंध तम् ॥ १ ॥

उष्ण-आदि जुदे २ गुणवाले कालमूर्ति होकर, सबका संहार करते हैं ॥ ९ ॥ नामरूपात्मक मायासे मोहित लोक अनेक प्रकारके शास्त्रोंसे भगवान्‌का निरूपण करते हैं. तौभी वे किसीके जाननेमें नहीं आते हैं ॥ १० ॥ महाकल्पके अंतर्गत अवांतर कल्पका प्रमाण यह आपसे मैंने कहा, कि-जिस अवांतर कल्पमें चौदह मनु हुआ करते हैं. ऐसे प्राचीन विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ११ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें बलिराजासे शुक्राचार्यजीने विश्वजितनाम यज्ञ करवाया, उसके प्रभावसे बलिने स्वर्गका जय किया औ देवता डरते छिप गये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-हरि भगवान्‌ने ईश्वर होकर, कृपणकी तरह बलिसे तीन पैग पृथ्वी

क्यों मांगी ? और अपना प्रयोजन सिद्ध होगया, फिर उसे क्यों बांधा ? ॥ १ ॥ यज्ञेश्वर और पूर्ण हरि भगवान्ने निरपराधी बलिको बाधा, यह चरित सुननेका हमें बड़ा कौतूहल लग रहा है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज ! इंद्रने सब संपदा हर लीनी और प्राण हरलिये फिर भृगुवंशियोंने उसे सजीवित किया, तौ वह महात्मा बलि तन मन धन सब अर्पण करके, उनकी शिष्यभावसे सेवा करने लगा ॥ ३ ॥ यह बलि पीछा स्वर्ग जीतना चाहता था, इस लिये महानुभाव भृगुवंशी ब्राह्म



एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ॥ यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बंधनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हींद्रेणराजन्भृगुभिः स जीवितः ॥ सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥ तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ॥ जिगीषमाणं विधिनाऽभिषिच्य महाऽभिषेकेण महाऽनुभावाः ॥ ४ ॥ ततो रथः कांचनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरंगवर्णाः ॥ ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ॥ पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥ एवं सविप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामंत्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥ अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ॥ सुस्रग्धरोऽथ संनह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥

णोंने प्रसन्न हो, महाभिषेककी विधिसे अभिषेक, कर, उसे ' विश्वजित ' नाम यज्ञ करवाया ॥ ४ ॥ अग्निका हविसे यजन किया—तौ अग्निमेंसे सुवर्णके पट्टसे बंधाहुआ रथ, इंद्रके घोड़ोंकेसे वर्णवाले घोड़े और सिंहके चिन्हसे विराजमान ध्वजा ॥ ५ ॥ सुवर्णसे मढ़ाहुआ दिव्य धनुष, अक्षय भाथे, ( तरकस ) दिव्य कवच ये प्रगट हुए. प्रल्हादने उसे, जिसके फूल न कुह्मलायं ऐसी माला दीनी और शुक्राचार्यजीने शंख दिया ॥ ६ ॥ इसतरह ब्राह्मणोंने इसके युद्धके लिये सब सामा संपादन की और स्वस्तिवाचन किया. तब उन्हें प्रणाम कर, प्रदक्षिणा दे, प्रल्हादसे आज्ञा ले, उसे नमस्कार कर ॥ ७ ॥ यह महारथ भृगुवंशियोंके

दिये हुए दिव्य रथपर चढ़ा, सुंदर माला पहने कमरकसे, धनुष, खड्ग और भाथा (तरकस) धारण किये ॥ ८ ॥ भुजामें सुवर्णके बाजूबंद बांधे, मकराकृत कुंडल झलकाये, रथपै बैठाहुआ दैत्यराज कुंडमें विराजमान अग्निके समान शोभा दे रहा था ॥ ९ ॥ अपने बराबर ऐश्वर्य, बल और लक्ष्मीवाले, मानों दृष्टियोंसे आकाशको पी जायंगे और दिशाओंको भस्म कर देंगे ऐसे, अपने दैत्य-यूथपतियोंको संग ले ॥ १० ॥ भारी दैत्योंकी सेनाको साथ लिये, मानों आकाश और पृथ्वीको कंपायमान करता हो वैसे समृद्धिवाली इंद्रपुरीपर उसने चढ़ाई की ॥ ११ ॥ कैसा है वह स्वर्ग कि—जिसमें समृद्धियुक्त नंदनआदि कई उपवन और उद्या-

हेमांगदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुंडलः ॥ रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ॥ पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ॥ ययाविंद्रपुरीं स्वृद्धां कंपयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नंदनादिभिः ॥ कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ हंससारसचक्राह्वकारंडवकुलाकुलाः ॥ नलिन्यो यत्र क्रीडंति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥ आकाशगंगया देव्या वृतां परिखभूतया ॥ प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥ रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ॥ जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ॥ शृंगाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

नोंकी सुंदरता छा रही है कि—जिनमें पक्षियोंके जोड़े कूज रहे हैं. मदमत्त भौंरे गुंज रहे हैं ॥ १२ ॥ फल, पुष्प और अंकुरके भारसे कल्पवृक्षोंकी शाखायें लटालूम हो रहीं हैं. जिनमें हंस, सारस, चकवा और कारंडव इनके झुंड व्याप्त हो रहे हैं ऐसे तालावोंके अंदर देवता और देवांगना क्रीड़ा कर रहीं हैं ॥ १३ ॥ जिसे खाईकी नाई आकाशगंगा घेर रहीं हैं और बड़ी बड़ी बुर्जोंवाला सुवर्णका ऊंचा कोट जिसे घेर रहा है ॥ १४ ॥ सुवर्णके पातोंके किवार द्वारोंमें लग रहे हैं, स्फटिक मणिके दरवाजे शोभरहे हैं, और विश्वकर्माके बनाये चौंड़े रास्ते, सभा, चौहटा, गलियां, मणिमय चौक, हीरे और विद्रुमकी वेदियां बन रहीं हैं, दश करोड़ यानी अनंतों विमान शोभ रहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

जिनकी तरुण अवस्था और सुकुमारता सदा एकसी, नवी रहती है ऐसी, स्वच्छ वस्त्र पहने सोलह बरसकी उमरवाली सुंदर रूपवती स्त्रियां जैसे अग्नि अपनी ज्वालासे दीप्त होता है वैसे प्रकाशित हो रहीं हैं ॥ १७ ॥ जहां देवांगनाओंके केशपाससे गिरी जो नवीन कमलकी माला उसकी सुगंधि लिये मार्गमें पवन सदा बहती है ॥ १८ ॥ जहां सुवर्णकी जालियोंमेंसे निकसते सुफेद अगरुके सुगंधिधूमसे आच्छादित मार्गके अंदर देवांगना जा रहीं हैं ॥ १९ ॥ चंदवोंमें मोतियोंके गुच्छे लटक रहे हैं, मणि और सुवर्णकी ध्वजायें और नानाप्रकारकी पताकायें फहरा रहीं हैं, छज्जोंपे बैठेहुए मयूर, कबूतर और भौंरे नाद कर

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ॥ भ्राजंते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥ सुरस्त्रीकेश-
विभ्रष्टनवसौगंधिकस्रजाम् ॥ यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्ग-
च्छद्धूमेनागुरुगंधिना ॥ पांडुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यांति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमके-
तुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ॥ शिखंडिपारावतभृंगनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥
॥ २० ॥ मृदंगशंखानकदुंदुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ॥ नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोर-
मां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥ यां न व्रजंत्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ॥ मानिनः कामि-
नो लुब्धा एभिर्हीना व्रजंति यत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समंताद्रुरुधे पृतन्य-
या ॥ आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुंजन्मयमिंद्रयोषिताम् ॥ २३ ॥

रहे हैं, विमानोंमें बैठीहुई देवांगना मधुर और मंगलिक गान कर रहीं हैं ॥ २० ॥ मृदंग, शंख, नक्कारे, दुंदुभि, ताल, वीणा, मुरज, ऋष्टि और वेणुआदि बाजे बाज रहे हैं सुंदर नाच कूद रंगराग हो रहा है, गंधर्वलोगोंके मधुर गीतकी सुंदरता छा रही है, जिस नगरीने अपनी कांतिसे सूर्यादिक ग्रहोंकी प्रभा हर लीनी है ॥ २१ ॥ जिसमें अधर्मी, खल, भूतद्रोही, शठ, अभिमानी, लंपट और लोभी पुरुष नहीं जा सकते, किंतु जिनमें ये अवगुण नहीं हैं वे जा सक्ते हैं ॥ २२ ॥ महाराज ! उस इंद्रपुरीको सेनापति बलिने अपनी सेनासे बाहिरकी और चौतर्फसे घेर ली ओर इंद्रकी स्त्रियोंके भय उत्पन्न करतेहुए बलिने

शुक्राचार्यजीके दियेहुए महास्वन शंखका शब्द किया ॥ २३ ॥ बलिका बड़ा भारी उद्यम देख, उसका अभिप्राय जानकर, सब देवतोंको संग ले, बृहस्पतिके निकट आ, इंद्रने यह वचन कहा कि— ॥ २४ ॥ ' हे भगवन् ! हमारे पूर्ववैरी बलिका बड़ा भारी उद्योग मालूम होता है. सो अभी इसे मैं असह्य मानता हूं, परंतु किस सबबसे इसका तेज प्रताप बढ़ा ? ॥ २५ ॥ हे गुरु ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है. अभी इसे कोई किसी तरह हटा नहीं सक्ता; क्योंकि—यह मानों मुखसे इस जगत्को पी जायगा, दशों दिशाओंको चाट जायगा और दृष्टिसे दिशाओंको भस्मकर देगा, इसतरह चारों ओर अग्निकी नाईं उठरहा है, ॥

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ॥ सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४ ॥ भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः ॥ अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥ २५ ॥ नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ॥ पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥ दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥ २६ ॥ ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ॥ ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७ ॥ गुरुरुवाच ॥ जानामि मघवन्शत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ॥ शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥ भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ॥ नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतांतस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ यात कालं प्रतीक्षंतो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३० ॥ एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः ॥ तेषामेवापमानेन सानुबंधो विनंक्ष्यति ॥ ३१ ॥

॥ २६ ॥ यह मेरा शत्रु किस सबबसे दुर्धर्ष हुआ ? सो इसका कारण मुझे कहो, कि—जिससे ओज, सह, बल और तेजके प्रभावसे इसने ऐसा उद्योग किया ' ॥ २७ ॥ बृहस्पतिने कहा कि—हे इंद्र ! मैं इसकी उन्नतिका कारण जानता हूं, ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने अपने शिष्यके तंई अपना तेज दिया है ॥ २८ ॥ जैसे कालके सामने कोई मनुष्य ठहेर नहीं सकता, ॥ २९ ॥ वैसे एक परमेश्वरके शिवाय तू या तेरे जैसा दूसरा कोईभी ठहेर नहीं सक्ता ॥ २९ ॥ इस लिये तुम सब स्वर्गको छोड़कर, भाग जाओ और शत्रुका समय बदल जाय, उसकी राह देखते रहो ॥ ३० ॥ अभी इस बलिराजाका भाग्योदय और पराक्-

मकी वृद्धि ब्राह्मणोंके बलके प्रतापसे हुई है, सो जब यह उन्हींका अपमान करेगा, तब स्वयं परिवारसहित नाश हो जायगा ॥ ३१ ॥ शुकदेवजी बोले कि—सलाह देनेवाले बृहस्पतिजीने ऐसी सलाह दी. तब वे देवता अपने मनचाहे स्वरूप धारण कर करके, स्वर्ग छोड़कर, चले गये ॥ ३२ ॥ देवता सब छिप गये, तब विरोचनके पुत्र बलिने देवधानी नाम इंद्रकी पुरीमें रहकर, सब त्रिलोकीको वश किया ॥ ३३ ॥ शिष्यपर परमदयालु भृगुवंशियोंने जगत्को जीतनेवाले और आज्ञाकारी अपने शिष्यका इंद्रपद स्थिर रहनेके लिये सौ अश्वमेध यज्ञ कराने प्रारंभ किये ॥ ३४ ॥ यज्ञके प्रतापसे त्रिलोकीमें विख्यात अपनी कीर्तिको

एवं सुमंत्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ॥ हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥ देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ॥ देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥ तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ॥ शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ॥ कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव ॥ ३५ ॥ बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलंभिताम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥ हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ॥ निरुत्सवं निरानंदं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

दिशाओंके अंदर फैलाता वह बलि, चंद्रमाके समान शोभने लगा ॥ ३५ ॥ अपने आत्माको कृतार्थसा मानता वह उदारचित्त बलि ब्राह्मणोंकी दीहुई समृद्ध राज्यलक्ष्मीका भोग करने लगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें पुत्रोंकी दुर्दशा देखकर, अदितिने सोच करके, कश्यपजीसे प्रार्थना की, तौ कश्यपजीने पयोव्रतका उपदेश किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह पुत्रोंकी बिलकुल दुर्दशा होगई. और स्वर्ग दैत्योंने छीन लिया. तौ देवतोंकी माता अदिति अनाथकी तरह संताप करने लगी ॥ १ ॥ एक समय भगवान् कश्यपजी बहुतकालसे समाधिसे विरत हो, अकस्मात् उसके आश्रममें पधारे, सो उस

आश्रमको आनंदरहित और उत्सवहीन देखा ॥ २ ॥ हे राजा ! अदितिने जो आसन दिया, उसपर विराज, यथायोग्य सत्कार पाय, अपनी स्त्रीको विलख वदन देखकर, कश्यपजीने उससे कहा कि-॥ ३ ॥ हे कल्याणी ! अभी जातमें ब्राह्मणोंका, धर्मका या मृत्युके वशवर्ती लोकका कुछ अकल्याण तौ नहीं हुआ है ? ॥ ४ ॥ हे घरकी स्वामिनी ! अथवा घर कि, जिनमें स्वधर्म पालनेसे योग साधे विनाभी योगके फल प्राप्त होते हैं उनमें धर्म, अर्थ के काम पुरुषार्थसंबंधी कुछ बिगाड़ तौ नहीं हुआ है ? ॥ ५ ॥ अथवा घर आयेहुए अतिथियोंका कुटुंबमें आसक्त तेरे, सन्मुख जानेआदिसे, अतिथिसत्कार न करते, अतिथि विना स-

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ॥ सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥ अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुना गतम् ॥ न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ अपि वा कुशलं किंचिद्गृहेषु गृहमेधिनि ॥ धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥ अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुंबासक्तया त्वया ॥ गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ॥ यदि निर्यांति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ॥ त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ॥ ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ॥ लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥ अदितिरुवाच ॥ भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥

त्कार किये तौ कहीं नहीं चले गये हैं ? ॥ ६ ॥ जिनके घरोंमें अतिथियोंका जलसेभी सत्कार नहीं किया जाय और वे विना आतिथ्य चले जायं, वे घर सियालकी भारके समान हैं ॥ ७ ॥ हे सती ! हे कल्याणी ! मेरे परदेश जानेपर, उद्विग्नचित्त तू कभी समयपर हविसे अग्निमें होम करना तौ नहीं भूल गयी है ? ॥ ८ ॥ ब्राह्मण और अग्नि ये दोनों सर्वदेवमय हरिभगवान्के मुख हैं. अतएव इनका पूजन करनेसे गृहस्थीको मनवांछित फल देनेवाले लोककी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ हे मनस्विनी ! तेरे सब पुत्र प्रसन्न तौ हैं ? तेरे लक्षणोंसे मैं जानता हूं कि-तेरा चित्त प्रसन्न नहीं है ॥ १० ॥ अदितिने कहा कि-हे ब्रह्मन् !

गौ, ब्राह्मण, धर्म और इस लोकके सबप्रकारसे कल्याण हैं, हे गृहमेधिन् ! धर्म, अर्थ, कामके उत्पत्तिक्षेत्र इन घरोंमें यह त्रिवर्गभी यथायोग्य प्रवर्त्त रहा है ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं जो आपका ध्यान करती हूं, उसके प्रभावसे अग्नि, अतिथि, नौकर, चाकर और याचकलोग जो किसी लालसासे आते हैं, इसमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती है ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! प्रजापति आप जिसे इस तरह धर्मका उपदेश कर रहे हो, उस मेरे मनका कौन मनोरथ पूर्ण न होवे ? ॥ १३ ॥ हे कश्यपजी ! सत्व, रज और तमोगुणवाली ये सब प्रजा आपहीके मन और शरीरसे प्रगट हुई हैं, सो हे प्रभु ! यदपि वे दैत्य-

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥ सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥ को नु मे भगवान्कामो न संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनःशरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्मादीश भजंत्या मे श्रेयश्चिंतय सुव्रत ॥ हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥ १८ ॥

आदि आपके सब बराबर हैं, तौभी बड़ोंकी यह रीति है कि,-अपने भक्तकी पालना करते हैं ॥ १४ ॥ हे सुव्रत ! मैं आपकी भक्त हूं सो हे ईश ! मेरेवास्ते कल्याणका विचार करो. हे प्रभु ! शत्रुओंने हमारी राजलक्ष्मी और स्थान छीन लिया है, सो हमारी रक्षा करो ॥ १५ ॥ हे प्रभु ! शत्रुओंने मुझे निकाल दिया है, सो मैं दुःखसागरमें डूब रही हूं, जबर्दस्तोंने मेरा ऐश्वर्य, धन, यश व स्थान सब कुछ छीन लिया है ॥ १६ ॥ हे साधु ! हे कल्याण करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! मेरे पुत्रोंको वे सब जिस तरह पीछे मिल जायं; बुद्धिसे वैसाही सोचकर, मेरे पुत्रोंका कल्याण करो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह

अदितिके प्रार्थना करनेपर, मानों हँसते २ कश्यपजीने अदितिसे कहा कि-' अहो ! भगवान्‌की मायाका प्रताप देखो, कि-यह सब जगत् जिसके प्रतापसे स्नेहसे बंध रहा है ॥ १८ ॥ पांचभौतिक और जड़ यह देह तो कहां ? और प्रकृतिसे पर यह आत्मा कहां ? कौन किसके पति और पुत्रादिक हैं ? केवल मोहही सबका कारण है ॥ १९ ॥ हे भद्रे ! जो तू अपने पुत्रोंका भला चाहती है तो सब जीवोंके अंतर्यामी, वासुदेव, जगत्‌गुरु, पुरुष, जनार्दन भगवान्‌की भक्ति कर ॥ २० ॥ सो वे दीनानुकंपी भगवान् तेरी कामना पूर्ण करेंगे. मेरा यह निश्चय है कि-भगवान्‌की भक्तिके सिवाय दूसरे देवतोंकी भक्ति सफल नहीं होती

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवंतं जनार्दनम् ॥ सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥ स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकंपनः ॥ अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥ अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ॥ यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥ २२ ॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदंत्याः सहपुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥ एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ॥ यथाऽह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविंदाक्षं भक्त्या परमयाऽन्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवाल्यां मृदा लिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥ यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मंत्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ यह सुन, अदितिने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! मैं किस विधिसे जगत्पति भगवान्‌की भक्ति करूं ? कि-जिसतरह सत्यसंकल्प भगवान् मेरे मनोरथको पूर्ण करें ॥ २२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझे भगवान्‌की भक्ति करनेकी विधिका उपदेश करो, कि-जिससे पुत्रोंसहित दुखिया मुझपर भगवान् तुर्त प्रसन्न हो जावें ॥ २३ ॥ कश्यपजीने कहा कि-पुत्रकी कामनासे मैनें ब्रह्माजीसे प्रश्न किया, तब जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायं ऐसा, व्रत जो ब्रह्माजीने मुझे कहा था, वह मैं तुझे कहता हूं सो सुन ॥ २४ ॥ फागुनके महीनेमें शुक्लपक्षमें बारह दिवसतक पयोव्रत धारण कर, भगवान्‌की परमभक्तियुक्त हो, कमलनयन भगवान्‌का पूजन करना ॥ २५ ॥ अमावास्याके दिन जो सुअरकी खोदीहुई मिट्टी मिल जाय तो, उसे शरीरमें लगाकर, बहते जलमें

स्नान करना और यह मंत्र पढ़ना कि-॥ २६ ॥ " हे देवि ! जगत्के लिये रहनेका स्थान चाहतेहुए आदिवराह भगवान् तुझे पातालसे बाहिर लायें हैं, सो हे पृथ्वी ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं. तू मेरे पापोंका नाश कर " ॥ २७ ॥ अपने नित्य नैमित्तिक कर्मसे निपटकर, एकचित्त हो, प्रतिमामें, सूर्यमें, पृथ्वीमें, जलमें, अग्निमें और गुरुमेंभी भगवान्का पूजन करना ॥२८॥ और प्रार्थना करनी कि-सबसे बड़े, सर्वभूतनिवासी साक्षी, पुरुष, वासुदेव भगवान् आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ अव्य-

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ॥ उद्धृताऽसि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थंडिले सूर्ये जले वन्हौ गुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥ नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥ नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृंगाय तंतवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥ नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥ नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

क्त, सूक्ष्म, प्रधान और पुरुषरूप, चौबीस गुणोंके जाननेवाले और सांख्यशास्त्रके प्रवर्त्तक आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३० ॥ यज्ञ कि-जिसके दो शिर हैं, तीन पांव हैं, चार सींग हैं, सात हाथ हैं और जो वेदत्रयी स्वरूप और फलके विस्तारने वाला है उसे मैं बारंबार प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ सब विद्याओंके अधिपति और भूताधिपति, शक्तिधर, शिव व रुद्ररूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हिरण्यगर्भ सूत्रस्वरूप, जगत्के आत्मा, योगके हेतु और योगैश्वर्यमूर्ति आपको प्रणाम है ॥ ३३ ॥ सबके आदिदेव और साक्षीरूप आपको प्रणाम है, नर-नारायण ऋषिमूर्ति हरि भगवान्को मेरा प्रणाम है ॥ ३४ ॥ मरकतमणिकेसे श्याम

वरन, लक्ष्मी धारण करनहारे, पीतपट ओढे, केशवमूर्ति आपको हमारा बारंबार प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे वरेण्य ! आप मनुष्योंको सब मनवांछित वर देते हो, इसीलिये धीरपुरुष कल्याणके वास्ते आपके चरणकमलके रजकी उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥ मानों चरणकमलकी सुगंधि चाहते हों वैसे देवता और लक्ष्मीजी जिनकी सेवा करतीं हैं, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ३७ ॥ इन मंत्रोंसे आवाहनपूर्वक सत्कार कर, श्रद्धायुक्त हो, पाद्य और आचमन-आदिसे भगवान्की पूजा करना ॥ ३८ ॥ गंध, पुष्प-आदिसे पूजन कर, भगवान्को पयःस्नान कराना, फिर वस्त्र यज्ञोपवीत आभूषण, पाद्य, आच-

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तंत यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ॥ स्पृहयंत इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मंत्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गंधमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥ वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥ गंधधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुंजीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाचमनमर्चित्वा तांबूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दंडवन्मुदा ॥ ४२ ॥ कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः ॥ द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥ भुंजीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥

मन, गंध, धूपआदि उपचारोंसे द्वादशाक्षर मंत्र बोल बोलकर, पूजन करना ॥ ३९ ॥ जो घरमें वैभव हो तौ घी, खांड, मिलाकर, खीर भोग धरनी और द्वादशाक्षर मंत्रसे खीरही होमनी ॥ ४० ॥ भगवान्का नैवेद्य चाहे तौ किसी भगवद्भक्तको दे देना, चाहे आप खा जाना, भगवान्को आचमन कराय, पूजन कर, तांबूल अर्पण करना ॥ ४१ ॥ एक माला फेरकर, भगवान्की स्तोत्रोंसे स्तुति करनी, परिक्रमा देकर, पृथ्वीपै आनंदपूर्वक दंडवत् प्रणाम करना, ॥ ४२ ॥ प्रसादी पदार्थ शिरपर चढाकर, भगवान्का विसर्जन करना, कमसे कम दो ब्राह्मणोंको नित्य यथायोग्य खीरसे भोजन करवाना ॥ ४३ ॥ और उनका सत्कार

कर, उनसे आज्ञा ले, कुटुंबसहित आप शेष पदार्थसे भोजन करना, उस रात्रिमें ब्रह्मचर्य रखना, दूसरे दिन फिर प्रातःकालमें स्नान कर, पवित्र हो, एकाग्रचित्तसे विधिपूर्वक दूधसे भगवान्‌को स्नान कराय, पूजन करना, सो व्रत समाप्त होवे, तबतक इसी-प्रकारसे करना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ विष्णु भगवान्‌के पूजनमें प्रीति रख, दूध खाकर, यह पयोव्रतनाम व्रत करना, पूर्ववत् अग्निमें होम करना और ब्राह्मणभोजन करवाना ॥ ४६ ॥ इसतरह बारह दिनतक पयोव्रत करनेवाले पुरुषको प्रतिदिन हरि भगवान्‌का पूजन करना, होम करना, भेट अर्पण करनी और ब्राह्मणभोजन करवाना ॥ ४७ ॥ पड़वासे प्रारंभ करना सो शुक्लात्रयोदशीतक

स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ॥ पयसा स्नापयित्वाऽर्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥ पूर्ववज्जुहयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पंचकैर्विभोः ॥ कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥ शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥ नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥

व्रत करना, ब्रह्मचर्य रखना, नीचे सोना, तीनों वख्त स्नान करना ॥ ४८ ॥ असत्य भाषण नहीं करना, नीचसे संभाषण नहीं करना, उच्च नीच सब भोग तज देना, किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी, भगवत्परायण रहना ॥ ४९ ॥ त्रयोदशीके दिन भगवान्‌को पंचामृतसे स्नान करवाना और शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके हाथ शास्त्रोक्त विधिसे धनका लोभ तजकर, भगवान्‌की महापूजा करवानी, शिपिविष्ट नाम विष्णु भगवान्‌के वास्ते दूधका चरु तैयार कर, एकाग्रचित्त हो, उसी औटाये हुये दूधसे भगवान्‌का यजन करना और भगवान् जिससे प्रसन्न हो जायं ऐसा, अतिगुणवाला नैवेद्य भोग धरना ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ज्ञानसंपन्न आचार्यको वस्त्र, आभूषण और गौदान दे, प्रसन्न करना और

ऋत्विजोंको प्रसन्न करना, यही भगवान्का मुख्य आराधन है ऐसा तू जान॥५३॥हे शुचिस्मितवाली! उनको और दूसरे ब्राह्मणोंको और फिर कोई आ गये हों उन सबको, गुणवाले और श्रेष्ठ अन्नसे शक्तिके अनुसार भोजन करवाना॥५४॥ यथायोग्य गुरु और ऋत्विजोंको दक्षिणा देनी और अन्न-आदिसे तौ चांडाल-प्रभृतिभी कोई चला आवे, उसे प्रसन्न करना ॥ ५५ ॥ जब दीन अंध और कृपण सब भोजन कर चुकें, तब आप कुटुंबसहित भोजन करना, इससे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं ॥ ५६ ॥ नृत्य, गीत, वादित्र, स्तुति, स्वस्तिवाचन, भगवान्की कथायें इनसे भगवान्का नित्य पूजन करवाना ॥ ५७ ॥ यह पयोव्रत नाम

भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४॥
दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ अन्नाद्येनाऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥
भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनांधकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुंजीत सहबंधुभिः ॥ ५६ ॥
नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥
॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥
त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९॥
अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥
त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥

भगवान्का परमआराधन है, जो ब्रह्माजीने मुझसे कहा था सो मैंने तुझसे कहा है ॥ ५८ ॥ हे महाभागे ! तूभी इस व्रतका भलीभांति अनुष्ठान करके जितेंद्रिय होकर, शुद्ध अंतःकरण और आत्मासे अव्ययस्वरूप केशव भगवान्का भजन कर ॥ ५९ ॥ हे कल्याणी ! यह व्रत सकलयज्ञरूप सब व्रतरूप, और तपका साररूप व सकल दानरूप है, अतएव यह व्रत भगवान्को प्रसन्न करनेवाला है ॥ ६० ॥ जिनसे भगवान् प्रसन्न होवें, वेही तौ साक्षात् नियम हैं और वही उत्तम यम है और वही सच्चा तप, दान, व्रत और यज्ञ है ॥ ६१ ॥

हे कल्याणी ! इसलिये प्रयत हो, श्रद्धासे इस व्रतका आचरण कर, सो भगवान् तुझपै प्रसन्न होकर, तेरे सब मनोरथ पूर्ण करैंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें अदितिने पयोव्रत किया, तद उसका मनोरथ परिपूर्ण करनेके लिये प्रथम भगवान् उसके पुत्र हुए, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! अपने पति कश्यपजीने इसतरह आज्ञा की, तद अदितिने सावधान हो, बारह दिनतक इस पयोव्रतका अनुष्ठान किया ॥ १ ॥ बुद्धिरुप सारथीसे मनद्वारा इंद्रिय-

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥ भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधेऽदितिपयोव्रतं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतंद्रिता ॥ १ ॥ चिंतयंत्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्येंद्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्मात्प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दंडवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थाय बद्धांजलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनंदजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

रूप दुष्ट घोड़ोंको वशमें ला, एकाग्रबुद्धिसे महापुरुष परमेश्वरका चिंतवन कर ॥ २ ॥ एकाग्रबुद्धिसे मनको सकलके आत्मा वासुदेव भगवान्में लगाके, अदितिने पयोव्रत किया ॥ ३ ॥ हे राजा ! उसके प्रभावसे पीतांबर पहने, शंख, चक्र, गदा धारण किये, चतुर्भुज आदिपुरुष हरि भगवान् प्रगट हुए ॥ ४ ॥ उन्हें नेत्रोंसे प्रत्यक्ष देखकर, वह अदिति तुर्त आदरसहित उठी और प्रीतिसे विह्वल होकर, उसने जमीनपर साष्टांग दंडवत किया ॥ ५ ॥ फिर वह खड़ी हो, हाथ जोड़, स्तुति करने लगी, परंतु नहीं कर सकी, क्योंकि–उसके नेत्र आनंदके मारे जलसे व्याकुल हो गये और शरीरमें रोम रोम खड़े होगये व भगवान्के दर्शनसे हुआ

जो अतिउत्सव उसके मारे शरीर उसका कांपने लगा, जिससे वह चुप हो बैठ गयी ॥ ६ ॥ हे राजा ! तथापि वह देवी अदिति मानों नेत्रसे भगवान्‌को पीजायगी, वैसे यज्ञपति व जगत्पति, लक्ष्मीपति विष्णु भगवान्‌को प्रीतिपूर्वक देखती, शनैः शनैः गद्गद वाणीसे भगवान्‌की स्तुति करने लगी ॥ ७ ॥ अदिति बोली कि–हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अच्युत ! हे पवित्रचरण ! हे पुण्यकीर्ति ! हे मंगलमय नाम व श्रवणवाले ! हे शरणागत लोगोंके दुःखको शांत करनहारे ! हे ईश ! हे भगवन् ! आप दीनोंके नाथ हो, सो आज हमारे सुख करो ॥ ८ ॥ विश्वमूर्ति, जगत्‌के सृष्टिस्थितिसंहार करनहारे, अपनी इच्छासे मायाके अनेक

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपादतीर्थश्रवःश्रवणमंगलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्योर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनंत भवंति तुष्टा त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम् ॥ यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥

गुण धारण करनहारे, व्यापक, अप्रच्युत स्वरूप, निरंतर वृद्धिंगत जो पूर्ण बोध उससे आत्मासंबंधी मायारुप अज्ञानको दूर करनहारे, हरि आपको मैं प्रमाण करती हूं ॥ ९ ॥ हे अनंत ! जब आप प्रसन्न हो जाते हो, तब ब्रह्माकीसी परमआयु, सुंदर रूप, अतुल्य संपदा, स्वर्ग, पृथ्वी व पातालका राज, सब सिद्धियोंके गुण, अणिमादिक, धर्म, अर्थ, काम व केवल ज्ञान ये सब मिल जाते हैं तो फिर शत्रुजय- आदि जो तुच्छ कामना हैं, वे क्यों न सिद्ध होवें ? ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इस तरह अदितिने स्तुति की, तब हे भारत ! सब जीवोंके क्षेत्रज्ञ कमलनयन भगवान् इसतरह बोले ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा

कि- हे देवमाता ! हमने तुम्हारे मनमें बहुत दिनोंसे जिस बातकी इच्छा लग रही है, वह जानली है, तेरी यह मनसा है कि- " दैत्योंने मेरे पुत्रोंकी सब लक्ष्मी हर लीनी और स्वर्गसे च्युत कर दिये ॥ १२ ॥ सो मेरे पुत्र पीछे संग्राममें इन दुर्मद दैत्यों- को जीतकर, पीछे जय व लक्ष्मीको प्राप्त होवें " ॥१३ ॥ और इंद्र जिनमें सबसे बड़ा है ऐसे, अपने पुत्रोंके हाथ दैत्य मारे जायं और उनकी स्त्रियां दुःखी होकर रोवें, उन्हें तू देखना चाहती है॥ १४॥और अपने पुत्र पीछे यश और संपदाको पाकर, अच्छीतरह समृद्ध हों, स्वर्गमें बैठे क्रीड़ा किया करें, यह देखनेकी तेरी इच्छा है ॥ १५ ॥ परंतु हे देवि ! मैं जानता हूं कि-बहुत करके अभी

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इंद्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदंतीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः ॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि चिंत्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गंतुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥ त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

उन दैत्ययूथपतियोंको जीतना बड़ा कठिन होगा , क्योंकि-अभी उनका दैवभी अनुकूल है और ब्राह्मणभी राजी हैं, इसलिये ठीक रक्षा हो रही है, सो वहां यदि पराक्रम किया जायगा. तौभी कुछ नहीं होगा ॥ १६ ॥ हे देवि ! तौभी मुझे तो कुछ न कुछ उपाय सोचनाही पड़ेगा, क्योंकि-तूने पयोव्रत करके, मुझे प्रसन्न किया है, मेरी कीहुई अर्चा कभी वृथा नहीं जाती है और फलभी ऐसा मिलना चाहिये कि-जिस श्रद्धासे उसने पूजन किया हो ॥ १७ ॥ और तूने पयोव्रत करके, केवल पुत्रोंकी रक्षाके निमित्त मेरी अर्चा की है और गुणवर्णनपूर्वक मेरी स्तुति की है, इसलिये मैं कश्यपजीके तपमें स्थित हो, मेरे अंशसे तेरा पुत्र होऊंगा और तेरे पुत्रोंकी रक्षा करूंगा ॥ १८ ॥ सो हे कल्याणि ! अब तू तो कल्मषरहित अपने पति कश्यपजीकी सेवा कर और

जैसे स्वरुपसे मैं स्थित हूं, वैसेही स्वरूपसे तुझारे पतिमेंभी रहा हूं, ऐसे मेरी तुम अपने पतिके अंदर भावना करो ॥ १९ ॥ जो कोई तुझसे पूंछेभी, तौभी तुम यह बात किसीसे कहना नहीं; क्योंकि–हे देवि! देवोंकी गुह्य बात सब गुप्त रहनेहीसे सिद्ध होती है ॥ २० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकमुनि बोले कि–ऐसे आज्ञा कर, हरिभगवान् तौ अंतर्धान हो गये, अदितिभी अपने शरीरमें भगवान्का अवतार होगा, यह दुर्लभ वर पाकर, ॥ २१ ॥ कृतकृत्य हो, जैसे भगवान्ने आज्ञा की उसीतरह परमभक्तिसे पतिकी सेवा करने लगी, अमोघदृष्टि कश्यपजीनेभी समाधिके प्रभावसे यह सब बात जान ली

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ॥ सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥ उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥ २२ ॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवंतं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तुते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५ ॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥

॥ २२ ॥ कि–"हरिका अंश मेरे शरीरमें प्रवेश हुआ है" महाराज! फिर कश्यपजीने एकाग्रचित्त होकर, जैसे पवन काठमें अग्नि धारण करता है, वैसे बहुत दिनोंका संचय कियाहुआ वीर्य तपके प्रभावसे अदितिके अंदर धारण किया ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीको यह विदित हुआ कि–अदितिके गर्भमें सनातन भगवान् आये हैं, तब वे गुह्य नामोंसे स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि–हे उरुगाय! हे भगवन्! हे उरुक्रम! आपकी जय हो, हम आपको प्रणाम करते हैं, ब्रह्मण्यलोगोंके दैवत और त्रिगुण आपको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ २५ ॥ पृश्निके गर्भ, वेदोंमें प्रकाशमान, त्रिलोकी जिनकी नाभिमें है ऐसे त्रि-

आपको प्रणाम करते हैं ॥ २६ ॥ आपही इस जगत्के आदि, मध्य और अंत हो, आपहीको अनंतशक्ति पुरुष कहते हैं, हे ईश ! कालस्वरूपभी आपही हो; क्योंकि-जैसे अंदर पड़ेहुए पदार्थको नदी-आदिका प्रवाह खींच ले जाता है, वैसे आपभी सब जगत्को खैंच रहे हो ॥ २७ ॥ आपही इस चराचर प्रजा और प्रजापतियोंके पैदा करनेवाले हो. हे देव ! स्वर्गसे च्युत इन देवतोंके तौ अब, जैसे जलमें बूड़ते मनुष्यके नावही शरण है, वैसे एक आपही शरण हो ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ अठारहवें अध्यायमें सब लोगोंसे सत्कार पाकर, वामनस्वरूप भगवान् बलि राजाके यज्ञमें पधारे, वहां उसने बड़ा सत्कार किया और कहा कि-'वर मांगो' यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह ब्रह्माजीने भगवान्के चरित और पराक्रमका वर्णन किया. तदनंतर जन्म-मृत्युशून्य व कमलनयन हरि पीतांबर पहिने, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अदितिके अंदर चतुर्भुज स्वरूपसे प्रगट हुए ॥ १ ॥ कैसा है स्वरूप कि-जो श्याम व उज्ज्वल बरन जिसके मुखकमलपर मकराकृत कुंडलकी कांतिसे छबि छा रहीहै ऐसा, पुरुषस्वरूप वक्षस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह धारण किये, कंकण और भुजबंधके साथ कटिमेखला, किरीट, हार और नूपुरसे शोभायमान ॥ २ ॥ भौरोंका झुंड जिसपै गुंज रहा है ऐसी अपनी वन-

लोकीके ऊपर विराजमान, जीवोंके अंतर्यामी विष्णुरूप

त्वमादिरंतो भुवनस्य मध्यमनंतशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथाऽतः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजंगमाना प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥ दिवौकसां देवदिवच्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिंचस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुंडलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनांबुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षावलयांगदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितश्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कंठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥

मालासे विराजमान और अपने शरीरकी कांतिसे कश्यपजीके घरका अंधकार दूर करते, गलेमें कौस्तुभमणि धारण किये ॥ ३ ॥ उस स्वरूपका प्रागटच होतेही दिशायें और जलाशय निर्मल हो गये, प्रजा प्रसन्न हुई और ऋतु सब गुणयुक्त हुई, स्वर्ग, पृथ्वी, अंतरिक्ष, देवता, गौ, ब्राह्मणं व पर्वत ये सब बहुत हर्षयुक्त हुए ॥ ४ ॥ भाद्रपद शुदी द्वादशीके १२ दिन अभिजित् मुहूर्तमें प्रभु प्रगट हुए, इस समयमें नक्षत्र और ग्रह वगैरः सब अनुकूल थे ॥ ५ ॥ महाराज ! द्वादशीके दिन बराबर मध्यान्ह

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयस्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरंतरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥४॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्मदक्षिणम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप ॥ विजयानाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्मृदंगपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गंधर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायंतोऽतिप्रशंसंतो नृत्यंतो विबुधानुगाः ॥ अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥

समयमें भगवान्का अवतार हुआ, इसीलिये उस द्वादशीको विजया द्वादशी कहते हैं ॥ ६ ॥ शंख, दुंदुभि, मृदंग, पणव व आनक, बाजने लगे और चित्र विचित्र बाजोंका तुमुल शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न हो, नृत्य करने लगीं और गंधर्वोत्तम गाने लगे; मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, किंपुरुष, चारण, यक्ष, राक्षस, गरुड़, उत्तम सर्प और देवतोंके अनुचर गाते, नाचते और अतिप्रशंसा करते अदितिके आश्रममें फूल बरसाने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ साक्षात् परपुरुष अपने गर्भसे प्रगटहुए उन्हें देखकर, अदिति बहुत आनंदित हुई और आश्चर्य करने लगी और

अपनी योगमायासे देहधारण किये भगवान्‌को देखकर, कश्यपजीनेभी आश्चर्य मानकर, जय जय शब्द किया ॥ ११ ॥ अद्भुत चरित और अव्यक्त चैतन्य स्वरूप भगवान्, कांति, आभूषण और आयुधोंवाले जिस स्वरूपको धारण कर प्रगट हुए थे, उसी स्वरूपसे आप, माता पिताके देखते २ वामन बटुकरूप हुए, जैसे कोई नट स्वांग बदल लेता है ॥ १२ ॥ उन्हें वामन बटुरूप देखकर, महर्षिलोग बहुत प्रसन्न हुए और कश्यपजीको अग्रणी कर, जातकर्म संस्कार करने लगे ॥ १३ ॥ जब उनका यज्ञोपवीत होने लगा, तब सूर्यने गायत्रीमंत्रका उपदेश किया, बृहस्पतिने उपवीत दिया, कश्यपजीने मेखला दी ॥ १४ ॥ भूमिने

यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः ॥ बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दंडं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमंडलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयोऽददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादंबिका सती ॥ १७ ॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ ॥ १८ ॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥

कालिय हरिणका चर्म दिया, वनपति चंद्रमाने दंड दिया, माताने कौपीन दी, स्वर्गने जगत्पतिको छत्र दिया ॥ १५ ॥ महाराज ! ब्रह्माजीने कमंडलु, सप्तर्षियोंने कुश और सरस्वतीने अखंडस्वरूप भगवान्‌को करमाला दी ॥ १६ ॥ यज्ञोपवीत हो चुका, तब कुबेरने भिक्षापात्र दिया और साक्षात् अन्नपूर्णाने भिक्षा दी, ॥ १७ ॥ इसतरह वे श्रेष्ठ वामन बटु सबसे आदर पाकर, ब्रह्मतेजसे, जिसमें ब्रह्मर्षिगण बैठेहुए थे उस सारी सभामें, सबसे बढ़कर दीप्त होने लगे ॥ १८ ॥ अग्न्याधानकर, अग्निको प्रदीप्तकर, परिसमूहन करनेके अनंतर परिस्तरण तथा पूजन करके वामनजीने समिधसे होम किया ॥ १९ ॥

फिर आपको खबर मिली कि–भृगुवंशी ब्राह्मण, बलिराजाको सौ अश्वमेध यज्ञ करवाते हैं और वह यज्ञ सब प्रकारसे बढ़ रहा है, यह बात सुन सकल बल और सारसे परिपूर्ण, भगवान् पदपदमें पृथ्वीको भारसे नमाते वहां पधारे ॥ २० ॥ नर्मदानदीके उत्तर तटपर भृगुकच्छ नाम ( भडूच ) क्षेत्रमें बलिराजाको जो भृगुवंशी ब्राह्मण उत्तमयज्ञ करा रहे थे, उन ऋत्विजोंने मानो समीपमें सूर्यउदय हुआ हो ऐसे वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ महाराज ! वामनजीके तेजसे उन सब ऋत्विज, यजमान और सभापतियोंका तेज हत हो

श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्त्तयंतो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥ त ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमानो भगवान्स वामनः ॥ छत्रं सदंडं सजलं कमंडलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥ मौंज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४ ॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥

गया, सो वे सब मनमें सोचने लगे कि–क्या यज्ञदेखनेके लिये यह सूर्य आते हैं ? वा अग्नि आते हैं ? या सनत्कुमार तौ नहीं आते हैं ? ॥ २२ ॥ इसतरह शिष्यसहित सब भृगुवंशी ब्राह्मण तर्कणा कर रहे थे, इतनेमें दंड, छत्र, जलसहित कमंडलु लिये, भगवान् वामन अश्वमेध यज्ञके मंडपमें पधारे ॥ २३ ॥ मौंजी मेखला धारण किये, उपवीत और मृगचर्मरूप उत्तरीय धरे, जटा बांधे, मायासे बालक वामनरूप हरि भगवान्को ॥ २४ ॥ यज्ञमें प्रवेश किये देखकर, उनके तेजके दबदबेसे शिष्यसहित सब भृगुवंशी ब्राह्मण और सब अग्नि खड़े हुए और अगोनी करनेको सन्मुख गये ॥ २५ ॥ उनके रूपके अनुरूप छोटे २ अवयव और

और उस बलिराजाने आगतस्वागतपूर्वक अभि- अतिसुंदर स्वरूप देखकर, उनके लिये यजमान आप आसन लाया ॥ २६ ॥ नंदन कर, चरण पखार, उन संगरहित सुंदर स्वरूप वामनजीकी पूजा की ॥ २७ ॥ उस धर्मज्ञ राजाने लोगोंके कल्मषका नाश करनेवाला चरण धोनेका अतिमंगल जल, शिरपर धारण किया, कि-जिसे चंद्रमौलि महादेवने देवदेव परमभक्तिपूर्वक अपने शिरसे धारण किया है ॥ २८ ॥ बलिने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! आपका पधारना भले हुआ, हम आपको प्रणाम करते हैं, हमें क्या आज्ञा है. ? हे आर्य ! मैं तो आपको साक्षात् ब्रह्मर्षियोंका मूर्तिमान् तप मानता हूँ ॥ २९ ॥ आज हमारे पितर तृप्त हुए,

स्वागतेनाभिनंद्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसंगं मनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमंगलम् ॥ यद्देवदेवो गिरिशश्चंद्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥ अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्बटो वांछसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां कांचनं गुणवद्धाम मृष्टं तथाऽन्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ॥ ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥

आज हमारा कुल पावन हुआ. और आज यज्ञभी सांगोपांग हुआ, क्योंकि-आज आप हमारे घर पधारे ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणके पुत्र ! आज मेरे अग्नियोंमेंभी ठीक विधिपूर्वक होम हुआ; और आपके चरणकमलोंके धोनेके जलसे आज मैंभी निष्पाप हुआ, अहो, यह पृथ्वीभी आपके छोटे २ चरणोंसे आज पवित्र हुई ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणके पुत्र ! हे बटु ! जो तेरे चाहिये वह मांग, जो तू मांगेगा वही मैं तुझे दूंगा मैं तर्कसे जानता हूं कि-तू कुछ मांगने आया है; सो गौ, सुवर्ण, गुणवाला सुंदर घर, मिष्टान्नपान या ब्राह्मणकी कन्या, बढ़ेहुए गांव, घोड़े, हाथी के रथ हे पूज्यतम ! जो तुझे चाहिये वही तू ले ॥ ३२ ॥ इति श्रीभा-

गवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें भगवान्ने तीन पैग पृथ्वी मांगी, तद बलिराजाने देना स्वीकार किया, अनंतर शुक्राचार्यजीने उस बातको जानकर, निषेध किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ "दाताकी स्तुति करना, स्वयं संतोष रखना और प्रसंगके योग्य वचन कहना इत्यादिक धर्म भिक्षुक लोगोंको शिखलाते वामन भगवान्ने कहा" श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह बलिका धर्मयुक्त और प्रिय व सत्य वचन सुनकर, प्रसन्न हो, वामन भगवान्ने उसकी पीछी प्रशंसा करके, यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे राजा! तुम्हारा यह सत्य वचन तुम्हारे कुलके योग्य है और तुम्हारा वचन तो ऐसाही धर्मसंयुक्त व यशका करनेवाला होना चाहिये;

श्रीशुक उवाच ॥ इतिवैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तंससूनृतम् ॥ निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनंद्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशांतः ॥ २ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न संति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्राद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविंदत गदायुधः ॥ ५ ॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥

क्योंकि आपके पारलौकिक धर्ममें भृगुवंशी ब्राह्मण व शांतचित्त कुलवृद्ध पितामह प्रल्हादजैसे प्रमाणभूत हैं ॥ २ ॥ इस कुलमें आजतक कोई पुरुष सत्वहीन व कृपण नहीं हुआ है, कि-जिसने 'हां' कहकर, पीछा 'ना' कहाहो, वा ब्राह्मणको न दिया हो ॥ ३ ॥ आजतक तुम्हारे कुलमें कोई कृपण राजा पैदा नहीं हुए हैं, कि-जो युद्धमें वा दानके समय याचकके याचना करनेपर नट जायं, एक प्रल्हादकोही देखो, जो अपने निर्मल यशसे जैसे चंद्रमा आकाशमें प्रकाशे है वैसे प्रकाश रहा है ॥ ४ ॥ जिस कुलमें हिरण्याक्ष ऐसा वीर पैदा हुआ कि-जो गदा लिये इकल्ला इस पृथ्वीमें दिग्विजयके निमित्त प्रतिभट ढूंढ़ता फिरा, परंतु किसीका हियाव न पड़ा कि-उससे सामना करे ॥ ५ ॥ वराह भगवान्ने पृथ्वीका उद्धार करते समय आड़ा आया तो

अपने तई जीतनेवाला नहीं माना ॥ ६ ॥ उसे किसी कदर मुश्किलसे मारा, परंतु उसके पराक्रमको बहुत जियादा मानकर, अपने तई जीतनेवाला नहीं माना ॥ ६ ॥
विष्णुके हाथ उसका वध सुनकर, भाई हिरण्यकशिपु, पहले अपने भाईके मारनेवालेको मारनेके वास्ते क्रोध करके, वैकुंठमें गया ॥ ७ ॥ त्रिशूल हाथमें लिये, कालके समान उसे आता देखकर, समय जाननेवाले और मायावी पुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णु भगवान्ने सोचा कि- ॥ ८ ॥ जहां मैं जाऊंगा, वहीं यह चला आवेगा, जैसा मृत्यु प्राणियोंका पीछा नहीं छोड़ता वैसे कभी पीछा न छोड़ेगा, इसलिये इस बहिर्दृष्टिके हृदयमें मैं प्रवेश कर जाऊं फिर यह मुझे देख सकेगा नहीं ॥ ९ ॥ हे दैत्येंद्र ! ऐसा

तमा-निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हंतुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥ तमायांतं समालोक्य शूलपाणिं कृतांतवत् ॥ चिंतयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेंद्र ॥ श्वासानिलांतर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरंध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृष्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥११॥ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्त्तते पुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबंध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥

निश्चय कर, हृदयके अंदर थरथर कांपतेहुए हरि छोटासा स्वरूप कर, दौड़तेहुए उस शत्रुके शरीरमें श्वास लेनेके साथ प्राणके छिद्रद्वारा घुस गये ॥ १० ॥ उस हिरण्यकशिपुने वैकुंठको सूना देखा और वहां किसीको न देखकर, क्रोधमें आ, गर्जना करने लगा, फिर उसने स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा, आकाश, पाताल व समुद्र, सब जगह ढूंढ़ मारीं, पर कहीं विष्णुका पता न लगा ॥ ११ ॥ जब कहीं न देखा, तब इसतरह कहने लगा कि- मैंने यह सब जगत् ढूंढ़ मारा है, अब तौ जरूर मेरे भाईका मारनेवाला वहां चलागया दीखे है कि-जहा जानेपर मनुष्य फिर पीछा नहीं आता है यानी मर गया दीखता है ॥ १२ ॥ इस संसारमें शूरवीरोंके बैरका संबंध फकत मरनेतकका है और अज्ञाननिवृत्तिसे पहले पुरुषार्थका त्याग करना यहभी निबलप-

नहीं है क्योंकि-क्रोध अज्ञानसे प्रगट होता है ॥ १३ ॥ इसतरह "उसके पूर्वजोंकी स्तुति करके अब उसके पिताकी प्रशंसा करते हैं" कि-तुम्हारे पिता विरोचन कि-जो ब्राह्मणोंपर बड़ी दया रखते थे, उनके निकट आ, ब्राह्मणका वेष बनाय, देवतोंने उनसे उनका आयु मांगा तौ विरोचनने जानते बूझते देवतोंको अपना आयुष्य दिया ॥ १४ ॥ और आपभी हे राजा ! आपके शूरवीर पूर्वज, ब्राह्मण व औरभी उदारकीर्ति गृहस्थियोंके आचरण किये धर्मोंका आचरण करते हो ॥ १५ ॥ इस लिये वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ आपसे मैं कुछ पृथ्वी मांगता हूं, सो हे दैत्येंद्र ! वहभी कितनी कि मेरे तीन पैग ॥ १६ ॥ हे राजा

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येंद्र संमितानि पदा मम ॥ १६ ॥ नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥ १७ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान्द्वीपदाशुषं ॥ १९ ॥ न पुमान्मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावंतो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेंद्रियम् ॥ न शक्नुवंति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥

चाहो आप जगतके स्वामी और बड़े उदार हो, परंतु मैं तौ इसके सिवाय आपसे कुछ नहीं चाहता, क्योंकि-जो विद्वान् जितना चाहिये उतनाही परिग्रह रखता है, वह पापका भागी नहीं होता है ॥ १७ ॥ बलिने कहा कि-हे ब्राह्मणपुत्र ! तू बातें तौ ऐसी मारता है; कि-वृद्धपुरुषभी जिन्हें मानें, परंतु अभीतक तू नादान और मूर्ख है; क्योंकि-तू अपने स्वार्थको नहीं जानता है ॥ १८ ॥ सब लोकोंका एक ईश्वर जो मैं हूं, उसे बातोंसे प्रसन्न कर, जो मैं द्वीपका देनेवाला हूं उससे तीन पैग पृथ्वी मांगता है, यही तेरी मूर्खता है ॥ १९ ॥ जो मेरेपास आ जाता है, वह फिर याचना करनेके योग्य नहीं रहता है, इसलिये हे बटु ! जिससे तेरी वृत्तिका काम चल जाय उतनी पृथ्वी अपनी इच्छानुसार ले ॥ २० ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-त्रिलोकीमें

जितने प्यारे विषय हैं, चाहो हे राजा ! वे सब एक मनुष्यको मिल जायं, तौभी अजितेंद्रिय पुरुषकी कामना पूर्ण तौ कभी न हो सकेगी ॥ २१ ॥ जिसे तीन पैगमें संतोष न होगा तौ, वह द्वीपसेभी कौनसा तृप्त हो जायगा क्योंकि-द्वीप मिलनेपर, उसे नौखंडसहित सातों द्वीप मिलनेकी इच्छा होगी ॥ २२ ॥ हमने सुना है कि-पृथु और गयआदि राजा हुए उनका सातों द्वीपोंमें राज था, तौभी धन और विषयसुखकी तृष्णाका अंत नहीं पाया ॥ २३ ॥ महाराज ! जो यदृच्छासे मिले उसीमें संतोष रखता है, वह सदा सुखी है और जिसके संतोष नहीं उस अजितेंद्रिय पुरुषको चाहो तीनों लोक क्यों न मिल जायं ? पर उसे कभी सुख न होगा ॥ २४॥ मनुष्यके अर्थ व काममें संतोषका न होना, यही जन्म-मरणका हेतु है और

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिप-
तयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थकामैर्गता नांतं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन
संतुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषो-
ऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य
वर्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादंभसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वांछा-
तः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥

जो यदृच्छासे मिले उसीमें संतोष मानना, यह मोक्षका मार्ग है ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण यदृच्छासे मिले, उसीसे संतोष रखता है, उसका तेज बढ़ता रहता है और जो संतोष नहीं रखता है, उसका तेज जैसे जलसे अग्नि शांत हो जाता है, वैसे शांत हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये वरदेनेवालोंमें उत्तम आपसे मैं तीन पैगही मांगता हूं; क्योंकि-मेरा इतनेहीसे काम बन जायगा, धन उतनाही रखना चाहिये कि-जितनेसे काम चल जाय क्योंकि अधिकसे दुःख होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-इसतरह वामनने कहा तब, हँसकर, बलिने कहा कि-बहुत अच्छा, आपकी मरजी; जितना चाहिये उतना लीजिये, एसे कह, वामनको पृथ्वी देनेके वास्ते बलिने जलपात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥

और विष्णुको पृथ्वी देने लगा, उस वख्त ज्ञानमानोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने विष्णुका अभिप्राय जानकर, अपने शिष्य दैत्यपति बलिसे कहा ॥ २९ ॥ शुक्रचार्यजी बोले कि—हे बलि! ये अव्ययस्वरूप साक्षात् विष्णु भगवान् हैं और देवतोंका कार्य साधनेके लिये कश्यपजीसे अदितिद्वारा प्रगट हुए हैं ॥ ३० ॥ तैंने बहुत बुरा काम किया जो अनर्थको न जानकर, इनको पृथ्वी देनेके वास्ते प्रतिज्ञा की; मैं मानता हूं कि—दैत्योंपर यह बड़ा भारी अन्याय आ पड़ा है ॥ ३१ ॥ यह कोई साधारण बटु नहीं है, यह तो साक्षात् हरिही मायासे बटुकरूप धरकर, तेरे निकट आये हैं, सो अब यह तेरा स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज, यश, और शास्त्र सब कुछ तुझसे छीनकर, इंद्रको दे देंगे

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यंतमुशना असुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदांवरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधुमन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥ क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसंति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥

॥ ३२ ॥ यह विश्वरूप तीन पैगसे इन सब लोकोंको माप लेंगे, हे मूर्ख ! जब तू सर्वस्व विष्णुको दे देगा, फिर तेरा गुजर किस तरह होगा? ॥ ३३ ॥ और तेरी प्रतिज्ञा पारभी नहीं पड़ेगी; क्योंकि—यह प्रभु एक पैगसे तो पृथ्वी और दूसरे पैगसे आकाशको माप लेंगे फिर तीसरे पैगका कौन हवाल ? ॥ ३४ ॥ मैं मानता हूं कि— तू प्रतिज्ञा कियाहुआ पदार्थ न देनेके कारण नरकमें पड़ेगा. क्योंकि—कभी तुझसे प्रतिज्ञा कियाहुआ पदार्थ नहीं दिया जायगा ॥ ३५ ॥ और जगत्में प्रशंसाभी उस दानकी होती-है, कि—जिससे अपनी वृत्ति उच्छिन्न न हो जाय, उस दानकी प्रशंसा कभी नहीं होती कि,—जिससे जीविकाकाभी नाश हो

जाय; क्योंकि-वृत्तिवाला दान, यज्ञ, तप व कर्म सब कुछ कर सकता है ॥ ३६ ॥ धर्म, यश, धनकी वृद्धि, शरीरसुख और सुजन
इन पांचोंके अंदर जो धनको यथायोग्य बांटता है, वह क्या तौ इस लोकमें और क्या परलोकमें दोनों जगह सदा सुखी
रहता है ॥ ३७ ॥ हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! इस विषयमेंभी ऋग्वेदियोंने जो व्यवस्था कही है वह मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो, जो
अंगीकार किया हो, उसका पालन करना यह तौ सत्य और अंगीकार करके पीछा पालन न करना यह असत्य कहलाता है
॥ ३८ ॥ परंतु यह सत्य कछुक असत्यविना पार नहीं पड़ता. क्योंकि-जो सत्य है, वह तौ देहरूप वृक्षके फल फूलकी जगह

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पंचधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अ-
त्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ॥ सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥ ३८ ॥ सत्यं पु-
ष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्नस्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष
उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥ पराग्रिक्तम-
पूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥ भिक्षवे सर्वमोंकुर्व-
न्नालंकामे न चात्मने ॥ ४१ ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्सद्दु-
ष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥ ४२ ॥

है, सो वे फूल फल देहरूप वृक्ष जीता होवे, तभी हो सकते हैं. वृक्षके न जीते कभी नहीं हो सकते. इसलिये देहको झूंठ बो-
लकरभी बचा लेना चाहिये, क्योंकि झूंठ देहका मूल है ॥ ३९ ॥ जिस वृक्षका मूल उखड़ गया हो, वह जैसे सूख जाता है
व थोड़ी देरमें उखड़कर गिर जाता है, वैसे असत्य बिलकुल न रहे तौ शरीरभी बिलकुल सूख जाय; इसमें किसी तरहका
संदेह नहीं है ॥ ४० ॥ 'हां' यह अक्षर धनको दूर ले जानेवाला और धनवान्को धनसे खाली करनेवाला है; क्योंकि-जो
कुछ वस्तु देनेको 'हां' किया जाता है, उस वस्तुसे मनुष्यको खाली होना पड़ता है, ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य, भिक्षुकके वास्ते
सब देनेको स्वीकार करे, वह मनुष्य अपने आत्माकोभी सुख देनेको समर्थ नहीं रहता है यानी उसका शरीरसुखभी नाश हो

जाता है, वैसेही 'नहीं' यह अक्षर कि-जो स्वीकार करके फिर पीछा नट जानेसे असत्य कहलाता है, वह धनका व्यय न करवानेसे धनी पुरुषको पूर्ण रखनेवाला और दूसरेके धनकोभी अपनी ओर खींचनेवाला है ॥ ४२ ॥ परंतु इसपरसे सब बातके वास्ते नटना न चाहिये, क्योंकि- जो मनुष्य बिलकुल नट जाय वह अपकीर्तिका पात्र और जीवत्मुर्दा कहलाता है. तासों सत्य और असत्य इन दोनोंको शामिल मिलाकर बरतना चाहिये. स्त्रियोंके पास, ठठ्ठा ठठोलीमें, विवाह बनानेके लिये वर-आदिकी प्रशंसा करनेमें, आजीविका बचानेके लिये, प्राण जाते हों ऐसा संकट आ पड़े उस वख्त, गौ माताके हितके लिये, ब्राह्मणके वास्ते और जहां सत्य बोलनेसे किसीका वध होता हो

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४२ ॥ इ-ति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥२॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥

वहां, इतनी जगह झूंठ बोलनेका अपराध नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ बीसवें अध्यायमें बलिराजाने विष्णु भगवान्का कपट जान लिया तौभी असत्यसे डरते उसने देनेका संकल्प किया, तदनंतर वामन भगवान् अद्भुत रीतिसे तुर्त बढ़े, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि-इसतरह शुक्राचार्यजीने गृहपति बलि राजासे कहा, तब वह क्षणमात्र चुप हो, एकाग्रचित्त होकर, पीछा गुरुसे कहने लगा ॥ १ ॥ बलिने कहा कि-आपने सच कहा, गृहस्थियोंका धर्म यही है जिससे अर्थ, काम, यश व वृत्तिका नाश होवे ऐसा कभी न करना चाहिये ॥ २ ॥ परंतु मैं प्रल्हादका पौत्र होकर, 'मैं देऊंगा' इसतरह प्रतिज्ञा करके, धनके

---

१ जो मनुष्य मेरेपास कुछभी नहीं है मैंतो आप बहुत दुःख पाताहूं इस तरह नित्य कहता हो वह मनुष्य अपने असत्यसे दूसरेका धन खींच लेता है. यह बात प्रसिद्ध है. २ जहां किसी वर्णवालेका वध होता हो वहां साक्षीको झूंठ बोलना चाहिये, यह याज्ञवल्क्य स्मृतिमें कहा है.

लोभसे अब ब्राह्मणके पास कैसे नट जाऊं ? जैसे कपटी पुरुष नट जाया करता है ॥ ३ ॥ इस पृथ्वीने कहा है कि-'असत्यसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है, मैं सब कुछ सह सकती हूं, परंतु एक झूंठे आदमीका भार मुझसे नहीं सहा जाता है' ॥ ४ ॥ न तौ मैं नरकसे डरता हूं, न दारिद्र्यसे, न दुःखसागरसे, न पदच्युत होनेसे और न मृत्युसे डरता हूं, जैसा कि-मुझे ब्राह्मणसे ठगाई करते डर लगता है ॥ ५ ॥ जो जो ये धन-आदि पदार्थ हैं, उनको आपन न देंगे, तौभी ये तौ मरनेपर आपनको छोड़ही देंगे, फिर अपने हाथसे क्यों न देने चाहिये ? और उस देनेसेभी जो ब्राह्मण प्रसन्न न होवे, तौ फिर वह दियाभी किस का-

न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलंभनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥ श्रेयः कुर्वंति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येंद्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वांछितम् ॥ १० ॥

मका ? ॥ ६ ॥ दधीचि ऋषि और शिबि राजा-आदि सत्पुरुषोंने तौ अपने दुस्त्यज प्राणोंसेभी जीवोंका भला किया है, तौ फिर पृथ्वी-आदि पदार्थमें तौ क्या गिचड़ मिचड़ ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! युद्धमें पीछे न मुड़नेवाले जिन दैत्येंद्रोंने यह पृथ्वी भोगी है उन सबके इस लोकके और परलोकके सब वैभव तौ काल गिल गया है; परंतु जो पृथ्वीपै यश फैल गया है; उसे नहीं गिल सक्ता ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षि ! युद्धमें पीछे न हटकर, देहत्याग करनेवाले पुरुष तौ बहुत हैं; परंतु सुपात्रके आनेपर श्रद्धासे धन देनेवाले बहुत कम हैं ॥ ९ ॥ याचककी कामना परिपूर्ण करनेसे जो दुर्दशा हो जाय, वह तौ दयालु और उदार पुरु-

१ जितना वह मांगे उससे कम दिया जाय तौ ब्राह्मणको संतोष न होनेसे वह दियाहुआभी व्यर्थ जाय, तासों जितना याचे उतना सब देना चाहिये.

पके लिये अच्छाही है. तिसमेंभी आपजैसे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण करते जो दुर्दशा होवे तौ फिर कहनाही क्या? इसलिये इस बटुकको मैं मनवांछित देता हूं ॥ १० ॥ वेदविधिमें निपुण आपजैसे महात्माभी यज्ञ और क्रतुसे जिनका आदरपूर्वक यजन करते हैं, हे मुनि! चाहो यह वही वर देनेवाले विष्णु हों, चाहो कोई दूसरा हो, मैं तो इसे मनवांच्छित पृथ्वी दूंगा ॥ ११ ॥ चाहो यह मुझ निरपराधीको अधर्मसे बांध ले, परंतु मैं तो इसे कभी न मारूंगा, क्योंकि-इसने शत्रु होकर, डरते ब्राह्मणका रूप धर लिया है ॥ १२ ॥ यह विष्णु उत्तमश्लोक होकर, जो अपनी कीर्तिको तजना न चाहते तौ, मुझे युद्धमें

यजंति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवंत आम्नायविधानकोविदाः ॥ स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥ यदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाऽप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसंधं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पंडितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विंध्यावलिस्तदागत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥

मारकर, इस पृथ्वीको लेजाते अथवा मैं इन्हे मारकर, धरतीपर सुला देता ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसप्रकार बलिने शुक्राचार्यका कहना न माना और उनपै बिलकुल श्रद्धा न रक्खी, तद दैवकी प्रेरणासे गुरुने सत्यप्रतिज्ञ और उदार अपने शिष्यको श्राप दिया ॥ १४ ॥ कि-"तू बड़ा मूर्ख है. तुझे पंडितपनका अभिमान है और हमने उपेक्षा कर दी इसलिये, तू छक गया है और हमारी आज्ञा नहीं मानता है इसलिये अब तू तुर्तही लक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा" ॥ १५ ॥ इसतरह गुरुने श्राप दिया, तौभी वह महाशय सत्यसे न डिगा और पूजन करके, जलसे संकल्प कर, यह पृथ्वी वामनको देने लगा ॥ १६ ॥ उससमय मोतियोंको जालक नाम गहनेकी माला धारण किये विंध्यावलीनाम बलिराजाकी रानी वहां आयी और चरण धोनेको

...और वह जलसे भरीहुई सोनेकी झारी लायी ॥ १७ ॥ बलिराजाने अपने हाथोंसे उनके शोभायमान पदयुगल आनंदसे धोये. और वह जगत्को पावन करनेवाला जल सिरपर चढ़ाया ॥ १८ ॥ उस समय स्वर्गमें खड़े देवता, गंधर्व, विद्याधर, सिद्ध व चारण ये सब उसकी सरलता और उसके चरितकी प्रशंसा करते आनंदयुक्त हो, फूल बरसाने लगे ॥ १९ ॥ हजारों दुंदुभि वारंवार बाजने लगे और गंधर्व, किन्नर व किंपुरुष गाने लगे और सब लोग कहने लगे कि–इस उदारचित्त बलिराजाने बड़ा दुष्कर कर्म कि-

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदाऽसुरेंद्रं दिवि देवतागणा गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणंत आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुंदुभयः सहस्रशो गंधर्वकिंपुरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्रयं ॥ २० ॥ तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनंतस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेंद्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जंघयोः ॥ पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिंद्रसेनः ॥ २३ ॥

या कि–जो जानते बूझते शत्रुको त्रिलोकीका राज दिया ॥ २० ॥ महाराज ! संकल्प करतेही अनंत हरि भगवान्का वह गुणत्रयमय वामनस्वरूप अद्भुत रीतिसे बढ़ने लगा. कि–जिसमें पृथ्वी, आकाश, दिशा, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि ये सब अच्छीतरह समा रहे थे ॥ २१ ॥ उन महाविभूति भगवान्के गुणमय शरीरमें ऋत्विज, आचार्य और सभासदोंके साथ बलिराजाने पंचमहाभूत, इंद्रियां, विषय, अंतःकरण और जीवोंके साथ इस त्रिगुण सब जगत्को देखा ॥ २२ ॥ बलिराजाने चरणतलमें पाताल, चरणोंमें पृथ्वी, जंघामें पर्वत, उन विराट्रूप भगवान्के घुटनोंमें पखेरू और साथलोंमें पवनको



१ हरि तुम बलि छलिके का कीन । बांधन गये बँधाये आपहिं बड़ी सयानी कीन ॥ लिये लकुटिया द्वारे ठाढ़े निशिवाशर आधीन ॥ तीन पैग पृथ्वीके कारण बलिको सर्वस दीन ॥ सूरदासप्रभु बलिकी विनती हरिवरगन चित दीन ॥ १ ॥

गण देखा ॥ २३ ॥ भगवान्‌के वस्त्रमें संध्या, गुह्यस्थलमें प्रजापति, जघनमें बलि–आदि दैत्य, नाभिमें आकाश, कोखमें सात समुद्र और वक्षःस्थलमें नक्षत्रमाला देखी ॥ २४ ॥ हे राजा ! हृदयमें धर्म, भगवान्‌के स्तनोंमें ऋत व सत्य, मनमें चंद्रमा, वक्षःस्थलमें कमल, हाथमें लिये लक्ष्मी और कंठमें साम और उसके शब्द देखे ॥ २५ ॥ इंद्र–आदि देवता भुजामें, कानमें दिशा, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नासिकामें श्वास, नेत्रमें सूर्य, मुखमें अग्नि ॥ २६ ॥ वाणीमें छंद, रसनामें वरुण, भ्रुकुटिमें विधिनिषेध,

संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीन्जघने आत्ममुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिंधूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यंग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेंदुम् ॥ श्रियं च वक्षस्यरविंदहस्तां कंठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इंद्रप्रधानानमरान्भुजेषु सत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥ केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥ वाण्यां च छंदांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृपरेतसोंऽभः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजंगमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरंग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥

पलकोंमें रात्रि व दिन, ललाटमें क्रोध और भगवान्‌के अधरमें लोभ देखा ॥ २७ ॥ महाराज ! स्पर्शइंद्रियमें काम, शुक्रमें जल, पीठमें अधर्म, कदम रखनेमें यज्ञ, छायामें, मृत्यु, हँसनेमें माया और रोमावलीमें सब औषधिजाति, ॥ २८ ॥ नाड़ियोंमें नदियां, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, प्राणोंमें देवगण और ऋषि, अंगोंमें उस वीरने सब चराचरजीव देखे ॥ २९ ॥ हे राजा ! सर्वात्मक भगवान्‌के स्वरूपमें इस सब जगत्‌को देखकर, सब दैत्य अचेत होगये और असह्यतेज सुदर्शनचक्र, बिजुलीके कड़कड़ाहट सरखे शब्दवाला

शार्ङ्गधनुष ॥ ३० ॥ बड़ी फुरतीवाली विष्णु भगवान्‌की कौमोदकी नाम गदा, शतचंद्रयुक्त विद्याधर नाम खड्ग, अक्षयतीरोंवाले उत्तम दो भाथे और सुनंद नंद-आदि पार्षद, ये सब भगवान्‌के निकट आ, उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ हे राजा ! उस वख्त भगवान्‌के किरीट, बाजूबंद, मकराकृत कुंडल जगमगा रहे थे, श्रीवत्सका चिन्ह, कौस्तुभमणि, कटिमेखला, सुंदर वस्त्र व भ्रमर जिसपर गुंज रहे हैं ऐसी वनमाला धारण किये, वामन भगवान् अतिशोभा देते थे ॥ ३२ ॥ भगवान्‌ने एक पैगसे तौ पृथ्वी मापी

पर्जन्यघोषो जलजः पांचजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचंद्रयुक्तः स्थूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ सुनंदमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ॥ ३१ ॥ स्फुरत्किरीटांगदमीनकुंडलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलांबरैः ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ ३२ ॥ क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परंगतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ ॥ २० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेंदुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनंदनाद्या नरदेवयोगिनः ॥ १ ॥

और आकाश व दिशायें रहीं सो शरीर व हाथसे माप लीनीं, दूसरे पैगसे स्वर्ग माप लिया, अब तीसरे पैगके लिये उसके पास कुछभी बाकी न रहा, उरुक्रम भगवान्‌का चरण ऊपरकी तर्फ जाते २ महर्लोक, जनलोक व तपोलोकसेभी परे चला गया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचिताया तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ इक्कीसवें अध्यायमें विष्णु भगवान्‌ने लोकोंमें बलिराजाकी बड़ाई विख्यात करनेके लिये पैग पूरे न होनेके निमित्त बलिको बांधा, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! भगवान्‌का चरणारविंद सत्यलोकमें प्राप्त हुआ, उसे देख, ब्रह्माजी कि-जिनके

भवनकी कांति भगवान्‌के नखरूप चंद्रमानकी कांतिसे फीकी पड़ गयी थी और जो आपभी नखचद्रोंसे आच्छादित हो गये थे वे, मरीचि-आदि ऋषि, सनत्कुमार-आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगीजन, वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, शिक्षादिक वेदके अंग, पुराण और उनकी संहितायें तथा औरभी कि-जिनके कर्म-दोष योगरूप वायुसे प्रदीप्त हुए ज्ञानरूप अग्निसे भस्म हो गये हैं, वे सब भगवान्‌के चरणके निकट आये और इन सबोंने कर्मसे प्राप्त न होवे ऐसे ब्रह्मलोकको, जिनके स्मरणके प्रभावसे आप प्राप्त हुए हैं, उन भगवान्‌के चरणको प्रणाम किया ॥ १ ॥ २ ॥ फिर पवित्रकीर्ति ब्रह्माजीने विष्णु भगवान् कि-जिनके

वेदापवेदानियमान्वितायमास्तर्केतिहासांगपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रंधितकर्मकल्मषाः ॥ २ ॥ ववंदिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥ धातुः कमंडलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेंद्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥ तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगंधानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः ॥ ६ ॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमांकितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुंदुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥

नाभिकमलमेंसे आप उत्पन्न हुए हैं, उनके उन्नत हुए चरणकमलकी जलसे पूजा की और भक्तिपूर्वक स्तुति करी ॥ ३ ॥ हे राजा! ब्रह्माजीके कमंडलुका जल कि-जो भगवान्‌का चरण धोनेसे पवित्र हुआ था वही गंगा नामसे प्रसिद्ध हुआ है, जो गंगा मानों भगवानकी निर्मल कीर्ति हो, उसतरह आकाशमेंसे गिरती त्रिलोकीको पावन करती है ॥ ४ ॥ ब्रह्मा-आदि लोकपालोंने अपने अनुचरोंके साथ अपने विस्तारको समेटकर, पहलेके जैसे वामनरूपसे विराजमान अपने स्वामी भगवान्‌का आदरपूर्वक पूजन किया, और भेंटें अर्पण कीं ॥ ५ ॥ और जल, भेंटें, माला, दिव्य व सुगंधिवाला अरगजा, धूप, दीप, नैवेद्य, सुगंधि लाज ( लाई ), अक्षत फल, अंकुर ॥ ६ ॥ भगवान्‌के पराक्रमकी महिमाका जिनमें चिन्ह है ऐसे स्तोत्र, जयशब्द, नाच, गीत, बाजे, शंख व दुंदुभिके श-

ब्द, इनसे भगवानका सत्कार किया ॥ ७ ॥ मनसे वेगवान् ऋक्षराज जांबवानने भेरी बजाकर, सब दिशाओंमें बड़े उत्सवके साथ विजयकी डौंड़ी पीटी ॥ ८ ॥ तीन पैग मांगनेके मिससे सब पृथ्वी हरलीनी, उसे देखकर, दीक्षा लियेहुए अपने मालिकपर क्रोध करके, सब दैत्योंने कहा कि– ॥ ९ ॥ अरे ! यह ब्राह्मण नहीं हैं, यह तौ मायावियोंका शिरोमणि विष्णु है, यह ब्राह्मणका वेष बनाकर, गुप्तरूपसे देवतोंका कारज सिद्ध करना चाहता है ॥ १० ॥ इस शत्रुने बटुका रूप बनाकर, याचना करके, अपना स्वामी कि जिसने यज्ञमें सब प्रकारसे दंडका त्याग कर दिया है, उसका सर्वस्व हर लिया है ॥ ११ ॥ सत्यसंध और ब्राह्मणोंका भक्त व

जांबवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाञ्चया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबंधुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥ अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदंडस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरा ऽसुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हंतुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवन्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥ नंदः सुनंदोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥ १६ ॥

दयालु तिसमेंभी विशेषकर दीक्षा लियाहुआ यह अपना स्वामी बलि किसीकदर झूंठ तौ बोलही नहीं सक्ता ॥ १२ ॥ इसलिये इस वामनको मारेंगें तौ आपनको धर्म होगा और मालिककी सेवाभी समझी जायगी, इसतरह विचार करके, बलिके अनुचर दैत्योंने हाथोंमें शस्त्र उठाये ॥ १३ ॥ हे राजा ! बलि यह बात नहीं चाहता था, परंतु उन्हें क्रोध आगया, उससे वे सब त्रिशूल और पट्टिश हाथोंमें ले, वामन भगवान्‌को मारनेके लिये दौड़े ॥ १४ ॥ महाराज ! उन दैत्यपतियोंको दौड़ते आते देखकर, विष्णु भगवान्‌के पार्षदोंने शस्त्र उठाकर, हँसते २ रोक दिया ॥ १५ ॥ नंद, सुनंद, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड़, ॥ १६ ॥

जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्वत ये सब दश हजार हाथियोंका बल धारण किये दैत्योंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान्‌के पार्षद अपने दैत्योंको मार रह थे, उन्हें क्रोधसहित देखकर, शुक्राचार्यजीके श्रापको याद करके, बलिराजाने मना किया ॥ १८ ॥ बलिने कहा कि–'हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! हे निमि ! मेरा वचन सुनो. अभी तुम युद्ध मत करो, पीछे लौट जाओ; क्योंकि–यह समय अपने अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यो ! जो सब जीवोंको सुख दुःख देनेके लिये समर्थ है, उसे कोईभी आदमी पुरुषार्थ करके, नहीं उल्लंघ सक्ता है ॥ २० ॥ जो दैव पहले अपने तौ अनुकूल और देवतोंके प्रतिकूल

जयंतः श्रुतदेवश्च पुष्पदंतोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥१८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्या पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुध्या दुर्गैर्मंत्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदंति नः ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं योनोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥

था, वही आज बिलकुल विपरीत हो गया है ॥ २१ ॥ बल, मंत्री, बुद्धि, दुर्ग ( किला ) सलाह या मंत्र औषध–आदि और साम–आदि चाहो अनेक उपाय करे, परंतु यह पुरुष दैवको कभी नहीं उल्लंघ सक्ता है ॥ २२ ॥ तुमने इन हरिके पार्षदोंको कईबेर जीता है, परंतु आज येही दैवके प्रभावसे वृद्धिंगत हो, तुम्हें जीतकर, युद्धमें गर्जना करते हैं ॥ २३ ॥ जब दैव अनुकूल होगा, तब आपन इन्हें जीत लेंगे, तासों जो काल अपने अनुकूल होवे, उस कालकी राह देखो ' ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! विष्णु भगवान्‌के पार्षदोंसे पीटे जाते दैत्य और दानवोंके यूथपतियोंने अपने स्वामीका यह वचन सुन, पा-

तालकी राह ली ॥ २५ ॥ फिर पक्षिराज गरुड़जीने भगवान्का अभिप्राय जानकर, यज्ञमें सोमवल्लीकंडनके दिन वरुणपाशसे बलिको बांध लिया ॥ २६ ॥ समर्थ हरि भगवान्ने बलिको बांधा, उस वख्त सब दिशाओंमें और स्वर्ग व भूमिमें भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ २७ ॥ महाराज ! उदार यशवाले, स्थिरबुद्धि, उस बलिको लक्ष्मीहीन और वरुणके पाशोंसे बंधाहुआ देखकर, वामन भगवान्ने कहा कि- ॥ २८ ॥ 'हे दैत्य ! तूने मुझे तीन पैग देने स्वीकार किये हैं, तिनमें दोपैगसे मैंने तेरी सब भूमि दाब

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबंध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६ ॥ तं हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतोदिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियंस्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥ पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रांता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिंदुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रांतो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलंभते ॥ ३३ ॥

लीनी है अब तीसरा पैग दे ॥ २९ ॥ जितनी दूरमें यह सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाश करता है और जितनी दूरसे नक्षत्रोंके साथ चंद्रमा प्रकाशता है और जितनी दूरमें मेह बरसता है उतनी दूरमें तेरी यह पृथ्वी है ॥ ३० ॥ तू देखता है कि-मैंने एक पैगसे तौ पृथ्वीलोक दबाया और मेरे व्यापक शरीरसे आकाश व दिशायें दबायीं और दूसरे पैगसे तेरा सर्वस्वरूप यह स्वर्गलोक लिया ॥ ३१ ॥ बलिराज ! तूने प्रतिज्ञा करके नहीं दिया, इसलिये तेरा नरकमें वास होना चाहिये, इस बातमें तेरे गुरुकीभी संमति है सो तू नरकमें जा ॥ ३२ ॥ जो प्रतिज्ञा करके नहीं देता है किंतु याचकको ठगाता है, उसका मनोरथ वृथा है, स्वर्ग तौ दूर

रहा, उलटा नरकमें पड़ता है ॥ ३३ ॥ तूने धनवान्‌पनका अभिमान रखकर, 'हां मैं देऊंगा' इस तरह मुझे ठगा है, सो इस मिथ्या वचनका फलरूप जो नरक है, उसका कितनेएक वर्षतक भोग कर ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ बाईसवें अध्यायमें भगवान्‌ने प्रसन्न हो, वरदान दे, बलिराजाको सुतल लोकमें पठाया, परंतु उस अनुग्रहको न्यून मानकर, भगवान् उसके द्वारपाल हुए, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इसतरह भगवान्‌ने बलिदैत्यका अपकार किया और धीरजसे चलायमान किया,

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाऽहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुंक्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे बलिनिग्रहोनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुराः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलंभनं पदं तृतीयं कुरुशीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबंधाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्यतरं मन्ये दंडमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशंति हि ॥ ४ ॥

तौभी वह धीरजसे न डिगकर, दृढ़ताभरा यह वचन बोला ॥ १ ॥ बलिने कहा कि–हे पवित्रकीर्ति ! हे सुरवर्य ! मैंने जो प्रतिज्ञा की, उसमें मैं बिलकुल नामंजूर नहीं हूं, कपट किया है तौ आपने किया है, क्योंकि–आपने पृथ्वी मांगी तौ वामनरूपसे और मापी अन्यरूपसे; तौभी जो आप मेरा कहना झूंठ मानते हो तौ मैं उसेभी सत्य करे देता हूं, मेरे कहनेमें तौ बिलकुल ठगाई आतीही नहीं है, आपका तीसरा पैग बाकी रहा सो मेरे सिरपर धरो ॥ २ ॥ मैं पदच्युत होनेपरभी जैसा झूंठ बोलने और अपकीर्तिसे डरता हूं वैसा न तौ नरकसे, न पाशबंधनसे, न अपार दुःखसे, न धनसंबंधी कष्टसे और न आपके दियेहुए दंडसे डरता हूं ॥ ३ ॥ जो महत्पुरुषोंके हाथसे दंड मिलता है, उसे मैं पुरुषोंके अतिसराहने योग्य मानता हूं, क्योंकि–

१ मेरे मालसे जब आपके दो पैंग हुए तौ उससे मेरा शिर तौ उससे अधिक है; क्योंकि मालसे मालधनी सदा अधिक होता है.

कि-इस बलिराजाको समृद्धियुक्त इंद्रपद जो आपने दिया था, वह आज पीछा ले लिया, यह बहुत अच्छा किया और लक्ष्मीरूप महामोहमेंसे इस मेरे पौत्रको छुड़ाया, इससे मैं मानता हूं कि-यह इसपै आपने बड़ा अनुग्रह किया ॥ १६ ॥ जिससे विद्वान् पुरुषोंकोभी मोह हो जाता है, ऐसी यह लक्ष्मी जबतक पास होवे, तबतक कौन पुरुष अपने स्वरूपको बराबर जान सक्ता है ? तासों ऐसी कृपा करनेवाले, जगदीश्वर और सब लोगोंके साक्षी नारायणमूर्ति आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! कर जोड़े प्रल्हाद तौ सुन रहा था और ब्रह्माजी मधुसूदन भगवान्से कहने ल-

यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृतांजलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्रांजलिः प्रणतोपेंद्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विंध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ॥ कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहंति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुंचैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥

गे ॥ १८ ॥ इतनेमें अपने पतिको बँधाहुआ देख कर, हे राजा ! भयसे विह्वल उसकी पतिव्रता रानी विंध्यावलीने मुंह नीचा कर, कर जोड़, प्रणाम करके, भगवान्से यह वचन कहा ॥ १९ ॥ विंध्यावली बोली कि-अपनी क्रीड़ाके वास्ते यह त्रिलोकी आपनेही रची है, उसमें हे ईश्वर ! दूसरे कुबुद्धि और निर्लज्ज लोग मुफतमें अपना स्वामित्व मानते हैं, त्रिलोकीके कर्ता, हर्ता और पालक आपही हो और दूसरे पुरुषोंको 'हम स्वतंत्र हैं' ऐसी बात करनेका अधिकारभी आपनेही दिया है, सो आपको कोई कुछभी दे, ये बात तौ बिलकुल संभवेही नहीं; क्योंकि-जो कुछ है वह सब आपहीका है ॥ २० ॥ विंध्यावली बोलचुकी तद ब्रह्माजीने कहा

१ मैं तीन लोक दे चुका तौ अब तीसरा पेग पूरा करनेके वास्ते मैं मेरा देह अर्पण कर मेरी प्रतिज्ञाको पूर्ण करूंगा इसतरह देहादिकपर स्वामित्व बताकर, बोलता-हुआ यह मेरा स्वामी कुबुद्धि और निर्लज्ज है; क्योंकि सबके स्वामी तौ आप हो, सो कृपा करके, इस मंदबुद्धिको छोड़कर, इसका पालन करो.

कि–हे लोकपालक ! हे लोकनाथ ! हे देवदेव ! हे जगद्रूप ! जिसका आपने सर्वस्व हर लिया है, ऐसे इस बलिको छोड़ दीजिये यह दंडके योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ इसने आपको सब पृथ्वी दी है और कर्मोंसे कमायेहुए लोकभी अर्पण किये हैं और सर्वस्व देनेके अनंतर जो शरीर शेष रहा, सो वहभी दृढ़ बुद्धिसे आपके अर्पण किया है ॥ २२ ॥ जिन आपको चरणोंमें निष्कपट होकर, जो केवल जलमात्र अर्पण करे, और दूबके अंकुरमात्रसे आपकी पूजा करे तौ वहभी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाता है तौ भला इसने तौ बड़ी दृढ़ता भरे मनसे त्रिलोकीका राज अर्पण किया है, अब इसे दुःख क्यों ? ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे ब्रह्माजी ! मैं जिसपर अनुग्रह करता हूं.

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्मविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४ ॥ यदा कदा चिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तंभस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तंभनिमित्तानां जन्मादीनां समंततः ॥ सर्वश्रेयःप्रतीपानां हंत मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥

उसके जो धनका मद हो तौ, उसका धन हर लेता हूं. क्योंकि–धनके मदसे अकड़ाहुआ पुरुष दूसरे लोगोंकी और मेरीभी अवज्ञा करता है ॥ २४ ॥ अपने कर्मोंसे अनेक योनियोंमें भटकताहुआ यह परतंत्र जीव किसी समय मनुष्यदेह पाता है ॥ २५ ॥ सो इस मनुष्यदेहमें जन्म, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन-आदिका जो अभिमान न होवे तौ यह मेरा अनुग्रह समझना चाहिये ॥ २६ ॥ जो मेरा परमभक्त है वह, अभिमान व अकड़नेके कारणभूत और सर्व कल्याणके शत्रुरूप पूर्वोक्त धन–आदि अपने पास हों तौभी उनसे मोहित नहीं होता है और ऐसे भक्तको मैं मेरी इच्छासे संपदाभी देता हूं और जो अभक्त है उसे धन-आदिसे मोह हो जाता है इसलिये उसपै धन हरलेनेरूपही अनुग्रह करता हूं ॥ २७ ॥ दानव व दैत्योंमें अग्रणी

और उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बलि, मेरी अजय मायाको जीत गया है; क्योंकि-यह बहुत दुःख पाता तौभी घबराता नहीं है, ॥ २८ ॥ धन गया;स्थानसे च्युत हुआ; शत्रुओंके हाथ बँधा; तिरस्कार पाया, ज्ञातियोंने परित्याग किया, वेदना पाया, ॥ २९ ॥ गुरुने झिड़का और श्राप दिया और मैंनेभी कई छलके वचनोंसे अधर्म कहा, परंतु यह सत्यवादी और सुव्रत बलि-राजा अपने धर्मको नहीं छोड़ता है ॥ ३० ॥ अतएव यह देवतोंकोभी दुर्लभ ऐसे मेरे पदको प्राप्त हो चुका है, यानी सावर्णि

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मयाऽधर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरंतरस्यायं भवितेंद्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तंद्रापराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवंति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इंद्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यंति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥

मन्वंतरमें यह मेरा भक्त इंद्र होगा ॥ ३१ ॥ इतने दिन यह विश्वकर्माके बनाये सुतललोकमें रहेगा कि-जहां रहनेवालोंके मेरी कृपादृष्टिसे न तौ आधि है न व्याधि है. न क्लम, तंद्रा और पराभव है और न किसीतरहका उपद्रव है ॥ ३२ ॥ हे इंद्रसेन ! हे महाराज ! तुम अपने जातिवालोंको संग ले, सुतललोकमें जाओ· कि-जिसे स्वर्गमें रहनेवाले देवताभी चाहते हैं. पर मिलता नहीं है, तुम्हारा कल्याण होवे ॥ ३३ ॥ लोकपालभी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेंगे, फिर दूसरोंकी तौ बातही क्या ? और जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा नहीं मानेंगे. उन्हें यह मेरा सुदर्शन चक्र मार डारेगा ॥ ३४ ॥ मैं घरकी सामग्री और अनुचरसहित

तेरी सबसे रक्षा करूंगा. हे वीर ! मैं सदा तेरे द्वारपै रहूंगा. तासों निरंतर तुझे मेरे दर्शन हुआ करेंगे ॥ ३५ ॥ वहां दैत्य व दानवोंकी संगतिसे जो तेरा आसुरभाव है सो वहभी मेरा प्रभाव देखकर, कम होता २ आखिर बिलकुल मिट जायगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें बलि प्रल्हादके साथ सुतललोक गया, तद हरि भगवान् इंद्रके साथ स्वर्गमें जा, पूर्ववत् आनंद करने लगे, यह कथा

तत्र दानवदैत्यानां संगात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुंठो विनंक्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवंतं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥ बद्धांजलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहिताः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—इस प्रकार पुराणपुरुष भगवान्के वचन सुन, भक्तिसे उत्कंठायुक्त, महानुभाव, सर्व साधु पुरुषोंके माननीय, वह बलि अश्रुकलासे व्याकुल नेत्र हो, करजोड़, गदगदवाणीसे बोला ॥ १ ॥ बलिने कहा कि—अहो ! आपके प्रणाम करनेके लिये जो उद्यम किया जाता है; वही शरणागत भक्तजनोंके मनका मनोरथ पूर्ण करनेमें तत्पर रहता है; क्योंकि—[१]जिस उद्यमके प्रभावसे लोकपाल देवतोंको जो पहले नहीं मिला है ऐसा अनुग्रह मुझ नीच असुरको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—इसतरह कहकर, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवोंको प्रणाम कर, बंधनसे छूट, दैत्योंको संग ले, प्रसन्न हो, वह सुतललोकमें पैठा ॥ ३ ॥

---

१ मैंने आपको बराबर प्रणाम नहीं किया; किंतु केवल प्रणाम करनेके वास्ते उद्यममात्र किया, जब उससेभी आपका अलभ्य अनुग्रह प्राप्त हुआ तो आपके प्रणामका प्रभाव आश्चर्यरूप हो इसमें तो कहनाही क्या !

इसतरह भगवान् इंद्रको पीछा स्वर्ग दे, अदितिका मनोरथ पूर्ण करके, सब जगत्का पालन करने लगे ॥ ४ ॥ कृपा पाकर, बंधनसे मुक्तहुए, वंश धारण करनेवाले अपने पौत्र बलिको देखकर, भक्तिमें तत्पर चित्त प्रल्हाद यह वचन बोला ॥५॥ प्रल्हादने कहा कि–जिनको सब जगत् प्रणाम करताहै, एसे और ब्रह्मादिक देवताभी जिनके चरणारविंदको सदा प्रणाम करते हैं, वे आप, हम असुरलोगोंके आज कोतवाल हुए. जो अनुग्रह हमपै हुआ है, ऐसा अनुग्रह, न तौ ब्रह्माजीको मिला है, न लक्ष्मीजीको और न महादेवको तौ फिर दूसरोंको तौ कहांसे मिले ? ॥ ६ ॥ हे शरणद ! जिन आपके चरणकमलसंबंधी मकरंदके सेवनसे ब्रह्मादिक देवताभी

एवमिंद्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवंद्यैरपि वंदितांघ्रिः ॥ ६ ॥ यत्पादपद्ममकरंदनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनः समदृशो विषमस्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

ऐश्वर्यका भोग करते हैं, तब हम कि–जो दुराचार व उग्रजाति हैं और न आपके चरणकमलका नित्य सेवन करते हैं, उनपै आपकी कृपादृष्टि जैसी पूर्ण सेवा करनेसे होती है, वैसी किसकारणसे हुई ? सो इसका कारण हमारी समझमें नहीं आता है ॥ ७ ॥ अपार योगमायाकी लीलासे अखिल ब्रह्मांडके रचनेवाले और सर्वज्ञ आपका चरित्र बड़ा विचित्र है, क्योंकि–आप सर्वके आत्मा और समदृष्टि हो, यदपि आपको भक्तजन प्रिय हैं, तौभी आपका स्वभाव तौ कदापि विषम नहीं है, क्योंकि–आपका कल्पवृक्षके जैसा स्वभाव है ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे वत्स ! हे प्रल्हाद ! तेरा कल्याण होवे और तू अपने पौत्रको संग ले, आ-

नंदित होकर, सुतललोकमें जा और अपने जातिवालोंको आनंदयुक्त कर ॥ ९ ॥ वहां गदा हाथमें लिये मुझे नित्य बैठा देखे-
गा. और मेरे दर्शनसे उत्पन्न हुआ जो बड़ा आनंद उससे तेरे कर्मोंके सब बंधन कट जायगे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-
महाराज ! वह निर्मलबुद्धि और सब दैत्योंकी सेनाका पति प्रल्हाद बलिको संग ले, हाथ जोड़, "जो आज्ञा" कह,
भगवान्की आज्ञाको शिरपर चढ़ाय, आदिपुरुष भगवान्को परिक्रमा दे, प्रणत हो, आज्ञा ले, सुतललोकमें प्रवेश हुआ ॥ ११ ॥
॥ १२ ॥ हे राजा ! उसवख्त ब्रह्मवादियोंकी सभामें ऋत्विजोंके बीच अपने समीपमें बैठेहुए शुक्राचार्यजीसे हरि भगवान्ने

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबंधनः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृतांजलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोऽतिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन्संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रमनु संकीर्तनं तव ॥ १६ ॥ तथाऽपि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥ १७ ॥

कहा कि- ॥१३ 'हे ब्रह्मन् ! आपका शिष्य बलिराजा यज्ञ करता था, सो उसमें जो कुछ न्यूनता रही हो उसे आप पूर्ण क-
रो, कर्ममें जो कुछ न्यूनता रह जाय, वह ब्राह्मणोंकी दृष्टिहीसे जब परिपूर्ण हो जाती है तौ, फिर करनेसे तौ पूर्ण क्यों न होवे?'
॥ १४ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा कि-' जिसने कर्मोंके ईश्वर, यज्ञपति व यज्ञपुरुष आपकी सर्वभावसे पूजा की है, उसके कर्ममें
न्यूनता कैसे रह सक्ती है ? ॥ १५ ॥ क्योंकि-मंत्र, तंत्र, देश, काल, पात्र व दक्षिणाआदिमें जो कुछ न्यूनता रह जाती है, वह
आपके नामकीर्तनसे परिपूर्ण हो जाती है ॥ १६ ॥ हे भूमन् ! तौभी जो आप फरमाते हैं, तौ मैं आपकी आज्ञाके अनुसार

किया, परंतु जगत्‌में निंदित, तमोगुणरूप और असह्य, मत्स्यका स्वरूप, मानों आप कर्मसे बंधे हुए हों इसतरह परमेश्वरने क्यों धारण किया ? ॥ २ ॥ हे भगवन् ! सब लोगोंको सुख देनेवाला भगवान्‌का यह सब चरित हमें यथार्थ रीतीसे कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि-परीक्षित राजाने इसतरह प्रश्न किया, तद भगवान्‌ने मत्स्यरूपसे जो चरित किया, वह शुकदेवजीने कह सुनाया ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- गौ, ब्राह्मण, देवता, सत्पुरुष, धर्म और अर्थकी रक्षा करना चाहतेहुए परमेश्वर नाना शरीर धारण करते हैं ॥ ५ ॥ जेसे वायु उच्च नीच सकल पदार्थोंमें बिचरै है, परंतु उच्च-नीचपन नहीं पाती है, वैसे बुद्धिके गुणोंसे

एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छंदसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥ आसीदतीतकल्पांते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निःसृतान्वेदान्हयग्रीवोऽतिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेंद्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ॥ नारायणपरोऽतप्यत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥

उच्च-नीच मानेहुए सब पदार्थोंमें परमेश्वर अंतर्यामीपनसे रहेभी हैं, परंतु आप निगुण हैं, तासों उच्चनीचपन नहीं पाते हैं, तो फिर शुद्ध सत्वमय मत्स्यादिक अवतारसे तौ उच्च नीचपनकी शंकाही कौन ? ॥ ६ ॥ जो कल्प व्यतीत हुआ उसके अंतमें ब्रह्माजीको निद्रा आनेरूप निमित्तसे नमित्तिक प्रलय हुआ, उसमें हे राजा ! भूरादि तीनों लोक समुद्रमें बूड़ गये ॥ ७ ॥ उस समयपर ब्रह्माजीको निद्रा आने लगी, तौ वे सोना चाहते थे, इतनेमें उनके मुखमेंसे निकलेहुए वेदोंको समीपमें देखकर, बलवान् हयग्रीव दैत्य हर ले गया ॥ ८ ॥ परमेश्वर हरि भगवान्‌ने, दानवोंके राजा हयग्रीवका यह चरित्र देखकर, तुर्त मछलीरूप धारण किया ॥ ९ ॥ वहां सत्यव्रतनामक बड़ा राजर्षि नारायणके पारायण हो, जलमात्रका भक्षण करता तप करता था ॥ १० ॥

जो आप एकी दिनमें सौ योजन तलावमें फैलकर व्याप्त हो गये ॥ २६ ॥ अवश्य आप साक्षात् अखंडस्वरूप नारायण हरि भगवान् हो और जीवोंपे अनुग्रह करनेके लिये जलजंतुओंका स्वरूप धारण करते हो ॥ २७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हे सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले ईश्वर ! हे विभु ! आप शरणागत भक्तलोगोंके सत्य आत्मा और गतिरूप हो, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ आपके सब लीलावतार जीवोंके अभ्युदयके लिये हैं. सो यह अवतार आपने किस वास्ते धारण किया है सो हम जानना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे कमलनयन ! सबके सुहृद, प्रिय और आत्मरूप आपके चरणारविंदका शरण, जैसे भेददृष्टि अन्य

नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥ सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ २९ ॥ न तेऽरविंदाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकांतजनप्रियः प्रियम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वं महन्येतदरिंदम ॥ निमंक्ष्यत्यप्ययांभोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ३२ ॥ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताभसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥

असत्पुरुषोंका शरण वृथा है वैसे कदापि वृथा नहीं होता, अतएव हमें आपने इस अद्भुतस्वरूपका दर्शन दिया है ॥ ३० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–राजा सत्यव्रत इसतरह कह रहा था, इतनेमें एकांत भक्त लोगोंके प्यारे, जगत्के पति मत्स्यमूर्ति भगवान् प्रलयसमय प्रलयके समुद्रमें विहार करनेकी इच्छासे राजाका प्रिय करना चाहते यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे शत्रुदमन ! आजसे सातवें दिन ये स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल तीनों लोक प्रलयसागरमें डूब जायंगे ॥ ३२ ॥ जब त्रिलोकी प्रलयके जलमें डूब जायगी, तब मेरी प्रेरणासे एक बड़ी भारी नाव तुम्हारे निकट आ, उपस्थित होगी ॥ ३३ ॥

तब तुम सब औषधिया और छोटे मोटे सब बीज व सप्तर्षियोंको साथ ले, सब जीवोंके साथ ॥ ३४ ॥ उसी बड़ी भारी नावमें बैठ कर, निर्भय हो, ऋषियोंके तेजसेही उस अंधियारे प्रलयसागरमें बिचरते रहना ॥ ३५ ॥ जब तीव्र पवनसे वह नाव डिगमगावेगी तब मैं उपस्थित होऊंगा, सो वासुकी नाम बड़े सर्पसे उस नावको मेरे सींगमें बांध देना ॥ ३६ ॥ हे प्रभु ! ब्रह्माजीकी रात्रि रहेगी तबतक ऋषियोंके साथ तुम्हारी नावको खींचताहुआ समुद्रके अंदर विचरा करूंगा ॥ ३७ ॥ मेरी महिमा

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य मे शृंगे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरंतरधीयत ॥ सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥ आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिंतयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ॥ तामारुरोह विप्रेंद्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥

कि–जो " परब्रह्म " इस नामसे कहलाती है उसके विषे तू मुझे प्रश्न करेगा और मैं तुझे उत्तर दूंगा, उससे उसका खुलासा यथार्थ रीतिसे मेरे अनुग्रसे तेरे हृदयमें आ जायगा ॥ ३८ ॥ हरि भगवान् ऐसे राजाको आज्ञा कर, अंतर्धान हो गये और राजाभी जो भगवान्‌ने आज्ञा की उस समयकी राह देखने लगा ॥ ३९ ॥ यह राजर्षि पूर्वमुख दाभ बिछाय, ईशानाभिमुख हो, मत्स्यमूर्ति भगवान्‌के चरणोंका चिंतवन करता बैठा ॥ ४० ॥ इतनेमें सात दिन होतेही मर्यादारहित समुद्र चारों ओरसे पृथ्वीको डुबाता बरसते हुए बड़े २ मेघोंद्वारा बढ़ता हुआ नजर आया ॥ ४१ ॥ राजा भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर रहा था, इतनेमें

जो वह इस कल्पमें सूर्यका पुत्र श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ है और जिसे प्रभुने मनुकी पदवी दी है ॥ ११ ॥ एक समय कृतमाला नाम नदीमें वह जलसे तर्पण कर रहा था, सो उसकी अंजलिके जलमें अकस्मात् एक मछली चली आयी ॥ १२ ॥ हे राजा ! द्रविड़देशके राजा सत्यव्रतने अंजलिमें आयीहुई उस मछलीको जलके साथ नदीके जलमें छोड़ दी ॥ १३ ॥ तब महादयालु राजासे उस मछलीने अतिकरुणाके साथ यह वचन कहा कि– 'हे दीनवत्सल ! हे राजा ! ज्ञातिको मारनेवाले

योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ तस्यांजल्युदके काचिच्छफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोंऽजलिगतां सहतोयेन भारत ॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥ तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथं विसृजसे राजन्भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥ १४ ॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमंडलौ ॥ अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमंडलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥

इन जलजंतुओंसे भयभीत और दीन जो मैं हूं उसे इस जलमें आप किसतरह छोड़ते हो? ॥ १४ ॥ राजाको इस बातकी खबर नहीं थी, कि–भगवान्ने मुझपै अनुग्रह करनेके लिये मछलीका स्वरूप धारण किया है, तौभी उसने प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन किया ॥ १५ ॥ वह दयालु राजा उसके अतिदीन वचन सुन, उसे कलशमें ले, अपने आश्रममें ले आया ॥ १६ ॥ वह तौ वहां एक रात्रिमें इतनी बढ़ी, कि–कमंडलुमें समाई नहीं, तब राजासे यह बोली कि– ॥ १७ ॥ 'इस कमण्डलुमें तौ मैं बहुत दुःख पाती हूं सो यहां रहना तौ मैं नहीं चाहती, मेरे लिये कोई बड़ी जगह नियत करो, जहां मैं सुखसे

रहा करूं ' ॥ १८ ॥ तद राजाने उसमेंसे निकालकर, बड़े मटकेके अंदर रक्खी, वहांभी एक मुहूर्त्तमें तीन हाथ बढ़ गयी ॥ १९ ॥ और बोली कि-'हे राजन् ! इस मटकेके अंदर तौ मैं सुखपूर्वक नहीं रह सकती हूं. क्योंकि यह तौ मेरे रहनेके लिये पूर्ण नहीं है सो मुझे तौ कोई बड़ी जगह देवो क्योंकि-मैं आपके शरण आयी हूं' ॥ २० ॥ हे राजा ! तद उसमेंसे निकालकर, राजाने उसे सरोवरके अंदर डाली, तौ सरोवरके सब जलको ढककर, वह बड़ा मच्छ बन गया ॥ २१ ॥ और कहा कि-'हे राजा ! जलमें रहनेवाला जो मैं हूं उसको इतनेसे जलसे सुख नहीं होगा, मुझे तौ किसी ऐसे सरोवरमें ले जाओ कि-

स एनां तत आदाय न्यधादौदंचनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन्सुखं वस्तुमुदंचनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन्सरोवरे ॥ तदावृत्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षा योगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५ ॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ॥ यो भवान्योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥

जिसका जल खूटेही नहीं और रस्तेमेंभी ऐसा उपाय करो कि- मैं जल विना सरोवर आनेके पहले सूख न जाऊं' ॥ २२ ॥ मत्स्य भगवान्ने ऐसे कहा तब वह सत्यव्रत राजा, उस मच्छको जुदे जुदे अनेक जलाशयोंमें ले गया, परंतु वह मच्छ जिस जलाशयमें पड़े, उसमें उस जलाशय जितनाही बढ़ जाय, तब आखिर वह उसे समुद्रमें पटकने लगा ॥ २३ ॥ समुद्रमें पटकते समय वह मच्छ बोला कि-हे वीर ! ' यहां तौ मुझे बड़े बलवान् मगर-आदि जानवर खा जायंगे, सो यहां तौ मुझे मत छोड़ो ॥ २४ ॥ इस तरह उसकी मधुर वाणी सुनकर, राजा मोहित हो गया और राजाने उस मच्छसे कहा कि-' आप मच्छरूपसे हमें मोहित कर रहे हो सो आप कौन हो ? ॥ २५ ॥ हमने आजतक ऐसा पराक्रमी मच्छ न तौ देखा और न सुना है कि-

तौ नाव आयी. उसे देख, सब औषधियां और लताआदि ले, सप्तर्षियोंके साथ उस नावपर चढ़ा ॥ ४२ ॥ उस वख्त प्रसन्न हो, सप्तर्षियोंने राजासे कहा कि–हे राजा ! परमेश्वरको याद कर, वही आपनको इस संकटसे बचाकर, अपने तंई सुखी करेगा ॥ ४३ ॥ राजाके स्मरण करतेही, उस महासागरमें सुवर्णमय लाख योजनका शरीर धारण किये एक सींगवाले मत्स्य भगवान् प्रगट हुए ॥ ४४ ॥ भगवानने पहले जो आज्ञा की थी, उसके अनुसार उस मत्स्यके सींगमें सर्परूप रज्जुसे नावको बांधकर, प्रसन्न हो, वह राजा भगवान्‌की स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ राजा बोला कि–अनादि कालकी अविद्यासे आत्मज्ञानरहित और

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृंगधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबध्य नावं तच्छृंगे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबंधनः सुखेच्छया कर्मसमीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रंथिं स भिंद्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरुर्गुरुः ॥ ४८ ॥

उसीसे संसारके परिश्रमोंसे आतुर पुरुष इस संसारमें जिनके अनुग्रहहीसे आश्रित होकर, जिनको प्राप्त होते हैं, वे मुक्तिके देनेवाले आप हमारे परम गुरु होकर, हमारी देहाभिमानरूप ग्रंथिका छेदन करो ॥ ४६ ॥ अपने कर्मसे बँधेहुए ये मूर्खलोक, सुखकी इच्छासे बड़े २ दुख भुगत कर, कर्म किया करते हैं उस सुखकी वांछारूप दुर्बुद्धि जिनकी सेवासे निवृत्त होती है, वे भगवान् आप गुरु होकर, हमारे हृदयकी देहाभिमानरूप ग्रंथिका छेदन करो ॥ ४७ ॥ जैसे सोना और रूपा अग्निके सेवनसे मैलको त्यागकर, अपने स्वाभाविक वर्णको प्राप्त होते हैं, वैसे जिन भगवान्‌की सेवासे मनुष्य अपने मनके मलरूप अज्ञानको त्यागकर, स्वस्वरूपको प्राप्त

होता है; वे ये अविनाशी भगवान् हमारे परमगुरु होवें ॥ ४८ ॥ दूसरे देवता, गुरु और लोक ये सब इकट्ठे होकेभी जिनकी कृपाके दशहजारवें भागका लेशभी नहीं कर सक्ते हैं, उन परमेश्वर आपके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ ४९ ॥ मूर्ख मनुष्यका गुरु मूर्ख मनुष्य होवे, यह तौ जैसे अंधेका अग्रणी ( ले जानेवाला ) अंधा होवे वैसा है, इसलिये हम कि-जो अपना स्वरूप जानना चाहते हैं, वे सकल इंद्रियोंके प्रकाशक और स्वयंप्रकाश आपहीको गुरु स्वीकार करते हैं ॥ ५० ॥ मनुष्य मनुष्यको दुर्बुद्धिही देता है, कि-जिससे यह मनुष्य अपार संसारमें पड़गया है और आप तौ अमोघ और अव्यय ज्ञान देते हो, कि-जिस

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवंति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरंधस्य यथाऽग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमंजसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथाऽपि लोको न भवंतमंधधीर्जानाति संतं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिंध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रंथीन् हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवंतं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ॥ मत्स्यरूपी महांभोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

ज्ञानसे यह मनुष्य अनायाससे निजपदको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ आप सब लोकोंके मित्र, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञानमय और इष्टसिद्धिरूप सदा हृदयमेंही विराजो हो तथापि अंधबुद्धि और तृष्णासे बँधाहुआ यह लोक आपको नहीं जानता ॥ ५२ ॥ इसलिये सब देवनमें श्रेष्ठ उदार और ईश्वर आपके मैं ज्ञानप्राप्तिके वास्ते, शरण आया हूं, सो हे भगवन् ! परमार्थके प्रकाशक आपके वचनोंसे हमारे हृदयकी ग्रंथियोंका छेदन करके, निजरूपको प्रकाशित करो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह राजा सत्यव्रतने प्रार्थना की, तब आदिपुरुष मत्स्यमूर्ति भगवान्ने महासागरमें विहार करते समय राजासे सब तत्त्व कहा ॥ ५४ ॥

सांख्य, योग और कर्मका जिसमें निरूपण किया है और जिसमें अपना सब रहस्य रहा है, ऐसा दिव्य मत्स्यपुराण भगवान्ने सत्यव्रत राजासे कहा ॥ ५५ ॥ नावमें बैठेहुए सत्यव्रत राजाने सप्तर्षियोंके साथ भगवान्के श्रीमुखसे सनातन ब्रह्म और आत्मतत्त्वका विवेचन निःसंदेहरीतिसे सुना ॥ ५६ ॥ इन मत्स्यावतार हरि भगवान्ने गतप्रलयके अंतमें उठे जो ब्रह्माजी उन्होंके लिये हयग्रीव दैत्यको मारकर, वेद पीछे ला दिये ॥ ५७ ॥ वह ज्ञान और विज्ञानयुक्त सत्यव्रत राजा भगवान्की कृपासे इस कल्पमें वैवस्वत नाम मनु हुआ है ॥ ५८ ॥ मायासे मत्स्यमूर्ति हरि भगवान् और सत्यव्रत राजाके संवादरूप इस

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥ अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्मसनातनम् ॥ ५६ ॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारे हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिद्ध्यंति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैय्यासक्यामष्टमस्कंधे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनंनाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥

बड़े आख्यानको जो श्रवण करे, वह पापोंसे मुक्त हो जाय ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य हरि भगवान्के इस अवतारका नित्य कीर्तन करे उसके सब मनोरथ सिद्ध होवें और वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ प्रलयके जलमें हयग्रीव दैत्यको मारकर, जिन्होंने सोतेहुए ब्रह्माजीके मुखोंमेंसे उस दैत्यके हरेहुए वेद पीछे लाकर, ब्रह्माजीके स्वाधीन किये और जिन्होंने सत्यव्रत और सप्तर्षियोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया उन, सबके कारणरूप और मायासे मत्स्यरूप भगवान्को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महा० अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ अष्टमस्कंध समाप्त ॥ ॥

संस्कृत मिन्दर

Size-33·21 Cm

Printed

॥ इति श्रीभागवते भाषया सहितोऽष्टमस्कंधः समाप्तः ॥